कुर्रतुलऐन हैदर

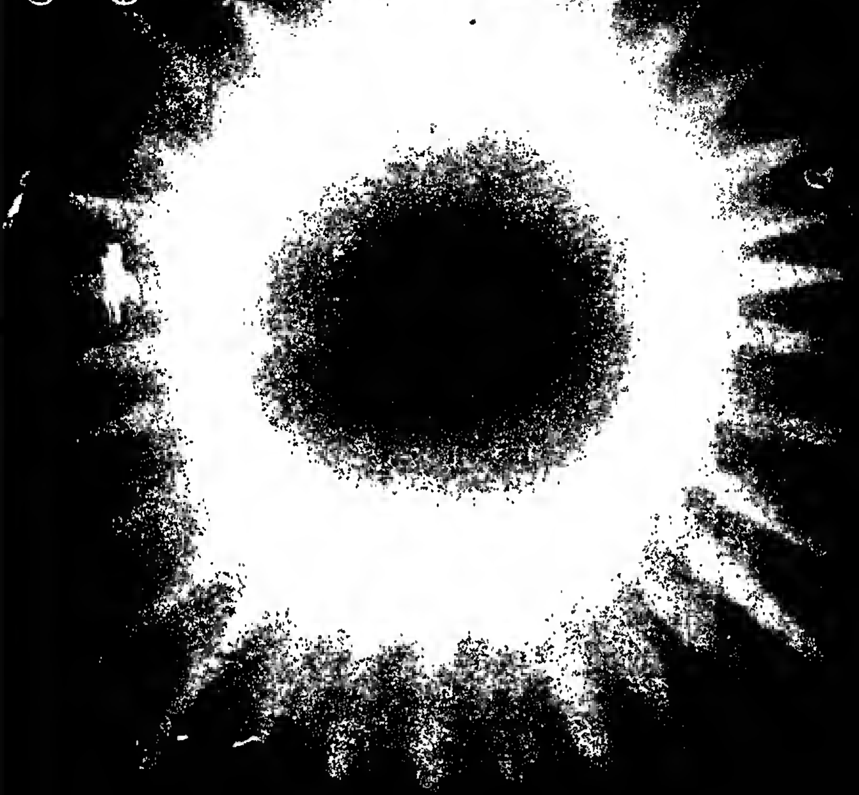

आग का दरिया

आग का दरिया

कुर्रतुलऐन हैदर

अनुवादक

नंद किशोर विक्रम

इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन

के-71, कृष्णनगर, दिल्ली-110051

प्रकाशक
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
के-71, कृष्णनगर, दिल्ली-110051

अक्षर संयोजक
संजय लेजर प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक
तरुण प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-32

AAG KA DARYA (Novel) ***by*** **Qurratulain Haider**

लेखिका की ओर से

इस उपन्यास के बारे में मनघड़ंत कहानियों और अफ़वाहों का सिलसिला इस क़दर मज़बूत हो चुका है कि उसका खंडन अब मेरे बस की बात ही नहीं रही। हाल ही में कुदरत अल्लाह शहाब[1] मरहूम का 'शहाबनामा' छपा था जिसने बहुत ज़्यादा लोकप्रियता हासिल की है। इस किताब में एक जगह वे फ़र्माते हैं :

"मार्शल लॉ लगते ही एक रोज़ सुबह सवेरे कुर्रतुलऐन हैदर मेरे यहाँ आई। बाल बिखरे हुए, चेहरा उदास—आँखें परेशान। आते ही बोली—अब क्या होगा...तो गोया अब भौंकने पर भी पाबंदी लगी है। ऐनी[2] ने बड़ी पीड़ा से पूछा...आँखों में आँसू तैरने लगे। आँसू छुपाने के लिए उसने मुस्कराने की कोशिश की और एक ठंडी साँस भर कर किसी क़दर लापरवाही से कहा—अरे भई ! रोज़ भौंकना कौन चाहता है लेकिन भौंकने की आज़ादी भी तो कितनी नेमत है...मेरा अंदाज़ा है कि...सेंसरशिप की कल्पना ही से उसके ज़हन को बड़ा झटका लगा। कुछ अजब नहीं कि इस झटके की प्रतिक्रिया ने उसकी कलम की बागडोर 'आग का दरिया' की तरफ़ मोड़ दी हो।"[3] दीर्घता के विचार से पूरा उद्धरण नहीं दिया। शहाब साहब बड़े शरीफ़ और नेक इंसान थे। ग़लत बयानी का इलज़ाम नहीं लगाया जा सकता लेकिन उनकी स्मरण शक्ति ने निःसंदेह उनको धोखा दिया क्योंकि यह सारा नाटकीय दृश्य चित्रण कहानी है। पहली बात यह कि मैं बाल बिखरा कर, आँखों में आँसू भर कर सर्द आहें नहीं खींचती। भौंकना वग़ैरा बोलना मेरा स्वभाव नहीं। दूसरी बात यह कि 'आग का दरिया' मैंने 1956 में शुरू किया था और 1957 में ख़त्म हुआ। मार्शल लॉ 11 अक्टूबर, 1958 को लागू हुआ। उस वक्त नावल की पांडुलिपि लाहौर में थी और दिसंबर 1959 में मक्तबा जदीद ने इसे प्रकाशित किया। पहले संस्करण के आखिरी पृष्ठ पर सन दर्ज है अतः सेंसरशिप के 'ज़हनी झटके' ने मेरी कलम 'आग का दरिया' की तरफ़ नहीं मोड़ी।

आगे चल कर शहाब साहब ने यह भी लिखा है कि चंद ही हफ्तों बाद राइटर्स गिल्ड की स्थापना के सिलसिले में परामर्श करने कुर्रतुलऐन हैदर, जमीलुद्दीन आली, ग़ुलाम अब्बास इब्नुल हसन, इब्ने सईद और अब्बास अहमद अब्बासी उनके दफ़्तर में गए। यहाँ भी शहाब साहब भूल गए क्योंकि उपर्युक्त व्यक्तियों ने मेरे दफ़्तर में आकर प्रस्तावित संघ में शामिल होने के लिए कहा था। (इस घटना का ज़िक्र 'कार-ए-जहाँ दराज़ है' के द्वितीय भाग में मैं कर चुकी हूँ जो 1959 में प्रकाशित हुआ)

दिसंबर 1959 में इस नावल के प्रकाशन के कुछ दिन बाद नून मीम राशिद ने इस

पर रेडियो समीक्षा की थी (प्रकाशित 'आहंग' कराची) कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—"इस सोहबत में सिर्फ़ एक नई किताब से बहस करना चाहता हूँ। वह क़ुर्रतुलऐन हैदर का नावल 'आग का दरिया' है जिसको प्रकाशित हुए अभी दस-पंद्रह दिन ही हुए हैं। एक ही नावल पर बहस करने का कारण यह है कि यह नावल उर्दू उपन्यासकारिता में अत्यंत महत्त्व हासिल करके रहेगा। इसमें कोई शक नहीं कि क़ुर्रतुलऐन हैदर ने वक़्त के साथ जो तजुर्बा किया है वह तकनीक के लिहाज़ से बड़ा महत्त्व रखता है।

इस नावल में तलअत नाम की लड़की गोया वे ख़ुद हैं। यद्यपि तलअत और चरित्रों के प्रतिकूल कहीं भी यूँ नहीं उभरती कि आदमी उसे नावल का एक ज़रूरी चरित्र कहने पर मजबूर हो जाए...जहाँ तक इस नावल का संबंध है यह अपने संपूर्ण विस्तार के बावजूद हिंदुस्तान की आबादी के एक वर्ग की कहानी है। यह यू. पी. के मुसलमानों की वह त्रासदी है जिसमें हिंदुस्तान की तक़सीम ने उसे मुब्तला कर दिया था...यद्यपि हिंदुस्तानी मुसलमान के इस संघर्ष और असमंजस का विश्लेषण क़ुर्रतुलऐन हैदर ने बड़ी दक्षता से किया है और तकनीक के लिहाज़ से इसका बड़ा महत्त्व है लेकिन इस वक़्त यह महसूस होता है कि इस नावल का प्रकाशन बड़ी हद तक बे-वक़्त की रागिनी है।"

दूसरा लंबा लेख डाक्टर मुहम्मद एहसन फ़ारुक़ी का था जो 'साक़ी' (अप्रैल 1960) में छपा..."अब मेरा सपना भी टूट गया. उनके विषय पर उनकी तरह ही सोच रहा हूँ। साहबज़ादी! क्या दूरदर्शिता है, क्या प्रौढ़ दृष्टता है...वर्जीनिया वुल्फ से आगे बढ़ जाती हैं..." वग़ैरा वग़ैरा वग़ैरा। पूरा मज़मून पढ़ने से संबंध रखता है क्योंकि इन्हीं स्वर्गीय ने उसी महीने 'जंग' में सिराज रिज़वी का 'आग का दरिया' के विरुद्ध मज़मून छपने के बाद से अपने मज़मून में साहबज़ादी की ख़ूब-ख़ूब निंदा की और 'आग का दरिया' के जवाब में एक नावल भी लिखा था जिसका नाम 'संगम' था।

'कार-ए-जहाँ दराज़ है' में विस्तार से लिख चुकी हूँ। सिराज रिज़वी कोई साहब थे जिनके बारे में अब सुना है (न जाने इसमें कितनी सच्चाई है) कि किसी निजी मामले के सिलसिले में उन ब्रिगेडियर साहब की ख़ुशनूदी हासिल करना चाहते थे जो मार्शल लॉ के तहत एक प्रकार के 'साहित्यिक निरीक्षक' मुक़र्रर किए गए थे। अप्रैल 1960 में सिराज रिज़वी का एक लम्बा और बेहूदा मज़मून इस नावेल के ख़िलाफ़ दैनिक 'जंग' कराची में छपा (जिसमें एक गवेषणा यह भी की गई थी कि लेखिका प्रसिद्ध भारतीय कम्युनिस्ट डाक्टर रशीद जहाँ की सगी भांजी है) इसी मज़मून का अनुवाद कराची के एक अंग्रेजी दैनिक में उसी रोज़ छपा :

"हमारी एक 'सांस्कृतिक विशेषता' यह भी है कि किसी नारी का विरोध मंज़ूर हो तो सबसे पहले उसके बारे में अफ़वाहें फैलाई जाती हैं।" (मासिक 'इस्मत' कराची पृ. 6, दिसम्बर 1960) मौलाना राज़िक़ुल ख़ैरी स्वर्गीय, एडिटर 'इस्मत' ने तहरीर फ़र्माया..."उन्होंने 'आग का दरिया' नावल लिखा तो जहाँ एक हलक़े में धूम मच गई वहाँ ईर्ष्यालु अंगारों पर लोटने और ऊल-फूल बकने लगा। यूँ भी इस बच्ची से अत्यंत झूठी और व्यर्थ बातें जोड़ी जा रही थीं। तिल का पहाड़, पर का कव्वा और मैल का बैल बनाने में मुसलमान बादशाह हैं लेकिन जहाँ न तिल हो, न पर, न मैल वहाँ भी नहीं चूकते—"

जमीलुद्दीन आली ने राइटर्स गिल्ड की ओर से सिराज रिज़वी को नोटिस भिजवाया। 8 मई, 1960 को उनकी क्षमायाचना छप गई। इसके बाद वे दृश्य-पट से गायब हो गए। मामला ख़त्म हो गया (सच्चाई यह है कि यह नावल पाकिस्तान में एक दिन के लिए भी 'बैन' नहीं हुआ, न लेखिका से किसी किस्म का सरकारी हस्तक्षेप किया गया।)

नावल सेंसरशिप किए जाने की अफ़वाह संभवतः इस वजह से फैली कि किताबत की शुद्धि करते वक़्त मैंने कई वाक्य और पैराग्राफ़ निकाल दिए थे, जो प्रूफ़ रीडिंग का आम कायदा है। जल्दी में वे पृष्ठ उसी तरह प्रेस भेज दिए। एक परिच्छेद में मैंने केवल "हिंदुस्तान 1947" लिखा था। इसकी अत्यंत मूर्खतापूर्ण व्याख्या यह की गई है कि बाकी इबारत सेंसर की भेंट हो चुकी है।

इस हंगामे से अलबत्ता इस क़दर कोफ़्त हुई कि जब मुझे मालूम हुआ कि मौलवी अब्दुल हक आदिम जी एवार्ड का हकदार सिर्फ़ 'आग का दरिया' को समझते हैं तो मैंने खुद को जजों की कमेटी में शामिल करवा लिया और यह साहित्यिक पुरस्कार शौकत सिद्दीक़ी को दिया गया। लोगों ने कहा कि साहित्यिक पुरस्कारों के लिए अक्सर जोड़-तोड़ किए जाते हैं और आप हैं कि- वगैरा वगैरा।

मैं एडवर्टाइजिंग फ़िल्म्ज़ एण्ड पब्लिकेशंज़, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय से संबंधित थी। 1960 के अंत में एक डाक्यूमेंटरी फिल्म बनाने के लिए पूर्वी पाकिस्तान गई (विवरण के लिए देखिए 'कार-ए-जहां दराज़ है' भाग-2, पृष्ठ 279) वापसी पर इस महकमे के लिए 'Decimal Coins' के बारे में पाकिस्तान की पहली कार्टून फिल्म का स्क्रिप्ट लिखने के बाद मैं वालिदा (माँ) को इलाज की गरज से लंदन ले गई। उस वक़्त तक बहुत से उर्दू लेखक पश्चिम में निवास इख़्तियार कर चुके थे। यह सिलसिला आज तक जारी है। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जो वालिद मरहूम के प्रिय दोस्त थे, उन्होंने कुछ वर्ष पहले मुझसे कहा था तुम वापिस क्यों नहीं आ जातीं? बरतानिया में स्थाई निवास की बजाय हिंदुस्तान वापसी का संबंध 'आग का दरिया' से नहीं है।

अब कुछ गुज़ारिश नावल के बारे में। मैंने 'ओरलैंडो' और 'सिद्धार्थ' यह नावल लिखने के बाद पढ़े। 'पर्दा-ए-मजाज़' कभी पढ़ा ही नहीं। एक लम्बी कहानी को विभिन्न कालों में चंद चरित्रों के ज़रिए पेश करना कोई ऐसा अनोखा ख़याल नहीं जिसके लिए इस किस्म की और किताबों का अध्ययन ज़रूरी हो। एक ही नाम के चरित्रों के बार-बार प्रकट होने की वजह से यह भी समझा गया कि यह नावल आवागमन के बारे में है। पाठको, यह नावल आवागमन के बारे में नहीं है।

गौतम नीलाम्बर मैंने खुद रचा था। यहाँ आकर पता चला कि नीलाम्बर नाम के एक दार्शनिक प्राचीन भारत में हुए हैं।

अंतिम दौर का वातावरण लगभग वही है जो पहले नावलों का है। गुलफ़िशाँ लखनऊ और ख्वाबों देहरादून, 21 फैज़ाबाद रोड और आशियाना देहरादून ही है। अतः 'कार-ए-जहाँ दराज़ है' में इन दोनों मकानों के बारे में लिखते हुए बार-बार खयाल आया कि यह सब तो मैं 'आग का दरिया' में लिख चुकी हूँ। अतः जगह-जगह से काटना पड़ा। क़दीर अपनी पत्नी सहित 'आग का दरिया' में अपने असली नाम से आ गए थे इसलिए उनका नाम 'कार-ए-जहाँ

दराज़ है' (भाग प्रथम) में बदल कर नज़ीर कर दिया।

घसियारी मंडी और बैरो रोड लखनऊ का प्राइवेट स्कूल 'आग का दरिया' और 'कार-ए-जहाँ दराज़ है' (भाग प्रथम) दोनों में मौजूद हैं (अमरीकन नावल 'The Roots' के प्रकाशन से पूर्व 'कार-ए-जहाँ दराज़ है' देहली से 'आजकल' में किस्तवार प्रकाशित हुआ था) यह भी मशहूर है कि यह जीवनी संबंधी नावल इस अमरीकन नावल के अनुसरण में लिखा गया।

नून मीम राशिद का यह खयाल ठीक साबित न हुआ कि 'आग का दरिया' का प्रकाशन बेवक़्त की रागिनी है क्योंकि पिछले तीस वर्षों के दौरान इकबाल और फ़ैज़ के अलावा पाकिस्तान में सबसे ज़्यादा बिकने वाली किताब 'आग का दरिया' है जिसके अब तक अनगिनत ग़ैर कानूनी एडिशन छप चुके हैं। सितम ज़रीफ़ी यह है कि इनके पहले पृष्ठ पर "लेखिका के अधिकार सुरक्षित" भी दर्ज होता है और यह भी कि इसके लिए लेखिका से अनुमति हासिल कर ली गई है। दो वर्ष पहले फ्रैंकफर्ट इंटरनेशनल बुक फेयर में हुए प्रकाशकों के एक सेमिनार में जब मैंने कहा कि इस किताब को गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में जगह मिलनी चाहिए कि प्रकाशन के पहले दिन से आज तक प्रकाशक 100 प्रतिशत मुनाफ़ा कमा चुके हैं तो किसी को बिल्कुल यकीन न आया। हिंदुस्तान में 1961 ही में जालंधर में जो किताब रातों रात छाप ली गई थी उसमें जल्दी के मारे हेगल को सहगल लिखा गया था।

मेरे खयाल में लेखिका का इतना निवेदन ही काफ़ी है।

क़ुर्रतुलऐन हैदर

अनुवादक की ओर से

उपमहाद्वीप का बँटवारा एक ऐसी त्रासदी थी जिसके कारण एक करोड़ से अधिक आबादी को अपना घर-बार छोड़कर हिज्रत (प्रवास) के कष्ट और पीड़ाएँ सहने पर विवश होना पड़ा और हज़ारों मासूम और निर्दोष व्यक्तियों को धार्मिक पक्षपात का शिकार होकर ज़िंदगी से हाथ धोना पड़ा तथा अनगिनत औरतों को अपनी इज़्ज़त और सतीत्व अपने ही देशवासी भाइयों के निर्मम हाथों से लुट जाने का सदमा बर्दाश्त करना पड़ा। इन शोकजनक और लज्जाजनक घटनाओं से महाद्वीप के अन्य वासियों के साथ-साथ लेखक भी बुरी तरह से प्रभावित हुए और उन्होंने इन रक्तरंजित घटनाओं को अपनी-अपनी भाषा में कहानी और उपन्यास की सूरत में प्रस्तुत करके अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को प्रकट किया। हिंदी में अमृत लाल नागर ने 'बूँद और समुद्र,' यशपाल ने 'झूठा सच', भीष्म साहनी ने 'तमस', द्रोणवीर कोहली ने 'वाह कैंप', हरदर्शन सहगल ने 'टूटी हुई ज़मीन', कमलेश्वर ने 'लूटे हुए मुसाफिर', राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' जैसे उपन्यासों की रचना की तो पंजाबी में करतार सिंह दुग्गल ने 'आंद्रां', 'नुंह ते मास' और 'चोली दामन', अमृता प्रीतम ने 'डाक्टर देव', 'आल्हना' और 'पिंजर', सुरेन्द्र सिंह जरूला ने 'दीन ते दुनिया' और 'दिल दरिया', नरेंद्र पाल सिंह ने 'अमन दे राह' और 'इक राह इक पड़ाव', सोहन सिंह सीतल ने 'तूतां वाला खूह' और निरंजन तसनीम ने 'जदों स्वेर होई' और बंगला में प्रबोध कुमार सान्याल ने 'आशो बानो', प्रतिमा बसु ने 'आलो हमार आलो', सुनील गंगोपाध्याय ने 'अर्जुन' और 'मानक' वंद्योपाध्याय ने 'सुभार जननी' तथा अंग्रेजी में चमन लाल ने 'आजादी', गुरुचरन दास ने 'ए फ़ारेन फैमिली' इत्यादि प्रस्तुत किए। इसी तरह उर्दू में अब्दुल्ला हुसैन का 'उदास नसलें', शौकत सिद्दीक़ी का 'खुदा की बस्ती, ख़दीजा मस्तूर का 'आँगन' और जमीला हाशमी का 'तलाश-ए-बहाराँ' का भी यही विषय था। इनके अतिरिक्त सिंधी और अन्य भाषाओं में भी इन हृदयभेदी घटनाओं को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई लेकिन जो प्रसिद्धि और लोकप्रियता क़ुर्रतुलऐन हैदर के उर्दू उपन्यास 'आग का दरिया' को मिली वह किसी अन्य साहित्यिक कृति को शायद नसीब नहीं हुई। इस उपन्यास में लगभग ढाई हजार वर्ष के लम्बे समय की पृष्ठ-भूमि को उपन्यास के विस्तृत कैनवस पर फैलाकर उपमहाद्वीप की हजारों वर्ष की सभ्यता-संस्कृति, इतिहास, दर्शन और रीति-रिवाज के विभिन्न रंगों से एक ऐसी तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत की गई जो हमारी चेतना और अंतरात्मा को झंझोड़ कर रख देती है।

'आग का दरिया' की कहानी बौद्धमत के उत्थान और ब्राह्मणमत के पतन से शुरू होती है और यह तीन काल में बँटी हुई है मगर इसके कुछ चरित्र गौतम, चम्पा, हरिशंकर और निर्मला तीनों कालों में मौजूद हैं और वही इन तीनों कालों में संपर्क और क्रमबद्धता स्थापित करने के माध्यम हैं वरन् तीनों काल एक अलग-अलग कहानी हैं जो बौद्धमत और ब्राह्मण मत के टकराव से शुरू होकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के टकराव तक पहुँचते हैं और अंततः बँटवारे जैसी त्रासदी पर समाप्त होते हैं। मगर लेखिका ने इस महान त्रासदी को यों प्रस्तुत किया है कि ये किसी व्यक्ति, राष्ट्र या देश की त्रासदी बनने की बजाय एक मानव-त्रासदी का रूप धारण कर लेती है।

गौतम बुद्ध के जन्म से बुद्ध जयंती तक के दीर्घ काल तक फैले इस उपन्यास में उपमहाद्वीप के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन को बड़ी सुंदर और रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

आरंभिक काल में हम गौतम नीलाम्बर और उसके अतीत के भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक काल और विचारधारा से परिचित होते हैं। गौतम एक चिंतक और प्रतिभाशाली कलाकार ही नहीं बल्कि एक मानव प्रेमी भी है। और उसका मित्र हरिशंकर अपनी यथार्थवादी प्रकृति का मालिक युवा है। तीसरा चरित्र चम्पा का है जो गौतम की तरह हर युग में मौजूद है। संभवतः यह एक प्रतीकात्मक नारी है जो हर युग में मौजूद है। पहले काल में वह चम्पक, दूसरे में चम्पा फिर चम्पा बाई और अंतिम युग में चम्पा अहमद की सूरत में हमारे सामने प्रकट होती है। और यह बहुत सशक्त और ज़ोरदार चरित्र है जो हमें असाधारण रूप से प्रभावित करता है। चम्पा में इतनी शक्ति और बल है कि कष्टों और विपत्तियो की प्रचंडता से टूटने और बिखरने की बजाय वह हर स्थिति में अपने अस्तित्व को जीवित और संपूर्ण रखने का प्रयत्न करती है और प्रतिकूल हालात का मुकाबला बड़े साहस और हिम्मत से करती है, जिसका मुकाबला करने की हिम्मत न जुटा पाने पर कमाल रज़ा जैसा राष्ट्रवादी युवक निराशा और मायूसी में न चाहते हुए भी अंततः हिज्रत करके पाकिस्तान में शरण ढूंढ़ता है। जबकि चम्पा अपने देश में ही रहने का निश्चय करती है और पाकिस्तान जाने से इंकार कर देती है हालाँकि वह लंदन की पढ़ी-लिखी लड़की है और उसे वहाँ अच्छी से अच्छी नौकरी मिल सकती है। जैसा कि उसने पाकिस्तान प्रवास करने वाले कमाल रज़ा को बताया था--

"मैं आखिरकार बनारस वापस जा रही हूँ। मैंने एक बार लंदन में गौतम से कहा था--'मैं वापस जाना चाहती हूँ। कोई साथ ले जाने वाला नहीं मिलता।' अब मैंने देखा कि किसी दूसरे का सहारा ढूँढना किस कदर ज़बरदस्त हिमाकत थी ! मैं खुद ही बनारस लौटती हूँ। जानते हो, मेरे पुरखों के शहर का नाम क्या है।"

"शिवपुरी।"

"हाँ--आनन्द नगर। वह भी एक न एक दिन सचमुच आनन्द नगर बनेगा, देश के सारे नगरों की तरह। इस देश को दुःख का गढ़ या आनन्द का घर बनाना मेरे हाथ में है। मुझे दूसरों से क्या मतलब?" उसने अपने हाथ खोल कर ग़ौर से उन्हें देखा--"डांसर के हाथ--लेखक या कलाकार के हाथ--नहीं--ये सिर्फ एक साधारण, औसत दरजे की समझदार लड़की के हाथ हैं, जो अब काम करना चाहती है।"

वह ख़ामोश हो गई। कुछ देर बाद मस्जिद से ज़ोहर (तीसरा पहर) की अज़ान की आवाज़ ऊँची हुई। चम्पा ने अनजाने तौर पर दुपट्टे से सिर ढँक लिया।

"कमाल !" कुछ देर बाद उसने कहा, "मुसलमानों को यहाँ से नहीं जाना चाहिए। तुम क्यों नहीं देखते कि यह तुम्हारा अपना वतन है।" उसने विवशता से उँगलियाँ मरोड़ीं। "और तुम क्यों चले गए? मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ तो क्या मुझे एक से एक बढ़िया ओहदा न मिल जाएगा? देखो मैं पेरिस और केम्ब्रिज और लंदन से कितनी डिग्रियाँ लाई हूँ।"

चम्पा का हिन्दुस्तान में रहने का निर्णय एक बहुत ही सराहनीय कदम है जो उसकी दृढ़ता और साहस का प्रदर्शन करता है। हालाँकि वह जानती है कि उसे यहाँ बहुत-सी दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा। जैसाकि उसने प्रोफेसर बैनर्जी से वार्तालाप के दौरान कहा था--

"जब मैं बनारस में पढ़ती थी तो मैंने कभी दो कौमों के सिद्धांत पर गौर न किया। काशी की गलियाँ, शिवालय और घाट मेरे भी इतने ही थे जितने मेरी दोस्त लीला भार्गव के। फिर यह क्या हुआ कि जब मैं बड़ी हुई तो मुझे पता लगा कि

इन शिवालयों पर मेरा कोई हक़ नहीं क्योंकि मैं माथे पर बिंदी नहीं लगाती और तपेश्वर की आरती उतारने के बजाय मेरी अम्मा नमाज़ पढ़ती हैं। अतः मेरी सभ्यता दूसरी है। मेरी वफादारियाँ दूसरी हैं। मैंने बेसेंट कॉलेज में तिरंगे के नीचे खड़े होकर जन मन गाया है लेकिन मुझे वहाँ अक्सर ऐसा महसूस हुआ कि मुझे इस तिरंगे के साये में अजनबी समझा जाता है। मैं तो इस देश की वासी हूँ, दूसरा देश कहाँ से लाऊँ ? हिज्रत का दर्शन मेरी समझ में न आया...।"

गौतम इस उपन्यास का मुख्य चरित्र है जो चम्पा की तरह हर दौर में मौजूद है। यह दोनों बुद्ध काल के बाद मुसलमानों के दौर में भी नज़र आते हैं और अंग्रेजों के आरंभिक काल में भी। और अंत में देश के बँटवारे के समय ये अपने साथियों के साथ लंदन में होते हैं। इस उपन्यास में मित्रता और प्यार का प्रदर्शन स्थान-स्थान पर होता है। गौतम और चम्पा के अतिरिक्त निर्मला भी एक ऐसा ही पात्र है जो उनके साथ कई जन्म लेना है। निर्मला भी गौतम को दिल से चाहती है लेकिन उसमें इतना स्वाभिमान है कि जब उसे एहसास होता है कि गौतम चम्पा में रुचि रखता है तो वह पीछे हट जाती है। और अंत में क्षय रोग से ग्रस्त होकर मृत्यु से दो चार हो जाती है।

गौतम और चम्पा की तरह हरिशंकर भी एक महत्वपूर्ण चरित्र है जो गौतम का भी मित्र है और कमाल का भी। कमाल से उसकी मित्रता यहाँ तक है कि उसे कमाल का हमज़ाद या छाया कहा जाता है। स्वयं हरिशंकर अपना परिचय इस प्रकार देता है–

"हलो.....हलो.....मैं, हरिशंकर, अब आप से बात कर रहा हूँ। मैं हरिशंकर श्रीवास्तव, कमाल का हमज़ाद.....लाज और निर्मला का इकलौता बड़ा भाई, चम्पा बाजी का साथी, मेरा पार्ट भी काफ़ी महत्वपूर्ण है....। मेरे पार्ट के बहुत से पहलू हैं। मैं कहानी में इतने सारे अलग-अलग रोल अदा कर रहा हूँ—मैं बात कहाँ से शुरू करूँ, स्टेज पर कैसे दाखिल हूँ, यह बड़ा घपला है।"

हरिशंकर कमाल और रज़ा का हमज़ाद है। हमेशा दोनों साथ-साथ रहे लेकिन बँटवारे ने दोनों को अलग कर दिया जैसे शरीर और आत्मा अलग हो गए हों। और अंत में गौतम और हरिशंकर मंदिर की उन्हीं सीढ़ियों पर मिलते हैं जहाँ लगभग अढ़ाई हज़ार वर्ष पहले मिले थे, जब गौतम नदी पार करके टूटे-फूटे मंदिर की सीढ़ियों पर बैठ गया था। ऐसा जान पड़ता है जैसे नदी पार करके यहाँ तक पहुँचने में कोई ढाई हज़ार वर्ष लग गए हैं। शायद यह नदी जो बार-बार रूप बदल कर सामने आती है कभी राप्ती के रूप में, कभी गंगा और गोमती के भेस में, कभी सरजू के रूप में- वास्तव में यह नदी समय की प्रतीक है जो निरंतर चलती रहती है समय की तरह। इस समय रूपी नदी के तट पर सभ्यताएँ पैदा होती हैं और मरती हैं। मगर यह नदी सदा ही निस्पृहता से बहती रहती है। वास्तव में समय और नदी भी इस उपन्यास के महत्वपूर्ण चरित्र हैं।

इनके अतिरिक्त हरिशंकर के प्रिय मित्र कमाल रज़ा की भी हम उपेक्षा नहीं कर सकते जो कमालुद्दीन अबुल मंसूर और नवाब कम्मन के रूप में भी इस देश में जीवन व्यतीत कर चुका है। कमाल रज़ा पक्का राष्ट्रवादी है और पाकिस्तान का विरोधी मगर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वह हिन्दुस्तान में ..लात का मुकाबला नहीं कर सकता और निराशा में यहाँ से प्रवास कर पाकिस्तान चला जाता है। कारण, लंदन में आणविक फ़िज़िक्स पर सात वर्ष तक कार्य करने का अनुभव होने के बावजूद उसके स्थान पर एक हिन्दू एम. एस-सी. को रख

लिया गया। वह हतोत्साहित होकर इस देश से चला गया जिसकी स्वतंत्रता के लिए वह वर्षों प्रयास करता रहा था। हालाँकि देश में लाखों योग्य हिन्दू भी उसकी तरह सिफ़ारिश न होने के कारण अच्छी नौकरी प्राप्त न कर सके और उनके स्थान पर अयोग्य व्यक्तियों को रख लिया गया। और उसका प्रवास भी एक ऐसी त्रासदी है जो हमें झंझोड़ कर रख देती है। वास्तव में कमाल और हरिशंकर का बिछुड़ना शरीर और आत्मा का अलग-अलग होना है। और यह घटना हमें सोचने पर मजबूर करती है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ ?

और यह भी सत्य है कि यदि आज़ादी के साथ ही देश दो टुकड़ों में न बँट जाता तो शायद इस उपन्यास का जन्म ही न होता। इस त्रासदी का लेखिका के जीवन पर असाधारण प्रभाव पड़ा था और इसकी प्रतिक्रिया इस उपन्यास के रूप में प्रकट हुई। इस बँटवारे ने भाई को भाई से अलग कर दिया था। वर्षों के मित्र एक-दूसरे से बिछुड़ कर सीमा के उस पार चले गए। लाखों इंसानों को अपना देश छोड़ कर अपनी सुरक्षा की ख़ातिर सीमा पार करने पर मजबूर होना पड़ा। और शरणार्थी या मुहाजिर बन कर अपना शेष जीवन व्यतीत करना पड़ा।

'आग का दरिया' के पाकिस्तानी संस्करण के 689 पृष्ठ पर कोई लेखन नहीं वह बिल्कुल खाली छूटा हुआ है जिससे कुछ आलोचकों को भ्रम होता है कि इस पृष्ठ पर कुछ लिखने के बाद मिटा दिया गया है। और कुछ का ख़याल है कि यह पाकिस्तानी सेंसरशिप के कारण हुआ कि स्थान-स्थान पर वाक्य और पैराग्राफ़ की जगह खाली नज़र आती है मगर लेखिका ने इस बात का खंडन किया है। उनका कहना है कि उपन्यास की शुद्धि करते समय कई वाक्य और पैराग्राफ़ काट दिये थे और जल्दी में वे पृष्ठ उसी तरह प्रेस में भेज दिये गये और पुस्तक उसी हालत में प्रकाशित कर दी गई थी जिसके कारण उपन्यास पढ़ते हुए कई स्थानों पर ऐसा आभास होता है कि कुछ लिखने से छूट गया है या कुछ काट दिया गया है। मगर इसके बावजूद उपन्यास की महत्वता में कोई कमी नहीं आती। यह एक यादगार उपन्यास है जिसकी लेखनी में अद्वितीयता और नवीनता है जो आमतौर पर उपन्यासों में नहीं पाई जाती। इसमें कई प्रयोग किये गये हैं और कई प्रकार की तकनीकों को काम में लाया गया है। इसमें कहीं प्राचीन नौटंकी की शैली प्रयोग की गई है तो कहीं आधुनिक नाटक की। यहाँ तक कि टेलीफोन तक की शैली को भी इस्तेमाल किया गया है। और यही कारण है कि यह उपन्यास क़ुर्रतुलऐन हैदर के उपन्यासों में ही श्रेष्ठतम नहीं बल्कि उर्दू साहित्य में भी इसे अद्वितीय तथा श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है और यह सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध और बहुचर्चित उपन्यास है। आज इसे प्रकाशित हुए चालीस वर्ष से अधिक समय हो गया है मगर आज भी इसकी महक सारे महाद्वीप में फैली हुई है।

और हाँ ! इससे पूर्व भी 'आग का दरिया' का अनुवाद करने की चेष्टा की गई थी मगर पढ़ने पर मालूम हुआ कि वह सही अर्थों में अनुवाद नहीं है क्योंकि उसमें अनगिनत पृष्ठ ग़ायब हैं। यही नहीं इसमें केवल 95 अध्याय हैं जबकि मूल उपन्यास में 101 अध्याय हैं। यानी 6 अध्याय ही ग़ायब कर दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से पृष्ठ अनुवादक ने अपनी ओर से इसमें शामिल कर दिए थे। अतः इस अधूरे और दायित्वहीन अनुवाद को देखते हुए अब एजूकेशनल पब्लिशिंग हाऊस देहली से प्रकाशित संस्करण का संपूर्ण अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि पाठक संपूर्ण रूप से इसका अध्ययन कर सकें। आशा है आप इस प्रयास को पसंद करेंगे।

नंद किशोर विक्रम

मैं देवताओं के बारे में ज़्यादा नहीं जानता लेकिन...मैं समझता हूँ कि दरिया
एक ताक़तवर मटियाला देवता है, तुंद मिज़ाज गुस्सैला
अपने मौसमों और अपने क्रोध और कोप का मालिक, ध्वस्तकर्ता
वह उन चीज़ों की याद दिलाता रहता है जिन्हें इंसान भूल जाना चाहते हैं
वह प्रतीक्षक है—और देखता है और प्रतीक्षक है
दरिया हमारे अंदर है समुंदर ने हमें घेर रखा है
अंत कहाँ है—बेआवाज़ चीख़ों का
पतझड़ में खामोशी से मुर्झाते फूलों का
जो चुपचाप अपनी पंखुड़ियाँ गिराते हैं
जहाज़ के बहते हुए भग्न टुकड़ों का अंत कहाँ है ?
अंत कहीं नहीं है सिर्फ़ वृद्धि है
अतिरिक्त दिनों और घंटों का, घिसटती हुई निरंतरता
हमने पीड़ा के क्षणों को ढूँढ़ निकाला
(प्रश्न यह नहीं कि यह पीड़ा भ्रांति का परिणाम थी
या ग़लत चीज़ों की कामना का—या ग़लत चीज़ों के ख़ौफ़ का)
यह क्षण स्थाई है—जिस तरह समय स्थाई है
हम इस बात को अपनी पीड़ा की तुलना में दूसरों की पीड़ा में
बेहतर तौर पर समझ सकते हैं।
क्योंकि हमारा अतीत कर्म की धाराओं में छुपा है
लेकिन दूसरों की यातना एक शर्तबद्ध अनुभव है
जो कभी जीर्ण नहीं होता
लोग बदल जाते हैं, मुस्कराते भी हैं मगर पीड़ा मौजूद रहती है
लाशों और घास-फूस को अपनी मौजों में बहाते हुए दरिया की भाँति
समय जो संहारक भी है, स्थिर भी रखता है।

मैं अक्सर सोचता हूँ—क्या कृष्ण का यही मतलब था?
कि भविष्य एक मद्धिम गीत है,
और, उनके वास्ते, जो अभी पछताने के लिए पैदा नहीं हुए,
पछतावे का सुर्ख़ गुलाब,
जो एक ऐसी किताब के पीले पन्नों में रखा है
जो कभी खोली नहीं गई।
आगे बढ़ो मुसाफ़िरो ! अतीत से भागकर

तुम विभिन्न जीवनों या किसी प्रकार के भविष्य की ओर
गतिवान् नहीं हो
आगे बढ़ो, तुम, जो समझते हो कि सफ़र में हो–
तुम वे नहीं जिन्होंने बन्दरगाह को पीछे हटते देखा
या जो दूसरे तट पर उतरोगे
इस क्षण, कि दोनों तटों के बीच काल स्थगित है,
भविष्य और अतीत पर एक-सा ध्यान करो,
यह क्षण कर्म या निष्कर्म का नहीं? जानो,
कि मौत के समय मनुष्य की चेतना अस्तित्व के
जिस विन्दु पर भी केन्द्रित हो (और मृत्यु का समय हर क्षण है)
वह केवल कर्म है,
जो दूसरों के जीवनों में फलीभूत होगा।
कर्मफल की चिन्ता न करो, आगे चलो–
ओ यात्रियो और मांझियो !
तुम, जो घाट पर उतरोगे और
तुम, जिनके शरीर समुन्दर के फ़ैसले सहेंगे।
या जो कुछ भी तुम पर बीतेगी, वही तुम्हारी मंज़िल होगी।
कृष्ण ने अर्जुन से युद्धक्षेत्र में कहा :
'विदा ! नहीं', बल्कि--आगे बढ़ो,
यात्रियो...!

--टी. एस. इलियट

1

गौतम नीलाम्बर ने चलते-चलते ठिठक कर पीछे देखा। रास्ते की धूल वारिश की वजह से कम हो चुकी थी। यद्यपि उसके अपने पाँव मिट्टी में अटे पड़े थे। बरसात की वजह से घास और दरख़्त लाल रंग के दिखाई दे रहे थे। अशोक के नारंगी और सुर्ख़ फूल गहरी हरियाली में तेज़ी से झिलमिलाते थे और हीरे की-सी जगमगाती पानी की लड़ियाँ घास पर टूट-टूट कर विखर गई थीं। नदी के पार पहुँचते-पहुँचते बहुत रात हो जाएगी गौतम को ख़याल आया। घाट पर किश्तियां खड़ी थीं और बरगद के नीचे किसी मनचले मल्लाह ने ज़ोर-ज़ोर से सावन अलापना शुरू कर दिया था। आम के झुरमुट में एक अकेला मोर पर फैलाए खड़ा था।

श्रावस्ती यहाँ से पूरे पच्चीस कोस था और गौतम नीलाम्बर को नदी तैर कर पार करनी थी। घाट पर तीन लड़कियाँ एक तरफ़ बैठी बातें कर रही थीं। उनके हँसने की आवाज़ यहाँ तक आ रही थी। लड़कियाँ कितनी बातूनी होती हैं गौतम ने सोचा। उन्हें भला कौन-सी समस्याएँ हल करनी हैं। उसका दिल चाहा कि नज़र भर कर उन्हें देख ले, खासकर उस केसरिया साड़ी वाली लड़की को जिसने बालों में चम्पा का फूल उड़स रखा था। उसके साथ निचली सीढ़ी पर जो लड़की आलती-पालती मारे बैठी थी उसके घुँघराले बाल थे और किताबी चेहरा और जड़ी हुई काली भँवें। करीब पहुँच कर गौतम ने उन दोनों को क्षण भर के लिए ध्यान से देखा और फिर जल्दी से पानी में छलाँग लगा दी और दूसरे किनारे की तरफ़ तैरने में लीन हो गया।

लड़कियों ने सिर उठा कर उसे देखा। "कोई विद्यार्थी जान पड़ता है।" उनमें से एक ने कहा। मल्लाह अपनी-अपनी डोंगियों में वैठे दूसरे मुसाफिरों का इंतज़ार करते रहे। किश्तियाँ जो बड़ की छाया में बँधी थीं उनमें चूल्हे जलाए जा चुके थे और रात का खाना बनना शुरू हो गया था।

टप से बारिश का एक क़तरा चम्पक के वालों पर आन गिरा। उसने नदी की ओर देखा जिधर वह अजनबी विद्यार्थी लहरा के विरुद्ध हाथ-पाँव मारता किसी अनजानी ओर जा रहा था।

"बड़ी कठिन ज़िंदगी इन बेचारों की होती होगी।" निर्मला को अपने भाई का ख़याल आ गया जो इसी तरह की अनगिनत नदियाँ, जटिल मैदान और कठिन पहाड़ियों के रास्ते पार करके बहुत दूर तक्षशिला गया हुआ था और अब तक नहीं लौटा था।

"जब ये लोग इतना पढ़ जाते हैं तो क्या होता है ?" तीसरी लड़की ने बे-ध्यानी से पूछा--उस लड़की का नाम सरोजनी था।

"होता क्या है झक मारते हैं। किसी नए धर्म का आविष्कार कर लेते हैं या किसी नए दर्शन शास्त्र का प्रचार शुरू कर देते हैं" निर्मला ने जल कर जवाब दिया। उसका इकलौता भाई तक्षशिला में गणित और व्याकरण में सिर खपाने की बजाए यहाँ घर पर होता तो क्या

चम्पक उससे शादी न कर लेती।

"ब्राह्मण बेचारे करें भी क्या ? पढ़ें नहीं तो कहाँ जाएँ। पढ़ना तो उनके भाग्य में लिखा है" सरोजनी ने मुँह लटका कर कहा।

नदी के बीच में पहुँचा तो बारिश की दूसरी बूँद गौतम के सिर पर आन पड़ी। बरसात की वजह से सरयू का पाट अत्यंत चौड़ा हो गया था। सोन नदी के पाट से भी ज़्यादा चौड़ा जिसे पाटलिपुत्र जाते हुए गौतम ने एक मर्तबा तैर कर पार किया था। उसने तैरते-तैरते पलट कर एक बार पीछे देखा। घाट पर लड़कियाँ अब तक बैठी थीं और वह भी मौजूद थी जिसके बालों में चम्पा का फूल था। उन लोगों को बारिश में भीगने का भी डर नहीं—गौतम ने सोचा और जल्दी-जल्दी लहरों का मुकाबला करने में लीन हो गया। सामने दूसरे किनारे पर दरियाई घास और नीले फूलों की घनी बेलें पानी की सतह पर झुक आई थीं। बरगद के साए काले हो चले थे। सारस और मोर सिमटे-सिमटाए उदास खड़े थे। चार-पाँच आदमी अंगोछे कंधे पर डाले जल्दी-जल्दी गाँव की ओर कदम बढ़ा रहे थे। किनारे पर पहुँच कर गौतम ने अपने कपड़े निचोड़े और अनगढ़ पत्थरों से बने हुए मंदिर में गया जिसके एक कोने में वह अपना पाथेय चंडी देवी को सौंपकर अयोध्या गया था। एक छोटी-सी पोटली में उसकी कूजियाँ थीं और सफ़ेद रेशम के चंद टुकड़े। उसका कम्बल था। एक सफ़ेद रंग की धोती और चमड़े के चप्पल। उसने बेपरवाही से पोटली उठाई, पैर साफ़ करके चप्पल पहने और मंदिर से बाहर निकल आया।

चारों ओर बड़ा सन्नाटा था; और मन्दिर के आँगन में उसे एकदम बड़ा डरावना लगता। कैसी ख़ौफ़नाक बात है। निराकार ब्रह्म जब कोई रूप धारण करके प्रकट होता है तो उससे घबराहट क्यों होती है ! क्या मनुष्य को दूसरे के अस्तित्व में विश्वास नहीं ? गौतम नीलाम्बर ने भय की भावना का प्रायः विश्लेषण करना चाहा था। जीवन का भय ! मृत्यु का भय ! जीवित रहने का भय ! ऋग्वेद में लिखा है कि आरम्भ में 'अहं' था जो पुरुष के रूप में प्रकट हुआ। उसने चारों ओर देखा और अपने सिवाय उसे कोई नज़र न आया; उसने कहा ये "मैं" हूँ। इसलिए वह ख़ुद को "मैं' समझने लगा। उसे डर लगता था चूँकि वह अकेला था। इसलिए जो अकेला होता है, उसे डर लगता है। फिर उसने सोचा, मेरे सिवाय कोई मौजूद नहीं है, तो मुझे काहे का डर है। अतः उसने डरना छोड़ दिया। परन्तु उसे आनंद प्राप्त नहीं था, क्योंकि अकेलेपन में उदासी होती है। और उदासी से डर लगता है। "मुझे अपनी आत्मा के अकेलेपन से डरना नहीं चाहिए।"—गौतम ने अपने से कहा।

मंदिर बहुत पुराना था। आस-पास गौतम को कोई पुरोहित या पुज़ारी भी नज़र न आया जिससे वह पूछता की श्रावस्ती जाने के लिए कौन-सा रास्ता इख़्तियार करे।

यहाँ से खेत ख़त्म होते थे। आगे शीशम के घने जंगल थे; और ढाक के झुण्ड और अनगिनत नदी-नाले। इन सबको पार करके उसे अपने आश्रम पहुँचना था। मन्दिर की सीढ़ियाँ उतर वह गाँव की ओर बढ़ा। सरयू के पार अयोध्या की रोशनियाँ जुगनुओं जैसी झिलमिला रही थीं। बारिश की धुंध में सारा दृश्य नीला और उदा-सा दिखाई दे रहा था, जिसमें नारंगी रंग की धारियाँ जैसी फैल गई थीं। गौतम ने आबादी में पहुँच कर दो-तीन दरवाज़ों को खटखटाया। रात के खाने के लिए उसे केवल दाल की ज़रूरत थी। एक लिपे-पुते कच्चे मकान के द्वार

पर रोशनी जल रही थी। अधेड़ आयु का एक गृहस्थ उस रोशनी में बैठा कुछ पढ़ रहा था। बरामदे के बाहर घुप अँधेरा था। गौतम की आवाज़ सुन कर वह उसे शाक्य मुनि का कोई भिक्षु समझा, फिर वह दीया उठा कर बाहर लाया और उसके उजाले में उसे गौतम के सफ़ेद कपड़े दिखाई दिये।

"आजकल यहाँ शाक्य मुनि के भिक्षुओं की एक टोली आई हुई है। मैं समझा तुम उन्हीं में से हो" गृहस्थ ने कहा। "जब से यह नई हवा चली है, लड़के तो लड़के लड़कियाँ भी घर-बार छोड़ कर जंगल में बस रही हैं !"

"मुझे थोड़ी-सी दाल चाहिए।"

गृहस्थ ने चिराग़ बरामदे की मुंडेर पर रखा और अपनी पत्नी को आवाज़ दी। उसके बाद फिर से बातों का सिलसिला शुरू कर दिया।

'रुकमणी, एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी हमारे द्वार पर आए हैं।" फिर वह गौतम से संबोधित हुआ– "सामने नगर में एक बिटिया है, रानी रेणुका जैसी रूपवान। कल मेरी पत्नी जब बाज़ार-हाट के लिए नगर गई तो राजनिवास की दासियों से उसने सुना कि वह बिटिया भी किसी विहार में जाने वाली है। यह अंधेर देखो !" इतने में उसकी पत्नी आटा-दाल ले आई, जो गौतम ने अपनी चादर फैला कर उससे ले लिया और उसे आशीर्वाद दिया। गृहिणी ने झुक कर उसे नमस्कार किया और अंदर चली गई। उसका पति खुशदिली से हँसता रहा, "अच्छी हवा चली ! मैं तो कहता हूँ, माँ-बाप अब अपनी लड़कियों के ब्याह की चिन्ता से भी मुक्त हो गए।" उसने अपनी बात जारी रखी।

अनाज की पोटली बाँधने के बाद गौतम बरामदे के खम्बे से टिका सोच रहा था यह गृहस्थ बड़ा हँसमुख मालूम होता है। गौतम का जी चाहा कि कुछ देर रुक कर उससे बातें करे। मगर इसका मतलब यह था कि वह ऐश-ओ-आराम की तरफ़ प्रवृत्त हो रहा है अतः फ़ौरन उसने यह ख़याल दिल से निकाल दिया। यद्यपि यह जान कर उसे बहुत प्रसन्नता हुई थी कि बौद्ध विद्यार्थियों की कोई टोली भी इधर आयी हुई है। उसे बौद्ध विद्यार्थियों और दार्शनिकों से वाद-विवाद करने में बड़ा मज़ा आता था।

"वे लोग किधर गए हैं ?" उसने गृहस्थ से कहा।

"यह तो मुझे मालूम नहीं ब्राह्मण, तुम अंदर क्यों नहीं आ जाते ? [illegible] [illegible], तुम्हारी सेवा तो हमारा धर्म है।"

"नहीं अब मैं चल रहा हूं" गौतम ने जवाब दिया। वह इस आदर-सत्कार का आदी था, चलते-फिरते हर समय उसका सम्मान किया जाता। सड़कों पर गुज़र रहा होता तो पथिक रास्ता छोड़ देते। बड़े-बड़े शहज़ादे उसकी ख़ातिरें करते, ग़रीब किसान उसे आँखों पर बिठलाते केवल इसलिए कि वह विद्यार्थी था और विद्या का संरक्षक।

गृहस्थ ने चिराग़ मुंडेर पर से उठाया और अंदर जाकर फिर पढ़ने में मग्न हो गया। अंदर बच्चे खेल रहे थे। गृहिणी चूल्हे के आगे बैठी थी। द्वार की चौखट पर पहाड़ी मैना का पिंजरा लटक रहा था। इस शान्तिमय दृश्य से भी उसे डर लगा। गृह-अग्नि के मद्धिम उजाले में जगमगाती हुई युवती जो इस मामूली साफ़-सुथरे मकान की मालकिन थी। बरामदे पर झुके हुए केले के ठण्डे पत्ते, परों में चोंच देकर सोती हुई मैना—गृह-अग्नि जलती रहती है और

यह एक दिन चिता की लपटों में बदल जाएगी। चिता के अंगारों से एक और घर के चूल्हे की नींव पड़ेगी। संन्यासी यही आग घर से लेकर निकलता है। ये सारे क्षण हर मनुष्य के जीवन में आते हैं, उसके जीवन में भी आएँगे ?...दृश्यों का क्या अर्थ है ? वह कभी न समझ पाया।

श्रावस्ती में उसका तीन मंजिला मकान था, जिसके बरामदे के खम्भों पर चित्र बने हुए थे। उस सड़क पर उसका मकान सबसे ऊँचा था। उसका बाप बहुत दौलतमंद आदमी था और उसकी बहन का विवाह एक उच्च पदाधिकारी से हुआ था। यह उसकी शिक्षा का अंतिम वर्ष था। पढ़ाई से निवृत्त होने के बाद सारी दुनिया उसके चरणों में बिखरी पड़ी होगी। समय उसका अपना था। बहुत उदारता के साथ वह दर्शनों को परखता और सोचता मगर उसके साथ-साथ यह क्या कि चीज़ों से वह भयभीत होता था--बारिश में भीगती लड़कियाँ जो उस घाट पर बैठी थीं; बरगद का यह जंगल, जिसमें केसरिया वस्त्र पहिने भिक्षुकों की टोली कहीं घूम रही होगी—इस अधेड़ बातूनी गृहस्थ की पत्नी, जिसका नाम रुकमणी था। ये सब चीजें क्यों थीं ?

आबादी से लौट कर वह मंदिर की तरफ़ वापस आया। आँगन में पहुँच कर उसने छोटा-सा गढ़ा खोद कर चूल्हा बनाया और मिट्टी की हाँडी में चावल उबलने के लिए चढ़ा दिए। कच्ची-पक्की दाल-भात खाने के बाद वह मंदिर की दीवार से पीठ टिका कर बैठ गया। सामने नदी पर अँधेरा गहरा हो चुका था। चाँद बहुत मद्धम था और बादलों में छुपा था। हवा में ताज़े फूलों की महक थी। सारा जंगल अँधेरे में साँय-साँय कर रहा था। सुबह-सवेरे उसे अपना सफर जारी रखना था। सहसा उसे किसी के पैरों की चाप सुनायी दी। कोई अँधेरे में धीरे-से हँसा। फिर सन्नाटा छा गया। गौतम खुरदरी दीवार के सहारे बैठा रहा। नीचे पंजों के बल उचक कर आँगन के द्वार में से किसी ने झाँका। अँधेरे में गौतम को उसकी मुखाकृति दिखाई नहीं दी।

"तुम कौन हो, भाई !" नीचे से किसी ने पूछा।

"मैं हूँ।" गौतम ने लेटे-लेटे उत्तर दिया।

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"मैं का कोई नाम नहीं होता।"

"संबोधन के लिए कोई नाम जरूरी है।"

"श्रावस्ती के जिन पंडितों के घर में मैंने जन्म लिया वहाँ दूसरे पंडितों से पूछ कर मेरा नाम गौतम रखा गया।"

"भाई गौतम, नीचे आ जाओ।"

"तुम खुद ऊपर क्यों नहीं आ जाते ?"

"ऊँचाई-निचाई केवल चेतना के अन्तर से होती है।"

"हूँ"

"तुमको क्या मालूम जिसे तुम ऊँचाई समझ रहे हो, वह पाताल से भी गहरी हो।"

"भाई" गौतम ने उसी तरह दीवार से नीचे झाँके बग़ैर सवाल किया, "क्या तुम भागवत हो ?"

"नहीं। मगर तुम मंदिर से नीचे नहीं उतरोगे ?"

"नीचे साँप होंगे और कीड़े-मकोड़े, और कीड़े-मकोड़ों से दोस्ती करना मैंने अभी शुरू नहीं किया।" इतना कह कर गौतम दिल में हँसा।

संभव है यह तो कोई जैन संन्यासी है—आजकल पाटलिपुत्र में राज-परिवार ने जैन-पण्डितों को बहुत सिर चढ़ा रखा था। और नियम से उनके सिद्धांत का अध्ययन करते थे। "मैं यहाँ पत्थर के फ़र्श पर लेटा हूँ तुम भी यहीं आ जाओ।" उसने ऊँची आवाज़ में कहा। यहाँ कुतार्किक, सन्देहवादी और तार्किक नास्तिक जंगल-जंगल विवाद करने मिल जाते थे। यह भी उन्हीं में से कोई मनचला है, गौतम ने सोचा। अनगिनत तार्किक गंगा की घाटी में घूमते फिर रहे थे। कितने ही श्रमण ब्राह्मणों के परम्परागत धर्म पर आक्रमण करते और अनेकवाद का प्रतिपादन कर 'वस्तु' को सिद्ध करते। अनेक अद्वैतवाद के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। इनमें से अधिकतर भौतिकवादी थे। जैन और बौद्ध दार्शनिक योगी भी थे और साथ ही साथ कुतर्की भी। इन्हीं घने जंगलों में बड़े-बड़े राजकुमार और सम्राट् जटाएं बढ़ाए भिक्षुओं का जीवन व्यतीत कर रहे थे। और पिछली शताब्दी में तो कपिलवस्तु के राजकुमार ने भी जंगल का मार्ग अपना कर देश की इसी परम्परा को निभाया था। उनके आगमन समय में बासठ मत-मतांतर अपनी विभिन्न शाखाओं के साथ प्रचलित थे। मत-मतांतरों के इस साम्राज्य में उन्होंने भी, जो शाक्य मुनि सिद्धार्थ कहलाये, अपना एक नया उपनिवेश स्थापित कर लिया था।

बासठ विभिन्न दृष्टिकोण !...और जीवन एक है...और मनुष्य अकेला है। गौतम ने आँखें बंद कर लीं और उसी तरह लेटा रहा।

"तुम कौन हो, भाई ?" कुछ देर बाद उसने दुबारा आवाज़ दी, "अब यह सवाल मैं तुमसे करता हूँ। हाँ अगर तुम अपनी असलियत छुपाना चाहो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"नाम केवल कुछ ध्वनियों का समूह है, भाई गौतम ! और हरिशंकर की आवाज़ पर मैं चौंक उठता हूँ क्योंकि यही मेरा नाम है।"

"भाई हरिशंकर क्या तुम कृष्ण वासुदेव के भक्त हो ?"

"लोग, जो समझते थे कि मुझसे परिचित हैं, मुझे हरिशंकर कहकर पुकारते थे, लेकिन वह केवल मेरे नाम से परिचित थे।"

"इस जगह नये हो ?"

"नहीं, मैं इस समय उत्तर-पश्चिम की ओर से आ रहा हूँ, जहाँ शिव की आराधना होती है। गौतम, मैंने कश्मीर की बर्फ मे बड़ी खूबसूरत जगहें देखी हैं। कई बार ख़याल आता है कि जिंदा रहना बड़ी नेमत है।"

"मैं अधिक दूर तक नहीं गया हूँ, मुझे इसका बड़ा दुःख है।"

"केवल इसी का दुख है। तुमने दुख के दर्शन पर कितना चिंतन किया है भाई गौतम ?"

"आजकल मैं इसी पर ग़ौर कर रहा हूं।"

"जहां मैं पढ़ता था, वहां हम लोग प्रगतिशील विचारों के बजाय गणित और न्याय और भौतिकी पर अधिक ध्यान देते थे। पर दुःख से मेरा गहरा संबंध है गौतम नीलाम्बर !"

"क्या तुम उज्जैनी से आ रहे हो ?"

"नहीं इससे भी बहुत आगे से।"

"तक्षशिला ?"

"हाँ"

"मेरा वहाँ जाने का बहुत जी चाहता है, क्या तुमने अपनी शिक्षा समाप्त कर ली ?"

"हाँ, फिर मैं नदियों के रास्ते एक बहुत लम्बी यात्रा पर निकल गया। अपार समुंदर के किनारे मैंने द्वारिका के दर्शन किए। मैं मथुरा गया। ब्रह्मावर्त में हस्तिनापुर के खंडहर मैंने देखे। गौतम मैंने अनुमान लगाया कि समय बहुत भयानक चीज़ है। क्या तुम कभी समय के भय से काँपे हो ?"

"हाँ"—गौतम ने आँखें बंद किए-किए जवाब दिया। अँधेरे मंदिर के बरामदे पर झुके हुए पीपल के पत्ते सुर्ख़ नज़र आ रहे थे।

"क्या तुम बौद्ध हो ?" गौतम ने कुछ देर बाद पूछा।

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"शाम जब मैं भीख माँगने के लिए गाँव में गया तो एक गृहस्थ ने मुझे बताया था कि तुम लोगों की एक टोली इधर आई हुई है।"

"तुम भी हो ?"

"अभी मैंने अपनी बुद्धि का द्वार खुला छोड़ रखा है।"

"और हृदय का ?"

"बुद्धि और हृदय का क्या सम्बन्ध।"

"मैं तुमको एक बात बतलाऊँ ?" इतना कहते-कहते वह नवयुवक मुंडेर कूद कर मन्दिर के बरामदे में आ गया। विवाद के जोश में अपने खड़ाऊँ उतार कर एक ओर फेंके और चंडी के समाने से दीया उठा कर उसकी रोशनी में गौतम को देखने लगा। गौतम उठ कर दीवार के सहारे बैठ गया। उसने भी दिलचस्पी से नवआगंतुक को देखा जो बहुत दूर से आ रहा था।

"तुम यहीं कहीं आस-पास काशी-वाशी में पढ़ते हो" दूसरे लड़के ने गौतम के निकट पाँव फैला कर बैठते हुए पूछा

"मैं श्रावस्ती में पढ़ता हूँ। काशी की पाठशालाएँ तो केवल महापंडित तैयार करती हैं।"

"तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है, भाई गौतम नीलाम्बर ?"

"और तुम क्या बनना चाहते हो ?"

"यही तो समझ में नहीं आता।"

"तुम भी इस अंधकार में से प्रकट होकर मुझसे यही सवाल करने आये हो ?" गौतम ने चिढ़कर कहा।

अब हवा में खुनकी आ चली थी। जंगल की भीगी हवा के झोंकों में दिए की रोशनी झिलमिला उठी। गौतम ने अपने नए साथी को ग़ौर से देखा। उसका प्रतिभाशाली और ख़ूबसूरत चेहरा गौतम को परिचित-सा जान पड़ा।

गहरी काली जड़ी हुई भँवें और किताबी चेहरा और घूँघरवाले बाल।

यह शक्ल मैंने पहले कहाँ देखी है ? अभी-अभी देखी है, गौतम ने हड़बड़ा कर सोचा। अगर यह अपने घूँघरवाले बाल मुड़वा दे तो शायद कुछ विभिन्न मालूम हो वरना यह तो जाना-

पहचाना चेहरा है।

"तुमने अपना सिर नहीं घुटवाया। कैसे भिक्षु हो ?" गौतम ने ज़रा प्रसन्नता से कहा।

"मैंने अपनी बुद्धि का द्वार अभी खुला छोड़ रखा है।"

"और तुम्हारा संघ ?"

"मेरा संघ और मैं दो विभिन्न चीज़ें हैं। मैं स्वतन्त्र हूँ और अधिक स्वतन्त्रता की खोज में व्यस्त हूँ।"

"तुम कहाँ के रहने वाले हो ?"

नवयुवक ने दरिया की ओर इशारा किया—"उस पार का।"

"अच्छा" गौतम ज़रा चौंक कर उठ बैठा।

"तुम्हें इतना अचम्भा काहे के लिए हुआ ? हम सबको कहीं न कहीं पैदा होना ही है। संभव था कि मैं मिमफ़्स में पैदा हुआ होता और तुम जावा द्वीप में" हरिशंकर ने मुस्कान के साथ गौतम को देखा।

"तुम यहीं के रहने वाले हो और अब भिक्षु बने अजनबियों की तरह घूम रहे हो।"

"हम सब एक-दूसरे के लिए अनादिकाल से ही अजनबी हैं।"

गौतम खामोश हो गया। 'हरिशंकर' उसने अपने दिल में कहा—तुम वाद-विवाद में मुझे हरा नहीं सकते। शाक्य मुनि भी आखिर इसी कौशल देश के रहने वाले थे। वे श्रावस्ती में आकर वर्षों रहे, उन्हें परिनिर्वाण प्राप्त किए अभी ज्यादा मुद्दत नहीं हुई मगर सारा देश एक नए नारंगी रंग में रंगता जा रहा था। उसकी तेवरी पर बल पड़ गए, उस नारंगी साड़ी वाली लड़की की याद उसके जहन में कौंधी और उसे बड़ी कोफ़्त हुई। "जब से हवा चली है लड़कियाँ भी घरबार तज कर जंगल में बस रही हैं" उसने ऊँची आवाज़ में दोहराया।

"तुम्हें वेदों पर विश्वास नहीं रहा जो तुमने यह हुलिया बना रखा है।" उसने ज़रा झुँझला कर कहा—भक्ष का दर्शन और तुम्हारी सारी परिभाषा उपनिषदों में मौजूद है। शाक्य मुनि शुरू से अंत तक कपिल के दृष्टिकोण से प्रभावित थे। स्वयं बुद्ध का शब्द वेद से निकला है ! कोई चीज़ विचारों की दुनिया में शुद्ध रूप में और असबद्ध नहीं है। तुम शब्दों का प्रयोग क्यों करते हो।

हरिशंकर चुप बैठा रहा, फिर उसने ज़रा मुस्करा कर पूछा—"तुमको लड़कियों की क्या चिंता है ? क्या कोई विशेष लड़की विहार में आने वाली है ?"

"तुम लोग इस तरह हँसते क्यों हो ? देखो तुम्हारे आनन्द पर क्या बीती थी" गौतम ने और अधिक चिढ़ कर कहा।

"गौतम नीलाम्बर मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता" हरिशंकर ने टाँगें और फैला कर आराम से लेटते हुए जवाब दिया।

"तुम काहे से भाग रहे हो ?" गौतम ने गुस्से से पूछा।

"तुम काहे की खा. में हो ?" हरिशंकर ने कहा।

"तुम शब्दों की सीमाओं को तोड़े बिना उनके रहस्य तक नहीं पहुँच सकते।"

"मेरे यहाँ तो सारी तलाश समाप्त हो चुकी।"

"यदि मेरे विद्यालय में उच्च शिष्टाचार बरतने का उपदेश न होता तो मैं यह खड़ाऊँ

तुम्हारी नाक पर लगाता।"

हरिशंकर ने कहकहा लगाया, "यदि मुझे मित्रों की आवश्यकता न होती तो भी मैं तुम्हें अपना मित्र बना लेता।"

"तुम आत्म पूजक हो।"

"और तुम प्रतिभा के अभिमान में ग्रस्त हो।"

"तुम्हें नाटक में रुचि है ?" गौतम ने विषय बदला।

"थी" संक्षिप्त उत्तर मिला।

"अच्छा—?? मगर शब्दों का नाटक तो तुम हर समय खेलते हो।"

हरिशंकर ख़ामोश रहा। उसने अपनी आँखों पर हाथ रख लिए थे। गौतम जोश में आकर बोला, "तीन सौ साल हुए तुम्हारे तक्षशिला में एक व्यक्ति गुजरा है जिसका नाम पाणिनि था, उसने शब्दों के रहस्य का एक नया ब्रह्माण्ड खोजा था। जब शब्दों की खोज ख़त्म हो चुकी है तो शब्दों का प्रयोग क्यों करते हो ? शब्दों को भी स्थगित कर देखो।"

हरिशंकर करवट बदल कर कोहनियों के बल बैठ गया।

"गौतम मैंने पाणिनि का अध्ययन किया है। मैं कश्मीर की पाठशालाओं में गया हूँ, जहाँ संस्कृत भाषा को सर्वांगपूर्ण बनाया जा रहा है। मैंने यवनों की बोली भी सीखी है....और पारसियों की भी। लेकिन अब मैं शब्दों को ख़त्म करना चाहता हूँ क्योंकि"—हरि शंकर कहता रहा—"भाषा शब्द वादे करते हैं जो निभाए नहीं जाते। विचारों को प्रकट करते हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता। उनके अर्थों की खोज में भागना शुरू किया तो भटक कर मैं कहाँ से कहाँ जा निकला इसी कारण से गौतम सिद्धार्थ ने कहा था कि...."

"शब्द शाश्वत हैं" गौतम ने जवाब दिया—"शब्द ईश्वर है। ओम् के तीन अक्षरों और सा-प-सा के तीन सुरों के बीच तो सृष्टि का सारा अस्तित्व बँधा हुआ है। ध्वनि आकाश का एक गुण है।"

"कहे जाओ" हरिशंकर बोला।

"बृहस्पति भौतिकवादी आकाश को नहीं मानते। तुम तो मानते हो।"

"मगर गौतम, अगर शब्द शाश्वत है तो ज़बान से पहले ही शब्द सुनाई दे जाना चाहिए क्योंकि आकाश और हमारे कानों के बीच कोई रोक नहीं है।" हरिशंकर ने उठ कर बैठते हुए कहा।

"शब्द भी शाश्वत है" गौतम ने उत्तर दिया—"अक्षर 'म' सदा से मौजूद है, उसका जब भी उच्चारण किया गया हो, उसकी ध्वनि यही रही होगी। जैमिनि कहता है कि शब्द ध्वनि इसीलिए नित्य है कि सुनने के बाद वह मस्तिष्क को याद रहती है। एक ही काल में हर जगह मौजूद है और कभी नष्ट नहीं की जा सकती।"

"और इसीलिए वेदों को, क्योंकि वह शब्द है, कभी मिटाया नहीं जा सकता ?" हरिशंकर ने दृष्टि उठा कर पूछा।

"तुम कैसे दार्शनिक हो जो शब्दों पर विश्वास नहीं रखते ?" गौतम ने झुँझला कर जवाब दिया—"पाणिनि—तुम्हारे तक्षशिला के अध्यापक ने कहा था अपने या दूसरों के विचारों के प्रदर्शक केवल शब्द ही हो सकते हैं। उनकी वास्तविकता का अध्ययन करना कितना ज़रूरी

है। शब्दों के मार्ग के बिना विशुद्ध विचार तक कैसे पहुँच पाओगे ? ध्वनि शब्द का प्राकृतिक गुण है। वस्तु-पदार्थ शाश्वत है वेद भाषा की शक्ल में ब्रह्म है और वस्तु-पदार्थ ब्रह्म है।"

"काल की नित्यता को समझकर तुम लोगों ने बहुत गड़बड़ फैलाई है" हरिशंकर ने दोबारा फर्श पर लेटते हुए कहा।

"अर्थ ही मुख्य वस्तु है" गौतम ने जवाब दिया, "पाणिनि का कहना है कि सारे शब्दों का तात्पर्य विशुद्ध अस्तित्व है। 'सत', 'यथार्थ', 'ईश्वर' और विभिन्न वस्तुओं के लिए ब्रह्म के अलग-अलग नाम हैं।—वह, सामने से गुज़रता हुआ भूरा सुअर, घाट पर बैठी हुई अयोध्या की लड़कियाँ—तुम हरिशंकर—यह सब परम् आत्मा हैं।"

"आश्चर्य है कि तुम अब तक वेदान्त से आगे नहीं बढ़े।"

"अन्त के आगे और क्या हो सकता है ?"

"तुम ही बताओ।"

"परमात्मा और जीवात्मा में अविद्या के कारण द्वत्व है। इसीलिए शब्द और अशब्द दो अलग-अलग ब्रह्म हैं, शब्द का ध्यान करके ही अशब्द को प्रकट किया जा सकता है।"

"वह अशब्द मैं स्वयं हूँ" हरिशंकर ने कहा।

गौतम चुप हो गया।

"कार्य और कारण का नियम अपने में पूर्ण है। कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु की तरह नहीं। केवल अपने क्षणिक अस्तित्व के अलावा किसी वस्तु का किसी दूसरी वस्तु से सम्बन्ध नहीं। सब क्षणिक है और सब दुःख-विपत्ति है—सर्व दुःखं दुःखम्।" हरिशंकर ने कहा—"शरीर और आत्मा दोनों नश्वर हैं। दोनों के इकट्ठा होने से भी कोई शाश्वत अस्तित्व जन्म नहीं लेता। आत्मा शाश्वत नहीं है। मनुष्य दीपक की तरह बुझ जाता है। केवल घटनाओं और भावों का क्रम स्थगित रहता है। एक लड़की थी...सो रहे हो भाई गौतम ?"

"नहीं। कहे जाओ।"

"एक लड़की थी। उसने भी मुझे क़ायल करना चाहा कि मैं शाश्वत सत्ता में विश्वास करूँ। वह थी सा पा सा में, देश-काल बाँध लेती थी वीणा पर वह प्रातः काल भैरव और मेघ बजाती। दोपहर को जब सारी दुनिया सोने के रंग में रंग जाती तब मैं उससे दीपक और श्रीराग सुनता, रात पड़े वह हिंडोल गाती। उस लड़की को संगीत का जुनून था।"

"तुमने गीत और शब्द को अस्वीकार कर दिया था। लेकिन, देखो ये शेष रहेंगे। स्वर अटल हैं।" गौतम बोला।

कुछ देर बाद ही हरिशंकर ने फिर कहना शुरू किया, "मैं जब उत्तर कौशल की सीमा पर वापस पहुँचा तो गुल्म स्थान के सीमारक्षकों ने ललकार कर मुझसे पूछा—'तुम कहाँ से आ रहे हो ?' 'मैं यहीं से गया था और यहीं लौटकर आया हूं'—मैंने उत्तर दिया। 'और यहीं तुम सबका अन्त होगा। इस चक्कर से बचने का उपाय करो।'

'तुम इसका मतलब समझे ?' पहरेदार ने अपने साथी से कहा—'यह भी कोई दार्शनिक जान पड़ता है !' और फिर वह दोनों कौड़ियाँ खेलने में तल्लीन हो गये। मगर मैं जब अयोध्या में आया तो मुझे पता चला कि स्वर तो अभी शेष हैं। भाई गौतम'! जीवन का फैलाव बड़ा भारी है। देश, बस्तियाँ, नये-नये लोग, भाँति-भाँति की बोलियाँ। मैंने पाटलिपुत्र से लेकर पुष्करावती

तक का मार्ग यही खड़ाऊँ पहने-पहने तय किया है। यहाँ से थोड़ी दूर पर गोमती के किनारे लक्षणावती नगर है, संगम पर प्रयाग है। फिर कान्यकुब्ज, हस्तिनापुर, तक्षशिला। उसके आगे सीमो की नगरी पुष्करावती। इस लम्बे राजपथ पर मैंने बहुत लम्बी यात्रा की है, परन्तु मेघ हिंडोल के स्वर बराबर मेरा पीछा करते रहे। तब कई साल मैं तक्षशिला में रहा, और मैंने उन्हें भुलाये रखा। यहाँ लौट कर फिर वह मेरे कानों में आ रहे हैं। तुम मुझसे शब्द और ध्वनि की नित्यता की बात करते हो ?....मुझसे पूछो !....मुझे मालूम है। यह सब अलग-अलग स्थानों के जादू का प्रभाव है। वास्तविकता कुछ नहीं। सर्वं दुःखं दुःखम्।''

''सुना है वह प्राचीना अयोध्या की रानी रेणुका की तरह सुंदर है ?''

''किसका ज़िक्र करते हो ?'' हरिशंकर ने तेवरी पर बल डाल कर कहा।

''पता नहीं'' गौतम ने उत्तर दिया फिर वह आँखें बंद करके फर्श पर लेटा रहा।

''पावन सरयू ! ऋग्वेद से बहने वाली नदी—मेरी माँ जाने कब तक इसी तरह बहती रहेगी। सामने मेरा शहर है।'' हरिशंकर की सुंदर मद्धम आवाज़ उसके कानों में आती रही, ''सुंदर, शानदार अयोध्या कितने वर्षों से यूँ ही रातों को जगमगाता रहा है, कितने युग बीते जब मनु का बेटा इसका पहला बादशाह बना था और शिव भक्त भागीरथी और दिग्विजयी रामचंद्र। अयोध्या—आज का ब्रह्मा का नगर जिसे कोई जीत नहीं सकता। तुमने कभी इस नगरी के नर्तकों और संगीतज्ञों को देखा है, यहाँ के नृत्यों में शामिल हुए हो ? राजमहल में वसंत का त्यौहार मनाया जाता है। यहीं पर चम्पक रहती है और यहीं पर मेरे घर वाले मेरी प्रतीक्षा में हैं—जिस तरह श्रीकृष्ण को अपनी बहन सुभद्रा प्यारी थी वैसे ही मैं अपनी बहन को प्यार करता हूँ मगर मैंने उसकी मुहब्बत को दूसरी मुहब्बतों और वफ़ादारियों के साथ दिल से निकाल फैंका और फिर अवध लौट आया। राम ने चौदह वर्ष के बनवास के बाद लौटने का वचन दिया था। मैं भी वापस आया हूँ, मगर गौतम सिद्धार्थ ने मुझे वचन के बन्धन से भी मुक्त कर दिया। मेरी बहन रामचंद्र की बहन शांता की तरह सुंदर और मासूम है और लोग कहते थे कि इसी अयोध्या में जिस तरह डेढ़ हजार वर्ष पूर्व शांता और सीता की जोड़ी थी ऐसे ही निर्मला और चम्पक चाँद और सूरज की तरह जगमगाती हैं। देखो शब्दों ने फिर मेरे साथ धोखा किया है।'' उसने उदासी के साथ बात ख़त्म की।

गौतम ने आँखें खोल कर उसे देखा। बाहर पेड़ों पर वर्षा बरसनी शुरू हो गई थी। बरसात का मौसम है ! मौसम में सारे भिक्षु विहारों में बसर करते हैं। गौतम को ख़याल आया। उसने करवट बदल कर हरिशंकर से पूछा—''तुम श्रावण का समय कहाँ गुज़ारोगे ?''

''पता नहीं।''

''तुम्हारे बाकी मित्र कहाँ जा रहे हैं ?''

''मेरे सहयात्री—तुम्हारा मतलब है।''

''सहयात्री ही कह लो।''

''यह भी मालूम नहीं।''

''तक्षशिला तो ब्राह्मणों का विद्यापीठ है। तुम वहाँ कहाँ पहुँच गये !''

''मैं पखताओं के देश में भी रहा हूँ। जहाँ उत्तर के नीली आँखों वाले गोरी चमड़ी वाले विदेशी शिव की पूजा करते हैं। मैंने इरावती और चन्द्रभागा की घाटियों की सैर की है। मैं

सिंधु की लहरों पर तैरा हूँ। पूर्व में बंग तक गया हूँ। मैंने ब्रह्मपुत्र, सुन्दरबन और चन्द्रद्वीप के दलदलों में जंगली धान उगते देखे हैं, जहाँ काले वस्त्र पहने, लम्बे बाल कंधों पर छिटकाये मृगनयनी कुमारियाँ हरे बाँस के झुरमुटों में रहती हैं। गौतम, जीवन का विस्तार बहुत महान है। उसके फैलाव से बचते रहो।"

"सृष्टि और उसका विस्तार कहाँ आरम्भ होता है ? कहाँ जाता है ? हम कहाँ पैदा हुए हैं ? किस प्रकार और किस कारण जीवित हैं ? और यहाँ से कहाँ जाएँगे ?"

"तुम जो ब्रह्म से परिचित हो ज़रा बतलाओ दुःख या सुख में ग्रस्त किसकी आज्ञा से हम यहाँ रह रहे हैं—काल या प्रकृति—या दुर्घटनाएँ या तत्वों को कारण समझा जाए या उसे जो पुरुष कहलाता है, जो तुम्हारे निकट परमआत्मा है—" हरिशंकर ने बात ख़त्म की।

"उपनिषदों में लिखा है कि सृष्टि स्वतन्त्र पैदा हुई है, स्वतन्त्र ही स्थित है, और स्वतन्त्र ही विलीन हो जाती है।"

"वही नित्यता !" हरिशंकर ने दुःखी स्वर में कहा—"स्वतन्त्रता और नित्यता स्वयं बन्धन नहीं ?"

बारिश तेज़ी से शुरू हो गई। दीया हवा के झोंके से बुझ चुका था। शंकर ने ईंटों का तकिया बनाकर सिरहाने रख लिया। गौतम ने अपनी सफ़ेद चादर ओढ़ कर दीवार की तरफ़ करवट बदल ली। दोनों कुछ देर तक चुपचाप अँधेरे में पलकें झपकाया किये। फिर पुरवाई के झोंकों से उन्हें नींद आ गई।

उस रात गौतम को विचित्र-विचित्र स्वप्न दिखायी दिए। मन्दिर की कोठरी में से निकल कर चण्डी देवी अपने गौरी के रूप में छन-छन करती बाहर आईं। फिर वे धीरे-धीरे केसरिया साड़ी वाली लड़की में बदलने लगीं। इसके बाद फिर उनका रूप भिन्न दिखायी दिया। पहले वह दुल्हन बनीं, सती के रूप में महादे· से उनका विवाह हुआ फिर पल की पल में एक बूढ़ी औरत, दुर्गा से भी अधिक भयानक, आलती-पालती मारे उसके सिरहाने आ बैठीं, और जोर-जोर से रोने लगीं। 'मेरी माँ ! मेरी माँ !' 'माँ · गौतम ने लरज कर कहा। लेकिन बूढ़ी औरत ने दाँत निकोस कर जवाब दिया—'मैं तुम्हारी माँ नहीं ! अरे, मैं तो वैशाली की....।' उसकी बात समाप्त होने से पहले एक बेल पेड़ की डाल पर से टूट कर टप् से आँगन में आन गिरी, और गौतम हड़बड़ा कर उठ बैठा। शंकर बड़ी निश्चिन्तता से सो रहा था। बारिश ख़त्म हो चुकी थी। नदी के किनारे चाण्डाल किसी की लाश मरघट की ओर लिए जा रहे थे, और नावों की रोशनियाँ अगिया बेताल की तरह चमक रही थीं। उसने जल्दी-जल्दी मन्त्र पढ़ने शुरू कर दिए। बहुत देर बाद उसे नींद आई।

मुँह-अँधेरे जब शंकर की आँख खुली तो गौतम चण्डी पाठ में तल्लीन था। घाट पर ब्राह्मण खँखार रहे थे। आम का बाग़ चिड़ियों की चहकार से गूँज उठा था। गौतम पूजा-पाठ के बाद बाहर निकला · हरिशंकर उसे देख कर मुस्कराया। अचानक गौतम ने उससे पूछा—"वैशाली में कौन रहता था ?"

"मैं वैशाली की किसी महिला से वाकिफ़ नहीं" शंकर ने बड़ी गंभीरता से सिर हिला कर जवाब दिया और फिर हँसने लगा। गौतम को उसकी बेतुकी हँसी पर बहुत गुस्सा आया। दोनों मन्दिर की सीढ़ियाँ उतर कर जंगल के रास्ते पर आ गए। नदी के किनारे भिक्षुओं की

टोली स्नान करने के लिए आई हुई थी।

"तुम अब श्रावस्ती वापस जाते हो ?" शंकर ने पूछा।

"हाँ। तुम चलोगे ? वहाँ से कुछ दूरी पर कपिलवस्तु है। उधर पूरब में कुशीनगर है, और गया। इन सब जगहों की यात्रा के लिए न जाओगे ?"

"तुम अपना मतलब बयान करो !"

"मेरा मतलब यह है कि तुम भी मेरे साथ चलो। श्रावण मास में तुम हमारे आश्रम में ठहर सकते हो। और अगर माँ-बाप की इज़्ज़त बढ़ाना चाहते हो तो शहर के अंदर मेरा घर हाज़िर है।"

"मेरा विचार काशी जाने का था मगर मैं देखता हूँ कि तुम मेरे रास्ते में बाधक हो।"

"यही बात दूसरी तरह भी कही जा सकती है तुम मेरा रास्ता खोटा कर रहे हो भाई हरिशंकर !"

"पगडण्डी सँकरी हो और दो राहगीर आमने-सामने खड़े हों, तो उनमें से एक को हट जाना चाहिए, वर्ना दोनों खड्ड में जा गिरेंगे ?" गौतम ने कहा।

"फिर मैं तुम्हारे साथ श्रावस्ती क्यों चलूँ इसलिए कि मेरी धर्म में रुचि है या इसलिए कि तुम अयोध्या की कुमारी चम्पक के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हो।"

"हरिशंकर अगर तुमने शाक्य मुनि के चेलों का यह गेरुआ-पहनावा न पहन रखा होता तो तुम्हारी ठुकाई कर देता" गौतम ने दिल में कहा।

वे दोनों आबादी छोड़ कर श्रावस्ती की ओर बढ़ने लगे।

आसमान पर बादल छँट गए थे। हवा में कच्ची कलियों की महक उमड़ रही थी। कदम के एक झुंड में मोर पर फैलाए नाच रहा था। खेतों की मुंडेर पर धानी और कपासी साड़ियाँ पहने किसान औरत इधर से उधर आ-जा रही थीं। अशोक के जंगलों में जगह-जगह जो देव स्थान और देव गृह बने थे गौतम उन पर फल-फूल चढ़ाता रास्ता तै करता रहा। शंकर ख़ामोशी से उसके साथ-साथ आ रहा था।

शाम पड़े दोनों लड़के मोर पालने वालों के एक गाँव की चारदीवारी में दाख़िल हुए। अनगिनत मोर चारों ओर बाग़ों में घूम रहे थे। छप्परों के नीचे मोर के परों के पंखे और मोरछल तैयार किए जा रहे थे। चौपाल में गाना हो रहा था। गौतम और हरिशंकर कुएँ की मन पर बैठ गये। पल की पल में सारे में ख़बर फैल गयी, दो विद्यार्थी गाँव में आये हैं। उनकी आवभगत शुरू हुई।

शंकर आँखें बन्द किये बैठा रहा। एक सुन्दर युवती दो सुन्दर पंखियाँ भेंट करने के लिए आई। गौतम ने युवती के हाथ से एक पंखिया ले ली, और उसे उलट-पुलट कर देखने लगा। उसने परों पर उंगलियाँ फेरीं। लड़की बड़े अदब से आशीर्वाद की प्रतीक्षा में कुछ दूरी पर खड़ी रही। ये पंखे कहाँ-कहाँ किन-किन शहरों और मुल्कों को भेजे जायेंगे ? कैसे-कैसे लोग इन्हें प्रयोग करेंगे। वह सोच रहा था यह पंखियाँ जो मैं छू रहा हूँ, यहीं अयोध्या के बाज़ार में जा के बिकेंगी और कदाचित् वह लड़की ही इसे ख़रीद ले। फिर उसने दोनों पंखियाँ वापस कर दीं। "हमें विलास की आज्ञा नहीं। हमें तुम्हारे ये सुन्दर पंखे नहीं चाहिए। मोर के परों को हम बन में देख कर ही खुश हो लेते हैं।" उसने जल्दी-जल्दी कहा। लड़की ने पंखियाँ

उठा लीं और प्रणाम के लिए झुकी और शंकर चूँकि एक भिक्षु का नारंगी रंग का वस्त्र पहने था, उसने आगे बढ़कर शंकर के पाँव छुए।

"तुम्हारा नाम सुजाता तो नहीं ?" गौतम ने हँस कर उससे पूछा, और शंकर पर दृष्टि डाली। वह अब भी आँखें बन्द किए बैठा था।

"नहीं, मेरा नाम नन्दबाला है। सुजाता मेरी बड़ी बहन है।" लड़की ने सरल भाव से उत्तर दिया। और फिर कुएँ के मन पर से उतर कर गाँव की ओर लौट गई।

"भाई गौतम ! हर युग में, मार्ग के हर मोड़ पर तुम्हें कोई नन्दबाला मिलेगी—कोई सुजाता। और, वह तुम्हारे निकट आकर तुम्हारी आराधना करना चाहेगी। अब भी समय है, आँखें खोल लो।" हरिशंकर ने कहा।

सुबह सवेरे वे फिर अपनी यात्रा पर चल खड़े हुए और दो दिन तक चलते रहे। अब श्रावस्ती ज़्यादा दूर न थी। शीशम के जंगलों के ख़त्म होने पर आबादी शुरू हो गई। सड़क के दोनों ओर वृक्ष लगे थे जिनके परे धनी-मानी लोगों के मकान थे। इन मकानों के बाग़ों में नक़ली पहाड़ियाँ बनी थीं और अमरूद और अनार के पेड़ों के झुंड थे, जिन पर हरे पंख वाले तोते शोर मचा रहे थे। पालतू मोर संगमर्मर के तालाबों के किनारे खड़े पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखते थे। जामुन के पेड़ों में झूले पड़े थे। मकानों की दीवारों की सफ़ेदी धूप में दूर से जगमगा रही थीं।

बराबर की पगडण्डी पर से बनजारों का एक क़ाफ़िला बैलों पर बैठा, गाता-बजाता निकल गया। चलते-चलते सहसा रुक कर हरिशंकर ने गौतम को सम्बोधित किया, "गौतम, वैशाली की एक अम्बपाली थी। यद्यपि चम्पक, सुजाता और नन्दबाला, सब एक हैं। अपने मन को विकार से मुक्त रखो।"

और, फिर सहसा हरिशंकर पगडण्डी पर से उतर के वापस शीशम के जंगलों की ओर मुड़ गया। गौतम उसे आवाज़ें देता रह गया लेकिन वह आँखों से ओझल हो चुका था।

2

श्रावस्ती का खूबसूरत शहर राप्ती के दक्षिणी तट पर दूर-दूर तक फैला था। उसके उत्तर में ज़रा दूरी पर हिमावत के गुलाबी और नीले पहाड़ खड़े थे। इन पहाड़ों के अंचल में खेत लहलहा रहे थे और देवदार के घने जंगलों और आसपास तराई के नरकुलों में बाघ और बघेले घूमते थे।

पर्वतों की यह शृंखला बहुत ऊपर से आ रही थी, जहाँ मानसरोवर झील थी जिसकी स्वच्छ लहरों पर विश्वात्मा का राजहंस अकेला तैरता था। हिमावत के ऊँचे हिममंडित पर्वत वंग और कामरूप तक फैले थे। इन पर्वतों के उस पार उत्तर में सोने की रंगत वाले कंचनों का देश था। घाटियों में अर । रजत-निर्झर और शीतल जल की नदियाँ थीं। सुगन्धित पत्तों के वृक्ष और धान के खेत थे, और अन्धकारपूर्ण शीतल वनों में गुरुकुल बने थे, जहाँ देश के नौजवान लड़के राजकुमार और निर्धन ब्राह्मण और धनी क्षत्रियकुमार शिक्षा प्राप्त करने में जुटे थे।

इन्हीं वनों में, पहाड़ियों की ढलान पर जहाँ दिन में भी घुप अँधेरा रहता था, हाथी पले

थे। अयोध्या के राजन् साल में एक बार 'खेदा' के लिए वहाँ आते। हाथी पकड़ने वाले हाँका लगाते, दरबारियों का पड़ाव होता। जंगल में मंगल लग जाता ! हाथियों का रास्ता तलाश करने वाले और सधाने वाले कर्मचारीगण वनों के किनारे लकड़ी और बाँस के झोंपड़ों में रहा करते थे। उनकी लड़कियाँ मूँगे और फ़ीरोज़े के रजत-आभूषण पहने, बालों की मींढ़ियाँ गूँथे हाट-बाजार के लिए जब मैदानों की तरफ़ आतीं तो शहरी लड़कियाँ उनकी रंग-बिरंगी काली, लाल और पीली धारियों वाले वस्त्रों को बड़ी दिलचस्पी से देखा करतीं।

उत्तर कौशल के राज्य में नगर, पुर और नगरियाँ इन हरे-भरे मैदानों में बसी थीं। वनों की अधिकता थी, जिनकी लकड़ी से सुन्दर भवन बनाये जाते थे। अब आबादी बढ़ रही थी और जंगल कटते जाते थे।

श्रावस्ती का नगर बहुत चहल-पहल भरा था और दूर के देशों से आये हुए लोग यहाँ रहते थे। अलग-अलग मुहल्लों में कारीगर, सुनार, बजाज, आढ़तिये और अन्य पेशों वाली जातियाँ बसी थीं। उनकी अपनी-अपनी मंडलियाँ आबाद थीं—अपने-अपने नियम। चोरों तक की मंडली एक सुनिश्चित शास्त्रसहित मौजूद थी। बारहों महीने बला की चहल-पहल रहती। हमेशा कोई-न-कोई त्यौहार मनाया जाता। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कार्य में व्यस्त था। चित्रकारों और शिल्पकारों की टोलियाँ अपने कलाकक्षों में व्यस्त रहतीं। नाट्यमंडली में सुबह से खेल शुरू हो जाता और दिन भर चलता रहता। नायक और नायिकायें तड़क-भड़क वाले वस्त्र पहने, चेहरों पर उबटन लगाये प्रसिद्ध नाटक प्रस्तुत करतीं, चौराहों पर मदारी अपने करतब दिखलाते। भंग की दुकानों पर आवारागर्दों, उचक्कों और ठगों की भीड़ रहती। त्यौहारों के अवसर पर बनजारे ताड़ी पीकर ज़ोर-ज़ोर से गाते फिरते। डोम नक़लें करते। वेश्याएँ छनछन करती अपनी गलियों में टहलतीं। धनिकों की कन्याएँ सोलह सिंगार किए थालों में घी के दीप जलाए मन्दिरों की ओर जाती नज़र आतीं। अगरु और लोबान की सुगंध से वातावरण बोझिल हो जाता।

रथकार, मिट्टी के बर्तन बनाने वाले, कलाल और बेंत की टोकरियाँ बनाने वाले नगर के बाहर रहते थे। आबादी से बिलकुल अलग-थलग चाण्डालों की बस्ती थी। उनका पंचम् वर्ण चारों वर्णों से हीन था, केवल शव उठाना और मुर्दों को जलाना उनके भाग्य में लिखा था। यही उनका पेशा था। वे केवल मुर्दों की उतरन पहन सकते थे। उनको आज्ञा थी कि टूटे-फूटे बर्तनों में खाना खाएँ और केवल काँसे के आभूषण प्रयोग करें।

लेकिन, ज़्यादा समय नहीं गुज़रा जब श्रावस्ती में कपिलवस्तु के शाक्य मुनि आकर रहे थे और उनके शिष्यों ने अपने प्रवचनों में बतलाया था कि मनुष्य जन्मानुसार नहीं, कर्मानुसार म्लेच्छ या शूद्र बनता है और अब नारंगी रंग के वस्त्रधारी भिक्षुओं की टोलियाँ बस्ती-बस्ती घूम कर चाण्डालों और शूद्रों को सद्कर्म करने का उपदेश दे रही थीं।

श्रावस्ती की शोभा प्रत्येक ऋतु में बनी रहती। गर्मियाँ आतीं तो धनवान अपने उपवनों में तालाबों के तट पर जा बैठते या ठंडे तहखानों में आराम करते। संध्या के समय बाज़ारों में खवे से खवा छिलता। वृद्ध महिलाएँ मोतिया और चमेली के गजरे घरों की ड्यौढ़ियों पर ले जाकर बेचतीं। सुन्दर लड़कियाँ ऊँचे मकानों के झरोखों में से नीचे झाँकती !

नगर के बाहर खुले मैदानों में क्षत्रिय योद्धा सिन्ध और ईरान और अरब के बढ़िया घोड़ों पर सवार हवा से बातें करते नज़र आते। गाँव की तरफ़ जाने वाले छायादार कच्चे मार्गों पर किसानों की बैलगाड़ियाँ और बहलियाँ चर्रखचूँ करती धीमे-धीमे चलती रहतीं।

3

मौनव्रत रखने वाले ब्राह्मणों की तरह, साल भर गुमसुम रहने के बाद, मेंढकों ने तूफ़ान के देवता से जीवन की लहर प्राप्त की है और अब गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हैं। जिस प्रकार विद्यार्थी अपने गुरु के शब्द एक साथ मिल कर दोहराते हैं, उसी प्रकार एक मेंढक दूसरे मेंढक की बोली की नक़ल करता है। सब के सब तलैया में लेटे बरसाती राग अलापने में जुटे हैं !

गौतम ने पुस्तक बन्द कर दी और दृष्टि उठा कर सामने देखा। बारिश झमाझम बरसना शुरू हो गई थी। मेंढक टर्रा रहे थे, मोर झनकारते थे, पपीहा शोर मचा रहा था, सावन की घटाएँ झूम कर उठी थीं। ऋग्वेद में सदियों पहले वर्षाऋतु के जिस दृश्य का चित्रण किया गया था, वह दृश्य पूर्ण रूप से वैसा का वैसा उसके सामने मौजूद था। कुटी के फूस पर लौकी की बेल फैली थी, उस पर से पानी की बूंदें टपक-टपक कर गौतम के पैरों को भिगो डाल रही थीं। वह कुटी के बरामदे में बैठा सावन की आवाज़ें सुनता रहा। वाद्यमंत्रों का कोई बहुत बड़ा संग्रह था जिस पर सरस्वती मेघराग बजा रही थीं। शान्ति और सन्तोष का राग, मेघ ! इस बारे में मैंने अभी किसी से सुना है। क्या मैं अभी तक अपनी स्मरण-शक्ति पर क़ाबू नहीं पा सका ? मुझे अनावश्यक बातें क्यों याद रहती हैं ? उसने उदासी से सोचा और पुस्तक बन्द करके एक तरफ़ रख दी, और बारिश की बूँदों को देखने लगा। सावन की पूर्णिमा आ गई थी और पढ़ाई आरम्भ होने वाली थी। गौतम नीलाम्बर अपने आश्रम वापस आ चुका था। आश्रम नगर से दूर अशोक के जंगल में स्थित था। नदी के किनारे-किनारे झोंपड़ों में विद्यार्थी रहते थे। उस पार गुरु के खेत थे जो राज्य की ओर से आश्रम को मिले हुए थे। बारिश थमती तो विद्यार्थी इन खेतों में काम किया करते। हेमन्त ऋतु में तिब्बत की ओर से उड़ते हुए हंस आते और बसंत ऋतु में उत्तर की ओर लौट जाते। विद्यार्थी जब प्रातः काल स्नान-ध्यान के लिए घाट पर जाते तो उन्हें ये अपने मौन साथी संन्यासियों की तरह ध्यान में डूबे मिलते।

गौतम अपने गुरु के पास, जिन्हें आचार्य-पद प्राप्त था, मुद्दतों से पढ़ रहा था। इस अवधि में उसने नाटक लिखने और चित्र बनाने में विशेष ख्याति प्राप्त कर ली थी। अपने आश्रम से बाहर दूसरी विद्यापीठ में भी उसका नाम इज़्ज़त से लिया जाता था। अगर वह जन्म से कवि है तो उसे पुरोहित बनाने से क्या लाभ—उसके शिक्षक ने सोचा था। मगर गौतम के सामने वही रास्ता अटल था। राज दरबार में पुरोहित की कुर्सी उसकी प्रतीक्षक थी जिस पर उसका बाप बैठा था। संभव है एक रोज़ वह उस पुरोहित के रुतबे तक पहुँच जाए और उत्तर कौशल के अलावा दूसरे राज्यों का सलाहकार भी बन जाए। वह बड़ा प्रतिभावान लड़का था और उसके पूरे देश में विद्या की क़दर बहुत की जाती थी। उसे युद्धकला भी सीखनी पड़ी थी और अगर उसे लिखने-पढ़ने में अधिक रुचि न भी होती, तब भी गौतम इन्द्रप्रस्थ जाकर पांचालों की सेना में नौकरी कर सकता था, परन्तु उसने निश्चय कर रखा था कि वह केवल नाटक लिखा करेगा। कला-सम्बन्धी सिद्धान्तों पर पुस्तकें लिखेगा, चित्र और मूर्तियाँ बनाएगा। उसका कोई नुकसान नहीं था। पश्चिम के पांचालों के यहां सेनापति को पुरोहित पर प्रधानता प्राप्त है। कवियों ने हमेशा समाज से बग़ावत की है पर इसके साथ ही उसे अपने गुरु का

बड़ा ख़याल था। वह कभी कोई ऐसी बात नहीं करेगा जिससे उसके गुरु को दुख पहुंचे।

गुरु-चेले का यह क्रम शताब्दियों से, राजर्षि जनक और महर्षि दत्तात्रेय के काल से चला आ रहा था। इस आश्रम के आसपास, एक हज़ार वर्ष पूर्व सरयू की एक शाखा मलिना नदी के किनारे एक प्रसिद्ध विद्यापीठ था। इन्हीं कुंजों, जहाँ गौतम और उसके साथियों के झोंपड़े थे, यहीं दूसरे लड़के घूमते फिरते होंगे।

दूसरे लड़के और लड़कियाँ ब्रह्मचर्य की ज़िंदगी बसर करने वाले भी प्राय: उच्च शिक्षा प्राप्त करतीं। ऋग्वेद की कई कविताएँ और साध्वियों के गीत लड़कियों ने लिखे थे। कवयित्री अपाला की कविताएँ गौतम ने पढ़ी थीं। लड़कियाँ भी कैसी विचित्र होती होंगी, गौतम को प्रायः ख़याल आता।

दूसरे ब्राह्मण लड़कों की तरह गौतम नीलाम्बर की पढ़ाई भी पाँच साल की आयु में शुरू कर दी गई थी। अब वह पूरे चौबीस वर्ष का हो गया था और उसने ब्रह्म ज्ञान, उपमा साहित्य, भूत विद्या, गणित, व्याकरण, तर्क शास्त्र, दर्शन शास्त्र, शिष्टाचार, अभिनय, रसायन शास्त्र, भौतिक विज्ञान–पाठ्यक्रम की सभी विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं।

युद्धकला के अतिरिक्त वह रागविद्या में निपुण था। उत्तर-प्रदेश के रहने वाले भाषा के ज्ञानी समझे जाते थे। गौतम को भी भाषा की शुद्धि का बहुत ख़याल रहता।

वर्षों से उसकी ज़िंदगी इसी ढर्रे पर चल रही थी। वह माँ-बाप से अलग आश्रम में रहता। गुरु के जागने से पूर्व सूर्य उदय से पहले उठ बैठता। नदी पर जाके नहाने के बाद जंगल के अत्यंत शांत स्थान पर बैठ कर पूजा-पाठ करता। पेड़ों के पवित्र कुंजों से जो देवी-देवताओं के नाम से प्रसिद्ध थीं, उस समय सुरीले भजनों की आवाज़ें बुलंद होतीं। पूजा-पाठ के बाद गौतम आबादी में जाकर दिन भर के भोजन के लिए भीख हासिल करता, फिर लकड़ियाँ चुन कर लाता और गुरु की कुटिया की आग रोशन की जाती। आश्रम में प्रतिदिन चावल उबाले जाते थे और जौ की रोटी बनती थी। श्रावस्ती में बड़े-बड़े बूचड़खाने मौजूद थे। शहर की दावतों में प्रायः गाय का गोश्त भी पकता था लेकिन विद्यार्थी को गाय का गोश्त खाने की मनाही थी अतः गौतम और उसके साथी गुरु को खिलाने के बाद अलग-अलग बैठ कर साग-पात ही खाते।

इस देश के रहने वालों को सफ़ाई का जुनून था। आश्रम में दस बार झाड़ू-बुहारी की जाती। पीतल के बर्तन झोंपड़ों में रखे चमक-चमक करते। बात-बेबात पाँव धोए जाते। एक तिनका भी फ़र्श पर नज़र न आता। फिर बाग़ की सफ़ाई की जाती। इस सारे परिश्रम के बाद पढ़ाई होती। पढ़ाई के बाद ईश्वर स्मृति, ब्रह्मचर्य के नियम बड़े कठिन थे। गौतम को आरंभ में ही सिखलाया गया था कि वह इत्र-फूल प्रयोग नहीं कर सकता। सुर्मा लगाने, जूता पहनने, बारिश या धूप में छतरी लेकर चलने की उसे सख़्ती से मनाही थी। नदी पार करने के लिए वह किश्ती का प्रयोग नहीं कर सकता था। उसे बतलाया गया था कि विद्यार्थी को दिन भर खड़ा रहना चाहिए। रात बैठ कर गुज़ारनी सराहनीय है। मोटा-झूटा पहनना और रूखा-सूखा खाना उसका तरीका है। लड़कियों के साथ इज़्ज़त से पेश आना उसका कर्त्तव्य है। बिना आवश्यकता दौड़-भाग न मचाओ। भाषा अत्यंत साफ़ और शुद्ध बोलो। एक भी अशिष्ट शब्द मुँह से न निकलने पाए। लड़कियों का मज़ाक कभी न उड़ाना। भोग-विलास, राग-रंग

से तुम्हें कोई सरोकार न होना चाहिए। शहर के सरकारी जुआखाने में प्रतिष्ठित व्यक्ति शाम को जमा होकर जुआ खेलते। गौतम जो विद्यार्थी की हैसियत से भीख माँग कर अपना पेट पालता था, केवल सपने ही में सिक्कों के दर्शन कर सकता था। अतः एक दिन उसने सपने में देखा कि वह कीमती दोशाला ओढ़े घुटनों के बल बैठ पर्ण पर पर्ण दाव पर लगा रहा है और उसके चारों ओर विचित्र शक्लों के लोग जमा हैं, ऐसे लोग जो उसने जागते में श्रावस्ती के बाज़ार में भी कभी नहीं देखे थे।

लेकिन गौतम अपने गुरु का बहुत ही आज्ञाकारी और श्रद्धालु चेला था और गुरु की आज्ञा का पालन करना उसका धर्म था अतः जब कभी वह श्रावस्ती के नाचघर या जुएखाने के भव्य भवन के सामने से गुज़रता तो अपना मुँह दूसरी ओर फेर लेता।

नाच-घर की सीढ़ियों पर से प्रायः कोई महिला घुंघरू सँभाले उतरती नज़र आती।

सभी विद्यार्थी इसी प्रकार गुरु के आज्ञाकारी थे। कई-कई बार वे अपने गुरु के लिए अपनी जान पर खेल जाते। भीख माँग कर सबसे पहले गुरु को लाकर देते और प्रायः स्वयं भूखे रह जाते। पिछले वक्तों में पांचालों के क्षेत्र का एक विद्यार्थी अरुनी जो तक्षशिला में पढ़ता था, अपने गुरु के खेतों को बाढ़ से बचाने के लिए बाँध बाँधने की बजाए ख़ुद पानी की बाढ की ज़द में लेट गया था।

विद्यार्थी को हुक्म था कि वह ज़ात और नस्ल के अभिमान और ख्याति एवं नींद की कामना से दूर रहे। शेख़ी और आत्म प्रशंसा की भावनाओं पर काबू पाए। दिमाग़ की शांति और दिल का संयम प्राप्त करे।

श्रावण की पूर्णमासी से लेकर पौष की पूर्णमासी तक पढ़ाई होती थी। शिक्षा पद्धति प्रश्न-उत्तर पर आधारित थी। चेला प्रश्न करता और गुरु उसका उत्तर देता। फिर पेड़ की छाँव में बैठ कर आपस में वाद-विवाद होते। गाल की खाल निकाली जाती।

अगर कभी राजनैतिक हलचल या बाहरी आक्रमणों के कारण पढ़ाई स्थगित करनी पड़ती या त्यौहार की छुट्टियाँ मिलतीं तो गौतम अकेला ही अपनी कुटिया में बैठा चिराग़ जलाए रात-रात भर कविताएँ लिखा करता। गीदड़ों का चिल्लाना पढ़ाई के लिए बुरा शगुन था। मरघट में और सड़क के किनारे बैठ कर पढ़ना मना था।

जाड़ों की रातों में नज़दीक के जंगलों से ठंडी हवा आती। बेचारों को सर्दी लगती है। ओढ़ने के लिए राजन से कम्बल माँगते हैं। गौतम की माँ बचपन में उससे कहा करती जब वह अपने शानदार मकान के अंदरूनी कमरे में गर्म कपड़ों में लिपटा छपरखट पर लेटा पंचतंत्र के किस्से, चंदा मामा और उनकी बीवी रोहिणी और राहू और केतु की कहानी सुनता था। चंदा उसके मामा थे, सब बच्चों के मामा थे, क्योंकि मामा की पदवी उस काल में बहुत बड़ी थी। वह माँ का भाई था और माँ अत्यंत आदरणीय हस्ती थी। जाड़ों की लम्बी रातों में गीदड़ चिल्लाते। सारा जंगल चाँदनी में साँय-साँय करता। चंदा मामा ऊपर कोहरे में तैरा करते। उसे अपनी माँ याद आ जाती। फिर वह कोशिश करके दोबारा व्याकरण पढ़ने में तल्लीन हो जाता।

लम्बी छुट्टियों के ज़माने में गौतम नीलाम्बर अपने साथियों की संगत में या अकेला अपने ब्रुश और रंगों की कलेहियाँ लेकर दूर-दूर निकल जाता। इस प्रकार वह अयोध्या गया। एक

बार कोसांबी जा पहुँचा। मगध में इमारतों के खंडहर उसने चाँदनी रात में देखे और बहुत उदास हुआ और वहीं बैठ कर उसने भीम बसार के अंतिम दिनों के बारे में एक नाटक लिखा। यह एक घटना थी कि अब उसका दिल व्याकरण में नहीं लग रहा था। वह चाहता था कि केवल कला के दृष्टिकोणों पर बहुत कुछ पढ़े और लिखे। क़दम-क़दम पर जो प्रश्न ज़हन को उलझाते हैं उनका कोई हल ढूँढ़े। हरिशंकर जो उसे अयोध्या से वापसी पर मिला बहुत दिलचस्प था। मगर, उसके ध्वनि के दर्शनशास्त्र से भी गौतम को डर लगा। प्राचीन ब्राह्मणों का दर्शनशास्त्र आनंद का दर्शनशास्त्र था। जीवन से, संगीत से, ज़िंदा रहने की लगन से भरपूर लेकिन उपनिषदों की उदासी को शाक्य मुनि ने और गहरा कर दिया था। वह जो अब तक बड़े संयम और मानसिक शांति की ज़िंदगी गुज़ार रहा था उसे अब सरयू के घाट पर बैठी लड़की याद आ जाती जिसने केसरी साड़ी पहन रखी थी। उसका जी चाहता था कि अयोध्या लौट कर उसे तलाश करे। पता चलाए कि वह कौन है? क्या करती है ? शंकर—उस कमबख्त अशुभ बौद्ध भिक्षु से, जो पल की पल में छलावे की तरह ग़ायब हो गया, उसका क्या संबंध है ?

रहाइशी विद्यापीठों में नए-नए दृष्टिकोणों की हवा यदा-कदा चला करती थी। इस तरह उपनिषदों के विभिन्न दर्शनशास्त्र वजूद में आए, उनकी व्याख्याएँ लिखी गईं। विभिन्न विचार धाराओं के स्कूल स्थापित हुए। बुद्धमत नवीनतम मानसिक रिवाज था। गौतम नीलाम्बर के विद्यापीठ में बहुत-से लड़के इस विचारधारा के समर्थक हो चुके थे। गौतम की कुटिया में शाम पड़े दूसरे विद्यार्थी आ बैठते। नगर के चित्रकार, मूर्तिकार, अभिनेता, कवि, लेखक और दूसरे लोग जिनका ललित कला से संबंध था और कला जिनका पेशा था। गौतम के छोटे से कमरे में सभा लगती। लिपे-पुते फर्श पर चटाई बिछा दी जाती। बीच में दीया जलता रहता। रात गए तक विभिन्न विषयों पर विवाद होते। साहित्य और कला के नए और पुराने सिद्धांतों पर विचार-विमर्श होता। संगीत की प्रदर्शनी होती। राजनीति की भी ललित कला में गिनती की जाती थी। गौतम के मित्रों में सभाओं के नेता सम्मिलित थे, विद्यार्थी थे जो राजनीति शास्त्र पर पुस्तकें लिख रहे थे। इन बैठकों में राजनीतिक समस्याओं पर बातें की जातीं। राज्य और अराज्य में क्या अंतर है ? राजा और प्रजा में क्या संबंध होना चाहिए? वे इस नतीजे पर पहुँचे थे कि सम्पत्ति राज्य को अराज्य या महात्मा बुद्ध की सुखवती से अलग करती है और सुखवती वह अवस्था है जिसमें इंसान का शरीर भी अपना नहीं और राज्य और राजनीति की सीमाओं से परे होकर इंसान या जानवर बन जाता है। हे ईश्वर—स्वामित्व—यह मेरा है—की कल्पना और धर्म के आभास से राज्य बनता है और स्वामित्व की अनुमति राज्य प्रदान करता है। स्वामित्व राज्य का परिणाम है इसका कारण नहीं अतः राजनीति के विद्यार्थियों ने निर्णय किया कि राज्य उस अवस्था का नाम है जहाँ दरवाज़े खुले छोड़ कर सो सकते हों और औरतें ज़ेवर पहन कर बिना पुरुष की रक्षा के बाहर निकल सकती हों और स्वामित्व—कर्त्तव्य और सज़ा के आधार पर राज्य स्थापित होता है। महाभारत में लिखा है कि दंड अर्थात् सज़ा न हो तो ताकतवर कमज़ोर को इस प्रकार कुचलें जिस तरह बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है और महाभारत के शांति पर्व में लिखा है कि इंसान खतरनाक हद तक लोभी और हिंसावादी है अतः 'यह मेरा घर है' का वाक्य भुला देना चाहिए। स्वामित्व का आभास सारे झगड़े की जड़ है। अत्याचार इंसान की प्रकृति में दाखिल है। सभ्यता-संस्कृति उसे शिष्टाचार सिखाती

हैं और सभ्य बनाती हैं। राज्य दंड के ज़रिए इंसान की प्रकृति को नियम में लाता है। राजा दंडधर है मगर वह विधान से ऊपर नहीं अतः मनु ने हुक्म दिया था कि अयोग्य राजा को भी दंड दिया जा सकता है। राज्य और राजनैतिक व्यवस्था इंसान के लिए आवश्यक है। महाभारत और मनु दोनों के निकट शासन का कठोर होना अनिवार्य था क्योंकि इंसान प्रकृति से बुरा था। जनता का कर्त्तव्य है कि अपने वर्ण के लिहाज़ से अपना कर्त्तव्य निभाया करें। सिपाही को लड़ाई के मैदान में मरना होगा। विद्यार्थी शादी नहीं कर सकता। बादशाह का काम न्याय करना है। यह पृथकता सामाजिक आधार पर की गई थी अतः जब राज्य अस्तित्व में आता है जो प्रजा के साथ ही स्वतः वर्ण आश्रम भी प्रकट होता है। अगर प्रजा अपने कर्त्तव्य न निभाए तो वर्णाश्रम की समाप्ति है।

राजनीतिशास्त्र के बड़े विपरीत दृष्टिकोण थे जो गौतम ने पढ़े थे। जैमिनि ने कहा था कि संस्कार—अच्छे या बुरे—अपने परिणाम स्वयं पैदा करते हैं वर्ना दुनिया के दुखों का स्रोत अगर ईश्वर को करार दिया गया है तो इसका अर्थ यह होगा कि ईश्वर अत्याचारी है अतः जैमिनि ने प्रमाणित किया कि दुनिया की शिष्टाचारी सरकार के लिए किसी दैवी व्यवस्था की ज़रूरत नहीं। गौतम के बौद्ध साथी भी यही कहते थे।

राजनैतिक स्वतंत्रता का सिद्धांत उन सबको बहुत प्रिय था। यह स्वतंत्र इंसानों का समाज था। यूनान, मिस्र, काबुल, नैनवा और ईरान की समकालीन सभ्यताओं के विपरीत इस देश की आर्थिक व्यवस्था दासता की संस्था पर आधारित न थी। सम्राट भी अभी तक प्रकट न हुए थे, तराई के इलाक़ों में क्षत्रियों के गणतंत्र महाभारत के ज़माने से भी पहले से मौजूद थे। बादशाह ज़मीन का स्वतंत्र मालिक न था, उसे दैवी दर्जा भी प्राप्त न था। कर्म की शक्ति के साथ किसी स्वतंत्र सरकार की गुंजाइश नहीं रहती। कर्म ने हर वस्तु को अनावश्यक बना दिया है। गौतम के एक सहपाठी ने अपने एक निबंध में लिखा—"अतः ईश्वर भी प्रत्यपराध और प्रतिकार के विधान को नहीं तोड़ सकता।" इस प्रकार के सिद्धांतों की मौजूदगी में निरंकुश सरकार की स्थापना असंभव थी।

गणराज्यों के ज़माने में कवि ने बादशाह को संघ मुखिया की हैसियत से संबोधित करके कहा था—"तेरे हाथ में राज आया है, उठ और उसी शान से शासन कर। तुझे जनता ने अपना बादशाह चुना है, इंसानों के इंद्र की तरह अपनी राह चल। तू जो गोपा है—ग्वाला है। वरुणा उठ और दुनिया के गल्ले की रखवाली कर।"

सारे देश में विभिन्न हैसियतों की हुकूमतें मौजूद थीं। दक्षिण के राजा युवन कहलाते थे, उत्तर के व्राट, पश्चिम के सोराट लेकिन साम्राज्य की दाग़ बेल पड़नी शुरू हो चुकी थी। यहाँ के बादशाह मुद्दतों से सम्राट कहलाते थे। जिस विश्वव्यापी राष्ट्रीयता और साम्राज्य की विचारधारा का वर्णन नीतिशास्त्रों में किया जा रहा था। उसको स्थापित करने के लिए एकछत्र बादशाह जो सारे देश का शासक हो, अभी पैदा नहीं हुआ था। चक्रवर्ती बादशाह जिसके राज्य के रथ का पहिया बिना किसी रोक के चलता रहे।

और शाक्य मुनि ने कहा था—"मैं सम्राट हूँ ऐ सेला ! मैंने अच्छाई के रथ का पहिया चलाया है।"

4

विष्णुगुप्त गौतम नीलाम्बर की कुटिया में एक शाम नित्य की तरह सभा जमी हुई थी। अखिलेश ने जो नया-नया तक्षशिला से लौटकर आया था, एक नए नाम का ज़िक्र किया—विष्णुगुप्त। नीति पर उसके विचार भी सुनने योग्य हैं। तक्षशिला में तो उसने अपनी प्रतिभा की धूम मचा रखी थी—मैंने सुना है वह आजकल कुसमपुर के दरबार में मौजूद है।

"तुम क्या करते हो?" गौतम ने अखिलेश से पूछा।

"मैं—मैंने एक नई मूर्ति शुरू की है। किसी रोज़ शहर आओ तो दिखलाऊं।"

"तुम शिल्पकारों की मंडली में शामिल हो गए? क्यों क्षत्रियों का नाम डुबोते हो?" गौतम ने उसे चिढ़ाने के लिए कहा।

"तक्षशिला से लौट कर बहुत दिन हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा कोई जंग ही शुरू नहीं हुई" अखिलेश ने हँस कर जवाब दिया।

"जंग—?" विमलेश्वर, जो एक कोने में बैठा एक अफीमची जैसे कवि से ज़बरदस्ती उनकी कविता सुन रहा था, कान खड़े कर बोला।

"तुम्हें कुसमपुर की नवीनतम खबरें मालूम हैं?"

सब अपनी-अपनी जगह छोड़ कर उसकी ओर आकर्षित हुए—"धन नंद ज्वालामुखी के मुंह पर बैठा है।" वह कहता रहा, "इतनी बड़ी सेना का ख़र्चा देश को उठाना पड़ रहा है"—फिर जोगेश्वर ने मुड़ कर कहा। वह श्रावस्ती में घटनाओं का लिपिकार था। "दूध, दही, नमक, खांड, घास, लकड़ी, फलफूल, तरकारी, बेगार, ढोर-डंगर—हर चीज़ में सरकार अपना हिस्सा बँटा रही है। तुम समझते हो प्रजा चुपचाप रहेगी?"

देश के राजनैतिक हालात पर वार्तालाप शुरू हो गया। गौतम एक ओर ख़ामोश बैठा सुनता रहा। अजीब-अजीब नाम लिए जा रहे थे। घटनाएँ दोहराई जा रही थीं। राय दी जा रही थीं। इन सबमें शामिल और सबसे अलग वह बैठा सुनता रहा। ख़ुद को भी विवाद में सम्मिलित पाया। कभी वह जोश में आकर ज़ोर से बोलता कभी हँसता, कभी किसी साथी से किसी नुक्ते पर झगड़ने लगता लेकिन एक दूसरा गौतम नीलाम्बर कुटिया से बाहर मौजूद था। जंगलों में घूम रहा था। सरयू की ही लहरों को पार करने में लीन था। तराई के नरकुलों में घास पर सिर रखे लेटा था जबकि यह गौतम नीलाम्बर अपने साथियों से मगध की राजनीति पर विचार-विमर्श करने में मग्न था।

मगध में उन दिनों नंदों का राज था। कुबेर से भी ज़्यादा अमीर थे। मगध देश के राज्यों में सबसे ज़्यादा शक्तिशाली था। एक ज़माना था जब कौशल भी उच्च शिखर पर था। उज्जैन के राजा महासेन ने यहाँ की राजकुमारी से शादी की थी। महाकौशल और प्रसेनजित जैसी हस्तियाँ यहाँ राज करती थीं। प्राचीन काल में जब अयोध्या इस सारे देश की राजधानी थी इसके सूर्यवंशी राजकुमार दूर-दूर दक्कन और लंका तक विजय प्राप्त करने के लिए जाते थे। अयोध्या के शाही वंश की एक शाखा ने श्रावस्ती में अपना राज्य स्थापित करने के बाद शाक्य और काशी का क्षेत्र भी अपने राज्य में शामिल कर लिया था। फिर एक वक्त ऐसा आया जब उत्तर कौशल भी ले लिया।

मगध वाले हमेशा से कोई न कोई गड़बड़ फैलाते आए थे। यहाँ का एक राजा जरासंध महायुद्ध में श्रीकृष्ण और भीम के साथ लड़ा था और भीम के हाथों मारा गया था। परियों का-सा देश गिरि व्रज उसकी राजधानी था और वह राजा इतना शक्तिशाली था कि महाभारत में लिखा है भोज हंस के अठारह शासक उसके भय से उत्तर पश्चिम भाग गए थे। गिरि व्रज के किले में सैकड़ों बादशाह उसने कैद कर रखे थे, जिस तरह पहाड़ों के ग़ार में शेर-हाथियों को कैद करते हैं और उन्हें श्रीकृष्ण देवकी के पुत्र ने आकर आज़ाद किया था। उसी जरासंध के बाप ने तख्त और ताज उसके हवाले करके अपनी दोनों रानियों के साथ वन की राह ली और वनों में जाकर दार्शनिक शाक्य का चेला बन गया। यही वजह है कि पुस्तकों में लिखा है ऋषियों के घर में राक्षस जन्म लेंगे।

मगर महायुद्ध से बहुत पहले उसी इलाके के उत्तरी राज्य मिथिला पुरी की राजदुलारी अयोध्या के राजकुमार से ब्याह कर आई थी। कौशल देश की बहू का नाम सीता था।

वेदों के काल से लेकर अब तक मगध पूरी तरह से ब्राह्मणों के प्रभाव में कभी न आया था। यहाँ की आबादी मिली-जुली रही। उनकी ऊँची जातों को भी बाहर वालों ने कभी शुद्ध न माना और मगध के ब्राह्मण और क्षत्रिय भी कौशल देश वालों की नज़र में तुच्छ थे। पिछली दो शताब्दियों से शेषनाग वंश की मगध पर हुक्मरानी रही थी। इस वंश के राजा बिम्बिसार के काल में राजकुमार महावीर और राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने दर्शनों का प्रचार किया।

जीवन की नदी पर पुल बनाने वाला चौबीसवाँ महावीर जो वैशाली के कंद ग्राम में पैदा हुआ, अहिंसा का प्रचार करता सारे देश में घूमा—और फिर दूर रंगा के जंगलों की तरफ़ निकल गया। कपिलवस्तु के लुम्बनी ग्राम में पैदा होने वाला सिद्धार्थ जो गिरि व्रज के हरे पर्वतों पर चला। निरंजन नदी में नहाया। पीपल के पेड़ की छाया में जिसे ज्ञान प्राप्त हुआ। काशी और श्रावस्ती के बागों में जहाँ हिरण कुलेलें भरते थे, उसने उपदेश दिए और जो कोसी नगर में मरा...

बिम्बिसार के ज़माने में ये दोनों आए थे। उसकी राजधानी का नाम गिरि व्रज था। उसके चारों ओर हरी-भरी पहाड़ियाँ थीं और सुंदर दरिया थे और उसकी धरती बड़ी उपजाऊ थी और सोना बहा कर लाने वाली सोन नदी उसमें बहती थी।

कौशल्या देवी, श्रावस्ती की राजकुमारी महाराज प्रसेनजित की बहन बिम्बिसार की रानी ने गिरि व्रज के उत्तर में राजगीर आबाद किया किंतु उसके बेटे अजातशत्रु ने अपने बाप को भूखा रख कर मार डाला और खुद सिंहासन पर जा बैठा। रानी ने अपने पति के दुख में रो-रोकर जान दे दी। तब श्रावस्ती के प्रसेनजित ने गरज कर कहा - "मेरी लाडली बहन मरने के लिए मगध नहीं भेजी गई थी।" उत्तर के गणतंत्र राज्य काशी कौशल साथी बने और कोसी नगर और वैशाली मगध के विरुद्ध लड़ने के लिए इकट्ठे हो गए।

तब मगध के मंत्रियों ने वैशाली वालों के हमले रोकने के लिए पाटलि ग्राम की छोटी-सी बस्ती के चारों ओर एक परकोटा बनवाया।

मगर अजातशत्रु जीता और अपने मामा प्रसेनजित की बेटी ब्याह कर ले गया। उसके पोते उदय ने कुसमपुर आबाद किया। पाटलि ग्राम, पुष्पपुरा पाटलिपुत्र फूलों का शहर परियों का शहर, देश की सबसे बड़ी राजधानी—जहाँ सोन नदी के किनारे-किनारे देश की नारियों

के सफ़ेद बजरे तैरा करते जहाँ पाटली की कलियाँ बालों में सँवारे सुनहरी आँखों वाली स्वर्णाक्षी लड़कियाँ झूम-झूम के चबूतरों पर नृत्य करतीं।

और गौतम सिद्धार्थ ने भविष्यवाणी की थी कि एक समय आने वाला है, जब यह शहर आग, बाढ़ और युद्ध की भेंट हो जाएगा। उदय इस शहर का संस्थापक, ईरान के बादशाह दारयूश प्रथम का समकालीन था।

गौतम नीलाम्बर को ईरान से बहुत दिलचस्पी थी। अखिलेश और जो अन्य विद्यार्थी तक्षशिला से वापस आते तो गौतम कुरेद-कुरेद कर उस अनोखे देश के बारे में पूछता। पारसीक शहंशाह जो बहुत शक्तिशाली, निरंकुश थे उनकी राजनीति के सिद्धांत क्या थे। उनके धर्म में अग्नि पूजा प्रधान थी। वे वेदों के सारे देवताओं को पूजते थे। वायु के अतिरिक्त जिसे वे बास्यू कहते थे। वे सूर्य देवता मित्रा को मानते थे। उनकी भाषा संस्कृत की बहन थी। सबसे बड़ी बात यह कि वे खुद भी आर्य थे।

"मगर वे दूसरे देशों पर आक्रमण क्यों करते हैं ?" गौतम ने उदासी से कहा, "इंसानों के एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर अधिकार नहीं जमाना चाहिए। किसी एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र को पराजित करना, किसी एक सभ्यता का दूसरी सभ्यता को नष्ट करना ग़लत है—नैतिक पाप है, राजनैतिक दृष्टिकोण की बात मत करो कि एक मछली दूसरी मछली को खाती है।"

ईरानियों ने जब गांधार देश पर हमला किया तो राजा ने बिम्बिसार के पास अपना राजदूत भेजा था। ईरानी साम्राज्य सप्त सिंधु के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों से अपना कर वसूल करता था। सबसे ज़्यादा चाँदी यहीं से ईरानी राजकोष में दाख़िल की जाती थी।

ईरानी राज्य बहुत ज़बरदस्त था। इतना ज़बरदस्त कि एक क्षण के लिए उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस साम्राज्य में मिस्र, बाबुल, शाम, एशिया-ए-कचिक और यूनान के शहर और टापू तथा सप्त सिंधु के उत्तरापथ प्रांत भी शामिल थे और सरयूश के बाद दारा ने कहा था—"मैं दारयूश हूँ—मैं दारयूश हूँ—सम्राट—शाहों का शाह—देशों का सम्राट जिनमें भाँति-भाँति के लोग बसते हैं। इस विशाल और लम्बी-चौड़ी धरती का हाकिम—गश्तासप का बेटा। ईरानी—ईरानी का बेटा—आर्या—आर्या घराने का सपूत"—और उसके जहाज़ों के बेड़े पवित्र सिंधु की लहरों पर तैरते थे।

और दारयूश प्रथम के बेटे अर्तखशीर ने उत्तरापथ के उन अधिकृत प्रांतों के बारे में बड़े गर्व से कहा था—"ये क्षेत्र जहाँ देव पूजे जाते थे अहूर्मुज़दा की इच्छा के अनुसार उन देवों के मंदिरों की नींवें हिला दीं।"

"सूस की क्या खबरें हैं ? तुम तो वहाँ से आए हो" घटनाएँ लिखने वाले ने अखिलेश को सम्बोधित किया।

"पिछले दिनों कुछ व्यापारी परसीपोलिस से जान बचा कर तक्षशिला आये थे। वे कहते थे कि ईरान में बड़ा भयानक युद्ध छिड़ा है।"

"कहीं और लड़ाई छिड़ गई है?" विमलेश्वर ने सिर उठा कर पूछा।

"यवनों ने जब से ईरान की दासता से छुटकारा पाया है—ईरानी साम्राज्य दुर्बल होता जा रहा है। तुम्हें एक बात बता दूँ," अखिलेश ने गौतम को सम्बोधित करते हुए कहा—"विष्णुगुप्त [illegible] तक्षशिला में कहता था कि हमारे देश को भी एक ऐसे चतरान्त साम्राज्य की आवश्यकता

है, जिसका दुनिया की चारों खूँट तक विस्तार हो—शक्तिशाली साम्राज्य।"

"ईरानियों का राज्य उनके शाही परिवार की फूट ने समाप्त...।" अखिलेश बड़े शांत स्वभाव से कहता रहा, "पिछले दिनों अर्द-ए-शीर तृतीय की हत्या हुई। फिर उसके बेटे को जहर दिया गया। उनके यहाँ इतनी खून की नदियाँ बही हैं कि उसके बाद तख्त पर बिठाने के लिए उन्हें कोई भाई-भतीजा जिंदा न मिला और वह एक दूर के संबंधी दारा को पकड़ लाए। पारसीपोलिस के व्यापारी कहते थे कि दारयूश तृतीय बहुत बहादुर बादशाह है परन्तु उस बेचारे को यवनों के सेनापति सिकंदर ने पराजित कर दिया, जो दूर पश्चिम से बड़ी भारी सेना लेकर आया है।"

गौतम सुनता रहा—भारी सेनाएँ, खून की नदियाँ, पराजय, विजय...अखिलेश कितने मज़े से यह भयानक घटनाएँ वर्णन कर रहा था।

"और अब सारा ईरान सिकंदर के हाथ में है" अखिलेश ने बात समाप्त की।

"यानी पारसीकों के चतुरान्त राज्य का स्वामी जिसका अभी तुमने नाम लिया सिकंदर है?" गौतम ने हल्की-सी मुसकान के साथ पूछा।

"हाँ, हाँ, वही है" अखिलेश ने सहसा ज़रा हिचकिचा कर उत्तर दिया।

"भाई अखिलेश, तुम क्षत्रिय हो। राज्य स्थापित करना और राज्य उखाड़ फेंकना तुम्हारा काम है। मैं तुमको क्या समझा सकता हूँ" गौतम ने कुछ देर बाद आहिस्ता से कहा।

"गौतम !" अखिलेश ने दीपक में तेल डाल कर उसे फिर बीच में रख दिया और गौतम को ध्यान से देखने लगा, "तुमको यदि किसी युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा, तो क्या तुम लड़ने से इन्कार करोगे ?"

गौतम अखिलेश के इस प्रश्न से लड़खड़ा गया। यह प्रश्न वह मुद्दतों से अपने आप से कर रहा था। क्या दुनिया में ऐसे लोगों की जगह है जो बिना लड़े जिंदा रहना चाहते हैं।

उसे जो युद्ध की कलाएँ सिखाई गई हं क्या वह उन्हें प्रयोग करेगा?

"तुम समझते हो प्रजा चुप रहेगी?" कुटी के दूसरे कोने में बैठा हुआ योगेश विमलेश्वर से कहा रहा था।

"कदापि नहीं"...दूसरे ने उत्तेजना से उत्तर दिया—"कोई दिन जाता है—कोई दिन—देख लेना।"

गौतम ने उन लोगों की ओर ध्यान दिया जो मगध के राजनैतिक हालात पर जोर-शोर से वाद-विवाद कर रहे थे।

अजातशत्रु के पोते के बाद महापद्मानंद ने पाटलिपुत्र के तख़्त पर कब्जा कर लिया उसकी माँ शूद्र थी और बाप नाई। यह महापद्म नंद था। अपार धन का स्वामी। और अग्रसेन था शक्तिशाली सेना का सेनाध्यक्ष। उसके बाद उसके आठ बेटे बारह वर्ष की अवधि में एक-एक करके सिंहासन पर बैठे इसीलिए यह वंश नौ नंद कहलाया। उसका आठवाँ बेटा धन नंद था जिसके कोष हीरे-जवाहरात और सोने-चाँदी से भरे पड़े थे और जिसके लश्कर में बीस हज़ार सवार, दो लाख पैदल सवार, दो हज़ार जंगी रथ और तीन हज़ार हाथी थे। जो कर बढ़ाए जा रहा था और जिसकी प्रजा व्याकुल थी।

सारे देश में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का राज था, सिंधु घाटी में ब्राह्मणों का राज था लेकिन

मगध में महापद्मपति नंद के काल से क्षत्रियों के राज की समाप्ति और शूद्रों के राज का आरंभ हुआ था।

श्रावस्ती वाले मगध के वासियों को पहले ही कब ख़ातिर में लाते थे। ब्राह्मणों के उच्च होने का आभास—आर्यों के उस काल की यादगार थी जब उन्हें डेनियोब के तटों पर विजय प्राप्त थी। उस काल में रोम समकालीन और फ्रांस का कैलटक समाज, काहनों, लड़ाका सिपाहियों और आम कारीगरों में बँटा हुआ था और इसका ब्राह्मणों के पास कोई इलाज न था।

और यद्यपि विद्यार्थी का कर्त्तव्य था कि वह वंश, जात-पाँत के घमंड से बचे लेकिन गौतम और उसके गणतंत्र के हामी, शूद्रों को बर्दाश्त न कर सकते थे।

पाटलिपुत्र का धन नंद ज्वालामुखी के मुँह पर बैठा था।

5

एक रोज़ विद्यार्थियों की एक टोली के साथ हरिशंकर भी आश्रम में आन मौजूद हुआ। गौतम जो उस समय अपनी कुटी में एक खिड़की के पास बैठा चित्र बना रहा था उसे दरवाजे में खड़ा देख भौंचक्का रह गया।

"मैं अंदर आ जाऊँ ?" चौखट पर पहुँच कर शंकर ने मुस्कराते हुए पूछा।

"आओ—आओ—कैसे आना हुआ?" गौतम ने गिलहरी की पूँछ से बनी तूलिका और रंगों की कुलियाँ और सफ़ेद चेन पट्टे एक तरफ़ को समेटते हुए हड़बड़ा कर कहा।

हरिशंकर आने के साथ चेन पट्टे को ग़ौर से देखने में लीन हो गया।

गौतम ने जल्दी से फ़र्श पर दोबारा झाड़ू देकर चटाई बिछाई। भोज पत्र, रेशम और तांबे की तख़्तियों पर लिखी हुई किताबों का जो अंबार चारों तरफ़ बिखरा पड़ा था समेट कर एक कोने में रखा। दूसरे कोने में गिनती के कुछ बर्तन उल्टे-सीधे पड़े थे। खिड़की के निकट उसका कम्बल बिछा था, जिस पर वह रात को सोता था। उसका कमण्डल छप्पर के एक बाँस में टँगा था। कुटिया में इस समय एक विशेष अस्तव्यस्तता थी। गौतम को बड़ी शर्म महसूस हुई। वह हरिशंकर के मनमोहक और शांतिमय व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित हो चुका था। जानें मुझे यह कैसा बेढंगा लड़का समझेगा। उसने परेशान होकर सोचा फिर तुरंत अतिथिसत्कार में जुट गया। उसने ठंडे पानी की गड़वी हरिशंकर के सामने रख दी। फिर बरामदे में जाकर चूल्हा जलाया और चावल उबलने के लिए चढ़ा दिए।

हरिशंकर मुस्कान भरे अंदाज में अपने आतिथ्य की यह सारी तैयारियाँ देखता रहा। मांस के बिना अतिथि की आवभगत संपूर्ण न हो सकती थी। इसी हड़बड़ाहट में वह चादर कंधे पर डाल कर उठा।

"कहाँ जाते हो?" शंकर ने चौंककर पूछा।

"बस्ती से मांस माँग लाऊँ, अभी आया।"

"मांस।" हरिशंकर के सुन्दर चेहरे पर पीड़ा की एक लहर दौड़ गई।

"अरे—" गौतम सहसा चुप हो गया। उसे और अधिक लज्जा अनुभव हुई और अपनी मूर्खता पर और अधिक क्रोध आया। वह जानता है कि हरिशंकर अहिंसा के इस नवीन सिद्धान्त

का पाबन्द है, फिर उसे मांस खिलाने का विचार कैसे आया ! क्योंकि वह स्वयं मांस खाने के लिए बहुत दिनों से बेचैन है, और यह अनोखा, बेतुका भिक्षु उसे बहुत प्रिय है; और अपने प्रिय व्यक्ति को अपनी रुचि की वस्तु ही प्रस्तुत करके प्रसन्नता होती है। इस तरह अपनी मूर्खता का विश्लेषण करके उसे ज़रा इत्मीनान हुआ। सहसा उसे ख़याल आया कि एक और मनपसंद वस्तु है जिसे वह सरयू के उस पार छोड़ आया है। संभवतः वे दोनों छोड़ आए हैं और इसे हरिशंकर जानता है और ईर्ष्या का भाव उसके हृदय में उमड़ा और उसके चेहरे पर से एक बादल-सा गुज़र गया।

फिर वह हरिशंकर से इधर-उधर की बातें करने लगा। वह इतने दिन कहाँ रहा ? कहाँ-कहाँ क्या-क्या सोचा क्योंकि सोचना ही उनका विशेष कार्य था।

उसके बाद उसने शंकर के सामने से जूठे बर्तन उठाए।

"तुम मेरी इतनी इज़्ज़त क्यों करते हो ?" शंकर ने पूछा।

"पता नहीं क्योंकि अगर देखा जाए तो मैं ख़ुद बहुत सम्मान योग्य हूँ" उसने हँस कर जवाब दिया।

"ब्राह्मण, एक बात बतलाओ ?"

"हूँ।"

"इच्छाएँ तुमको बहुत सताती हैं ?"

"अर्थात्– ?"

"उदाहरणस्वरूप यही—मांस की इच्छा?"

"पता नहीं।"

"तुमने कभी बलिदान के दर्शन पर ग़ौर किया है?"

"आजकल मैं इसी पर चिंतन कर रहा हूँ मगर किस प्रकार का बलिदान, प्राण का या आत्मा का?"

"जो भी वस्तु तुम्हारे प्रयोग में आएगी वह मानो अपने अस्तित्व का बलिदान देगी।"

"मैं समझा नहीं।"

"तुम खूब समझते हो।"

"मैं क्या कर सकता हूँ अगर—" गौतम ने घबरा कर बात टालनी चाही। "यदि मेरी पृष्ठभूमि में रक्त है, मेरे चारों ओर केवल रक्त है। मैं इतने सारे रक्तपात का प्रायश्चित्त किस तरह करूँगा।"

हरिशंकर चुप रहा। फिर वे दोनों खिड़की में जाकर खड़े हो गए। बाहर हरे-भरे मैदानों में किसानों के बैलों की घण्टियाँ बज रही थीं, और चरवाहों की बाँसुरियों की आवाज़ें आ रही थीं। शिकारियों के बालों में सजे हुए पंख हवा में लहरा रहे थे। नदी के उस पार अमीर परिवारों के क्षत्रिय-पुत्र अपने बाग़ में धनविद्या का अभ्यास कर रहे थे। जीवन का प्रवाह जारी था।

"मुझे जीवन के सम्बन्ध में कुछ बताओ !"

"तुम्हारा जीवन तुम्हारा अपना है, मेरे जीवन से पृथक्। मैं तुमको कुछ नहीं बतला सकता।"

गौतम ने धीरे से कोने में जाकर ताड़ का एक साफ पत्ता उठाया। "मुझसे शान्ति के

सम्बन्ध में बातें करो। मैं लिखूँगा।" उसने क़लम निकाली और ज़मीन पर आलती-पालती मार कर बैठ गया। "मैं अपनी पुस्तक का दूसरा प्रकरण लिखूँगा।"

"लेकिन तुम्हारी पुस्तक का अन्तिम प्रकरण कौन लिखेगा?"

"सारे में इतिहास का एक अथाह समुद्र है, और इस समुद्र में हम और तुम पत्तों की तरह डोल रहे हैं। मुझसे पहले अब तक जो कुछ ज्ञात हुआ, उसका उत्तरदायित्व मुझ पर है या नहीं? बताओ, मैं क्या लिखूँ?" गौतम ने पूछा।

"काल-निर्धारण की आवश्यकता नहीं। सब एक स्वप्न की तरह बीत रहा है, बीत जाएगा।" हरिशंकर ने उत्तर दिया।

"बीत जाएगा या बीतता रहेगा?" गौतम ने पूछा।

"यह तुम्हारी अपनी समस्या है।"

"मुझे अहिंसा के सम्बन्ध में बताओ ?"

"ब्राह्मण होकर अहिंसा के पुजारी होना चाहते हो?" हरिशंकर ने हँस कर पूछा।

गौतम भी हँसा—"हाँ बड़ी अनोखी बात है ना?" उसने नज़र उठा कर शंकर को देखा।

जानवरों को मारना हज़ारों वर्षों से ब्राह्मणों का खास शुग़ल रहा है। जब ये आर्य पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया के हरित मैदानों में घूमते थे तब ज़िंदा रहने के लिए और गर्म रहने के लिए श्वापदों का शिकार इनके लिए अनिवार्य था। इसी कारण गंगा और यमुना के बीच के क्षेत्र में आकर बसने के बाद भी उनके अध्यात्म और उनके दर्शन के विकास में जानवरों के खून बहाने का बड़ा हाथ रहा। उनकी कोई उपासना बलिदान के बिना संपूर्ण नहीं होती थी। स्वयं सृष्टि की रचना, परा भौतिक के दृष्टिकोण से

एक महान सांसारिक बलिदान था। साम वेद के सिद्धांतों के अनुसार बलिदान का स्थान एक जबरदस्त रहस्यवादिता रखता था और संसार की समग्रता और उसके अस्तित्व का लक्षण खयाल किया जाता था। चक्रवर्ती राजा के लिए घोड़े का बलिदान अनिवार्य था।

खेतों के उस पार अलाव जलाये जा रहे थे। बहुत दूर गाँव के सिरे पर चौपाल में सभा लगी थी। भाट महायुद्ध की कथा सुना रहा था। सन्ध्या के सन्नाटे में हवा के झोंके के साथ उसकी पाटदार आवाज़ की लहर तैरती हुई गौतम की कुटिया में आ टकराई। फिर ख़ामोशी छा गई। कभी-कभी जनसमूह में से प्रशंसासूचक ध्वनियाँ उठतीं और फिर उन सब पर भाट की आवाज़ छा जाती। मृदंग ज़ोर-ज़ोर से बजाया जा रहा था। उसी मद्धिम-सी गूँज के साथ गौतम का हृदय धड़क उठता। इसके बाद हवा चलती तो फिर ख़ामोशी छा जाती।

मगर गौतम का दिल धड़कता रहा।

"ये सन्नाटे मुझे भाँति-भाँति की कथाएँ सुनाते हैं; शब्दों की समाप्ति में भी मेरी मुक्ति नहीं" गौतम ने अपने आपसे कहा और हरिशंकर को देखता रहा।

बलिदान का सिद्धांत—युद्ध दर्शन—युद्ध और शांति की समस्या। यहाँ ब्राह्मण तलवार लिए घूमते थे और क्षत्रिय दार्शनिक बन जाते थे। वर्ण और जाति का अलगाव अभी प्रचंड नहीं हुआ था। नीतिशास्त्र, वेदों और इतिहास पुराणों की शिक्षा ब्राह्मणों और क्षत्रियों दोनों के लिए अनिवार्य थी।

वैदिक काल में पथिकृत अग्नि मार्ग तैयार करने वाली अग्नि की आराधना घने जंगलों

में पगडंडियाँ बनाती पूर्व तक पहुँच चुकी थी। पूर्व में गौतम नीलाम्बर की श्वेत रंग की सजातियों ने नागाओं को अपनी सभ्यता के दामन में समेटा। पश्चिम में सिंधु के किनारे बसे हुए नगरों पर इंद्र का कोप टूटा, हरियोपिया का नगर युद्धस्थल में बदल गया जहाँ इंद्र के कचव पहने हुए सिपाही लड़े और विजय प्राप्त की। सिंधु का शहर—जहाँ कोहनियों तक कपड़े पहने, माथे पर तिलक लगाए गले में काली पोंथ पहने कुंदन के रंग वाली सुहागनें शिव, दुर्गा, दीपलक्ष्मी, और पीपल की देवी की आरती उतारतीं। ये लोग जिन्होंने अपनी सभ्यता को राजस्थान, सौराष्ट्र और पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक फैलाया था; एक दिन उत्तर पश्चिम के ऊँचे पहाड़ों के उस पार—किसी अनजाने देश से, जैसे इंद्र महाराज का तेज़ गति वाला रथ आया और उन सब को कुचलता हुआ निकल गया। ब्रह्मावर्त पहुँच कर यह सुनहरे रथ रुके और उन लोगों ने इंद्रप्रस्थ आबाद किया। ईश्वर-स्तुतियाँ लिखीं और संगीत तैयार किया।

अब सभ्यता के केंद्र इंद्रप्रस्थ और यादव वंश की राजधानी से हट कर पूर्व तक आ चुके थे। यह अयोध्या, श्रावस्ती और उज्जैनी की उन्नति का काल था। मगध और उत्तर कौशल के अत्यंत सभ्य नागरिक अब उत्तर पश्चिम और सरस्वती के उस पार रहने वालों को अर्द्ध जंगली और अज्ञानी समझते थे।

गौतम नीलाम्बर का इतिहास महान नामों से भरा था। उनमें से बहुत से नाम अब किंवदंतियों और रहस्य के धुँधलके में जा छिपे थे, जिस तरह हेमावत की ऊँची चोटियों पर धुन्धं जमा हो जाती है।

गौतम को अतीत से भय लगता था। क्या आवश्यकता थी, क्या कारण था कि इन सबकी यह क्रमबद्धता स्थापित थी—निरंतर प्रवाहमान, और कब तक ऐसा रहेगा। दिग्विजयी श्री रामचन्द्र के युग से द्वापर प्रारम्भ हुआ था। जिसका अन्त महाभारत के युद्ध में हुआ और महाभारत के पश्चात् श्रीकृष्ण के इस जगत से प्रयाण कर जाने के साथ ही कलियुग शुरू हो गया—जो अब तक शेष था।

इस कलियुग में क्या होगा?

पुराणों की कथाएँ उसने पढ़ रखी थीं जिनमें ब्रह्माण्ड की भौतिक रचना का वर्णन था और देवताओं और दार्शनिकों के किस्से, शाही परिवार की वंशावली। प्राकृत के इतिहासों पर इन कथाओं की नींव थी जो शताब्दियों से दरबारों और चौपालों में कथावाचक सुनाते आ रहे थे। उन पुराणों में चालीस-चालीस हज़ार छंद होते थे जो विष्णु और शिव की स्तुति से शुरू किए जाते थे। पुराणों के अनुसार अर्जुन के पौत्र के समय से लेकर, जिसके दरबार में सबसे पहले युद्धगाथा महाभारत सुनाई गई थी, महापद्म नंद के काल तक एक हज़ार वर्ष का समय गुज़र गया था। अर्जुन से लेकर उदय तक चौबीस पुश्तें गुज़र चुकी थीं। उदय के शासन काल में शाक्य मुनि पैदा हुए।

गौतम नीलाम्बर ने नज़रें उठा कर शंकर को देखा जो बहुत दिलचस्पी से पीतल की एक तख़्ती पढ़ने में लीन था। खिड़की के बाहर गेंदे के फूल सूर्यास्त में नज़र आ रहे थे। गौतम की झुंझलाहट बढ़ती गई।

इसका निर्णय कौन करेगा कि कौन किससे श्रेष्ठ है। किसने किस पर विजय पाई? कौन कौरव है कौन पांडव ?

महाभारत का युद्ध आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र में लड़ा गया था और हस्तिनापुर के उन बहादुरों की कथाएँ जिन्होंने द्रौपदी से ब्याह रचाने के बाद इंद्रप्रस्थ नामक ऐसा सुंदर नगर बसाया था कि गाने वाले वीणा और मृदंग बजा-बजा कर गाँव-गाँव सुनाते फिरते थे—योद्धाओं का वर्णन ऋग्वेद और प्राचीनतम ब्राह्मण साहित्य में मौजूद था जिसमें हर चीज़ वास्तव से बड़ी दिखलाई देती थी। बादलों की गरज, हाथियों की चिंघाड़, महायुद्ध, साहसी, वीर प्रकाशमय ऋषि, आसमानी संगीत, सुंदर अप्सराएँ शकुंतला, दमयंती, काशी के राजा की बेटी अम्बा। यह सब मायायुक्त लोग डेड़ दो हज़ार वर्ष पूर्व ज़िंदा रहे होंगे। इन ही स्थानों पर चलते-फिरते रहे होंगे। यह सब सोच कर गौतम को बड़ा अजीब-सा लगता था कि एक वक्त था नर्मदा और ताप्ती के बीच राजा नल का शासन था, दमयंती बरार की राजकुमारी थी, सीता महारानी के बाबा का देश इसी गंगा के उत्तर में गंडक नदी के किनारे-किनारे आबाद था। पल की पल में वह ज़माना कहानी में तब्दील हो गया—और यह समय जिसमें वह ज़िंदा था—वह स्वयं गौतम नीलाम्बर, हरिशंकर भिक्षु जो खिड़की में बैठा, अध्ययन में लीन था और अयोध्या की चम्पक और वाहर आश्रम के कुंज में टहलते हुए विद्यार्थी। ये सब के सब एक आन में अतीत के धुँधले, विश्वास के अयोग्य अवास्तविक चरित्रों की हैसियत इख़्तियार कर लेंगे जिनकी ब्रह्माण्ड के समय के बहते हुए सागर में कोई हैसियत नहीं होगी। भीम, दुर्योधन, कृष्ण, अर्जुन—

यदि मुझे किसी युद्ध में शामिल होना पड़ गया तो क्या मैं लड़ूंगा? उसने चोरों की तरह हरिशंकर की ओर देखा। अखिलेश कह रहा था कि युद्ध कोई दिन जाता है कि छिड़ जाएगा—"तुम लड़ोगे?" उसने सहसा ऊँची आवाज़ में प्रश्न किया।

"हम केवल अपने विचारों के परिणाम हैं।" हरिशंकर ने उत्तर दिया।

"लेकिन क्या तुम लड़ोगे?" गौतम ने ज़िद्द से दोहराया। हर मनुष्य से कर्म, आवश्यकता या दुर्घटना या उसकी प्रकृति के कारण संघटित होते हैं। वह स्वाधीन नहीं है, उत्तरदायित्व का कोई अर्थ नहीं। हरिशंकर पट्टिकायें एक ओर रख कर खिड़की के निकट चला गया।

सहसा नदी पर बहुत-सी रोशनियाँ झिलमिला उठीं।

"किसी की बारात जा रही है" गौतम ने विचार प्रकट किया।

"हुँ !"

"या संभव है राजकीय वजरे ने इधर का रुख़ किया हो।"

"चलो बाहर चलें; अँधेरे में मेरा जी घबराता है" हरिशंकर ने सहसा भयभीत होकर कहा।

वे दोनों आश्रम के उपवन से निकल कर गाँव के मार्ग पर आ गए। वर्षा का ज़माना समाप्त हो चुका था। वातावरण में हल्की-सी ठंडक आ गई। चौपाल की ओर से भाट के गाने की आवाज़ अब ज़्यादा साफ सुनायी देने लगी थी।

गौतम ख़ामोशी से शंकर के साथ-साथ चलता रहा। फिर ठिठक कर उसने उदासी से कहा—"तुम पूजक हो, हरिशंकर, तुमको दूसरों की चिन्ता नहीं; अपनी बुद्धि के बल पर अपने आपको अहित के पद पर पहुँचा देना, कौन बड़ी बात है। तुमको इससे क्या मतलब कि दूसरों पर क्या बीत सकती है।"

"मुझको अच्छी तरह पता है कि दूसरों पर क्या बीत सकती है" हरिशंकर ने संक्षिप्त उत्तर दिया, "आओ, उधर चल कर देखें कि क्या हो रहा है।"

गौतम चुप हो गया। वे दोनों चौपाल की तरफ़ बढ़ने लगे।

"तुम भीष्म की कथा सुनोगे?" जनसमूह के निकट पहुँच कर गौतम ने अविश्वास की मुद्रा में अपने साथी से पूछा।

"क्या हरज है?" उसे जवाब मिला।

इन दोनों के ब्रह्मचारियों के वस्त्र देख कर श्रोताओं ने तुरन्त ससम्मान उनके लिए जगह ख़ाली कर दी। भाट लहक-लहक कर कथा सुनाता रहा। गौतम ने उसे पहचान लिया। उसने वहीं खड़े उसे प्रणाम किया और ख़ुद भी कथा सुनने में लीन हो गया।

ये लोग शताब्दियों से इसी तरह गाते-बजाते और उन कथाओं पर सिर धुनते चले आ रहे थे। ऋग्वेद के काल में इंद्र और अन्य देवताओं की पवित्रता के गीत अलापे जाते थे। सम्राटों के, अश्वमेध (घोड़े का बलिदान) आयोजित करने वाले शासक की प्रशंसा के काव्य पढ़े जाते—"उसने ऐसे-ऐसे दान दिए, ऐसी-ऐसी लड़ाइयाँ लड़ीं, ऐसी-ऐसी विजय प्राप्त कीं" और काहन होतरा से कहता—कथा का आरंभ करो बलिदान करने वाले को दूसरों से ऊपर उठाओ। शाम पड़े वाद्य बजाने वाले उस मंदिर राग की धुन में युद्ध गान छेड़ते।

प्राचीन काल में अर्जुन, वासुदेव और दूसरे वीरों के दरबारों में इस प्रकार वीणा, मृदंग और शंख की संगत में ये गीत अलापे जाते।

सुर निरंतर है।

पुराने ज़माने में दरबारी भाट क्षत्रिय होता था। बाद में राज कविता ने प्रबंध-काव्य के लिए रास्ता तैयार किया। अब छोटे-छोटे राज्य टूट कर समाप्त हो रहे थे और कवि जो पहले दरबारों से संबद्ध थे अब गली-गली और गाँव-गाँव घूम कर अपनी रोज़ी कमाते थे। औपचारिक और नियमित धर्म की जड़ें मजबूत होती जा रही थीं। शुद्ध प्रबंध-काव्य में धार्मिक तत्व शामिल हो रहा था। पुरोहितों ने महाभारत के युद्ध काव्य को नैतिकता के पाठ में बदल दिया था, क्षत्रिय भाट की जगह ब्राह्मण कथावाचक ने ले ली थी। इतिहास धीरे-धीरे पीछे हटता जा रहा था। इतिहास के चरित्र दार्शनिक और धार्मिक चोला पहन चुके थे।

अब कथावाचक काशी के राजा की तीन बेटियों की कहानी का वर्णन कर रहा था। जिन्हें भीष्म ठीक उनके स्वयंवर के वक्त ले उड़े थे। कुछ देर बाद अर्जुन का किस्सा शुरू हुआ। गौतम अब ज़रा आराम से एक खम्बे का सहारा लेकर बैठ गया। हरिशंकर वातावरण से निस्पृह दूसरी सीढ़ी पर बैठा रहा।

ये अर्जुन भी खूब व्यक्ति थे। गौतम ने सोचा। सबसे पहले उन्होंने द्रौपदी से ब्याह रचाया। जब उन्हें बारह वर्ष का वनवास मिला तो वे श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा को भगा ले गए। प्रवास के ज़माने में उन्होंने मनीपुर की राजकुमारी चित्रांगदा से शादी कर ली। इन सबके अलावा भाई अर्जुन ने उलूपी से परचाया वह अलग...गौतम को हँसी आ गई। वह ज़रा ध्यान से कहानी सुनने में मग्न हो गया।

उस समय दोनों प्रतिद्वंद्वी कुरुक्षेत्र के मैदान में आमने-सामने पहुँच चुके थे। युद्ध-काव्य में जातियों और कौमों के एक-दूसरे से युद्ध का वर्णन नहीं होता था। बहादुर योद्धाओं का

एक-दूसरे से मुकाबला वास्तविक विषय होता था। ख्याति प्राप्त करना सूरमाओं का जीवन उद्देश्य था और अपनी वीरता पर गर्व करना इसके लिए उचित। उसके प्रतिद्वंद्वी के लिए अनिवार्य था कि उसके बराबर का हो। बादशाहों के बेटे अपने से कम हैसियत आदमियों से युद्ध नहीं कर सकते थे। जिस समय गौतम सभा से उठ कर जाने लगा, उस समय अर्जुन ललकार कर कर्ण से उसकी वंशावली पूछ रहा था।

महाभारत के ये सारे चरित्र योद्धा होने के अतिरिक्त दार्शनिक भी थे। ये सुने-सुनाए काल्पनिक नहीं थे ऐतिहासिक व्यक्ति थे। यहाँ तक कि अर्द्ध दैवी चरित्र भी यथार्थ थे जिनकी देवी लक्ष्मी की तरह कमल के फूल से रचना हुई थी और जिनकी जटाओं से गंगा बहती थी—क्योंकि गौतम अपने देश के कवियों की कल्पनाशक्ति को बड़ा मानने वाला था और देवमाला हर तरह से दर्शनशास्त्र की एक ठोस शक्ल थी। और परंपरा का जाल बुन लेना सबसे आसान बात थी। गौतम स्वयं भी कवि था और कवि अपने चरित्रों को आदर्शवादी बना कर प्रस्तुत करते ही रहे हैं। उर्वशी अगर अप्सरा थी तो क्या वह लड़की जो अयोध्या के घाट पर बैठी थी, कोई भी कवि उसे अप्सरा नहीं समझेगा तो और क्या समझेगा। क्या वह उस दिन नदी के किनारे बैठी जलपरी नहीं मालूम हो रही थी?

सड़क पर आकर तारों भरे आसमान के नीचे गौतम ने एक लम्बा साँस लिया। भाट की आवाज़ उसका पीछा कर रही थी अर्जुन, भीम, कर्ण, भीष्म...

जगमगाते हुए बजरे नदी को पार कर चुके थे और दूर से नदी के तट पर बड़ी चहल-पहल नज़र आ रही थी। "यह किसी की बारात है?" गौतम ने एक राहगीर से सवाल किया।

"नहीं तो, राजन् अयोध्या से आये हैं" राहगीर ने जवाब दिया।

गौतम ने चौंक कर शंकर को आवाज़ दी। फिर पलट कर चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई लेकिन, शंकर सदा की तरह ग़ायब हो चुका था और चौपाल के बाहर जमा गाँव वालों की भीड़ में उसका पता लगाना कठिन था।

गौतम ने चादर कंधे पर डाली और नगर की तरफ़ चल खड़ा हुआ।

नगर के बीच में पहुँच कर उसे अपनी हवेली से आता प्रकाश दिखलायी पड़ा। वह तुरंत दूसरी गली में मुड़ गया। सुनहरे और हरे और गुलाबी मकानों पर हल्की-हल्की धुंध छा रही थी। एक स्त्री लम्बा-सा घूँघट निकाले छागल बजाती पास से निकल गई। ताड़ीख़ानों में हुल्लड़ मच रहा था। दुकानों पर क्रय-विक्रय हो रहा था। बाज़ार की सड़क पर दोनों तरफ़ मशालें जल रही थीं। उनकी झिलमिलाती रोशनी में शहर के धनिक-पुत्र और बाँके स्वर्ण-पट पहने मूँछों पर ताव देते अकड़ते फिर रहे थे। भाँति-भाँति की बोलियाँ सुनाई दे रही थीं। इस भीड़ में अपने-आपको पाकर एक क्षण के लिए गौतम को बड़ा अचंभा-सा हुआ। मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ? तेज़-तेज़ क़दम बढ़ाता वह नगर से बाहर निकल गया—जिधर आम्रकुंज में एक भवन पत्तों के बीच छिपा मौन खड़ा था। इस भवन के सामने झील थी और झील में एक अकेली नाव, जिसका माँझी पथिकों की प्रतीक्षा में बैठा-बैठा सो गया था।

इस भवन में सौ वर्ष पहले शाक्य मुनि आकर रहे थे। इस कुंज में उनके शिष्य घूमा करते थे।

गौतम का जी चाहा कि वह भवन के भीतर जाए और उसके ठंडे फ़र्श पर बैठ कर सोचता रहे।

मगर, निकट जाने के बजाय वह फिर आधे रास्ते से लौट आया और धीरे-धीरे आश्रम की तरफ़ रवाना हो गया।

स्वाधीनता नहीं है, स्वाधीनता नहीं है, खुले वातावरण में, स्वर-सागर की लहरों में, बुद्धि के विस्तार में, स्वाधीनता कहीं नहीं है। मैं बँधा हुआ हूँ; मैं कुछ नहीं कर सकता; कुछ नहीं कर सकूँगा। यहाँ तक कि एक दिन इतिहास, नामों का क्रम, देशकाल मुझे निगल जायेंगे।

आश्रम में पहुँच कर उसने देखा कि गुरु-कुटीर में दीया जल रहा है। वह दबे पाँव भीतर दाख़िल हुआ। वहाँ अखिलेश और दूसरे विद्यार्थी जमा हो चुके थे।

6

गुरु ने वीणा एक तरफ़ रख दी और सिर उठा कर गौतम को देखा—"यह है—यह है।" उन्होंने कहा, "यह नहीं है—यह नहीं है।"

"हाँ।" गौतम ने उत्तर दिया।

"बंधन की स्थिति में आनन्द-माया सबसे बड़ा सुख है, जो जीव प्राप्त करता है।" गुरु ने कहा।

"आनन्द-माया सबसे बड़ा सुख है।..." गौतम ने दोहराया।

"बंदी आत्मा के लिए पूर्वजों का मार्ग मौजूद है। वह जिसे बार-बार जन्म लेना है।"

"मेरे पूर्वज" भाट की आवाज़ गौतम के कानों में गूँजी।

"और आत्मा धुएँ और रात और अमावस में से गुज़रती है। काल अपने आप से विपरीत नहीं होता। काल से तुम नहीं बच सकते, अपनी असली दिशा में आकर कोई वस्तु स्वयं अपने विपरीत नहीं जाती।" गुरु ने और कहा—"काल के सम्मुख कोई नाते-सम्बन्ध नहीं हैं। न कोई तर्क, न कोई शक्ति। काल पर तुम्हारा वश नहीं चल सकता। जो आँखें रखता है, वह काल की गति को पहचान लेता है

"लेकिन, आँखें कहाँ हैं?" गौतम ने प्रश्न किया। "प्रकृति अंधी है, और पुरुष लँगड़ा राही है जो अंधी प्रकृति के कंधे पर सवार है।"

"प्रकृति अंधी है और निश्चेतन--" गुरु ने उत्तर दिया। "जब पुरुष उसे देखता है तो चेतना के बाह्य भौतिक संसार में तथा आंतरिक और मानसिक संसार में इकट्ठा विकास होता है; और उसके साथ ही तर्कबोध और विचार की सृष्टि। प्रकृति शाश्वत है, प्रत्येक क्षण क्रियाशील। जब तक वह पुरुष की दृष्टि में रहती है, विकास की ओर बढ़ती है। निश्चेतन भूत पदार्थ मन की चेतन ज्योति से प्रकाशित हो जाता है। चेतना में बड़ी शक्ति है।"

"चेतना में बड़ा भय है"—अखिलेश ने कहा। "वेदान्त में लिखा है कि ज्ञान अच्छे और बुरे से अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अच्छा और बुरा माया का अंग है, और ज्ञान माया से मुक्ति दिलाता है। मैं ज्ञान के संग आ चुका हूँ।"

गुरु ने कहा—"बुद्धि अहं के बिना काम नहीं कर सकती। अतः, संसार को आन्तरिक और बाह्य, इन दोनों भागों में बाँटना आवश्यक है। यह मैं हूँ—यह बाकी दूसरी वस्तुएँ। ब्रह्म एक है, जीव-आत्माएँ अनेक हैं। जो कुछ है वह इसी का फल है। हमारा होना, इन्द्रिय चेतना

के कारण नहीं है। प्रकृति नर्तकी है; पुरुष उसे देख रहा है। जब वह उसकी ओर से दृष्टि हटा लेता है तो वह भी उसे नहीं देखती, क्योंकि अन्य पुरुष उसे देख रहे हैं। अन्त में वह स्वयं इन पुरुषों को स्वतंत्र कर देती है। पुरुष अँधेरी रात में बाहर आकर आज़ाद हो जाता है।"

"लेकिन, दुःख कौन सहता है? पुरुष या प्रकृति?" गौतम ने प्रश्न किया।

"दुःख का सम्बन्ध प्रकृति से है। बंदी जीव की अनुभूति स्वयं दुःख है।"—गुरु ने उत्तर दिया।

"वेदान्त वाले कहते हैं कि पुरुष एक है—एकम् सत्।" अखिलेश ने कहा।

"हाँ, और कपिल का कहना है कि पुरुष एक होता तो—अगर एक मनुष्य प्रसन्न होता तो—सारे मनुष्य प्रसन्न होते। एक दुःखी होता तो सबके सब दुःखी हो जाते। लेकिन, मनुष्य अपने कर्म, अपने वंश और अपने जीवन-काल और वर्णाश्रम के अनुसार भिन्न है।"—गुरु ने कहा।

"भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि प्रकृति के गुण कर्मों पर हर तरह से प्रभाव डालते हैं। पर अहं यह समझता है कि मैं हूँ।" अखिलेश ने कहा।

"और शाक्य मुनि ने पूछा है कि कोई सीमित अहं है भी या नहीं? संभव है कि ये सब अनुभूति की विभिन्न स्थितियाँ हों !"—गौतम ने मन में सोचा।

"प्रकृति के गुण तीन हैं—दया, प्रचंडता और अंधकार।"—गुरु ने कहा। गौतम आहिस्ता से उठा और झोंपड़े से बाहर निकल आया। और दोबारा नदी की तरफ़ चला। कुछ देर पहले जिस तरह भाट की पाटदार आवाज़ ने उसका पीछा किया था अब गुरु और अखिलेश की मद्धिम आवाज़ उसका पीछा करती रही—सत्य-अविद्या-माया शक्ति-प्रकृति के गुण।

नदी के किनारे पहुँचकर उसने अपने आपको ठंडी घास पर गिरा दिया।

उपनिषद् में लिखा था कि जिसको अपनी आत्मा की इच्छा है उसके लिए पिता पिता नहीं, माँ माँ नहीं, यह लोक यह लोक नहीं, देवता देवता नहीं, चोर चोर नहीं, हत्यारा हत्यारा नहीं, और उसे अच्छाई-बुराइ की चिन्ता नहीं, क्योंकि वह मन के सारे क्लेशों और दुःखों पर विजय पा चुका है।

गौतम नीलाम्बर अब चौबीस साल का हो चुका था। इतनी मुद्दत में पहले वह कुतार्किक बना, फिर उसने शिव की पूजा की, हरि का भक्त बना; कपिल के सिद्धान्तों पर उसने विस्तृत टीकाएँ लिखीं। उसने अपने समनाम दार्शनिक गौतम का अध्ययन किया, जिसने ब्राह्मणों के धार्मिक आचार-नियम बनाये थे और काल की समस्या पर चिंतन और मनन किया था। हरिशंकर से मिलने के बाद उसके मन में गौतम सिद्धार्थ के प्रति आकर्षण हो चला था। लेकिन, अब तो वह इस देश की वही चिरन्तन अन्वेषी, चिन्तनशील आत्मा थी जो कहीं, कभी, किसी जगह संतुष्ट न होती थी और जो निरन्तर इस प्रश्न का उत्तर खोजने में लीन थी कि "हम किस प्रकार जानें?"

वह एक समय से इस खोज में था कि हम किस तरह जानें कि यह सब क्या है?

वह सहमा हुआ-सा घास पर लेटा रहा। पिछले पहर की मद्धम चाँदनी साँय-साँय कर रही थी। लेटे-लेटे आहिस्ता उसका ज़हन शून्य बिंदु तक पहुँच गया। फिर उसने अपने आप

को अनगिनत भागों में तकसीम कर दिया। बहुत से गौतम जो गा रहे थे, लिख रहे थे। कहकहे लगा कर हंस रहे थे, उदास थे। अचम्भे में थे। उसे और ज़्यादा डर लगा। गुरु की आँखों में उसे वह स्वयं नज़र आया जो चिराग की रोशनी में उसे घूर रही थीं। और बालों की सफ़ेद जटाएँ उसके कंधों पर बिखरी थीं। अखिलेश का मुस्कराता चेहरा, बाज़ार के लोगों की शक्लें, नुकीली मूँछों वाले नागरिक, शांत चेहरों वाले भिक्षु, चुंधी आँखों वाले पहाड़ी। इन सबमें उसे अपना आप नज़र आया और उसे और ज़्यादा डर लगा। वह आजकल इस कदर भयभीत था कि उसका दिल चाहता था कि किसी वीरान मंदिर के अँधेरे गर्भगृह में छुप जाए और अंदर से कुंडी चढ़ा ले। गर्भगृह के ख़याल पर उसे चण्डी की भयानक मूर्ति याद आ गई जिसने उसे सरयू के किनारे डराया था।

यह सारी दुनिया मिल कर चारों ओर से उस पर आक्रमण क्यों कर रही थी, सब उसके विरुद्ध एक सेना तैयार कर रहे थे। इस सेना में वह घाट वाली लड़की शामिल थी, हरिशंकर शामिल था, गुरु पुरुषोत्तम और समस्त प्राचीन और अर्वाचीन दार्शनिक शामिल थे, और ईश्वर की कल्पना शामिल थी। उसने आँखें बन्द कर लीं और प्रयत्न करके अपनी चेतना को इन सबसे मुक्त करना चाहा। उसने सोचा—काश, मुझे कम से कम योग की ही सिद्धि होती ! काश, एक कोमल-सा शून्य मेरी चेतना में कहीं से आकर भर जाए। आख़िर उसका क्या अपराध है? उसने तो सदा जानने का प्रयत्न किया है।

उसे काल से डरना नहीं चाहिए।

काल के मार्ग से हट कर वह एक ओर सरक कर बैठ गया। थके हुए, आराम की अनुभूति के साथ उसने आँखें बन्द कर लीं। उसने सोचा, जैसे वह देश-काल से मुक्त, वसन्त के बादलों की तरह ऊपर उठता जा रहा है। चारों ओर शून्य है और उसमें सदा की भाँति वह अकेला है। दुनिया का अनादि अनन्त मानव, थका हुआ, पराजित, प्रसन्न, आशावान, दुःखी मानव—जो ईश्वर में है और ईश्वर से अलग है। सृष्टि का सर्वप्रथम सचेत प्राणी, जिसे यह सारी चाँदनी, सारे फूल, सारी नदियाँ, सारा सौंदर्य दे दिया गया है। आरम्भ का ज्योतिर्मय युग और ब्रह्मलोक का भवन सुनसान पड़ा है। उसमें केवल ज्योति है। ज्योतिर्मय लोक से कोई एक ऐसा व्यक्ति आ गिरा है—जो पुरुष है, और अकेला है।

उस आदि मानव ने आँखें खोल कर चारों ओर नज़र डाली और उसने देखा कि दूर-दूर तक बस्तियाँ जगमगा उठी हैं और खेतों में सरसों लहरातीं है और उद्गात्री ब्राह्मण संत तांत्य वाद्य के सौ तार छेड़ कर सामवेद के गीत गा रहे हैं और इंदु रिमझिम बरस रही है। बागों का नौजवान देवता इंद्र लड़कियों की चुनरिया अपनी फुहार से भिगोए डालता है। सुनहरे बालों वाले नवयुवक आर्य सूरमा मैदान में रथ दौड़ा रहे हैं। उनके हाथों में तीर कमान है। ये युद्ध और काव्य के देवताओं के उपासक नवयुवकों का युग है, वीरता का युग। शक्तिशाली कमज़ोर को पराजित करता है। ये अभय और निडर मानव तत्व से, अन्याय से, मौत से लड़ते हैं, सोम पीकर नृत्य करते हैं, उनका दर्शन त्याग-दर्शन नहीं है। ये जीवन पर जी-जान से आशिक हैं। उन्होंने फूलों के नगर आबाद किए हैं। मिट्टी की सफीलों वाले पुर बनाए हैं। लकड़ी के मकानों में अग्नि शालाएँ जलाई हैं--पत्थर के क़िले तामीर किए जा रहे हैं—यमुना की घाटी में गाय चर रही हैं। रंगीन पगड़ियाँ बाँधे. बालों की चार-चार चोटियाँ गूँथे मृगनयनी लड़कियाँ पुष्पकर्मा के लिए फूल चुन रही हैं। हिमालय की घाटी में महान शिवालिक दरिया बह रहा

है। श्रावस्ती और हरे-भरे मैदानों में देविक और अलखनंदा और भागीरथी नदियाँ गुनगुनाती हैं। सूर्य और वरुणवती कौशल देश को सिंचित कर रही हैं, उत्तर में गेहूँ के खेतों को कुम्ब और वितस्ता और व्यास सिंचित करती हैं। दक्षिण में महा नदी बहती है।

यह सुरीली नदियों का उत्तम संगीत है।

नदी की लहरें चाँदनी में दौड़ रही हैं। गौतम ने आँखें बंद कर लीं और उसने कल्पना की।

वह उस समय दो हज़ार वर्ष पूर्व पहुँचा हुआ है। वह उस ठंडी सुखदायक प्यारी धरती पर बैठा हुआ है। यह उसकी जमीन है। उसे इस धरती से प्यार है। शताब्दियों से वह इस धरती को सींच रहा है। उसने इसमें सुंदर पेड़ लगाए हैं। मनमोहक शहर बसाए हैं। इस धरती पर उसने मोहब्बत की थी।

वह सुनहरे बालों वाला ऊँचा लम्बा आर्य अपने सुनहरे रथ पर धरती को रौंदता पश्चिम से पूर्व की ओर आया था। इंद्र की कमान की संगति में पारबती साथ-साथ नाचती आ रही है। ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती ने अपनी बतख पर से झुक कर उसके कान में कहा है विद्या तेरी है। गणेश ने सिर उठा कर कलम उसके हाथ में दे दी है।

कल्पना में कितनी शक्ति है जिसने तत्त्वों और पक्षियों एवं चरने वाले पशुओं को व्यक्तित्व प्रदान किया है। पृथ्वी और वरुण, अंधकार, आसमान और अग्नि और इंद्र—तत्त्वों के ये दृष्टांत दर्शनशास्त्र की प्राथमिक साकार शक्लें हैं। उनके द्वारा मानष के कानून को सजाया जा रहा है। ये संसार के प्राथमिक दार्शनिक हैं। फिलस्तीन की पहाड़ियाँ खामोश पड़ी हैं। इस्राइल के गायक अभी पैदा नहीं हुए मगर उनकी आवाज़ ब्रह्मावर्त पर झुके सितारों से जाकर टकरा रही है। यह प्रातःकाल के तारों के राग हैं और ईश्वर के पुत्रों की ललकार। उन्होंने प्रकृति के इस विशाल नाटक को इतने बड़े भागों में बाँट दिया है। उनको खोज लगी है—यह सब क्यों है ? उनका रचयिता कौन है? अभिनेता कौन? देखने वाले कौन? मित्र प्रकाशमान दिन को सामने लाता है। हम सबका मित्र वरुण अँधेरे आकाश का मालिक है। सूर्य प्रकाश का कोष है, उषा प्रातःकाल की कुमारी। वायु हवाएँ चलाता है, मरुत तूफ़ान के देवता हैं। पुष देवता सड़कों और गलियों का रक्षक है। रुद्र आसमानों का चिंघाड़ता हुआ बैल है। देवलोक का सुर्ख सुअर।

ओ वरुण !—एक साफ़ गहरी आवाज़ वातावरण में गूँजी। गौतम ने घास पर लेटे-लेटे पहचाना। यह उसकी अपनी आवाज़ थी जो दो हज़ार वर्ष पूर्व गूँजी थी। वह ऊनी शाल लपेटे कानों में किरणशोभा और गले में सुनहरे रुकैमा पहने ऊँची चट्टान पर खड़ा था। उसके हाथ में कमंडल था, उसने पुकार कर कहा—क्योंकि अँधेरे आसमान के नीचे वह उस समय अकेला खड़ा था।

ओ वरुण ! हमने अपने साथी अपने भाई अपने मित्र अपने पड़ोसी
या किसी अजनबी का दिल दुखाया है तो तू हमारी इस भूल को क्षमा कर,
अपनी कमज़ोरियों की वजह से तेरे नियमों की उल्लंघना की हो—
ओ वरुण इसकी सज़ा न दे।

और उस अँधेरे में कोई दूसरा कवि कहता है :

मैं जो मूर्ख हूँ और गँवार
मैंने चाहा कि देवताओं के छुपे हुए घर का पता लगाऊँ।
मैंने मुनियों से पूछा
वह जिसने छः आकाशों को सहारा दिया।

कहीं यह वही एकमात्र ईश्वर तो नहीं?
पहलोठी के बच्चे को किसने देखा है?
वह जिसके शरीर में हड्डियाँ नहीं, उसने हड्डियों वाली जनता को जन्म दिया।
वह कौन जंगल था—कौन पेड़ जिसकी लकड़ी से यह सृष्टि मढ़ी गई।
वह कौन था जो जानने वाले के पास यह पूछने के लिए गया?
यम—दुनिया का पहला इंसान—जिसने मर कर मृत्यु का पता चलाया—
उसे भी जवाब मालूम नहीं।

फिर उस कवि ने सोचकर दूसरे कवि को उत्तर दिया :

वह सर्वशक्तिमान संसार का पिता है।
वह शुभ है अर्थात् शिव है।
उसके प्रकोप से गाय और मानव मर जाते हैं।

फिर उसने पूछा—

मौत मुझे समाप्त कर देगी, मौत को कौन समाप्त करेगा। वह कौन-सी वस्तु है जो इंसान से उसकी मौत की घड़ी में अलग नहीं होती। मृत्यु के पश्चात् इंसान का क्या होता है? राजा परीक्षित का वंश कहाँ गया? वह कौन है जो हर वस्तु पर समर्थ है परंतु हर वस्तु से अलग है?

मृत्यु से डर कर कवि ने धरती से प्रार्थना की :

विशाल कृपालु धरती—माँ—इसे अपनी गोद में जगह दे।
नवयुवती जो ऊन की तरह कोमल है
तुझे तबाही से बचाए रखेगी।
धरती—अपने आप को धीरे-धीरे झकोरे दे।
इसे अपने बोझ से न दबा
इसे आराम करने दे
इसे इस तरह छुपा ले जिस तरह माँ अपने बच्चे को आँचल ओढ़ा लेती है।
श्मशानों में रोशनी हो रही है।
अग्नि—अग्नि इसे जलाना नहीं—इसकी खाल—इसके शरीर को भून के न रख देना
इसे खा लेने के बाद इसे इसके पूर्वजों के पास भेज देना
जब यह अपने पूर्वजों के पास पहुँच जाएगा तब देवताओं की इच्छा पूर्ण होगी।
और ऐसा हो कि उसकी आँखें सूरज के पास जाएँ, उसकी साँसें हवा में विलय हों
या धरती पर रहें जैसा उसका भाग्य हो और
उसके हाथ-पाँव पौधे की शक्ल में फिर से प्रकट हो।

(मानव बहुत कमज़ोर निकला जिसकी अपनी सारी धूमधाम, सारा वैभव सारे इरादों के बावजूद खत्म हो जाता है। शानदार शहर नष्ट हो जाते हैं। दरिया लुप्त हो जाते हैं। पहाड़ टूट कर गिर पड़ते है। बागों में बसंत मनाने वालों का निशान तक नहीं मिलता।)

हर वस्तु नश्वर है केवल स्तूप बाकी बचते हैं।
ख़ुशी बेकार है, दिल की लगन बेकार है। अब मैं किसे पुकारूँ—किसकी स्तुति करूँ?

"इंद्र की स्तुति करो" ऋग्वेद के कवियों ने कहा।

"इंद्र की स्तुति करो" प्रतिध्वनि लकड़ी के मकानों और पत्थर के किलों से गूँजी।

"इंद्र की स्तुति करो" उन्होंने दोहराया अगर वह सचमुच मौजूद है।

"इंद्र का कोई अस्तित्व नहीं" दूसरे कवि ने प्रश्न किया।

"उसे देखा किसने है? मैं किसको पूजूँ?" और इंद्र ने गरज कर घनघोर घटाओं में बरस कर जवाब दिया :

"मैं इधर हूँ ओ गायक ! मुझे देख मैं सारे जीव-जंतुओं से महान हूँ। सृष्टि के रचयिता ने मुझे महान् बना दिया है।"

फिर उन्होंने कहा—ओ पहाड़ों पर रहने वालो और रुद्र !

अपने तेज़—भयानक तीरों से किसी मानव या पशु को नुक़सान न पहुँचा।

क्योंकि मृत्यु भयानक है।

(लेकिन संगीत मृत्यु को ख़त्म करेगा। संगीत के विस्तार में, इसकी गहराई में मृत्यु कहीं तिनके की तरह डूब कर रह जाती है। मृत्यु वास्तव में बहुत तुच्छ है, संगीत ईश्वर है)

ऋग्वेद के कवि चट्टान पर बैठे रहे। नीचे समय का अँधेरा दरिया बह रहा था। उन्होंने सात स्वरों की सरगम की रचना कर ली थी। सरगम का एक-एक स्वर वीणा के तारों पर अलग-अलग गूँज रहा था।

अब सारे तार इकट्ठे होकर एक स्वर पैदा कर रहे थे।

विश्वदेव—सारे-सारे देवता एक हैं—अग्नि, उषा, वरुण, सोया गंधर्व—सारी शक्ति एक विश्व भवानी है।

तदाएकम्—ईश्वर एक है—मिराब की एक झंकार से वातावरण कंपायमान हो उठा।

मगर मैं किसकी अराधना करूँ?

किसके चरणों पर कुर्बानी चढ़ाऊँ?

और कवि ने स्वयं ही उत्तर दिया :

विश्वकर्मा—विश्वदेव महानाशी
तू सबका रचयिता है—ईश्वर
मान्य और सर्वश्रेष्ठ प्रजापति
कौन खम्बा था कौन सहारा ?
किस तरह ऐसा हुआ कि विश्वकर्मा ने अपनी शक्ति से धरती बनाई और आसमान ताना।
वही एक ऐसा ईश्वर है जिसकी चारों तरफ़ आँखें हैं
और मुँह—और भुजाएँ—और पाँव...
जो अपने दो बाज़ुओं और परों की धूँकनी से दुनिया को गढ़ता है।
सबसे पहले प्रकाश पैदा हुआ—वह सारे अस्तित्व का ईश्वर है।
उसने आसमान और धरती बनाए।
मैं किस ईश्वर के चरणों पर कुर्बानी चढ़ाऊँ ?
वह जो जीवन और शक्ति प्रदान करता है।
नित्यता और नश्वरता जिसकी परछाइयाँ हैं।

मैं किस ईश्वर के चरणों पर कुर्बानी चढ़ाऊँ ?
वह जो इस साँस लेते और सोते हुए ब्रह्माण्ड का स्वामी है।
वह जिसने आकाश में प्रकाश को मापा।
जिसने जगमगाते महान प्राणियों की रचना की।
वह जो एकोदेवा है—और प्राण और सखम्बा
संक्षिप्त यह कि वह ब्रह्मा है

एक ईश्वर—जो न मर्द है न औरत—उसका कोई लिंग नहीं कोई द्वितीय नहीं, न किसी ने उसे पैदा किया है और न यह किसी को पैदा करता है—एकोदेवा।

ब्रह्मा--जो बढ़ता है—जो बाहर लाता है और फैलाता है—जो दुनिया की रचना का भौतिक कारण है किन्तु स्वयं अभौतिक है और दुनिया जो उसने रची खुद अवास्तविक है।

केवल ॐ वास्तविक सत्य है—
आकाश—प्रकाश—और आवाज़
शब्द—जो इस ज़बान से बोला जाता है
बृहस्पति—जो फैलता है, बृहस्पति की हैसियत से ब्रह्मा वाणी देवता है।

शब्द जो शुरू में था और ईश्वर था—मुद्दतों बाद फिलस्तीन के दार्शनिक यह वाक्य दोहरा कर एक नए ख़याल का प्रचार करेंगे। यूनान में लोगोस की समस्या का प्रचलन हुआ। प्राचीन में सूफिया।

वेदों की पवित्रता अधिक शक्तिशाली होती जा रही है
क्योंकि वेद भाषा की शक्ल में ब्रह्मा है
अब शब्द और विचारों के आपसी रिश्ते पर ग़ौर किया जा रहा है।
ज़बान ने एक स्तुति में कहा—
मैं वायु, रुद्र और विश्वदेव के साथ घूमती हूँ
मैं मित्र, वरुण और अग्नि की सहायक हूँ।
मैं महारानी हूँ, मैं दौलत जमा करती हूँ। मैं जानने वाली हूं।
उन सबसे श्रेष्ठ जिनकी आराधना जाने बिना इंसान मुझ ही पर भरोसा करता है
मैं जिसे पसंद करूँ उसे ब्रह्म ऋषि और अग्नि बना देती हूँ।
मैं रुद्र की कमान मोड़ती हूँ ताकि वह जो ब्रह्मा से घृणा करता है
उसे समाप्त किया जा सके :
मैं युद्ध करवाती हूँ। मैं वायु की भाँति चारों ओर फैलती हूँ।
शब्द ब्रह्मा।
ब्रह्मा जो स्वयं बुद्धि है और कमल के रेशे से ज़्यादा कोमल,
बादल की छाया से ज़्यादा हलका जो इस ब्रह्माण्ड को चलाता है
जो अपने को तक़सीम करता है ताकि दूसरे पैदा हो सकें।
वह दूसरा मैं स्वयं हूँ—आत्मा—जो भाषा और बुद्धि और साँस का दूसरा नाम है,
जो स्वयं अपनी साक्षी आप है और जो ब्रह्माण्ड की आत्मा भी है।
अब ब्रह्मा और आत्मा की एकल कल्पना ब्रह्मवाद के दृष्टिकोण के लिए राहें तैयार कर

रही है।

प्रजापति की कल्पना ने अद्वैतवाद का बीज बोया था।

शुरू में पानी था जिस पर प्रजापति हवा की तरह मंडलाया और ब्रह्माण्ड की रचना की।

फिलस्तीन का दार्शनिक बुअद कहता था—शुरू में पानी था जिस पर ईश्वर की आत्मा धुएँ की तरह मंडलाती थी।

इन कवियों की कल्पना ने सारे ब्रह्माण्ड को अपने दामन में ले लिया था। उनके अचेतना के विस्तार में उत्तरी ध्रुव की लम्बी रातें, मद्धम सुर्ख सूरज, और विशाल हरे-भरे मैदान थे। खुले वातावरण, मौसम की तब्दीलियाँ, फूलों के रंग, बसंत ऋतु का पीलापन, सरसों और कपास और टेसू और हारशृंगार और सावन-भादों की झड़ियाँ और मोर की मिहं आऊँ, मिहं आऊँ की आवाज़ें और जब पेड़ जामुन, फालसे और करौंदों से लद जाते हैं और पतझड़। जब धान की फसल कटती है और सर्दियाँ। जब चौपालों में अलाव जलते हैं और खलियानों के ऊपर हेमंत का चाँद धुंध में तैरता है। यह ऋतुओं की रागमाला उन्होंने इस वीणा के तारों में कैद कर ली है। ब्रह्म और शक्ति की कल्पना संगीत में ढल चुकी है। ब्रह्म राग है सरस्वती रागिनी, पाँच स्वरों की महादेव ने रचना की है। खरज और पंचम स्वर पार्वती ने बनाए हैं। विशाल आकाश नाद और चतुरसेन के संगीत से गूँज उठे हैं। यह तत्त्वों का संगीत है जिसे साकार कर दिया गया है।

नटराज का डमरू आकाश का प्रतीक जिससे सारी आवाज़ें पैदा होती हैं। रुद्र आँधियों का देवता अपनी वैभवशाली वीणा छेड़ रहा है।

यमुना के किनारे महाविष्णु बाँसुरी पर जीवन गान बजा रहे हैं। गोपियाँ "सांसारिक शक्तियाँ" उसकी धुन पर नृत्य कर रही हैं।

सृष्टि अनगिनत वाद्यों की झंकार से गूँज रही है। रागों की रचना हो रही है जिनके प्रदीप से दुनिया झिलमिला उठी है। विशाल आकाश में भैरव, मालकोंस, हिंडोल, मेघ, दीपक, श्री के देव गरज रहे थे। आसावरी और रामकली की कोमल परियाँ हवा में पर फैलाती हैं। जंगल के पक्षी और जानवर भी कवि और संगीतकार के साथी और मित्र हैं। उनकी आवाज़, उनके रंग और उनकी चाल को नृत्य और गान की कल्पना में साकार कर लिया गया है। मोर खरज में झंकारता है। पपीहा रखब में अपनी रट लगाता है। बकरी गंधार में मिमियाती है। कलंग मद्धम में पुकारता है। कोयल की कूक में पंचम का सुर है। धैवत घोड़े में हिनहिनाता है। नखाद हाथी की चिंघाड़ है।

तानपूरे पर सुर छेड़ा गया। तानपूरे की आवाज़ जो गीत से पहले शुरू होती है। गीत के मध्य में मौजूद रहती है और गीत समाप्त होने के बाद तक गूँजती रहती है। सुर जिसका नितांत अस्तित्व है जो हमेशा से था—है—और रहेगा।

संगीतकार की कला में दर्शन, रंग और प्रकाश, विचारों और भावनाओं का धारा इकट्ठा बह रहा है।

इस काव्य और संगीत की पृष्ठभूमि में बहुत महान रंगों और आवाज़ों की दुनिया फैली हुई है। आकाश से दैवी जल बरसता है और दैवी स्वच्छ नदियों में बदल जाता है। आकाश के प्रकाश का सागर उषा के उजाले के साथ-साथ प्रातःकाल के रागों में घुल-मिल जाता है

और इस पावन कोहरे पर सुनहरी देवी सरस्वती तैरती है। सरस्वती—जो रचना करने वाली माँ की कल्पना है, जो रागिनी है—विद्या है—जो जीवन का उद्देश्य है—ज्ञान से स्वतंत्रता मिलती है। ज्ञान से अस्तित्व की बुनियाद है। ज्ञान में मोक्ष है (सोचते-सोचते गौतम समय के उस बिंदु पर वापस लौट आया जहाँ वह इस समय मौजूद था) कैद इसलिए होती है, उसने घास पर से उठ कर बैठते हुए कहा कि अहंवाद अपने आप अपने जहन से अनुरूपता पैदा कर लेता है। अतः दुख और पाप और मानसिक और नैतिक कमज़ोरियों का शिकार हो जाता है और प्रकृति का अनुभव किसी को तो करना है।

यह अनुभव शुद्ध आत्मा करती है।

यह अनुभव मैं भी कर रहा हूँ। उसने सोचा

यह अनुभव करते-करते मैं कहाँ निकल जाऊँगा ?

लेकिन कोई परवाह नहीं !

प्रश्न वास्तविकतावाद या आदर्शवाद का नहीं। सच्चा अमल वास्तविक वस्तु है।

वह घास की पत्तियों को तोड़-तोड़ कर इकट्ठा करता रहा और फिर ज़मीन पर पत्थर के सहारे अधलेटा हो गया। रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। वहाँ पेड़ों के झुरमट में किसी योगी की झोंपड़ी के सामने आग जल रही थी। और इस अर्द्ध अँधेरे में उसकी रोशनी आँखों को बहुत अच्छी मालूम हुई।

वह उन शोलों को टकटकी बाँधे देखता रहा। वह सनसनाता हुआ उसके चारों ओर डोल रहा था।

बुद्धि की जोत के आगे अब बलिदानों की आग मद्धम पड़ चुकी है।

मानव बुद्धि देवमाला की रचना मुद्दतें हुईं कि समाप्त कर चुका था। विचार के मंदिर आबाद होकर नए से पुराने हो गए। बुद्धि अब दुश्कर समस्याओं का हल तलाश करने में लीन थी। धर्म अब केवल कमज़ोर दर्जे का ज्ञान समझा जाता था। वास्तविक चीज़ दर्शन था पराभौतिक। सारे देश में विचार का राज था और विचारों की आज़ादी और धार्मिक उदारता। एक ही कुनबे के सदस्य ब्रह्मा के विभिन्न रूपों की पूजा करते और विपरीत दृष्टिकोणों में विश्वास करते, भौतिकवादी सनवियतवादी नास्तिक निर्भय होकर अपने विचार प्रकट करते क्योंकि सत्य की खोज उन सबका साँझा उद्देश्य था। हर दार्शनिक अपनी-अपनी जगह से जो उसने अपने लिए चुन रखी थी, रत्ती भर सरकने को तैयार न था मगर इन सबने औचित्य को प्राथमिकता दी थी। संवेदन बोध, निष्कर्षण एवं शब्द का साक्ष्य और प्रमाण पत्र पर इस खोज का आधार था।

नास्तिक दार्शनिक कपिल कई वर्ष पूर्व गुज़र चुका था। चूँकि चेतन निष्कर्षण बोध और शब्द के साक्ष्य में से कोई भी चीज़ ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण उपलब्ध न करा सकती थी। अतः कपिल ने बड़ी दिलेरी से ईश्वर की बजाय अनईश्वर पर ज़्यादा ध्यान दिया था। तर्क की हैसियत से वह ईश्वर से इन्कार करने वाले की बजाय केवल इस पर संतुष्ट था कि साक्ष्य के साधारण साधनों से ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं कर सकता। यद्यपि इस कदर उदार था कि जनता के देवताओं शिव और विष्णु तक को गवारा कर लेता था कि संभव है कि वे मौजूद ही हों मगर उसके निकट रचे गए धार्मिक देवता थे, उसके विचार

में ईश्वर तक का अस्तित्व न था साथ ही वह कहता था कि कोई वस्तु काल और स्थान में कै़द ऐसी नहीं जो अंततः वास्तविकता और नित्यता पर आधारित नहीं।

कपिल नास्तिक या नष्टतावादी न था। सीधा-सादा ईश्वर से इन्कार करने वाला था। ब्रह्मा की बजाय उसने प्रकृति को सृष्टि का कारण प्रमाणित किया था। प्रकृति या नेचर जो कारणकार्य दृष्टिकोण का आधार थे। प्रकृति प्रथम है। बुद्धि पंचेद्रियाँ चारों तत्व, उसकी बनावट और सारा विकास उसमें सम्मिलित है और पुरुष जो शुद्ध आत्मा है, जो न किसी का कारण है और न कार्य और प्रकृति से अलग खड़ा है। पुरुष नित्य व्यक्तिगत प्रमाण है, तथा उसके और प्रकृति के मिलाप से दुनिया प्रकट होती है। इन दोनों के अतिरिक्त तीसरी शक्ति कोई नहीं और इन दोनों के अलग होने से संपूर्ण आनंद और अनुकूलता पैदा होती है। कपिल का कहना है कि विकास केवल संयोग से नहीं हुआ। मौजूदा सृष्टि की पृष्ठभूमि में कोई वास्तविकता रही होगी। कार्य कारण में पहले से मौजूद होता है।

वेदांत वाले आस्तिक ईश्वर को मानने वाले जो ब्रह्मा को सर्वशक्तिमान मानते थे कार्य कारण भेद की समस्या पर कपिल से सहमत नहीं थे। उनके निकट कार्य और कारण एक ही थे। क्योंकि हर वस्तु ब्रह्मा थी तत्‌कोमऽसि, तू वह है, जीव आत्मा—मानव वास्तव में वह है, तू ही ईश्वर है—

यह दूई (दो होना) वास्तव माया का छल है—माया प्रकृति का—उन्होंने जवाब दिया—भौतिकवादी कपिल की प्रकृति को वेदांत वालों ने ब्रह्मा की छाया करार दिया। उन्होंने बुद्धि पर अंतर्ज्ञान को प्राथमिकता दी। बुद्धि और निष्कर्षण केवल इस संसार के लिए ही प्रमाण पत्र समझे जा सकते थे। यदि ब्रह्मा एक है तो दुनिया में बहुलता क्यों है। अनुभव अलग-अलग क्यों होते हैं। लेकिन ब्रह्मा की ज़ात का एक पहलू—नाम रूप भी उसकी माया शक्ति और प्रकृति दुनिया की रचना करती है। लेकिन वास्तविक ईश्वर की ज़ात, नाम, रूप और माया से वहुत ऊँची और निस्पृह है। गुणी जन के लिए सारी दुनिया मृगतृष्णा के समान है। वास्तविक ब्रह्मा शर्तबद्धता से परे है और कदापि है। हमारी अविद्या के कारण वह हमारी बुद्धि में आकर शर्तबद्ध, अमली रचयिता और व्यक्तिगत बन जाता है। दुनिया की रचना नित्यता के कारण हमारी बुद्धि से बाहर है या शक्ति के द्वारा हुई और उसके कारण ब्रह्मा का पद कम हो गया, बढ़ा नहीं। ब्रह्मा गुणों से प्रभावित नहीं जिस तरह हमारी शर्तबद्धता हमारी वास्तविक आत्मा को प्रभावित नहीं करती, जिस प्रकार गुणग्रस्त ब्रह्मा हमें रचता है इस तरह हमारी शर्तबद्ध आत्मा उस ब्रह्मा की रचना करती है। माया का निर्गुण ब्रह्मा सगुण बन जाता है।

ना-ना ब्रह्मा के लिए हम केवल यही कह सकते हैं कि वह यह भी नहीं है—वह यह भी नहीं है, वेदांत में लिखा है। वह सत्य भी है और असत्य भी। अस्तित्व भी है और अस्तित्वहीन भी। महानतम अस्तित्व और यूँ कि जिन चीज़ों को दुनिया अस्तित्व मानती है वह उससे भिन्न है, ब्रह्मा व्यक्तिगत है। उसके बाहरी गुण नहीं। अगर वह जानता है तो केवल खुद को जान सकता है। जिस प्रकार सूरज अपने आप को रोशन करता है। हमारा ब्रह्मा के बारे में ज्ञान केवल ब्रह्मा का आभास हो सकता है जो खुद हमारा अपना आभास है। मुक्ति से ईश्वर, प्रकट ईश्वर आप से आप लुप्त हो सकता है।

ये दार्शनिक धर्म में खुद नई कुरीतियाँ चलाने वाले थे क्योंकि दार्शनिक थे। वेदांत वालों

ने इसी आज़ादी का प्रयोग करते हुए खुद वेदों को चुना था और देव वाणी समझ कर उनके आगे झुके। यद्यपि प्रमाण को बड़ी आसानी से स्वीकार या अस्वीकार किया जा सकता था। स्वयं कपिल जैसा तर्कशास्त्री भी वेदों को कहीं-कहीं से सिर्फ इस शर्त से मान लेता था कि वेद भी ग़लत को सही साबित नहीं कर सकते।

नित्यतावादी कहते थे कि दुनिया और आत्मा दोनों नित्य हैं केवल जीवन की निरंतरता स्थापित रहे और अनंत तक रहे। कुछ के निकट आत्मा और दुनिया एक सीमा तक नित्य थीं और एक सीमा तक नहीं। इनके निकट दुनिया सीमित या असीमित। इसके साथ ही दुनिया सीमित थी। इसके साथ ही दुनिया सीमित थी न असीमित। नित्य वादियों का ख़याल था कि हर वस्तु है भी और नहीं भी। वे स्वयं किसी बारे में कदापि कोई विचार नहीं देते थे। दूसरी दुनिया है या नहीं। दुर्घटना है या नहीं, जज़ा और सज़ा है या नहीं। मृत्यु के बाद जीवन है या नहीं।

कुछ लोग समझते थे कि दुनिया और आत्मा घटना के तौर पर प्रकट हुए क्योंकि उनका कहना था कि उन्हें खुद याद था कि कुछ समय पूर्व वह नहीं थे और अब हैं।

शताब्दियाँ गुज़र गईं। बुद्धि उपनिषदों की प्रचंड पराभौतिकता से उकता गई। आहिस्ता-आहिस्ता ईश्वर जो दर्शन की एक समस्या थी व्यक्तिगत बनी।

यहाँ तक कि आखिर दिल को बुद्धि पर जीत प्राप्त हुई। रुद्र एक है। एक उपनिषद में लिखा गया—जो इंसानों के दिल में रहता है और जिसे पहचान कर सारी अज्ञानता की समाप्ति हो जाती है।

पराभौतिक के कारण ने अवतार का रूप धारा, आपेक्षित का नितांत से संबंध बुद्धि की बजाय अंतर्ज्ञान ठहरा। लिंगहीन ब्रह्म मर्द बना।

विष्णु जो पत्ते के गिरने में छुपा है। नारायण जो स्वयं मुझ में है।

वृंदावन से बाँसुरी की तान बुलंद हुई और गंगा और यमुना के किनारों पर छा गई अनंग रंग सागरम्।

मधुसूदन—जो अथाह समुंदर है। गिरधर गोपाला कृष्ण—कृष्ण—कृष्ण—

गौतम ने सिर उठा कर इस सन्नाटे को ध्यान से सुना।

और, कृष्ण ने कहा—"हे अर्जुन ! मैं अनन्त काल हूँ। मैं विनाशकर्ता यम हूँ, मैं रहस्यों की निस्तब्धता हूँ। मैं सृष्टि का आरंभ हूँ और मैं ही उसका अन्त हूँ ! ओ कुन्ती-पुत्र ! मैं जल का स्वाद हूँ। सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश हूँ। मैं सारे वेदों में लिखा हुआ ओम् हूँ, मैं आकाश का शब्द हूँ। मैं मानवता की सामूहिक चेतना हूँ। ओ कुन्ती-पुत्र ! मैं स्त्री की सहज प्रतिभा, पतिपरायणता और करुणा हूँ। मैं गायत्री मंत्र हूँ। मैं उत्तमोत्तम हूँ। ओ अर्जुन ! मेरे दिव्य कार्यकलाप असीम हैं। मैं अन्तर्यामी हूँ, किन्तु मुझे कोई नहीं जानता !"

और, कृष्ण ने कहा—"मुझे चाहो ! मुझसे प्रेम करो। मैं तुम्हारा सखा हूँ—तुम्हारा साथी, तुम्हारा प्रेय। मैं प्रेम का समुद्र हूँ—अनंग-रंग-सागरम् !"

सृष्टि उसकी बाँसुरी की आवाज़ से मुग्ध हो गई। फिर वैशाली के महावीर ने कहा—"ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं ! संसार अमर है और अपने अस्तित्व में स्थित। पदार्थ और शून्य, धर्म और अधर्म आत्माओं के ही रूप हैं ! केवल यही एक सत्य है।"

और शाक्य मुनि ने कहा—"ईश्वर हो या न हो, सत्य केवल यह है कि दुःख मौजूद

है। हम समझते हैं कि हम हैं यद्यपि हम केवल सापेक्षता में डूबे हुए हैं। प्रत्येक वस्तु दुःख है—*सर्वम् दुःखं दुःखम्। मानव ऐसे ही बुझ जाता है। जैसे दीपक को फूँक मार कर बुझा दिया* जाए। केवल घटनाओं और अनुभूतियों का क्रम निरन्तर स्थित है और रहेगा !"

पानी की रुपहली लहरें किनारे तक आ-आकर लौटती रहीं। गौतम ने आग पर से दृष्टि हटा ली और नदी को देखा। जो शांति से बह रही थी।

...मैं दुःख सहना चाहता हूँ, मैं दुर्बल बनना चाहता हूँ, मैं अपनी मूर्खताओं का दर्शन खुद करूँगा, मैं दुःख उठाऊँगा।

हृदय और मस्तिष्क के दुःख और क्लेश और परीक्षाएँ ! मैं मुक्ति नहीं चाहता ! करुणा बहुत बड़ी चीज़ है, शाक्य मुनि। किन्तु, सम्भव है, मुझे स्वयं तुम पर करुणा होती हो ! प्रश्न यह भी है, पावन राजकुमार, कि कौन किस पर करुणा करेगा?

वह उठ खड़ा हुआ। क्षितिज पर प्रातःकाल का प्रकाश बिखरने लगा था, लेकिन धुंध के कारण नदी का दूसरा तट अभी स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था। उसने एक लम्बी अँगड़ाई ली और पानी में कूद गया।

रात वह कुछ सोया था, कुछ जगा था, रात उसने बड़ी बेचैनी से गुज़ारी थी। पानी से बाहर निकल कर आश्रम की ओर जाने के बजाय उसने घने जंगल का रुख़ किया और तट की रेत पर एक ओर चल दिया।

7

तराई का मार्ग जो श्रावस्ती से उत्तर की ओर जाता था, उस पर दोनों ओर बीहड़ थे और ऊँचे सरकण्डे और ढाक के जंगल और रंग-बिरंगे फूलों वाली झाड़ियों में लम्बी दुमों और झिलमिलाते परों वाले पक्षी सीटियाँ बजाते थे; और इधर-उधर चक्कर काटकर फिर घने पत्तों में छिप जाते थे। नदी इन फूलों के जंगल के बीच से लहराती हुई गुज़रती थी। उसके पूर्वी तट पर घाट था, जहाँ राजकीय नाव रात को आकर लगी थी।

अयोध्या और उत्तर कौशल का शासक राजन—और उनके दरबारी प्रातःकाल शिकार के लिए उत्तर की ओर कूच करने वाले थे। मगर मार्ग खोजने वालों ने सूचना दी थी कि हाथियों के क्षेत्र में आशा के विपरीत वर्षा आरम्भ हो गई है। बजरे से उतर कर शाही काफ़िला हाथियों, पालकियों, रथों और बहलियों पर सवार हो रहा था। जब यह सूचना मिली काफ़िले ने अपना रुख़ फिर घाट की ओर मोड़ लिया और गुरु पुरुषोत्तम के आश्रम से कुछ मील की दूरी पर महुए के पेड़ों के झुंड में तम्बू लग गए।

आन की आन में जंगल में मंगल हो गया। बाग़ में, जहाँ केवल हिरनों की डारों और मुर्गाबियों और मोरों की अमलदारी थी, और जहाँ कभी-कभार इक्का-दुक्का विद्यार्थी ध्यान में डूबा हुआ किसी पगडण्डी पर से जाता हुआ नज़र आ जाता था, वहाँ पल की पल में मेला-सा लग गया। श्रावस्ती के सुनार और बज़ाज़ अपनी-अपनी दुकानें राजकुमारियों की सेवा में प्रस्तुत करने के लिए उठा लाए, फूल वालों ने ताज़ी कलियों के गजरों के अम्बार लगा दिए। भाटों ने अपना डेरा जमाया और लहक-लहक कर प्रशस्तियाँ गाने लगे। बंजारों की टोलियाँ, तोते,

मेनाएँ, पालतू बन्दर और मोती-मनके खच्चरों और बैलों पर लाद कर इस उम्मीद में आकर दूर खड़ी हो गई, कि शायद कोई तोता ख़रीद ले। कई चित्रकार और मूर्तिकार अपना-अपना सामान लेकर बेचने की नीयत से आ मौजूद हुए। नट और बाज़ीगर अपने करतब दिखलाने लगे। रात को मशालों और अलावा के उजाले से जंगल की चिड़ियाँ जग उठतीं और ख़ूब शोर मचातीं।

शाही काफ़िले की लड़कियाँ दिन भर बागों में घूमतीं और अँधेरा पड़े नदी में जाकर तैरती। कभी दिन में तीर-कमान लेकर हरिणी का शिकार करतीं...वर्ना फिर तम्बुओं के बाहर या पेड़ों के नीचे बैठ कर गप्पें हाँकतीं।

दो-तीन दिन के अन्दर ही चम्पक का इस निष्प्रयोजन जीवन से जी उकता गया। वह वजारो से उनके सारे मूँगे-मोती, बजाज़ो से उनके चीनी, रेशम ओर पश्मीने, सुनारो से उनके गहने, चित्रकारो से उनके चित्र ख़रीद चुकी थी। दुकानदारों से उसने वेकार की चीज़ें भी ख़रीद ली थीं कि कही उनका दिल न टूट जाए। वह लोगों से उनकी मूर्खता की बातें सुनती रहती थी और कभी उनसे यह न कह सकती थी कि आप लाग सबके सब, देखा जाए नो गधे हैं। लोग उसे अपनी-अपनी कथाएँ सुनाते थे। हर व्यक्ति उससे सहानुभूति का इच्छुक था, क्योंकि सारे मे मशहूर था कि वह बड़ी गुनी है, बड़ी सहृदय है, बड़ी उदार है। दुनिया भर की बाते उसके लिए मशहूर थी, और उसे हँसी आती थी।

तीन दिन जगल मे रह कर उसका जी निरतर के सैर-सपाटे और शिकार से घबरा गया। उसने राजकुमारी निर्मला को साथ लिया और चुपके से बस्ती की ओर चल दी। सामने आम का घना झुरमुट था। यहाँ बड़ी शान्ति थी। आकाश में झुटपुटे के सुर्ख़ रंग विखर गए थे और वाग़ म रहट चल रहा था।

"आओ, उधर चलें जिधर से गाने की आवाज आ रही है।" निर्मला ने कान लगाकर कुछ सुनते हुए प्रस्ताव रखा।

"चलो। यों, सब रास्ते एक जैसे है !" चम्पक ने कहा।

वे पत्तों को रादती आम के झुरमुट की ओर बढ़ती रही। पेड़ों की डालियों में से दूर किसी आश्रम के झोंपड़े दिखाई दिए।

"यह कौन जगह है?" चम्पक ने कदम्ब की एक डाल पर हाथ रखकर ठिठकते हुए कहा।

"ये सामने कौन लड़के है?" निर्मला ने हठात् प्रश्न किया। हर जगह किसी-न-किसी ब्रह्मचारी वस्त्रधारी को देख कर उसे अपना भाई याद आ जाता था।

8

गौतम नीलाम्बर तीन दिन और तीन रातें लगातार भूखा-प्यासा नदी के किनारे-किनारे इधर-उधर घूमता रहा। रात के समय वह घंटों ठंडे पानी में एक टाँग से खड़ा रहा। फिर, रेत पर बबूल के काँटे बिछाकर उन पर सोया।

एक दिन उसने सारा समय चींटियों को आटा खिलाने में लगाया। आटा वह मल्लाहों से माँग कर लाया था। पहरों उसने आँख बन्द करके मन्त्र पढ़े।

लेकिन, चौथे रोज़ वह इतना झुँझला गया कि उसने फिर वापसी की ठान ली।

शाम पड़े वह ढीले-ढाले क़दम रखता आश्रम को जाने वाली सड़क पर चल रहा था कि उसे किसी ने पीछे से आवाज़ दी।

उसने मुड़कर देखा। अखिलेश हँसता हुआ उसकी ओर आ रहा था।

"भाई गौतम ! तुम तीन दिन से कहाँ ग़ायब थे। सारे में तुम्हारी ढुँढैया मची है।"

"मैं तो यहीं था—तुम यहाँ इस वक़्त क्या कर रहे हो?" गौतम ने शान्त स्वर में पूछा।

"वही जो तुम कर रहे हो।" अखिलेश ने विनोदपूर्वक उत्तर दिया।

"मैं तो भगवान की लीला देख रहा हूँ।"

"मेरा भी इन दिनों यही काम है।"

"आश्रम में सब कुशल है?" गौतम ने यों ही बात जारी रखने के लिए पूछा। इस समय उसने अनुभव किया कि हरिशंकर ठीक कहता था—शब्द निरर्थक हैं।

"हाँ, तुम तो इस प्रकार कुशल-समाचार पूछ रहे हो जैसे वर्षों के बाद लौटे हो। वहाँ तो यह बात फैल गई है कि तुम तप करने के लिए अँधेरे जंगलों में चले गए और अब कभी न लौटोगे।"

"मुझे बहुत भूख लग रही है" गौतम ने सहसा कहा। "चलो, सामने पड़ाव है। वहाँ चल कर भिक्षा लेंगे।"

"मैं देखता हूँ कि तुम किसी और चक्कर में इधर आए थे।"

"कैसा चक्कर ?" गौतम ने सादगी से पूछा। वह भूख के मारे निढाल हुआ जा रहा था।

"गुरुजी यह जान कर बहुत प्रसन्न होंगे कि शिष्य इतना आज्ञाकारी निकला।" अखिलेश ने फिर विनोदपूर्वक कहा।

"गुरुजी को प्रसन्न तो होना ही चाहिए। तीन दिन और तीन रात मैं भगवान की लीला देखता रहा हूँ।" गौतम ने भोलेपन से जवाब दिया।

"भगवान की लीला की एक झलक तो मैंने भी कल देखी। तीर-कमान लिए एक हिरनी के पीछे भाग रही थी। मुझे आता देख कर तुरन्त पेड़ पर चढ़ गई।"

गौतम की समझ में न आया कि अखिलेश क्या कह रहा है। वह उदासी से अखिलेश का प्रसन्न चेहरा देखता रहा।

अमलतास के पत्ते हवा में उड़ते हुए आए और पगडण्डी पर उनके चारों ओर गिर गए।

हर तरफ़ सुन्दर वृक्षों पर पीले और लाल पत्तों ने आग-सी लगा रखी थी। सारा बाग़ संध्या के विभिन्न प्रकाशों से झिलमिला रहा था।

"वनदेवी !—वनदेवी !—" दूर झुरमुट में कोई भजन गाता हुआ जा रहा था।—वनदेवी ! तुम दूर से झलक दिखा कर गायब हो जाती हो। कभी हमारे गाँव में भी आओ। क्या तुम्हें मनुष्यों से डर लगता है?

गौतम और अखिलेश हवा की मंद सुगंध का पान करते घास पर चलते रहे।

> जब गैयों के डकराने का झींगुर उत्तर देता है
> और घंटियाँ बजती हैं,

उस समय वनदेवी, हरित कुंजों में नृत्य करती है !

विद्यार्थी भजन गाता हुआ झुरमुट में खो गया।

"वनदेवी !–" गौतम ने उसका साथ देना शुरू किया। फिर उसकी मधुर आवाज़ शाम के हलके अँधेरे में ऊँची होती गई।

वनदेवी कभी उसकी झलक दिखाई पड़ जाती है,
जैसे बहुत दूर गायें चर रही हों।
या पेड़ों में कोई घर छिपा खड़ा हो।
रात को वनदेवी की आवाज़ ऐसी आती है,
जैसे कहीं दूर वैलगाड़ियाँ चली जा रही हों,
जैसे कोई अपनी गैयों को पुकारे,
जैसे पेड़ गिरे,
या वहुत दूर कोई चुपके-चुपके रोता हो।
वनदेवी–जो जंगली फल-फूल खाकर जीती है,
जो जहाँ जी चाहे ठहर कर आराम करती है,
जो महकती है, जो सारे जंगल की माँ है।

(ऋग्वेद की एक सूक्ति)

गौतम और अखिलेश गाते हुए आगे बढ़ते गए। कुछ दूरी पर बाँसुरी वजाते हुए लड़कों की एक टोली बस्ती की ओर जा रही थी। आज कृषि-देवी सीता और खेतों के देवता क्षेत्रपति की आराधना का त्यौहार था। गाँव में बड़ी चहल-पहल थी।

अन्त में गौतम थक कर एक पेड़ के नीचे ठिठक गया।

"एक ओर देवियाँ, दूसरी ओर अप्सराएँ और पेड़ों की परियाँ। दोनों समय मिलते इन डालों की छाया में खड़े न होना" अखिलेश ने उसी प्रकार बनावटी गम्भीरता से कहा, "क्योंकि पेड़ों की परियाँ आदमियों को बहका कर ले जाती हैं। देखना, किसी दूसरे पाटलिपुत्र की नींव यहीं न पड़ जाए !"

"अरे, यह सामने कौन खड़ा है?" गौतम ने सहसा हड़बड़ा कर पलकें झपकाते हुए कहा।

"कौन?" अखिलेश ने कहा। "महाभारत के कवि ने पूछा है–तू कौन है, जो कदम्ब के वृक्ष की डाल को झुकाए है–देवता है, या यक्षिणी, या अप्सरा? इन पेड़ों के रहस्य बहुत गहरे हैं, भाई गौतम !"

"कैसे पेड़?"

"गौतम, तुम भूलते हो कि हमें लड़कियों पर दृष्टि न डालने की आज्ञा दी गई है !" अखिलेश ने अकस्मात् गम्भीर होकर उत्तर दिया और आँखें बन्द करके एक डाल की ओट में चला गया।

गौतम ने चौंक कर दुबारा सामने देखा। कदम्ब के नीचे अयोध्या के घाट वाली लड़की खड़ी थी।

9

चम्पक ने गौतम को नहीं देखा। वह निर्मला से बातें करती दूसरी पगडंडी पर मुड़ गई।

अखिलेश एक पत्थर पर बैठ कर ध्यान में तल्लीन हो चुका था। "आओ, आश्रम चलें।" उसने एक आँख खोल कर गौतम को सम्बोधित किया।

उन्होंने फिर चलना आरम्भ कर दिया। गाँव के पास पहुँच कर गौतम रुक गया। "आश्रम में कुछ खाने का मिलेगा?"

"मैं देखता हूँ कि तुम बहुत ही भौतिकवादी होते जा रहे हो।"

"मैं पूछता हूँ, तुम्हारी कुटी में चावल होंगे?"

"नहीं, आज सुबह से सब लड़के सीता की पूजा में गए हैं। एक दिन और भूखे रह लो।"

"मैं भिक्षा लेकर अभी आता हूँ।"

"अच्छा।" अखिलेश चुप हो गया—"पर जल्दी आना भाई गौतम !"

"भाई अखिलेश अभी आया।"

अखिलेश से पीछा छुड़ा कर वह तेज़ी से उस ओर चल दिया जिधर लड़कियाँ गई थीं। जल्दी में काँटों पर दौड़ने से उसके पाँव भी घायल हो गए।

चम्पक पड़ाव के निकट पहुँची तो उसने अनुभव किया कि पत्तों पर चलता हुआ कोई उसके पीछे-पीछे चला आ रहा है। उसने पलट कर देखा।

उसके सम्मुख वह सरयू को तैर कर पार करने वाला युवक खड़ा था: जिसकी काली आँखें थीं और खुली रंगत, और जिसने ब्राह्मण विद्यार्थियों के सफ़ेद वस्त्र पहन रखे थे।

"मुझे पता चला था कि अयोध्या वाले इधर आए हुए हैं। मैंने सोचा, आज की भिक्षा यहीं से ले लूँ।" वह बड़ी गम्भीरता से बोला।

"तुम कहाँ पढ़ते हो?" चम्पक ने पूछा।

"उधर, कुलपति गुरु पुरुषोत्तम के आश्रम में।"

"जंगल में वनदेवी का भजन तुम ही गा रहे थे?"

"कह नहीं सकता कि मैं कौन हूँ और जो भजन गा रहा था वह कौन है।"

"अच्छा, यह बात है—आओ, किसी दिन मुझसे विवाद करो।" चम्पक ने मुस्कान के साथ कहा।

"इस युग में मायत्री और गार्गी की उत्तराधिकारिणी बनने का तुम्हारा ही निश्चय है?" वह तुरंत विवाद करने के लिए तैयार हो गया।

"निश्चय बिल्कुल निरर्थक शब्द है। शायद तुम्हें ज्ञात नहीं कि साधारणतया शब्दों के अर्थ नहीं होते। तुम्हारे विषय क्या हैं?"

"दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र और—" फिर गौतम सहसा झुँझला कर चुप हो गया। यह लड़की उसे मूर्ख बना रही थी।

"तुम चित्र बनाते हो?"

"हाँ।"

"मैंने सुना है कि गुरु पुरुषोत्तम के आश्रम का गौतम नीलाम्बर अच्छे चित्र बनाता है। तुम्हारी सूरत देख कर लगता है कि तुम्हारा ही नाम गौतम नीलाम्बर है। मैं नाम के रहस्य को बहुत मानती हूँ। तुम नामों के रहस्य में विश्वास नहीं रखते?"

"मैं वही हूँ जिसकी चर्चा तुमने शायद कुछ मूर्खों से सुन रखी है—और जो तुमने सुना है, ठीक ही सुना है।"

"तो संभवतः तुम भी मेरा चित्र बनाओगे। आज सुबह यहाँ बहुत से चित्रकार आए थे।"

"मैं मूर्तिकार हूँ। केवल कल्पना के आधार पर मन की आवाज़ सुन कर चित्र बनाता हूँ।" उसने तनिक गर्व से कहा, "मेरा आदर विश्वकर्मा दैवी चित्रकार तक को करना पड़ेगा !"

"विश्वकर्मा—तुम तो नास्तिक नहीं हो? आजकल तो विद्यार्थी कपिल और शाक्य मुनि में ज़्यादा विश्वास रखते हैं।"

"मुझे आटा लाकर दो, मेरा रास्ता खोटा होता है !" गौतम ने तनिक बिगड़ कर कहा। इस लड़की को दुबारा देखने के लिए महीनों घूमा-घूमा फिरा था। और, अब वह उसके सामने मौजूद थी, तो वह उससे खड़ा झगड़ रहा था। क्योंकि उसे सहसा अनुभव हुआ कि वह उसकी अपनी चीज़ थी—उसके अपने अस्तित्व का, अपने हृदय और मस्तिष्क का एक भाग। यहाँ द्वैत का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ किसी संकोच, किसी पराएपन, किसी प्रकार की लज्जा की गुंजाइश या आवश्यकता न थी। वह उसे अनादि काल से जानता था।

उसने दूसरी लड़की पर नज़र डाली, जो उसे बड़े ध्यान से देख रही थी। गौतम ने उसे फिर ज़रा ध्यान से देखा। यह लड़की हरिशंकर की बहिन थी।

चम्पक तम्बू के अन्दर जाकर आटा निकाल लाई और गौतम के भिक्षापात्र में डाल दिया।

"अब जाओ, फिर कभी आना" चम्पक ने कहा।

वह उसे प्रणाम करके पड़ाव के बाहर आ गया। उसे अब तक ज्ञात न था कि ये दोनों लड़कियाँ कौन हैं और राजन् के लाव-लश्कर से इनका क्या सम्बन्ध है। तम्बुओं के आसपास और बहुत-सी लड़कियाँ इधर-उधर घूम रही थीं, परन्तु ये दोनों इस समूह में सबसे अलग विशिष्ट दिखाई देती थीं।

"ये दोनों कौन हैं?" उसने बड़ा साहस करके एक बुढ़िया से पूछा जो तेज़-तेज़ क़दम रखती रसोई के तम्बू की ओर जा रही थी।

बुढ़िया ने अपनी चमकती हुई आँखों से उसे घूरा, "तुम तो ब्रह्मचारी जान पड़ते हो !" उसने त्यौरी पर बल डाल कर कहा—"फिर तुमको यह जानने में कोई दिलचस्पी न होनी चाहिए कि उनमें से एक राजगुरु की बेटी चम्पावत है और दूसरी राजकुमारी निर्मला, और ये दोनों राजन् के साथ खेदा के लिए जा रही हैं। और देखो, तुम कभी फिर इधर न आना ! आजकल बहुत से चोर-उचक्के संन्यासियों का भेष बदल कर ठगी करते फिरते हैं।"

"कुटनी कहीं की ! चुड़ैल !" गौतम ने चुपके से कहा और आश्रम की ओर चल दिया।

दूसरे दिन वह चादर लपेट कर फिर पड़ाव की ओर चल खड़ा हुआ। सारे में घूमा, मगर वह उसे दिखाई न दी। राजघराने की लड़कियाँ यों भी जनसाधारण की भीड़ में न आती थीं। सम्भव है वह अन्दर किसी ज़री के शामियाने के नीचे बैठी तोते को पढ़ा रही हो—यह

सोच कर वह मुस्कराया। उसने सुन रखा था कि तोते को पढ़ाना अमीर लड़कियों का मुख्य मनोरंजन है। सम्भव है, वह पालकी में बैठ कर सैर करने के लिए नगर चली गई हो ! वह श्रावस्ती की ओर मुड़ गया। वहाँ सड़कों, बाज़ारों और झरोखों में लड़कियों के चेहरे दिखाई दिए। सभी एक जैसे थे। वह फिर बाग़ की ओर लौट आया। राजकीय शिविर में कार्तिक पूर्णिमा के त्यौहार की तैयारी की जा रही थी। अनगिनत लड़कियाँ फूल सँभाले, वाद्ययंत्र उठाए इधर-उधर आ-जा रही थीं, रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहने हरी डालियों के नीचे नृत्य कर रही थीं। इनमें चम्पक कौन-सी है? उसने हड़बड़ा कर सोचा क्योंकि अब उसे हल्का-सा भ्रम हुआ कि स्त्रियाँ सब एक जैसी होती हैं।...उनमें से चम्पक कौन है—उसने ज़रा अचम्भे से दिल में कहा।

"मैं यह हूँ !" कदम्ब के पेड़ के पीछे से कूद कर वह नीचे उतर आई। वह और अधिक परेशान हो गया।

"तुम भी उदास हो? मैं इस उदासी से अब तंग आती जा रही हूँ। कल से निर्मला भी बहुत दुःखी है। आओ, हमारे साथ नाचो।"

"मेरा ख़याल था कि तुम मुझसे तर्क करोगी?"

"इस समय मेरा मन नाचने को चाह रहा है।"

"निर्मला क्यों दुःखी है?"

"उसका भाई राजपाट छोड़ कर ग़ायब हो गया है। कल तुम्हें देख कर उसे अपना वह दुलारा भाई याद आ गया।"

"आनन्द ने भी दुनिया त्याग दी थी। यह राहें बहुत कठिन होती हैं।"

"ठीक कहते हो।"

"उसके भाई का नाम क्या है?"

"महाराज कुमार हरिशंकर।"

"और उसने दुनिया..."

"दुनिया के अतिरिक्त उसने बहुत कुछ त्याग दिया। गधा कहीं का !" चम्पक ने गौतम की बात काटी।

गौतम ने उसे ध्यान से देखा। "सुना है, आनन्द ने अपनी चहेती सुन्दरी को छोड़ दिया था और वह भी सिद्धार्थ गौतम के तनिक से कहने पर !"

"तो फिर, तुम्हारा मतलब?"

"मेरा मतलब यह कि दुनिया में लाखों सुन्दरियाँ और होंगी और लाखों आनन्द और हरिशंकर। यह चक्कर तो बहुत लम्बा-चौड़ा है, चम्पक रानी !"

"त्याग का दर्शन अपने स्थान पर स्वयं एक और चक्कर नहीं?"

"उस सुन्दरी को क्या इस बात का बहुत दुःख है?" गौतम ने ज्ञानियों की-सी तटस्थता से काम लेते हुए पूछा।

वह मौन रही।

"और, अगर आनन्द वापस आ जाए ! क्योंकि मुझे मालूम हुआ है कि वह अभी पूरा अर्हत् नहीं बन सका। उसके मार्ग की कठिनाइयाँ अभी बाकी हैं। वह बार-बार लौट आता है। वह अभी पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हुआ।"

"यह तो बड़ा बुरा समाचार है !" चम्पक ने कहा, "क्योंकि मुक्ति बहुत बड़ी चीज़ है। उससे कहना, क्या वह भूल गया कि शाक्य मुनि ने महामती से क्या कहा था?"

"क्या कहा था?" गौतम ने ज़रा चिढ़ कर पूछा।

"शाक्य मुनि ने कहा था—हे महामती ! जिस तरह नाटक के नाच-गाने, वीणा बजाने, चित्रकारी, तथा दूसरी कलाओं में कुशलता धीरे-धीरे प्राप्त होती है, उसी प्रकार अर्हत् भी एक दिन में नहीं बना जाता। हमारे महाराज कुमार ने भी तो त्याग को एक प्रकार की कला ही समझ रखा है !"

वह बातें करते-करते तालाब की मुंडेर पर बैठ गई जो शिविर के पीछे था। दूर से आश्रम के झोंपड़े दिखाई दे रहे थे, उन पर फैली हुई कद्दू और लौकी की हरी बेलें आँखों को बहुत भली मालूम होती थीं।

"लेकिन तुम कुछ कहना चाहते हो, क्या बात है?" चम्पक ने प्रश्न किया।

अभिव्यक्ति ! उसने अनुभव किया वह उसे व्यक्त नहीं कर सकता। सारी अभिव्यक्तियों का एक उद्देश्य है जो अभिव्यक्ति से परे है—मैं क्या कहना चाहता हूँ?—"चलो, मैं तुम्हें अपने चित्र दिखाऊँ !" उसने गड़बड़ा कर कहा।

"उससे मुझे लाभ क्या होगा?" उसने हर्ष से पूछा।

"तुम समझती हो मैं बिल्कुल निकम्मा कल्पनाविहारी कोई मसख़रा हूँ, जैसे सब विद्यार्थी होते हैं ! मगर, चम्पक रानी, एक दिन तुम सुनोगी कि श्रावस्ती का गौतम नीलाम्बर चित्रकला का बहुत बड़ा आचार्य बन चुका है।" उसने बच्चों की तरह गुस्से से कहा, और फिर चम्पक को देखने लगा कि शायद वह रुष्ट हो गई, और अब उसे तड़ातड़ कुछ सुनाएगी, मगर वह चुप रही।

वह मुंडेर पर चुप बैठी रही, क्योंकि इसी तरह आज से दस वर्ष पहले हरि ने उससे कहा था—तुम मुझे निकम्मा और निरा कल्पनाविहारी कोई मसख़रा समझती हो, जैसे सब विद्यार्थी होते हैं? लेकिन एक रोज़ तुम सुनोगी, चम्पा रानी, कि अयोध्या का महाराज कुमार बहुत बड़ा गणितज्ञ बन चुका है।

अभिव्यक्ति उद्देश्य से परे है। वेदान्त में आया है कि आत्मा को, इच्छाओं के भाव से, यह सृष्टि वैसे ही मृगतृष्णा जैसी दिखाई देती है, जैसे प्यासे हिरन को मरुभूमि में नदियाँ दिखाई देती हैं। उसी मृगतृष्णा ने मुझको, हरि को, बहुत व्याकुल किया था।

उद्देश्य क्या है—मूल उद्देश्य क्या है? वह मुंडेर से उठ खड़ी हुई—"अगर तुम्हारा आनन्द तुम्हें कहीं मिले तो उससे कह देना कि, सुन्दरी मृगतृष्णा से भी मुक्त हो चुकी है। उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

"तुम—यह समाचार सच है कि विहार में जाने वाली हो?"

"शायद ! क्या बुराई है ! यह अनुभव भी कर देखना चाहिए। शुभारानी ने तो अपनी आँखें निकाल दी थीं कि संसार के प्रलोभनों से बचें।"

"चम्पक, तुम्हारी आयु कितनी है?"

"कई सौ वर्ष। इतने सौ वर्ष कि मुझे याद भी नहीं रहा !" उसने हँस कर कहा।

"कुछ दिन हुए, मैंने भाटों से भीष्म और अर्जुन की कथा सुन कर यह सोचा था कि

चित्रांगदा और उलूपी कैसी रही होंगी !"

"मुझे देख कर तुम जान गए न?" वह फिर हँसी और उसने कहा—"तुम तो मूर्तिकार हो !"

"हाँ, लेकिन तुम भूलती हो कि हर कलाकृति नाम और रूप का सम्मिश्रण है। एक से कान, और दूसरे से आँख, परिचित होती है।"

"लेकिन, जो वस्तु विशुद्ध गुण है, जिसका ज्ञान मात्र बुद्धि द्वारा किया जाता है, उसे अनुभव नहीं किया जा सकता। अन्यथा तो, तुम स्वयं अपने दृष्टिकोण का खण्डन कर रहे हो !"

"विशुद्ध रूप केवल गुण है, संयोजन नहीं !" गौतम ने उत्तर दिया। "किसी भौतिक लक्षण के द्वारा उसकी ओर संकेत किया जा सकता है, उसे भौतिक लक्षण के समान नहीं समझा जा सकता।"

"आकाशे रूपम् लक्षणम्—" चम्पक ने हँस कर कहा।

"विशुद्ध रूप" गौतम ने जोश से बोलना आरम्भ किया, "अस्तित्व की व्याख्या करता है, स्वयं उसका अस्तित्व नहीं !"

"तुम क्या बनना चाहते हो?"

"मैं तुमको बताऊँगा, एक दिन मैं तुमको अवश्य बताऊँगा, मैं क्या बनना चाहता हूँ ! तुम मेरे गुरुजी से नहीं मिलोगी?"

"नहीं, मैंने अयोध्या में अपने अध्यापकों से इतना पढ़ा कि वे लोग मुझे पढ़ा-पढ़ा कर उकता गये। देखो, निर्मला के कितने ठाठ हैं ! दिन भर शृंगार-पटार में मगन रहती है, नाच और गाना सीख ही चुकी है, पढ़ने में उसका जी नहीं लगता।"

"निर्मला तुम्हारी अनन्य सहेली है?"

"वह हमारी और तुम्हारी महाराज कुमारी है।"

"पढ़ना तो उसका भी कर्त्तव्य है।"

"उसका कर्त्तव्य है कि अब वह घर बसाए।" चम्पक ने बड़े-बूढ़ों की तरह कहा। "तुम भी तो अपना ब्रह्मचर्य का समय समाप्त करके ब्याह व्याह कर डालोगे।"

पीछे से छागल की आवाज़ आई। निर्मला बहुत-सारे सफ़ेद फूल टोकरी में उठाए मालिनी बनी पगडण्डी से आ रही थी। गौतम को देख कर उसने टोकरी मुंडेर पर रखी, और हाथ जोड़ दिए। गौतम ने बड़े पहुँचे हुए और पवित्र ब्राह्मण की तरह उसे आशीर्वाद दिया, और उलटे पाँव लौट गया।

"चित्र और मूर्तियाँ बनाने के अतिरिक्त तुम नाटक भी अच्छा खेल सकते हो" चम्पक ने मुस्करा कर कहा और गौतम को पेड़ों में अदृश्य होता देखती रही।

10

धन्य हैं वे जिन्हें शान्ति प्राप्त हो चुकी है। चम्पक ने अपने मन में दोहराया; और उसे गौतम सिद्धार्थ का वह प्रवचन याद आ गया जो उन्होंने गया में दिया था।

"सारी चीज़ों में, हे पुरोहित, आग लगी है। आँखें आग में जलती हैं ! और आकृतियाँ, दृष्टि, संवेदन-शक्तियाँ, अतिशय तृष्णा, शब्द, गंध, बुद्धि, मस्तिष्क, विचार, शरीर-कल्पनाएँ सब धड़ाधड़ इस आग में जल रहे हैं !! और घृणा और प्रेम, जन्म और बुढ़ापा और मृत्यु, शोक और दुःख और निराशा ने, हे पुरोहित, यह अलाव तैयार किया है !"

गुरुकुल का विद्यार्थी वापस जा चुका था। जंगल पुरवाई हवा में सनसना रहा था। पेड़ों के नीचे से कुछ भिक्षुणियाँ भिक्षापात्र सँभाले अपनी झोंपड़ियों की ओर जा रही थीं। उनके चेहरों पर कितनी शान्ति थी ! क्योंकि वे नदी में प्रवेश कर चुकी थीं–उस मार्ग पर चल रही थीं, जहाँ से कभी वापसी नहीं होती। क्या मैं भी 'नदी' में प्रवेश कर सकूँगी ?–चम्पक ने उदासी से सोचा। धन्य हैं वे, उसने मन ही मन दोहराया। उसने पलट कर शिविर पर नज़र डाली। वहाँ उत्सव की तैयारियाँ की जा रही थीं। फिर, वह चुपके से मुंडेर से उतर कर उस पगडण्डी पर आ गई, जिधर से गौतम अपने आश्रम की ओर लौटा था और जिस पर से गुज़रती हुई भिक्षुणियाँ नदी के किनारे अपनी झोंपड़ियों की ओर गयी थीं।

चम्पक पेड़ों की टहनियों को सामने से हटाती राप्ती की ओर चल पड़ी। सामने कुछ दूरी पर कुटी थी जिस पर तोरई की बेल फैली थी और उसमें से गाने की ऊँची आवाज़ आ रही थी। यहाँ उसने सुन रखा था सबसे वृद्ध भिक्षुणी सुमन रहती है जो कौशल देश के एक राजा की बहन थी और पचास वर्ष से संन्यासिन की हैसियत से उस कुटी में रहती थी।

श्रावस्ती भिक्षुणियों का सबसे बड़ा केन्द्र था। उस समय भिक्षुणियों की टोलियाँ भीख माँग कर लौट रही थीं। उनमें हर वर्ग और हर आयु की औरतें शामिल थीं। चम्पक हैरानी और अचम्भे से एक तरफ़ खड़ी उनको देख रही थी। उन्होंने कामलोक जीत लिया है और ब्रह्मलोक में प्रवेश कर चुकी हैं। क्या मैं भी कामलोक जीत सकूँगी ?–उसे गौतम नीलाम्बर की याद आई। उसे हरिशंकर का ख़याल आया जो वर्षों से उसके दिल में रहता था। भिक्षुणियों ने कामलोक किस प्रकार जीता था। वह सोचती रही मगर उसकी हिम्मत न पड़ी कि उनके करीब जाकर उनसे बात करे, वह जो जरी की बनारसी साड़ी और सोने के जेवरों से सुशोभित थी। वह जी भर कर राग और रंग की दुनिया में आनंदित होती थी–संवेदन शक्तियों की दासी ! जब से उस लड़के से बातें करके आई थी जी ही जी में एक अज्ञात खुशी की दशा महसूस कर रही थी वह, ऐसी तुच्छ लड़की इन ऊँची पवित्र देव बालाओं से क्या बात कर सकती थी ?

"बहन इधर आओ–वहाँ काहे खड़ी हो ?" उनमें से एक ने मानो उसकी दुविधा को भाँप लिया, "इधर मेरे संग बैठो" एक भिक्षुणी ने निकट आकर बड़े स्नेह से उससे कहा।

"मैं-मैं देवी सुमन से मिल सकती हूँ– ?"

"हाँ क्यों नहीं। बहन सुमन तो तुम्हारी राह देख रही हैं।"

डरते-डरते चम्पक उस नौजवान भिक्षुणी के साथ कुटी में दाखिल हुई। सामने तीन बैठी थीं। श्रद्धा के आवेश में चम्पक का गला रुँध गया और उसको अपने शरीर में झुनझुनाहट-सी महसूस हुई। श्रीकृष्ण की पुजारन चम्पक किसी ईश्वर को न मानने वाली साध्वी के सामने झुक गई।

बाहर अँधेरा छा रहा था। सुमन उन सबसे अलग मृगछाला पर बैठी तानपूरा बजा कर गा रही थी।

यह गाना साध्वी चित्ता ने राजगीर की चोटियों पर चढ़ कर गाया था।

"यद्यपि मैं कमज़ोर और दुःखी हूँ और मेरी जवानी ख़त्म हो चुकी है। और मैं लाठी के सहारे पहाड़ी पर चढ़ी हूँ और मेरी चादर मेरे काँधे से लटकी है और मेरा कमंडल उलटा है, चट्टान के सहारे खड़े होकर मैंने अपने अहं को सहारा दिया है। और आज़ादी की हवा मेरे चारों ओर मंडलाती है।"

बुद्ध की इच्छा पूरी हुई।

चम्पक कुटी की चौखट पर बैठी रही, भिक्षुणियाँ गा रही थीं। अकस्मात चम्पक ने निर्णय कर लिया कि वह अपनी बनारसी साड़ी यहीं फैंक कर और केसरी धोती पहन कर उनसे आन मिलेगी। उन लोगों और उसके बीच अजनबीपन की जो दीवार खड़ी है उसे वह इस अपने लिबास और इस जिंदगी के साथ कभी पार नहीं कर सकती।

"मुझे कुछ गौतमी के बारे में बतलाओ कुछ शाक्य मुनि के बारे में....." उसने डरते-डरते सुमन से कहा।

सुमन ख़ाली-ख़ाली आँखों से देखने लगी। एक क्षण के लिए चम्पक को डर-सा लगा। उन आँखों में गुज़रे हुए समय की छाया झिलमिला रही थी और चम्पक को मालूम था कि सुमन कितनी बूढ़ी है और चम्पक को समय से डर लगता था।

"मुझे कुछ अपने संघ के बारे में बतलाओ।" उसने हड़बड़ा कर दोबारा कहा।

सुमन अठारह साल की आयु में अपना घराना तज कर संघ में शामिल हुई। वह बीस साल की थी जब शाक्य मुनि ने महा परिनिर्वाण प्राप्त किया था। अठारह वर्ष की आयु में राजकुमारी सुमन की सुंदरता की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। अब एक अठानवे वर्षीय बुढ़िया फूंस-सी गेरुआ वस्त्र पहने उसके सामने बैठी थी। संसार तज कर भी उसे क्या मिला ? चम्पक के मन के किसी चोर ने पूछा—"अगर मैंने दुनिया छोड़ दी तो क्या मुझे शांति मिल जाएगी ? और अगर यहाँ भी शांति न मिली तो....?" उसने आँखें बंद कर लीं।

फिर उसने आहिस्ता से सुमन की साड़ी के किनारे को छुआ। सुमन गुज़रते हुए समय की गवाह। शाक्य मुनि के कदमों में बैठ चुकी थी। जेतवन विहार की गंध कुटी, सुगंधित कमरा जिसमें महात्मा बुद्ध रहते थे, में प्रवेश कर चुकी थी। कुण्डल केशी से विवाद कर चुकी थी। चम्पक ने उसकी साड़ी के किनारे को छुआ और उसे महसूस हुआ जैसे उस स्पर्श के द्वारा वह शाक्य मुनि तक भी पहुँच गई है और इस एहसास से उसे एक क्षण के लिए बड़ी शांति मिली।

रोहिणी नदी के किनारे शाक्य मुनि का प्रवचन सुनने के पश्चात देश के पाँच सौ धनवानों ने दुनिया त्याग दी थी। उनकी पत्नियाँ शाक्य मुनि की मौसी और सौतेली माँ महाप्रजापति के पास आईं। जिन्होंने पति की मृत्यु के बाद संन्यास इख़्तियार कर लिया था और उन्होंने प्रजापति से कहा था कि हम भी संसार त्यागने की इच्छुक हैं। शाक्य मुनि ने उनका संघ स्थापित किया तथा राजकुमारियाँ और गृहस्थनें और हर वर्ग हर आयु की लड़कियाँ भिक्षुणी बनने लगीं। उनके गीतों से जंगल और घाटियाँ गूँज उठीं। वे गुरु की चेली बन कर बाद में खुद गुरु बनतीं। दूसरों को पढ़ातीं, धर्म का प्रचार करती थीं। ज्ञान की गोष्ठियों में भाग लेती थीं। पन्ना जो पहले चंद्रभागा नदी के किनारे पैदा हुई थी और जिसने अबके श्रावस्ती

के एक अमीर घर में जन्म लिया था और जिसने जवानी ही में अर्हत् का पद पा लिया—और धीरा और भद्रा। और रूपनंदा जिसे अपनी सुंदरता पर बड़ा गर्व था। और बनारस की वेश्या अर्धकाशी और उत्तमा जो पहले जन्म में दासी थीं और दूसरे जन्म में श्रावस्ती के एक सेठ के यहाँ पैदा हुई थीं और राजा बिम्बिसार के पुरोहित की लड़की सोमा जो जेतवन के अर्ध अँधेरे कुंज में बैठी थी और मारा (दुरात्मा) ने हवा में प्रकट होकर उसे संबोधित किया कि ओ औरत जिसके पास केवल दो उँगलियों का एहसास है वो उस मैदान को विजय नहीं कर सकती जिस पर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि चलते हुए घबराते हैं (क्योंकि औरत तो सात-आठ वर्ष की उम्र से रसोई में चावल उबालना शुरू करती है और सारे वक़्त यह मालूम करने के लिए कि चावल गले हैं या नहीं डोई से निकाल-निकाल कर अपनी दो उँगलियों से उनकी कनी देखती है, पर सोमा ने मारा को मार भगाया, अर्हत् बन गई। और वैशाली की वेश्या विमला और वैशाली के सेनापति की लड़की समा जिसने गाया—"मैं जिसे चीज़ का 'क्यों' और 'क्या' बहुत सताता था और गुज़रे वक़्तों की याद बहुत तंग करती थी। मैंने आत्महत्या की ठानी ताकि फिर से इस तिरस्कृत दुनिया में जीवित न रहूँ मगर मुझे रास्ता मिल गया और बुद्ध की इच्छा पूरी हुई।"

और श्रावस्ती की ब्रह्मपुत्री मुक्ता और वैशाली की नर्तकी आम्रपाली और हंसवती शहर की सुंदरी नंदा और राजगीर की घुंघराले बालों वाली कुंडलकेशी जो एक डाकू के प्रेम में निराश होकर पहले जैन संन्यासिन बनी और जो सेब की टहनी हाथ में लिए गाँव-गाँव में ललकारती फिरती थी कि कोई है जो आन कर मुझे वाद-विवाद में हराए। और चंदा और राजगीर की महारानी खेम जो अपनी सुंदरता पर बड़ा घमंड करती थी और जिसने बाँस के झुंड में पहली बार शाक्य मुनि को देखा था और सुंदर धनवांन पुत्री अनुपम और महारानी खेम की सहेली विजय और सभा रानी। आम के बाग़ में एक युवक ने उन पर डोरे डालने चाहे तो जिन्होंने आँखें निकाल ली थीं।

ये सब अब दोबारा पैदा नहीं होंगी क्योंकि उन्होंने अर्हत् का पद प्राप्त कर लिया। यह सब धारा में दाख़िल हो चुकी थीं और ये जितनी भिक्षुणियाँ इस समय मौजूद थीं ये भी कितनी सौभाग्यशाली थीं क्योंकि उन्होंने दुविधा से अपने आपको मुक्त कर लिया था। चम्पक ने कुटी के अंदर नज़र डाली। पेड़ों के उस पार शिविर में रोशनियाँ झिलमिला रही थीं। बाहर कोई उसे आवाज़ दे रहा था।

वह कुटी से निकली। सहेलियाँ, दासियाँ और धावक उसे ढूँढ़ते हुए यहाँ आ पहुँचे थे क्योंकि जश्न के लिए शिविर में उसकी प्रतीक्षा की जा रही थी।

"स्त्रियों के प्रति हमारा क्या दृष्टिकोण होना चाहिए ?"—सौ वर्ष पूर्व इसी श्रावस्ती में एक महत्वपूर्ण प्रश्न किया गया था।

"उनकी ओर देखना भी नहीं, आनन्द।" उत्तर मिला था।

"मगर मान लीजिए वे नज़र आ जाएँ।"

"उनसे बात मत करना।"

"किन्तु यदि वे स्वयं हमसे बात करने लगें, तो ?"

"बराबर जागते रहना।"

कई रातों तक लगातार जागते रहने के बाद सहसा गौतम को नींद का ज़ोरदार झोंका आ गया, लेकिन कोशिश करके उसने अपनी आँखें खुली रखीं।

विद्यार्थी जीवन में जब वह आश्रम में था, पुस्तकालयों में विभिन्न पुस्तकें पढ़ता तो बहुत ही विचित्र और परस्पर-विरोधी विचार, औरतों के सम्बन्ध में, उसके मस्तिष्क में आते। महाभारत में लिखा है कि नारी कभी अपवित्र नहीं हो सकती। लेकिन, तेरहवें प्रकरण में अन्यत्र कहा गया कि नारी ही सारी बुराइयों की जड़ है। उसकी प्रकृति में ओछापन है, ऐश्वर्यशालिनी वेश्याओं के वस्त्रों और आभूषणों को ईर्ष्या की दृष्टि से देखती है। और चूँकि सारी बुराइयाँ उसकी जन्मजात प्रकृति के कारण प्रकट होती हैं; और स्त्री जन्मदात्री है, अतएव स्त्री ही संसार की समस्त बुराइयों की जिम्मेदार है और यह कि स्त्री केवल प्रेम की भूखी है, और बड़ी अविश्वसनीया भी। किन्तु उसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि इन सब दुर्बलताओं के होते हुए भी स्त्री का सम्मान करना चाहिए। साथ ही साथ स्त्री को देवी का स्थान प्राप्त था। उसकी स्वामिभक्ति, शालीनता और लज्जा की ऋषि-मुनि सौगंधें खाते थे, लेकिन श्रावस्ती की वेश्याएँ, नाटकों में अभिनय करने वाली नायिकाएँ, राजकीय कार्य करने वाली गुप्तचर स्त्रियाँ और विषकन्याएँ भी तो स्त्रियाँ ही थीं।

और उर्वशी ने अपने चाहने वाले से कहा था—"क्यों अपने प्राणों के पीछे हाथ धोकर पड़े हो। अपने आपको भेड़ियों के पंजों से बचाओ।"

स्त्रियों से मित्रता रखना असंभव है, क्योंकि उनका हृदय भेड़ियों जैसा होता है।

और दूसरी ओर गान्धारी थी, जिसने अपने अन्धे पति के लिए स्वयं अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी। अनुसूया इतनी पतिव्रता थी कि अपने पति को स्वयं अपनी सौत के घर पहुँचाने गई थी। कहीं पर यह भी लिखा था कि पतिव्रता स्त्री के लिए पर-पुरुष परछाईं के समान है, और मनु महाराज ने कहा था कि जहाँ स्त्रियों का सम्मान किया जाता है वहाँ देवता खुशी से निवास करते हैं।

और, शाक्य मुनि ने कहा था, स्त्री मूर्ख होती है, आनन्द। स्त्री ईर्ष्यालु होती है, आनन्द ! स्त्री दुरात्मा होती है, आनन्द। स्त्री से बचो, स्त्री से बचो।

नारी—पाप और दुराचार की मूर्ति।

एक बार शाक्य मुनि अपने बारह सौ शिष्यों सहित इसी जेतवन में उपस्थित थे। वन झील के उस पार दिखाई दे रहा था। राजा प्रसेनजित् ने उन्हें भोज के लिए निमंत्रित किया था; और आनन्द कहीं बाहर गया हुआ था, वह इस भोज में सम्मिलित न हो सका था।

सुंदर आनन्द ने अपना कमण्डल उठाया और सदा की भाँति अपने ही विचारों में खोया नगर में भिक्षा लेने के लिए निकल गया। उसके लिए क्षत्रिय और चाण्डाल बराबर थे और उसे अपनी पुण्य कीर्ति का बड़ा ख़याल था और बड़ी प्रतिष्ठा के साथ उसने नगर की चारदीवारी की खाई पार की और भिक्षा माँगते-माँगते एक प्रसिद्ध नर्तकी के द्वार पर पहुँचा, और नर्तकी कन्या उस पर आसक्त हो गई। उसने ऐसा जादू डाला कि बेचारा आनन्द भिक्षा लेना भूल कर सीधा उसके घर में दाख़िल हो गया। और राजभवन के भोजन-गृह में बैठे-बैठे शाक्य मुनि को ज्ञात हुआ कि आनन्द बड़ी विपत्ति में पड़ गया है। उन्होंने अपने दूसरे शिष्य को उसकी सहायता के लिए भेजा।

और शाक्य मुनि ने आनन्द से कहा—"मैं अपने परिनिर्वाण के बाद चाहता हूँ कि तुम लोग, मेरे प्रधान शिष्य—बोधिसत्व, महासत्व, अर्हत्—निर्वाण प्राप्त न कर अन्तिम कल्पों में फिर से जन्म लेना स्वीकार कर लो। तुम विद्यार्थियों, साधारण व्यक्तियों, सम्राटों, मंत्रियों, धनिकों, ब्रह्मचारियों, यहाँ तक कि वेश्याओं, विधवाओं, दुराचारियों, चोरों और कसाइयों के यहाँ जन्म लो, जिससे तुम प्रत्येक वर्ग के लोगों में घुलमिल कर उन्हें निर्वाण का मार्ग दिखला सको। केवल मरते समय तुम अपना वास्तविक रूप प्रकट करना नहीं तो, याद रखना, धर्म के नये व्याख्याता तुम्हें बहका देंगे !"

"और यदि कोई शिष्य अपने पूर्वकल्प की आदतों का त्याग न कर सके तो उस पर वे रहस्य प्रकट करना जिनका मैंने बोधिवृक्ष के नीचे कमल के फूलों के बीच साक्षात्कार किया था।"

"आनन्द ! अभी जब तुमको उस युवती ने बहकाया, यह केवल इस जन्म या इस कल्प की आकस्मिक घटना न थी। कई कल्पों से तुम उसके आकर्षण में ग्रस्त हो, परन्तु वह पिछले कल्पों का बन्धन अब टूट चुका है। अब तुम और वह, दोनों स्वतन्त्र हो।"

स्वतन्त्रता का उद्देश्य क्या है ? इसका अर्थ क्या है ? इसका निर्णय कौन करेगा कि कौन स्वतन्त्र है और कौन नहीं ?—गौतम ने अपने आप से प्रश्न किया। हरिशंकर, तुमको स्वतन्त्रता की खोज में क्या मिला ? आनन्द, तुम पर जो रहस्य प्रकट हुए वे सिवाय तुम्हारे और कौन जानेगा ? हम सब अपने-अपने रहस्य में किसी दूसरे को साँझीदार नहीं बना सकते।

राजकीय शिविर की ओर से झाँझ और घुँघरू की आवाज़ें उठना शुरू हो चुकी थीं। चतुर्दशी का चाँद डोलता-डोलता आश्रम के ठीक ऊपर आ गया था और उसके उजाले में पुष्पलताओं से ढँके हुए झोंपड़े गहरी शान्ति में डूबे हुए नज़र आ रहे थे। कहीं-कहीं दीये जल रहे थे। शेष सब विद्यार्थी सो चुके थे केवल अब वही जाग रहा था।

जाने उस समय राजन के पड़ाव पर क्या हो रहा होगा ? प्रकाश, संगीत और नृत्य—उसने अपने मस्तिष्क में चम्पक की कल्पना को इन्हीं तीन चीज़ों से सम्बद्ध कर रखा था।

प्रकाश, संगीत और नृत्य।

वह आहिस्ता से उठा और कंधे पर चादर अच्छी तरह से लपेट कर दबे पाँव आश्रम से बाहर निकला और महुआ के बाग़ की ओर चल पड़ा। उस समय वह बहुत बड़ी चोरी कर रहा था और उस चोरी पर अत्यधिक प्रसन्न था। उसका साया ज़मीन पर उसके पीछे-पीछे चलता रहा। उसके पैरों के नीचे खुश्क पत्तियाँ ज़ोर-ज़ोर से खड़खड़ा रही थीं। एक गिलहरी उसकी आहट पर चौंक कर तेज़ी से भागी। इधर-उधर देखता हुआ कि कोई पहचान न ले, वह धीरे से महुए के बाग़ में दाख़िल हुआ जहाँ मशालों की तेज़ रोशनी हो रही थी। बीच में मण्डप ऐसा बना था, जिसके एक ओर संगीत-मंडली की लड़कियाँ सुरमण्डल और छतारे और झाँझ लिए बैठी थीं। अयोध्या के लोग नृत्य और संगीत में अपनी निपुणता के लिए सारे देश में प्रसिद्ध थे। इस गोष्ठी में प्रत्येक व्यक्ति कलावन्त जान पड़ता था।

सहसा गौतम की दृष्टि उस बूढ़ी सेविका पर पड़ी, जिसने कल उसे डाँटा था। वह ज़रा घबरा कर एक तम्बू की आड़ में छिप गया। अगर कोई उसे देख ले तो क्या हो ? वह गौतम नीलाम्बर आश्रम का सबसे आज्ञाकारी और प्रतिभाशाली विद्यार्थी, प्रसिद्ध लेखक और चित्रकार,

ब्रह्मचारी उस समय चोरों और आवारागर्दों की तरह एक तम्बू के पीछे छुपा लड़कियों को नाचता हुआ देख रहा था।

11

नृत्य-नृत्य-नृत्य।

छायापथ आकाश-गंगा पर अप्सरायें नाच रही हैं। मरघट में काली नाचती है। हृदय के सुनहरे भवनों में शिव नृत्य करते हैं, और गोकुल में नटवर गिरधारी। कैलाश पर उमा नाचती है और यहाँ राप्ती के तट पर हेमन्त की शीतल चाँदनी के नीचे वह नाच रही है, जिसे कोई कुमारी चम्पक कहता है, कोई चम्पारानी, कोई चम्पावती। उसके हज़ारों नाम हो सकते हैं, क्योंकि उसके असंख्य रूप हैं। उसकी उदासी, उसकी हँसी, उसकी मुस्कान, उसका दुःख, उसका वैराग्य, उसकी प्रसन्नता, उसकी घृणा, ये ऐसे भाव और ऐसे रस हैं, जिन्हें भरतमुनि भी नहीं समझ सकते। किसी संगीतशास्त्र में इस नृत्य का वर्णन नहीं, जो मैंने अपने हृदय की आँखों से देखा। किसी नन्दकिशोर, किसी भरतमुनि ने अपने ग्रन्थों में उसकी मुद्राओं का वर्णन नहीं किया, इस नृत्य के नियम नहीं बनाए ! लड़कियाँ वाद्ययंत्रों पर छायाराग अलाप रही हैं। हरे तोते पर सवार कामदेव अपना पुष्प-बाण चलाता है और प्रकृति माया बन जाती है। शिव की तीसरी आँख के शोले ने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया है किंतु कामदेव तो अनंग है, इंसानों के दिलों में मौजूद है, शिव उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

और, वह इस तरह नाच रही है, मानो पार्वती ने देवी ऊषा के बजाय उसी को नृत्य की शिक्षा दी थी। नर्तक राजकुमार अर्जुन ने मणिपुर की चित्रांगदा और दक्षिण की राजकुमारी उत्तरा के स्थान पर उसी को शिष्या बनाया था। वह जो सफ़ेद साड़ी पहने कौमुदी उत्सव का त्यौहार मना रही है, उसने बालों में केसर के फूल उड़स रखे हैं। उसके जूड़े को रत्नांजली ने ढँका हुआ है। उसके गले में वैजयन्ती माला है जिसके सीप और लाल, पन्ने, नीलम, मणि और हीरे चाँदनी में झिलमिलाते हैं। उसके गले की मुक्तावली और शेखर हार और सफ़ेद मोतियों की सिद्ध एकावली, उसके कानों में कर्णफूल तथा मस्तक पर सोने का शीशफूल सजा है। उसके कंवल जैसे पैरों में पद्म जगमगा रहे हैं। वह सोलहों शृंगार किए हेमन्त चाँदनी के नीचे नृत्य करती है। सारी श्रावस्ती, सारी अयोध्या, सारा कुसुमपुर, सारा जम्बूद्वीप कार्त्तिक पूर्णिमा का उत्सव मना रहा है, और शिव ने आँख खोली हैं। पतझड़ जो शिव के शरीर की तरह ज़र्द है। शिव भभूत रमाए, हाथी की खाल पहने लेटे हैं। उनकी जटाओं में से गंगा बह रही है। उनके माथे पर नवचंद्र जगमगाता है। वे बहुत कम हँसते हैं। चैत्र मास गुजरने के बाद विष्णु गहरी नींद से जागे हैं। विष्णु जो अनंत असीम बुद्धि के प्रतीक शेष-नाग पर सोते थे। विष्णु पीताम्बर जो अंतरिक्ष को निगल चुके हैं, जो सारी सृष्टि का घातक ज़हर पी चुके हैं। अनंत पर बैठे वे काल और स्थान की क़ैद से आज़ाद हैं और विष्णु अपनी डमरू बजा रहे हैं और काल और स्थान उनके डमरू की आवाज़ पर काँप रहे हैं। हरे-भरे मैदानों पर चाँदनी बरस रही है, और श्वेत चँवर, श्वेत साड़ियाँ और श्वेत पुष्प इस श्वेत प्रकाश में जगमगा रहे हैं। समय प्रकाश की एक महान धारी में ढल गया है, जो शून्य में बहती जा रही है। चाँदनी

वायुमण्डल में घुल गई है। और, जब दुनिया—अनुभव करने, स्पर्श करने, देखने और प्रयोग करने की दुनिया—इतनी आकर्षक है तो उसमें मृगतृष्णा का क्या काम? यह सब सत्य है। जीवन सबसे बड़ा सत्य है। सृजन सबसे महान है। शक्ति की पूजा करो, जो सृजन करती है। देवी की पूजा करो जो माँ है, माँ ! उमा-गौरी-लक्ष्मी जिसका दूसरा नाम आशा है, जिसकी कल्पना की रचना कमल के फूलों ने की है वह चम्पा के फूल की तरह सुगन्धित है। वह माँ है, जैसे धरती माँ है, जैसे नदी माँ है। माँ देवी है। स्त्री भी देवी है। क्योंकि वह माँ है। चम्पक भी देवी है, स्तुति करो। उसकी पूजा करो। उसके आगे झुक जाओ, वह उस ठण्डी पीली घास, उस हरी-भरी धरती की देवी है, शाश्वत माँ है और अक्षय मित्र है ! मेरी बहुत पुरानी साथी है। क्या मैं उसको जानता नहीं?

ऋग्वेद में लिखा है कि पति-पत्नी वह हैं जो मानसिक रूप से एक-दूसरे से बँधे हों।

क्या कभी ऐसा होगा कि मैं उसे विवाह-रथ में बैठा कर अपने घर ले जाऊँगा ?

12

दर्शक चौंक उठे। एक नवयुवक शिविर के पीछे से निकला। मण्डप में आकर उसने झुक कर घुंघरू बाँधे और अपनी सफ़ेद चादर एक ओर फेंक कर मुक्त, आनन्द भाव से ताण्डव नृत्य करता सामने आ गया।

जनसमूह मंत्रमुग्ध होकर उसका नृत्य देखता रहा। लगता था जैसे नटराज ने अपनी कला उसे सिखला दी है। वह स्वयं नटराज है।

चम्पक नाचते-नाचते रुक गई। उसने नर्तक को आश्चर्य से देखा।

मृदंग ज़ोर-ज़ोर से बजता रहा। सांध्य ताण्डव नृत्य करता हुआ वह मण्डप के बीच में आ गया। उसने शिव की तरह एक सौ आठ विभिन्न प्रदर्शन किए। उसने आठों रस दिखलाए। यह विष्णु का शृंगार रस है। यह इंद्र का वीर रस है। यह रुद्र का रौद्र रस है। यह काल का भयानक रस है। यह गंधर्व का अद्भुत रस। यह शांत रस है।

उसने सबके सामने नृत्य के आठों रस प्रदर्शित किये। यह शिव का नृत्य है—उनकी मुद्राओं में संसार की सारी विकास-क्रिया निहित है। उनकी वाणी ही सर्वस्व है। उनके लिबास चाँद और सितारे हैं; शिव, जो साक्षात् तान हैं और साक्षात् संगीत हैं, शिव जो सार्वभौम लय के द्योतक हैं।

सृष्टि की माँ उमा हेमवती को कैलाश के सबसे ऊंचे सिंहासन पर बिठला कर नटराज उसके सामने नृत्य कर रहे हैं। सरस्वती वीणा बजा रही हैं, इन्द्र बाँसुरी।...ब्रह्मा झाँझ बजाते हैं। लक्ष्मी गाती हैं और विष्णु मृदंग बजा रहे हैं। सारे देवता और गंधर्व और सिद्ध और विद्याधर आसपास खड़े हैं।

चम्पक अपनी जगह से उठी और नृत्य करती हुई उसके बराबर में आ गई।

उन दोनों ने मिल कर उमा तांडव शुरू कर दिया।

वह गौरी थी और शंकर के साथ नृत्य कर रही थी।

चाँदनी खुले मैदानों पर गीत बरसा रही थी, चाँदी के रंग के बादल नदी पर तैर रहे

थे और चाँदी के रंग के सारस परों में चोंच छिपाए बालू पर सो रहे थे और कार्त्तिक का पूरा चाँद फूलों के ऊपर से झाँकता था।

किन्तु, वह रात भी समाप्त हुई और त्यौहार मनाने वालों का शोर कम हुआ। उनके गीतों और घुँघरुओं की आवाज़ें मद्धम पड़ गईं। पौ फटते-फटते राजकीय शिविर पर ख़ामोशी छा गई, और मण्डप में पुष्पों के कुछ गजरे और कलियों के ढेर बिखरे पड़े रह गए।

13

सुबह हुई। हिमालय की चोटियों पर धुंध तैर रही थी। सरोवरों में लाल कमल खिल गए थे। गाँव की सड़क पर जाती हुई ग्वालिनों की गगरियाँ धूप में जगमगा रही थीं। महुए के पीले फूलों पर मँडराती हुई मधुमक्खियाँ उसके कानों में भनभनायीं, पर जब सूरज की तेज़ किरणें उसके पपोटों में घुसीं तो वह आँखें मलता उठा और उसने अपने आपको तालाब की टूटी हुई सीढ़ियों पर लेटा हुआ पाया। उसने घबरा कर चारों ओर देखा ! वह कहाँ था और यह सब क्या था? उसने मस्तिष्क पर बहुत ज़ोर डालने की कोशिश की, किन्तु उसे कुछ याद नहीं था।

चम्पक—चम्पक—चम्पक !

सारा समय मधुकर केवल यही भनभनाता रहा था। वह इत्मीनान से अँगड़ाई लेकर उठा, और दूसरी अँगड़ाई लेकर फिर सीढ़ी पर बैठ गया। सहसा उसकी दृष्टि महुए के झुंड पर पड़ी, जो सुनसान पड़ा था। यह जगह जहाँ सारी दुनिया की रौनकें सिमट आई थीं उस समय भाँय-भाँय कर रही थी। एक हिरन पेड़ के पीछे से भागा। गिलहरियाँ बेल के फ़ल कुतरती रहीं। हरे तोतों का एक समूह डाल पर से उड़ गया। जंगल शान्त पड़ा रहा। वह स्तम्भित और व्याकुल वहाँ बैठा था। फिर उसे धीरे-धीरे बहुत धुँधले सपने की तरह याद आया। इस स्थान पर केवल रात भर पहले राजकीय शिविर था और उसमें वह मण्डप के नीचे रात गए तक नाचा था। वे सब नाचे थे। और, जब वह नाचते-नाचते थक गया था, तो राजन् ने उसे बुला कर अपने निकट बिठा लिया था; और उसने राजन् के साथ खूब जी भर कर मदिरा पी थी, भुना हुआ मांस खाया था और सुनहरे छत्र के नीचे रेशमी तकिए लगे तख़्त पर बैठा था। उस रागरंग की गोष्ठी में उसकी दृष्टि लगातार चम्पक को तलाश कर रही थी, लेकिन वह नृत्य समाप्त होते ही राजकुमारियों के साथ शिविर के अन्तःपुर की ओर चली गई थी। उसकी प्रतीक्षा में वह पौ फटने तक वहाँ बैठा रहा था। जब वह मण्डप से बाहर निकल कर लड़खड़ाता हुआ आश्रम की ओर लौट रहा था, उस समय उसे नींद का झोंका आया और वह तालाब के किनारे पड़ कर सो गया। और प्रातःकाल प्रस्थान का नक़्क़ारा बजा और शिविर उठा दिए गए। और, जब राजकीय काफ़िला खेदा के लिए प्रस्थान कर रहा था उस समय चम्पक निर्मला के साथ तालाब के किनारे से निकली थी। निर्मला ने उससे कहा था—"कैसा अनोखा ब्राह्मण है ! परसों तुमसे चित्रकारी के सम्बन्ध में वादविवाद करता रहा, रात को नटराज की तरह नृत्य किया और इस समय बच्चों की तरह पड़ा सो रहा है। जाने से पहले, आओ इसे जगा कर प्रणाम तो कर लें !"

चम्पक कुछ क्षणों के लिए गुमसुम खड़ी रही। फिर उसने उत्तर दिया—

"नहीं, क्योंकि जो जागता है, उसे एक दिन नींद आ जाती है; और जो सोता है वह एक दिन जाग उठता है। उन लोगों की ओर देखो जो लगातार जागते रहते हैं।" और फिर वह अपनी चित्रित पालकी की ओर चली गई थी।

और, अब महुए के बाग़ में पूर्ण सन्नाटा था। वह तालाब की सीढ़ियों पर बैठा सोचता रहा। उस एक रात में वह सहसा बड़ा हो गया था। उसने हृदय के संसार की सैर की थी। उसने माया का प्रयोग किया था और वह इस प्रयोग से असन्तुष्ट नहीं था। लेकिन यह कैसा अजीब अनुभव था, जैसे शिव की जगह जीवन का सारा विष उसी ने पान कर लिया हो ! यह कैसा अनोखा प्रयोग था। इसकी शर्त तो उसने कपिल से नहीं लगाई थी, और बेचारा हरिशंकर तो इस समय कहीं हज़ारों मील दूर खड़ा रह गया था !

उसका जी चाहा कि दौड़ता हुआ जाए और राजकीय काफ़िले से जा मिले। राजन् का एक तुच्छ कहार बन कर उन लोगों के साथ चले। उस लड़की के पीछे क्षितिज के दूसरे किनारों तक पहुँच जाए।

लेकिन, वह तो उससे चलते समय मिल कर भी नहीं गई। उसने उसे निकट आकर जगाया तक नहीं।

अतएव, वह तो उससे चलते समय एक बात कहे बिना ही आगे चली गई और एक क्षण के लिए उसे अत्यंत सन्तोष का अनुभव हुआ। उसका यह आभास तीव्र हो गया कि वह उससे अलग नहीं है, उसके अस्तित्व में सम्मिलित है। उसे मुझसे बात करने की क्या आवश्यकता थी। वह तो मुझसे हर समय बातें करती रहती है, मगर यह भी मिथ्या है—बकवास ! मैं तो अपने आपको धोखा दे रहा हूँ। मैं तो माया के जाल में बुरी तरह फँस चुका हूँ। वह मुझसे अलग है। बहुत दूर है। भला मैं कहाँ और वह कहाँ? यह सब झूठ है।

"बहुत अच्छा !—उसने तालाब की सीढ़ी पर से उठते हुए कहा। (यहीं उस दिन वह बैठी थी !) तुम अपने पूरे ठाठ-बाट के साथ हाथियों के शिकार के लिए प्रस्थान कर चुकी हो। और जीवन ! तुम्हारे बिना भी गुज़र सकता है।"

आश्रम के रास्ते पर चलते हुए उसे याद आया—यह उसके अध्ययन का अंतिम साल है। निकट भविष्य में उसके पिता उसे घर ले जाने के लिए आएँगे। गुरु उसे विदा करते समय वही शब्द दोहराएँगे जो हर शिक्षा संपूर्ण करने वाले विद्यार्थियों के सामने शताब्दियों से दोहराए जाते थे—सत्य बोलो और धर्म का कार्य करो ! (धर्म?) आश्रम के सारे विद्यार्थी, उसके उम्र भर के साथी, उसे घाट तक पहुँचाने जाएँगे ! प्रतिष्ठा की पगड़ी बाँध कर वह आँखों में पहली बार अंजन लगाएगा। कानों में मणि-कुण्डल पहनेगा। केसरी बाने के साथ, कंधों पर ऊनी कम्बल डाल, पैरों में जूते पहन, बालों में साही के काँटों से बनी कंघी उड़से, छतरी लगाये, वह शान से श्रावस्ती की सड़कों पर निकलेगा। अयोध्या और पाटलिपुत्र की राजसभाओं में जाएगा। पुरोहित की गद्दी पर बैठेगा। राजा के मंत्रि-मण्डल में सम्मिलित होगा, जबकि वह बेचारी मूर्ख लड़की मगध के किसी उजाड़, भयानक विहार में सिर घुटाये बैठी, शाक्य मुनि द्वारा बताए निर्वाण की प्राप्ति में जुटी होगी।

अगर वह अपनी प्रतिभा पर इतना घमण्ड कर सकती है तो क्या मुझे अपनी श्रेष्ठता

पर गर्व नहीं है? और, केवल चित्रकारी और शिल्पकला में क्या रखा है, मैं सूत्रधार बनूँगा, मैं विधान बनाऊँगा। मनु, कपिल और जैमिनि मेरी चरण-रज को भी नहीं पहुँच सकते ! मैं प्रतिभा की दुनिया एक बार हिला के रख दूँगा ! ज्ञान मेरा है। गणेश की लेखनी मेरी है ! अगर चम्पक मेरी नहीं हो सकती तो क्या अँधेर हो गया ! सरस्वती तो मेरी है। वह मुझे कभी इस प्रकार छोड़ कर न जाएगी !

और चम्पक में ही क्या रखा है। सुन्दर तो संसार में हज़ारों युवतियाँ हैं। निर्मला कितनी सुन्दर थी !...चम्पक ! अगर ध्यान से देखा जाए तो तुम ऐसी कोई सुन्दर भी नहीं !

उसका रूप भला कैसा था? उसने क्रोध से चलते-चलते तीन-चार कंकरों को ठोकर लगाई। मैंने कम से कम यह तो निश्चय ही कर लिया है कि तुम्हारा चित्र कदापि नहीं बनाऊँगा। तुम समझती क्या हो अपने आप को। मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता। मैं तो उसकी शक्ल भी भूलता जा रहा हूँ। रूप केवल ढाँचा है। मेरे हृदय में जो रूप सुरक्षित है, उसे केवल विश्वकर्मा ही पहचान सकता है।

वह अपनी कुटी में दाखिल हुआ। फिर बाहर निकल आया और इधर-उधर घूमता रहा। आश्रम के लड़कों ने उसे आश्चर्य से देखा। किसी ने उससे पूछा—"कल रात से नज़र नहीं आए, कहाँ थे?" तो उसने रुखाई से उनकी बात टाल दी।

अखिलेश से उसने झूठ बोला कि नदी के किनारे तपस्या कर रहा था। इतनी आयु में उसने पहली बार झूठ बोला था, और अब उसे सारे झूठ बहुत अच्छे लग रहे थे। उसने संध्या नहीं की, न गुरु के दर्शन के लिए गया। आश्रम के कुंजों में मारा-मारा फिरता रहा।

मैं उसका चित्र कदापि नहीं बनाऊँगा। कला को जीवन के सारे सम्बन्धों से उच्च होना चाहिए !...उसने बार-बार दिल में दोहराया। लेकिन, अन्त में उससे रहा नहीं गया। वह कलाकार था, और सृजन की लगन ने उसे बहुत परेशान कर रखा था।

दूसरे दिन सुबह वह चित्रकारी और मूर्तिकला का सामान लेकर महुए के बाग़ की ओर चल दिया। तालाब के किनारे बैठकर उसने गेरू पीसा और उससे लाल रंग तैयार किया। नील की पुड़िया मिट्टी के कटोरे में घोली। हल्दी और केसर से पीला और केसरी रंग तैयार किया। दूसरे रंगों के लिए जड़ी-बूटियाँ उबालीं, और सफ़ेद चीनपट्ट सामने फैला कर चित्र बनाने बैठ गया। किन्तु, रूप और अरूप के संघर्ष ने फिर तूलिका रोक ली। मैं क्या बनाऊँ? फिर उसने सोचा—अर्थ का कोई स्थान नहीं होता। एक ही अर्थ को विभिन्न लक्षणों द्वारा प्राप्त किया जाता है और इन लक्षणों को विभिन्न स्थान समझा जा सकता है। इनकी वजह से अर्थ सीमित नहीं होते। चित्र रंग नहीं चित्रकार की आत्मा है। देखने वालों की आँखें हैं जिन्होंने उसे समझ लिया है—रंगेनां विद्या न चित्रम्। आँख केवल रंग देखती है जो स्तर पर मौजूद हैं जिस तरह काव्य केवल बयान है जिसे संवेदन ने प्रेरणा दी जिसका कोई स्थान नहीं, संवेदन-अनुभव संवेदन में मौजूद है।

उसे याद आया वेदांती कहते हैं ईश्वर अमूर्त है जिसका कोई रूप नहीं। जो ज्ञान से बाहर है। वह मानसिक कल्पना, या विचार भी नहीं इसलिए वेदांतियों के निकट कला की कल्पना अपार ब्रह्म या तुच्छ स्तर के लक्षण से आगे नहीं बढ़ता ब्रह्म। ईश्वर ऐसी ज़ात है जिसे रूप से उपमा दी जा सकती है और उस तस्वीर का स्रोत प्रकाश है। उसका वास्तविक स्वरूप

विभिन्न चीज़ों का स्वरूप है। विश्व रूप। मूल समस्या यह है कि विचार को लक्षण द्वारा ही देखने वालों तक पहुँचाया जा सकता है, सारे चित्रकार और समालोचक इस बात पर सहमत थे। इसी दृष्टिकोण ने मूर्तिपूजा का आरंभ किया था। किन्तु विचार से अलग, गौतम ने सोचा, जीवित अस्तित्व तो स्वयं जीवन है, लक्षण नहीं। उसकी ओर आकर्षण भावना पर निर्भर है। फिर कलाकार शुद्ध विचार को किस प्रकार प्रस्तुत करे ! उसका आचरण तो निष्पक्ष नहीं रह पायेगा। ध्यान—जो कलाकार की वास्तविक कला है—सम्पूर्ण नहीं रह सकता। शुद्ध आकृति—वस्तु की कल्पना, जो स्वयं वस्तु में है—वास्तविक ध्येय है। वस्तु की व्यक्तिगत दशा की किस प्रकार उपेक्षा की जाए?

यथार्थता—जीवन से आँखें नहीं चुराई जा सकतीं।

इसी प्रकार तालाब के किनारे बैठे-बैठे उसने बहुत-से चित्र बनाए और बिगाड़ दिये। लाल मिट्टी से बहुत-सी मूर्तियाँ गढ़ीं और तोड़ डालीं।

आश्रम के विद्यार्थियों में कानाफूसी आरम्भ हुई कि यह गौतम कुछ विक्षिप्त होता जा रहा है ! अखिलेश ने क्रोध से कहा—"नहीं, गौतम विक्षिप्त नहीं हुआ; उसे एक स्त्री की धुन सवार है ! ऐसी लज्जाजनक बात आज तक इस आश्रम में कभी हुई थी? कलाकार बनता है और विचार के बजाय रूप के पीछे भाग रहा है।"

नगर की चित्रशालाओं में काना-फूसी हो रही थी—गौतम नीलाम्वर क्या अब नागरिक[1] चित्रकारी करेगा। सुना है उसने अयोध्या की कुमारी चम्पक की तस्वीर बनाई है।

"हाँ मैंने भी यही सुना है।" चित्रकारों की मंडली के प्रमुख ने विचार प्रकट किया।

"अब वह प्रतिमाकार नहीं रहा।"

गौतम चित्र और मूर्तियाँ बनाता रहा। उसने आश्रम की पीली दीवारों पर मिट्टी, बुरादा और चूना पोत कर गहरे रंगों की आकृतियाँ बनाईं। उसने लाल मिट्टी की मूर्तियाँ ढालीं। अब तक जो पट्टिकाएँ चित्रित की जाती थीं उन पर अधिकतर ब्रह्मज्ञान के लक्षण-चिन्ह उभरे हुए थे—त्रिशूल, कल्पवृक्ष, पृथ्वी के कमल, संसार क चक्र और कमल के आसन और अग्नि के स्तम्भ। गौतम नीलाम्वर की पट्टिकाओं पर गाँव के दृश्य थे—स्त्रियाँ, बैल, पत्ते, गायें, फूलों के नमूने, लड़के। इन आकृतियों में शक्ति थी और जीवन की अरुणिमा और ऊष्मा। अलौकिक जीवन न होकर वास्तविक जीवन था। यह धरती की अपनी सृष्टि थी।

फिर, एक दिन उसने सुदर्शन यक्षिणी की मूर्त्ति तैयार कर ली। सुदर्शन यक्षिणी, जो कदम्ब की डाली झुकाए, वृक्ष के तने से लगी खड़ी थी।

नगर के कलाकारों ने उसे देख कर सिर हिलाया। चित्रशालाओं और मन्दिरों में उसे नापसन्द किया गया। जनता, जिसमें कला की साधारण रसिकता थी, उसे देख कर ख़ामोश रही।

आलोचकों ने गहरी दृष्टि से उसकी आकृतियों को जाँचा, परन्तु गौतम की प्रशंसा किसी ने नहीं की। सबको अचम्भा था।

कलाकारों और बुद्धिजीवियों की मण्डली में उसके सम्बन्ध में वादविवाद चलने लगा।

1. फैशनेबल पोर्टरेट पेंटिंग

गौतम ख़ामोशी से सुनता रहा, स्वयं कुछ न बोला। वह दर्शन का मार्ग छोड़ चुका था इसलिए यह न बता सका कि विशुद्ध सौन्दर्य का अनुभव वास्तव में क्या वस्तु है, वह किस प्रकार प्राप्त होता है; किस प्रकार दूसरों तक पहुँचाया जा सकता है ? रूप और अरूप, भाव और अभाव के झगड़ों का निर्णय करने वाला कौन था ? वह तो केवल यह चाहता था कि मनुष्यों को, उनके रहस्यों को पाषाण में आबद्ध कर ले। वेदान्त के उपासक की दृष्टि से उसने सोचा कि विशुद्ध सौन्दर्य सम्बन्धी अनुभव पृथक् आनन्द है, वह विद्युत की तरह है, उसे बाँटा नहीं जा सकता। स्वयं प्रकट होता है, वह स्वयं-प्रकाश्य है। जिस प्रकार कलाकार की कल्पना विश्वकर्मा की कल्पना में शामिल है, उसी प्रकार द्रष्टा आत्मा या अहं में वर्तमान है, जो प्रतिक्षण देखता है और जिसका स्वरूप संसार का द्योतक है। सौन्दर्य का आदर्श दृष्टिकोण वह है जो संसार के रूप को केवल अहं समझता है, जो अहं के धरातल पर बनाया गया है। यह वही विशुद्ध ज्ञान और विशुद्ध जीवन—हृदय का चित्रालय, जहाँ सारे चित्र मौजूद हैं, सारी कल्पनायें मौजूद हैं; जहाँ पहुँच कर सारी उपमाएँ एक हो जाती हैं; जहाँ विभिन्न रंगी दर्पणों में से एक में से ही प्रकाश झलकता है; और हर एक वस्तु जो ढंग से बनाई गई है, सच्चाई से बनाई गई है वही पूर्ण कलाकृति है। और, कलाकार और दर्शक के लिए यह एक ही मार्ग है; और समझने वाले प्रबुद्ध विद्वान ही उसे समझ सकते हैं।

सुदर्शन यक्षिणी के सृजन के साथ वास्तुकला की एक शैली शुरू हुई। वास्तुकला विशुद्ध सांसारिक बनी। उन मूर्तियों में विशुद्ध यथार्थवाद था। ये कदम्ब और वृक्षों की वनदेवियाँ, इन्द्रलोक की देवबालाएँ वास्तव में अयोध्या और श्रावस्ती की आर्यपुत्रियाँ थीं, गाँवों की कृषक लड़कियाँ थीं जो हर दिन सचमुच पनघट पर पानी भरने जाती थीं, सावन गाती थीं और खेतों की निराई करती थीं।

सुदर्शन यक्षिणी कमर पर बल खाए तिरछी खड़ी थी। जिसकी भुजाएँ मांसल थीं, आँखें बड़ी-बड़ी, शरीर बहुत सुदृढ़ और बहुत सुडौल था। यह आकृति और मोटाई के संतुलन; शांत, लोच और गति की अनुभूति का संपूर्ण संयोजन था। इस शैली में जीवन था, गति थी और थी शक्ति, स्वतंत्रता तथा सन्तोष की तीव्र भावना। यहाँ बन्धन नहीं था, कलाकार को अन्ततः बंधन से मुक्ति मिली थी। अब उसे ज्ञात हो गया था कि वह क्या बनाएगा।

अब शिल्पकार संन्यासी नहीं रहा। उसने सुन्दर स्वस्थ मुस्कराती हुई स्त्रियों और पुरुषों के शरीर गढ़े—स्त्रियाँ जो आकर्षक आलस्य और वैभव की भावना के साथ खड़ी थीं या बैठी थीं, उनके चेहरों पर उदासी नहीं थी। चेहरे जो व्यक्तिगत विचारों में लीन मुस्करा रहे थे। यह वास्तविक दुनिया थी—दुनिया जो आसपास, चारों ओर, दूर-दूर तक फैली हुई थी। और कलाकार, जिसकी शक्ति उसे सरस्वती का चहेता बना रही थी, शान्तिपूर्वक जीवित रहने का इच्छुक था।

एक दिन गौतम कुछ नए चित्र लेकर विमलेश्वर के चित्र-निकेतन में श्रावस्ती पहुँचा। वहाँ पहले की ही तरह उसके समस्त मित्रों और विरोधियों का जमघट था। इस समूह में उसे कुछ लिपिक तथा अन्य लोग भी दिखाई दिये, और उसे कुछ आश्चर्य हुआ। ये सब कभी राजनीति पर बहस करने के लिए उसकी कुटिया में जमा होते थे। सब लोग मौन बैठे थे, किसी गहरी चिन्ता और सोच-विचार में डूबे बैठे थे। उन्होंने सिर उठा कर उसे देखा और

फिर चुप रहे। वह भी चुपचाप खिड़की के पास जाकर बैठ गया, और नीचे बाज़ार की चहल-पहल को देखने लगा।

"तुमको नहीं मालूम ?" विमलेश्वर ने आख़िर बात आरम्भ की।

"क्या ?" गौतम ने पूछा।

"तुमने कुछ भी नहीं सुना ? आख़िर किस दुनिया में रहते हो ?"

"क्या हुआ बताओ तो–?"

बाहर किसी ने कुण्डी खटखटाई और अखिलेश अन्दर आया। उसकी साँस फूली हुई थी और उसके पैर धूल में अटे हुए थे। मालूम होता था बहुत दूर से भागा चला आ रहा है।

"भाइयो !" उसने धीरे से कहा, "अपना-अपना सामान समेटो और तुरन्त यहाँ से भाग निकलो !"

"क्यों ? क्या हुआ ?" गौतम ने दुबारा प्रश्न किया।

"मगध में लड़ाई छिड़ चुकी है, भाई गौतम ! चन्द्रगुप्त की सेनाएँ सारे देश को अपने अधीन करती हुई इसी ओर आ रही हैं। अब यहाँ हल चल जाएँगे। मैदानों में सुब्रमण्य युद्ध देवता ने अपना नाच आरम्भ कर दिया है। अब तुम्हारा समय समाप्त हुआ ! मृत्यु युद्ध की दुंदुभि बजाती तुम्हारा पीछा कर रही है–मृत्यु, जो रूप और अरूप, भाव और अभाव के अन्तर को मिटा देती है !" अखिलेश थक कर चटाई पर बैठ गया और उसने आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर बाद उसने कहा–"राजन् शिकार से वापस आ रहे थे कि विष्णुगुप्त के सिपाहियों ने उनके साथियों पर हमला कर दिया। सब के सब मारे गए !"

"सब के सब !" गौतम ने पूछा।

"हाँ, सुना है, राजकुमारियाँ नदी तैर कर पांचालों के राज्य की ओर निकल गईं, किन्तु सिपाही उनका पीछा कर रहे हैं।"

"क्या चम्पक भी मारी गई ?"

"वह कौन है ?" अखिलेश ने आँख खोल कर बड़ी निर्दय आवाज़ में कहा–"युद्ध में इंसान नहीं रहते केवल नाम रह जाते हैं।" फिर वह उठ खड़ा हुआ।

"तुम कहाँ जा रहे हो, भाई अखिलेश ?"

"मैं लड़ने जा रहा हूँ। किन्तु, शायद तुम नहीं लड़ोगे, क्योंकि तुम अहिंसा के पुजारी बन चुके हो !" उसने अपनी चप्पलों की धूल झाड़ी और उसी शान्त भाव से बाहर निकल गया।

युद्ध–शांति–रक्तपात–अहिंसा।

वह घबरा कर खड़ा हो गया। उसने विमलेश्वर से कहा–"मुझे बताओ, किस समय लड़ा जाए, किस समय नहीं ? कोई हरिशंकर से यह पूछने जाओ जीवहत्या किस समय उचित है और किस समय अनुचित ?" वह कमरे में इधर से उधर टहलने लगा। "भाइयो, मेरा नन्द राजा से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं विष्णुगुप्त को नहीं जानता, चन्द्रगुप्त से मेरा कोई झगड़ा नहीं। ये सब मिल कर मुझे अपनी लड़ाई में क्यों घसीटते हैं ? लेकिन, मुझे भी दूसरों को मारना पड़ेगा ? मुझे तो इन सबकी जानें बहुत प्यारी हैं। मैं स्वयं भी जीवित रहना चाहता

हूँ। मैं अब क्या करूँगा ?" खिड़की के पट से सिर लगा कर उसने आँखें बन्द कर लीं।

इसी बीच जो लोग शाला में उपस्थित थे, अपने-अपने जूते पहन कर बाहर निकलने लगे। उनके जाने की आहट पर गौतम ने आँखें खोलीं और देखा कि कमरा सुनसान पड़ा है। वह उनके पीछे-पीछे बरामदे तक भागा और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा—"अरे ! अपनी-अपनी मूर्तियाँ छोड़ कर कहाँ जाते हो ? ये टूट जाएँगी, भाइयो, भाइयो !"

लेकिन, सहसा नीचे बाज़ार में मानो प्रलय का-सा शोर मच गया। नगर पर युद्धरथों और हाथियों का आक्रमण आरम्भ हो चुका था। पल की पल में सारा बाज़ार रणभूमि में बदल गया। धूल और हाथियों की चिंघाड़, तीरों की सनसनाहट, तलवारों और ढालों की झनकार और औरतों और बच्चों के रोने और चीखने की आवाज़ों के भयानक भँवर में उसकी अपनी आवाज़ डूब कर रह गई। वह मूर्तिवत बरामदे की सीढ़ियों पर खड़ा सामने का दृश्य देखता रहा। बाज़ार की ईंट से ईंट बज चुकी थी। उसके चित्रकार साथियों की लाशें सड़क पर इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। चाणक्य के सिपाही बड़ी सफ़ाई से लोगों की गर्दनें उतारने में व्यस्त थे। गौतम की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। आख़िर वह लड़खड़ाते हुए चित्रशाला की सीढ़ियों से उतरा। उसने मृत विमलेश्वर के हाथ से तलवार झटकी और सपने जैसी अवस्था में चलता, क्योंकि वह स्वयं युद्ध में दक्ष था, सड़क पर उतर गया।

गौतम रात गए तक लड़ता रहा और अन्त में ज़ख्मों से निढाल होकर एक गली में गिर पड़ा। वहाँ चारों ओर नागरिकों की लाशों के अंबार थे।

क्षितिज के निकट, नगर से कुछ दूर जेतवन का भवन चुपचाप पेड़ों में छिपा खड़ा था। उसका कलश अँधेरे में मद्धम-मद्धम झिलमिला रहा था, जैसे इस सारे दृश्य पर ख़ामोशी से हँसता हो।

14

समय बीतता जा रहा था। देश में अब मोर के राजचिन्ह वाले सम्राट् का राज है—वह जो देश के चित्रांत साम्राज्य का प्रथम सम्राट् है। सम्राटों की वंशावली चन्द्र इंसानों का चाँद जो पाटलिपुत्र के सिंहासन पर उदय हुआ है—यह शूद्र माँ का बेटा, जिसे गड़रियों ने पाला, जिसे चाणक्य ने तक्षशिला में परवान चढ़ाया, यह अब नया इतिहास लिखवाएगा। अनुश्रुति के काल समाप्त और नन्दों के निन्यानवे करोड़ अशरफ़ियों के ख़ज़ानों की कहानियाँ सपने हुईं।

यह आधुनिक युग है।

चन्द्रगुप्त बड़ा शक्तिशाली सम्राट् है। उसके शासन का डंका सारे संसार में बज रहा है। उसकी राजधानी संसार के महानगरों में गिनी जाती है। उसकी सैनिक-शक्ति से दूसरे देश भयभीत हैं, उसके हज़ार स्तंभों वाले काठ्य महल में दूर-दूर के राज्यों के राजदूत मौजूद हैं। उसके दरबार में म्लेच्छ, दूसरी भाषा बोलने वाले विदेशी लोगों की भीड़ है। दूर पश्चिम के देशों की गोरे रंग की लड़कियाँ महल में नर्तकियों और दासियों की हैसियत से नौकर हैं। सारा शहर दुल्हन की तरह सजा हुआ है। खेल के विशाल मैदान में भाला चलाने और रथों के विशाल

मुकाबले हो रहे हैं। सड़क पर सम्राट् की सवारी गुज़रती है। संगीतकार शंख बजाते साथ-साथ जा रहे हैं। चौराहों पर नृत्य हो रहा है। झरोखों में से फूलों की वर्षा होती है। जनता जय-जयकार बोलती है। अब ग्राम भोजक उनसे ज़बरदस्ती लगान वसूल नहीं करता। अब वे चोरी और अशांति के कष्टों से सुरक्षित हैं। उनकी समृद्धि में बढ़ोत्तरी हुई है। क्योंकि विष्णुगुप्त, जिसका दूसरा नाम चाणक्य है, और कौटिल्य है और जिसने महापद्म नन्द को अपनी कूटनीति से पराजित किया, उसी विष्णुगुप्त के परामर्श से राज्य का शासन चलता है (और शाक्य मुनि ने कहा था कि विजय घृणा को जन्म देती है, क्योंकि पराजित दुःख की नींद सोते हैं; लेकिन विजय और पराजय से ऊपर रहने वाला शान्त व्यक्ति सुख में रहता है।)

परन्तु, हर विजय या पराजय इतिहास के रास्ते पर एक मोड़ है, जिसके कारण दुनिया किसी न किसी तरह आगे बढ़ती है। इस विजय के बाद ही जन-साधारण प्रथम बार राष्ट्रीयता की भावना से परिचित हुए हैं। उनको एक अस्पष्ट-सा आभास हुआ है कि वे एक राष्ट्र हैं, जो बहुत सारे समुदायों, जातियों और परिवारों से भी ऊँची एक दूसरी चीज़ है। वे एक ऐसी वस्तु हैं, वे एक राष्ट्र हैं जिन्होंने चन्द्रगुप्त प्रियदर्शी के नेतृत्व में ईरानियों और यूनानियों को अपने देश से निकाल बाहर किया है। मगध—प्राकृत मगध की लोक बोली में बदलती जा रही है।

विष्णुगुप्त तक्षशिला का ब्राह्मण अपने दृष्टिकोण को अब प्रयोग में ला रहा था। वह जानता है नेकी का राजनीति में बदला नहीं मिलता। राजनीति में अपराध की सज़ा नहीं दी जाती। प्रतिकार और दंड के मामले को उसने धर्मशास्त्र वालों के लिए छोड़ दिया है। वह कहता है राजनीति में केवल गलती से परे रहना चाहिए। राज्य का कल्याण व्यक्तिगत लाभ से श्रेष्ठ है।

खनिज पदार्थ, बाज़ार, मंडियाँ, नहरें, सिंचाई, चिकित्सालय, वित्त, तिजारती गोदाम, बाग़, शुल्क, दीवानी, फौजदारी, तलाक, शादी, दायधिकार के नियम, जन संपर्क, विदेशी मामलात, सुरक्षा चरागाहों और कस्साबखाने के उसने अलग-अलग विभाग स्थापित किए हैं। सारे में जासूसी का जाल फैला दिया गया। जो ब्राह्मण अपनी विद्या द्वारा रोजी नहीं कमा सकते और असफल व्यापारी, हज्जाम, नौकर-चाकर, नजूमी, वेश्याएं और किसान हर व्यक्ति अपनी योग्यता से गुप्तचर विभाग में शामिल हो सकता है। साधुओं के भेस में इधर-उधर घूम कर गुप्तचर चंद्रगुप्त के सिंहासन की सुरक्षा में जुटे हैं। विद्रोह का पता लगाते हैं। वेश्याओं के घरों और जुएखानों में जाकर जनता के विचारों से अवगत रहते हैं। अपराध को जड़ से उखाड़ने के लिए भेदी का काम कर रहे हैं। सारे में शांति है। मनु ने कहा था जहाँ काली रंगत और सुर्ख़ आँखों वाली डंड अपराधियों को समाप्त करती धरती पर घूमती हो वहाँ की प्रजा तंग नहीं होती। यहाँ बादशाह डंडधर है और राजा-प्रजा खुश हैं।

पाटलिपुत्र पर इतनी रौनक इससे पहले कभी नहीं आयी।

नए-नए भवन बन गये हैं। आबादी बढ़ती जा रही है। साथ-साथ भाषा में परिवर्तन हो रहा है। मगध नाम नृति (प्राकृत मगध की लोकभाषा) में बदली जा रही है।

नाटक और संगीत की कलाएँ उन्नति पर हैं, दूर-दूर के देशों का सामान बाज़ारों में बिक रहा है। वैरागी और सँपेरे गलियों में दुतारा और बीन बजाते फिर रहे हैं। बहरूपिये मंडपों के नीचे स्वाँग भर रहे हैं।

एक नाटक-मंडली जो काशी से आई है नए-नए नाटक दिखा रही है। इन नाटकों का लेखक प्रथम बार पाटलिपुत्र आया है, परन्तु उसकी ख्याति उससे पहले यहाँ पहुँच चुकी है। उसके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ लोग सुनाते हैं। कहा जाता है वह बहुत बड़ा गुणी और कलावन्त है। एक ज़माने में वह शिल्पकार था और मूर्तियाँ बनाता था। नट है, बहुत सुन्दर नृत्य करता है; अभिनेता है, अभिनय करता है। भरतमुनि की सारी कला उसने घोल कर पी रखी है। बरसों उसने अयोध्या के गुणी जनों और गन्धर्वों की संगत में गुज़ारे हैं। सारे स्वर उसके अधीन हैं। बड़े-बड़े गायक उसका लोहा मानते हैं। पर, तब भी उसे चैन नहीं पड़ता। सारे देश में घूमा-घूमा फिरता है, किसी एक जगह टिक कर नहीं बैठता। किसी एक कला को अपना केन्द्र नहीं बनाता। ऐसा लगता है जैसे बादल की छाया को अपनी पकड़ में लाना चाहता हो, और वह उसके हाथ नहीं आती।

इस नाटक की बहुत धूम मची है। सारा पाटलिपुत्र नाटकघर की ओर उमड़ा चला आ रहा है। महिलाओं के रथों और पालकियों का ताँता बँधा है। राजकुमारियाँ और अमीरों, मंत्रियों और व्यापारियों की बेटियाँ तथा राज्य-शासन के उच्चाधिकारियों की पत्नियाँ, सभी रंग-बिरंगी साड़ियाँ, जड़ाऊ पटके और सुनहरी करधनियाँ पहने, आ-आकर नाटकघर के भवन में बैठ रही हैं। अविवाहित युवतियाँ इस अभिनेता और लेखक को देखने के लिए बहुत उत्कण्ठित दिखाई दे रही हैं। उन्होंने सुन रखा है कि वह बड़ा सुंदर है—और, महिलाओं की एक बड़ी कमज़ोरी यह है कि वे कला की अच्छाई या बुराई के प्रश्न को कलाकार के रूप और शरीर से गड़बड़ा देती हैं !....

सफ़ेद पर्दा एक तरफ़ को सरकाया गया। नक़्क़ाशीदार लकड़ी की रंगभूमि का पिछला पर्दा कलशों, पटकों और चित्रों से सजा था। वादकों की मंडली सामने बैठी थी....वंदना करने वाली लड़कियों ने आसपास के स्तम्भों से निकल कर महादेव की स्तुति की और उनमें से एक लड़की टोली से बाहर आकर, कमर पर हाथ रखे एक ओर को खड़ी हो गई। यह नाटक की नायिका थी। उसकी लम्बी वेणी में मोतियों का गजरा गुँथा था। उसकी सुनहरी करधनी में लाल जड़े हुए थे।

फिर रंगभूमि के सफ़ेद चिकने मंच पर वह प्रकट हुआ, जिसकी इतनी देर से सब प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने केसरी रंग के रेशमी वस्त्र पहन रखे थे। उसके कानों में कर्णफूल जगमगा रहे थे। वह बड़े गर्व से सिर उठाएं सामने शून्य में देखता बड़ी गम्भीरता से क़दम रखता सामने आया, और कुछ क्षणों तक सबकी ओर दृष्टि डाल कर, नियमानुसार नटी से इस नाटक के विषय के बारे में संवाद आरम्भ कराया। दर्शक उसकी सुन्दर आवाज़ से मंत्रमुग्ध हो गए। सब टकटकी बाँधे, अपने-अपने स्थान पर स्थिर और मौन, गर्दनें आगे बढ़ाए उसे देखने में लीन थे।

संवाद के बीच में किसी बात पर ज़ोर देने के लिए उसने पहले अपना दायाँ और फिर बायाँ हाथ हवा में ऊँचा किया।

दर्शक चौंक उठे। उनके चेहरों पर दुःख की एक लहर दौड़ गई। महिलाओं ने दुःख की तीव्रता से आँखें बन्द कर लीं। इस सुंदर और अनोखे कलाकार के दोनों हाथों की उँगलियाँ कटी हुई थीं।

15

गौतम नीलाम्बर के सामने एक और नगर था, दर्शकों का एक और समूह जो सदा की भाँति श्रद्धा और प्रेम से उसे देख रहे थे। वह सबको नाटक दिखाता था, लेकिन उसका नाटक किसी ने न देखा था, जिस प्रकार रंगभूमि के पिछले पर्दे के पीछे एक और रंगभूमि होती है जो दर्शकों को नज़र नहीं आती।

पाटलिपुत्र के ये सभ्य और प्रतिष्ठित नागरिक जो नाट्यशाला में बैठे हुए उसके संवादों पर झूम रहे थे—उनमें से किसी को भी ज्ञात न था कि वह कैसी-कैसी दुनियाओं के भ्रमण के लिए निकला है, उसने जीवन के सारे प्रयोग कर देखे हैं और अब कुछ बाकी नहीं। जिन चीजों से उसने बचना चाहा, जिन बातों की उसने उपेक्षा करने की कोशिश की, केवल यह सोचना चाहा कि जीवन केवल शून्य है, या केवल प्रकाश, या केवल अंधकार। परन्तु यहाँ 'केवल' का अस्तित्व न था। वह संसार की वास्तविकता को अपने मार्ग से नहीं हटा सकता। दुनिया पग-पग पर अपने हर रूप में उसके सामने खड़ी उसका मुँह चिढ़ा रही है। वह युद्ध का विरोधी था, और उसने अपनी तलवार से श्रावस्ती के युद्ध में विरोधी सेना के पाँच सिपाहियों का वध किया था—पाँच प्राणी—जो उसकी अपनी दुनिया के वासी थे, उसकी तरह बोलते थे, गीत गाते थे, उसी जैसा हृदय और मस्तिष्क रखते थे। वह ब्रह्मचारी था, परन्तु ब्रह्मचर्य के कठोर नियमों को तोड़ कर उसने एक युवती से दीवानों की तरह प्रेम किया था। उस युवती की सोच से छुटकारा पाने के लिए, उसकी मूर्ति गढ़ने के लिए उसने कला की दुनिया में शरण ली थी। अन्ततः यह उसकी अपनी दुनिया थी। थोथे शब्दों और शुष्क दर्शन की सीमाओं से ऊँची और ऊपर की, यहाँ रंगों और पत्थरों की संगत में वह जीवित रहा, परन्तु युद्ध में लड़ते समय 'शत्रु' की तलवार से उसके दोनों हाथों की उँगलियाँ कट गईं।

श्रावस्ती के बाज़ार में आक्रमणकारियों से वह दिन भर लड़ा था, रात गए तक लड़ता रहा था और फिर भाले के एक वार से घायल होकर गिर पड़ा था। जब वह सचेत हुआ और उसने सिर उठा कर देखा कि रात का अंधकार आकाश पर से मद्धिम होता जा रहा है, वह घावों से चूर है, और उसके हाथ लहूलुहान हैं। उसने लेटे-लेटे बड़ी कठिनाई से अपनी हथेलियाँ फैलाईं जो खून से लथपथ थीं।

तब उसे एक अटल सत्य का आभास हुआ। हाथ की वे उँगलियाँ...जो सौंदर्य सृजन के लिए बनाई गई थीं, रक्त में नहला दी जाती हैं। किसी शांत विहार में बैठ कर वह इस सत्य को नहीं झुठला सकता था। कलाकार होने के कारण मनुष्य का हाथ उसके लिए बड़ा प्रतीक था। उँगलियाँ जो नृत्य की मुद्राओं द्वारा संसार के सारे रहस्य, सारे जीवन के अर्थ का प्रदर्शन करती हैं, भवनों का निर्माण करती हैं, उद्यानों को सींचती हैं, बाँसुरी बजाती हैं, थपक-थपक कर बच्चे को सुलाती हैं, तथा आरती के लिए कदम्ब के फूल चुनती हैं। और, दूसरा सत्य यह था कि उँगलियाँ बाण चलाती हैं, भाले ढालती हैं और दूसरे मनुष्यों का अपनी जकड़ से गला घोटती हैं।

तब उसने कटी हुई उँगलियों को देखा और सोचा कि यह उसके कर्मों का फल होगा।

इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? कर्म दर्शन से उसे बड़ा सन्तोष और सांत्वना प्राप्त हुई। यदि यह दर्शन मेरे पास न होता तो मैं सोच-सोच कर दीवाना हो जाता।

ज़रा-सी शक्ति आने के बाद वह उठा और शवों को लाँघता हुआ गलियों की दीवारों का सहारा लेता अपने घर की ओर गया—जहाँ उसकी माँ थी—जो उसके घाव धोएगी, उसको अपनी गोद में सुलाएगी।

लेकिन, उसका घर सुनसान पड़ा था। यहाँ वह बीस साल बाद उस समय पहुँचा था, जब उसकी माता और पिता कुछ घण्टे पूर्व युद्ध में मारे जा चुके थे।

लड़खड़ाता हुआ वह नगर से बाहर आश्रम की ओर रवाना हुआ। वहाँ निस्तब्धता छाई हुई थी। झोंपड़े मौन पड़े थे। गुरु की कुटिया ख़ाली थी।

वह धीरे-धीरे महुए के बाग़ में आया और तालाब की सीढ़ियों पर लेट गया। उसके घावों के रक्त ने तालाब के स्वच्छ पानी को लाल कर दिया।

एक युवती ग्वालिन ने जो उधर से गुज़र रही थी, उसे सिसकता हुआ देखा। वह घबरा कर दौड़ी हुई उसके पास आई। उसने पानी से उसके घाव साफ़ किये, और उसे गाय का ताज़ा दूध लाकर पिलाया।

और, बजाय इसके कि वह उसे धन्यवाद कहता, उसे बड़े ज़ोर से हँसी आ गई।

ग्वालिन उसे अचम्भे से देखने लगी, कैसा अजीब सिपाही है ! युद्ध के मैदान से लड़ता-मरता आ रहा है और हँसता है।

पर, उसे इतनी हँसी आई कि उसका जी चाहा कि ज़ोर-ज़ोर से कहकहे लगाए। इसी कारण उसने उस ग्वालिन से यह भी नहीं पूछा कि तुम्हारा नाम सुजाता है या नन्दबाला ?

क्योंकि, उसे इस समय हरिशंकर के शब्द याद आ चुके थे—"भाई गौतम ! हर काल में, हर मोड़ पर, तुम्हें कोई नन्दबाला मिलेगी, कोई सुजाता ! और, वह निकट आकर तुम्हारी सेवा—तुम्हारी आराधना करना चाहेगी। अब भी समय है ! आँखें खोल लो !" यह दूसरा अनुभव था। उसे ज्ञात हुआ कि नारी की सेवा, उसकी आराधना को ठुकराना भगवान के प्रति सबसे बड़ी कृतघ्नता है। उसने आँखें आधी खोल कर बड़ी शान्ति सन्तोष के साथ ग्वालिन के कंगनों को छुआ। फिर, उसके पल्लू पर सिर रख कर सो गया।

ग्वालिन उसे उठा कर अपने घर ले गई, जहाँ वह कई दिन तक—जब तक कि उसके घाव भर नहीं गए—उसका अतिथि रहा। यह उसका पड़ोसी गाँव था जो अब उजाड़ पड़ा था। बहुत-से निवासी महाराज चन्द्रगुप्त की सेना के भय से भाग कर इधर-उधर चले गए थे। ग्वालिन ने उसे रोकना चाहा, लेकिन एक दिन वह चुपके से उस गाँव से निकल गया। सुजाता—यही उस लड़की का नाम था, बहुत रोई, किन्तु अब तक वह नदी पार करके बहुत दूर पहुँच चुका था।

धीरे-धीरे देश में शान्ति स्थापित हुई। चन्द्रगुप्त का राज्य सुदृढ़ हो गया। गौतम घूमता-फिरता काशी जा निकला। वह एक सुयोग्य विद्वान ब्राह्मण था। अपने ज्ञान के सिवाय उसके पास कोई और व्यापार न था। लेकिन, उसे चिन्ता नहीं थी। विद्यार्थी और ब्रह्मचारी की हैसियत से हमेशा भूखा रहने और विपत्तियाँ झेलने की आदत थी। उसे यह बनजारों-जैसा जीवन बुरा नहीं लगा। मगर, अब वह विद्वानों की संगत से और उनसे वाद-विवाद करने से

बचता था।

काशी में एक दिन एक नाटकघर की नायिका से उसकी भेंट हुई, वह देखते ही उस पर आसक्त हो गई। और उसने गौतम को अपनी मण्डली में शामिल कर लिया।

अपनी कटी हुई उँगलियों से वह अब चित्र नहीं बना सकता था, मूर्तियाँ नहीं ढाल सकता था, नाच नहीं कर सकता था, केवल अभिनय द्वारा अपने कला-प्रदर्शन का मार्ग उसके सामने था। विद्यार्थी जीवन में उसने नाटक लिखे थे, फिर वह दार्शनिक, विद्वान, चित्रकार बना और अब अभिनेता नायक बन गया।

नाट्यशास्त्र में लिखा था कि अभिनय के लिए ज़रूरी है कि उसकी आँखें लम्बी हों। होंठ लाल, दाँत चमकीले, उसमें प्रतिष्ठा, वैभव और गर्व होना चाहिए। छंद शास्त्र, भाषण कला और ललित कला में दक्षता प्राप्त होनी चाहिए। गौतम में ये सब गुण मौजूद थे। वह विद्या का अपार सागर था। उसका पद ऊँचा था। वह भी नृत्य और संगीत की तरह दैविक हैसियत रखता था। कहा जाता है कि ब्रह्मा ने इंद्र की इच्छा पर पाँचवें वेद की हैसियत से नाटक स्थापित किया। शिव इस कला में देवताओं के गुरु बने। पार्वती ने अप्सराओं को अपना शिष्य बनाया। विश्वकर्मा ने रंगभूमि तैयार की किंतु एक बार गंधर्व और अप्सराओं ने एक नाटक में एक ऋषि का मज़ाक उड़ाया जिसके शाप के कारण उन नायकों को देवलोक छोड़ कर इस दुनिया में आना पड़ा। यहाँ भी उनकी पदवी में कमी नहीं आई। अभिनेता कुश-लव कहे जाते थे क्योंकि श्रीराम के दोनों बेटे बंजारे गायकों के भेस में अपने पिता के दरबार में पहुँचे थे।

सारा संसार बहरूप से खुश होता है। गौतम इन प्रथाओं के बारे में सोच कर ख़याल करता—"बहरूप एक और सत्य है।"

नाटक-कला बहुत विकासशील और सर्वव्यापी थी। भरत मुनि ने इसके नियम बनाए थे। उन्होंने अड़तालीस प्रकार के नायक और पौने चार सौ प्रकार की नायिकाओं की सूची बनाई थी। उन्होंने निर्देशन और रंगभूमि की सजावट और अभिनेताओं के गुणों के बारे में विस्तार से लिखा था। शांति और संतुलन नाटक के लिए अनिवार्य था। तीव्र त्रासदी और हत्या व आतंक से दूर रहा जाता था ताकि दर्शकों की मानसिक शांति में विघ्न न पड़े।

वियोग नाटक का मुख्य विषय था। गौतम नीलाम्बर ने भी इस परम्परा को जारी रखा। वियोग के सिवाय और कौन-से विषय वह अपने लिए चुन सकता था। नाट्य, नृत्य और साम गीत में उसने खुद को समो दिया। एक दिन नाटकघर की उस नायिका ने उससे कहा—"मैंने सुना है, तुम बहुत सुन्दर नाचते हो, मुझे भी सिखा दो।"

"तुमको सिखला दूँ ? तुमको अभी और सीखने की आवश्यकता है ?" गौतम ने चिढ़ कर कहा—"मुझे तो कुछ नहीं आता-जाता।" उस दिन उस पर अत्यंत ही बदमिज़ाजी और चिड़चिड़ाहट का दौरा पड़ा था।

वह सहम गई। फिर उसने धीरे से कहा—"पता नहीं, लोग कहते हैं, उन्होंने अपनी आँखों से तुमको खुद नृत्य करते हुए देखा है।"

"कौन लोग ?" वह फिर गरजा।

"जाने कौन ? अयोध्या के कुछ नर्तक बता रहे थे। एक बार उन्होंने युद्ध से पहले किसी उत्सव में तुम्हें नृत्य करते देखा था।"

"अयोध्या के ?" गौतम का दिल डूब-सा गया। वह सहसा नर्म पड़ गया। उसे उस लड़की पर तरस आया। वह उस पर कितनी बुरी तरह आसक्त थी—बेचारी ! "वो कौन लोग थे ?" उसने फिर कहा।

"क्या पता ! नाटकघर में दसियों तरह के लोग आते-जाते रहते हैं।" लड़की ने कुछ बेपरवाही से जवाब दिया—"अच्छा, अब मैं घुँघरू बाँधती हूँ।"

वह उमा तांडव करती रही। वह उसे देखा किया। फिर उसने आँखें बंद कर लीं।

घुँघरुओं की आवाज़ उसके कानों में पहुँचती रही। वह एक और सत्य से परिचित हुआ—सृष्टि के सारे विधान में लय है। विश्व में लय है; और चिदम्बरम् शिव नृत्य करते हैं। शिव किसी काल्पनिक ईश्वर का नाम नहीं, जो पहाड़ों पर रहता है। वह मेरे अपने दिल में वर्तमान है—वह जो सृजन भी है ध्वंस भी, जो बनाता भी है और बिगाड़ता भी है। जो साकार और निराकार तथा मृत्यु और जीवन का सम्पूर्ण विधान है।

और, वह हर वस्तु में, ताल, लय और सुर में लुप्त है। सृजन और विकास तथा नित्यता और विनाश में नृत्य है। ब्रह्मा, जिसने रचना की है; विष्णु जो अविनाशी हैं; रुद्र जो अंत है; महेश्वर जिसने आत्माएँ रची हैं; सिद्धेश्वर जो उन्हें उनके चक्र से मुक्ति दिलाता है—ये सब उसी के विभिन्न रूप हैं, जो स्वयं भगवान् है, सार्वकालिक नर्तक है।

इस नाच के रस और भाव मानव की सारी मानसिक, हार्दिक और आत्मिक अवस्था को प्रकट करते हैं और सांसारिक कल्पनाओं से उन्हें सम्बद्ध किया गया है। शृंगार रस विष्णु का है इसमें उनके अवतार नटवर गिरधारी वृंदावन में गोपियों के संग लीला रचाते हैं। वीर रस कड़कते गर्जते बादलों के सुनहरे देवता इंद्र से संबद्ध है। करुणा दया की भावना है यम से इसका रिश्ता जोड़ा गया है, रुद्र प्रकोप की दशा है। हास्य सफ़ेद रंग पहने प्रहास है। भयानक रस का रंग काला है। काल से सम्बद्ध महाशिव के महाकाल रूप का नीला लक्षण है। अद्भुत रस में आश्चर्य है। इन अवस्थाओं को प्रकट करने के लिए संपूर्ण नियम हैं। इनके लिए किस प्रकार का अभिनय किया जाए, कैसे रंग हों, कैसी पृष्ठभूमि ? कौन-कौन राग ?

गौरी सोम और देवाकृति वीर रस के साथ गाए जाते हैं, रामकली और आसावरी करुण के राग है। शंकरा हास्य का गान है।

अभिनेता नर्तक अपने सिर, अपनी आँखों, अपनी भँवों, अपने बाज़ुओं, अपनी उँगलियों, अपने पैरों, अपने पूरे शरीर, सारे अस्तित्व के द्वारा ृ ट और जीवन की कहानी सुनाता है। आँखों, उँगलियों और बाजुओं में स्थापित करके नाचता है। आँखों के तीन प्रकार के इशारों की पैंतालीस किस्में हैं। हाथों की मुद्राओं की चार किस्में हैं और हर किस्म की चौबीस अलग-अलग शाखें, अनगिनत प्रकार के लोच और झुकाव हैं। शरीर की गतियाँ एक सौ आठ प्रकार की हैं जिस तरह गायत्री मंत्र 108 बार पढ़ा जाता है या जैसे आरती के प्रदीप में एक सौ आठ दिए जलते हैं उसी तरह नटराज के एक सौ आठ विभिन्न नृत्य हैं।

काशी की सुंदर युवती ने उसके सामने नाच किया। उसने पैरों की विभिन्न चालों का प्रदर्शन किया। यह मोर की चाल है, यह हिरण की, यह हाथी की, घोड़े, शेर और मेंढक की। कूदने के पाँच, कदम रखने के दस, चक्कर काटने के आठ अंदाज हैं। हाथों की दो सौ सैंतालीस मुद्राओं ने सारी सृष्टि को समेट लिया है। सारी अवस्थाएँ, आभास, विचार, पेड़-फल-फूल-पक्षी,

प्राचीन काल के सम्राट्, मानव सम्बन्ध, देवी-देवता, विष्णु के अवतार, चातुर वर्ण, ऐतिहासिक महानुभाव, सातों सागर, प्रसिद्ध नदियाँ, सातों भूतल, सातों आकाश इन सबका मुद्राओं की भाषा से वर्णन किया जाता है। दुखांत और सुखांत अभिनय के सारे उतार-चढ़ाव प्रस्तुत किए जाते हैं। यह ताल, लय और गीत का सम्पूर्ण राग है।

यह भरत नाट्यम है।

शिव का नाच। भरत मुनि ने जिसके नियम दुनिया के सामने प्रस्तुत किए हैं।

काशी की नर्तकी भरत नाट्यम नाच रही थी जिस तरह एक बार चम्पक नाची थी। जिस तरह जब तक ताल और लय और सुर कायम हैं भरत नाट्यम नाचा जाएगा।

मगर, मैं नटराज का एक तुच्छ उपासक, कभी नहीं नाच सकूँगा, क्योंकि मैं अपंग हूँ।

उसने लड़की को क्रोध से देखा जो नृत्य किये जा रही थी। वह स्वयं शंकर नहीं था, वह गौरी भी नहीं थी। कल्पना का जादू टूट चुका था। तब उसे यह भी ज्ञात हुआ कि स्वप्न अधिक देर तक रहने वाली वस्तु नहीं।

लड़की नाचते-नाचते उकता कर उसके निकट आ बैठी, और उदासी से उसकी शक्ल देखने लगी। शायद वह सोच रही थी कि मैं इस व्यक्ति को कभी नहीं समझ पाऊँगी। मगर, क्या आदमी को समझना आवश्यक भी है ? क्या यही काफ़ी नहीं कि वह मेरे पास बैठा है, और कम से कम बीतते हुए काल के इस भाग में मेरा है ?

नाटकघर की इस सुंदर युवती का नाम अम्बिका था। यह बड़ी प्रसिद्ध अभिनेत्री थी। बड़े-बड़े धनवानों के पुत्र और बाँके उसके नाम की माला जपते थे। मगर वह रीझी भी तो किस पर ? एक दरिद्र ब्राह्मण विद्यार्थी पर, जिसके हाथों की उँगलियाँ कटी हुई थीं।

तब गौतम एक और सत्य से परिचित हुआ—तुम जिसे चाहते हो, वह तुम्हारी चिन्ता नहीं करता, और जो तुम पर प्राण देता है उसमें तुम्हारे लिए कोई आकर्षण नहीं। यह भी जीवन का एक ऐसा अनुभव था, जो इससे पहले हज़ारों को हो चुका था, मगर उसके लिए नया था।

अम्बिका में रूपवती होने के अतिरिक्त वे सारे गुण और विशेषताएँ थीं, जो एक नर्तकी और अभिनेत्री के लिए आवश्यक समझी जाती थीं, वह संगीतकार थी, कविता करती थी, फूलों को सजाने की कला जानती थी। बात में बात पैदा करने में माहिर थी। बाग़वानी, धनुर्विद्या और तर्कशास्त्र में दक्ष थी। उसकी आँखें बादाम की तरह थीं, उसका रंग पतझड़ के पत्तों की तरह पीला था। केसर की पंखुड़ियों का पाउडर चेहरे पर मल कर कुमकुम और काजल से सज कर, श्रेष्ठ मीनाकारी के गहने पहन कर जब वह नाटकशाला में प्रकट होती थी तो चारों ओर तहलका मच जाता। पर गौतम इन सारे गुणों के बावजूद उसकी ओर आकृष्ट न हुआ। वह अम्बिका की मण्डली के साथ सारे में घूमा। मौर्य-राज्य में समृद्धि और सम्पन्नता फैली हुई थी। ललित कलाएँ बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थीं। अब गौतम भी धनी युवकों के से ठाठ से रहता, शराब पीता, नित नई रूपसियों पर डोरे डालता और फिर शीघ्र ही उनसे उकता जाता। अम्बिका—उसकी उपासक उसके इन सारे दुर्व्यसनों के बावजूद, उसकी आराधना किये जाती। वह उसके प्रेम के उत्तर में उसके साथ अत्यन्त निर्दयता का व्यवहार करता और उसे दुःख पहुँचाकर मन ही मन खुश होता।

अब उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी और उसके चिड़चिड़ेपन, अभिमान और विलासप्रियता की कहानियाँ भी प्रसिद्ध हो चुकी थीं।

यह सब था, पर एक विचार दिल और दिमाग पर बराबर छाया रहता ! उसकी आत्मा की गहराइयों में तानपूरे के सुरों-सा गूँजता रहता था—चम्पक-चम्पक-चम्पक....उसने चम्पक की तलाश में दूर-दूर की यात्राएँ कीं—शायद वह जीवित हो, मारे जाने से बच गई हो। शायद किसी पुराने मठ-विहार में दिखलाई दे जाए। वह शाक्य मुनि की भिक्षुणियों की टोलियों को बड़े ध्यान से देखता। वह हर पनघट, हर बजाज़ की दुकान, हर संगीत-मण्डली में, और हर उस जगह चम्पक को खोजता, जहाँ लड़कियाँ इकट्ठा होती थीं। मगर वह कहीं न मिली।

तब उसने हार कर उसको खोजना छोड़ दिया, और अम्बिका के प्रेम के आगे अपनी हार मान ली। अब वह केवल अम्बिका के साथ ही रहता। उसने दूसरी लड़कियों की ओर ध्यान देना भी कम कर दिया। अम्बिका के साथ उसके जीवन में ऐसी शांति आ गई जो केवल एक गृहस्थ को ही प्राप्त होती है। कभी-कभी वह अम्बिका को अफ़सोस से देखता—यह बेचारी मेरे लिए क्यों अपना समय बरबाद कर रही है ? बहुत शीघ्र वह दिन आने वाला है, जब उसके बाल सफ़ेद हो जाएँगे, और उसकी आँखों के नीचे लकीरें पड़ जाएँगी। रूपवती नारी की असली मौत उसका बुढ़ापा है। मूर्ख अम्बिका क्यों नहीं उन लोगों की ओर देखती, जो सचमुच उसका मूल्य समझते हैं।

मगर, वर्ष इसी तरह निकलते गए। गौतम नीलाम्बर अब अड़तीस साल का हो चुका था। उसके भौंरों-जैसे काले बालों में चाँदी के तार झिलमिलाने लगे थे। वह अब भी उसी तरह हँसता था। पूर्वी बंग की बहुत ही मुलायम मलमल और मूल्यवान रेशमी जोड़े पहन कर वह अपने चित्रित रथ में अम्बिका के साथ घूमने के लिए निकलता था।

आज वह पाटलिपुत्र में मौजूद था और सदा की भाँति अम्बिका के साथ संवाद बोल रहा था, और दर्शक उसे श्रद्धा से देख रहे थे—दर्शक जो बहरूप के दीवाने हैं, जो असली गौतम नीलाम्बर को कभी नहीं देख पाएँगे....

16

महिलाओं ने दुःख की तीव्रता से अपनी आँखें बन्द कर लीं, सपनों का सौदा करने वाली लड़कियों ने आश्चर्य और दुःख से अपने दाँतों तले उँगली दाब ली।

इन्हीं महिलाओं की पंक्तियों में एक ओर चम्पक बैठी थी। उसने रजत-पुष्पों वाली, ऊदे रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी और अपनी सहेली से बातें करने में व्यस्त थी।

जब उसने दृष्टि उठाई तो उसे गौतम नीलाम्बर दिखाई दिया। वह काँप उठी। आँखों में आँसुओं की धुंध तैरने लगी और धुँधलके में गौतम का चेहरा उसके सामने झिलमिलाता रहा।

गौतम ने गरज कर कुछ सुनाते हुए सामने देखा और दर्शकों के समूह में उसे वह दिखलाई दी। कुछ क्षणों तक अपना संवाद भूल कर वह स्तब्ध उसे देखता रहा।

फिर सहसा उसने अपनी नज़रें झुका लीं।

क्योंकि, चम्पक जो ऊदी साड़ी पहने उसके सामने बैठी थी, जो इतनी प्रतीक्षा इतनी खोज के बाद उसे यों अचानक नज़र आ गई थी—गौतम ने उसे उस समय देखा जबकि उसकी माँग में सिंदूर था और पैरों में लाल मेंहदी और बिछुए; और, वह अपने छोटे से बच्चे को गोद में लिए नाटकशाला के फ़र्श पर, सहेलियों के साथ, पालथी मारे शान्ति से बैठी थी।

और, आन की आन में वह दूसरे किनारे पर पहुँच गया। क्योंकि पहले वह पवित्र थी और अब पवित्रतर हो चुकी थी। वह माँ थी। और, अब एकाएक उस पर प्रकट हो गया कि शकुन्तला, दमयन्ती, सावित्री और सीता कैसी रही होंगी—कैसी लगती होंगी।

उसे यह भी मालूम हुआ कि संयोग, दुर्घटनाएँ, समय के अनोखे खेल भी बहुत सत्य हैं।

वह सँभल कर फिर अभिनय में लीन हो गया।

वह आप ही आप, चुपके-चुपके आँसू पीती रही। एक व्यक्ति ने दुनिया त्यागी, फिर भी उसकी याद मन से न हटा सका, वह हरिशंकर था। एक व्यक्ति ने उसकी याद से बचने के लिए त्याग के बजाय दुनिया की ही शरण ली, और फिर भी वैरागी रहा, यद्यपि प्रकट रूप से पूरा दुनियादार बना रहा, वह गौतम नीलाम्बर था। वह स्वयं, वह दुःखियारी, न दुनिया त्याग पायी, न दुनिया में जीवन की खुशियाँ ही प्राप्त कर सकी। ये सब माया के खेल थे।

उसे वही करना पड़ा जो नारी की हैसियत से उसके भाग्य में लिखा था और जो संभवतः उसका कर्त्तव्य था। राजन् के वध के बाद उसे दूसरी राजकुमारियों के साथ बन्दी बना कर पाटलिपुत्र लाया गया। अयोध्या के राजघराने की सारी युवतियों से विजेताओं ने विवाह रचाए। उसका विवाह भी चाणक्य महाराज के एक उच्चाधिकारी से कर दिया गया। अधिकारी साठ की आयु का, मोटा, बहुत चालाक ब्राह्मण था, और वित्त-विभाग में काम करता था और हर समय निन्यानवे के फेर में पड़ा रहता था।

चम्पक का धर्म था कि उसकी पूजा और उसकी सेवा करे, क्योंकि वह उसका पति था। और, वह उसकी उसी तरह सेवा करती थी। जैसी पाटलिपुत्र की और हज़ारों गृहपत्नियाँ थीं, वैसी ही, उन्हीं में से एक वह भी थी—उसमें कोई ख़ास बात न थी—और उसकी गोद में उसका बच्चा था, और वह अपनी सहेली से इधर-उधर की बातें कर रही थी। दर्शनशास्त्र की बातें करने का समय बीत चुका था।

उसने सावधानी से अपने आँसू पोंछे, ताकि कोई उसे रोता न देख ले।

कुछ देर के बाद जब नाटक का पहला अंक समाप्त हुआ और पर्दा गिरा तो उसने धीरे से अपनी दासी के कान में कुछ कहा। दासी इधर-उधर देखती तेज़ी से बाहर चली गई।

17

पहले अंक की समाप्ति पर गौतम भी रंगभूमि के पीछे शृंगार-गृह में गया। वहाँ दूसरे अभिनेता भी आ-आकर जमा हो रहे थे।

"एक दासी तुमसे मिलना चाहती है" अम्बिका ने दर्पण के सामने अपनी मालाएँ उतारते हुए मुड़ कर उससे कहा।

"कौन है ?" गौतम ने धीरे-से पूछा। उसके स्वर की सारी कटुता, सारा चिड़चिड़ापन गायब हो चुका था। अम्बिका उसके इस अचानक परिवर्तन पर हक्का-बक्का रह गई। वह कितना शान्त दिखाई दे रहा था। उसके चेहरे पर गहरा सन्तोष था।

"पता नहीं" अम्बिका ने ज़रा हकला कर जवाब दिया—"तुम स्वयं देख लो।" और फिर वह अपने कपड़े उठा कर दूसरी नर्तकियों की ओर चली गई।

गौतम शृंगार-गृह की सीढ़ियों पर आया जो बाहर बाग़ में उतरती थीं।

नीचे एक साँवली-सी सेविका खड़ी थी। उसने झुक कर गौतम के सामने हाथ जोड़ दिए और बोली—"मेरी रानी ने तुमको प्रणाम भेजा है और कहा है कि क्या तुम जाते समय उनसे मिल कर न जाओगे ?"

वह एक सीढ़ी उतर कर नीचे आया और कुछ क्षणों तक गुमसुम खड़ा रहा। फिर उसने उत्तर दिया—"नहीं, अपनी रानी से कहो—जो जागता है, उसे एक दिन नींद आ जाती है; और, जो सोता है वह एक दिन जाग उठता है। उन लोगों की ओर देखो जो बराबर जागते रहते हैं। उनसे कहना, अब मैं भी जाग रहा हूँ और अब कोई चीज़ मेरे रास्ते में नहीं आ सकती—और, उनसे यह भी कहना, कि क्या वे भूल गईं कि पतिव्रता स्त्री के लिए अन्य पुरुष मात्र छाया के समान है ? अब तुम जा सकती हो।"

वह झाँझ बजाती नाटकघर के अन्दर गई और कुछ क्षण बाद वापस आ गई। और उसे यह देख ज़रा भी आश्चर्य न हुआ कि वह अब तक वहीं सीढ़ियों पर खड़ा था। उसने निकट आकर कहा—"मेरी रानी कहती हैं—तुम्हारा विचार ठीक है। अगर अब भी जाग गए हो तो यह भी बहुत अच्छा है। दूसरी बात का उत्तर यह है, उन्होंने कहा है कि—तुम पतिव्रता का अर्थ क्या जानो ! लेकिन, ठीक है, किसी वस्तु को तुम्हारी राह रोकने का कोई अधिकार नहीं है। अब तुम भी जा सकते हो !"

इतना कहने के बाद वह जल्दी से मुँह पर घूँघट खींच कर दर्शकों के समूह में ग़ायब हो गई। जो नाटक का दूसरा अंक देखने के लिए अन्दर जा रहे थे।

नाटक समाप्त होने के बाद गौतम दर्शकों पर दृष्टि डाले बिना रंगभूमि से बाहर निकला। शृंगार-गृह में जाकर उसने अपने रेशमी वस्त्र और आभूषण उतारे और एक सफ़ेद चादर कंधे पर डाल नंगे पाँव जन-समूह की दृष्टि से बचता नाटकघर से बाहर आ गया। फिर तेज़ रफ़्तार से नगर के फाटक की ओर ऐसे बढ़ने लगा, जैसे कोई अपराधी कारावास से निकल भागा हो, और डरता हो कि पहरेदार उसे फिर से न पकड़ लें।

हर तरफ़ गहमागहमी थी। सड़क के दोनों ओर सरायों और भोजनालयों में से खनकते कहकहों की आवाज़ें आ रही थीं। चिकित्सालयों में रोगी लेटे मृत्यु या स्वास्थ्य की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाज़ारों में चाँदी और ताँबे के सिक्के खनक रहे थे। सूती साड़ियाँ पहने मज़दूर औरतों की टोलियाँ कपड़ा बुनने के सरकारी कारखानों में काम कर रही थीं। शस्त्रागार में अस्त्र-शस्त्र गढ़े जा रहे थे। नदी के बन्दरगाहों पर जहाज़ बन रहे थे। ऐसे में चलते-चलते वह वेश्याओं की बस्ती के बीच से गुज़रा, वहाँ ठगों, जुआरियों, मदारियों और नक़ली जादूगरों के अड्डों पर जुआ हो रहा था। दूर से राजभवन के ऊँचे कंगूरे नज़र आ रहे थे।

इस समय सम्राट् अपनी बैठक में लेटे चाणक्य महाराज के साथ चतुरंग (शतरंज) खेल

रहे होंगे—यह सोच कर भी वह मुस्कराया।

एक वेश्या उसके पास से उसे ध्यान से देखती हुई गुज़र गई। शायद यह भी अन्य निपुण वेश्याओं के समान गुप्तचर-विभाग में काम करती हो !

प्रश्न यह है—चाणक्य महाराज से कोई पूछे—उसने मन में कहा—कि कौन किस पर जासूसी करेगा ?—वह फिर मुस्कराया।

अब अँधेरा छा रहा था। और तारों भरे आकाश के नीचे परकोटे के बुर्जों में पहरेदार ललकार रहे थे। वह एक फाटक के निकट पहुँच कर ठिठक गया। इस परकोटे के चौंसठ फाटक हैं। कौन-सा फाटक मेरी मंज़िल के रास्ते पर खुलता है ?

पहरेदार ने उसे कोई निर्धन या प्रतिष्ठित ब्राह्मण समझ कर चुपचाप बाहर जाने दिया। चौड़ी खाई पार करके वह राजमार्ग पर आ गया जो प्रयाग की ओर जाता था।

वह सोन नदी पार करने के बाद कई दिन यात्रा करता रहा। रास्ते में अँधेरे जंगल पड़ते थे और नदियाँ-नाले। नदियों के किनारे साधु तपस्या में लीन थे। वानप्रस्थी जो गर्मियों में चिलचिलाती धूप में बैठते, वर्षा मे पानी में भीगते और जाड़ों में गीले कपड़े पहनते, ताकि शरीर को क्लेश पहुँचे। उसे याद आया, वह एक बार बबूल के काँटों पर सोया था और पानी में एक टाँग से रात भर खड़ा रहा था।

वानप्रस्थ के बाद संन्यास की अवस्था आती है। शायद मेरी भी यही अवस्था है : वह समय जिसमें न मृत्यु की इच्छा रहती है और न जीवन की !—वह चलता गया। मार्ग में नगर थे, सरकारी खेत, आश्रम, मोर पालने वालों के गाँव...! उसका ठिकाना किधर है ?

लेकिन, डरने की क्या बात थी। वह धरती के साथ था। धरती उसकी माँ थी। वह उसका साथ देगी।

घास की भीनी सुगन्ध, पत्थरों की शीतलता, और मिट्टी की शक्ति उसने अपने तलुओं के नीचे महसूस की। उसने भुजाएँ फैला कर हवा का स्पर्श किया और मंद स्वर में दुहराना आरम्भ किया : "धरती ! तेरी पहाड़ियाँ, हिम से ढँके पर्वत और वन मुस्करा रहे हैं ! मैं तेरी सतह पर खड़ा हूँ। मैं अवांछित नहीं हुआ। मुझे कोई चोट नहीं पहुँची। मुझे घाव नहीं लगे, मैं पूर्ण हूँ ! मेरा कोई अंत नहीं कर सका।

ऐ धरती ! तेरे अन्दर क्या कुछ है—तू जो भाँति-भाँति की बोलियाँ बोलने वाले इंसानों को अपने ऊपर लादे है; जिसने हज़ारों नदियों के रूप में मुझे धनसम्पत्ति प्रदान की है—वे कौन-से गाँव, कौन-से वन और कौन-सी सभायें धरती पर हैं, जहाँ हम तेरी स्तुति करते हैं। धरती ! मुझे ठौर दे—मुझे कहीं ठिकाना दे !"[1]

उसे चलते-चलते कई दिन बीत गए। तरह-तरह के पौधों और फूलों की डालियाँ उसके मार्ग में झुक-झुक आईं। पक्षी उसके संग सीटियाँ बजा रहे थे। सावन की बूँदें कमल के पत्तों

---

1. ऋग्वेद की एक स्तुति।
2. ऋग्वेद की एक स्तुति।

पर जलतरंग छेड़ रही थीं।

खेतों पर बादल झुके खड़े थे। लड़कियों की चुनरियाँ हवा में उड़ रही थीं।

वह एक मुंडेर पर खड़ा हो गया, और भीगी आँखों से उसने इस दृश्य का देखा। "बढ़ती जाओ, बढ़ती जाओ, ओ जौ की बालियो ! ताकि हमारे घड़े भर जाएँ ! आँधियों से सुरक्षित रहो, जौ की दिव्य बालियो ! समुद्र की तरह अथाह रहो ! वे सब अमर रहें जो तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम्हारे खलिहान अमिट रहें !"[1]

उसने चुपके से अपनी पलकों को पोंछा। फिर आकाश की ओर देखा। बादलों में से एक बूँद टप् से उसकी पलकों पर आ गिरी—जैसे सीपी में वसंत की बूँदें टपक जाती हैं।

वह मुंडेर पर से उतर कर फिर पगडण्डी पर आ गया, और सड़क पर चलने लगा। क्षितिज पर काले बादल गरज रहे थे। वह आनन्द-विभोर था। उसके अन्तर में तूफानी दरिया लहरें मार रहे थे। उसके मस्तिष्क में सुरीले झरने गीत गा रहे थे। उसने इन्द्र को अपनी संगति में खड़ा पाया। रुद्र उसके साथ-साथ चल रहा था। आनन्द-विभोर होकर उसने बादलों पर दृष्टि डाली। एक वृक्ष के तने से टेक लगा कर उसने आँखें बन्द कर लीं। बूँदें पत्तों से छन-छन कर उसके बालों को भिगोती रहीं। वर्षा की बूँदें उसके सुन्दर, उदास मुख पर झरने की तरह गिरा कीं, उसने मन्द स्वरों से रुद्र की स्तुति की :

"सारथी के समान जो अपने घोड़ों को कोड़े लगाता है, वह वर्षा के आगमन की सूचना दे रहा है। आकाश में बादल उमड़ आए हैं और दूर से शेरों की दहाड़ने की आवाज़ सुनाई दे रही है। हवा तेज़ है और बिजली चमकती है। पौधे तेज़ी से बढ़ रहे हैं और आकाश पर धुंध छाई है। धरती पर बीज गिरे हैं और उपज बढ़ाने वाली वर्षा सबके लिए बरसेगी। गरज और दहाड़—दहाड़ और गरज ! बीज बो ! पानी के छींटे उड़ाते रथ पर उड़ता, बरसता हुआ आ, ताकि और जल थल एक हो जाएँ।"[2]

रात भर बारिश होती रही। फिर सुबह हुई, और बारिश थमी और रोशनी फैली। कुंजों में शंख फूँके जा रहे थे। नदियों के किनारे ब्राह्मण ऊषा की स्तुति अलाप रहे थे।

"प्रकाश फैल गया।" ब्राह्मणों ने कहा—

"आने वाले असंख्य प्रातःकालों में सर्वप्रथम व्यतीत प्रातःकालों के मार्ग पर चलती हुई ऊषा, जीवित मानवों को उठा रही है, परन्तु वह जो मर चुका है, उसे वह नींद से नहीं जगाएगी।"

"तू, जिसके रथ में उदय घोड़े जुते हैं, पुरोहित और कवि तेरी वन्दना करते हैं।" ब्राह्मण ने कहा—

"धनवान लड़की आज के दिन हम पर कृपा हो !"

"वीर पुत्र, गायें और घोड़े प्रदान करने वाली ऊषा ! कवि अपनी स्तुति वायु से भी ऊँची गूँज में समाप्त कर रहा है।"

"देवताओं की माता ! जगमगाए जा और हमें राष्ट्रों में उच्चतम स्थान प्रदान कर ! और, ऐसा हो कि मित्र वरुण और सिंधु और पृथ्वी और आकाश हमारी रक्षा करें !" ब्राह्मणों ने कहा।

गौतम हवा के नर्म झोंकों के विरुद्ध चलता आगे बढ़ता गया।

"देवताओं की माता ! जगमगाए जा और हमें राष्ट्रों में उच्चतम स्थान प्रदान कर !"

ब्राह्मणों के स्वर उसके पीछे नदी पर फैलते गए। वह मन्दिरों की पंक्ति के सामने से होता हुआ फिर जंगल के रास्ते पर आ गया।

सामने अयोध्या थी।

तब वह भीगी मिट्टी पर दोनों घुटने टेक कर बैठ गया और उसने देखा कि चारों ओर एक शून्य है और उसमें सदा की भाँति वह अकेला है। संसार का अनादि अनंत मानव, थका हुआ—पराजित—प्रसन्नचित्त—आशावादी मानव, जो भगवान् में है ! और स्वयं भगवान् है ! सामने अयोध्या सुनहरी नगर था। जो वर्षा के धुँधलके में इस तरह जगमगा रहा था, जैसे सारा का सारा सोने का बना हो, और उसमें से जगर-जगर करती तेज़ किरणें निकल रही हों।

फिर, वह सीधा खड़ा हो गया। उसके स्वर में विश्वास था और गर्व और स्वाभिमान। उसने अपने भगवान् को ललकार कर सम्बोधित किया। उसने कहा—

"ऐ भगवान् ! तू जो अग्नि है, तू जो सूर्य है, वायु है, चन्द्रमा और तारों वाला आकाश, तू ब्रह्मा है, जल है, प्रजापति है।"

"तू नारी है, तू पुरुष है, तू युवक है, तू युवती है ! तू वह बूढ़ा है जो अपनी लाठी टेकता, लड़खड़ाता हुआ जा रहा है; तू अपना मुख हर दिशा में किए पैदा होता है।"

"तू गहरी नीली मक्खी है, तू लाल आँखों वाला हरा तोता है। तू तूफ़ानी बादल है, तू सारी ऋतुएँ है, तू समुद्र है !"

"दो पक्षी, चहीते मित्र, एक वृक्ष पर बैठे हैं। एक फल खा रहा है, दूसरा उसे टुकर-टुकर देख रहा है। उसी वृक्ष पर मानव बैठा है—उदास, अपनी अशक्तता पर चकित। किन्तु, वह जो दूसरे को सन्तुष्ट देखता है और उसकी महानता को पहचानता है, उसका अपना दुःख समाप्त हो जाता है। जो ऋग्वेद के इस अमिट अस्तित्व को नहीं जानता, पर जिसके अन्दर देवता वास करते हैं, उस ऋग्वेद का उसे क्या लाभ हुआ? वे जो उसे जानते हैं, निश्चिन्त बैठे हैं।"

"वह जो उसे पहचान गया, जो सूक्ष्म से सूक्ष्मतर है, जिसके अनेक रूप हैं, जो शिव अर्थात् आनन्द है।"

"और, जब प्रकाश का प्रसार होता है तो न दिन बाकी रहता है न रात, न अस्तित्व न अनस्तित्व ! एकमात्र शिव शेष रहता है। वह अनन्त ज्योति सावित्री की है, जिससे कि बुद्धि का जन्म हुआ।"

"उसका सौन्दर्य देखा नहीं जाता। उसके ऐश्वर्य और माहात्म्य की आकृति नहीं बन सकती। वह अन्तर में मौजूद है।"

"तू जो अजन्मा है ! इन शब्दों के साथ कोई थर-थर काँपता तेरे निकट आता है—ओ रुद्र, मेरी रक्षा कर !"

"वह दुनिया में एकाकी पक्षी है। वह सूर्य के समान है, जो समुद्र में डूब चुका है। मानव जो उसे जान जाएगा तो मृत्यु पर से गुज़र जाएगा।"

"क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई यात्रा का रास्ता नहीं।"

फिर उसने आँखें खोलीं। उसका शरीर काँप रहा था, जिस तरह तानपूरे के तार झनझनाते हैं। उसके क़दमों के नीचे पानी के बहने की आवाज़ आ रही थी। उसने नज़र उठा कर देखा।

सरयू निःसंग भाव से बह रही थी।

फिर उसे लगा जैसे उसे कोई दूर से आवाज़ दे रहा है। वर्षा के कारण नदी का पाट बहुत चौड़ा हो चुका था। उसने बहुत ध्यान से सुना, माथे पर हाथ की छाया करके देखने की कोशिश की। उसे कुछ नज़र न आया। नदी के दूसरे किनारे पर भगवा वस्त्र पहने कोई ढाँचा-सा डोल रहा था।

तब उसने घाट पर बैठी हुई एक लड़की (यह लड़की केसरिया साड़ी पहने थी और उसके बालों में चम्पा के फूल थे) से पूछा—"कुछ जानती हो, नदी के उस पार कौन रहता है?"

"कुछ भिक्षु लोग रहते हैं" लड़की ने बेपरवाही से जवाब दिया, और पैर धोने में लीन रही—"वह, उनमें से एक सामने खड़ा तो है।"

"तुम उसे जानती हो?"

"मैं उसे जान कर क्या करूँगी?" लड़की ने हैरान होकर पूछा।

"अच्छा, ज़रा मैं उससे मिल आऊँ !"

"ऐसी तूफ़ानी नदी पार करोगे? इस समय यहाँ कोई नाव भी नहीं है।"

"कोई बात नहीं। नदियाँ पार होने के लिए ही तो हैं !"

मौसम बहुत सुहावना हो चुका था। मोर झनकार रहे थे, पपीहे चिल्लाते थे, भौंरे गूँज रहे थे। बहुत से फूल डाल से टूट कर उसके क़दमों में आ गिरे। उसने झुक कर फूलों को उठाया और नदी में बहा दिया। फिर वह पानी में कूद गया और दूसरे किनारे की ओर तैरने लगा।

दूसरे किनारे पर एक अधेड़ उम्र का भिक्षु भगवा वस्त्र धारण किए, देर से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। गौतम को अपनी ओर आते देख कर उसका चेहरा ख़ुशी से जगमगा उठा।

वह नदी का पाट आधे से अधिक पार कर चुका था, तब उसने भिक्षु की आवाज़ सुनी—

"भाई गौतम !"

"हाँ भाई हरिशंकर ! पहुँचता हूँ ! ठहरे रहो !" उसने अधिक तेज़ी से तैरना शुरू कर दिया।

इतने में पानी का एक ज़ोरदार रेला आया, और उस थपेड़े से वह किनारे के बहुत निकट पहुँच गया। मगर, अब पानी की लहरें ऊँची हो चुकी थीं। उसने पूरी ताकत से हाथ-पाँव मारने शुरू कर दिए, मगर पानी में उससे ज़्यादा ताक़त थी। इसी संघर्ष में उसे पानी के ऊपर झुकी एक चट्टान दिखाई दी। यह चण्डी के टूटे हुए मंदिर का एक भाग था जो बाहर को झुक आया था। उसने जल्दी से उसके एक कंगूरे को पकड़ लिया। अब वह बहुत थक चुका था। उसकी साँस फूल रही थी। सो, पत्थर को पकड़ कर उसने क्षण भर के लिए आँखें बन्द कर लीं। काल का प्रवाह पानी को बहाये लिए जाता था। चारों ओर विस्तार ही विस्तार था। लेकिन, पत्थर को पकड़ कर उसे क्षण भर के लिए अपनी सुरक्षा का आभास हुआ, क्योंकि अतीत से सम्बन्धित पत्थर भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा।

लेकिन, उसके हाथों की उँगलियाँ कटी हुई थीं, और वह क्षण भर से अधिक पत्थर को अपनी पकड़ में न रख सका।

सरयू की लहरें गौतम नीलाम्बर के ऊपर से गुज़रती चली गईं। दूसरी ओर अबुल मंसूर कमालुद्दीन ने किनारे पर पहुँच कर अपना श्यामकर्ण घोड़ा बरगद के पेड़ के नीचे बाँधा और चारों ओर दृष्टि डाली। उसकी थकी हुई आँखों को यह जगह बड़ी सुहानी लगी। सामने नदी बह रही थी। दूर झोंपड़े बने थे। शिवालयों में से घंटों की आवाज़ आ रही थी। बरगद के पेड़ के नीचे किसी पीर का मज़ार था। गाँव की औरतें घूँघट काढ़े आतीं और मज़ार पर फल-फूल चढ़ा कर आगे चली जातीं। उसने झुक कर पानी में उँगलियाँ डुबोयीं, पानी की शीतलता उसे बहुत अच्छी लगी। पत्थरों के नीचे बनी लहरों की भँवर-सी में उसे अपना चेहरा दिखाई दिया और एक क्षण के लिए वह चकित रह गया।...वह यहाँ आख़िर क्या कर रहा है?

चम्पा अब तक न आई थी। उसने दुबारा नदी की ओर देखा। शायद कश्ती में आती हो। मगर, कश्ती में कुछ देहाती भजन गाते, अपनी धुन में मगन, एक ओर को चले जा रहे थे। फिर उसने आगे बढ़ कर एक झाड़ी पर फैली अमरबेल का एक पत्ता तोड़ा। कदम्ब की डाल फूलों से लदी थी। कुछ फूल टप-टप उसके सिर पर आ गिरे। उसने पगड़ी उतार कर उन फूलों पर हाथ फेरा और अपनी तलवार की नक़्क़ाशीदार मूठ को छुआ। फूलों के इस ढेर में उसे तलवार बहुत वेतुकी मालूम हुई। उसने धीरे से तलवार कमर से अलग कर घास पर रख दी।

तब पानी में तैरती हुई चम्पा घाट पर आ गई।

"हम तो समझे थे तुम कहीं और मारने-मरने के लिए चल दिये !" उसने हँसते हुए कहा।

"अभी तक तो नहीं, पर अब शायद चला जाऊँ—कुछ समय बाद।"

"कहाँ?" लड़की ने घबरा कर पूछा।

"बिहार—और उससे भी आगे, बंगाल !"

"वहाँ जाकर क्या करोगे? यहीं रहो !"

"वहाँ मेरे भाई-बन्धु हैं।"

"झूठ मत बोलो। तुम्हारे भाई-बन्धु कहीं पहाड़ों में लूटमार करते होंगे। गौड़ के दरबार में उनका क्या काम?"

"तुम मेरे भाई-बन्धुओं से बहुत नाराज़ हो ! और, दूसरी बात यह कि वे लूटमार नहीं मचाते। यह तुर्कों और अफ़गानों का धंधा है। मैं अरब हूँ, मेरा काम दर्शनशास्त्र विचारना है और"...उसने ज़रा रुक कर कहा, "मेरी माँ ईरानी थी और ईरान वाले, बेवकूफ़ लड़की, शायरी के उपासक हैं—खून नहीं बहाते !"

वह उसी तरह हँसती रही। अब वह घाट की सीढ़ियों पर बैठी अपने बाल सुखा रही थी।

"हँसती रहो ! एक रोज़ ज़बरदस्ती उड़ा कर ले जाऊँगा ! फिर बाद में जो चाहे कहना।"

"हे...हे ! ऐसा अँधेर न करना ! ख़ैर मनाओ—यह गाँव है, जहाँ तुमसे बात कर लेते हैं, तो कोई बुरा नहीं मानता। जौनपुर में अगर इस तरह तुम घंटों हमसे बातें करते तो देखते तुम्हारा क्या परिणाम होता !"

"जौनपुर से तो मैं तुमको कतई भगा ले जाता ! और, ले जाकर सीधा ही अपनी हवेली

में बन्द कर देता।"

"राम ! राम !—कैसी बातें करते हो। जौनपुर में हमारा महात्मा-समान बादशाह रहता है। तुम्हारी मजाल है, जो तुम वहाँ ऐसी हरकत करो।"

"अजी देखे हैं तुम्हारे महात्मा-समान बादशाह !"

"क्यों?-ऐसे-ऐसे गीत बनाता है। जो इन्सान इतना बड़ा संगीतकार हो, वह देवता नहीं तो और क्या होगा ! एक रोज भैया ने मुझे एक बड़ा प्यारा गीत हुसैनी कानड़ा में सुनाया। भैयन कहते थे कि यह सुल्तान का संगीत है इसे ख़याल कहते हैं।"

"अब तुम संगीत पर भाषण करो—और कल तुम अपने बरामदे में बैठी किसको हुसैनी कानड़ा सुना रही थीं? तुम कितने आदमियों से मिलती हो।"

"तुमको इससे मतलब? कमल जी तुम अपना रौब मुझ पर मत झाड़ो। सूबेदार होंगे अपनी फ़ौज के होंगे। मुझ पर काहे की धौंस है।"

"मैं सूबेदार नहीं हूँ, लाहौल विलाक़ूवत ! वैसे सिपाही का पेशा ही मर्द को सजता है।"

"क़ातिल का पेशा?"

"फिर तुमने कमीनी बातें शुरू कीं।"

"अच्छा अब नहीं कहने के ! मगर हो तुम क़ातिल ज़रूर। न जाने कितनी माँओं के बेटों को इस तलवार से मारा होगा। हाय-हाय !"

"फिर वही मुर्ग़ की एक टाँग ! कितनी बार समझाया है कि मैं फ़ौजी नहीं हूँ। सुलतान के कुतुबख़ाने का संरक्षक हूं।"

"वह क्या होता है?"

"उसमें किताबें लिखी जाती हैं। पुस्तकें, जिन्हें समझदार व्यक्ति पढ़ते हैं। यह जो टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें तुम्हारा भाई सुबह से शाम तक चौकी पर बैठा बाएँ से दाएँ तरफ़ खींचता रहता है। उनकी किताबें बनती हैं। समझीं ?"

"जानती हूँ। मगर फिर यह तलवार क्यों बाँधते हो?—यह बडी भयानक चीज़ है।"

"चम्पा रानी, इसे मर्दों का ज़ेवर कहते हैं। इसके और पगड़ी के बिना पहनावा पूरा नहीं होता। तुम अवध वालों ने, अफ़सोस कि, चित्तौड़ और कन्नौज और मालवा और बुंदेलखण्ड के राजपूत नहीं देखे ! देखे हैं कभी? एक मेरा यार है, उदयसिंह राठौर—कन्नौज का राजपूत है। क्या बाँका सिपाही है ! आजकल न जाने कहाँ होगा? सुना था ग्वालियर के कीरतसिंह की फ़ौज में है। हो सकता है, मालवे में कहीं लड़भिड़ रहा हो।" कमालुद्दीन कुछ क्षणों के लिए अपने युद्धक्षेत्र के साथियों की याद में डूब गया—"तुम पूरब वालों को इसके सिवाय और कोई काम-धाम नहीं कि बस गाएँ-बजाएँगे और पूजापाठ में लगे रहेंगे। अरी लड़की ! ज़िन्दगी का असल मज़ा मैदाने-जंग में आता है।"

"अभी तो तुम कहते थे कि मारना-मरना ख़ाली अफ़ग़ानों का काम है; तुम कविता लिखते हो।"

वह झुंझला गया—"तुम औरतों से बहस कौन करे !" उसने अमरबेल का एक पत्ता और तोड़ा।

"देखो !" लड़की घाट पर से उठी और अपने काले, लम्बे बालों में से पानी झटक

कर उनका जूड़ा बनाती हुई बोली—"जंग की बातें मत किया करो ! मैं जब तुमको देखती हूँ और यह तलवार देखती हूँ तो मुझे बड़ा वहम आता है।"

"वहम? वह क्या चीज़ है?"

"तुमको समझाना बेकार है !" वह फिर सीढ़ी पर बैठ गई? कमालुद्दीन ने पेड़ों के ढलते साए की ओर देखा। जो और ढलता जा रहा था।

"अच्छा चम्पावती ! तुमको ख़ुदा के हवाले किया।" वह अपने घोड़े की तरफ़ बढ़ा।

पास से मुसलमान फ़कीरों की एक टोली गुज़री। उनमें से एक नौजवान ने चम्पा और कमाल को देखा, फिर नज़र नीची कर ली, और सिर झुकाये आगे चला गया।

"ये भी क्या मसख़रे लोग हैं !" कमाल ने विचार प्रकट किया।

"मसख़रे नहीं हैं, बड़े प्यारे लोग हैं ! इनका मज़ाक मत उड़ाना।" चम्पा ने सहसा गुस्से से कहा। "एक रोज़ यही लोग तुम्हारा साथ देंगे।"

"तुम्हारे भाई ने तुम्हें अच्छी-ख़ासी पंडिताइन बना रखा है। मैं किसी रोज़ उससे मुनाज़िरा (शास्त्रार्थ) करूँगा।"

"वह क्या होता है?"

"इसमें यह होता है कि"—कमालुद्दीन ने जाते-जाते मुड़ कर रक़ाब में से पैर निकाल कर उसे समझाना शुरू किया, "कि जैसे वे मज़हब हैं ना—एक तुम्हारा—एक मेरा—"

"मेरा और तुम्हारा कोई अलग-अलग धर्म है ?—मैं तो एक ही समझती हूँ।"

"फिर तुमने फ़िरक़ापोशों वाली बातें शुरू कर दीं। तो मतलब यह"—उसने फिर समझाना शुरू किया—"कि दो पक्ष अपने-अपने धर्म की सच्चाई साबित करने की कोशिश करें तो उसे मुनाज़िरा कहते हैं।"

"सच्चाई साबित करने वाले हम और तुम कौन? वह तो सत्य पीर है, जो सब झूठ-सच का फ़ैसला करता है। कहे क़बीर इक राम जपो री, हिन्दू तुरुक न कोई !"

"फिर तुमने भाषण देना शुरू कर दिया। तुम काशी जाकर अपने कबीर की चेली क्यों नहीं बन जातीं? मुझसे मीठी-मीठी बातें करने में अपना वक़्त क्यों नष्ट करती हो ?"

"काशी हम तुमको भी साथ ले जाएँगे। किन्तु, इससे पहले तुमको अपनी तलवार उतारनी पड़ेगी।"

"यही शर्त है?"

"हाँ !"

"अच्छा, ख़ुदाहाफ़िज़ !" कमाल ने कहा।

वह नदी की ओर बढ़ा। "उस पार वह टूटे पत्थरों का ऊँचा ढेर-जैसा क्या है?"

"वह....अरे ! वह तो बहुत पुराने मन्दिर के खण्डहर हैं। सैकड़ों-हज़ारों बरस पुराने।"

"और उसके उधर, वह जो झोंपड़ियाँ-जैसी हैं, उनमें कौन रहता है?"

"उनमें भी सूफ़ी लोग रहते हैं....भगत।"

"तब तो तुम्हारा समय बहुत अच्छा कटता होगा ! सूफियों की संगत, परिचर्चा और दर्शन के मसले। एक अठारह वर्षीय नौजवान लड़की के लिए किस क़दर दिलचस्प बातें हैं।"

"और क्या करें ? तुम्हारे जौनपुर की शहज़ादियों की तरह महल में बैठ कर शतरंज खेला करें?"

"बिलकुल ! लेकिन, मेरे महल में, शतरंज के अलावा हज़ारों किताबें भी हैं—और तुम इस क़दर विद्वान पहले ही से हो। मैं तुमको अरबी-फ़ारसी पढ़ा दूँगा !" वह सहसा झेंप कर लाल हो गई। कमाल ने मुस्कुरा कर उसे ग़ौर से देखा—"मगर अरबी बोलोगी तो अजीब मसख़री लगोगी ! नहीं भाई, तुम चम्पावती ही रहो। तुम्हारे रूप में मैंने औरत का एक अत्यंत सुंदर रूप देखा है—अच्छा, ख़ुदाहाफ़िज़।" वह दुबारा घोड़े पर सवार हुआ। लड़की की आँखों में आँसू झिलमिला रहे थे।

"तुम्हारा पड़ाव यहाँ समाप्त हुआ। अब कहाँ जाते हो?" उसने धीमे से पूछा।

"बहराइच ! वहाँ न जाने कितने दिन लग जाएँ।"

"बारिश शुरू होने वाली है। अपना ख़याल रखना।"

"हाँ, मैं अपना ख़याल रखूँगा। ख़ुदाहाफ़िज़, मूर्ख लड़की !"

वह उसे मूर्ख लड़की कहा करता था और उस सम्बोधन में कितना अथाह प्यार छिपा था ! वह आँसू पीकर मुस्कराई। कमालुद्दीन ने घोड़े की बागें मोड़ीं और सड़क पर पहुँच कर उठी हुई धूल में ग़ायब हो गया।

लड़की घाट पर से उठ कर अपने घर की ओर चल दी। जिसकी खपरैल पर नीले फूलों की बेलें चढ़ी थीं, और हरे रंग के किवाड़ों पर देवी-देवताओं के रंग-बिरंगे चित्र बने थे। बरामदे में उसका बड़ा भाई चटाई पर बैठा कबीर की नई बानी काग़ज़ पर नक़ल कर रहा था। उसके निकट दो-तीन मित्र बैठे थे। दरवाज़े के ताक़ पर भवानी की छोटी-सी मूर्ति रखी थी, मूर्ति के सामने धूप की पतली-सी रेखा लहराती हुई ऊपर उठ रही थी। चम्पा ने दरवाज़े के निकट खड़े होकर उस शान्तिमय दृश्य को देखा और अपने आँसुओं को ख़ुश्क करती अंदर चली गई।

18

बहराइच की छोटी-सी आबादी में पीले रंग के कच्चे मकान इधर-उधर बिखरे थे। धूलभरे रास्तों पर से बैलगाड़ियाँ गुज़र रही थीं, और एक बेरंग बेनाम-सी उदासी सारे में छाई थी। सुना था कि किसी ज़माने में यहाँ एक भव्य नगर आबाद था जिसे श्रावस्ती कहते थे। उसके सोमवंशी राजा बड़े तेजस्वी और प्रतापी थे और ज्योतिषियों ने श्रावस्ती के सुहलदेव से कहा था कि एक समय आने वाला है जब उत्तर से लम्बे-तड़ंगे, भीमकाय तुर्क आकर तुम्हें समाप्त कर देंगे ! और, फिर ग़जनी के महमूद का एक सेनापति इधर आया। जिसका नाम मसऊद ग़ाज़ी था, और इस मसऊद ग़ाज़ी ने सुहलदेव का अन्त कर दिया और दिल्ली में कुतुबुद्दीन ऐबक आया, और सेनापति अहमद बख़्तियार ने कौशल, मगध और बंगाल के सारे मूर्ति-पूजक राजाओं का ख़ात्मा कर दिया।

और श्रावस्ती और नालंदा और विक्रमशिला के सारे ब्रह्मचारी और भिक्षु अपने-अपने पोथी-पत्रे वहीं छोड़ कर इधर-उधर भाग गए या मर-खप गए या नेपाल और तिब्बत की ओर निकल गए। लेकिन जिस तरह शाक्य मुनि पिछले दो हज़ार साल में विष्णु के नवें अवतार बना दिए गए थे, महायानी बौद्धमत के मन्दिरों में हज़ारों देवी-देवता आबाद हो चुके थे, और सारा बंगाल और सारा बिहार तांत्रिक मंत्रों और देवी तारा के मंत्रों की सुरीली आवाज़ों से

गूँज रहा था, उसी तरह मूर्ति-भंजक सेनापति मसऊद ग़ाज़ी पिछली दो शताब्दियों में बाले मियाँ के रूप में कौशल देश के निवासियों के लिए एक और देवता बन चुके थे। उनके मज़ार पर घी के चिराग़ जलाए जाते, उनके झंडे उठाए जाते और हर साल धूमधाम से उनकी बारात निकलती।

अबुल मंसूर कमालुद्दीन जो पहली बार बहराइच आया था। वह सालार मसऊद की समाधि की दीवार से लग कर पेड़ की छाया में बैठ गया, और अचम्भे से हिन्दू स्त्रियों की एक टोली को देखने लगा। वे हाथों में पीतल की थालियाँ सँभाले सामने मज़ार पर चढ़ावा चढ़ाने के लिए आ रही थीं।

और यद्यपि नालन्दा और विक्रमशिला और उज्जैनी और अमरावती के विशाल अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय अब उजड़ चुके थे, श्रावस्ती के प्राचीन आश्रम सुनसान पड़े थे, और उन पोथी-पत्रों को समझने वाला अब कोई न था, जो अजीब-सी भाषाओं में लिखे थे, अजीब-अजीब बातें उनमें लिखी थीं—समझ में न आने वाला दर्शन और बुद्धि से परे की बात।

मगर कुछ लोगों को पैदायशी सनक होती है और कश्मीर के ज़ैन-उल-आबिदीन और गौड़ के सुलतान अलाउद्दीन हुसैन शाह की तरह जौनपुर का हुसैन शर्क़ी भी उन बादशाहों में से था। इन बादशाहों ने अधिक मूर्ति-भंजन के स्थान पर इन पोथी-पत्रों में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था।

हुसैन शर्क़ी को जब भी दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोधी और सुलतान सिकन्दर से जंग करने से फ़ुर्सत मिलती, वह अपना तानपूरा लेकर बैठ जाता। वह रागों की दुनिया के नए-नए पर्यटन करता या प्राचीन पाण्डुलिपियों के अध्ययन में डूबा रहता। पिछले दिनों उसे अयोध्या के कुछ पंडितों से ज्ञात हुआ था कि बहराइच के किसी मठ में डेढ़ पौने-दो हज़ार वर्ष पुराने, संस्कृत के कुछ ताम्रपत्र मौजूद हैं। उसने अपने पुस्तकालय के नवयुवक निरीक्षक अबुल मंसूर कमालुद्दीन को वहाँ के पंडितों से मिलने के लिए अयोध्या भेजा।

कमालुद्दीन अयोध्या कुछ दिनों के लिए गया था। लेकिन, उसका वहाँ इतना जी लग गया कि उसे लगभग याद ही न रहा कि उसे वहाँ से आगे तराई की ओर भी यात्रा करनी है। क्योंकि अयोध्या में उसे उन्हीं पंडितों में से एक की बहन नज़र आई, जो चम्पावती कहलाती थी।

अपने रूढ़ दर्शनशास्त्रों को छोड़ कर सुलतान की आज्ञानुसार जिनकी खोज में कमाल उनके पास गया था, सरयू के किनारे रहने वाले ये पंडित लोग एक नए चक्कर में पड़े हुए थे। इस चक्कर का नाम उन्होंने "भक्ति" रख छोड़ा था। वे लोग दिन-रात "निर्गुण राम निर्गुण राम जपो रे भाई" की रट लगाया करते। इन्हीं के यहाँ कमालुद्दीन शंकराचार्य, वल्लभ और रामानन्द के नामों से परिचित हुआ। और, अब वे सब के सब काशी के भक्त कबीर के पीछे पागल हुए जा रहे थे। लेकिन, कमाल को भक्त कबीर या किसी और भक्त या सन्त या आचार्य से कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह इतिहासकार बनना चाहता था। सुलतान ने उसे विभिन्न अस्पष्ट प्रकार के इतिहास लिखने पर नियुक्त कर रखा था। और उसका समय बहुत अच्छा कट रहा था। लेकिन, अब सुलतान का हुक्म था कि पंडितों की सहायता से संस्कृत, पालि, प्राकृत और अर्द्धमागधी में लिखी हुई इन बेतुकी पुस्तकों का फ़ारसी में अनुवाद करे। यह काम भी अधिक

अरुचिकर न था यद्यपि वह जल्दी से जल्दी जौनपुर वापस पहुँचना चाहता था, जहाँ शाही महल में सुलतान की भानजी रहती थी, जिसके लिए उसने बहुत-सी कविताएँ लिखी थीं और जिसकी कल्पना में उसने बहुत-सी चाँदनी रातें पुस्तकालय की बुर्जियों में बैठ कर जागते हुए गुज़ार दी थीं।

लेकिन, अयोध्या में उसे एक ब्राह्मण कन्या मिली जो हर समय कबीर की बातें किया करती। उससे उल्टी-सीधी बातें करती और कुछ समय के लिए वह जौनपुर की शाहज़ादी को भूल गया।

अब वह चम्पावती के ख़याल में खोया रहता क्योंकि वह बड़ी अनोखी, बड़ी नई-सी चीज़ थी। नाजिया, उम्र-ए-ख्वाब और शाहजादी सलीमा बानो बेग़म से बिल्कुल भिन्न।

पुरुष तो हमेशा विविधता पसंद करता है।

प्राचीन ग्रंथों की खोज में वह सारे मठों में गया। जो पाँच-छः सौ वर्ष पूर्व यहाँ शंकराचार्य के शिष्यों ने स्थापित किए थे। वह श्रावस्ती के खंडहरों में घूमा, जो सहेत-महेत के इलाके में पड़े साँय-साँय कर रहे थे। वहाँ दिन में उल्लू बोलते थे, और रात में चमगादड़ें अपने पर फैलाती थीं। एक दिन उसे इन्हीं खंडहरों में पत्थरों और शहतीरों का एक बहुत बड़ा ढेर दिखाई दिया; जिसके चारों तरफ़ गलियाँ थीं। यहाँ कभी शानदार बाज़ार रहा होगा और ऊँची-ऊँची हवेलियाँ बनी रही होंगी। वह आश्चर्य और जिज्ञासा के साथ इस इमारत के अन्दर गया, उसके सारे कमरों में घूमा—गोदाम, दीवारों में बने अग्निकुंडों वाली बैठकें, कोठरियाँ, स्नानागार, आँगनों में बने कुएँ और तालाब। मकान के उत्तर-पूर्व भाग में छोटा-सा मन्दिर था और दक्षिण-पूर्व कोने में रसोईघर था। पन्द्रह-सोलह कमरे सारे में फैले थे। चारों तरफ़ बरामदे थे, ऊपर की मंज़िल में झरोखे बने थे। बीच में आँगन के चारों ओर जो बरामदा था, उसके स्तम्भ टूटे-फूटे थे, और इधर-उधर बिखरे पड़े थे। इन स्तम्भों के ऊपरी सिरों पर हाथी के सिर तराशे हुए थे। यह जाने किसका मकान रहा होगा, कमाल ने सोचा। फिर उसने एक देहाती को आवाज़ दी। वह घास का गट्ठा सिर पर उठाए सामने की टूटी-फूटी गली में जा रहा था। देहाती रुक गया और उसे रहस्य भरी प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगा। कमाल को एक फुरेरी-सी आयी। उसने हिम्मत करके गला साफ़ किया और बोला—"ए भाई ! जानते हो, यह किसका मकान है? यहाँ के राजा का तो नहीं?"

"राजा का?" देहाती खिलखिला कर हँसा, मानो बहुत बड़ा लतीफ़ा उसने सुना हो—"अरे, राजा का मकनवा इतना छोटा ! राजा के महलवा पर तो हल चल गइन—ई तो हज्जारन बरस पुरानी हवेली होय। पुरखन से सुने हनू ईमा कोऊ बाम्हन पुरोहित रहत रहें ! उनका लड़कवा हू बड़ा विदवान रहा।"

"उस लड़के का नाम जानते हो?"

"हम का जानी ! हम पंचनाम नाँही याद रखत हनू। नाम मिट जात हैं। खाली खुदाय का नाम अमर हो।" इतना कह कर वह अपना गट्ठा सँभाल आगे बढ़ गया।

कमाल को बड़ी झुँझलाहट अनुभव हुई। सुलतान का आदेश है, इस देश का इतिहास लिखो। ऐसे अजीब लोगों का इतिहास किस तरह लिखा जा सकता है, जो अपने नाम याद रखने की ज़रूरत ही नहीं समझते।

फिर उसने मठ में जाकर एक पंडित से पूछा—"खंडहरों में जो सबसे बड़ा खंडहर है, वह किसका है?"

उसने भी कमाल को बड़ी रहस्यभरी नज़रों से देखा, मानो यह विदेशी विद्वान व्यर्थ का प्रश्न कर रहा है। "यहाँ अनगिनत चक्रवर्ती राजा होकर गुज़र गए हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक प्रियदर्शी, समुद्रगुप्त। चन्द्रगुप्त मौर्य से पहले यहाँ बड़े-बड़े चित्रकार रहते थे, और मूर्तिकार और लेखक—किन्तु, उनके नाम हमको मालूम नहीं। नाम मिट जाते हैं, मनुष्य जीवित रहता है।"

"लाहौल विलाकूवत !"—कमाल ने दिल में कहा—इस देश का प्राचीन इतिहास लिखना असंभव है। उन ताम्रपत्रों के लेखकों का नाम भी मौजूद नहीं था, जिनका अनुवाद कराने के लिए वह यहाँ आया था। वह घूम-फिर कर उसी खंडहर में वापस गया, और एक टूटे हुए स्तम्भ पर बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करे।

एकाएक उसे बग़दाद और नेशापुर की याद ने बुरी तरह सताना शुरू कर दिया।

19

कमाल इस देश में नया-नया आया था। उसे जौनपुर में रहते केवल कुछ ही वर्ष हुए थे। बाईस साल की उम्र तक उसने बग़दाद के मदरसे निज़ामिया में वहुत सारी पुस्तकें पढ़ी थीं, अनेक विचारधाराओं पर चिन्तन और मनन किया था। वह बुख़ारा के इब्नेसीना, अल्फ़ाराबी और ईरान के फख़रुद्दी राज़ी, और स्पेन के इब्नेरुश्द और इब्नुल-अरबी का विस्तृत अध्ययन कर चुका था। इब्ने-खुल्दून को वह अपना गुरु समझता था, और इरादा कर रहा था कि अरब राष्ट्रों का इतिहास लिखना शुरू करे। इब्ने-खुल्दून की विचारधारा से सम्बन्ध रखने वाले कुछ चिन्तकों से मिलने के उद्देश्य से वह उत्तर अफ़्रीका की ओर जाने वाला था, जब क़ाहिरा में उसे ख़बर मिली कि उसके पिता का देहान्त हो गया है, तो वह लौट आया और वहाँ से ईरान चला गया। नेशापुर में उसने अपने एक दोस्त से सुना कि तलवार चलाने वालों के साथ-साथ क़लम चलाने वाले विद्वान भी एक ऐसे नये मुल्क़ का रुख़ कर रहे हैं, जिसका नाम हिन्द है। कमाल ने अपने प्रिय ग्रंथ अपने साथ लिए, और मध्य एशिया, कश्मीर और लाहौर होता हुआ तुग़लक़ाबाद पहुँचा।

दुनिया अजीब हलचल के दौर से गुज़र रही थी। बल्कि कमाल को तो याद था कि इतिहास में कोई युग ऐसा नहीं आया जब बेचारे इंसान पर कोई-न-कोई महाप्रलय न टूटी हो। पिछली शताब्दियों में तातारियों के आक्रमणों ने मुल्कों को बर्बाद कर दिया। ईसाई नस्तुरियों और ईरान के अग्नि पूजकों, अंदलिस के यहूदियों और अरब के मुसलमानों ने मिल-जुल कर विद्या की जो दीपावली मनाई थी, वह गोबी के मरुस्थल से उठने वाली पीली आँधियों ने सारी की सारी बुझा कर रख दी। बनू-उमैया का दमिश्क़ ! बनू-अब्बास का बग़दाद ! अब्दुर्रहमान का स्पेन !—आँखों के सामने कैसी-कैसी तस्वीरें खिंच जाती थीं। इस प्रलय के बाद बची-खुची विद्या जो बाकी रही थी वह मुसलमान कौमों के आपस के मतभेदों और झगड़ों की भेंट हो गया। विचारों का एथंज जिसे दोबारा आबाद किया गया था, बग़दाद के साथ-साथ उजड़ा, सिकंदरिया की खानकाहें (उपासनागृह) सुनसान हो गईं। बस, एक भावना शेष रही—संसार

अस्थाई है—दुनिया नश्वर है ! इस दुनिया से घृणा करना ही ठीक है। दर्शन अब केवल शियों का पेशा समझा जाता था—और शिया हमेशा बड़ी गड़बड़ी मचाते थे। हर प्रकार के विचारात्मक और राजनैतिक उपद्रव उत्पन्न करना उनकी घुट्टी में पड़ा था। अब सलजूक़ी तुर्कों का बोलबाला था। इन शासकों को नित नए देश जीतने से ही कहाँ फ़ुर्सत थी कि वे दर्शनशास्त्र की बारीकियों में अपना सिर खपाते और वे फिर भी पक्के कट्टर सुन्नी मुसलमान थे, अरब के शियों की तरह धार्मिक उपद्रव पैदा करने वाले थोड़े ही थे।

अरबों की प्रतिभा, और ईरानियों की ललितकला—तातारियों के हमले से सबका ख़ात्मा हो गया था। मगर, इसके सौ साल बाद समरक़न्द और हिरात में फिर रोशनी हुई। चित्रकारी में चीन और ईरान की शैलियाँ समानान्तर हुईं। ये विनाशकारी तातारी पश्चिम में मुसलमान हो गए, पूर्व में उन्होंने बौद्ध धर्म इख़्तियार किया। सुबुक्तगीन के काल में काबुल के हिन्दू, तुर्की शासक मुसलमान हो गए। मगर मनुष्य को अब भी चैन नसीब नहीं था। महमूद के विषय में अल्बरूनी ने कहा कि हिन्दू उनके आक्रमण से रेत के कणों की तरह बिखर गए, उनकी कहानी तो बीते युग की बात हो चुकी; किन्तु अब जो शेष हैं वे मुसलमानों से घोर घृणा करते हैं।

जिस तरह बग़दाद और सिकंदरिया तबाह हुए उसी तरह मथुरा उजड़ा और नालंदा, कन्नौज और उज्जैन। ये सब इंसानों की बस्तियाँ थीं जिनमें साधारण मर्द और औरतें रहते थे और जिन्होंने उन्हें खत्म किया वे भी साधारण इंसान थे।

मगर इस अराजकता, इस मारकाट, इन जंगों और लड़ाइयों के गर्द-ओ-गुबार के पीछे ज्ञान के दीपक टिमटिमाते रहे। मुसलमान सूफ़ियों की ख़ानक़ाहों और विद्वानों के मदरसों में ग्रंथ लिखे जाते रहे, शिक्षा के आदान-प्रदान का सिलसिला जारी रहा। मानवता का चिराग़ कभी न बुझ सका।

और इस रक्तपात के युग में दक्षिण के शांत तटों पर सुंदर गिरजे निर्माण किए जा रहे थे और यहूदियों और ईसाइयों की हरित बस्तियों में फूलों के त्यौहार मनाए जाते थे और अरब व्यापारियों की आबादियों में रात के समय कानून[1], ऊद[2] बाँसुरी और नफीर[3] की आवाजों का शोर होता था और महाबली-पुरम के मंदिरों में नृत्य होता था।

ये लोग भी साधारण इंसान थे मगर शांति से रहना चाहते थे।

अराजकता और अशांति के इस युग में सूफ़ियों की ख़ानाकाहों में ज्ञान सुरक्षित रहा और गुदड़ी पहनने वाले कलंदरों में ज्ञान सुरक्षित रहा। ये अब एक-एक करके इस नए देश की तरफ़ आ चुके थे, और आ भी रहे थे जिसे महमूद ने जीता था। इन कलन्दरों ने बंगाल, बिहार, अवध, राजस्थान, दकन और गुजरात, सिंध और पंजाब में नए विहार आबाद किए...

महमूद यह जानता था कि विचारों के मूर्तिगृह हमेशा आबाद रहेंगे। दुनिया का नक़्शा बदल चुका था। स्पेन की मस्जिद कुर्तबा में ईसा और मरियम की मूर्तियाँ सजा दी गई थीं कुस्तुनतुनियाँ में सोफ़िया के गिरजाघर के मीनारों से अज़ान की आवाज़ बुलन्द हो रही थी। चंगेज़ख़ान का पोता तिरछी आँखों और पीली रंगत वाला चग़ताई तुर्क तैमूर दिल्ली को तहस-नहस

1-2-3. एक प्रकार के वाद्य।

करके समरकन्द वापस जा चुका था। शर्क़ी राज्य भारत में सभ्यता और संस्कृति का शानदार केन्द्र बना हुआ था। जौनपुर भारत का शीराज़ कहला रहा था।

इस राज्य को स्थापित हुए अभी केवल सत्तर साल गुज़रे थे। अमीर तैमूर के आक्रमण के बाद की गड़बड़ से लाभ उठा कर मलिकुल शर्क़ ख्वाज़ाजहाँ ने इसकी बुनियाद डाली थी। यहाँ के सुलतान अपने आप को विदेशी नहीं मानते थे। दक़न के मुसलमान बादशाह के शासनों की तरह इनकी हुकूमत भी ख़ालिस भारतीय हुकूमत थी। उन्होंने खूबसूरत इमारतें बनाई थीं, गुलाब के बाग़ लगाए थे। दूर-दूर के विद्वान आकर जौनपुर में जमा हो रहे थे।

अबुल मंसूर कमालुद्दीन ने भी दिल्ली में कुछ दिन ठहरने के बाद जौनपुर आकर दम लिया।

उसके सामने एक बिल्कुल नई और विचित्र दुनिया फैली हुई थी। जौनपुर, काशी, अयोध्या और बहराइच, इन सब जगहों के मुसलमान उससे बिल्कुल भिन्न थे, ये लोग जो मूर्तिपूजकों के ढंग से रहते-सहते थे कमलीवालों और जोगियों के साथ पेड़ों की छाँव में बैठ कर गीत गाते थे और झूमते थे। उनकी औरतें अरबी वस्त्र अबा पहनने के बजाय अजीब लम्बी-सी सफ़ेद या रंगीन चादर शरीर से लपेट लेती थीं और उनकी आँखों में बड़ी लज्जा थी।

पिछले कुछ साल से कमाल का जीवन सुलतान हुसैन शाह के साथ या तो युद्ध क्षेत्र में कटता था, या फिर नाच और संगीत की महफ़िलों में। पुस्तकें उसका ओढ़ना-बिछौना थीं लेकिन वाद-विवाद में उसकी कोई रुचि न थी। उसने इमाम ग़ज़ाली और इब्न-ए-रुश्द दोनों को अपने-अपने हाल पर छोड़ दिया था और लगातार के गृहयुद्धों, विद्रोहों, राजनैतिक हलचलों और बदअम्नियों के बावजूद वह निराश नहीं था। वह हर वस्तु को आश्चर्य से देखता था और बहुत से मुल्क घूम चुका था। हिन्द में आकर भी उसने अपने सियाह घोड़े पर बैठ कर बड़ी दूर-दूर तक के सफ़र किए थे। नामों में, जगहों में, इन्सानों में जो रहस्य था, उसने उसको बहुत मंत्रमुग्ध कर रखा था। शीराज़ और बदख़्शाँ के सुर्ख़-लाल फूलों के उद्यान ! काश्गर, यारकन्द और बुख़ारा की गलियाँ जिनकी दीवारों पर चीनी गुलाबों की बेलें झुकी हुई थीं, और जहाँ तिरछी आँखों और लम्बी-लम्बी चोटियों वाली लड़कियाँ नृत्य करती थीं। जेहूँ नदी का तट और सुनहरे बालों वाले तुर्कमानों के शिविर ! उत्तर-पश्चिम के पर्वत प्रदेश, जहाँ यूनानियों, सीस्तानियों, तुर्कों, चीनियों और ईरानियों ने मिल-जुल कर मूर्तिकला का एक नया ही लोक बसा दिया था। और फिर हिन्द के दक्षिण में महानदी के हरे-भरे किनारे और आंध्रप्रदेश, केरला और तमिलनाड् और कुरु मंडल की घाटियाँ विजयानगरम् राज्य के सुन्दर उद्यान और आश्चर्यजनक मन्दिर, जिनके आँगनों में ताड़ के वृक्षों के नीचे बादामी आँखों वाली देवदासियाँ हीरे की लौंगें पहने भरतनाट्यम नाचती थीं।

खुदावन्द ! कैसे-कैसे लोग थे, कैसी-कैसी क़ौमें ! दुनिया कितनी अजीब, कितनी आकर्षक, कितनी भयानक, कितनी मूल्यवान् चीज़ थी।

हिन्द कितना हसीन मुल्क़ था !

लेकिन, यह किसी तरह भी उसका वतन नहीं था। और यद्यपि उसके बहुत-से हिस्सों पर मुसलमानों की हुकूमतें क़ायम थीं, लेकिन फिर भी यह दारुलहर्ब[1] था, क्योंकि यह क़ाफ़िरों

1. वह देश जहाँ गैर-मुसलमान का शासन हो और मुसलमानों को धार्मिक कर्त्तव्यों से रोका जाए।

का बहुत बड़ा गढ़ था।

और, अगर यह दारुलहर्ब न भी होता, तब भी कमाल का वतन नहीं था। यह सामने लहरें मारती हुई सरयू, भला दजले का क्या मुकाबला कर सकती थी। आम के साए में वह शान्ति प्राप्त नहीं, जो किसी मरुद्यान में झरने के किनारे खजूर के तले बैठ कर अल्फ़ाराबी की दार्शनिक उक्तियाँ पढ़ने में प्राप्त होती थी।

यद्यपि आम भी अपनी जगह पर खूब पेड़ है।

अपने वतन से दूर होने ने उसे बहुत उदास कर दिया। उसने खंडहर के एक खम्भे से सिर टेक कर आँखें बन्द कर लीं। "मैं, यहाँ से आख़िर वापस क्यों नहीं चला जाता?" उसने तय किया कि वह जौनपुर वापस जाकर, सुलतान से क्षमा माँग कर दमिश्क़ लौट जाएगा। दमिश्क़ ! उसे सहसा यह नाम भी बेहद अजनबी-सा लगा। वह दमिश्क़ जाकर क्या करेगा? नेशापुर में उसका क्या रखा है? बग़दाद को उससे अब क्या वास्ता? यह सोच कर भी उसे बड़ा दुःख हुआ।

और किस क़दर बेतुके लोगों से उसका वास्ता पड़ा है ! उसने एक आँख खोल कर उससे किसान को देखा जो अँगोछा सिर पर लपेटे उच्च स्वर में बारहमासा अलापता बस्ती की ओर लपका जा रहा था।

वह जिसकी पृष्ठभूमि में सारी इस्राइली सभ्यता थी, और प्राचीन मिस्रियों, यूनानियों और असुरिया की परम्पराएँ; और यूनान था, और रोम; और, पवित्र रोम के साम्राज्य का पूर्वी देश, जिसे उत्तराधिकार में मिला था और ईरान के उद्यान और नील के तट, और उत्तर-पश्चिमी के असीम पहाड़ी सिलसिले और—वह एक सर्वथा भिन्न संसार था—और इस संसार से उसका कोई सम्बन्ध न था, जिसमें, सुना था कि, जोगी हवा में उड़ते थे; जहाँ कामरूप की जादूगरनियाँ मनुष्यों को बकरा बना देती थीं; और जहाँ बंगाल और बिहार के तांत्रिक मन्दिरों में रोमांचित कर देने वाले जादू-टोने होते थे और जहाँ गोरखनाथ के चेलों के गोरखधंधे बुद्धि को चकरा देते थे।

लेकिन, अबुरेहान अल्बरूनी और अमीर खुसरो ने इस देश की प्रशंसा में धरती-आकाश मिला दिए थे, और ज़ियाउद्दीन बरनी द्वारा लिखित इतिहास कमाल ने पढ़ रखा था। जो सुलतान फ़िरोज़शाह के ज़माने में लिखा गया था। और कितनी विचित्र बात थी कि भाग्यचक्र ने उसे सचमुच इस बेतुके देश में ला डाला था जहाँ ये सारे पारंपरिक हीरे-जवाहरात वह दिन-रात अपनी आँखों से देखता था। उसने इस देश की सुंदरियों को देखा था जो चलती थीं तो उनके पाँव के ज़ेवर छन-छन करते थे। यहाँ का अजीब संगीत सुना था। विदेशी पर्यटकों ने यहाँ से लौट कर बग़दाद में उससे कहा था कि यहाँ के मर्द शराब नहीं पीते और औरतें बेहद वफादार होती हैं। औरतों की वफ़ादारी से उसे कोई दिलचस्पी न थी। जिस दुनिया से वह निकल कर आया था, जिस दुनिया में वह रहता था, उसमें औरत उसी समय दाखिल हो सकती थी जब उसे स्वयं औरत की सहचरता की ज़रूरत महसूस हो। औरत को यह अधिकार प्राप्त न था कि वह उससे किसी प्रकार की सहचरता की माँग कर सके। औरत की अपनी कोई हैसियत न थी।

कमाल ने औरत को हर रूप में देखा था। समरकंद और काहिरा के बाज़ारों में बिकने

वाली दासियाँ, लूट के माल के तौर पर हासिल की गई लड़कियाँ, सुलतानों की हरमसराओं (अंतःपुरों) में कैद सुंदरियाँ।

औरत जो हमेशा हर हालत में मर्द की संपत्ति थी। उसकी दया दृष्टि पर ज़िंदा थी। उसकी खुशी के लिए उसकी रचना की गई थी। उसकी अपनी कोई राय न थी, कोई इच्छाएँ, कोई ज़िंदगी न थी।

मगर फिर भी खुदा की यह सृष्टि बहुत दिलचस्प थी। एक हद तक जीवन में उसका महत्त्व भी था। मगर उसके आगे और भी बहुत-सी दुनियाएँ थीं जिनमें पहुँच कर औरत का साथ छूट जाता था। उदाहरणार्थ बुद्धि की दुनिया, आत्मा की दुनिया, यद्यपि भावनाओं की दुनिया में कमाल उसे एक हद तक शामिल करने को तैयार था मगर किसी गहरे भावनात्मक अनुभव में किसी औरत ने अब तक साथ नहीं दिया था। क्योंकि वास्तव में यह केवल उसका अधिकार था।

केवल मर्द का अधिकार था कि वह तरह-तरह की औरतों को पसन्द करे, समय-समय पर उनसे प्रेम करता रहे। उसकी प्रेमिका का सिर्फ़ यही काम था कि गुड़िया की तरह सजी-धजी बैठी रहे। कमाल जिस भाषा में कविता करता था उसकी परम्परा यह थी कि बहादुर सूरमा अपनी प्रेमिका के लिए जान पर खेल जाते थे। यह बड़ी चित्ताकर्षक कल्पना थी।...मृगनयनी, शाहज़ादी सुर्ख़ गुलाब का फूल हाथ में लिए आलूकबीर नदी के किनारे महल के झरोखे में बैठी है। झरोखे के नीचे स्पेनी अरब सूरमा कवि रबाब बजा-बजा कर उसे अपने ख़तरनाक इश्क़ के गीत सुना रहा है—ये गीत जो चाँदनी रातों में घाटियों और पहाड़ी रास्तों पर गूँजते थे और जिनकी गूँज फ्रांस और एलपस के उस पार तक फैल चुकी थी। सूरमा कवि प्रेमिका को ऊँचे-से स्तम्भ पर बिठा कर उसकी पूजा करता था और जब चाहता था, उसे उस स्तम्भ पर से उतार देता था।

इस अजनबी बेतुके मुल्क़ में आकर कमाल ने ख़ुदा की इस सुन्दर, मूक सृष्टि को एक नए रूप में देखा। वह तो स्वयं हाथ में रबाब लिए प्रेम के गीत अलाप रही थी। राधा बन कर कृष्ण की पूजा करती थी लेकिन यह पूजा इतनी महान चीज़ थी कि उसके योग्य बनने के लिए कृष्ण को ईश्वर का दर्जा प्राप्त करना पड़ा था। वह हँसते-हँसते आग की लपटों में भी कूद जाती थी। उसकी वफ़ा की क़समें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि खाते थे।

कमाल चुपचाप खंडहर की सीढ़ियों पर बैठा सामने की ओर देखता रहा। उसे वे सारे गीत याद आए जो कुछ ही दिन पूर्व अयोध्या में चम्पा ने उसे सुनाए थे। ये गीत भजन कहलाते थे। कृष्ण और राम की भक्ति का उनमें वर्णन था और उनसे ज़्यादा उन्मत्तता की हालत उसने पहले कभी किसी भाषा की कविता में नहीं देखी थी। पिछले तीन साल में उसने जौनपुर के शाही पुस्तकालय में रह कर इस देश की विभिन्न बोलियाँ सीखी थीं। उसे अपने 'हफतज़बान' (सात भाषी) होने पर बड़ा गर्व था, मगर वह उन लोगों के दिल को नहीं समझ सकता था। ये बड़े अजीब लोग थे। उनके इतिहास, उनकी परम्पराओं, उनके ब्रह्मांड संबंधी दर्शन को समझना उसके बस की बात न थी।

वह अजनबी इस पराए देश में ठंडे, अनजाने पत्थरों पर बैठा रात की छाया को देखा किया।

20

मद्धिम-सी रोशनी सारे में फैल गई।

पूर्णिमा का चाँद खंडहर की टूटी हुई छत में से नीचे झाँक रहा था, और उसकी किरणों ने लाल पत्थर के टूटे हुए फ़र्श पर अजीब-अजीब कोण बना दिए थे। फ़र्श पर तरह-तरह की अस्पष्ट आकृतियाँ बनी हुई थीं। और उनको सैकड़ों बरसातों ने मिटा कर बेहद मद्धिम कर दिया था। त्रिशूल, और कल्पवृक्ष, धरती का प्रतीक-रूप कमल, सृष्टि का चक्र; कमल का सिंहासन, और अग्नि-स्तम्भ—जाने इन अनोखे प्रतीकों का क्या अर्थ इन लोगों के मन में रहा होगा। अर्थ क्या होते हैं?—कमाल चकित मन से इन आकृतियों को देख कर सोचता रहा ! बाहर महुए के बाग़ पर भयानक, प्राण हरने वाला सन्नाटा मँडरा रहा था।

और फिर इस सन्नाटे में अजीब और अनोखी आवाज़ें आनी शुरू हुईं। ऐसा लगा जैसे अँधेरी वीरान गली में से भारी-भारी रथ निकल रहे हैं, और रथों पर स्वर्णजड़ित छत्रों के नीचे, कानों में सोने के कुंडल पहने और दुशाले ओढ़े अपरिचित मानव बैठे उसे झाँक रहे हैं। अँधेरे में उनकी आँखें फ़ास्फ़ोरस की तरह चमक रही थीं। वे बड़े भयानक तरीक़े से हँसते थे, उसका मुँह चिढ़ाते हुए मानो कहते हों--देखो, जैसे हम समाप्त हो गए हैं, वैसे ही तुम भी विध्वस्त कर दिए जाओगे। उसके सामने टूटे हुए दरवाज़े में चन्द्रगुप्त नृचन्द्र खड़ा था—भारत का सम्राट्। मगर, वह यहाँ कहाँ से आया? कमाल ने 'लाहौल' पढ़ी। वह तो ईसा के जन्म से तीन सौ साल पहले ही मर चुका था। कमबख़्त ने अपने अन्तिम दिनों में जैन संन्यासी बनकर अन्न-जल त्याग कर अपने आपको मार डाला था। मगर वह तो यहाँ मौजूद खड़ा मुस्करा रहा था। उसके पीछे से एक और आदमी ने अपना सिर निकाला, एक छलाँग में कूद कर उसके सामने आ गया और बड़े धीमे से उसे सम्बोधित किया : "देखो, मेरा नाम अशोक है—अशोक प्रियदर्शी ! मैं सारे भारतवर्ष का सम्राट् था। और, जब मैं मरा तो केवल डेढ़ आँवले का स्वामी था।" उसने मुट्ठी खोल कर आधा आँवला निकाल कर कमाल के सामने फेंक दिया।

इसके बाद उन प्राचीन, दिवंगत आत्माओं का रेला-सा शुरू हो गया। वे रथों पर से उतर-उतर कर सारे में फैल गए, बन्दरों की तरह कड़ियों से लटक गए, स्तम्भों पर जा चढ़े, आँगन के सूखे हौज़ में कलाबाज़ियाँ खाने लगे, उन सबने मिल कर कौओं की तरह काँव-काँव शुरू कर दी। वे सब कमाल के चारों तरफ़ नाच-नाच कर एक साथ चिल्ला रहे थे :

"मैं भरतमुनि हूँ। मैंने नृत्य और नाटक के सिद्धान्त बनाए थे।"

"मैं तक्षशिला का विष्णुगुप्त हूँ। मैंने अर्थशास्त्र लिखा था।"

"मैं राजा भोज हूँ।"

"मैं तो मात्र गँगवा तेली हूँ।"

"अँधेरे आकाश पर बादल गरज रहे हैं। मैं कालिदास हूँ।"

"मैं कन्नौज का राजशेखर हूँ।"

"मुझे भवभूति कहते हैं। मैं कान्यकुब्ज में रहता था। मैंने 'मालती माधव' लिखा था।"

"मैं भर्तृहरि हूँ। मैंने कहा था न कि संसार केवल एक रंगभूमि है और हम सब अभिनेता हैं ! तुम नट हो, मैं नट हूँ, हम सब नट हैं !"

मिट्टी की गाड़ी हाँकता हुआ शूद्रक[1] आँगन से बाहर चला गया।

फिर छनू-छनू करती बहुत-सी लड़कियाँ एक पंक्ति में आकर खड़ी हो गईं, और इठलाने लगीं।

"हम कश्मीर, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश की रानियाँ हैं। जो बड़ी शान से अपना शासन चलाते थे।"

"मैं राजकुमारी राजेश्वरी हूँ। मैंने अपने वाद-विवाद से चीनी विद्वानों के दाँत खट्टे कर दिए थे।"

"मैं कुमारदेवी हूँ।"

"मेरा नाम प्रभावती था। हाय, तुम मुझको भी नहीं जानते?"

"मेरा नाम हर्ष ने रत्नावली रखा था--बेचारा हर्ष !"

अपना वर्णन सुन कर हर्षवर्धन ने, जो कान में कलम खोंसे अब तक समाधि में था, ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर दिया : "हम श्रीपृथ्वीवल्लभ कहलाते थे।" उसने एक वक्ता के सम्मुख हाथ हवा में ऊँचा करके कहा, "हम, मानो धन और धरती की देवियों के चहीते थे, हम सबको म्लेच्छ तुर्कों ने आकर ठिकाने लगा दिया--ठिकाने लगा दिया--ठिकाने लगा दिया !"

अब बड़े ज़ोर से तलवारों की झनकार गूँजी और उनकी चमक से इस हलके अँधेरे में उजाला-सा हो गया, और सिर कट-कट कर चारों तरफ़ गिरने लगे।

"हम चन्देले राजपूत हैं ! हम बघेले हैं ! हम परमार सूरमा हैं। हम राठौर हैं ! हम चौहान हैं ! हम आल्हा हैं ! हम ऊदल हैं !"

सबने एक टाँग पर कूद-कूद कर नाचना आरम्भ कर दिया--और सब चीख-चीख कर आल्हा-ऊदल गाते रहे थे ! ऐसा कोलाहल मचा कि अबुल मंसूर कमालुद्दीन का दिमाग़ चकरा गया। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। क्षितिज पर प्रातःकाल की सफ़ेद धवलिमा प्रकट हो चुकी थी, और बाहर महुए के बाग़ में कुछेक कृषक आल्हा-ऊदल गाते, कंधों पर हल उठाये खेतों की ओर जा रहे थे।

उसने घबरा कर चारों ओर देखा और उसे याद न आया कि वह कहाँ है।

यह बहराइच था; और वह मूर्तिपूजकों के युग के एक खंडहर में लेटा हुआ था। उसका श्यामकर्ण घोड़ा बाहर एक खम्बे से बँधा हिनहिना रहा था। बारिश झुकी खड़ी थी, और बड़ी सुहानी हवा चल रही थी।

उसने दुबारा 'लाहौल' पढ़ी, अँगड़ाई लेकर उठा और सुबह की नमाज़ पढ़ने के इरादे से आहिस्ता-आहिस्ता क़दम रखता नदी की ओर चल दिया।

21

दिन भर पंडितों के साथ ताम्रपत्रों पर सिर खपाने के बाद कमाल मठ के बाहर घास पर बैठा सोच रहा था कि कल सवेरे तड़के अयोध्या की ओर वापस चला जाएगा। सहसा

1. नाटक 'मिट्टी की गाड़ी' का लेखक।

बारिश की एक बूँद उसके चेहरे पर आ गिरी। उसने सिर उठा कर देखा, क्षितिज पर घनघोर घटाएँ उमड़ कर उठी थीं—शीघ्र ही नदियाँ-नाले चढ़ जाएँगे, मेंढक टर्राएँगे, जल-थल एक हो जाएगा। कमाल ने एक छप्पर के नीचे जाकर पटका खोला, और कच्चे फ़र्श पर लेट गया। फिर उसने एक ज़ोरदार अँगड़ाई ली। मुद्दतों बाद यह पहला अवसर था जब कमाल को लगातार तीन-चार महीने बाद सन्तोष की साँस लेना नसीब हुआ था। शर्क़ी सुलतानों और दिल्ली के बादशाहों के बीच लगातार युद्ध छिड़े हुए थे। कमाल को कोई दिन ऐसा याद न था जब किसी न किसी नए मोर्चे की वजह से उसके पुस्तकालय के कार्य में विघ्न न पड़ता हो। पहले सुलतान मोहम्मदशाह और उसके भाई शाहज़ादा हुसैन में जंग हुई। फिर शाहज़ादा हुसैन ने जौनपुर का सुलतान बन कर स्वयं दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। इन लड़ाइयों में कमाल, सुलतान के साथ, काल्पी और इटावे और संभल में मारा-मारा फिरता रहा। महीनों उसने बदायूँ, कोईल, मारहरा, शम्साबाद और बरन की ख़ाक छानी।

वर्षा शुरू हो चुकी थी। नदियों और झीलों पर बारिश की बूँदों की हल्की-हल्की धुंध छा रही थी। बहराइच के पूर्व में राप्ती बहती थी, पश्चिम में सरयू थी। ये दोनों नदियाँ बड़ी दूर नेपाल देश से निकल कर आई थीं और किस बेपरवाही से अपनी मंज़िल की ओर चली जा रही थीं। यह सामने वाली सरयू, मूर्तिपूजकों की दृष्टि में बड़ी पवित्र थी। यह नदियों का पवित्र होना कमाल की समझ में न आया। वह इसी तरह गाती-गुनगुनाती, कुछ आगे जाकर घाघरा से मिल जाती थी, और घाघरा के तट पर अयोध्या आबाद था। जहाँ चम्पावती रहती थी; और बारिश हो रही है। और उस समय वह इसी सरयू नदी के किनारे कहीं किसी पेड़ में झूला झूलती और सावन गाती होगी क्योंकि कमाल को अचानक ख़याल आया कि—लो, सावन का महीना आ पहुँचा। यह मौसमों का जादू—हर महीने के नाम के साथ उसका अपना वातावरण था, अपने दृश्य, अपने रंग, अपने राग। कुछ महीने पहले वैशाख था। सारे में वसंत ऋतु छाई हुई थी। फिर जेठ और असाढ़ का महीना आया, कि महुए के बाग़ में लूएँ चलती थीं, और बेल पेड़ों से टप-टप गिरते थे। फिर भादों आएगा, फिर कुँवार और कार्तिक; और तब उदास चाँदनी ठंडा, पीला रंग सारे में घोल देगी।

यह उसका वतन नहीं, मगर वह कम से कम मौसमों के जादू से बच कर तो नहीं निकल सकता।

उसने पगड़ी सिर के नीचे रख कर करवट बदली, और सहसा चिमटा बजने की आवाज़ उसके कान में आई। उसने आलस्य से आँख खोल कर देखा। एक साधु बारिश से बचने के लिए छप्पर में आन बैठा था और बड़े संतोष से अपनी धूनी रमाने में लीन था। कमाल की मौजूदगी की उसने कोई परवाह न की और अपनी खटर-पटर में लगा था। कमाल उठ बैठा और दिलचस्पी से उसे देखने लगा।

यह मौसम का असर था। वह चाह रहा था कि सारी दुनिया को, इन अजीब साधुओं को, इन भौंरों और गिलहरियों को, इन चरवाहों को, जो जल्दी-जल्दी कदम उठाते जंगल में से गुज़र रहे थे—इन सबको गले लगा ले और खूब चिल्ला-चिल्ला कर सावन गाए। दुनिया कितनी शान्तिपूर्ण, कितनी सुखद थी। वे तोते, ये साधु, जो मेंह से बचने के लिए भागे-भागे छप्पर की ओर आ रहे थे, ये सब उसके दोस्त थे। उसके अपने थे। वह उनसे अलग कब

था? "जय राम जी की।" उसने धीरे से कहा। उसे अपनी आवाज़ सुन कर, अपनी ज़बान से ये शब्द निकलते देख ख़ुद बड़ा आश्चर्य हुआ।

साधु ने मुस्करा कर आँखें ऊपर उठाईं—"जय राम जी की।" उसने उत्तर दिया, "कहो सिपाही, कहाँ से आना हुआ?"

"मैं सिपाही नहीं हूँ।"

"सुलतान के आदमी तो हो।"

"हाँ ! मगर मैं किताबें लिखता हूँ।"

"अच्छा !" साधु ने उसी निश्चिन्तता से जवाब दिया, और फिर चिमटा उठा कर राम-नाम का जाप आरम्भ कर दिया मानो कमाल के साथ उसका यह संवाद था।

"बाबा, तुम यहीं रहते हो?" कमाल ने फिर बात आरम्भ की।

"नहीं, हम तो जौनपुर के रहने वाले हैं।"

"अरे !" कमाल ने बेइख़्तियार होकर ख़ुशी से कहा। "तब तो तुम मेरे ही वतन के हो।"

दूसरे ही क्षण उसे अज्ञात हर्ष की अपनी इस भावना पर बड़ा आश्चर्य हुआ।—"मेरे वतन के?" मगर जौनपुर उसका वतन कहाँ था? वह तो बग़दाद का निवासी था—उसे बड़ी झुँझलाहट महसूस हुई।

"निर्गुण राम ! निर्गुण राम जपो रे भाई।" साधु आँखें बंद किए एक ही समस्वर में पाठ किए जा रहा था। कुछ देर बाद उसने कमाल को स्वयं सम्बोधित किया, "आज कुछ क़लन्दर वाले मियाँ के मज़ार के लिए झण्डे लेकर रापड़ी से इधर आए हैं।"

"अच्छा !"

"वे कहते थे कि हमारे सुलतान में और दिल्ली वाले में फिर ठन गई है। अबकी बार हमारा सुलतान बचता दिखाई नहीं देता। मुक़ाबला बड़ा कठिन है। निर्गुण राम ! निर्गुण राम !" उसने फिर टर्राना शुरू कर दिया।

कमाल चौंक कर उठ खड़ा हुआ और साधु के निकट आ गया।

"क्या कह रहे हो बाबा, फिर से बताना !"

छप्पर में सात-आठ किसान जमा हो चुके थे। उन सबने मिल कर साधु के साथ राम-नाम की रट लगानी शुरू कर दी। कमाल के सवाल का किसी ने जवाब न दिया।

वह जल्दी से पटका कमर में बाँध बारिश के बावजूद बाहर निकला और सराय की तरफ़ रवाना हो गया।

सराय के बरामदे में उदयसिंह राठौर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

"तुम—तुम यहाँ कहाँ?" कमाल ने भौंचक्का होकर उसे देखा—"तुम तो ग्वालियर में थे?"

"मैं ग्वालियर से ही आ रहा हूँ। मेरे साथ चलो। आलमपनाह ने तुम्हारी खोज में मुझे भेजा है।"

"मुझे खोजने इतनी दूर आए हो? मेरी समझ में नहीं आता !"

"आलमपनाह भी यहीं बहराइच में मौजूद हैं इस समय।" उदयसिंह ने कहा—"तुम यहाँ ज्ञान-ध्यान में लगे हो, उधर दुनिया बदल चुकी है। सुलतान बहलोल ने तुम्हारे बादशाह पर

रापड़ी में हमला कर दिया। आओ, यहाँ बैठ जाएँ तो मैं तुमको सारा माजरा सुनाता हूँ।" वह बड़े इत्मीनान से खाट पर बैठ गया—"जब उस पर हमला हुआ, तो वह जमनाजी पार करके हमारे राजा से मदद लेने के लिए ग्वालियर आया। हमारे राजा ने उनको कुमुक पहुँचाई। मैं उनकी फ़ौजों को लेकर कालपी की ओर बढ़ा, बड़े घमासान का रन पड़ा।" उदयसिंह ने विशुद्ध सैनिकों वाले अंदाज़ में सुनाना शुरू किया। वह फिर झुक कर तिनके से बरामदे के कच्चे फ़र्श पर नक़्शा बना कर कमाल को समझाने में तल्लीन हो गया, "यह देखो, इधर बहलोल की फ़ौजें हैं—उधर हम हैं—बीच में जमना मैया हैं। अब न हम नदी पार कर सकते हैं, न वह। समय बीतता जाता है। तब एक दिन क्या होता है कि त्रिलोकचन्द सुलतान बहलोल को नदी पार करवा देता है।" फिर वह ठिठक गया—"त्रिलोकचन्द को जानते हो?"

"नहीं।"

"बक्सर का हाकिम है। बक्सर गए हो?"

"नहीं।" कमाल झल्ला गया। असल वाक़्या बयान करो?"

"होता क्या ! दिल्ली की फ़ौजें बराबर हमारा पीछा करती रहीं। हम जौनपुर की तरफ़ लौटे। वहाँ भी दिल्ली वालों ने हमारा मुक़ाबला किया। हम जौनपुर को ख़ुदा हाफ़िज कह कर बहराइच आ गए। तुम्हारा जौनपुर अब सुनसान पड़ा है। उसमें दिन के वक़्त उल्लू बोलते हैं। चलो मेरे साथ !" वह उठ खड़ा हुआ—"आलमपनाह ने कहा था—तुम कई महीने से यहाँ हो। सुबह से तुमको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। मठ के पंडितों से तुम्हारा ठिकाना मालूम हुआ।"

कमाल ने तलवार कमर से बाँधी और उदयसिंह के साथ लश्कर की तरफ़ रवाना हो गया। जो राप्ती के किनारे ठहरा हुआ था। उधर, जिधर जेतवन था।

22

बहराइच से वे लोग कन्नौज गए जो कालिन्दी और गंगा के संगम पर आबाद था। वहाँ भी उन्हें बहलोल लोदी से हार खानी पड़ी, और अन्त में सुलतान हुसैन ने हार-थक कर बिहार में शरण ली।

बिहार—यह एक नया इलाक़ा था—हराभरा, जहाँ सोन नदी बहती थी; जहाँ चाँदनी रातों में नालन्दा विश्वविद्यालय के खंडहर दिल में अजीब आतंक पैदा करते थे। यहाँ अबुल मंसूर कमालुद्दीन सुलतान हुसैन के दूसरे वफ़ादार अमीरों और ऊँचे अधिकारियों के साथ बैठ कर मनसूबे बनाता कि जौनपुर का राज्य दुबारा किस तरह प्राप्त किया जाए।

जौनपुर में अब दिल्ली का शाहज़ादा गद्दी पर बैठा था। शर्क़ी सल्तनत का ख़ात्मा हो गया था। भारत का शीराज़ उजड़ चुका था।

अबुल मंसूर कमालुद्दीन, क़ाज़ी शहाबुद्दीन जौनपुरी का उत्तराधिकारी, इतिहासज्ञ, शोधकर्त्ता, अब राजनैतिक षड्यंत्रों में भी निपुण हो गया। दिन-रात वह सुलतान के साथ सिर जोड़े बैठा तरकीबें सोचा करता—दिल्ली के सुलतान को किस तरह पराजित किया जाए !

अब सुलतान बहलोल मर चुका था और उसका सुंदर और सजीला जवान सिकन्दर हिन्द का बादशाह था। उसकी हिन्दू माँ का नाम हेमावती था। वह पक्का मुसलमान था और

अपने बाप से भी अधिक शक्तिशाली बादशाह था।

बिहार के इन शरणार्थियों ने अपने सिर-धड़ की बाज़ी लगा कर युद्ध की बिसात पर एक बार फिर पाँसा फेंका। क्योंकि लड़ना-मरना, हार-जीत ही मर्दों के खेल हैं।

सुलतान हुसैन अपने जोड़-तोड़ के ज़रिए कई बार जौनपुर में बार्बक शाह के विरुद्ध विद्रोह करवा चुका था। अबकी बार उसने जोका से मिल कर एक बड़ी बग़ावत की योजना बनाई थी। कमाल उसका विशेष राजदूत था। दिन रात वह अपने श्यामकरण घोड़े पर सवार इधर से उधर साज़िशें करवाता था।

एक रात मंज़िलें मारता जोका के गाँव पहुँचा। गढ़ी पर जाकर उसने आवाज़ दी। जोका उस समय पूजा में व्यस्त था। उसका जवान बेटा दीया हाथ में उठाए बाहर आया।

"कौन हो तुम?" उसने शक से पूछा। बार्बक शाह खुद कमज़ोर था लेकिन जब से उसका बड़ा भाई सुलतान सिकन्दर दिल्ली के तख़्त पर बैठा था प्रजा अपनी जान की ख़ैर मनाती थी।

"मैं सुलतान के पास से आया हूँ।"

"कौन से सुलतान के पास से?"

"तुम्हारा सुलतान हुसैन शाह।"

"आ जाओ—अंदर आ जाओ भाई।" युवक का रंग बदल गया। दीए की रोशनी में कमाल ने उसे देखा। वह उसी की आयु का रहा होगा। वह सीढ़ियाँ उतर कर तहख़ाने में उसे ले जाते हुए कह रहा था—मेरा नाम हरिशंकर है। मैं जोका का बेटा हूँ। मैं सुलतान के लिए अपनी जान लड़ा दूँगा। वह जमीन के नीचे बने हुए एक कमरे में दाख़िल हुए जहाँ भवानी की मूर्ति के आगे मद्धिम-सा दीया जल रहा था और दीवारों पर ढालें और तलवारें सजी थीं।

भवानी की मूर्ति उसे बड़ी डरावनी मालूम हुई लेकिन उसे उस समय यह एहसास था कि वह भी अब इस देश, इस वातावरण के रहस्य में पूरी तरह शामिल हो चुका है।

"अच्छा सुनो" उसने तख़्त पर बैठते हुए सवाल किया—"तुम्हारे पास कितने हाथी हैं? किधर से हमला करोगे?"

दूसरे क्षण वे दोनों बहुत गंभीरता से जंग का नक़्शा सोचने में लीन हो गए। उनमें से एक हिंदू था और दूसरा अरब और ये दोनों अफ़गानों से लड़ने जा रहे थे। उनमें एक ही वस्तु साँझी थी—दो-धारी तलवार और एक अन्य पक्ष को समाप्त कर देना उनके जीवन का उद्देश्य था।

कुछ दिनों बाद उन्होंने विद्रोह का झंडा ऊँचा किया और सुलतान सिकन्दर उनको दबाने के लिए जौनपुर पहुँचा लेकिन, हुसैन शर्क़ी को दुबारा पराजित होना पड़ा, और संगीतकार बादशाह जिसकी आधी उम्र राग-रागनियों का सृजन करने के बजाय युद्ध के मैदान में लड़ते-भिड़ते कटी, एक बार फिर बिहार की तरफ़ लौट गया।

अब कमाल का जी उचाट हो गया।

उसने इतना रक्तपात देखा था, उसने इतने इन्सानों को क़त्ल किया था, उसने इतनी बेबस औरतों को रोते देखा था—उसने सुलतान हुसैन के दरबार के अमीरों को उस दशा में सुलतान सिकन्दर के सामने जाते देखा था कि उनके साफ़े उनकी गर्दनों में रस्सियों की तरह

बँधे थे, और वे पैदल ही बन्दियों की तरह विजेता के सामने पेश किए जा रहे थे—ये लोग विद्वान, शायर और क़लम के धनी थे, और उनका विजेता भी विद्याप्रेमी और शायर था; लेकिन, पुस्तकें बेकार थीं, ज्ञान व्यर्थ था, दर्शन निरर्थक थे क्योंकि इन्सान का ख़ून इन सब चीज़ों के बावजूद बहता था। ख़ुदाबन्दा ! इन्सानियत किस तरह सारी की सारी ख़ून के समुन्दर में डूबी हुई थी ! इतिहास से उसे जितनी दिलचस्पी थी, अब उतनी ही घृणा हो गई। उसने सुलतानों की वंशावलियों, उनके युग और काल, और उनके राज्यों की घटनाओं को भूल जाना चाहा।

उसने यह भी भूल जाना चाहा कि सुलतान हुसैन की भांजी युद्धबन्दी के रूप में अब दिल्ली में है, और सुलतान सिकन्दर के हरम में दाख़िल की जा चुकी होगी।

उसके मित्र उदयसिंह राठौर ने उसे लज्जित किया—"कैसे बेशर्म हो ? तुम्हारी शाहज़ादी दिल्ली में है और तुम बिहार में चैन से बैठे हो। उसे छुड़ा कर लाओ। जाकर सुलतान सिकन्दर को क़त्ल करो या मुझे इज़ाज़त दो मैं उसका काम तमाम कर दूँ, शाहज़ादी को वापस ले आऊँ" कमाल यह बातें सुनता और ख़ामोश रहता। उसकी समझ में न आता था कि अब कौन-सा रास्ता इख़्तियार करे।

बिहार से बेचारे बेवतन सुलतान हुसैन ने बंगाल का रुख़ किया, और गौड़ के सुलतान हुसैन शाह ने जौनपुर के पराजित बादशाह को अपने यहाँ शरण दी।

अब मेरी आत्मा को काहे की खोज है?—गौड़ के शाही बाग़ों में निरुद्देश्य इधर-उधर घूमते हुए कमाल अपने आप से प्रश्न करता। बंगाले की लड़कियाँ बेहद आकर्षक थीं। यहाँ के दृश्य बहुत सुंदर थे। यहाँ का संगीत बड़ा मोहक था। उसे जौनपुर की शाहज़ादी याद नहीं आई। उसे चम्पावती का ध्यान भी कभी नहीं आया। उसे ख़ुदा की तलाश नहीं थी। हद तो यह थी कि उसे औरत की तलाश भी नहीं थी। उसका सारा अस्तित्व उस भयानक शून्य में डोल रहा था, जहाँ केवल गहरा सन्नाटा होता है।

उस सन्नाटे में सिर्फ़ एक सोच बार-बार गूँजा करती—मैं जब तक इस चक्कर में रहूँगा, मुझे दूसरों को मारना पड़ेगा और दूसरे मुझे मारने में लगे रहेंगे। इन्सान सचमुच इन्सान नहीं है, ख़ूँख़ार भेड़िया है। इन्सान मुझे कहाँ मिलेगा?

तरह-तरह की आवाज़ों ने इस सन्नाटे में बहुत से भँवर पैदा कर दिए—मैं इस सामने वाले इन्सान को मार डालूँ क्योंकि उसने सिर पर चोटी रखी है और गाय को पूजता है। और अगर मैंने उसे क़त्ल करने में पहल नहीं की तो वह मेरा काम तमाम कर देगा, क्योंकि मेरे सिर पर चोटी नहीं है।

सुन्दर शिवपुरी की इसलिए मुझे ईंट से ईंट बजा देनी चाहिए, क्योंकि वहाँ लाखों-करोड़ों मूर्तियाँ मन्दिरों में सजी हैं—लेकिन, वे मूर्तियाँ मेरा क्या बिगाड़ती हैं?

अगर इन मूर्तियों को मैं सहन करता हूँ तो मैं मुसलमान नहीं रहा?

इस्लाम क्या है?

इन प्रश्नों ने उसे पागल कर दिया।

इनसे बचने के लिए उसने शराब में पनाह ली। उसने देश के सारे क्षेत्रों की औरतें देखी थीं, सुन्दर मज़बूत शरीरों वाली मराठिनें; गुजरात और काठियावाड़ की कोमलांगियाँ; जिनके चेहरों की रंगत कुंदन जैसी थी; बीजापुर की मधुर स्वर वाली तवायफ़ें; बंगाल की जादूगरनियाँ,

जिनकी आँखों में जादू था—और बातों में टोना, जिनके लिए मशहूर था कि रातोंरात पेड़ की डालियों पर बैठ कर आसाम की ओर उड़ जाती हैं; और वृन्दावन की चंचल और चपल गूजरियाँ; मथुरा की अहीरिनें; पूरब की साँवली-सलोनी कहारिनें; और कन्नौज के बग़ीचों की वह मालिन, जिसने उसे एक बार बेला के गजरे बना कर दिए थे...

मौसम बदलते रहे। वह दिल की वीरानी से घबरा कर रागरंग की महफ़िलों में शरीक़ हुआ। लेकिन, सारंगी की ताँत में उसे मौत की हिचकियाँ सुनाई दीं। उसने लखनवती की नचनियों को नाचते देखा, लेकिन, हसीन नर्तकियों के बजाय उसे मुर्दा औरतें दाँत निकोसती दिखायी दीं।

तरह-तरह की ध्वनियाँ, अजीब और अनोखे गीतों के बोल, मृत भाषाओं के वाक्य—उसके दिमाग़ में हर वक़्त शोर मचाते। वह इस अन्दरूनी हलचल से तंग आ गया। सन्नाटा इतना शोरभरा हो सकता है, यह उसे मालूम न था। वह जो सात-सात भाषाओं का पंडित था, उसने कोशिश की कि सारी बोलियाँ, सारे शब्द किसी प्रकार भूल जाए। स्मरण-शक्ति भी कितनी कष्ट देने वाली चीज़ थी !

एक रोज़ किसी ने चुपके से उसके कान में कहा—"हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाए। हीरा जनम अमोल था—हीरा जनम अमोल था..." वह झुँझला कर किसी दूसरी नर्त्तकी के यहाँ जा पहुँचता, और उससे कहता—गुनकरी छेड़ो ! मधु-माधवी सुनाओ ! रागललित अलापो ! वह तानपूरा उठाती तो वह वहाँ से भी भाग खड़ा होता। गायिकाओं के गीतों के स्थान पर कोई दूसरे शब्द उसका पीछा करने लगते। "साँस नक्कारा कूच का, साँस नक्कारा कूच का बाजत है दिन रैन—दिन रैन—दिन रैन !" अन्त में उसने लखनवती, गौड़ और सुनार गाँव की चहल-पहल छोड़ देहात का रुख़ किया, जहाँ सिर्फ़ गहरे रंगों की राजधानी थी, तालाबों में कमल के सुर्ख़ फूल जगमगाते थे, और बड़हल और मौलसिरी की छाँव में वैष्णव पुजारी और पुजारिनें राधा और कृष्ण के प्रेम के गीत गाते थे। वीरानों में उसे प्राचीन काल के बंगपति और गौड़ेश्वर सम्राटों के सुनसान महल नज़र आए। जिनमें घास उगी हुई थी। उनकी दीवारों पर उसने नर्तकियों की मूर्तियाँ देखीं--तिरछी आँखों वाली लड़कियाँ जो यहाँ से मयूरपंखी जहाज़ों पर बैठ कर जावा के शैलेन्द्र दरबार में महाभारत का संगीत-नाट्य दिखाने के लिए जाती थीं। इस समय उनकी सुडौल भुजाओं और दीर्घ पलकों पर छिपकलियाँ चल रही थीं। पाल और सेन सम्राटों के महलों के खंडहरों की छाया में कोई प्राचीन क़ब्रिस्तान था, जिसकी टूटी-फूटी दीवार के नीचे एक बूढ़ा हाँफता-काँपता, बैठा खाँस रहा था। बराबर के खेत में हल चलाया जा रहा था। सामने महानन्दा नदी बल खाती बह रही थी। तब अचानक उसके दिमाग़ का शोर थोड़ा-सा मद्धिम हुआ। उस बानी का अर्थ उसकी समझ में तारे की तरह रोशन होना शुरू हुआ, जो मुद्दतें हुईं, अयोध्या में उसे किसी ने सुनाई थी; उससे किसी ने कहा था :

आज काल के बीच में जंगल होगा बास।
औरे औरे हल चलेंगे, ढोर चरेंगे घास।।
ढोर चरेंगे घास—ढोर चरेंगे—

आख़िर जब दिल में उन्माद ज़्यादा बढ़ गया तो उसने बंगाल से निकल भागने का इरादा किया। सुलतान हुसैन शर्क़ी को गौड़ में इस तरह अकेला छोड़ कर भागते हुए उसे अपने

आपसे बड़ी शर्म आई।

"परन्तु सब भावनाएँ क्षणिक होती हैं" उसने अपने आप से कहा। और, एक दिन चुपचाप शाही महलों से निकल खड़ा हुआ। गंगा के घाट पर पहुँच कर वह एक जहाज़ में बैठ गया। उसे मालूम नहीं था कि जहाज़ किस ओर जा रहा है।

नदी पर रोशनी जगमगा उठी। लंगर उठाया गया। मल्लाह आनंदित स्वर में गा रहे थे। कमाल एक कोने में बैठा रहा। वह जहाज़ प्रयाग जा रहा था—प्रयाग, जो काशी से आगे था। महान गंगा बहुत दूर से बहती हुई आ रही थी। उसके एक सिरे पर अथाह समुद्र था। कमाल ने आँखें बन्द कर लीं। दिन गुज़रते गए। जहाज़ गंगा की सतह़ पर आगे बढ़ता रहा। यात्रियों से भरे जहाज़ में बड़ी चहल-पहल थी। भागलपुर के निकट एक गाँव से बराती दुल्हन का लाल डोला लेकर सवार हुए। दूल्हे ने ज़र्द रंग का जोड़ा पहन रखा था। दुल्हन लम्बा-सा घूँघट काढ़े थी। उसके पैरों में चाँदी के बिछुए थे और उसके मेंहदी से रचे हाथों में चूड़ियाँ और हाथी दाँत के कड़े खनखन बोलते थे। और, वह चहको-पहको रो रही थी। बराती हुल्लड़ मचा रहे थे।

कमाल जहाज़ दीवार के सहारे बैठा ख़ाली-ख़ाली आँखों से यह सब देखता रहा।

"सुनो चम्पावती, मुझसे ब्याह कर लो !"

"हुँह !"

"हुँह—क्या? मैं कहता हूँ, मुसलमान हो जाओ ! तुम्हारा परलोक सुधर जाएगा और इस ज़िंदगी में मुझ-जैसा दिलचस्प आदमी मिलेगा।"

"राम-राम, कैसी बातें करते हो ! मैं क्यों होने लगी मुसलमान ! मुझे तो तुम्हारे मौलवियों की दाढ़ियों से ही डर लगता है। जौनपुर के क़ाज़ी बन कर तुम भी ये लम्बी-सी दाढ़ी रख लोगे !"

"अब भी समय है, चम्पारानी ! देखना किसी दिन किसी सरघुटे पंडे के पल्ले बाँध दी जाओगी; जो उम्र भर टहल करायेगा और जब वह मरेगा तो तुम उसके पीछे-पीछे चिता में ढकेल दी जाओगी। कभी अपने आगे के इस भयानक भविष्य पर भी विचार किया है तुमने?"

"मैं तो तुम्हारे साथ भी मरने के लिए तैयार हूँ। तुम मर के तो देखो !"

"सुनो चम्पा—सचमुच ! मुझसे ब्याह कर लो !"

"काहे को अपनी ज़ात बिगाड़ते हो। तुम सैयद वंश से हो।"

"तुम भी ब्राह्मण हो। और वैसे तुम्हारी ज़ात और ऊँची हो जाएगी। सैयदानी कहलाओगी। मुझसे ब्याह कर लो ना भई !"

"मगर हम तो तुमको यों ही अपना पति मानते हैं।"

वह यह सुन कर चकरा गया। "वह कैसे? मेरा तुमसे ब्याह कहाँ हुआ है? यानी कि—मैं—तुम, मेरा मतलब है कि—!!"

"इससे क्या होता है।" वह उसी तरह निश्चिन्तता से हँसती रही। "हम तो सिर्फ़ एक आदमी को अपना पति समझेंगे, और वह आदमी तुम हो। हमारा-तुम्हारा तो जनम-जनम का साथ है।"

"जनम-जनम का साथ? क्या बकवास है !" कमाल ने भिन्ना कर कहा। "फिर तुमने जादूगरी की बातें शुरू कीं !"

"इसमें जादू क्या है?" चम्पा ने हैरानी से पूछा—"क्या कोई लड़की किसी आदमी को खुद से पसंद नहीं कर सकती? हमने तुम्हें चुना है, और हम तुम्हारे आगे झुकते हैं।"

"क्या कुफ़्र (धर्म विरुद्ध बात) बकती हो, मैं नऊज़-बिल्लाह (खुदा बख़्शे) कोई ख़ुदा हूँ?"

"हो तो सही। मन ही तो ख़ुदा को जन्म देता है।" वह फिर ज़ोर से हँसी।

और फिर उसने कहा—"अच्छा यह बताओ, तुम हमसे बड़ी मुहब्बत करते हो ना?"

"करता क्यों नहीं हूँ !"

"तो फिर इतनी घबराहट काहे को? कबिरा यह घर प्रेम का, ख़ाला का घर नाहिं। कबिरा यह घर प्रेम का—कबिरा यह घर प्रेम का—!" और वह ज़ोर से कहकहा लगा कर गायब हो गई।

यह अयोध्या का कुंज नहीं था, गंगा की सतह थी। उसका जहाज़ शान्तिपूर्वक लहरों को चीरता आगे बढ़ रहा था, और बराती धमारी गा रहे थे, और लड़कियाँ हँस रही थीं, और दुल्हन रो रही थी—दुल्हन, जो गोरे रंग की दुबली-पतली बिहारी लड़की थी। वह न जाने किस देश को जा रही थी—किस ज़िन्दगी की तरफ़—किस मौत की तरफ़ उसका रुख़ था? जहाज़ मुंगेर पहुँचा। बराती उसका डोला लेकर किनारे उतर गए। घाट की भीड़ में लाल रंग का डोला नज़रों से ओझल हो गया।

जहाज़ ने दुबारा लंगर उठाया। गंगा के दोनों तरफ़ हरेभरे खेत थे और गाँव, और नगर; और दुनिया अपने हाल में मग्न थी।

पटना के घाट पर बहुत से यात्री उतरे, बहुत से सवार हुए। नए यात्रियों में कुछ धनी नवयुवक थे। एक जोगियों का गिरोह था। एक नारंगी लिबास वाला भिक्षु था—भिक्षु, जो सबसे अलग-थलग रहता।

पटना के धनी युवक दिन भर चौसर खेलते रहते। काठियावाड़ के दो व्यापारी अपना सामान लेकर दिल्ली जा रहे थे, वे अपने बहीख़ाते में लगे थे। जोगी राम-धुन में मग्न थे। कमाल की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। भिक्षु ने उसका अमीराना लिबास देखा और चुपचाप जाकर एक कोने में बैठ गया।

कुछ देर बाद इन जोगियों में से एक कमाल के निकट से गुज़रा। वह वेशभूषा से हिन्दू नहीं मालूम होता था—क्योंकि उसके सिर पर चोटी नहीं थी।

"भाई, तुम मुसलमान हो?" कमाल ने साहस बटोर कर उससे पूछा।

"इंसान हूँ।" उसने संक्षेप में उत्तर दिया।

"मैं—मैं भी इंसान हूँ।" कमाल ने कहा।

"क्या चाहते हो?"

"यह पता नहीं।"

"अगर अपने मन का भेद खुद नहीं जानते तो हमारे पास तुम्हारा क्या काम? उधर जाकर बैठो !"

उसने धनी युवकों की ओर संकेत किया, ऐसा लगता था जैसे जोगी उसे पहचान गया था।

"तुम कहाँ जा रहे हो?" कमाल ने पूछा।

"काशी।"

"वहाँ क्या है?"

"वहाँ क्या नहीं है? वह शिवपुरी है। वहाँ आनन्द प्राप्त होता है। वहाँ मेरा मुर्शिद रहता है, मेरा शेख़, वह जो गुरु है मेरा। लेकिन, अफ़सोस कि तुमने इतनी उम्र गँवा दी और उसको न जाना !" वह ठिठक गया—"तुम जौनपुर के कमालुद्दीन हो ना?"

कमाल चकित होकर उसे देखता रहा।

"मैं सुलतान सिकन्दर का सेनापति था। मैं चुनार की लड़ाई में तुमसे लड़ा था, बल्कि तुमने अपनी तलवार से मुझे घायल भी किया था। यह देखो !" उसने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया, जिसकी उँगलियाँ कटी हुई थीं। अपना चिकारा जिसे वह बायें हाथ से बजा रहा था, रख कर वह कमाल के पास बैठ गया। "तुमको और बताऊँ। जब तुम गौड़ के दरबार में रंगरेलियाँ मना रहे थे, तब वह जंगलों में तुम्हारी राह देखती थी, और रोती फिरती थी। लेकिन कोई राजहंस उसका सन्देश तुम तक न पहुँचा सका !"

कमाल का दिल धड़कने लगा। यह जोगी क्या-क्या कह रहा है ! क्या यह परोक्ष विद्या जानता है।

"मैं अपनी फ़ौज लेकर अयोध्या से होकर जा रहा था। रापड़ी में जो जंग हुई, उसमें उसका भाई मारा गया—वही जो चतुर्वेदी पंडित था और वह जंगलों में रोती फिरती थी। हर सिपाही को देख कर वह समझती थी कि शायद तुम ही आ गए क्योंकि तुमने उसे वचन दिया था कि उसके पास ज़रूर लौट कर आओगे। मुझे सिपाही देख कर तुम्हारा पता पूछती हुई वह मेरे पास आई। मैं तो उसे तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं बता सका। फिर, मालूम नहीं वह कहाँ गई।"

कमाल का दिल धड़कता रहा। सन्नाटा इतनी ज़ोर से गरजा कि उसे लगा जैसे उसके कानों के पर्दे फट जाएँगे। वह उठ खड़ा हुआ। "दुनिया बहुत बड़ी है"—जोगी कह रहा था—"तुम उसको ढूँढ़ नहीं सकते। वह तुमको खोज नहीं पाएगी। जीवन में दो इन्सान सिर्फ़ एक बार मिलते हैं, अगर बिछुड़ जाएँ तो उनका दुबारा मिलना असम्भव है। मिलने और बिछुड़ने के अर्थ जानते हो?" इतना कह कर जोगी ने फिर अपना चिकारा उठा लिया और अपने साथियों की तरफ़ चला गया।

गंगा बहती रही। चाँदी की विस्तृत चादर पर यात्रियों से भरी हुई नावें चला कीं—शाही बजरे, व्यापारियों के जहाज़, मछेरों की डोंगियाँ। उनके पाल शाम को डूबते सूरज के सामने हवा से फूल कर यों फड़फड़ाते जैसे अनगिनत राजहंस मानसरोवर की ओर उड़ने के लिए पर तौलते हों। नावों में से गाने की आवाज़ें उठीं। जोगियों के सुमिरन, फ़कीरों के ज़िक्र, वैष्णव पुजारियों के भजन। व्यापारियों के जहाज़ मुल्क की मंडियों की तरफ़ जा रहे थे। गुजरात और बंगाल के सूती कपड़े, बनारस का रेशम, दक्कन के हीरे। दूर-दूर देशों के लोग इन नावों पर सवार थे—चीन के विद्वान, तिब्बत और कश्मीर के भिक्षु, अरब पर्यटक, ईरान के चित्रकार, जावा के नर्त्तक। देश में शान्ति स्थापित थी। दिल्ली में सुलतान सिकन्दर हुकूमत करता था। ज़िन्दगी में बड़ी गहमागहमी थी।

"खुशनसीब हैं वे लोग जिन्हें दिल का चैन नसीब है। भाई, मुझे शान्ति चाहिए !" कमाल ने आहिस्ता से कहा।

भिक्षु ने आँखें उठा कर उसे देखा। उसके मुख पर पूर्ण शान्ति थी और शाश्वत प्रसन्नता। आज वैशाख पूर्णिमा थी। आज की रात दो हज़ार वर्ष उधर, इसी गंगा के उस पार तराई की एक बस्ती में शाक्य मुनि पैदा हुए थे। आज ही वैशाख पूर्णिमा के दिन उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। चौदहवीं का चाँद नदी की लहरों पर इधर-उधर तैरता रहा।...उसकी तेज़ और ठण्डी किरणें कमाल और भिक्षु के चेहरे पर पड़ती रहीं। दरिया पर पूर्ण निस्तब्धता छाई रही।

"मुझे मेरे विचारों से मुक्ति दिलाओ !" कमाल ने कहा।

भिक्षु अपनी रहस्य-भरी आँखों से उसे देखता रहा।

"विचार ! विचार स्वयं को नहीं जान सकता। विचार अपने आप से बाहर नहीं जा सकता है। सृष्टि से बाहर कोई ईश्वर नहीं है—और ईश्वर से बाहर कोई सृष्टि नहीं। सत्य और असत्य में कोई अन्तर नहीं, लेकिन इन सबसे ऊपर परम सत्य शून्य है" उसने गहरे स्वर में कहा।

"मुझे इस सन्नाटे से बड़ा डर लगता है।" कमाल ने कहा।

"शून्य—सन्नाटा—शून्यता; जो अन्तिम सत्य है; जो शून्य की परिकल्पना है।"

"मुझे इस परिकल्पना से ही डर लगता है।" कमाल ने कहा। "इस सन्नाटे में मैं अकेला किधर जाऊँगा? तुम भी मेरा साथ नहीं दे सकते !" उसने महायानी भिक्षुओं को शंका और संदेह की नज़र से देखा।

जहाज़ एक गाँव के किनारे ठहरा। तट पर चाँदनी रात में कोई त्यौहार मनाया जा रहा था। कमाल घाट पर पहुँच कर चारों तरफ़ देखता रहा। उसकी समझ में न आया कि किधर का रुख़ करे। सहसा उसे वैष्णव पुजारियों की एक टोली दिखाई दी, जो उसके जहाज़ से उतरी थी। वह उनके पीछे-पीछे हो लिया। किसी ने उस पर नज़र न डाली।

बहुत दिन तक वह इसी प्रकार इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। गाँव-गाँव घूमता वह एक हरेभरे जंगल में पहुँचा। उसे इस जगह का नाम मालूम नहीं था। पास ही जुलाहों की बस्ती थी। चन्दन की सुगंधित हवाएँ पेड़ों पर मँडरा रही थीं। हरियाली के विस्तार से आकाश का रंग हरा दिखाई दे रहा था। सावन का महीना शुरू होने वाला था। भौंरों जैसी काली जामुनें हरी घास पर टप-टप गिरती थीं। कुसुम्बी रंग की साड़ियाँ और लहँगे पहने लड़कियों ने आम की डालों में झूले डाले थे। चारों ओर घनबेली, रूपमंजरी, सुदर्शन और मालती खिली थीं।

गले में तुलसी मालाएँ पहने वैष्णव जोगिनें कटहल के पेड़ के नीचे बैठी खड़ताल बजाती थीं। गुलाबी आँखों वाले तोते डालों पर बैठे थे। तुरई बजाते, कमण्डल हाथ में लिए जोगी अपनी तीर्थयात्राओं पर जा रहे थे। झाड़ियों में जंगली तीतर बोल रहे थे।

तालाब के किनारे रसबेली महक रही थी। महुआ के झुण्ड में से गीतों के मधुर स्वर आ रहे थे। कमाल एक खंड की सीढ़ियों पर बैठ कर जंगल और सावन के उन स्वरों को सुनता रहा।

तब उसको मालूम हुआ, वह सन्नाटे में था। यह सन्नाटे के विभिन्न प्रतिबिम्ब थे। वह आश्चर्यचकित था। यह सन्नाटा परम सत्य था। भिक्षु की बात उसकी समझ में आ गई।

फिर उसने ध्यान से सुना। महुआ के झुण्ड में वैष्णव पुजारिनें, जो गीत गा रही थीं, उनके शब्द अब उसे स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। ये तो बर्दवान के जयदेव गोस्वामी के शब्द थे।

उसने डूबते हुए दिल के साथ ध्यान से सुना, पुजारिनें गा रही थीं—

"चंदन के गर्म जंगलों पर से बहती हुई हवा महक ला रही है। जहाँ इलायची के झाड़ों से चुराई हुई सुगंध फैली है, जहाँ मधुमक्खियाँ भिनभिनाती हैं।

उन कुंजों से यह पुरवाई आती है, जहाँ वह नाचता है। यह वसन्त का महीना है और इस महीने में एकान्त बहुत खलता है।

केतकी की कलियाँ और पीले फूल कामदेव की तरह जगमगा रहे हैं। पाटल की कलियों पर भौंरे सो रहे हैं। माधवी हवा में झूम रही है, और झूम रहे हैं रेशमी मोंगरे। और, इस समय वह कुंजों में नृत्य करता है। यह वसन्त का महीना है और इस महीने में अकेलापन बहुत खलता है।

जैसे गर्म होंठ बन्द आँखों को छू लें, उसी प्रकार सूरज की किरणें आम की केरियों पर पड़ रही हैं। और वह शान्त जमुना तट पर नृत्य कर रहा है। फूलों की ऋतु में वह तो अकेला नहीं है।"

"वह गोपियों के साथ नाच-नाच कर यों ही अपना समय गँवा देगा, जबकि राधा उसकी प्रतीक्षा में है।"—उसने सोचा।

पुजारिनों ने गीत का दूसरा अन्तरा उठाया—

"जैसे दूर जाने वाले यात्री को कोयल की आवाज़ सुन कर अपने देश के नदी-तट के आमों पर गुनगुनाते हुए भौंरों की याद आ जाए, उसी तरह सहसा उसे राधा का ध्यान आया।

और, राधा ने देखा--सुनहरी वस्त्र धारण किए, केशों को वनफूलों से सजाए, अपने लाल होंठों के रंग की वज्रमणि से भूषित वह गोपियों के साथ नाच रहा है।"

कमाल खंड की सीढ़ियों पर बैठा सुनता रहा।

पुजारिनों ने गाया—

कोयल के स्वर से पथिक को पीड़ा होती है।
उन खुशियों की पीड़ा जो प्राप्त न हुई
उन यात्राओं की पीड़ा जो की न जा सकीं,
उन परिश्रमों की पीड़ा, जिनका कोई परिणाम न निकला।
और आनन्द के बावजूद,
आनन्द में पीड़ा छिपी है, क्योंकि पीड़ा निरंतर है।

कमाल उठ खड़ा हुआ। पुजारिनों की आवाज़, जयदेव के शब्द धीरे-धीरे दूर होते गए—

और, जयदेव ने कहा था—मैं प्रतीक्षा में हूँ। प्रेम तो वह भी करता है, जिसने प्रेम देर से आरम्भ किया।

मेहरी और गौरैया चिड़ियों के संगीत में वह जंगल के छायादार रास्तों पर इधर-उधर भटकता फिरा, और तब एकाएक पेड़ों के झुंड में उसे गंगा का पानी झिलमिलाता नज़र आया।

उसे मालूम न था कि वह इस तरह घूमता-फिरता बनारस पहुँच चुका है। सामने दूसरे किनारे पर शिवपुरी थी, जिसके मन्दिरों के कलश धूप में चमक रहे थे। सैकड़ों घण्टे एक साथ बज रहे थे, और हवा में अगरु की महक थी, गलियों में पूजा के फूल बिखरे हुए थे और घाट की अनगिनत सीढ़ियों पर लोग नहा रहे थे। काशी—अनादि और अनन्त नगरी।

वह पेड़ों की छाँव में दिन भर निरुद्देश्य फिरता रहा। अब उसके पैरों में शक्ति नहीं

थी, वह बेतरह थक चुका था। जंगल की समाप्ति पर जुलाहों की बस्ती थी। वह थके-थके पाँवों से उनकी चौपाल की ओर बढ़ा।

एक अहीर ने उसे सिर झुकाए जाता देख कर उससे कहा—"भैया, लागत है तुम बहुत दूर से आइ रहे हौ ! तुमरे पैरन मा माटी कितनी लागी है !"

"हाँ !" उसने उत्तर दिया—"मैंने बहुत लम्बा सफ़र तय किया है।"

"आओ, बैठो, सत्तू खाओ।" अहीर ने कहा, और उसे एक छप्पर के नीचे ले गया। "कपड़न से तो बड़े धनवान दिखाई पड़त हौ—ई अचरज में काहे फिरत हौ? सुल्तान के मनई हौ?"

"मैं किसी सुलतान का मनई नहीं हूँ।"

"लो आराम से बैठो। यहाँ छाँव है।"

वह जूते उतार कर छप्पर में बैठ गया और चारों ओर देखने लगा। सामने आम और जामुनों का घना बाग़ था। जिसमें वह दिन भर घूमता रहा था। महुए के झुंड से अब भी वैष्णव गायकों के गाने के मद्धिम स्वर आ रहे थे। पगडंडी के दोनो ओर दोपहरी खिली थी।

"लो भई, चम्पावती" उसने दिल में कहा, "तुम्हारी शर्त पूरी हुई। तुमने कहा था कि मैं अपनी तलवार उतार फेंकूँ तो तुम मुझे अपने साथ काशी ले चलोगी। मैंने अपनी तलवार नदी की लहरों को समर्पित कर दी है और मैं काशी पहुँच गया हूँ लेकिन तुम कहाँ हो?"

सामने से कलंदर फ़कीरों की एक टोली निकली। बहुत से संन्यासी कुण्डल पहने, त्रिशूल हाथ में लिए घाट की ओर जा रहे थे। जुलाहों, अहीरों और कंगालों का एक समूह खड़ताल सँभाले भजन गाता उनके साथ-साथ चल रहा था।

चम्पा ने कहा था—"इन लोगों का मज़ाक न उड़ाना ! ये बहुत प्यारे लोग हैं। एक दिन यही तुम्हारे काम आएंगे !"

वह धीरे-से छप्पर से निकला और इस जनसमूह के साथ चलने लगा।

वे लोग अपने गुरु के पास जा रहे थे—वह जो लहरतारा तालाब में से निकला था, वह उसी जगह रहता था, जहाँ मौलसिरी के पेड़ थे और जहाँ रसबेली महकती थी।

23

मियाँ कबीर सुबह के समय करघे पर बैठ कर कपड़ा बुनते, कपड़ों का गट्ठर बना कर पीठ पर लादते और बनारस की गलियों में जाकर फेरी लगाते। शाम को उनके घर के सामने मौलसिरी के झुण्ड में जमघट लगता। चिकारे सँभाले जाते, खड़तालें बजतीं, भजन गाए जाते। यह नक़्शा बरसों से क़ायम था। कौन कह सकता था कि इसी दुनिया में युद्ध होते हैं, इन्सान एक-दूसरे से घृणा करते हैं; इसी दुनिया में आत्मभूत औरतें दाँत निकोसे हृदय के पीछे लगी हैं।

सारे में मियाँ कबीर की कीर्ति फैली थी। उनकी बानियाँ किसानों और जाहिलों की ज़बान पर थीं। दूर-दूर के [illegible] से लोग खिंचे आते थे।

काशी के पण्डों और दिल्ली के मौलानाओं को और सुलतान सिकंदर को, जो बड़ा कट्टर मुसलमान था, यह बेहूदा बातें पसंद न थीं। लेकिन वे सब क्या कर सकते थे ? सारा देश

एक नये रंग में रंगा जा चुका था। पिछले तीन सौ साल में इस भक्ति-मार्ग पर एक बड़ा खूबसूरत क़ाफ़िला चल रहा था। इस क़ाफ़िले में कैसे-कैसे लोग शामिल थे ! अजमेर के मोइनुद्दीन और एटा के अमीर ख़ुसरो, दिल्ली के निज़ामुद्दीन, गुजरात के नरसिंह मेहता, वीर भूमि का चंडीदास और बिहार की मिथिलापुरी के विद्यापति, महाराष्ट्र के दर्जी नामदेव, प्रयाग के रामानन्द और दक्षिण के माधव और वल्लभ। और बादशाहों और छत्रपति राजाओं के दरबारों, मंत्रियों और सेनापतियों की दुनिया से निकल कर कमाल ने देखा कि इस दूसरी दुनिया में मज़दूर और नाई, मोची और किसान और ग़रीब कारीगर आबाद थे। यह जनतांत्रिक भारत था, और इस भारत पर इन गुदड़ीवालों का, इन सूफ़ियों और सन्तों का, शासन था। इस्लाम का समानता का सिद्धान्त हिन्दू-भक्तों को प्रभावित कर रहा था। इस्लाम तो शांतिप्रिय सूफ़ी इस देश में फैला रहे थे। यहाँ तलवार की बात कहाँ थी ? हज़ारों बरस के सताए हुए अछूत इन सूफ़ियों और सन्तों के पास बैठ कर राम का नाम ले रहे थे। यह बड़ी निराली दुनिया थी। इसमें हिन्दू-मुसलमान का सवाल नहीं था। यहाँ प्रेम का राज था। और, कमाल जो इन्सान की खोज में भटक रहा था, उसने देखा कि दुनिया में भेड़ियों के अलावा इंसान भी बसते हैं। वह अहीर जिसने चौपाल में बिठला कर सत्तू हाज़िर किया था, उसकी जान लेना नहीं चाहता क्योंकि उसे किसी राज्य को प्राप्त करने की कामना नहीं है। उसे तो दोनों वक्त बाजरे की रोटी मिल जाती है और वह ईश्वर का धन्यवाद करता है। उसे देशों की राजनीति से क्या मतलब ? यह किसान जो उसके सामने खुश-खुश मुंडेर पर बैठा अपनी छोटी-सी बच्ची को बेर खिला रहा है, उसे क्या चिन्ता कि दिल्ली में कल कौन शासन करेगा ? सुलतान हुसैन का राज्य हो तब भी वह इसी प्रकार हल चलायेगा और लगान देगा और, सुलतान सिकन्दर बादशाह हो तब भी वह यही करेगा। इन तुर्कों से पहले जब पृथ्वीराज था, तब भी उसके बाप-दादा यों ही जेठ की धूप में हलकान होते थे और सावन में गाते थे और अकाल पड़ता था तो ख़ामोशी से मर जाते थे।

तब कमाल ने सोचा—धर्म जीवन में महत्वपूर्ण समझा जाता है, लेकिन प्रेम दिखावटी धर्म से बहुत ऊँची चीज़ है।

प्रेम असली चीज़ है।

दूर-दूर से लोग काशी आकर कबीर के चरणों में बैठ रहे थे। कमाल उन सबकी बातें शौक़ से सुनता। उनकी सेवा करता।

काशी में एक दिन कोचीन का एक अंधा ब्राह्मण आया। वह कबीर का नाम सुन कर सैकड़ों मील की यात्रा करके यहाँ पहुँचा था। उसकी एक भुजा युद्ध में कट चुकी थी, लेकिन वह एक ही हाथ से रामधुन पर खड़ताल बजाता था। उसे देख कर कमाल को लगा कि वह युद्धों और विनाश से बचने के लिए यहाँ भाग आया है; मगर, बाहर की दुनिया में लड़ाइयाँ उसी तरह जारी थीं।

"भाई, तुम्हारी जान किसने लेनी चाही थी ?" कमाल ने उससे पूछा।

"फ़िरंगियों ने।"

"फ़िरंगी ?"

"हाँ ! ईसाई। बहुत दूर पश्चिम से आए हैं।" उसने संक्षेप में उत्तर दिया।

इतने लम्बे समय तक भारत में रह कर वह ईसाइयों के अस्तित्व को बिल्कुल भूल चुका था। जो मुसलमानों के जानी दुश्मन थे, और येरूशलम जीतने के लिए मुसलमानों से कटे मरते थे। इतिहास में उसकी दिलचस्पी फिर उभर आई। वह खिसक कर मालाबार के ब्राह्मण के पास बैठ गया।

"ये ईसाई किधर से आए हैं ?" उसने सवाल किया। सलीबी युद्धों की सारी घटनायें उसे अच्छी तरह याद थीं।

"पुर्तगाल कोई देश है।"

इस नाम से तो वह परिचित था, क्योंकि दूसरे अरब की तरह वह भी भूगोलशास्त्र का पंडित रह चुका था।

पुर्तगाल इन्दलुस (स्पेन) के पास था। इन्दलुस ! उसके दिल पर एक बरछी-सी लगी। कमाल को यह मालूम न था कि पुर्तगालियों को उनके बादशाह ने और रोम के पोप ने हाल ही में आज्ञा दी थी कि जिस तरह मुसलमान स्पेन से निकाले गए उसी तरह उनको, सारी दुनिया में जहाँ-जहाँ मिलें, चुन-चुन कर उनका खात्मा कर दो—एक भी जिन्दा न बचने पाए।

"उन्होंने गोवा की सारी मस्जिदें ढहा दीं; मन्दिरों को तोड़-फोड़ कर बराबर कर दिया।" अंधा ब्राह्मण कहता रहा, "गोवा के एक-एक मुसलमान को मौत के घाट उतार दिया। मैं हिंदू था इसलिए बच गया।"

नवयुवक ब्राह्मण जो अपनी ज्योतिहीन आँखों से उसे तकते हुए दुतारे पर उँगलियाँ फेर रहा था—यह कालीकट के राजा के समुद्री बेड़े का एक उच्चाधिकारी रह चुका था, और राजा के समुद्री बेड़े के मुसलमान सेनापति क़ासिम और मीरहसन के साथ जी तोड़ कर पुर्तगालियों से लड़ा था और अपनी आँखें उनकी बारूद की भेंट चढ़ा कर और एक बाज़ू कटवा कर यहाँ पहुँचा था। कमाल को सुलतान सिकन्दर का वह सेनापति याद आया जो उसी की तरह जोगी का रूप धारे उसे जहाज पर मिला था।

"हमारी हार हुई या जीत ?" कमाल ने धीरे-से प्रश्न किया।

"हमने तो तुर्की के सुलतान से मदद माँगी थी। तुर्की का जंगी बेड़ा मिस्र देश से हमारी सहायता के लिए आया, मगर पुर्तगालियों का तोपख़ाना बहुत ज़बरदस्त है।" उसने अपनी दृष्टिहीन आँखें बन्द कर लीं और दुतारा बजाने में लीन हो गया। अब शाम हो रही थी, और लोग कीर्तन के लिए जमा होना शुरू हो गए थे। कमाल उठा और कोचीन के उस अंधे का हाथ थाम कर उसे रास्ता बताता हुआ लोगों के गिरोह में मिल गया।

बग़दाद और जौनपुर का अबुल मंसूर कमालुद्दीन, इतिहासकार, शोधकर्त्ता, राजनीतिज्ञ, सिपाही, जिसे तसव्वुफ़ और अध्यात्मवाद से कभी कोई वास्ता न था, अन्त में काशी के पंचगंगा घाट पर पहुँच चुका था।

24

लेकिन, बहुत से बुनियादी प्रश्न सोचने वाली बुद्धि के लिए अभी शेष थे। कबीर ने उनसे कहा—"सुनो भई साधो, हरि से प्रेम करो, तुम्हारे दुख आप से आप मिट जाएँगे।" दुःख-

सत्य, दुःख का सत्य ही उसको जहाज़ वाले उस तांत्रिक सिद्ध ने भी समझाना चाहा था। लेकिन, हरि कौन था ? यह सवाल बड़ा महत्वपूर्ण था। इसी सवाल पर एथेंस और इसकन्दरिया में और बग़दाद में बड़े लम्बे-चौड़े वाद-विवाद हो चुके थे। हज़ारों वर्ष इसी गंगा के किनारे पर कपिल ने, जैमिनि ने, और राजकुमार सिद्धार्थ ने, और सात सौ वर्ष हुए महानदी के उस पार शंकराचार्य ने इस पर विचार किया था। कमाल ने पुस्तक बन्द करके सोचा। तरीक़त और 'मार्ग' दोनों 'रहीम' तक पहुँचते हैं; जो 'राम' है !

गौतम सिद्धार्थ के सुनहरे मार्ग पर सदियों तक यात्रियों के समूह चलते रहे। उन्होंने दुनिया में अपने कुछ दिनों के निवास के दौरान में बनारस और सांची और अमरावती और अजन्ता और बाघ के चित्रालय सजा डाले। किन्तु, समय ने एक बार फिर पलटा खाया, और मालवा और कन्नौज और मगध और गोड़ में फिर हरि की भक्ति की चर्चा हुई। केदारनाथ से लेकर द्वारिका तक शिव के भव्य मंदिर निर्माण होते चले गए। शाक्य मुनि का मार्ग महायान सम्प्रदाय और तांत्रिक रहस्य में बदल गया। और शाक्य मुनि विष्णु का अवतार बन कर उन्हीं मंदिरों में विराजने लगे। नारंगी वस्त्र धारण करने वाले वे भिक्षु जो मयूर राजचिन्ह वाले सम्राट चंद्रगुप्त नृचन्द्र के युग से भी पहले जंगलों में प्रकट हुए थे, एक हज़ार वर्ष की उलट-फेर के बाद सिद्ध कहलाते थे और बंगाल और बिहार के मन्दिरों में जादू-टोने करते थे। महायान धर्म की महासुख परिकल्पना निरर्थकता में बदल चुकी थी।

कि हर बड़ा आदर्श अन्त में यों ही तबाह किया जाता है।

लेकिन 'आदर्श' क्या वस्तु है ?

अचानक कमाल को महसूस हुआ कि वह बाल की खाल खींचने की आदत इख़्तियार कर चुका है जिस तरह उसने आस-पास के विद्यापीठों में लम्बी-लम्बी चोटियाँ रखाए ब्राह्मण विद्यार्थियों को दर्शनों की समस्याओं की मीन-मेख निकालते सुना था।

आसपास के गाँवों में, बनारस और झूसी और मगहर में, उसे अनगिनत फ़क़ीर मिले, जिनकी खानक़ाहों में जाकर उसने तसव्वुफ की बातें सुनीं। क़स्बों और शहरों में भव्य मदरसे थे जहाँ एक से एक गंभीर विद्वान तैयार किया जा रहा था। बड़े-बड़े अमामें (पगड़ियाँ) बांधे मदरसों के शेखुल जामिआ (कुलपति) जब उसके सामने पालकी में बैठे हुए निकलते तो उसे बग़दाद की याद आ जाती ! अँधेरे-से मठों में पंडित अपने पोथी-पतरों में सिर खपा रहे थे। कुंजों में कबीर और उनके शिष्य 'प्रेम-प्रेम' की रट लगाए जा रहे थे। मगर, वह हमेशा का ज़िद्दी और अभिमानी अरब, उसने जड़ तक पहुँचने का निश्चय किया और जिस प्रकार वह सुलतान हुसैन के मुस्तैद सिपाही की हैसियत से नये मोर्चे को सर करने के लिए अपने बिजली की-सी चाल वाले घोड़े पर बैठा-बैठा उफनती, शोर करती नदियों में कूद पड़ता था, उसी तरह अब उसने उस अँधेरे समुन्दर का भी खुशी-खुशी स्वागत किया, जिसमें इससे पहले हज़ारों-लाखों आत्माएँ डुबकियाँ लगा रही थीं। बहुत-से लहरों के विरुद्ध हाथ-पाँव मार रहे थे। बहुत-से कश्ती का पाल उतार सन्तोष करके एक तरफ़ को बैठे थे और खुद को हवा के हवाले कर दिया था। बहुत-से अपने टूटे-फूटे जहाज के तख़्तों पर बहते चले जा रहे थे। बहुत-से ऐसे भी थे, जो कब के डूब चुके थे। मगर, किनारे तक कोई न पहुँचा था; क्योंकि किनारा दिखाई नहीं देता था। समुद्र असीम था; और अथाह; और चारों तरफ़ घुप अँधेरा छाया था। बहुत-सों का

ख़याल था कि जो दीप उन्होंने अपनी-अपनी नावों में जलाए थे, उनके प्रकाश में वे इस समुद्र को पार कर लेंगे; मगर यह भी उनका मन-बहलाव था। किनारा नज़र नहीं आता था।

किनारा कहाँ है ? वहाँ पहुँच कर क्या मिलेगा ? यथार्थ क्या है ? और, ईश्वर की परिकल्पना ? प्रेम और वैराग्य से क्या प्राप्त होता है ? मोक्ष क्या है ?

पंडितों से उसने उनके भगवान के सम्बन्ध में पूछताछ शुरू की, यद्यपि कबीर ने उससे कहा था–"काशी के पण्डे तुमको और बातें बताएँगे। मैं काशी का जुलाहा हूँ, तुम तो मेरा ज्ञान बूझो।" मगर उसने उस बात की सुनी-अनसुनी कर दी; और उन अँधेरे मठों और रहस्यमय उपासनागृहों को उसने बाहर से झाँक कर देखा, जिनके अन्दर उसे क़दम रखने की आज्ञा न थी—लोबान का धुआँ, देवी-देवताओं की विचित्र मूर्तियाँ, मन्दिरों के अँधेरे; पक्के आँगन, पेचदार गलियाँ; चबूतरे और मोखे जिनके अन्दर रखी किसी डरावनी मूर्ति की झलक उसे नज़र आ जाती। मंत्रों का जाप; फूलों और मिठाइयों के ढेर; बैलों, गायों, बन्दरों और तोतों के झुण्ड; सीढ़ियों पर जमा पुजारियों की भिनभिनाहट, घण्टों की आवाज़। क्या इन लोगों की बौद्धिक चेतना और इनकी ब्रह्मविद्या की समस्याएँ भी इन्हीं तंग और अँधेरी गलियों और अनगिनत वुर्जियों; गलियों-कोठरियों वाले मन्दिरों की तरह जटिल और न समझ आने वाली हैं। यह कौन जिन्नों की कौम है जिसे वह नहीं समझ सकता। उसे तो अपनी प्रमिभा पर बड़ा गर्व था। क्या वह पिनज़ामिया मदरसा का ज़माना भूल गया।

यह ठीक था कि हिंदू दर्शन और ब्रह्मज्ञान के छः के छः स्कूल एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर दुष्कर थे और इसे स्वयं कभी दर्शन और उत्तर भौतिकता से लगाव नहीं रहा था लेकिन वह सारी आधारभूत समस्याओं की तरफ़ से आँखें मूँद कर केवल हरि प्रेम की रट नहीं लगाएगा। हरि क्या है ? हरि कौन है ? या राम या रहीम ? वह ख़ुदा की किस नाम से उपासना करे ? क्या नाम ज़रूरी है ? और ख़ुदा कौन-सा है और क्या वह भी जरूरी है ? दुनिया भर में नए-नए शोशे छोड़ने वालों, नास्तिकों और शंकावादियों की कमी नहीं है लेकिन उसके इस्लाम और ईमान में बाधा आ चुकी थी।

उसने एक दिन चुपके से कबीर के कुंज से निकल कर दरिया पार किया और एक ऐसे भारी तिलकधारी पण्डित के पास जा पहुँचा, जिनके पाण्डित्य की दूर-दूर तक धाक थी। उनसे कहा कि मैं शास्त्रार्थ या वादविवाद के लिए नहीं आया हूँ; मैं ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।

परन्तु, ज्ञान इस कदर विशाल था कि उसे अपने अमहत्वपूर्ण होने का शिद्दत से अहसास हुआ और वह कहाँ से शुरू करे। युग कितने फैले हुए थे ! और, शताब्दियों के चक्कर ! देश कितना विशाल था। वह उसके केवल एक छोटे से भाग में इस समय मौजूद था। अभी उसको बंगाल और दक्षिण, महागुजरात के तमिलनाडु की भी खबर नहीं थी। वहाँ के विद्वानों, गीतकारों, उपासनाघरों और धर्मशास्त्रों का उसे रत्ती भर भी पता न था।

वह कौन-सी विचारधारा का अध्ययन पहले शुरू करे ? कर्म और ज्ञान और प्रेम—तीनों मार्ग उसके सामने खुले थे। वह किस पर पहले चलना शुरू करे ? कर्म के मार्ग का बयान प्राचीन वेदों में था और कर्मशास्त्रों और धर्मशास्त्रों और महाभारत और पुराणों में इसका वर्णन है। महाभारत में कृष्ण ने अर्जुन को कर्म मार्ग दिखाया था। वैदिक ईश्वरों का देश पर हज़ारों वर्ष से राज था जो धीरे-धीरे दार्शनिक प्रतीकों की बजाय जनता की बुद्धि में देवी-देवताओं

की हैसियत से विराज रहे थे।

उसने कर्म मार्ग के बारे में पढ़ा कि यह कारण और परिणाम का रिश्ता है जिसके द्वारा मानव और सृष्टि एक-दूसरे से बँधे हैं और मोक्ष कर्म के चक्कर से आज़ाद होकर ही प्राप्त हो सकता है।

दूसरा मार्ग ज्ञान का था। वैदिक काल के बाद के दार्शनिकों ने पता लगाया था कि केवल कर्म से मोक्ष संभव नहीं। स्वयं कर्म की वास्तविकता क्या है यह जानना चाहिए। यह खोज करने का रास्ता बड़ा लम्बा था। उपनिषदों में किसी ऐसे तरीके की खोज शुरू की गई थी जिससे कारण और परिणाम का चक्कर टूट सके। इसने छः विचारधाराओं को जन्म दिया। तर्क के नियम बनाए गए। कपिल ने कहा—पुरुष और प्रकृति, आत्मा और भूत पदार्थ अनादिकाल से मौजूद थे। भूत पदार्थ हरकत करता है और तब्दील होता है। आत्मा विशुद्ध चेतना है मगर वह तब्दील नहीं होती। उसकी मौजूदगी की वजह से भूत पदार्थ हरकत करता है। आत्मा सृष्टि से अलग है। सृष्टि का इसके बिना भी विकास होता है क्योंकि बुद्धि, व्यक्तित्व, अहं आत्मा में सम्मिलित नहीं परन्तु फिर भी आत्मा भूत पदार्थ में मिल जाती है और उसकी मुक्ति उस समय है जब वह भूत पदार्थ से खुद को अलग कर दे। भूत पदार्थ में फँसे रहने का परिणाम दुख है। अगर उसे अपने और प्रकृति के अंतर का ज्ञान हो जाए तो वह आज़ाद हो सकती है। कपिल नास्तिक था। उसके निकट सृजन और विकास ईश्वर का कारनामा नहीं बल्कि भूत पदार्थ की प्रकृति थी।

फिर कमाल ने पतंजलि के योगशास्त्र पढ़े। उसका ईश्वर सृष्टि की रचना करने वाला नहीं बल्कि आत्मा अनादिकाल से थी जो भूत पदार्थ में नहीं फँसी। वेदांत वाले ब्रह्मवाद में विश्वास रखते थे।

प्राचीन काल के ब्राह्मण विधाई गौतम के दार्शनिक ज्ञान में उसने अस्तित्व और अनस्तित्व, भाव और अभाव के वर्णन पढ़े। गौतम ने तर्कसंगत और निष्कर्षण के द्वारा चीजों की खोज लगाने की कोशिश की थी। उसका विचार था कि दुनिया शून्य से पैदा होने की बजाय अनादि अणुओं, काल और स्थान और बुद्धि और मस्तिष्क ने सृजित की थी। उसने कहा था कि मिट्टी और पानी की तरह सारी मिश्रित वस्तुओं का कोई न कोई कारण अवश्य रहा होगा क्योंकि वह परिणाम की हैसियत से मौजूद हैं। काल और स्थान और अणु असीम हैं किसी कारण का परिणाम नहीं अतः मिश्रित वस्तुओं का कारण कोई प्रतिभाशाली प्रेरक है वर्ना मिश्रित परमाणु के भौतिक कारण अर्थात अणुओं में वह नियम और संगठन नहीं हो सकता जिसके द्वारा उनके परिणामों का सृजन होता है, उस प्रतिभावान प्रेरक को भौतिक कारणों का प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान होगा और परिणामों की कार्यक्षमता की शक्ति भी। कोई इंसान इस ज्ञान और शक्ति का वाहक नहीं अतः ब्राह्मण विधाई गौतम ने कहा था कि इस मिश्रित वस्तुओं की दुनिया के कारणों का कारण ईश्वर है।

वक्त के बारे में उसने पढ़ा कि काल और स्थान आपेक्षिक हैं और केवल ऐसा शून्य नहीं जिसमें यथार्थता घटती है। समय की समस्या पर कमाल बहुत गड़बड़ाया। सृष्टि के बारे में विचार भी सामी दृष्टिकोण से बिलकुल भिन्न था जिसमें सृष्टि के पैदा होने से महा प्रलय तक एक विशेष नियमित अंतराल था, जिसके बाद नित्यता ही नित्यता होगी, लेकिन यहाँ तो

संसार की उत्पत्ति के बाद फिर संसार की उत्पत्ति थी और कोई विशिष्ट बिन्दु न था जहाँ से काल का आरंभ शुरू हो। यह दार्शनिक कहते थे कि समय का मान विभिन्न इंसानों के लिए विभिन्न है। मानव समय देवताओं के समय का सौवाँ और ब्रह्मा के समय का दस लाखवाँ हिस्सा है अतः छूने और महसूस करने की दुनिया ही अस्तित्व की सारी सम्भावनाएँ समाप्त नहीं कर देती। उसने पढ़ा काल और स्थान सत्य की दशा हैं और सत्य अस्तित्व में आने की दशा का दूसरा नाम है और नित्य विकास और शक्लों और स्वरूपों के पेचदार और जटिल प्रकटन और दुनिया की निरंतरता का एक ऐसा चक्कर है जो कभी समाप्त न होगा।

फिर एक दल का कहना था कि पहले शून्य था और उसमें सृष्टि की उत्पत्ति हुई। यह वही पैगम्बरों को दिया गया खुदा का संदेश, और इल्हाम (खुदा की ओर से दिल में आई बात) में आस्था रखने वाले खुदा परस्तों का दल था। यथार्थवादियों का दृष्टिकोण था कि प्रकृति खुदा के साथ अनादिकाल से मौजूद है और आज़ाद है, खुदा केवल सृष्टा और उत्पादन कर्ता है। आदर्शवादियो के निकट खुदा के अलावा और कोई वस्तु असली नहीं थी। पंच रात्रियों का दृष्टिकोण था कि विष्णु असली अस्तित्व है और लक्ष्मी क्रिया शक्ति की हैसियत से, ईश्वर की इच्छा भूत शक्ति की हैसियत से सृष्टि की माँ है। बुद्धमत वालों का कहना था कि ईश्वर और आत्मा दोनों का कोई वजूद नहीं।

वह कौन-सी विचारधारा का अध्ययन पहले शुरू करे ?

वेदांत ने उसे अपनी ओर खींचा और वह शंकराचार्य के अध्ययन में फिर से जुट गया।

पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के बाद से देश में बुद्धमत का पतन हो चुका था। गंधार और कश्मीर और सवात घाटी तथा मकरान और बलोचिस्तान और मध्य प्रदेश हर जगह महेश्वर की उपासना शुरू हो चुकी थी। मलाया और स्याम देश और चम्पा के दूर स्थित देशों में नीलकंठ शिव की आरती उतारी जा रही थी जिसने सारी सृष्टि का ज़हर पीकर अपने गले को नीला किया था।

यह परिकल्पनाएँ अत्यंत कँपकँपा देने वाली थीं। महा भैरो सृष्टि का भयानक जोगी जो अपने हाथों में ब्रह्मा की खोपड़ी का कमंडल लिए डमरू बजाता तीन डग भर कर तीन लोकों को पार कर लेता है और फकीरों की तरह अपने बैल पर बैठा संसार में मारा-मारा फिरता था—महाकाल—ब्रह्मा, विष्णु और महेश का तीसरा विनाशकारी रूप—शिव नटराज।

मध्य प्रदेश और दक्षिण में लिंगम के मंदिर निर्माण कर लिए गए थे। गुप्त काल में अब शिव महाराज का बोलबाला था। अरब पर्यटक अपने यात्रावृतों में इस विचित्र धर्म का वर्णन कर रहे थे। ईश्वरों की फ़ौज की फ़ौज थी जो हर तरफ़ कूदती-फाँदती फिर रही थी। भयानक राक्षस की तरह दस हाथ वाली काली डायनें। परियों जैसी कोमल व मृदुल देवियाँ, चाँद और सूरज, आग और बादल, हाथी की शक्ल वाला और बंदर की शक्ल वाला, नाग और कछुए, तीर्थ और मेले और यात्राएँ और त्यौहारों का गुल गपाड़ा—और जीवों की बलि और जादू-मंत्र और टोने-टोटके की एक हलचल मची थी। समुन्दर-पार कम्बोज देश और यावा तथा समाटरा में नए ब्राह्मण साम्राज्य का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। शिव का डमरू सारे में गूँज रहा था।

हिंदू धर्म के नवीनीकरण और नए संगठन में उस अकेले युवक का कितना बड़ा हिस्सा

था जो आठवीं शताब्दी ईस्वी में मालाबार के तट पर अलोर नदी के किनारे शिव गुरु ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ था। ज्ञान के मार्ग पर चल कर एक तरफ़ जिसने उपनिषदों, गीता और ब्रह्मसूत्र की व्याख्याएँ लिखीं और दूसरी ओर धर्म को दार्शनिक तर्कों से निस्पृह करके जनसाधारण का धर्म बनाया। जो सारे देश में मठ स्थापित करता और धर्म का प्रचार करता फिरा और बत्तीस वर्ष की आयु में मर गया।

हिंदुस्तान का महानतम चिंतक शंकराचार्य—उसके दर्शन का केन्द्र ईश्वर का अद्वैतवाद था। ईश्वर—जो विशुद्ध बुद्धि और विशुद्ध अस्तित्व था—निर्गुण—और दुनिया जो माया थी।

लेकिन जिस तरह संसार दो प्रकार के थे—एक सत्य और दूसरा असत्य। इसी प्रकार ज्ञान दो प्रकार के थे—श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ—ब्रह्म और ईश्वर। अतः जनता जो शंकराचार्य की बुद्धि की ऊँचाइयों पर नहीं पहुँच सकती थी उनको उसने पुरोहितों के हवाले करके ब्राह्मण अधिकार की जड़ें मज़बूत कर दीं।

नीति—नीति है नहीं है—अर्थात् ब्रह्म का अनुभव नहीं किया जा सकता, उपनिषदों में लिखा था। शंकराचार्य ने उसकी व्याख्या की। नीति—नीति का अर्थ अनस्तित्व नहीं। सच ज़ात—ईश्वर संपूर्ण भरपूर अस्तित्व है और सत-अस्तित्व चित चेतन जो सृष्टि को उज्ज्वल करता है—ब्रह्म है और अनादिकालीन है। सत, चित और आनन्द ब्रह्म के गुण हैं बल्कि उसकी ज़ात है। ज्ञान ब्रह्म का गुण है, सगुण ब्रह्म या ईश्वर जीवित ईश्वर है। प्रकृति और माया के साथ ब्रह्म सगुण बन जाता है। वह एक ही समय में ईश्वर भी है और जीव भी अर्थात व्यक्तिगत सत्ता भी, शंकराचार्य ब्रह्मवाद में आस्था रखते थे।

दार्शनिक माधो आचार्य ने दूई (दो अलग-अलग) सिद्धांतों का प्रचार किया। उसके निकट ब्रह्म और जीव के अलावा तीसरा अस्तित्व भौतिक संसार का था। रामानुज ने कहा था ब्रह्म और माया भिन्न-भिन्न नहीं बल्कि सब ब्रह्म है—ब्रह्म माया।

कमाल पण्डितों से ब्रह्मसूत्र की व्याख्या पढ़ता रहा। शंकराचार्य ने कहा था कि यथार्थता को दो विभिन्न मापदंडों से जाँचा जा सकता है। एक मार्ग ज्ञान का था, जिस पर कमाल खुद गिरता-पडता लस्टम-पस्टम चला जा रहा था। दूसरा मार्ग अभी बाक़ी था। जाने उसमें इतनी हिम्मत बाक़ी रह जाएगी कि वह उस मार्ग का भी अनुभव कर देखे। 'मदरसों' में प्रतिकार और दंड, उपकार और बुराई की समस्याओं पर वाद-विवाद जारी थे। मुसलमानों के बहत्तर के बहत्तर फिरक़े अपने अभिमान में स्वयं ठीक रास्ते पर थे। (मुसलमानों का एक संप्रदाय) सूफ़ी और दरवेश अपने-अपने दायरे फैलाए बैठे थे, और खुदा की मुहब्बत में आहें भर रहे थे। उसने मोअतज़िलयों (मुसलमानों का एक संप्रदाय) से वाद-विवाद किए जो धर्म को बुद्धि से पहचानने के आदी थे। शियों ने उसे अपनी ओर बुलाया जिनका हलूल (आत्म प्रवेश) का धर्म-प्रश्न हिंदुओं के दर्शनों से मिलता-जुलता था।

मलामतियों (फ़कीरों का एक टोला) के किस्से भी उसने सुन रखे थे। गंगा के किनारे-किनारे आम के पेड़ों में छिपी हुई ख़ानक़ाहों में उसने उन अल्लाह के बंदों को देखा जो लाहूत (तसव्वुफ़ में वह स्थान जहाँ सूफ़ी खुदा में डूब जाता है) से नासूत (दिखावे की उपासना) के सारे रास्ते तै कर चुके थे; या शेख़ (गुरु) के ध्यान में गुम बैठे थे। 'निर्वाण' और 'फ़ना' की खोज में उसने योगियों और सूफ़ियों दोनों को 'मराक़बे' और समाधि में खोए

हुए देखा। सूफ़ियों ने उससे कहा, "अन्तिम सत्य प्रकाश है—नूर....नूर....नूर ! जो नूर नहीं, उसका अस्तित्व नहीं।" कुछ और दरवेशों ने उसे बताया, "अन्तिम सत्य 'ख्याल' (चित्त) है।" अल्लाह के जलाल (तेज), जमाल (सौंदर्य) और कमाल (पूर्णता) के 'जिक्र' की गूँज उसने इन कुंजों में सुनी। क्योंकि यह हिन्दुस्तान था! यह फ़रीदुद्दीन अत्तार और शेख़ जलालुद्दीन तबरेज़ी और बहाउद्दीम जकरिया और जलालुद्दीन सुर्ख़पोश और ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती और कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी का देश था; और, कौन अभागा होगा जो इस देश में आकर भी वह न पा सके जिसकी उसे तलाश थी।

मगर, अभी तो वह कपिल और शंकराचार्य के पहले अध्याय भी न पढ़ पाया था। क्या वह यों ही शून्य बुद्धि ख़ाली मस्तिष्क लेकर सन्तों और सूफ़ियों के पास से चला जाए ? कैसे वह दिल में शंकाएँ रखे और इन मासूम लोगों को धोखा दे ?

एक रात वह घण्टों बैठा मठ की दीवार के नीचे सोचा किया। अन्दर रोशनी हो रही थी। पण्डित श्लोक पढ़ रहे थे। वह अंदर न जा सकता था। उसे ये श्लोक बहुत अजनबी लगे। सारे जौनपुर के मुसलमान विद्वान और काशी के पंडे उसे पंक्ति बाँधे बैठे दाँत निकोसते नज़र आए। वह उनसे अलग नीचे मौजूद था। कोई उसकी बात ही न सुनता था। वह दीवार के नीचे बैठा रहा।

"साहिबो मेहरोबान ! साहिबो मेहरोबान !" उसने पलट कर देखा।

रात की हवा में खुनकी आ चली थी। निकट सीढ़ियों पर कुछ पहाड़ी लोग बैठे थे, और वे इकतारे पर अलाप रहे थे; "साहिबो मेहरोबान ! साहिबो मेहरोबान ! साहिबो....!"

उसने अँगड़ाई ली और उठ खड़ा हुआ। "कमालुद्दीन" उसने अपने आप से कहा—"मालूम ऐसा होता है कि कबीर का 'साहब' तुम्हें वापस बुला रहा है। वही जो बहुत मेहरबान है। दोनों मार्ग तुमने देख लिए; लेकिन, अभी प्रेम का मार्ग रह गया है। उस पर चल कर शायद तुम उस तक पहुँच सको। हाँ अभी प्रेम का मार्ग बाक़ी है।"

उसने दोबारा घाट का रुख किया और गंगा पार करके कबीर के कुंज में वापस पहुँचा।

दिन गुज़रते गये।

अब तो लगता था जैसे उम्र भर से वह इसी वातावरण में साँस लेता आया था जहाँ ढाक के जंगलों से पाठ करने की आवाजें बुलंद होती थीं, जहाँ गोरखनाथ के जोगी शेर की खालें ओढ़े कानों में कुंडल डाले सींगी और नृसिंही बजाते, शरीर पर भभूत मले इन जंगलों में घूमते थे। जहाँ ढाक फूलती थी, जहाँ नव्वे प्रकार के नाथ और चौरासी प्रकार के सिद्ध पहाड़ों की गुफाओं और मठों और भयावने मन्दिरों में अपनी-अपनी मण्डलियाँ लगाए बैठे थे; जहाँ कापालिक और कालमुख बदन पर राख मले, खोपड़ियों के हार पहने, कड़ा बजाते हुए चारों ओर घूमते थे।

एक से एक परमहंस और योगी नदी के किनारे कुटियों में बैठे थे।

यह शांतिपूर्ण वातावरण जहाँ गीत थे और ढोल और मंजीरे की ध्वनियाँ। बसन्त ऋतु आती तो सारे में बसंती और धानी रंग फैल जाते। ग्रीष्म ऋतु में महुआ टपकता और आम के पेड़ बौर से लद जाते। रंगीली वर्षा ऋतु में चुनरियाँ हवा में लहरातीं, लावनियाँ गाई जातीं, लड़कियाँ पकवान पकातीं।

भादों के महीने में गंगा माई का जोश और गुस्सा देखने वाला होता। शरद ऋतु में पीली चाँदनी सारे में फैलती और उदास सुहागिनें अपने-अपने परदेशी पतियों की याद में बिरहे अलापतीं, चर्खे काततीं, और सास-ननदों से लड़तीं।

हेमन्त ऋतु आती। अगहन और पूस की ठण्डी हवाएँ चिल्लातीं। अलाव जलते; आल्हा-ऊदल गाया जाता। माघ और फ़ागुन के महीनों में खेतों पर पाला बरसता। चने और अरहर के पौधों पर ओस की बूँदें जगमगातीं। किसानों के झोंपड़ों से चक्की की घर्र-घर्र की आवाज़ आती।

आवाज़ों और रंगों की इस दुनिया में वह पूर्ण रूप में रस-बस चुका था।

यह सब था, मगर चम्पा नहीं थी। उसे कौन ज़मीन निगल गई, कौन आसमान खा गया, कौन चिता की ज्वाला की वह भेंट हुई। किस नदी की लहरों ने उसे अपनी ओर खींच लिया ?

यह कौन बता सकता था ? अनगिनत त्यौहार आए और निकल गए; रक्षा बन्धन और भैया दूज और जन्मअष्टमी और होली और दीवाली—और मुहर्रम और राम लीला। किसी हंगामे, किसी मेले, किसी गाँव, किसी बस्ती में वह दिखाई न दी। वह सारे में मारा-मारा फिरा। एक-दो बार अयोध्या गया। उसका जी चाहता कि उम्र उन्हीं हरे-भरे मैदानों, सरयू और गंगा के उन ही तटों पर गुज़ार दे।

चम्पा की याद अब एक अनोखे रूप में उसके मन में रहती थी। भक्ति-मार्ग में उसने देखा था कि विष्णु अन्तर्यामी ऐसा ईश्वर है जो दिलों के अन्दर वास करता है। वह माता है, पिता है, पति है, दोस्त है। राधा के लिए कृष्ण है; कृष्ण के लिए राधा। उसने सोचा कि लौकिक प्रेम से आध्यात्मिक प्रेम तक की दूरी तो बहुत सें तय करते हैं, मगर चम्पा अनगिनत अँधेरों में मेरे लिए उजाला करती जाती है। जब वह सावन की रातों में लड़कियों के गीत सुनता तो दुनिया बिलकुल एक नए रूप में उसकी आँखों के सामने आ जाती, क्योंकि अब उसे मालूम था कि शब्दों के अर्थ क्या हैं। वैरागिन जो पिया की खोज में अँधेरी रात में निकल खड़ी हुई, विरह की रात—वियोग था। जोगन, गोरी, सुहागिन—ईश्वर का भक्त था। पति, पिया, मनोहर, गिरधर गोपाल—ईश्वर था, जिसकी खोज में गोरी राजपाट छोड़ वनों में मारी-मारी फिर रही थी। अरब और ईरान की शायरी की काल्पनिक सृष्टि से जो उसका रिश्ता अब तक रहा था यह उस रिश्ते से बिलकुल भिन्न था जो उसने उन शब्दों, उन सुरों, मद्धम रंगों से स्थापित किया था।

खुदा साक़ी (मधुबाला) नहीं था खुदा प्रीतम था। हरि, श्याम, कन्हैया और राम—'कोई राम से मोहे मिला दे—मोहे राम से—कोई कहे वह बसे अवध में कोई कहे बिंद्रावन में—कोई कहे वह बसे अवध में—'

वह महीनों यूँ ही इधर-उधर फिरा किया। वह अयोध्या से कई महीने तक वापस न आया। काशी में उसकी ढुंडिया मची। वह निश्चिंत और सैलानी आदमी है, बग़दाद लौट गया होगा। किसी ने कहा—बग़दाद से उसे क्या मतलब ? वह तो घाघरा के किनारे घूमता फिरता था।

जब वह लौट कर आया, तो उसे जुलाहों की बस्ती में वापस जाते डर-सा लगा। गुरु उसे डाँटेंगे कि तुम अब तक किस चक्कर में पड़े हुए हो ?....लेकिन, मियाँ कबीर उसे देख

कर मुस्करा दिए। "ताल सूख पत्थर भयो, हंस कहीं ना जाय ! पिछली प्रीत के कारने कंकर चुन-चुन खाय।"–उन्होंने कुछ देर सोच में डूबने के बाद कपड़े का ताना तैयार करते हुए कहा।

कमाल वहीं मिट्टी से लिपी धरती पर बैठ गया और करघे की आवाज़ सुनने लगा।

हंस कहीं न जाय–हंस कहीं न जाय। वह यहाँ से कहाँ जा सकता था। पिछली प्रीत का नाता तो बहुत गहरा होता है।

प्रेम-निर्वाह का अर्थ उसकी समझ में आया। प्रेम-निर्वाह का मार्ग उसे चम्पा ने ही सुझाया था। वह कबीर के साथ ऐसे रहता, जैसे गंगा के संग जमनाजी बहती हैं। और चम्पा उसके साथ-साथ उसी तरह थी, जैसे गंगा के साथ सरस्वती, जो बाहरी आँखों को नज़र नहीं आती।

मगर, यह साथ भी चन्द दिनों का था। काशी के पण्डितों और मौलवियों ने सुलतान सिकन्दर लोदी से फ़रियाद की कि यह पथभ्रष्ट जुलाहा जनसाधारण को गुमराह कर रहा है। उसके हाथ-पाँव बाँध कर लोगों ने उसे गंगा में डुबो दिया, मगर वह, जिद्दी जुलाहा–"जल-थल राखत हैं रघुनाथ।" का नारा लगाता पानी से बाहर निकल आया।

दिल्ली का सुलतान बड़ा दयालु और दीनदार था। उसने मियाँ कबीर को कहलवाया कि आप पंडों और मौलवियों के दुश्कृत्यों से सुरक्षित रहने के लिए काशी से कहीं दूर चले जाएँ।

25

मियाँ कबीर बनारस से निकाले गए। शिवपुरी का जंगल उजड़ गया, जहाँ मौलसिरी महकती थी और सुदर्शन के फूल खिले थे। मियाँ कबीर का करघा सुनसान पड़ा था। उनके मकान पर ख़ामोशी छाई थी। कमाली उनकी छोटी-सी बच्ची, बस्ती की गलियों में रोती फिरती थी। काशी निवासियों की आँखों से आँसू टपक रहे थे। कमाल ने एक बार फिर सामान बाँधा और गंगा के घाट पर पहुँच कर बंगाल जाने वाले जहाज़ पर सवार हो गया। उसके एक सिरे पर यहाँ से सैंकड़ों मील दूर गौड़ था जहाँ आज से कई वर्ष पूर्व, अपने सुलतान को अकेला छोड़ कर भाग आया था।

कुछ सप्ताह बाद जहाज़ पटना पहुँचा। पटना में उसे मालूम हुआ कि सुलतान शर्की गौड़ से भागलपुर आ गया था और यहाँ कुछ साल गुज़रे। इसी निर्वासन की अवस्था में वह खुदा को प्यारा हुआ। सुलतान हुसैन शर्की जिसने संगीत की दुनिया में एक नई शैली की वढ़ोत्तरी की। वह युद्धों में लड़ा-भिड़ा। जंगलों में मारा-मारा फिरता रहा और समाप्त हो गया।

लेकिन हुसैनी पिया जिसका राज्य कुछ दिनों का था और जिसे ज़िंदगी में शांति प्राप्त न थी, सुर में डूब कर ज़िंदा रहा।

सुर की लहरों पर बहते हुए अब कमाल ने नई-नई दुनियाओं की सैर शुरू की। गीत जो सबसे पहले पैदा हुआ–ईश्वर गान, जिसे कबीर अनहद नाद कहता था।

बाजत अनहद ढोल रे
तुझे हरि मिलेंगे
तुझे हरि मिलेंगे
तुझे हरि मिलेंगे

संगीत की यह सारी दुनिया उसकी अपनी थी। जय देव, विद्यापति और चण्डीदास के भजन। मछेरों और किसानों तथा बस्ती में घूमने वाले फकीरों के गीत। इस दुनिया में सीधे हमलों, और रात के अचानक हमलों और फौजों के धावों, राजनैतिक हलचलों, निर्वासन और मौत का खटका न था। संगीत का एकत्व ईश्वर का एकत्व था।

बंगाल पहुँच कर वह गंगा के किनारे एक ऐसे घाट पर उतरा जिसका नाम उसे मालूम न था। यहाँ पान की बेलें फैली थीं और धान के खेत थे और झीलों में नीले फूल खिले थे। बरगद के पेड़ के नीचे किसी मुर्शिद की खानक़ाह थी। उसने वहीं रहना शुरू कर दिया। बंगाल जो सुरीली आवाज़ों का विशाल भँवर था। बाऊल गाने वालों की टोलियाँ इकतारा बजाती गली-गली घूमतीं, कहानियाँ सुनाने वाले—'दास्तान गो' गा-गाकर रूप कथाएँ सुनाते, माँझी और सपेरे और हाथी पकड़ने वाले हर समय गाते रहते। कृष्ण और राधा की मुहब्बत में हर मनुष्य मुग्ध नित नए राग अलापता फिरता था। इस मंत्रमुग्ध धरती के वासियों की रग-रग में संगीत रचा था। कमाल गलियों में घूमने वाले कवियों के साथ सारे में घूमता फिरता। पूरब में नदियों की लहरों में अपनी नाव खेता वह चटगाँव की पहाड़ियों और अराकान तक जा पहुँचा। यात्रियों के संग वह सीता कुंड गया जहाँ ऊँची पहाड़ी पर, जिसके दोनों तरफ़ गहरे खड्ड थे और जिनमें बाघ घूमते थे—सीता महारानी का मंदिर था। पहाड़ी के घने जंगलों में शताब्दियों पुराने मठ थे और पहाड़ी की गोदी में लाल पत्थर के तालाब के किनारे-किनारे आराधना घाट बने थे और बड़ के पेड़ों के नीचे लड़कियों की टोलियाँ बैठी कीर्तन गाती थीं।

चटगाँव का क्षेत्र मनमोहक था। बल खाते, तेज़ गति के दरिया, भयानक वन, सुगंधित फूल और फल, हरे-भरे पहाड़ी मार्ग, बाँस के घने झुंड जिनके गहरे अँधेरों में खानकाहें थीं।

एक दिन वह उन जंगलों में से गुज़र रहा था तो उसे एक तालाब के किनारे कुछ लोग इकतारा बजाकर गाते दिखलाई दिए। वह उनके निकट पहुँचा। यह निज़ाम डाकू का गीत था जो लोग अत्यंत श्रद्धा के साथ लहक-लहक कर गा रहे थे। उसकी धुन कीर्तन की जैसी थी। ऐसी नअत (स्तुति हज़रत मुहम्मद साहिब) कमाल ने आज तक न सुनी थी। वह दिलचस्पी से कान लगाकर सुनने लगा। इस गीत का लेखक इन क्षेत्रों का बहुत बड़ा डाकू था जो सौ साल गुज़रे यहाँ लूटमार मचाया करता था। फिर सूफ़ियों की संगत में पड़ कर बहुत बड़ा अल्लाह का वली महात्मा बन गया।

अगर मुहम्मद अवतार न लेते—कीर्तन मंडली ने गाया—

तो अल्लाह की हुकूमत त्रिलोक में स्थापित न होती।

जै हो मक्का की और सारे औलियाओं (महात्माओं) की और बीबी फ़ातिमा की जो सारे जग की माता है।

जै हो सारे उत्तर में हिमालय की जिसके कदमों में सारी सृष्टि फैली हुई है। जै हो पूरब से निकलते सूर्य की। अब मैं वृंदावन के सामने झुकता हूँ।

भगवान कृष्ण और श्री राधे को और चारों छोर नदियों और सागरों को मेरा प्रणाम।

जै हो मुसलमानों के फिर्कों की।

जै हो धरती माता और पवित्र संखा नदी की। नौपाड़ा की मस्जिद को मेरा प्रणाम क्योंकि वह बड़ा पीर एक बार इन क्षेत्रों से गुज़रा था।

अब मैं आगे बढ़ कर सीता घाट पहुँचता हूँ। आदर्श स्त्री सीता देवी और उनके महाराज रघुनाथ को मेरा प्रणाम।

जै हो—जै हो—जै हो।

कमाल आश्चर्य चकित बैठा यह विचित्र नअत सुनता रहा था। और फिर गाने वालों की आवाज़ में आवाज़ मिला कर खुद भी गाने में शामिल हो गया। अब वह बग़दाद से हज़ारों लाखों मील दूर निकल आया था। धर्म अपने आस-पास, अपने वातावरण, और अपनी पृष्ठभूमि से किस प्रकार प्रभावित होता है किस तरह उसकी जड़ें एक अजनबी देश-धरती पर फैलती हैं। कमाल गाता जा रहा है—

जै हो—जै हो—जै हो।

अब वह एक नई भाषा सीख रहा था। यह बंगाली भाषा थी जो अवध और बिहार की बोलियों से ज्यादा भिन्न न थी और संस्कृत से बहुत निकट थी और देश की अन्य आधुनिक भाषाओं की तरह तेज़ी से विकसित हो रही थी।

यह बड़ी मीठी भाषा थी। अब वह उसे अपनी भाषा समझने लगा था। उसी में बात-चीत करता, उसी में सोचता और उसी में लिखता।

एक ज़माना वह भी था जब वह जौनपुर के एक अमीर की हैसियत से यहाँ आया था। यद्यपि वह दरबार तब लुट चुका था। लेकिन हुसैन शर्की और उसके साथियों की शान-शौकत ताहम बाकी थी। लेकिन दुनिया तो अब मुद्दतें हुईं अबुल मंसूर कमालुद्दीन को भूल चुकी। किसी को क्या मालूम था कि यह सुंदर नवयुवक जिसके सिर के बाल कनपटियों पर से कुछ-कुछ सफ़ेद हो चले हैं, जो चम्पा के पेड़ के नीचे बैठा एक मुसलमान फ़क़ीर से कंचनमाला की रूपकथा सुन रहा है—या एकतारा बजा-बजा कर कबीरदास की कोई बानी अलाप रहा है—या काग़ज-क़लम लिए बंगाली भाषा में कोई लोकगीत या कहानी लिखने में व्यस्त है। यह कौन है ?

गाँव की नाउनों और बाउल फ़क़ीरों से गीत-कथाएँ सुनते-सुनते इस क्षेत्र के बहुत से दृश्य उसकी आँखों के सामने से गुज़रे। पाल-राजाओं का बंगाल, जब पद्मा और भागीरथी और मधुमति पर मयूरपंखी जहाज़ों के बजरे तैरते थे; जब इन छायादार मार्गों से पुष्परथ गुज़रते थे, जिनमें बैठी चित्रणी नारियाँ मधुर हँसी हँसती थीं—जगमगाते महलों में रहने वाली रानी मैनामती, सुनहरे चित्रित डोलों के लाल पर्दों से झाँकती दुलहिनें—वे सब कहाँ गईं ? बौद्ध बंगाल जो हीरे-मोती रोलता था, वह क्या हुआ ? अब तो सेन-राजाओं के महलों में भी उल्लू बोलते। गौतम बुद्ध और देवी तारा और दुर्गा भवानी और विष्णु के पुजारी जात-पाँत के कठोर बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए सूफ़ियों के हाथों धड़ाधड़ मुसलमान होते जा रहे थे। इतिहास के नक़्शे किस प्रकार बदलते हैं ! कमाल आँखें बन्द करके सोचता।

कई वर्ष तक वह इसी प्रकार कहानियाँ और गीत लिखता रहा। वह इतिहासकार, शोधकर्त्ता, राजनीतिज्ञ, सिपाही, सूफ़ी, कबीर का चेला, अब गीतकार बन चुका था।

इसी प्रकार घूमते-फिरते वह सोनार गाँव पहुँचा और वहाँ उसने शादी कर ली। उस लड़की का नाम शनीला था। वह जाति की शूद्र थी। एक दिन वह तालाब के किनारे गागर लेकर आई तो कमाल उसके लम्बे बालों और काली पलकों पर आसक्त हो गया। यह आयु और यह बौद्धिक प्रौढ़ता प्रेम करने की नहीं थी ! लेकिन आत्मा और हृदय की दुनियाओं की

सारी यात्राएँ तय करने के बाद उसने अन्दाज़ा लगाया कि ज़िंदगी में वास्तविक वस्तु शान्ति है—ऐसी शान्ति जिसमें प्रचण्ड तूफ़ानों और आँधियों की गुंजाइश न हो ! यह शान्ति उसे उस सीधी-सादी अनपढ़ देहाती लड़की से विवाह करके मिल गई, मानो यही उसका गंतव्य था। जौनपुर की शाहज़ादी एक बहुत धुँधला-सा स्वप्न था, और स्वप्न अब उसे याद भी नहीं रहा था। अयोध्या की ब्राह्मण-कन्या उसकी आत्मा और हृदय के उस तहखाने में मौजूद थी, जिसके दरवाज़ों में ताला लगाकर उसकी कुंजी उसने स्वयं नदी में फेंक दी थी।

क्योंकि, स्मृति जीवन की सबसे बड़ी यातना है। शनीला अब उसकी पत्नी थी। कमाल की समझ में न आया कि शनीला के शूद्र होने में क्या बुराई है ' उसने शनीला का नाम आमिना बीबी रखा और उसके साथ एक सुन्दर बाँस के झोंपड़े में रहने लगा।

आजीविका के लिए वह खेती करता। उसने खेत में धान बोये। उसके झोंपड़े के सामने छोटा-सा तालाब था जिसमें सिंघाड़े थे, और कमल के फूल थे और उसमें चाँदी के परों वाली बत्तख़ें तैरती थीं। जब आकाश में इन्द्रधनुष निकलता और जुही के फूलों पर भँवरा गुनगुनाता, तो वह अपने छोटे-से मकान के बरामदे में अपने साथी-गीतकारों के साथ बैठ कर आनन्दलहरी बजाता। आमिना अपने लोचदार शरीर पर गहरे जामुनी या हरे रंग की साड़ी लपेटे घड़ा कमर पर सँभाले तालाब की ओर जाती नज़र आती।

दिन गुज़रते गए। दुखी बंगाल ने जिसके सुलतान सदैव आपस में कटते-मरते रहे थे, अब कुछ दिनों से चैन की साँस ली थी। गौड़ की गद्दी पर सैयदुसादात अलाउद्दीन अबुल मुज़फ़्फ़र हुसैन शाह विराजमान था। मध्य एशिया के नगर तिर्मिज़ से आए हुए कुटुम्ब का यह ग़रीब सैयद किसी सुलतान के ख़ानदान का नहीं था और उसकी सज्जनता और योग्यता के कारण जनसाधारण ने उसे चुन कर अपना बादशाह बनाया था। उसके युग में दूध की नदियाँ बहती थीं, लूटमार और रक्तपात के बाज़ार ठण्डे पड़ चुके थे। बंगाल का यह महान बादशाह जिसके शासनकाल में विद्यापति, ठाकुर और महाप्रभु चैतन्य श्रीकृष्ण के प्रेम के सुरीले गीत अलाप रहे थे, राजमहल की पहाड़ियों से पत्थर बहा-बहा कर गौड़ लाए जा रहे थे और नई-नई सुन्दर इमारतें निर्मित की जा रही थीं। दरबार में साहित्य, विद्या और ज्ञान की सभाएँ आयोजित की जाती थीं।

कई बरस बीत गये। कमाल के बच्चे जवान हो चुके थे। उसने अपने लड़कों के नाम जमाल और जलाल रखे थे। उसकी लड़की का नाम सकीना बीबी था। वह अपनी सन्तानों की सूरत देख कर जीता था। उसके दोनों लड़के भवन-निर्माण-कला में निपुण थे, और गौड़ और सोनार गाँव में भवन-निर्माण में व्यस्त थे। गौड़ की छोटा सोना मस्जिद और गुनमन्त मस्जिद का नक़्शा जमाल ने तैयार किया था। जमाल गौड़ के भवन-निर्माताओं का सरदार था। बड़ा सोना मस्जिद की हरी, नीली, सफ़ेद, पीली और नारंगी पच्चीकारी में बंगाल के सारे रंग समेट लिए गए थे। उनके स्तम्भ, उनकी मेहराबें और गुम्बद विशुद्ध देशी थे। ये इमारतें भी पाल और सेन काल के निर्माण की परम्परा में शामिल हो गई थीं। यह बंगाली निर्माण-शैली थी। कमाल की लड़की का विवाह बर्दवान के मुर्शिदों के ख़ानदान में हुआ था। उसकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। उसने आमिना को अपने हाथों से उसी तालाब के किनारे दफ़न किया था। अब उसके बाल सफ़ेद हो चुके थे। अब भी वह दिन भर बरामदे में बैठा 'मुर्शिदी

(आध्यात्मिक) गान' लिखता और गाता। बंगाल के सुलतानों के संरक्षण में लोक-साहित्य, लोक-संगीत और नई बंगाली भाषा तेज़ी से उन्नति कर रही थी। उसके बेटे गौड़ से अपने गाँव वापस आते और उसे देश की राजनैतिक खबरें सुनाया करते। परन्तु ये समाचार अब उसे बिलकुल किसी दूसरे ग्रह के मालूम होते।

क्योंकि, बग़दाद का अबुल मंसूर कमालुद्दीन, जो पचास वर्ष पूर्व इराक़ से भारत आया था, कोई दूसरा इंसान था। यह कोई भिन्न व्यक्ति था जो बालों की लटें और दाढ़ी बढ़ाए, चारखाने का तहमद बाँधे, हाथ में इकतारा लिए वैष्णव गीत अलाप रहा था।

अबुल मंसूर कमालुद्दीन बंगाले का निवासी था, बंगाली था। अतएव, जब सुदूर पश्चिम दिल्ली में एक बार फिर राज बदला, सुलतान इब्राहीम लोदी पराजित हुआ, तिरछी आँखों वाला मंगोल ज़हीरुद्दीन बाबर विजयी हुआ और दुनिया का बोझ सहारने वाली गाय ने अपना सींग बदला, तो अपने बड़े लड़के जमाल से यह सारी सनसनीदार घटनाएँ सुन कर उसने ज़रा-सा भी आश्चर्य प्रकट न किया। उसके बेटे जलाल ने उससे कहा कि मैं मुगलों के लिए भवन-निर्माण करने दिल्ली जा रहा हूँ। तब भी वह मौन रहा। उसने सारी दुनिया घूम कर अपना गंतव्य खोजा था। अब दुनिया उसके बेटों के सामने फैली हुई थी। वे भी अपना गंतव्य स्वयं खोजेंगे।

मगर अब शान्ति के दिन समाप्त होने वाले थे। बंगाले पर सैयद अलाउद्दीन हुसैन शाह के बेटे, नासिरुद्दीन शाह का राज था। मुगलों से पराजित होने के बाद, कल तक हुकूमत करने वाले दिल्ली के अफ़गान आज शरणार्थियों के रूप में गौड़ और लखनवती के गली-कूचों में मारे-मारे फिर रहे थे—बिलकुल उसी प्रकार, जिस प्रकार एक बार जौनपुर के शासक इन्हीं अफ़गानों से मार खाकर यहाँ शरण लेने आए थे। ये अफ़गान कमाल को हर जगह मिलते और गौड़ के बाज़ारों में रास्ता चलते लोगों को रोक कर उन्हें अपने-अपने लुटे हुए वैभव और प्रताप की कहानियाँ सुनाते। गौड़ की गलियों में कमाल ने एक दिन एक पुर्तगाली देखा, जो अकड़ता हुआ एक ओर को चला जा रहा था। कमाल अपनी लाठी के सहारे खड़ा आश्चर्य से उसे देखता रहा। उसे बरसों पहले का वह अंधा ब्राह्मण याद हो आया, जो उनसे हारने के बाद कोचीन से काशी आया था। आज, इस समय पुर्तगालियों का जहाज़ी बेड़ा चटगाँव के बन्दरगाह में रुका हुआ था, और वे लोग गौड़ में भी दनदना रहे थे।

वक़्त तेज़ी से निकलता गया। गौड़ की राजनैतिक दशा बिगड़ना आरभ हुई। अब वहाँ नसिरुद्दीन का भाई ग़यासुद्दीन राजगद्दी पर बैठा था।

एक दिन कमाल ने ख़बर सुनी कि बिहार के शेरख़ाँ ने ग़यासुद्दीन से बंगाले की गद्दी छीन ली। फिर मालूम हुआ कि दिल्ली के सम्राट् हुमायूँ और शेरखाँ में बड़ा घमासान रन पड़ा। और, एक दिन कुछ बाउलों ने आकर कमाल को बताया कि मुगल बादशाह धूम मचाता गौड़ में प्रवेश कर चुका है और उसी के नाम का सिक्का टकसाल में गढ़ा जा रहा है। दूर-दराज़ तुर्किस्तान से आए हुए तातारों पर बंगाल ने ऐसा जादू कर दिया कि उसने गौड़ का नाम जन्नताबाद रखा है। ये सब खबरें कमाल को बड़ी अज़ीब, और बचपने से भरी मालूम हुईं। बादशाहतें बदलती हैं तो जगहों, इंसानों के नाम भी बदल दिए जाते हैं। इंसान अपने आधिपत्य का सिक्का जमाने के मामले में कितना लोभी है ! हरेभरे बंगाल में अशान्ति बढ़ती गई। शेरखाँ फिर गरजता हुआ आया और दिल्ली के मुग़ल को वापस दिल्ली भगा कर दोबारा बंगाल पर

अधिकार जमा बैठा। हुमायूँ और शेरखाँ के बीच बड़ा भयानक युद्ध हुआ। इसी लड़ाई में जमाल गौड़ की गलियों में लड़ता हुआ मारा गया। एक रात शेरखाँ के सिपाहियों ने उस गाँव को भी घेर लिया, जहाँ कमाल की झोंपड़ी थी। सिपाही लूटमार मचाते उसके घर तक आ पहुँचे। "बाहर निकलो !" वे चिल्लाये। "तुम सबसे बड़े उपद्रवी हो ! तुम्हारा कोई भरोसा नहीं ! तुम्हारे बेटे दिल्ली जाकर मुग़लों से मिल गए हैं। तुम ग़द्दार हो। तुमको तो हम जान से मार देंगे ! तुमको गौड़ ले जाकर कैदख़ाने में डाल देंगे ! अरे, वह गीत बनाने वाला अबुल मंसूर यहीं रहता है ना ? बाहर निकल ओ बुड्ढे ! अन्दर किस साज़िश में लगा है ?" कमाल काँपते हुए हाथों से चिराग़ लिए दरवाज़े तक आया और आश्चर्य से सिपाहियों को देखने लगा। वह शोर मचाते उसकी ओर बढ़े। कमाल दृढ़ता से दरवाज़े का चौखट थाम कर उनके सामने डट गया। वह बहुत बूढ़ा हो चुका था। और उसके हाथों में कँपकँपी थी। लेकिन, वह जम कर खड़ा रहा। उसके पास अपनी रक्षा के लिए तलवार भी नहीं थी। वह गौड़ ले जाया जाएगा ? उसने किसका क़सूर किया है ? उसे अफ़गानों और मुग़लों के झगड़ों से कोई दिलचस्पी नहीं। वह केवल इतना चाहता है कि यहाँ उसे शान्ति से रहने दिया जाए। यह उसका मुल्क है, उसका वतन है। यहाँ उसके बच्चे पैदा हुए हैं—यहाँ उसकी बीवी की क़ब्र है; यहाँ उसके धान के हरेभरे खेत हैं। उसने इस भाषा को अपने हृदय का रक्त दिया है, उसने गीत बनाये हैं। वह यहीं रहेगा ! उसे ग़द्दार कहने का अधिकार किसी को नहीं। यह 'दारुलहर्ब' (युद्ध का घर) नहीं, 'दारुस्सलाम' (शान्ति का घर) है। इस क्षण उसे एकाएक समझ में आ गया कि दारुलहर्ब और दारुस्सलाम में कोई अन्तर नहीं। सिर्फ रवैये का फर्क है। लड़ाइयाँ दो धर्मों के बीच नहीं होतीं, दो राजनैतिक शक्तियों के बीच होती हैं।

सहसराम का शेरख़ाँ और दिल्ली का हुमायूँ बादशाह दोनों इस्लाम का क़लमा पढ़ते हैं, लेकिन एक ने आकर दूसरे को ख़त्म कर दिया। दारुस्सलाम भी दारुलहर्ब बन सकता है, अगर उसमें बुराई का अस्तित्व हो।

शेरख़ाँ की सेना के उजड्ड सिपाही यह सब कहाँ समझ सकते थे ! उन्होंने ज़ोर से कमाल को धक्का देकर गिराया और हुल्लड़ मचाते आगे बढ़ गए।

कमाल अपने घर की ड्योढ़ी पर औंधे मुँह गिरा। उसके मुँह से खून की नदी बह गई; और, कुछ घंटों तक सिसकते रहने के बाद उसी तरह पड़ा-पड़ा ख़ामोशी से ख़त्म हो गया।

हिन्द पर अब मुग़ल बादशाहों का राज है। पुराना विधान बदल चुका है। गौड़, लखनवती और पटना अब स्वप्न होकर रह गए हैं। तुर्कों की दिल्ली भी समाप्त हो चुकी है। दिल्ली अब मुग़लों की है।

लेकिन, वह किसान मौजूद है जो घंटों तक पानी में झुका धान बो रहा है। वह, जो बैलों की जोड़ी हँकाता मेघना के किनारे-किनारे जा रहा है। वह भागीरथी की सतह पर किश्ती खेता और गीत गाता एक गाँव से दूसरे गाँव को चला जा रहा है। वह मुर्शिदों और भक्तों के चरणों में बैठा कीर्तन और सूफ़ियों के आध्यात्मिक गीत अलाप रहा है।

बंगाल का किसान अबुल मंसूर कमालुद्दीन ज़िन्दा है और जिन्दा रहेगा। वह तो अपनी छोटी-सी नौका में बैठा पद्मा की प्रचण्ड मौजों का मुकाबला कर रहा है। नौका पद्मा की लहरों पर डोलती जा रही है : आगे, जिधर घुप अँधेरा है, हवाओं में तूफ़ान लरज रहे हैं, अँधेरी

धाराओं में भयानक मगर मुँह फाड़े बैठे हैं, और हवाएँ बहुत तेज़ हैं। मगर पद्मा के इस बूढ़े, उपवास के मारे मल्लाह की नाव बड़े मज़े से तत्वों का मुक़ाबला कर रही है, क्योंकि तत्वों की क्रूरता और मौत से उसकी पुरानी दोस्ती है।

आख़िर जब हवा का ज़ोर ज़्यादा बढ़ा और नाव बार-बार डोलने लगी तो स्रिल ने लालटेन उठा कर घबराहट के साथ चारों ओर नज़र डाली—"पीटर, हम तूफ़ान में तो नहीं फँस गए ?" उसने घबरा कर प्रश्न किया।

"नहीं, यह तो मामूली-सी हवा है। परेशान न हो।" पीटर ने जवाब दिया—"मगर ज़रा इस काले सुअर से कहो कि अपना भोंडा गाना अलापने के बजाय पतवार की ओर ज़्यादा ध्यान दे वर्ना इस तरह हम सुबह तक भी घाट तक न पहुँच पाएँगे।"

"सो रहा है क्या ? बूढ़ा कुत्ता !" स्रिल ने चटाई की छत पर झुक कर दूसरी ओर झाँकते हुए कहा। माँझी ने दृष्टि उठा कर उसे देखा और सब्र के साथ पतवार चलाने में व्यस्त रहा।

"ये बड़े नीच लोग हैं। जब तक हण्टर न लगाओ इनमें चुस्ती नहीं आती"—पीटर ने कहा। स्रिल ने दूर से अपनी चाँदी की मूठ वाली छड़ी बढ़ाकर बूढे की कमर में चुभोई।

"ओ आदमी, क्या नाम है तुम्हारा ?'

"अबुल मंशूर, साहब !"

"अबुल मोन्शूर—अगर तुम चाहते हो कि किसी हण्टर से मैं तुम्हारी खाल न उधेड़ दूँ तो तुम ज़रा ज़्यादा ताक़त से पतवार चलाओ—समझे !" स्रिल ने कहा।

"जी साहब !" वह फिर पतवार पर झुक गया। नौका चलती रही। किनारे पर दोनों तरफ़ अनन्नास के खेत और केले के झुंड थे। दूर गाँव में रोशनियाँ जल रही थीं। स्रिल ने नौका की छत के अन्दर झाँका, जहाँ अबुल मंशूर का मिट्टी का दिया, नमाज़ की चटाई और दो काँसे के बर्तन रखे थे। दीवार पर नारियल टँगा हुआ था। यह बूढ़े, सफ़ेद दाढ़ी वाले माँझी की सारी सम्पत्ति थी, जो पद्मा की तूफ़ानी लहरों पर डोलती रहती थी। स्रिल को बड़ा अजीब लगा। उसने आँखें मलीं और ख़ुद को यक़ीन दिलाना चाहा कि यह सब सच है। यह सच है कि भाग्य के एक अनोखे दाँव ने उसे केम्ब्रिज की गलियों से निकाल कर यहाँ इस नौका में ला बिठाया है—इस अजीब अनूठे और सुन्दर देश में, जिसे 'बगाल' कहते हैं, जिसे 'इंडिया' कहते हैं।

लालटेन उठा कर उसने दोबारा चारों ओर नज़र डाली। प्रकाश से लहरों पर रास्ता बन गया। बराबर से एक बड़ा शम्पान गुज़र गया। चाँद बहुत दूर बेल के पेड़ों के पीछे से धीरे-धीरे आलस्य के साथ उदय हो रहा था।

26

जब स्रिल हार्वर्ड ऐश्ले ने सिडनी के क्वीन्स कॉलेज केम्ब्रिज से बी. ए. किया, उस समय उसकी उम्र केवल बीस साल की थी। उसका बाप एक बहुत दरिद्र पादरी था—और स्रिल बड़ी कठिनाई से अपने क़स्बे के ज़मींदार की सहायता प्राप्त करने के बाद केम्ब्रिज तक पहुँच पाया था। डिग्री प्राप्त करने के बाद लन्दन आकर वह मिडिल टेम्पल में भरती हो गया। यहाँ पास

ही फ्लीट स्ट्रीट थी, जिसके कहवाख़ानों में लेखक और पत्रकार जमा होकर दुनिया-ज़हान की बातें किया करते। प्रायः सिरिल भी अपने साथियों के साथ उनकी गोष्ठियों में सम्मिलित होता। यहाँ एक दिन शराबख़ाने में सिरिल की भेंट पीटर जैक्सन से हुई, जो हिन्दुस्तान में व्यापार करता था और इन दिनों अपने देश आया हुआ था। वह उससे मोटी आवाज़ में विस्तार से बताता रहा—"बंगाल में मुझे नील की खेती में कितने हज़ार पौण्ड का लाभ हुआ; नेटिव (हिन्दुस्तानी) कितने मूर्ख होते हैं, उनके शासक—अमीर-उमरा कितने धनी हैं; कलकत्ता कितना दिलचस्प शहर है। तुम यहाँ क्या कर रहे हो, हिन्दुस्तान चलो ! तुम समझदार आदमी मालूम होते हो। अगर अक़्ल से काम लिया तो चार रोज़ में, वहाँ, सोने के महल खड़े कर लोगे।....क्या कहा? तुम कविता करना चाहते हो? ड्रामे लिखा करोगे? वकालत का पेशा बड़ा नोबुल है? बकवास !!" और कुछ दिन बाद पीटर उसे शहर में अपने चाचा के पास ले गया जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक डायरेक्टर था।

सिरिल को कलकत्ते में नौकरी मिल गई। एक दिन वह टिलबरी से 'इण्डियामैन' जहाज़ पर बैठा और डोवर की सफ़ेद चट्टानें उसकी नज़रों से ओझल होना शुरू हुईं तो उसे आभास हुआ कि वह इंग्लिस्तान छोड़ रहा है। इंग्लिस्तान, जहाँ कैण्ट में उसका क़स्बा है, और जहाँ कैमू बहता है, और जहाँ गोल्डस्मिथ और कूपर और ग्रे और बर्क ने जन्म लिया था; जहाँ होगार्थ और गैंज़बरो और रेनाल्ड्ज़ ने चित्र बनाए थे। टर्नर के सूर्य के प्रकाश में डूबे हुए दृश्य उसकी आँखों से ओझल हुए, तो लन्दन की गलियों में सौदा बेचने वालियों की आवाज़ें, क़स्बों के गिरजाघरों के घण्टों की आवाज़ें और विशाल जार्जियन महलों में से उठने वाला चेम्बर संगीत मद्धम हो गया। इंग्लिस्तान, जहाँ शान्ति थी और पूर्ण सौंदर्य। बंगाल और कनेडा और दक्षिणी अमरीका से आए हुए धन ने देश को मालामाल कर दिया था। नित नए फ़ैशनों का आविष्कार हो रहा था ! ऊँचे-ऊँचे भवन खड़े किये जा रहे थे। उद्यान सजाए जा रहे थे। ग़रीब अमीर हो चुके थे; अमीर हीरे-मोती रोलते थे। हर तरफ़ सिर्फ़ एक चर्चा थी। धन ! धन ! धन ! सिरिल, जो साहित्य का स्कालर था, जिसे धन का कोई आकर्षण न था, वह भी उसी की धुन में जा रहा था—वह दरिद्र विद्यार्थी बंगाल पहुँच कर धनी हो जाएगा। लंदन में उसका भी एक महल होगा। या कौन जाने, शायद वह किसी असभ्य जंगली हिन्दुस्तानी सरदार से युद्ध करता हुआ मारा जाए और मद्रास या मैसूर में उसकी गुमनाम क़ब्र बने।

उसने एक फुरेरी ली और डेक से हट आया। समुंदर बहुत भयानक था। संसार में इस समय क्या-क्या हो रहा था, और वह वास्तव में स्वयं कितना तुच्छ था ! इस जहाज़ पर कैसे-कैसे लोग सवार थे और कैसे-कैसे इरादे और तमन्नायें लिए इस अँधेरे में एक अनजानी मंज़िल की ओर चले जा रहे थे ! इन सबका अन्त क्या होगा : कम्पनी के व्यापारी, कलकत्ता कौंसिल के वे सदस्य जो छुट्टियों के बाद घर वापस जा रहे थे; मद्रास का चीफ़ जस्टिस; उच्च घरानों की कुछ बिनब्याही लड़कियाँ जो स्वभावतः ही यह आशा लिए हिन्दुस्तान जा रही थीं कि वहाँ उनकी शादियाँ हो जाएँगी। जहाज़ का कप्तान हैदरअली के युद्ध के क़िस्से सुना रहा था। पटने और ढाके के नील के व्यापारी हर समय अपनी कारोबारी बातों में व्यस्त रहे और सबके सब लगातार 'मदिरा' पीते। क्वीन्स कॉलेज, केम्ब्रिज के शान्त क्वाडरेंगल से निकलने के बाद सिरिल ने देखा कि दुनिया वास्तव में यह थी !

फिर जहाज़ दक्षिण अफ़्रीका के तट के पास से गुज़रता हुआ हिन्दुस्तान के निकट पहुँचता गया। अन्तरीप गुडहोप तक पहुँचते-पहुँचते स्रिल ने अनुमान लगाया कि एक उच्च घराने की बिनब्याही लड़की उस पर डोरे डाल रही है। वह उन सबमें मामूली शक्ल की थी और किसी फ़ौजी कप्तान से शादी करने जा रही थी जो फ़ोर्ट सेंट जार्ज में नियुक्त था। मगर, वह स्रिल की सूरत पर रीझ गई। फिर उसने जहाज़ के कप्तान और दूसरे साथियों से स्रिल की आर्थिक स्थिति का पता लगाया तो उसे मालूम हुआ कि अभी वह बहुत ग़रीब है, कम्पनी में 'फ़ेक्टर' की हैसियत से नौकरी करने जा रहा है और लड़कियों के बजाय अभी किताबों में ज़्यादा दिलचस्पी लेता है। इसके बाद मिस अज़ाबला ने शोरे के एक मोटे व्यापारी से इश्क़ लड़ाना शुरू कर दिया। जहाज़ की इस छोटी-सी दुनिया में यह सब न होता तो यह महीनों का सफ़र अजीरन हो जाता।

दुनिया बदलती जा रही थी। वह शान्ति, जिसमें डूबा हुआ इंग्लिस्तान वह अपने पीछे छोड़ कर आ रहा था, अधिक दिन इस हालत में नहीं रहेगा ! नए-नए कारख़ानों और उठते हुए धुएँ ने उसके वतन के फूलों की रंगत बदल दी थी।

फूल—बहारें—पेरिस—हाय पेरिस ! स्रिल ने एक गहरी साँस ली। पेरिस भी तो अभी-अभी रक्त में नहाया हुआ था। इन्क़िलाब...?

रूसो—वाल्टेअर—आज़ादी...!

अमरीका का स्वतन्त्रता-युद्ध...!

जहाज़ अब मेडागास्कर के पास से गुज़र रहा था। यह 'पूर्व' था। हब्शी गुलामों का वतन ! और 'पूर्व' स्रिल की प्रतीक्षा में था। चीन और हिन्दुस्तान और ईरान और मिस्र, सब चिल्ला-चिल्ला कर उसे पुकार रहे थे—"ओ भाई स्रिल आओ। हमने तुम्हारे स्वागत के लिए सारी तैयारियाँ कर रखी हैं। बाइबिल और बन्दूकें और तलवारें लेकर आओ और आकर हमारी ख़ाल उतार लो !" कानपुर और ढाका के पुराने पापियों ने उसे बताना शुरू किया—"समझ से काम लो तो कुछ वर्षों में लखपती बन जाओगे।"

"यह सिराजुद्दौला कौन था?" स्रिल ने पीटर जैक्सन से पूछा।

"सिराजुद्दौला?" पीटर ने नाक-भौं चढ़ाई—"मैं तुमको उसका सारा हाल विस्तार से सुनाऊँगा। मैं क़ासिम बाज़ार में रह चुका हूँ। बड़ा ही बेहूदा था। ज़ालिम, मक्कार। मगर, हमारे वफ़ादार दोस्त भी हैं, जैसे अवध का मौजूदा नवाब।"

"वे कौन हैं?"

पीटर जैक्सन ने स्रिल को फ़ैज़ाबाद और लखनऊ की सुनी-सुनाई कहानियाँ सुनाना आरम्भ कीं। फिर मैसूर और अर्काट वालों का वर्णन किया। बम्बई पहुँचते-पहुँचते स्रिल पिछले दो सौ साल की घटनाओं से परिचित और हिन्दुस्तान के पूरे इतिहास का पंडित हो चुका था। हिन्दुओं की बर्बरता—एक लाल जीभ वाली मूर्ति को पूजते हैं, विधवाओं को आग में ज़िन्दा जलाते हैं, नंगे पैर घूमते हैं, गाय और बन्दर और साँप को भगवान् समझते हैं। मुसलमानों के अत्याचार—औरतों को पर्दे में घोंट कर रखते हैं, पन्द्रह-पन्द्रह शादियाँ करते हैं। सारांश यह कि पीटर जैक्सन ने जो कुछ उसे बताया, वह काफ़ी परेशान करने वाला था। मगर, आख़िर सच्चाई की कैसे उपेक्षा कर सकता है? यह निश्चित बात थी कि 'नेटिव' जाति के लिहाज़ से छोटी

जाति के थे। एशियाई सारे, और हिन्दुस्तानी तो विशेष रूप से, घटिया दर्जे के इन्सान थे, उस्मानी तुर्कों से भी बुरे थे क्योंकि उस्मानी तुर्क कम से कम गोरे रंग के तो थे। 'नेटिव' चूँकि नस्ल के तौर पर घटिया हैं, इसलिए उनके दिमाग़ भी पतित हैं। बंगाल में एक रॉयल एशियाटिक सोसायटी स्थापित की गई है, जो खोद-खोद कर जाने किस ज़माने की बकवास निकाल रही है। संस्कृत और फ़लाना और ढिमाका ! मुर्दा भाषाएँ, जिनमें जादू-टोने के नुस्ख़े लिखे हैं। इस पर हमारे कुछ शोधकर्ताओं ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है कि हिन्दुस्तानी भी एक ज़माने में सभ्य थे। पीटर ने बात ख़त्म की।

सामने बम्बई का तट निकट आ रहा था।

हिन्दुस्तान।

जहाज़ ने बन्दरगाह में लंगर डाला। यात्री उतर कर किनारे पर आ गए। डेढ़ सौ साल पहले तक सूरत बन्दरगाह पर मुग़ल सीमा-कर अधिकारी यूरोपियनों को परेशान कर दिया करते थे। मगर, अब अपना राज था। सिरिल के सारे साथी ठाठ से सीटी बजाते जहाज़ से उतरे और बहुत से काले आदमियों ने आकर उनको चारों तरफ़ से घेर लिया, और दौड़-दौड़ कर उनका सामान उतारने में लग गये। प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेट की पालकी पीटर के स्वागत के लिए आई हुई थी। सिरिल उसके साथ पालकी में बैठ कर मालाबार हिल की ओर चला।

सड़क के दोनों ओर धनी पारसियों के मकान थे। उनकी स्त्रियाँ लकड़ी की बालकनियों में से झाँक रही थीं, और नीचे बच्चे खेल रहे थे। मज़बूत शरीर वाली मराठी औरतें समुद्रतट की रेत पर चल रही थीं। मालाबार हिल पर फूल खिले थे। बारिश अभी होकर थमी थी। अंग्रेज़ों की कोठियों की खपरैल की छतों पर रंग-बिरंगे फूलों की बेलें छायी हुई थीं, और केले और नारियल के पत्तों से पानी की बूँदें टपक रही थीं। पीटर और सिरिल का मेज़बान फाटक तक उनका स्वागत करने के लिए आया। फिर, उन्होंने लकड़ी के खम्भों वाले बरामदे में बैठ कर चाय पी। गोवानी ख़ानसामा जो अपने आप को पुर्तगाली कहता था, लपक-लपक कर मेहमानों की ख़ातिरें करता रहा। फिर एक ढीला-ढाला-सा साया पहने मेरी बाहर आई, जो इस घर के मालिक के बच्चों की आया थी।

मेरी पहली यूरेशियन लड़की थी जो सिरिल ने देखी। सिरिल अपने कमरे की खिड़की में खड़े होकर समुद्र का नज़ारा करता रहा। कोने में हब्शी गुलाम लड़का लपाझप उसके जूतों पर पालिश कर रहा था। यह लड़का दूसरे गुलामों के साथ मेडागास्कर से आयात किया गया था और जितनी देर वह कमरे में रहा, सिरिल को बड़ी परेशानी होती रही। किन्तु, बहरहाल, यह 'पूर्व' था। शाम को वे सब हवा खाने निकले। अर्दशीर साहब के पारसी कोचवान ने झुक कर बड़े सभ्यतापूर्ण लहजे में पूछा—"किस तरफ़?"

"चर्चगेट चलो !" फिर मेज़बान ने सिरिल से कहा—"नौजवान लड़के, हमारा शहर तुम्हारे उस शानदार कलकत्ते का तो मुक़ाबला नहीं कर सकता, जहाँ तुम जा रहे हो, मगर बम्बई की भी क्या बात है !" सिरिल ने बम्बई की सैर की। अपोलो से लेकर चर्चगेट तक घास के हरेभरे क्षेत्र थे और नारियल के घने झुरमुटों के बीच पानी की झीलें जगमगा रही थीं। दूर कोलाबा के लाइट-हाउस में रोशनी चमक रही थी। बन्दरगाह में कई जहाज़ खड़े थे। बड़ी गरमागहमी थी। एक रात खाने पर सिरिल को दो पारसियों से मिलाया गया। ये दोनों जहाज़

बनाने वाले कारख़ाने के मालिक थे और फ़र-फ़र अंग्रेज़ी बोल रहे थे। कितने भाँति-भाँति के लोग इस मुल्क में हैं—सिरिल ने आश्चर्य से सोचा।

कुछ दिन बाद वह पीटर जैक्सन के साथ फ़ैक्टरी देखने के लिए सूरत गया। पश्चिमी घाट का सुन्दर इलाक़ा और हरेभरे पहाड़ी रास्ते, जिन पर नीला कोहरा छाया हुआ था; और ताप्ती के किनारे, महागुजरात के हरेभरे क्षेत्र पर सूरत बसा हुआ था। सूरत—मुग़लों की बन्दरगाह—सौ साल पहले जिसकी आबादी लंदन और पेरिस से अधिक थी और जिसके बाग़ों में फ़व्वारे चलते थे और रंगीन चुनरियाँ ओढ़े लड़कियाँ लक्ष्मी के आगे दिए जला कर गरबा नाचती थीं।

बम्बई लौट कर आने के बाद सिरिल बम्बई से मद्रास ले जाने वाले दूसरे जहाज़ की प्रतीक्षा करता रहा। पीटर जैक्सन अभी यहीं ठहर रहा था। अब सिरिल को अकेले यात्रा करनी थी। वह एक हद तक हिन्दुस्तान का अभ्यस्त हो चुका था।

जहाज़ ने लंगर उठाया और कोरोमण्डल के तट के साथ-साथ चलने लगा। अब नई-नई दुनियाएँ उसकी आँखों के सामने झिलमिला रही थीं। नारियल के झुण्डों में छुपी हुई मस्जिदें और मन्दिर; ब्राह्मणों और मुसलमानों की आबादियाँ। सुनहरा गोवा, श्रीरंगापट्टम्, जिसकी इमारतों को देख कर उसे एक क्षण के लिए एम्स्टरडम की याद आई और उसका दिल बैठ गया। यूरोप—यूरोप कितनी दूर रह गया था ! पाण्डिचेरी में कई फ्रांसीसी जहाज़ पर चढ़े। वे दूसरे जहाज़ द्वारा फ्रांस जा रहे थे। उनमें तीन ईसाई संन्यासिनें थीं और एक सार्बोन का फ्रांसीसी विद्यार्थी। वह शीघ्र ही सिरिल से घुलमिल गया। वह माँ-बाप से मिलने हिन्दुस्तान आया हुआ था और अव वापस जा रहा था। वह जल्दी-जल्दी कंधे उचका कर उससे बातें करने लगा—पेरिस की बातें, यूनिवर्सिटी की और इंक़िलाब की बातें—स्वतन्त्रता, समानता, भाईचारा ज़िन्दाबाद ! इंक़िलाब ज़िन्दाबाद ! फ्रांस ज़िन्दाबाद ! वह इसी प्रकार जोश से बच्चों की तरह नारे लगाता उत्तर कर नाव में बैठ गया और नज़रों से ओझल हो गया। जाने उसका क्या नाम था ! और, इस हलचल के मैदान में उसका क्या अन्त होगा ! चारों ओर रक्तपात था, और युद्ध—बंगाल में; दक्षिण में। यूरोप में नेपोलियन ने ऊधम मचा रखा था। सारा यूरोप जल रहा है, और कई मर्तबा और जलेगा। और, इस हंगामे में केम्ब्रिज और सार्बोन के विद्यार्थी आँधी के पत्तों की तरह खोकर रह जाएँगे; और ऐसा हमेशा होता रहेगा।

और वह, सिरिल हार्वर्ड ऐश्ले, बंगाल की खाड़ी के पानियों की सतह पर यात्रा कर रहा है और हर तरफ़ मौत दाँत निकोसे खड़ी है। सामने मैसूरी हैं और मराठे। उत्तर में चढ़ी हुई दाढ़ियों और घेरदार शलवारों वाले अफ़गान और सिक्ख तलवारें चमका रहे हैं, और चारों खूँट बर्बरता है और तबाही है। और, दिल्ली में दुःख है, फ़ैजाबाद में दुःख है; मुर्शिदाबाद में दुःख है। यह सब सिरिल को नहीं मालूम। वह तो यह भी नहीं जानता कि दिल्ली में शाह आलम द्वितीय इस समय चन्दाबाई का नृत्य देखने के बाद उस्ताद तानरस खाँ से ख़याल चन्द्रकोस विलम्बित सुनने में लीन है।...फिर, मद्रास नज़र आया। फ़ोर्ट सेंट जार्ज, और शहर के मकान धूप में चमक रहे थे। बन्दरगाह में साँवले और शान्त चेहरों वाले हिन्दू व्यापारी जहाज़ पर आए। दूबाशों ने उसे घेर लिया। सब आग्रह करने लगे कि वह उन्हें अपना गुमाश्ता बनाए। लंदन और बम्बई में दोस्तों ने मद्रास के गवर्नर और कुछ प्रतिष्ठित लोगों से मिलने के लिए

जो परिचय-पत्र दिए थे, उनको जेब में टटोलने के बाद, ज़रा घबराहट के साथ स्रिल जहाज़ से उतरा। यहाँ पीटर जैक्सन उसके मार्ग दर्शन के लिए मौजूद न था।

मद्रास में, जहाज़ पाँच-छः दिन ठहरा। उसने वालाजाह नवाब अर्काट का महल देखा। मन्दिरों और किलों की सैर की। सेंट टॉमस रोड की अंग्रेज़ी दुकानों पर नज़र डाली। एक रोज़ वह टहलता-टहलता यूरेशियन आबादी की ओर निकल गया।

यहाँ उसे एक मकान की सीढ़ियों पर एक लड़की खड़ी दिखाई दी—मिश्रित नस्ल की सुन्दर लड़की। वह उसे देख कर उदासी से मुस्कराई और अन्दर चली गई। एक काले रंग की स्त्री गोद में बच्चा उठाए बाहर निकली और ड्यौढ़ी पर बैठ कर दाल-चावल बीनने लगी। स्रिल को देख कर तीन-चार बच्चे बाहर आ गए। फिर, उनका बाप भी आ गया। वह एक दरिद्र यूरेशियन मालूम होता था। स्रिल उनको बड़ी दिलचस्पी से देखता रहा। "अन्दर आओगे?" एक बच्चे ने पूछा। सब आश्चर्यचकित थे कि अंग्रेज़ साहब उनके मुहल्ले की तरफ़ कैसे आ निकला। स्रिल की क़ौम इंग्लिस्तान के वर्गभेद में कट्टरता से विश्वास रखती थी। भारत में उन्होंने काले और सफ़ेद के वर्गभेद का सूत्रपात किया था। मद्रास ब्लैक टाउन, यूरेशियन टाउन और ह्वाइट टाउन में बँटा हुआ था। स्रिल ने केम्ब्रिज में रह कर अठारहवीं सदी के लिबरलिज़्म का बहुत प्रचार किया था। मगर, काले और गोरे का विभाजन उसकी समझ में आता था। अब उसने देखा कि भारत में रहने वाले गोरे, कालों की छूत लग जाने के बाद अपने दर्ज़े से गिर चुके हैं। ये यूरेशियन ह्वाइट टाउन के पास न जा सकते थे। वह टहलता हुआ आगे बढ़ गया। इतने में वह लड़की उसे दुबारा दिखाई दी। वह अपने घर की बाड़ फलाँग कर आगे-आगे जा रही थी। एक बार उसने स्रिल को पलट कर देखा और मुस्करा दी। सचमुच यह यूरेशियन लड़की बेहद हसीन थी। उन भूरे बालों वाली सफ़ेद गोरी अंग्रेज़ युवतियों से कहीं अधिक आकर्षक, जो गवर्नमेंट हाउस में शाम को पोल्का नाचती थीं। इस लड़की की आँखें मरहठा, गुजराती और मालाबारी औरतों जैसी थीं। काली, लज्जाशील, रसीली और भयभीत-सी। उसे यह लड़की बेहद अच्छी लगी। "ज़रा बात सुनना !" उसने जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ा कर उसे जा लिया। "तुम यहीं रहती हो?" उसने मूर्खों की तरह सवाल किया।

"हाँ, तुमने अभी मेरा घर देखा तो है। तुम कलकत्ते से आए हो?"

"नहीं, कलकत्ते जा रहा हूँ। लंदन से चला था। यहाँ बम्बई से आ रहा हूँ।"

"बहुत सफ़र करते हो !"

"हाँ, और अभी बहुत सफ़र करना है ! तुम यहाँ कब से रहती हो?"

"हमेशा से।"

"हमेशा से? मगर तुम तो ईसाई हो।"

"हाँ; क्या हिन्दुस्तानी ईसाई नहीं हो सकते !" फिर वह ज़रा ठिठकी—"मेरा दादा अंग्रेज़ था, बिलकुल तुम्हारी तरह का। मेरी माँ हिन्दुस्तानी है।"

वह गड़बड़ा गया। पीटर जैक्सन ने उसे जहाज़ पर उपदेश दिया था कि यूरेशियन लोगों से मेलजोल बिलकुल न बढ़ाना। पिछली शताब्दी में हमारे देशवासियों ने यहाँ आकर काली औरतों से इतनी शादियाँ कीं और इतने सम्बन्ध स्थापित किए कि एक पूरी नस्ल को ही काला बना दिया।

"तुम्हारा बाप ज़िन्दा है? क्या करता है?" स्रिल ने पूछा।

"वह क्या बैठा है सीढ़ियों पर; तुमने देखा नहीं ! शराब की दुकान करता है।"

"आओ, यहाँ बैठ जाएँ !" स्रिल ने हिम्मत बटोर कर एक बैंच की ओर संकेत किया।

युवती ज़रा झिझकी और फिर सिर पर अपना काला जाली का रूमाल ढीक करके बैंच की ओर बढ़ी। बैंच सड़क के किनारे पड़ी थी। यह रास्ता गिरजाघर को जाता था। उसकी एक कलाई में एक माला लिपटी हुई थी।

"तुम कैथोलिक हो?" स्रिल ने ऐसी जिज्ञासा से पहले किसी से प्रश्न न किए थे।

"हाँ।"

वह बड़े गम्भीर ढंग से उसके सामने खड़ा था। लड़की ने दृष्टि उठा कर उसे देखा।

फिर एकाएक न जाने क्या हुआ कि स्रिल बिना जाने हुए कि वह क्या कह रहा है, उसे सम्बोधित करके बोला—"तुम....तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो ! मेरे साथ कलकत्ता चलो !"

युवती ने उसे अचम्भे से देखा।

"यह कैसे हो सकता है?" उसने कहा।

"क्यों नहीं?"

"मेरा बाप मुझे मार नहीं डालेगा। तुम कैथोलिक नहीं हो। तुम उच्च वर्ग के अंग्रेज़ हो। और...और आज के बाद शायद तुम मुझसे बात भी करना पसन्द न करो। तुम्हारी तरह के बहुत से अंग्रेज़ सैलानी मद्रास आते हैं !" उसने उदासी से पेड़ का पत्ता तोड़ा।

स्रिल ने अनुभव किया कि वह शिद्दत से उस लड़की से पहली नज़र के प्रेम में फँस गया है। "सुनो !" उसने बड़ी भावुकता से कहा—"सुनो !" मगर वह फिर हड़बड़ा गया। उसने अब तक उसका नाम भी मालूम नहीं किया था।

"मुझे मारिया टैरेज़ा कहते हैं। "

"मारिया टैरेज़ा !—मुझे तुमसे प्रेम हो गया है।"

उस रात वह गवर्नमेंट हाउस के बॉल में जाने के बजाय चुपके से यूरेशियन टाउन भाग आया, और उसकी अगली रात...और उसकी अगली रात...। चौथे रोज़ सुबह जहाज़ कलकत्ते के लिए लंगर उठा रहा था।

यात्रा की तैयारी करते-करते उसे मालूम हुआ कि यह क्या ज़बरदस्त मूर्खता थी। वह उस लड़की से शादी नहीं कर सकता। अब तक उसने मारिया से शादी के लिए कहा भी नहीं था। मगर वह मूर्ख लड़की ख़ालिस हिन्दुस्तानी स्त्रियों की तरह शायद मन में उसे अपना देवता समझने लगी थी। जब वह उससे विदा लेने गिरजाघर के बाग़ में पहुँचा तो यह देख कर उसके पैरों तले की ज़मीन निकल गई कि वह एक कपड़ों की गठरी हाथ में सँभाले उसके साथ कलकत्ता चलने के लिए तैयार बैठी थी।

अपनी सारी योग्यता, निपुण काव्योचित शैली और अभिनय-कला का प्रयोग करते हुए उसने मारिया टैरेज़ा को विश्वास दिलाया कि अभी उसे ले जाना सम्भव नहीं, वह शीघ्र ही उसे बुलवा भेजेगा। और ये शब्द कहते हुए उसने अपने आप को बहुत ही नीच और कमीना महसूस किया।

इस छोटे से भावुक एडवेंचर के बाद स्रिल फिर अपनी मंज़िल की दिशा में रवाना

हुआ।...बंगाल की खाड़ी के सुनील विस्तार में पहुँचते-पहुँचते वह उस लड़की को लगभग भूल चुका था।

जहाज़ अब कलकत्ते के निकट पहुँच रहा था। डायमण्ड-हार्बर में दाखिल होकर जहाज़ ने लंगर डाला और पायलट की प्रतीक्षा करने लगा। यात्री डेक पर निकल आए। सामने बंगाल का समुद्री तट था। उच्च अधिकारियों को लेने के लिए उनके निजी बजरे आए हुए थे। स्रिल इस हंगामे में किसी को न जानता था। वह जल्दी से कूद कर किराए की क़िश्ती में बैठ गया। माँझियों की एक पूरी पल्टन ने चप्पू चलाने शुरू कर दिए और थोड़ी देर बाद बन्दरगाह के कोलाहल से निकल कर क़िश्ती शान्त खुले जल में आ गई। आसपास यात्रियों से भरी दूसरी नावें चल रही थीं। पानी के दोनों ओर पेड़ झुके हुए थे। दूर घने जंगलों में से कभी-कभी शेरों की गरज और सियारों की आवाज़ें सुनाई दे जाती थीं। क़िश्ती में मच्छरों ने भिनभिनाना शुरू कर दिया था। कलकत्ता अभी बहुत दूर था। स्रिल ने थक कर आँखें बन्द कर लीं और कलकत्ते की कल्पना करनी चाही जहाँ वह आखिरकार पहुँचने वाला था—महलों का शहर ! सोने और चाँदी की बस्ती ! पूरब का लंदन ! अब रात हो रही थी। बंगाल का जादू जगाने वाला चाँद पानी की सतह पर क़िश्ती के साथ-साथ तैरता जाता था। माँझी अपनी भाषा में गा रहे थे। उनकी आवाज़ स्रिल को असाधारण रूप से सुरीली मालूम हुई।

फिर दृश्य बदलना शुरू हुआ। क़िश्ती गार्डनरीच पहुँच रही थी। किनारे पर शानदार मकान बने थे। दरिया के दायें किनारे पर कलकत्ता चाँदनी में जगमगा रहा था—कलकत्ता, जो अब दुनिया के बेहतरीन शहरों में गिना जा रहा था, उसके सामने था। घाट पर बंगाली बनिये यात्रियों की घात में मौजूद थे। उच्च अधिकारियों को लेने के लिए उनके सगे-सम्बन्धी और मित्रगण आए हुए थे। जिन नवागतों के दोस्त यहाँ मौजूद न थे, वे अपना सामान कुलियों के सिरों पर रखवा कर पुर्तगाली मुसाफ़िरख़ानों की ओर जा रहे थे। स्रिल भी एक पालकी में बैठा; और शहर की गुंजान आबादी से निकल कर पालकी बरदार बारकपुर की तरफ़ बढ़ने लगी। स्रिल को अस्थाई रूप से जहाँ ठहरना था।

बारकपुर में अंग्रेज़ों के शानदार कण्ट्री-हाउस थे। डच सिरामपुर और फ्रांसीसियों के चन्द्रनगर तक इन मकानात का सिलसिला चला गया था। किले के आस-पास सरकारी इमारतें थीं। शानदार गवर्नमेंट हाउस जहाँ चन्द साल पहले कार्नवालिस धूमधाम से विराजता था, और अब जहाँ सर जान शोर फ़ोर्ट विलियम का गवर्नर जनरल बनने वाला था, फिर राइटर्स बिल्डिंग जहाँ स्रिल का दफ़्तर था, वह चर्च की आलीशान इमारत। आसपास ब्लैक टाउन था, जिसमें हिन्दुस्तानी, पुर्तगाली, अरमनी, यूरेशियन और ग़रीब यूरोपियन बसते थे।

चौरंगी में क्लासिकल ढंग की इमारतें थीं और अंग्रेज़ों के टाउन हाउस—बड़े-बड़े हॉल, फीलपाये वाले बरामदे, चौड़े जीने, झिलमिलियों वाले दरवाज़े, और ऊँची खिड़कियाँ। नदी के किनारे-किनारे अंग्रेज़ धनिकों के गार्डन-हाउस थे, जिनके बागीचों में हिन्दू और चीनी माली काम कर रहे थे। कोठियों के पीछे नौकरों के घर थे, जहाँ बत्तख़ें और मुर्ग़ियाँ घूम रही थीं। तालाब थे, जिनमें वाटरलिली खिली थी, और मछलियाँ पली थीं।

छः महीने बाद स्रिल ने अपने बाप को पत्र लिखा कि अब मैं सैटिल हो चुका हूँ ख़ुदा की मेहरबानियों का शुक्रगुज़ार हूँ। मेरा बंगाली गुमाश्ता आशुतोष डे फ़र्राटे से अंग्रेज़ी बोलता

है। वह मेरे सारे मामलों की देखभाल करता है। मेरे पद में भी उन्नति होने वाली है और मैं उपनगर में नील का व्यापार शुरू कर रहा हूँ। मैंने एक मुसलमान मुंशी नौकर रखा है। जिसका नाम अबुल मकादम है। मुंशी मुझे फ़ारसी और बंगाली पढ़ाता है, और मैं अपनी ज़िन्दगी से बहुत खुश हूँ।

कई साल गुजर गए। सिरिल अब कलकत्ते की ऊँची सोसायटी में हिलमिल चुका था और उसी स्टाइल से रहता था, जो इस सोसायटी की विशेषता थी। उसके पालकी उठाने वाले हर वक़्त सुर्ख़ वर्दी पहने रहते। सोंटाबरदार चाँदी की मूठ की छड़ियाँ लेकर चलते। रात को मशालची उसकी फ़ीनस के आगे-आगे दौड़ते। खानसामा और ख़िदमतगार उसके बावर्चीख़ाने और डाइनिंग रूम की देखभाल करते। हुक़्क़ाबरदार उसका पेचवान भरता था। दफ़्तर में उसका क्लर्क यूरेशियन था; उसका नाम राल्फ़ जोज़फ़ था। सिरिल को उसकी उपस्थिति में बड़ी बेआरामी-सी अनुभव होती। राल्फ़, ब्लैक टाउन का वासी, बड़ी वफ़ादारी से सिरिल की खुशामद में लगा रहता। दफ़्तर के प्रबन्ध के लिए बंगाली 'सरकार' मौजूद था, और अनगिन हरकारे, प्यादे और चपरासी। एक अकेला सिरिल ऐश्ले, और उसके निजी स्टाफ़ में चालीस-पचास आदमी शामिल थे। इनके अलावा उसका माली था, और ग्रास-कटर, और साईस और चाबुक-सवार, और भिश्ती, दरबान, चौकीदार। फिर उसका बजरा था, जिसके माँझी उसके नौकर थे। दर्ज़ी, धोबी और नाई इन सबसे अलग थे। सफ़ेद रंग की उस कोठी में स्थापित इस साम्राज्य का, सिरिल ऐश्ले एकमात्र निरंकुश शासक था। वह चाहता तो इन सबको उल्टा लटका कर पिटवा सकता था; और ऐसा उसने कई बार किया था। वही सिरिल, जो कुछ वर्ष पूर्व, केम्ब्रिज की गलियों में विलियम ब्लैक की किताबें लिए कविता रचने का अभ्यास करता फिरता था और किसी पब में जाकर चंद पेंस के आलू खाता था। तब वह मिडिल टेम्पुल के फाटक से निकल कर नदी के किनारे डोन और ग्रे की कविताओं पर सिर धुनता सुनसान सड़कों पर टहला करता, और रात को किसी विद्यार्थी मित्र के यहाँ जाकर सो रहता।

सुबह सात बजे दरबान उसकी कोठी के हॉल का दरवाज़ा खोलता। धूप झिलमिलियों में से छन-छन कर अन्दर आने लगती तो सिरिल अपनी मसहरी से उठता। उसके सरकार और चपरासी काग़ज़ात लेकर फ़र्शी सलाम करते बेड-रूम में आते। हज्जाम उसकी दाढ़ी बनाता। विग सिर पर जमाने के बाद वास्कट पहनता हुआ वह खाने के कमरे की ओर बढ़ता। वहाँ वह चाय पीता जाता और पेचवान के कश लगाता। कारोबार और सरकारी काम के सिलसिले में जितने लोग सवेरे-सवेरे सलाम करने आते, वे मेज़ से कुछ दूर पर अदब से खड़े रहते। सिरिल बिना उनकी तरफ़ ध्यान दिए आदेश देता रहता। दस बजे के लगभग यह सारा जुलूस पालकी की ओर बढ़ता और पालकी उसके दफ़्तर की ओर रवाना होती। चार बजे वापस आकर सिरिल कलकत्ते के क़ायदे के मुताबिक शाम के सात-आठ बजे तक सोया करता। इसके बाद कपड़े बदल और बन-सँवर कर लेडीज़ से मिलने के लिए निकल जाता। सोशल कॉल्ज़ करता, रेसकोर्स में जाकर हवा खाता, या कहीं डिनर पर चला जाता। कितनी संपूर्ण और फ़ुर्सत की ज़िन्दगी थी—और इसी आराम और सुख के साथ उसका बैंक बैलेंस बढ़ता जा रहा था। व्यापार में उसे बेहद लाभ हो रहा था। गवर्नर जनरल उससे बहुत प्रसन्न था। यह भी अफ़वाह थी कि उसे शायद स्थायी बन्दोबस्त के प्रबन्ध के सिलसिले में किसी महत्त्वपूर्ण पद पर मुफ़स्सिल

में यानी सूबे के किसी शहर में या लखनऊ रेज़ीडेंसी भेज दिया जाए। कलकत्ते में वह माँओं के लिए बातचीत का एक स्थायी विषय बन चुका था। बॉल रूम्ज़ में, उसके साथ नृत्य करते हुए बिनब्याही अमीरज़ादियाँ अक्सर सोचतीं कि वह कौन भाग्यशाली लड़की होगी, जिससे धनी और हैंडसम सिरिल ऐश्ले ब्याह करेगा।

मगर, लेडी पैमिला या लेडी स्नेहलता के साथ शादी करने के बजाय इस असाधारण बुद्धि और सूझबूझ वाले सिरिल ऐश्ले ने एक बड़ी ही मामूली और बाज़ारू हरकत की, यानी ऐसी हरकत जो आम तौर पर सभी धनी अंग्रेज़ करते थे और जो हिन्दुस्तान के अंग्रेज़ 'नवाबों' का आम दस्तूर था।

यानी : सिरिल ऐश्ले ने भी एक नेटिव औरत को अपने घर में रख लिया।

अंग्रेज़ 'नवाबों' का इंग्लैंड में खूब मज़ाक उड़ाया जाता। वहाँ का जागीरदार वर्ग उनको अपना हमपल्ला समझने से इन्कार करता था। कल की बात थी कि ये लोग लंदन शहर में साधारण व्यापारी या गुर्गे थे। और, नए-नए व्यापारियों और खानदानी जमींदारों के बीच दूरी तो हमेशा से रही है। मगर, हिन्दुस्तान में इन लोगों ने अपने लिए एक 'अलिफ़-लैलवी' (विचित्र) दुनिया बसा रखी थी। पटना, ढाका, क़ासिम बाज़ार, बालासोर और हुगली के व्यापारी; मुर्शिदाबाद, लखनऊ, बनारस, ग्वालियर और दिल्ली के दरबारों में दूतावास का दायित्व ओढ़ने वाले कूटनीतिज्ञ; कलक्टर जो बंगाल, बिहार और उड़ीसा के ज़िलों में नियुक्त थे; फौजी अफसर जिन्होंने अवध में छावनियाँ छायी थीं; फ़ौजी एडवेंचरज़ जो हिन्दुस्तानी शासकों की सेनाओं में मुख्य बने दनदना रहे थे—ये सब अब सिरिल के साथी थे। सिरिल उनका दृष्टिकोण खूब समझता था। प्लासी युद्ध के बाद लक्ष्मी ने हिन्दुस्तानियों से रूठ कर फिरंगी का घर देख लिया था। अंग्रेज़ के यहाँ धन बरस रहा था। अवध और मुर्शिदाबाद की रेज़ीडेंसी में रहने वाले अंग्रेज़ों के यहाँ दौलत की रेलपेल थी। शोरे और नील के व्यापारी करोड़पति हो चुके थे। नवाबों की तरह ज़िन्दगी गुज़ारना उनका आदर्श था। हरम, हुक़्क़ा, शेरो-शायरी, नाच-रंग, मुर्ग़बाज़ी, यही सब मनोरंजन की चीज़ें इन अंग्रेज़ों की थीं। हिन्दुस्तानी नवाबों, राजाओं और अंग्रेज़ उच्च वर्ग ने आपस में समझौता करके एक अत्यधिक 'सुसंस्कृत' माहौल की बुनियाद डाली थी। दीवानी मिलने के बाद अंग्रेज़ सिविलियन बंगाल में उभर कर आगे आया था। ये लोग बेहद कम उम्र में इंग्लिस्तान से यहाँ आते और बहुत जल्द सारे हिन्दुस्तानी व्यसन अपना लेते। कलक्टर के पद पर ज़िलों में नियुक्त होने के बाद वे अपना समय वहाँ के राजाओं, नवाबों और ज़मींदारों की संगत में बिताते। बंगाल की जागीरदाराना सभ्यता में फिरंगी अफ़सर भी घुलमिल चुका था। प्लासी के बाद कम्पनी का फ़ैक्टर केवल धन बटोर कर अपने देश लौट जाने के बजाय अब 'नवाब' कहलाने के स्वप्न देखता था, और हरम में दस-दस देसी औरतें रखता था।

सिरिल भी शुनीला देवी को अपनी कोठी में दाखिल करके गोया बाक़ायदा 'नवाब' बन गया।

काले लम्बे बालों और नशीली आँखों वाली शुनीला ढाका के निकट एक गाँव की रहने वाली थी। उसका बाप भूखों मर रहा था, क्योंकि ढाके पर आर्थिक तबाही के बादल मँडरा रहे थे। शुनीला की सात बहनें थीं, जिनमें तीन बाल विधवा थीं और चार का अभी विवाह भी नहीं हो सका था। उसका एक भाई था श्याम चरण, जिसे कलकत्ते के एक गोदाम में नौकरी मिल गई तो उसने अपनी बहनों को ढाके से बुलवा भेजा। इस गोदाम के मालिक

का नाम स्रिल साहब था।

स्रिल साहब अभी लड़का ही-सा था, मगर कलकत्ते में उसकी तूती बोल रही थी। एक दिन शुनीला पूजा के लिए कालीघाट जा रही थी कि स्रिल साहब ने उसे कहीं देख लिया। स्रिल साहब के बारे में यह भी प्रसिद्ध था कि काफ़ी दिलफेंक स्वभाव के हैं, यद्यपि कलकत्ते की मिस्सी बाबा लोग उससे रुष्ट रहती थीं कि वह उनमें से किसी एक को भी अपनी मेम क्यों नहीं बना लेता। शुनीला का भाई अपनी दरिद्रता से तंग आकर एक रोज़ सोच रहा था कि सिरामपुर जाकर ईसाई हो जाए, सारे दलिद्दर दूर हो जाएँगे, उसको अपनी बहनों के बोझ से नजात मिल जाएगी। मिशन वाले आप ही उनके शादी-ब्याह की फ़िक्र करेंगे। मगर, उसी रोज़ स्रिल साहब के 'सरकार' ने आकर उससे कहा--साहब ने तुम्हें याद किया है। और अगले दिन शुनीला स्रिल साहब की कोठी पर पहुँचा दी गई। और, इस प्रकार उसके परिवार को ग़रीबी से छुटकारा मिला।

हर समाज के अपने मूल्य-मान बन जाते हैं। यह उस समय का आम दस्तूर था लेकिन जाति-भेद अधिक नहीं था। बहुत-से अंग्रेज़ों ने ऊँचे मुसलमान घरानों में शादियाँ की थीं। शाह आलम द्वितीय की बेटी फ़ैज़ुन्निसा और कमबे की शाहजादी जहूरुन्निसा बेगम के विवाह अंग्रेज़ अधिकारियों से हुए थे। कलकत्ते के जॉब चारनक की पत्नी भी हिन्दुस्तानी थी।

स्रिल साहब ने शुनीला से विवाह नहीं किया, मगर शुनीला नाखुश नहीं थी। वह शान से कोठी में रहती थी और नौकरों पर शासन करती थी। उसकी तरह और बहुत-सी देसी औरतें उच्च वर्ग के अंग्रेज़ों के रनिवासों में विराजती थीं। उनकी संतानें पढ़ने के लिए विलायत भेजी जाती थीं और जब तक उन बच्चों के बाप ज़िन्दा रहते थे, कम से कम उस समय तक उनका परिवार सुख से रहता था।

मगर स्रिल को मालूम था कि उसकी और शुनीला की संतानों का भविष्य क्या होगा ! वे मद्रास या कलकत्ते के अनाथालय में भरती कर दी जायेंगी। बड़े होने पर उनको ऊँची नौकरियाँ नहीं मिलेंगी। वे राल्फ़ की तरह क्लर्की करेंगी या किसी रेजीमेंट में भर्ती होकर बैण्ड बजाते मराठों से लड़ने जाया करेंगी। उसकी लड़की को किसी अंग्रेज़ नवाबजादी की आया बनना पड़ेगा, या किसी फ़ौजी अफसर की रखैल। तब उसे अन्दाज़ा हुआ कि यूरेशियन वर्ग की स्थिति कैसी ज़बरदस्त ट्रेजडी है। उस समय उसे खूबसूरत मारिया टैरेज़ा याद आई, जिसे वह मद्रास में ऐसे कमीनेपन से छोड़ आया था।

यूरेशियन वर्ग की बुनियाद पुर्तगालियों के आगमन के समय से पड़ी थी। फिर फ्रेंच और डचों ने आकर अछूतों को ईसाई किया। जो व्यक्ति बूट और हैट पहन कर बिगड़ी हुई पुर्तगाली बोल ले, वह यूरेशियन समझा जाता था। फ्रांसीसियों में जाति को लेकर भेदभाव नहीं था। उनके आगमन से इस वर्ग की संख्या में वृद्धि हो गई थी। यूरेशियन बड़ी दयनीय स्थिति में थे—बेचारे "किरानी" जो अंग्रेज़ "ब्राह्मणों" के आगे 'शूद्र' और 'चाण्डाल' समझे जाते थे। स्रिल को यह सब सोच कर झुरझुरी-सी आई। तो, क्या उसे मिस सैंथिया से विवाह कर लेना चाहिए? फिर शुनीला अपनी रसीली आवाज़ में पुकारती और वह हड़बड़ा जाता और पालकी में बैठ कर कोर्स की तरफ़ निकल जाता। उसकी ज़िन्दगी बड़ी व्यस्त थी और हंगामों के बीच गुज़र रही थी। गवर्नर जनरल के बॉल और पब्लिक ब्रेकफ़ास्ट, हेस्टिंग स्ट्रीट और अलीपुर के

कांसर्ट और नृत्य, गार्डनरीच के जश्न। फिर आसपास की यात्राएँ। ढाका, चटगाँव, मुर्शिदाबाद, चौबीस परगना, मुंगेर—सारा बंगाल और सारा बिहार उसके चरणों में बिखरा पड़ा था। बंगाल और सारे जल मार्ग उसके लिए खुले थे। नील के अनगिनत किसानों की ज़िन्दगियों और भाग्यों का वह मालिक था। धालेश्वरी, हरिमंगल, करनाफुली, मधुमती और शिवबंसुरी की लहरों पर उसकी नावें नील को लाने ले जाने का काम कर रही थीं। ढाके का मुग़लों का शानदार नावबाड़ा अब उसके हाथ में था।

उसने दूर से अपनी चाँदी की मूठ की छड़ी बढ़ा कर बूढ़े की कमर में चुभोई—"अबुल मोन्शूर ! अगर तुम चाहते हो कि इसी हण्टर से मैं तुम्हारी खाल न उधेड़ दूँ तो ज़रा ज़ोर से पतवार चलाओ !" उसने कहा।

बूढ़ा ज़्यादा कोशिश से पतवार पर झुक गया ! स्रिल उसे चुपचाप देखता रहा। किस क़दर सख़्तजान लोग हैं ! उसने सोचा। अभी सन् 1770 में कैसा भयानक अकाल सूबे में पड़ा था ! दरियाओं में इतने तूफ़ान आते हैं, बीमारियाँ फैलती हैं, मगर ये लोग उसी बेहयाई से जिए जाते हैं। हद है ! उसने घड़ी देखी। रात के नौ बज रहे थे। उसे आज ही रात को राजा गिरीशचन्द्र राय की ज़मींदारी पर पहुँचना था। कलकत्ते में हुकूमत में बहुत-से परिवर्तन हो रहे थे। एक-दो दिन बाद सर जान शोर जाने वाले थे, और नया गवर्नर जनरल आ रहा था। यहाँ से लौट कर उसे गवर्नमेंट हाउस भी जाना था ! "आज क्या तारीख़ है?" उसने पीटर से पूछा। पीटर ख़र्राटे ले रहा था। स्रिल ने लालटेन उठा कर विलियम हिकी के "बंगाल गज़ट" पर नज़र डाली। कल का अख़बार था।

8, जून, 1798। स्रिल सहसा चौंक उठा। उसे हिन्दुस्तान आए आज पूरे पाँच साल हो गए थे। इन पाँच वर्षों में वह कहाँ से कहाँ पहुँच गया था। नील का व्यापार दिन दूनी और रात चौगुनी तरक़्क़ी कर रहा था। गुजरात में नील का उद्योग दम तोड़ चुका था। उसकी जगह कम्पनी के अंग्रेज़-प्लाण्टर्ज़ दिल्ली से बंगाल तक फैल चुके थे। बंगाल का किसान अंग्रेज़-प्लाण्टर्ज़ से उधार लेकर नील बोता था, और फिर विभिन्न तरीक़ों से उस पर अत्याचार किए जाते थे। अदालतों में उसकी सुनवाई नहीं होती थी। न्याय करने वाले स्वयं प्लाण्टर्ज़ के भाई-बन्द थे।

बंगाल का किसान अबुल मंसूर कमालुद्दीन जो दिन भर नील के खेतों में परिश्रम करता था उस समय अपने नए मालिक स्रिल हार्वर्ड ऐश्ले को नौका में बिठा कर उस पार लिए जा रहा था, और चाँद पद्मा के पानियों पर उतर आया था, और हवा में ठंडक आ चुकी थी, और केले के झुण्ड में गीदड़ बोल रहे थे।

क्योंकि, रात बहुत भयानक थी !

27

किनारे पर आकर राधेचरण ने लालटेन ऊँची की और उसकी रोशनी को पानी पर चमकाया। दूर क्षितिज पर से एक नाव धीमी गति से तैरती हुई घाट की ओर जा रही थी।

उन्होंने लालटेन ज़मीन पर रख दी और चादर लपेट कर वहीं उकडूँ बैठ गए। निकट ही चौपाल पर गाँव के लोग जमा थे। बाँस के झुण्ड के नीचे राधेचरण का अपना छोटा-सा मकान था, जिसके द्वार पर दिया जल रहा था। सारे में एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ था, जिसमें केवल राजा गिरीशचन्द्र राय के महल की ओर से साज़ों की मद्धम आवाज़ें सुनाई दे जाती थीं। सुना था, वहाँ पटना और लखनऊ तक की तवायफ़ें आई थीं। राजा साहब को लाट साहब ने सम्मानित वस्त्र प्रदान किया था। उसकी ख़ुशी में जश्न मनाया जा रहा था। कलकत्ते से साहब लोग इसी में सम्मिलित होने के लिए आ रहे थे। चौपाल में अजीब तरह की खामोशी छाई थी।

"कुछ बात करो, दादा !" प्रमोद ने चिलम की राख कुरेदते हुए उदास स्वर में राधेचरण से कहा।

राधेचरण खामोशी से घाट की ओर देखते रहे। हवा बाँस के झुण्ड में साँय-साँय कर रही थी।

ऐसी ही रातों में घुँघराले बालों वाले सत्यपीर सत्यनारायण[1] माथे पर चन्दन का टीका लगाए, हाथ में बाँसुरी लिए, गेरुआ वस्त्र पहने अपनी कमर की जंजीरें झनझनाते पद्मा के किनारे-किनारे जाते नज़र आ जाते हैं। अगर मुझे कभी सत्यनारायण मिल जाएँ तो मैं उनसे पूछूँ...तो मैं उनसे क्या पूछूँ? राधेचरण उकडूँ बैठे सोचा किए।

बहुत-सी जंजीरों के झनझनाने की आवाज़ ने सन्नाटे को तोड़ा। राधेचरण ने चौंक कर देखा—सामने सत्यपीर तो नहीं, उनके कुछ फ़क़ीर खड़े थे ! बाँसों के झुण्ड में से प्रकट हो वह राधेचरण के घर की ओर मुड़ गए थे, और दरवाज़े पर खड़े, अपने नियम अनुसार, आवाज़ें लगा रहे थे।

राधेचरण ने बड़ी उलझन के साथ उनको देखा। सत्यनारायण के भिखारी उनके द्वार पर खड़े थे और उनके पास देने को कुछ न था। अच्छी फ़सल की देवी, लक्ष्मी, के भजन गाने वाले ये मुसलमान फ़क़ीर गाँव-गाँव घूमा करते थे। सदियों से ये फ़क़ीर इसी तरह गाते-बजाते आए थे। गाँव की हिन्दू औरतें इनकी झोली में आटा और चावल डालती थीं और उनसे आशीर्वाद लेती थीं। ये उनको अच्छे शगुन की बातें बताते, और साँप के काटे का अपने मंत्रों से इलाज करते। उनके बिना जीवन पूर्ण नहीं था। पिछले साल शुनीला भिक्षा देने बाहर आई तो वे बोले—"यह बेटी पद्मिनी है।" फिर उन्होंने पद्मिनी के सारे लक्षण शुनीला की माँ को बताए थे। पद्मिनी वह होती है जो चिड़ियों के जगने से पहले जागती है, साँझ होते घर में दिया जलाती है; और अपने पति को भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करती है। "बेटी बड़ी भाग्यवती है"—उन्होंने भविष्यवाणी की थी।

उनकी आवाज़ सुन कर शुनीला की माँ बाहर आई ! उसके मटके ख़ाली पड़े थे। फ़क़ीरों को देने के लिए उसके पास कुछ न था। यह सत्यपीर, मानिकपीर, लक्ष्मी, चण्डी—इन सब देवी-देवताओं की क़ौम पर उसे बड़ा गुस्सा आया। ये सब धोखेबाज़ हैं—सारे देवी-देवता ! उसने साड़ी के आँचल से आँसू पोंछना चाहा, और चुपचाप खड़ी फ़क़ीरों को देखती रही। वे

1. गौड़ के सुलतान अलाउद्दीन हुसैन शाह का सूफ़ी नाती, जो बंगाल के मुसलमानों के लिए 'सत्यपीर' और हिन्दुओं के लिए विष्णु का अवतार 'सत्यनारायण' बन गया।

सदा के समान शीतला, चण्डी और शिव का जाप किया किए ! "शुनीला कहाँ...है?" आख़िर को उनमें से एक ने पूछा।

"कलकत्ते" राधेचरण की पत्नी ने कहा।

"वहाँ क्या कर रही है।"

"उसका—उसका—ब्याह हो गया।" माँ ने धीमे-से उत्तर दिया। उसने यह नहीं बताया कि शुनीला को पर्दे से निकलना पड़ा और वह एक फिरंगी की कोठी में रह रही है। मुसलमान फ़क़ीरों ने आशीर्वाद दिया—"मैंने उसका माथा देख कर बताया था, सौभाग्यवती लक्ष्मी है ! पद्मिनी है ! हमारा दामाद क्या करता है?"

"कलकत्ते में काम करता है।"

"अच्छा !" फ़क़ीरों ने सन्तोष प्रकट करते हुए और दुआएँ दीं और वापस मुड़ने लगे। अब उनको हर घर में यही सुनने को मिला—"हमारे पास दान के लिए कुछ नहीं !" उनको इस अकाल की आदत पड़ गई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ज़बरदस्त लूट के कारण सन् 1770 में बंगाल में जो भयंकर अकाल पड़ा था उसे लगभग तीस साल गुज़र चुके थे। जब सुना था कि फिरंगियों की राजधानी कलकत्ते की सड़कें भूख से मरते हुए इंसानों की लाशों से पट गयी थीं। मगर, अब कलकत्ते की सड़कें दूर-दूर तक फैल चुकी थीं। इस समय गाँव-गाँव लोग भूख से मर रहे थे।

"ठहरो !" शुनीला की मां ने कहा। "मैंने प्रफुल्ला को हाट भेजा था। शायद वह कुछ ले आया हो।"

मगर, फ़क़ीर आशीर्वादों की बौछार करते उदास क़दम उठाते आगे बढ़ गए। शुनीला की माँ अपने भानजे की प्रतीक्षा करती रही।

मगर, वह हाट से घर लौटने के बजाय सामने चौपाल में जा बैठा था। उसके सारे साथी मुँह लटकाये बैठे थे। वह तीन दिन से तेल की खोज में मारा-मारा फिर रहा था। तेल सोने के भाव बिक रहा था। नमक अप्राप्य वस्तु हो गया था। चावल की सूरत को वह तरस गया था। छालिया और तम्बाकू, चावल और नमक और हर चीज़ के व्यापार पर कम्पनी बहादुर के फिरंगियों ने क़ब्ज़ा जमा लिया था। नदियों पर उनकी किश्तियाँ माल से लदी हुई चल रही थीं। मगर, बाज़ार में क़ीमतें आसमान तक पहुँच चुकी थीं। चौपाल में सात-आठ आदमी और आकर बैठ गए। धीरे-धीरे बातें शुरू हुई।

"ओजीत दादा, तुम भी ढाके से आ रहे हो?" प्रमोद ने पूछा।

"हाँ, मैं भी और दिलीप भी, और सब। अब वहाँ खाने को नही मिलता। सारे करघे टूट गए। अब हम भी हल चलाएँगे। तुम्हारे राजा साहब हमें ज़मीन जोतने देंगे?" अजीत ने कहा और अपने हाथ सामने फैला दिए। हाथों की उँगलियाँ काट दी गई थीं।

"पता नहीं।" प्रमोद ने उकता कर जवाब दिया। वह यह सब सोचते-सोचते तंग आ गया था। और, उसका दिमाग़ अब काम नहीं करता था। लोगों की भीड़ की भीड़ देहात का रुख़ कर रही थी। देहात की ज़मीन पर आबादी का बोझ बढ़ गया था। हिन्दुस्तान संसार का सबसे बड़ा औद्योगिक देश अब विशुद्ध कृषक देश में परिवर्तित कर दिया गया था; जहाँ उपज कम थी, लगान अधिक था और आए दिन अकाल पड़ते थे।

इन आँखों ने क्या-क्या ज़माने पलटते देखे—राधेचरण ने चौपाल की भीड़ पर नज़र डाल कर सोचा। कार्नवालिस के क़ानून ने बिलकुल ही कमर तोड़ दी थी। तीन-चार नवयुवक उनके पास आकर बैठ गए।

"दादा, तुम्हारे नवाबों के ज़माने में भी ऐसा होता था?" आशुतोष ने प्रश्न किया।

"क्या?" राधेचरण ने बेध्यानी से पूछा।

"यही सब—महँगाई, अकाल, दंगा-फ़साद।"

लम्बी, सफ़ेद बकरे-जैसी दाढ़ियों वाले दो हिन्दू बूढ़े नारियल कुरेद कर नवयुवकों को धुँधली आँखों से देखा किए। ये दोनों बक्सर में लड़े थे। गाँव इन पुराने ज़माने के बुड्ढों-ठुड्ढों से भरा पड़ा था, और ये मुग़लों और नवाबों के ज़मानों के गुन गाते थे और रोते थे।

"वह ज़माना आने वाला है, जब हमारी औरतों को पर्दे से निकलना पड़ेगा। हमारे बच्चे गलियों में भूखे मरेंगे। हमारे बादशाह का ताज गिर पड़ेगा। महाभारत में लिखा है—" बूढ़े धनगोपाल मजूमदार ने कहना शुरू किया।

"अरे महाभारत को छोड़ो, दादा !" प्रफुल्ला ने जल कर उसकी बात काटी। यही तो इन बूढ़ों में एक ऐब था। बात-बे-बात सिराजुद्दौला को याद करके रोते थे। ये धनगोपाल दादा अभी कोई दास्तान शुरू करने वाले थे, प्रफुल्ला ने उनको हल्ले पर ही टोक दिया। "क्या गुज़रे ज़माने की बातें करते हो !" उसने कहा—"कलकत्ते चलो, जहाँ श्याम दा गए हैं।" श्याम, राधेचरण का लड़का था, जो स्मिल साहब के गोदाम में नौकरी कर रहा था—"और लाट साहब की चाकरी करो ! शिराज के ज़माने लद गए, दादा !"

राधेचरण चकित-से सुनते रहे। यह लड़का प्रफुल्ला बिलकुल मारवाड़ियों जैसी बातें कर रहा था। यह मनोवृत्ति उसमें कहाँ से आ गई। उनको मारवाड़ियों से घृणा थी। राधेचरण फ़ारसी पढ़ने वाले उस पुराने, कुलीन वर्ग में से थे जो मुग़लों की सरकार के काम-काज सँभालता था और बाक़ी समय पूजापाठ में लगा रहता था। मगर, अब कलकत्ते के मारवाड़ियों का एक नया मध्य वर्ग पैदा हुआ था, जो कम्पनी के साथ व्यापार करके और स्थानीय अधिकारियों और कम्पनी के गुप्त प्रयासों में भाग लेकर रुपया बना रहा था। यह बंगाल के बनियों का नया वर्ग था। जागीरदार और किसान के बीच का यह नया पूँजीपति वर्ग अंग्रेज़ का मित्र और दाहिना हाथ था, और अंग्रेज़ बंगाल को दोनों हाथों से लूटने में व्यस्त थे।

"लाट साहब की चाकरी !" धनगोपाल ने खाँसने के बाद जोश से बोलना शुरू किया। उसकी दाढ़ी लालटेन की रोशनी में हिलती हुई उपहासास्पद लग रही थी। वह स्वयं भी बहुत उपहासास्पद मालूम हो रहा था। "लाट साहब !" उसने दोहराया—"उससे हमें मतलब? हमारा बादशाह अभी दिल्ली में मौजूद है—वह तुम्हारे लाट साहब का दिमाग़ ठीक कर देगा !"

"तुम्हारा बादशाह अंधा कर दिया गया है, गोपाल दादा !" प्रफुल्ला कहकहा मार कर हँसा। "तुम जाने किस दुनिया में रहते हो ! तुम्हारे बादशाह ने पहले ही दीवानी क्लाइव के हवाले क्यों कर दी? अब दिमाग़ ठीक करेगा।" प्रफुल्ला एक कड़वी हँसी हँसा। दोनों बूढ़े चुपचाप घुटने में सिर देकर बैठ गए। राधेचरण ने उलझन से प्रफुल्ला पर नज़र डाली—इन लड़कों को कुछ समझाना बेकार था। यह भी बताना बेकार था कि बादशाह ने अपनी इच्छा से दीवानी नहीं दी। क्लाइव ने ज़बरदस्ती प्राप्त की थी। इस भूखे देश में जन्म लेने वाले उन नवयुवकों

को किस प्रकार विश्वास आ सकता था कि यही बंगाल देश का सबसे अधिक उपजाऊ सूबा था। यही बंगाल भारत का स्वर्ग कहलाता था। उस समय इस देश पर पराए देश इंग्लिस्तान का जमींदारी विधान लागू नहीं किया था। उस समय देश की बनी चीज़ों पर निर्यात-कर नहीं लगे थे। यह सब राधेचरण के देखते-देखते हुआ था। कुछ ही दिन पूर्व जब स्थायी बन्दोबस्त के सिलसिले में दौरा करता हुआ ढाके का अंग्रेज़ कलक्टर यहाँ आया तो उसने अपने दरबार में राधेचरण को बुला कर कहा था कि हम यह सब तुम्हारे फ़ायदे के लिए कर रहे हैं। मुसलमान नवाबों ने तुम लोगों को अपनी बदइन्तज़ामी से तबाह कर दिया था।

"तुम झूठ बोलते हो, साहब। हमारे नवाबों के यहाँ बदइन्तज़ामी नहीं थी। मैं कायस्थ हूँ। मेरे पुरखे सदियों से मुर्शिदाबाद में हुकूमत का प्रबन्ध करते आए हैं। मैं आज बूढ़ी गंगा के किनारे इस झोंपड़ी में रह रहा हूँ, तो इसका यह मतलब नहीं है कि मैंने अपने सुख के दिनों के साथ अपने होश-हवास भी खो दिए हैं। मुझे मालूम है कि तुम झूठ बकते हो। तुम—!" और जब राधेचरण गुस्से से काँपने लगे तो उनको कलेक्टर के चपरासियों ने कमरे से बाहर धकेल दिया। उस रोज़ उस कमरे में एक अंग्रेज़ मिशनरी भी मौजूद था। वह अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिख रहा था और यह संवाद सुनने के बाद उसने बड़ी "ईमानदारी" से लिपिबद्ध किया था—"बंगाल का हिन्दू मुसलमान नवाबों से घृणा करता है। मुसलमान हिन्दुओं के खून के प्यासे हैं। इस देश में कोई एकता नहीं। वास्तव में इसे एक देश कहना ही नहीं चाहिए। यह बहुत-सी जातियों का एक समूह है और इसमें हिन्दू-मुसलमान हमेशा आपस में लड़ते रहते हैं...। ये दोनों कभी इकट्ठे नहीं हो सकते।"

राधेचरण नदी के किनारे घास पर बैठे रहे। किश्ती अब उनके सामने से जा रही थी। उसमें एक लम्बा-तड़ंगा नौजवान अंग्रेज़ बैठा था। उसके विग का पाउडर और तलवार का दस्ता चाँदनी में झिलमिला रहा था। मोन्शूर दादा हाँफते-काँपते किश्ती खे रहे थे।

राधेचरण ने आँखें बन्द कर लीं। नवाब अलीवर्दी ने मरते समय नौजवान सिराज से कहा था—"फ़िरंगियों ने शहंशाह के मुल्क और उनकी प्रजा की धन-दौलत के आपस में हिस्से-बखरे कर दिए हैं। उसकी शक्ति ज़बरदस्त है। उनको क़िले और फ़ौजें हासिल न करने देना, वर्ना मुल्क उनका हो जाएगा।" उस समय चौबीस वर्षीय सिराज मुर्शिदाबाद में था। फ़िरंगी उसको अपमानित करने की दृष्टि से उसे क़ासिम बाज़ार की व्यापारिक कोठियों में प्रवेश नहीं करने देते थे। उसने मुल्क के उन व्यापारियों का कर माफ़ कर दिया था। मगर, स्वयं नवाब के इलाक़े से जो माल आता, अंग्रेज़ उस पर ज़बरदस्त महसूल लगा रहे थे। कलकत्ते के पतन के बाद भी सिराज ने अंग्रेज़ों के प्रतिज्ञापत्र पर विश्वास करते हुए उनको क्षमा कर दिया था। राधेचरण का बाप इन सब लड़ाइयों में सिराज के साथ-साथ रहा था। अंग्रेज़ों ने हुगली में मार-धाड़ की तो सिराज ने लिखा—"तुमने मेरी प्रजा पर यह अत्याचार ढाया है। तुम अपने आप को ईसाई कहते हो। अगर तुम अब भी केवल व्यापारियों की तरह रहने पर संतोष करो तो मैं सारी पिछली सहूलतें तुम्हें फिर से दे दूँ; क्योंकि युद्ध का नतीजा तबाही है। तुम मुझसे शांति के समझौते करते हो और फिर हमला कर देते हो।" सिराज ने लिखा—"मरहठजिन का पवित्र बाइबिल से कोई सम्बन्ध नहीं, मगर ये अपने क़रारनामों पर डटे हुए हैं, और तुम जो खुदा और ईसा की क़समें खाते हो अपनी प्रतिज्ञाएँ तोड़ देते हो।"

और, एडमिरल वाट्सन ने जवाब दिया था—"मैं ऐसी आग तुम्हारे मुल्क में लगाऊँगा जिसे गंगा का सारा पानी भी न बुझा सकेगा। मैं ऐसी आग लगाऊँगा...!" सहसा मशालों के प्रकाश से सारा क्षितिज जगमगा उठा। बूढ़ी गंगा की लहरें झिलमिला उठीं।...साहब की किश्ती घाट पर पहुँच चुकी थी। राजा गिरीशचन्द्र राय और उनके हाली-मवाली घाट पर स्वागत के लिए खड़े थे। राधेचरण ने हड़बड़ा कर सिर उठाया और उस प्रकाश में उनकी आँखें चौंधिया गयीं। वह चादर लपेट कर धीरे-से उठे और अपने अँधेरे-से मकान की ओर मुड़ गये।

चौपाल पर बैठे हुए सारे आदमी सहम कर एक-एक करके उठ खड़े हुए; क्योंकि राजा साहब के प्यादे रात की दावत के लिए बेगारी पकड़ने के लिए चौपाल की ओर आ रहे थे।

28

पच्चीस साल बीत गए।

ढाके के कारखानों में उल्लू बोल रहे थे ! सारे मुल्क की लोहे की भट्ठियाँ मुद्दतों पहले ठण्डी हो चुकी थीं। इंग्लिस्तान की मिलों से ऐसा धुआँ उठा था, जिसने सारी दुनिया को काला कर दिया था और हिन्दुस्तानी जुलाहों की हड्डियाँ हिन्दुस्तान के मैदानों की धूप में चमक रही थीं। हिन्दुस्तान से लूटी हुई दौलत की बुनियाद पर इंग्लिस्तान में औद्योगिक क्रान्ति और नए पूँजीवाद की नींव उठाई जा चुकी थी। मुर्शिदाबाद जो कभी क्लाइव को लंदन से भी बड़ा और शानदार दिखाई दिया था अब सुनसान पड़ा था। कलकत्ता गुंजान शहर बन चुका था। इसी कलकत्ते में अलीपुर रोड पर सिरिल हार्वर्ड ऐश्ले की आलीशान इमारतें खड़ी थीं। सिरिल हार्वर्ड ऐश्ले पचास साल का दुनियादार, जीवन में सफल, अच्छी तरह दुनिया देखे हुए, पुराना पापी, घाघ, जॉन कम्पनी का महत्वपूर्ण स्तम्भ; नई उर्दू गद्य का अभिभावक, अवध के बादशाह का लँगोटिया यार, इस समय अपने शिकारी कुत्तों से 'हेलो-हेलो' करने के बाद अब बूचे में सवार होने का इरादा कर रहा था कि रोज़ की तरह हवा खाने के लिए निकले क्योंकि उसके फ़िज़ीशियन ने उसे सचेत किया कि वह अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखे, मेहनत कम करे, ग़म कम खाए, शराब उससे भी कम पिए और रोज़ नियमित रूप से हवा खाने जाए, वरना मर जाएगा। फ़िज़ीशियन के इन उपदेशों पर उसे हँसी आई थी और उसे विश्वास हो गया था कि वह वाक़ई बेहद घटिया है, घटिया। सफल, धनी, औसत क़िस्म का इन्सान जब पचास साल की उम्र तक पहुँचता है तो उसके चिकित्सक उसके आगे-पीछे दौड़ने लगते हैं। सारे गवर्नरों, उच्च अधिकारियों और दूसरे बड़े आदमियों के वैद्य-हकीम भी उनसे यही सब कहते हैं।

वह किस क़दर घटिया आदमी था ! सिरिल ने कोफ़्त के साथ अपने शानदार महल पर नज़र डाली। वहाँ बाग़ में फ़व्वारे चल रहे थे और काले नौकर-चाकरों की पल्टन काम में लगी थी—हे ईश्वर ! तूने मुझे इतना निकृष्ट क्यों बनाया ? फिर उसने कुछ कर्मचारी अपनी ओर आते देखे। और, वह जल्दी से अपनी 'बड़े साहब' वाली गम्भीरता चेहरे पर लाकर बूचे में जा बैठा। पत्रवाहक गवर्नमेण्ट हाउस से आए थे। अपने क्लर्क के द्वारा कुछ काग़ज़ात उसे लखनऊ के रेजीडेण्ट के पास भिजवाने थे। बंगाल के हालात अच्छे नहीं थे। ज़िलों के मुसलमान किसानों ने अवध के कुछ बाग़ी मौलवियों के नेतृत्व में सिर उठाया था और उपद्रव मचाते

फिर रहे थे। जल और थल मार्ग सुरक्षित न थे। गवर्नमेण्ट हाउस में परेशानी थी। अवध के बादशाह के पास इन काग़ज़ों का पहुँचना ज़रूरी था। उसे उपद्रवियों का सिर कुचलने के लिए नदिया ज़िले भी जाना था। (नदिया के ज़िले में प्लासी बाग़ था जिसमें आम के घने कुंज थे और गर्मियों के मौसम में जब आम में बौर आ रहे थे, तो वहाँ कर्नल क्लाइव सिराज से लड़ा था।) नदिया....गवर्नमेण्ट हाउस से आए हुए इस सरकारी पत्र में इस नाम को पढ़ कर और बहुत-सी यादें आ गईं। नामों और शब्दों के साथ यह क्या मुसीबत थी ! हर चीज़ का किसी न किसी वस्तु से सम्बन्ध था। सारी दुनिया, यह सारा विश्व उसे कोई न कोई कहानी सुनाने के लिए तुला बैठा था। अपनी कहानी वह किसको सुनाएगा ?

पत्र पर हस्ताक्षर करके पत्रवाहकों को रवाना करने के बाद वह फिर चलने के लिए तैयार हुआ। आसमान पर बादल घिर आए थे। सामने सड़क पर कुछ काले, मरघिल्ले आदमी एक अर्थी उठाये, 'हरि बोल ! हरि बोल !' के भयंकर नारे लगाते जल्दी-जल्दी डग भरते मरघट की ओर जा रहे थे। सिरिल को एक फुरेरी-सी आई और उसने झुक कर अर्थी के साथ वाले एक आदमी से पूछा–

"किसकी अर्थी लिए जाते हो ?"

"ढाकेश्वरी के राधेचरण बाबू की।"

सिरिल चौंका। राधेचरण तो शुनीला के बाप का नाम था।

शुनीला कौन थी ?

संसार में हज़ारों राधेचरण होंगे....और, उसने शुनीला के बाप को कभी देखा भी न था। सुना था कि कभी-कभी अपने बेटे से मिलने गाँव से आ जाया करता था और काफ़ी ख़ब्ती और बददिमाग़ बूढ़ा था।

सिरिल टोपी उतार कर सड़क के किनारे एक ओर खड़ा हो गया। अर्थी वालों ने बड़े आश्चर्य से उसको देखा–अंग्रेज़ हाकिम जो ज़िन्दा बंगालियों के साथ जूते-लात से बात करता था एक मरे हुए बंगाली को यह सम्मान क्यों दे रहा था।

बेचारे राधेचरण बाबू ! काश, कुछ क्षणों के लिए जीवित होकर अपना यह सम्मान भी देख लेते।

जुलूस आगे निकल गया। 'हरि बोल', 'हरि बोल' की आवाज़ें मन्द होकर विलीन हो गईं। कहारों ने अदब से पूछा–"साहब, किधर जाइएगा ?"

सिरिल फिर बूचे में जा बैठा–"जहाँ चाहो, चलो !"

उसने जीवन के हंगामे देखे थे, मौत की गर्मबाज़ारी का नज़ारा किया था। उसने दुनिया के हर रंग को हर पहलू से परखा था। इन्सान किस तरह जीते थे किस तरह मरते थे, यह गोरखधन्धा क्यों था ?

गहरी नदिया, अगम जल, जोर बहुत है धार।
खेवट से पहले मिलो, जो उतरा चाहो पार।।

खेवट कहाँ था ? और उससे मिलने का अवकाश किसे था ! किन्तु, आत्मा का दुख कैसा था जो मुद्दतों से खाए जा रहा था ! किसी दौर, किसी हाल में उसका पीछा न छोड़ता था। जीवन से उसे जितनी आकांक्षाएँ थीं, उससे कहीं अधिक मेहरबानी से जीवन ने उसका

साथ दिया था। मगर, जीवन को उसने अपनी ओर से क्या दिया था ? उसने घबरा कर चारों ओर देखा। यह रौनक से भरा खूबसूरत शहर, उसकी दौलत, उसकी आबादी सब उसके चरणों में बिखरी थी। उसे चारों तरफ़ के इंसान अपना मुँह चिढ़ाते नज़र आए। चौराहे पर पहुँच कर कहारों ने कंधा बदलने के लिए बूचा जमीन पर रखा। सामने एक पुर्तगाली शराबख़ाना था। हुगली के ब्रिटिश और इतालवी मल्लाह दरवाज़े पर हुल्लड़ कर रहे थे। अन्दर कोई ज़ोर-ज़ोर से हार्प बजा रहा था। एक औरत सिर पे काली जाली का रूमाल ओढ़े तेज़-तेज़ नज़रों से उसे घूरती शराबख़ाने के दरवाज़े में दाख़िल हो गई।

"ठहरो ! यहीं रुको !" स्रिल ने चिल्ला कर कहारों से कहा। उन्होंने बूचा दोबारा ज़मीन पर धर दिया। स्रिल कूद कर उस औरत के पीछे-पीछे दौड़ा। वह क़तई भूल गया कि उसको कलकत्ते के इस घटिया यूरोपियन शराबख़ाने में घुसता देख कर लोग क्या कहेंगे !

काउण्टर के पीछे एक पीली रंगत और बुझी-बुझी आँखों वाला यूरोपियन बैठा ऊँघ रहा था। स्रिल को देख कर वह हड़बड़ा गया, फ़ौरन उठ खड़ा हुआ और मारे डर के उसकी ज़बान हकला गयी। "सर...सर...!" उसके आगे उसकी आवाज़ हलक़ में डूब कर रह गई।

स्रिल ख़ामोशी से उसे देखा किया। सारी दुनिया के शराबख़ानों के क़ाउण्टरों के पीछे बैठे ये मालिक कितने रहस्यमय लगते थे ! इन सबकी बड़ी मूक बिरादरी थी। ये आवारागर्दों, चोरों, उचक्कों, बदमाशों और वेश्याओं की अपनी विशिष्ट, उदास दुनिया थी।

इतने में वही औरत तेज़-तेज़ आवाज़ में बोलती, तेज़ी से क़दम रखती एक लकड़ी के ज़ीने पर से उतरी। हलके अँधेरे में उसके सफ़ेद दाँत झिलमिलाये। अब दो अंग्रेज़ मल्लाह शोर मचाते अन्दर आ चुके थे। और उनके साथ दो बेहद हसीन यूरेशियन लड़कियाँ थीं। उनमें से एक लड़की बहुत ज़ोर-ज़ोर से कहकहे लगा रही थी।

उस लड़की के चेहरे पर स्रिल को अपनी आँखें नज़र आईं। वह हड़बड़ा कर उठा। "किधर जाते हो, स्रिल साहब !" उस औरत ने जिसके पीछे वह अन्दर आया था—एकाएक उसके सामने आकर दरवाज़े में उसका रास्ता रोकते हुए ठिठोली से कहा। उसके कानों के बुन्दे झल्कोरे खा रहे थे और वह ख़ासी बेतुकी लग रही थी। दरवाज़े की चौखट से लग कर उसने बड़े इत्मीनान से स्रिल को घूरना शुरू किया। "स्रिल साहब ! अपनी बेटी से मिलते जाओ ! तुमने मुझे कलकत्ते बुलाया था ना ! मैं पच्चीस साल से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। उसे चार साल की गोद में उठा कर मैं मद्रास से यहाँ लायी थी। मगर, तुम्हारे चोबदारों ने मुझे आज तक तुम्हारी कोठी में घुसने ही नहीं दिया। मैं क्या करती। तुमने तो मेरे किसी ख़त का भी जवाब नहीं दिया। तुम जानना चाहते थे कि हम लोगों की ज़िन्दगियाँ कैसे गुज़रती हैं। देख लो, इस तरह गुज़रती हैं !

स्रिल साहब, तुम तो बंगाल गवर्नमेंट के बहुत बड़े अफ़सर हो। मेरे लिए कुछ रुपयों का प्रबन्ध कर दो। सुना है, नेटिव औरतों पर तुमने बहुत-बहुत मेहरबानियाँ की हैं। मैं तो फिर एक हद तक तुम्हारी ही क़ौम की हूँ।"

स्रिल पसीने-पसीने हो रहा था—उसे लगा जैसे अभी उसे दिल का दौरा पड़ेगा, और वह वहीं खड़े-खड़े ख़त्म हो जाएगा। उसी समय सामने से एक घोड़ागाड़ी गुज़री जिसमें 'कलकत्ता क्रॉनिकल' के कुछ पत्रकार बैठे थे। उनको देख कर तो स्रिल की जान ही निकल गई। अगर

किसी तरह उनको इस मामले की ख़बर हो गई तो कल तक यह सारी घटना कलकत्ते भर की सोसायटी में फैल जाएगी। फिर तो विलायत तक पहुँचेगी। उसके चेहरे का रंग बदलता देख कर उसका चोबदार भाग कर उसके पास आया। "साहब आपका जी माँदा है, चलिए !" वह फिर बूचे में जा बैठा।

औरत कमर पर हाथ रखे दरवाज़े में खड़ी उसे देखती रही और फिर अन्दर चली गई।

"हुज़ूर, घर चलिएगा ?" कहारों ने पूछा।

घर ? उसका घर कहाँ था ? "नहीं, बाग़ वाले बंगले चलो !" उसने क्रोध भरे स्वर में कहा। अपने बाग़ में पहुँच कर वह सोचेगा कि अब उसे क्या करना चाहिए।

बूचा आगे बढ़ता गया।

"जल्दी—और जल्दी !" उसने कहारों को डाँटा। ज़िन्दगी का सारा नक़्शा उसकी आँखों के सामने से गुज़रता जा रहा था। यह ज़िन्दगी का फानूस था, वह स्वयं अकेला उसमें बन्द था, और उसके चारों ओर रंगारंग तस्वीरें बनी थीं और उसे इन तस्वीरों से डर लग रहा था। गवर्नमेंट हाउस के सहयोगी, साथी, फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के मुंशी और गद्य के शैलीकार, एशियाटिक सोसायटी के शोधकर्त्ता, अवध के शायर और कलाकार, यहाँ तक कि लखनऊ की चम्पा बाई—ये सब मिल कर भी उसकी आत्मा की पीड़ा को नहीं मिटा सकते थे।

उसकी आत्मा की पीड़ाएँ क्या थीं ?—स्त्रियाँ !—कभी नहीं। स्त्रियों के प्रश्न ने उसे कभी परेशान नहीं किया। सफल, सन्तुष्ट मनुष्यों की ज़िन्दगियों में एक ख़ास खाना होता है, जो सुंदर नारियों के लिए सुरक्षित रहता है। उनके प्रेम, उनकी असफलताएँ, रूमान, गृहस्थ जीवन के हर्ष और संताप—ये सब चीज़ें उस लेबिल के अन्तर्गत आती हैं, जिस पर 'औरतें' लिखा रहता है। सिरिल ऐश्ले जिसने शायर की नज़रों से दुनिया को पहली बार देखा था, अब शायर के बजाय एक क़ामयाब इंसान बन चुका था। उसकी आत्मा का दुख यह था कि वह किसी से प्रेम न कर सका था—उस देश से, जिसने अपनी सारी जमा-पूँजी उसके चरणों में डाल दी; उन औरतों से जिन्होंने विभिन्न समय में उसे चाहा.....मद्रास की मारिया टैरेज़ा, ढाकेश्वरी की शुनीला, और बहुत-सी औरतें, जो उसके असाधारण रूप से प्रभावित होकर उस पर न्यौछावर हुईं। सिरिल ऐश्ले ने दुनिया से सब हासिल कर लिया, लेकिन उसके बदले में दुनिया को कुछ दिया नहीं ! यह बड़ी बदनसीबी की बात थी। अगर उसके समय में धर्म की चर्चा होती, तो शायद वह ईश्वर की शरण ढूँढ़ता। लेकिन दुनिया बुद्धिवाद, विज्ञान और भौतिकता की ओर जा रही थी। बैंक ऑफ़ इंग्लैंड चर्च ऑफ़ इंग्लैंड से अधिक महत्त्व रखता था। जीवन का अर्थ था—और अधिक धन, और अधिक व्यापार, हुकूमत; और अधिक उन्नति और अधिकार।....अपने गार्डेन-हाउस में पहुँचकर उसने इस सप्ताह की डाक देखी। कुछ देर सोया। फिर पेचवान के कश लगाने के बाद वह दोबारा दफ़्तर जाने के लिए तैयार हुआ। दिल की वीरानियाँ भी थीं, मगर कर्त्तव्य, न्याय और क़ानून के तक़ाज़े भी थे, जो दुःखों पर सदा की तरह छा गए। कर्त्तव्य उसे पुकार रहा था कि नदिया ज़िले जाकर विद्रोही किसानों की भर्त्सना करे। क़ानून और न्याय की माँग थी कि इन विद्रोहियों को कठोर से कठोर दण्ड दिया जाय; तो दिल की वीरानी कहती थी—लखनऊ चलो ! वहाँ दरबार की रंगीनियों में सारे ग़म धुल जाएँगे।

कोट पहन कर वह फिर बूचे पर सवार हुआ और चौरंगी की ओर लौटा जिधर उसका दफ़्तर था।

29

नौजवान बंगाली क्लर्क ने सिर उठा कर उसे देखा। वह अब तक फ़ाइलों पर झुका हुआ था। घुँघराले बाल उसके माथे पर आन गिरे थे। मेज़ पर चारों ओर मटियाले कागज़ों का ढेर था। बाहर बरामदे में उड़िया कुली लड़का ऊँघता जाता था, और पंखे की डोर खींच रहा था। सिल को दफ़्तर में आता देख वह हड़बड़ा कर सीधा हो बैठा और पंखा अधिक तेज़ी से खींचने लगा।

"गुड आफ़्टर नून, सर !" नौजवान ने कुर्सी पर से उठते हुए धीमे स्वर से कहा।

"गुड आफ़्टर नून—तुम्हारा क्या नाम है ?"

"गौतम नीलाम्बर दत्त, सर।"

"मैंने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा।"

"मैं कल ही प्रेसीडेंसी-मजिस्ट्रेट के दफ़्तर से यहाँ ट्रांसफ़र किया गया हूँ।"

"कब से काम कर रहे हो ? अभी तो लड़के ही मालूम होते हो !" सिल ने दिलचस्पी से पूछा। उसका नेटिव लोगों से यह मित्रता का अन्दाज़ एक ज़माने में कार्नवालिस को बहुत खला करता था। क्योंकि जब से जॉन कम्पनी को राजनैतिक सत्ता मिली थी, कार्नवालिस ने पालिसी बदल दी थी। अब अंग्रेज़ शासक थे और हिन्दुस्तानी शासित। उन्हें किसी हालत में भी नेटिव लोगों से बराबरी का बर्ताव न करना चाहिए था। 'हेस्टिंग-बहादुर' वार्न हेस्टिंग्ज के ज़माने सपना हो चुके थे। कार्नवालिस के समय से अंग्रेज़ और नेटिव के बीच की सामाजिक खाई चौड़ी होती जा रही थी, मगर सिल 'ओल्ड स्कूल' का 'नवाब' था। उसी तरह शायरों से मिलता, मुजरे सुनता। अवध रेज़ीडेंसी में रह कर उस पर हिन्दुस्तानियत का रंग और भी गहरा हो चुका था। उसे कार्नवालिस याद आया—गुड ओल्ड कार्नवालिस : जो गाज़ीपुर पहुँच कर हैज़े का शिकार हो गया। अब तो उसकी हड्डियाँ भी क़ब्र में गल गई होंगी। उसे मौत के एहसास ने फिर घबरा दिया। उसने एक क्षण के लिए आँखें बन्द कीं और फिर बंगाली क्लर्क पर दृष्टि डाली। "तुमने कहाँ पढ़ा है ?"

"संस्कृत कालेज, बनारस और यहाँ"—उसने ज़वाब दिया। "कलकत्ता कालेज में एफ़. ए. तक पढ़ा है। अब बी. ए. करना चाहता हूँ।"

"बड़ी ख़ुशी की बात है !" सिल ने वस्तुतः ख़ुश होकर कहा—"दफ़्तर के बाद भी मुझसे मिलते रहा करो।" फिर वह अपने कमरे में चला गया।

कुछ देर बाद उसने नीलाम्बर दत्त को फिर बुलाया।

"सफ़र करना पसन्द है ?" सिल साहब ने पूछा।

"जी हाँ।"

"कभी शाह-अवध की अमलदारी में गए हो ?"

"मैं बनारस के आगे कहीं नहीं गया।"

"कुछ ज़रूरी कागज लखनऊ रेज़ीडेंसी भेजने हैं। तुम्हारे साथ सशस्त्र दस्ता जाएगा। मैं खुद नहीं जा सकता, क्योंकि मुझे ज़िलों का दौरा करना है। घर जाकर सामान बाँधो। अखिलेश बाबू से कहो—जहाज़ में तुम्हारे लिए केबिन का बन्दोबस्त कर दें।" सिरिल साहब ने हुक्म दिया।

"यस सर, थैंक्यू सर !" वह उल्टे क़दमों से अपने कमरे में वापस आया। और फिर कागज़ों पर झुक गया।

सिरिल उसे बड़ी मुहब्बत से देखा किया। इंसानों को पहचानने, उनकी आत्मा के अंदर झाँकने की इससे पहले कोशिश क्यों नहीं की थी।

जहाज़ ने जो कलकत्ते से बनारस जाता था अभी लंगर नहीं उठाया था। बारिश का मौसम आ चुका था और मुंगेर और पटना तक गंगा की लहरें बहुत घातक थीं। गौतम नीलाम्बर यात्रा का सामान ठीक करने के बाद अब बादलों के छँटने का इन्तज़ार कर रहा था। मानिकतल्ला में उसका छोटा-सा मकान था, वहाँ वह अकेला रहता था। उसके माँ-बाप, बहन-भाई, सब राजशाही में रहते थे और खेती करते थे। इस समय शाम हो चुकी थी। आँगन के कोनों में झींगुर बोल रहे थे। गलियों में बारिश का पानी भरा हुआ था। हवा बन्द थी। वह अपने कमरे के बरामदे में—जिसकी सीढ़ियाँ गली में उतरती थीं—चटाई बिछाए, लालटेन जलाए, एक मोटी-सी अंग्रेज़ी किताब के अध्ययन में लीन था और बार-बार डिक्शनरी देखता जाता था। इतने में आहट हुई और उसने सफ़ेद साड़ी में लिपटी एक चालीस वर्षीय औरत को सामने खड़ा देखा। वह जल्दी से उठा और नमस्कार करने के बाद बोला—"क्या बात है, माँ ? किससे कितना चाहती हो ?"

"तुम्हीं से।"

"मुझसे ?"

"हाँ, तुम सिरिल साहब के क्लर्क हो न ?"

"हाँ, हूँ तो !"

'मैं शुनीला हूँ।"

"शुनीला माँ...." उसके पल्ले कुछ न पड़ा। "तुम्हारी क्या सेवा करूँ ?"

"मैं—मैं सिरिल साहब की पत्नी हूँ।"

"अच्छा !!" उसे याद आया। दफ़्तर में उसे किसी ने बताया था कि सिरिल साहब के अंतःपुर में वर्षों से एक हिन्दू स्त्री रहती थी, जिसको कुछ अर्से से उन्होंने अलग कर दिया था और जिसके लिए एक दूसरा मकान ले रखा था।

"तुमको साहब बहुत मानते हैं। मेरा एक काम कर दोगे ? तुम लखनऊ जा रहे हो न ?"

"हाँ, माँ।"

"तुमने चम्पाबाई का नाम सुना है ?"

"चम्पाबाई !....वह कौन है ?"

"लखनऊ की बड़ी मशहूर तवायफ़ है।....साहब जब भी लखनऊ जाते हैं, उस पर हज़ारों रुपये खर्च करते हैं। मेरी अब बात भी नहीं पूछते। मेरा अब दुनिया में कोई नहीं है। एक बूढ़ा बाप था। वह भी मर गया। भाई अपने कारोबार में लगे हैं। भावज उठते-बैठते ताने

देती है—जाओ अपने फ़िरंगी के पास !" उसकी आँखों में आँसू आ गए। "मेरी एक लड़की भी है। दस साल की हुई तो उसे साहब ने अपनी बहन के पास लन्दन भेज दिया। वह विलायत से लौट कर आई है तो मुझे पहचानती भी नहीं है। उसे लोगों को बताते शर्म आती है कि उसकी माँ काली औरत है।"

नीलाम्बर की समझ में न आया कि वह क्या कहे। उसे यह मालूम न था कि साहब की एक लड़की भी है। "तुम्हारी बेटी का क्या नाम है ?"

"मारग्रेट अजाबिल—पर, मैं उसे बेला कह कर पुकारती थी।"

"तुम ईसाई हो गयी हो ?"

"नहीं। मगर बेला ईसाई है, और मेरे धर्म को वहुत बुरा समझती है। तुम चम्पा से कहो, वह साहब का ख़याल छोड़ दे। तुम लखनऊ से आकर मुझसे मिलोगे न ? तुम मुझे बताओगे, तुमने चम्पा से क्या कहा ?"

"मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा माँ—" गौतम नीलाम्बर ने कहा। फिर वह उसे पहुँचाने के लिए गली में उतर आया—"तुम्हारी पालकी किधर है ?"

"मैं पैदल आई थी। तुम मेरी चिन्ता न करो।" गली के अँधियारे में उसकी सफ़ेद साड़ी कुछ देर तक झिलमिलाती रही। फिर मोड़ पर पहुँच कर वह आँखों से ओझल हो गई। गौतम नीलाम्बर बरामदे में वापस आकर दोबारा अपनी डिक्शनरी पर झुक गया।

30

लखनऊ के रूमी दरवाज़े में पहर दिन चढ़े की नौबत वजने वाली थी। बैलगाड़ियाँ और शिकरमें चरंख़चूँ करती देहात की तरफ़ से शहर के नाकों में दाख़िल हो रही थीं। इन बैलगाड़ियों पर तरकारियाँ और फल लदे थे और यात्री बैठे थे। चौक और नख़्ख़ास में चहल-पहल आरम्भ हो गई थी। अमीरों के महलों के पायीं बाग़ साफ़ किए जा रहे थे। नौकर-चाकर बासी फूलों के गजरे और गुलदस्ते समेट रहे थे ! मेहरियाँ ख़ुशगप्पियों में लीन थीं। सड़कों के किनारे साक़िनों और तंबोलियों ने अपनी-अपनी दुकानों की सजावट शुरू कर दी थी। लोग आते थे, दो घड़ी हँस-बोल कर ज़र्दा खाकर या हुक़्क़े के दो कश लगा कर अपने-अपने कारोबार में व्यस्त, आगे बढ़ जाते थे। मैदानों में फ़ौजी पल्टनें परेड कर रही थीं। तिलंगे, झिलंगे, हब्शी सिपाही, राजपूत ओहदेदार शाही महलों के पहरे पर चौकस खड़े थे। रमना के जंगलों में चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। गोमती के किनारे नावें बँधी खड़ी थीं। अभी बजरों के चलने का वक़्त नहीं आया था। तट के किनारे पर बनी कोठियों का अक्स साफ़ पानी में झिलमिला रहा था। सावन के ऊदे बादलों और आसपास की हरियाली की वजह से गोमती भी सब्ज़-रंग हो रही थी। हयात बख़्श, टेढ़ी कोठी, कंकरवाली कोठी, सिंघाड़ेवाली कोठी, ख़ुर्शीद मंज़िल, सभी जगह पर बादल झुक आए थे। बाग़ों में टपका लग गया था। कुंजों में झूले पड़ गए थे। लखनऊ सावन मनाने के लिए तैयार हो चुका था।

फिर दोपहर की नौबत बजी। भोजनालयों की रौनक़ दोबाला हुई। भटियारिनें व्यस्त हुईं। लोग अपने-अपने कारख़ानों से खाना खाने के लिए निकले। दीवान-ख़ानों में दस्तरख़ान बिछे।

बेग़मों ने ख़स की टट्टियों के पीछे चौसर की बिसातें जमाईं। मेहरियाँ और कनीज़ें पानदान खोल कर बैठीं। लड़कियाँ-बालियाँ चुनरियाँ रँगने में लग गईं। कढ़ाइयाँ चढ़ाई गईं।

तीसरे पहर की नौबत बजी। दिन ढलना शुरू हुआ। दिलफ़रेब बाग़ों में पेड़ों के साये लम्बे होने लगे। रमना में पले हुए जंगली जानवर चिंघाड़ते फिरे और हिरन कुलेलें भरा किये। चिरैया झील पर बादल झुक आये। मोतीमहल पर बारिश की हल्की-हल्की बूँदें बरस गईं।

चौथा पहर आया ! सूरज डूबने लगा। हवाओं में ख़ुशबुएँ उमड़ आईं। शाम-ए-अवध अपनी पूरी आनबान से सजने लगी। सारे शहर को रंगारंग ख़ुशबुओं ने अपनी लपेट में ले लिया। छिड़काव की हुई मिट्टी की सोंधी ख़ुशबू, गंधियों की दुकानों की महक, कन्नौज के बेले और जौनपुर के गुलाबों की ख़ुशबू, मन्दिरों में से उठते हुए लोबान की लपट, बादशाह के महल में बहती हुई इत्र की नहर की ख़ुशबू। फिर गली-कूचों की खिड़कियाँ और दरवाज़े खुले। लोग गलियों और सड़कों पर आ गए। उन्होंने बाग़ों का रुख़ किया। गली-कूचों में से संगीत के स्वर उठना शुरू हुए। सुन्दर कुंजड़िनें, तेज़-तर्रार तँबोलिनें, हाज़िर-जवाब भटियारिनें सावन और लावनियाँ गाती फिर रही थीं। गली के लड़के बैतबाज़ी करते जाते थे और गोलियाँ खेलते थे। ग़रीबों और अमीरों के मकानों से सितार, जलतरंग और तानपूरे के सुर उठ रहे थे। नदी किनारे बैठे हुए जोगी तुरई बजाते थे। नई ब्याही लड़कियाँ अपने-अपने घरों में बैठी सड़क की ओर देखती थीं कि सावन मनाने के लिए उनका भाई मैके से डोली कब भेजेगा। हलवाई पूरियाँ छान रहे थे। बच्चियाँ पकवान बना रही थीं। हर शख़्स ख़ुश था।

लोगो ! ख़ुश हो लो कि दुनिया नश्वर है ! जाने कितने दिन का चैन तुम्हारे नसीबों में लिखा है। आपस में हँस-बोल लो। ग़नीमत जान लो कि यहाँ दो-चार हमजिंस मिल बैठे हैं। कल क्या जानिये क्या हो ! 'कूच नगारा साँस का बाजत है दिन रैन !' बाक़ी सिर्फ़ ख़ुदा रहेगा—वह जो कहीं बहुत दूर बैठा इस लीला का तमाशा करता है। वह ख़ुदा सूफ़ियों का है और फ़िरंगी महल के मौलवियों का है, और बालानाथ के जोगियों का है। वह किसी समय भी अपनी उँगली उठा कर कह सकता है—बस, अब ख़त्म किया जाए !

ऐ तुच्छ, बेबस और उपहासास्पद इंसानो ! तुम सब एक मकड़ी के अदृश्य जाल में फँस चुके हो। मकड़ी को तुम पहचानते नहीं हो, क्योंकि यह तुम्हारा जाल अदृश्य है।

कब तक तुम्हारी यह ख़ुशी रहेगी, बेचारे लोगो, ख़ुशी बड़ी महान चीज़ है, दूसरों से उनकी ख़ुशी न छीनना।

ये लोग जो इन सड़कों पर चल रहे हैं, उन्होंने जीने का ढंग सीख लिया है। ये गम्भीर, स्वच्छ और शान्तिमय जीवन व्यतीत करना जानते हैं। ये लोग जो इन बाग़ों में एकत्र हैं, बड़े अहम लोग हैं, क्योंकि ये एक बड़ी संस्कृति और सभ्यता के प्रतिनिधि हैं। अठारहवीं सदी के फ्रांस की तरह इन्होंने जीने की कला को उसकी चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। ये नाम, ये सूरतें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। जब कोई इनका नाम लेता है तो दिल पर चोट लगती है। शुजाउद्दौला, बहू बेगम, बेनी बहादुर, टिकैन राय, और अवध के ये सारे वासी, जो न कभी दुःखी होते हैं, न दूसरों को दुःखी करते हैं; जो हज़ारों साल से घाघरा और गोमती के किनारे एक तरह से रहते आए हैं। रामचन्द्र जी के समय में भी यही लोग थे, शुजाउद्दौला के समय में भी यही लोग ज़िन्दा थे। ये किसान और जोगी। नदी किनारे वह नागा गुसाईं धूनी रमाए बैठा था।

यह अपने साथियों के साथ शुजाउद्दौला की सेना में भर्ती होकर बक्सर में अंग्रेज़ों से लड़ा था। ये शान्तिप्रिय किसान अपना मुल्क़ बचाने के लिए नवाब के सिपाहियों की हैसियत से मरहठों से टक्कर लेते थे। यह सदैव प्रसन्न रहने वाले चरवाहे और ग्वाले अज़ीमाबाद तक पहुँच कर अंग्रेज़ों से भिड़ गए थे अतः अब शान्ति नहीं थी। सिंधिया की फ़ौज ने गंगापार का इलाक़ा तबाह कर रखा था। इलाहाबाद में क्लाइव डिनर-टेबल पर शाहआलम का तख़्त बना चुका था।

अंग्रेज़ों ने शुजाउद्दौला की ज़बरदस्त फ़ौज से घबरा कर संधि की थी कि पैंतीस हज़ार से अधिक सेना न रखेंगे ! मगर, सदा की भाँति वह अपना वचन तोड़ चुके थे। और, जब फ़ैज़ाबाद का शुजाउद्दौला मरा तो उसको सदमा था कि अंग्रेज़ों को मुल्क़ से न निकाल सका—शुजाउद्दौला जो महाजी सिंधिया का पगड़ी-बदल भाई बना था। ये नाम उस कहानी के हैं जो कहानी सुबह होते-होते खत्म हो जाती है। यही कारण है कि उन्होंने कहानी सुनाने की कला को अपनी चरम सीमा तक पहुँचा दिया है कि वे कहानी सुनाते-सुनाते स्वयं कहानी में बदल जायेंगे।

उनकी कहानी उपहासास्पद है !

लखनऊ परियों के शहर की तरह जगमगा रहा है। ये जानी-पहचानी गलियाँ, सड़कें, मुहल्ले, गंज, कटरे, बाग़, नाके—रौनक़दार; आवाद, भरे-पूरे। यह क़िला मच्छी-भवन है। यह मआली ख़ाँ की सराय है। आसिफ़उद्दौला के जाँनिसार राजा झाऊलाल का पुल है।

ज़रा ठहरो ! आसिफ़उद्दौला—यह किसका नाम लिया कि दिल के सारे तार झनझना उठे ! वही आसिफ़उद्दौला, जिसका नाम लेकर हिन्दू दुकानदार सुबह को अपनी दुकानें खोलते हैं?—'जिसको न दे मौला—उसको दे आसिफ़उद्दौला !' आसिफ़उद्दौला कहता था—"जहाँ में जहाँ तक जगह पाइये, इमारत बनाते चले जाइए !" जिसने अकाल के दिनों में प्रजा के लिए आजीविका उपलब्ध करने के लिए इमामबाड़ा बनवाया था, जहाँ रात को मशालों की रोशनी में काम होता था ताकि शरीफ़ घराने के व्यक्तियों को मिट्टी ढोते और ईंटें चुनते शर्म न आए ! दयालु, दानी, देवता-समान आसिफ़ ने हज़ारों बाग़-बाग़ीचे, बारहदरियाँ, शीशमहल और हाथीदाँत के बंगले बनवा डाले। जो ग़रीबों और कलाविदों के पोषण और सम्मान के लिए नित नई योजनायें बनाता रहता था। बहादुर शुजाउद्दौला का दानी बेटा था आसिफ़। उसके फ्रांसीसी जनरल क्लाड मार्टिन के क़िले 'कोंस्टेशिया' के बाग़ में वसंत के सारे फूल खिले हैं। फ़रहबख़्श कोठी के नीचे से नदी मन्द गति से बह रही है। खाने के कमरे के दरीचों के नीचे से नावें गुज़र रही हैं। बरसात में कोठी की निचली मंज़िलें पानी में डूब जाती हैं तो जनरल ऊपर की मंज़िलों में चला जाता है। फ्रांसीसी राजगीरों की बनाई हुई कोठियों में झाड़-फ़ानूस सजे हैं, प्यानो रखे हैं। विलायती फर्नीचर झल-झल कर रहा है।

यह नगर अयोध्या और बनारस के हज़ारों साल पुराने संगीत का संरक्षक है। यहाँ की भैरवी सारे देश में प्रसिद्ध है। यहाँ मुहर्रम के ज़माने में वातावरण में विहाग, पीलू और सोहिनी घुल जाती है। बेग़मों के महलों की चारदीवारी में लयदार और गलेबाज़ डोमनियाँ बारह महीने संगीतोत्सव मनाती रहती हैं। चौक के कमरे, उपनगर के उद्यान और बारहदरियाँ कलाविद् डेरेदार वेश्याओं की तानों से गूँजती हैं। चाँदनी रातों में कहार और मज़दूर मुंडेरों पर बैठकर बिरहा

गाते हैं। ब्रज के रासधारी रासलीला का स्वाँग रचाते हैं। ब्राह्मण नर्तक एक घुँघरू बजा कर नाच रहे हैं और आसपास सारे में मौत का घुँघरू बज रहा है। पिछले सत्तर-अस्सी साल से यह नाटक फ़ैज़ाबाद और लखनऊ की रंगभूमि पर खेला जा रहा है। इन पात्रों का महत्त्व बाहर वाले नहीं समझ सकते। इन सबने मिल कर उस दुनिया की रचना की है जो अवध के निवासियों--हिन्दू-मुसलमानों की अपनी दुनिया है। ये लोग कभी रुलाते हैं, कभी हँसाते हैं। इन जैसे नाम और कहीं न होंगे। इनकी जैसी भाषा, रुचि और पहनावा कहीं न मिलेगा। ये लोग ग़रीब-अमीर, औरत-मर्द, जो ठाकुर इमामबख़्श और लाला हुसैन बख़्श, मिर्ज़ा मेंढू और नवाब कम्मन कहलाते हैं। और इमामन महरी और मिर्ज़ा जंगली और सुख़बचन लौंडी और नवाब बसन्ती बेगम--ये सब रोते हैं, हँसते हैं, गाते-बजाते हैं, लड़ते हैं। वीरता इनका बाना है; आन पर जान देना शराफ़त, कृतज्ञता, वफ़ादारी, नेकी। इसके अलावा जागीरदाराना समाज की जितनी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हो सकती हैं वे सब इनमें मौजूद हैं। इसीलिए ये लोग बड़े भावुक हैं। बताशे और कौड़ी पर नाचने वाले कथक, कश्मीरी भाँड़, जलतरंगिए, बीनवादक, वाजपेयी ब्राह्मण, तबलची, शायर, मर्सियागो (मुहर्रम में शोक-काव्य पढ़ने वाले), दास्तानगो, कायस्थ, फ़ौजी बाँके, चण्डूबाज़, भगतबाज़, नक़्क़ाल, बहुरूपिए, विद्वान, कलावन्त। यहाँ वीर-रस और शृंगाररस साथ-साथ चलते हैं। यह असल रूमानी सामाजिक जीवन है।

लखनऊ से सत्तर मील की दूर पर बंगला फ़ैज़ाबाद है--राम की नगरी अयोध्या। इसे शुजाउद्दौला ने दिल्ली की टक्कर का बना दिया था। यहाँ गुलाबबाड़ी है, और घाघरा के घाट, और बड़े मुग़लों के ज़माने की मस्जिदें। दिल्ली में अब बेचारे छोटे-छोटे मुग़ल बैठे हैं। ये उपहासास्पद छोटे-छोटे मुग़ल भागे-भागे फिर रहे हैं, इनको सिर छुपाने की जगह नहीं मिलती।

दिल्ली का एक शाहज़ादा लखनऊ में पड़ा है, एक बनारस में शरण लिए हुए है। अवध दरबार से उसको दो लाख रुपए वार्षिक पेंशन दी जाती है। यह अमीर तैमूर--साहब क़िराँ की औलाद है।

और, ईरानी शियों की संतान इस समय अवधपुरी में दिग्विजयी रामचन्द्र के सिंहासन पर बैठी है, और उसने अपने इस महान उत्तराधिकार का धर्म पालन किया है। यह बादशाहत हिन्दुओं के लिए उनके अपने राष्ट्रीय राज्य के समान है। यहाँ हिन्दू और मुसलमान का फ़र्क़ कोई नहीं जानता, क्योंकि गढ़ी का ठाकुर और महल का नवाब, दोनों जागीरदाराना प्रणाली के दृढ़ रिश्ते में एक-दूसरे से बँधे हुए हैं, और उनकी प्रजा--जिसमें हिन्दू और मुसलमान किसान दोनों शमिल हैं--उनके सिपाहियों की लाठियों से एक तरह पिटते हैं। उनके दुःख-सुख एक हैं।

धार्मिक अलगाव को प्रजा का शुद्ध निजी मामला समझा जाता है। मुहर्रम में बलवे नहीं होते, न मस्जिदों के सामने बाजा बजाया जाता है। हिन्दू ताज़ियादारी करते हैं और मुसलमान दीवाली मनाते हैं। कैसा उल्टा ज़माना है। नवाब-बहू-बेगम हर साल होली मनाने फ़ैज़ाबाद से अपने बेटे के पास लखनऊ आती हैं। सारे राज्य में हिन्दू राजाओं ने मस्जिदें और इमामबाड़े बनवा रखे हैं। लखनऊ से अस्सी मील की दूरी पर बहराइच है; जिसे हज़ारों बरस पहले श्रावस्ती कहते थे; जहाँ सालार मसऊद ग़ाज़ी की दरगाह है। यहाँ हर साल बड़ी धूमधाम से हिंदू मुसलमान मिल कर उनकी बारात निकालते हैं। जेठ महीने में उनका मेला लगता है। सुर्ख़ नेज़े और

झंडे उठाए डफली बजाते हज़ारों हिंदू-मुसलमान गाँवों से उनके मज़ार की ओर चल पड़ते हैं। बंगाल के मुसलमान सूफ़ी सत्यपीर की तरह—जो सत्यनारायण बन चुके हैं, सालार मसऊद उर्फ़ बाले मियाँ ने अवध के हिन्दुओं के लिए बालानाथ का दर्जा प्राप्त कर लिया है। उनके मक़बरे के करीब का अग्निकुण्ड, बाला-ए-रब की धूनी कहलाता है। दरगाह की नज़र मुज़ाविर और पूजा के चढ़ावे पण्डे लेते हैं। पण्डों और मुज़ाविरों में इस आय के बँटवारे के सम्बन्ध में आपस में समझौता है। स्रिल ऐश्ले के मित्र बिशप हैबर और उनके साथी, जो आजकल इस देश में चारों ओर घूम कर अपने यात्रा वृत्तान्त लिख रहे हैं—लिखते हैं कि इस मुल्क का हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के ख़ून का प्यासा है। और वेस्टमिनिस्टर में हमारी सरकार को चाहिए कि वह इन जंगली जातियों को इनके अज्ञान और साम्प्रदायिकता से मुक्ति दिलाने के लिए जल्दी से जल्दी और अधिक बाइबिलें और बन्दूकें भेजे।

लखनऊ के वासियों को मालूम नहीं कि इन बेचारों के बन्दूक़ों से लदे हुए जहाज़ कलकत्ते की ओर आ रहे हैं। आग़ा मीर शाहे-ज़मन के प्रधानमंत्री हैं। मसीता बेग कोतवाल शहर का हाकिम है जिसने नवाब सआदत अली ख़ाँ के समय के घूमी बेग कोतवाल की न्यायप्रियता और शान्ति की परम्परा को ज़िन्दा रखा है। शहर में पूर्ण शान्ति है। मशहूर डाकू मुहर्रम मनाने के लिए अस्थायी रूप से मुक्त किए जाते हैं और फिर ज़ेल में ख़ुद वापस आ जाते हैं। बाँके उपद्रवियों को कुचलने के लिए मौजूद हैं। हवा में अशर्फ़ियाँ उछालते चले जाइये, कोई न पूछेगा। बहू-बेटियों की इज़्ज़त सुरक्षित है। एक की बेटी सारे मुहल्ले की बेटी समझी जाती है। वज़ेदारी (मर्यादा) और शराफ़त पर जान देने का आम रिवाज़ है।

यह अबुल-मुजफ़्फ़र मोअज़ुद्दीन शाहे-ज़मन ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की राजधानी है, जिनकी शादी में रुपयों या अशर्फ़ियों के बजाय हाथियों पर से हीरे-जवाहिरात की बौछार की गई थी, जिनको लूट कर ग़रीब और दरिद्र दौलतमन्द हो गए थे। उनके रनिवास में फ़िरंगी कर्नल ऐश की बेटी मुबारक महल विराजती है। शाहे-ज़मन की बेटी की शादी बंगाले के क़ासिम अली ख़ाँ के लड़के से हुई है।

इक ज़रा ठहरना। कौन, क़ासिम अली ख़ाँ ।—बंगाल का अन्तिम स्वतन्त्र सत्ताधारी नवाब—वही सैयदवंशीय, जो अंग्रेज़ों से अपनी पराजय के बाद दिल्ली जाकर निर्वासित के रूप में ऐसी दशा में मरा कि उसी का शाल बेच कर उसके कफ़न-दफ़न का प्रबन्ध किया गया।

यह शाहे-ज़मन की राजधानी है। शाहे-ज़मन ने गोमती के किनारे इमामबाड़ा नजफ़-अशरफ़ बनवाया है। मुहर्रम में उसमें चरागाँ किया जाता है तो लगता है "तिलिस्मे होशरुबा" (होश उड़ा देने वाली मायानगरी) का एक दृश्य है।

बाज़ारों में खवे से खवा छिल रहा है। सौदेवाले अपनी-अपनी शायराना आवाज़ें लगा रहे हैं। दुकानों में दुनिया-जहान का माल बिक रहा है। सआदत अली ख़ाँ के समय की बनी हुई इमारतों में कहकहे गूँज रहे हैं। इन ख़ूबसूरत इमारतों की सजावट देख कर जी भर आता है। इतनी ख़ूबसूरती और नफ़ासत स्थाई हो सकती है?

सुंदरता नश्वर है। शाक्य मुनि गौतम सिद्धार्थ ने एक बार वाराणसी के मृगबाग़ में कहा था—"सब कुछ नश्वर है ! नश्वरता से बचो ! दुःख से बचो ! साए से बचो !" और, वेदान्त में लिखा है—"माया का उदाहरण ऐसा है, जैसे बाँझ स्त्री का पुत्र जो मरीचिका के जल में

स्नान करने के बाद, आकाश-कुसुमों का वस्त्र पहन कर हिरण के सींगों से बना धनुष हाथ में लेकर बाहर निकले !" मत भूलो कि रामचन्द्र की अयोध्या, प्रसेनजित् की श्रावस्ती, चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र, कालिदास के उज्जैन, हुसैन शर्क़ी के जौनपुर और अलाउद्दीन हुसैन के गौड़ में भी ज़िन्दगी का सौंदर्य अपनी चरम सीमा को पहुँच गया था और, मत भूलो, कि हर सौंदर्य में मौत छिपी हुई है।

सड़क पर से एक सुखपाल गुज़र रही है। उसके गुम्बद पर सुनहरी कलश सजा है और चंचल शोख़ महरी उसका छटका पकड़े साथ-साथ भाग रही है। कहारों की वर्दियाँ सुर्ख़ रंग की हैं और उनकी सुर्ख़ पगड़ियों पर मछली के सुनहरे निशान बने हैं। उनके हाथों में चाँदी की मूठ वाली लाठियाँ हैं। राहग़ीरों की नज़रें उस सुखपाल पर जमी हैं। यह अपने समय की सब से रूपवान् लड़की चम्पा की सुखपाल है।

समय बड़ी अजीब चीज़ है।

समय, सौंदर्य, और मौत !

बाग़ों में मेले हो रहे हैं। मुर्ग़ों और बटेरों और मेढ़ों और हाथियों की लड़ाइयाँ कराई जा रही हैं। अंग्रेज़ रेज़ीडेंट बादशाह के साथ ब्रेकफ़ास्ट खाता जाता है और सामने हाथियों की लड़ाई देखता जाता है। बरामदे में अंग्रेज़ी बैंड बज रहा है। मुशायरे हो रहे हैं। दरबार में अपने ज़माने का सर्वश्रेष्ठ नर्तक प्रकाशजी कथक नाच रहा है। शिवालयों में भवानी की पूजा हो रही है। आम के कुंजों में मल्हार उड़ रहा है। श्मशान घाट पर, इस हंगामे से निकल आने वाले, जलाए जा रहे हैं। नख़ास में दास्तानगोओं ने अपनी महफ़िलें जमा रखी हैं। विद्वानों और विचारकों की मजलिसों में बहसें जारी हैं। भँगेड़िये बूटी घोटने में व्यस्त हैं। सुरसिंघार, मँजीरे और पखावज के शोर से कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती। क़ब्रिस्तानों में क़ब्रें खोदी जा रही हैं।

नश्वर ! नश्वर ! जो कुछ है नश्वर है !

काल नश्वरता में शमिल है।

काल को विभिन्न भागों में बद्ध कर लिया गया है, परन्तु वह पल-पल, छिन-छिन इस बन्धन को तोड़ता हुआ चुपचाप आगे निकलता जाता है।

अब रूमी दरवाज़े पर सूर्यास्त का नगाड़ा बजेगा।

चार पहर दिन गुज़र चुका है। चार पहर रात गुज़र जाएगी। हर पहर में आठ घड़ियाँ हैं, हर आठवीं घड़ी पर गजर बजता है। इन्सानों का जुलूस अपनी-अपनी क़ब्रों में उतर रहा है।

वक्त मृत्यु है।

31

आसिफ़ी युग के बने हुए रूमी दरवाज़े के नगाड़े की आवाज़ गौतम नीलाम्बर के कानों तक पहुँची। उस समय उसकी शिकरम शहर के नाके में दाखिल हो रही थी। नाके पर उसने सिपाही को अपना परवाना-राहदारी दिखलाया। अवध के बादशाह के सिपाही ने पूछा—"क़िब्ला,

कहाँ से तशरीफ़ लाते हैं ?" उसने बताया—"कलकत्ते से इलाहाबाद के बेनीघाट तक नाव पर आया था। वहाँ से स्टेज-कोच और शिकरम पर बैठा बारिश में भीगता चला आता हूँ !"

"कहाँ जाने का इरादा है, क़िब्ला?"

"रेज़ीडेंसी।"

सिपाही ने एक क्षण के लिए उसे ध्यान से देखा—"फ़िरंगी सरकार से जनाब का सिलसिला है?"

"हाँ !" उसने ज़रा झेंप कर उत्तर दिया।

"हाँ, मियाँ !" दूसरे सिपाही रामदीन ने चिलम सुलगाते हुए कहा, "ख़ुदा किसी न किसी वसीले से पालनहार है। फ़िरंगी की सरकार ही सही !"

इसके बाद रामदीन ने पहले सिपाही को एक मौक़े का शेर सुनाया, और गौतम नीलाम्बर की तरफ़ देखा कि शायद वह उसकी दाद दे। गौतम नीलाम्बर ने बचपन में फ़ारसी अवश्य पढ़ी थी। मगर इन लोगों की टकसाली उर्दू उसके पल्ले न पड़ी। लेकिन यह उसने पहली बार देखा कि देश में अभी ऐसी जगहें भी हैं जहाँ नेटिव बादशाह अब तक शासन करता है। उसे यह सोच कर एक क्षण के लिए अजीब-सी प्रसन्नता अनुभव हुई। शिकरम आगे बढ़ी।

यह शहर के उपनगर थे। सड़क के किनारे कुछ अहीर भूभल में भौंरी लगा रहे थे। कहार जामुन के नीचे बैठे सत्तू घोलते थे। छकड़ों पर मनों आम लदे चले जाते थे। एक पीपल के नीचे लक्कड़ सुलग रहा था। एक बूढ़ा जोगी धूनी रमाए बैठा था। पीछे भवानी का मठ था। नीलम्बर ने अचेतन भाव से मूर्ति के सामने हाथ जोड़ दिये। अपनी काली माँ को परदेस में देख कर उसे बड़ी शक्ति-सी मिली।

रेज़ीडेंसी गत नवाब सआदत अली ख़ान मरहूम की एक इटैलियन तर्ज़ की कोठी थी जिसे फ़िरंगियों ने ख़रीद लिया था। वहाँ पहुँच कर उसे ज्ञात हुआ कि साहब, नवाब कमाल रज़ा बहादुर के यहाँ दावत में गए हुए हैं। उसके आने की सूचना अवध-सरकार के सूचना-विभाग को पहुँचा दी गई। दूसरा हरकारा गोलागंज में नवाब कमाल रज़ा बहादुर के मकान पर पहुँचा।

नवाब अबुल मंसूर कमालुद्दीन अली रज़ा बहादुर नुसरतगंज (जो वास्तव में चौबीस वर्षीय नवाब कम्मन का वह नाम था जो केवल शाही और रेज़ीडेंसी के समारोहों के अवसरों पर लिया जाता था।) खाने के बाद रेज़ीडेंट के साथ बैठे चौसर खेल रहे थे। ये शहर के एक बहुत बड़े घराने के सुपुत्र थे। मुर्शिदाबाद और लखनऊ के शाही ख़ानदान से उनके सम्बन्ध थे। काफ़ी बड़ा ताल्लुक़ा कल्याणपुर में था। सुंदर थे और आवाज़ भी बड़ी प्यारी थी। मसियाख़्वानी[1] पूरी रागदारी से करते थे, और मीर अनीस के साथ-साथ मजलिसें पढ़ते थे। शहर की तवायफ़ें उन पर आशिक़ थीं। शायर थे, और 'दीवान' सम्पादित करने में व्यस्त थे। शादी सोलह साल की उम्र में कर दी गई थी। अब तक अनगिनत ख़ानाज़ाद लौंडियों से अस्थायी विवाह कर चुके थे। इन दिनों बी चम्पाजान पर लट्टू हो रहे थे। मगर अब मालूम यह होता था कि कलकत्ते वाले सिल साहब की तरह, यह रेज़ीडेंट साहब भी उसके प्रतिद्वंदी बनने पर तुले बैठे थे। इन्हीं विचारों में उलझे हुए वह चौसर की चाल भी सोच रहे थे कि चोबदार

1. कर्बला के शहीदों के कष्टों और शहादत से संबंधित शोक गीतों का पाठ।

ने आकर सूचना दी कि एक बंगाली बाबू कलकत्ता गवर्नमेंट से काग़ज़ात लेकर आए हैं, बेली-गार्द में दर्शनार्थ प्रतीक्षा कर रहे हैं।

रंग में भंग पड़ गया। बरामदे में जलतरंग बज रही थी। अभी चम्पा आने वाली थी। रेज़ीडेंट को बड़ा क्रोध आया। जब से लॉर्ड एम्हर्स्ट कलकत्ते में गवर्नर जनरल होकर आया था, उसने अपने अनुशासन और चौकसी से नाक में दम कर रखा था। अच्छी-ख़ासी धाक बिठा दी थी। हर दूसरे-तीसरे कोई न कोई संदेश लिए कलकत्ते से यहाँ पहुँचता रहता था। दिल चम्पा के नाच में पड़ा था, मगर सरकार बर्तानिया की वफ़ादारी और कर्त्तव्यपरायणता के महान विचार ने चम्पा के आकर्षक रूप-रंग को धुँधला दिया। रेज़ीडेंट साहब तुरन्त बेली-गार्द लौट गये।

"यहाँ चम्पा बाई कहाँ रहती है ?" दूसरे रोज़ ग़ौतम नीलाम्बर ने रेज़ीडेंसी के एक मुंशी से पूछा। मुंशी हरिशंकर ओंठों ही ओंठों में मुस्कराया। यह बंगाली बाबू भी दिलवाले मालूम पड़ते हैं ! भई वाह ! हम जानते थे, ये बैठे लिखा-पढ़ी ही करते होंगे !

"क्या आप बी चम्पा साहिबा के यहाँ तशरीफ़ ले जाइएगा ?"

"हाँ !" नीलाम्बर ने घबरा कर उत्तर दिया, और उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया। मुंशी हरिशंकर को उसकी घबराहट पर बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि हरिशंकर के इस समाज में तवायफ़ का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था और अत्यन्त प्रतिष्ठित भी था, जिसके बिना सभ्य समाज संपूर्ण न था। मुंशी हरिशंकर ने सन्देश-वाहक के द्वारा चम्पा को सूचना भिजवायी कि स्रिल साहब के मुंशी मिलना चाहते हैं। चम्पा ने कहलवाया—बड़े नसीब की बात है। जरूर आवें !

शाम पड़े जब मोतिया और खस की सुगंध हवा में उमड़ी और ज़मीन पर केवड़े और गुलाब का छिड़काव किया गया, चौक रोशनियों से जगमगा उठा तब ग़ौतम नीलाम्बर दत्त का 'हवादार' चम्पाजान के हरे रंग के तिमंज़िले मकान के सामने जाकर रुका। जिसके रंगबिरंगे शीशोंवाले दरवाज़े थे, और फाटक पर वर्दीधारी चोबदार खड़े थे। गौतम झिझकता हुआ हवादार पर से उतारा और दुशाला कंधों से लपेटता जीने पर चढ़ा।

कमरे में बड़ा जमाव था। फ़र्श पर सफ़ेद चाँदनी खिंची थी। सफ़ेद छतगीरी में झाड़ लटक रहे थे। ताक़चों में कंवल और गिलास रोशन थे। चौक की ओर खुलने वाली सहनची पर गुलाब की बेल चढ़ी थी। दरवाज़ों के बराबर फूलों के बड़े-बड़े चीनी के गमले रखे थे, जिनसे सारा कमरा सुगंधित था। चारों ओर बड़े-बड़े क़द्दे-आदम आईने लगे थे। इन आईनों में ग़ौतम को अजीब-अजीब शक्लें नज़र आईं—ऐसे लोग जिनको उसने पहले कभी नहीं देखा था। ये लोग कौन थे ? कहाँ से आए थे, और किधर जाएँगे ? यहाँ इस सुगन्धित कमरे में कब तक उनका जमाव रहेगा ? ये लोग, जो शरबती के चुने हुए अँगरखे, गुलबदन और मशरू के कलियोंदार पायजामे, दुपल्ली और नुक्केदार टोपियाँ और पगड़ियाँ पहने, शाली रूमाल ओढ़े इत्मीनान से गावतकिए के सहारे बैठे थे। उनकी उँगलियों में फ़ीरोज़े (हरित मणि) और अक़ीक़ की अंगूठियाँ थीं। इनमें जवान, अधेड़ और बूढ़े सभी शामिल थे। गम्भीर, बड़ी साखवाले, सभ्य, निहायत ख़ामोशी और बाक़ायदगी से ये लोग बैठे, बड़े तकल्लुफ़ और शिष्टाचार से आहिस्ता-आहिस्ता रुक-रुक कर एक-दूसरे से बातचीत करते थे। एक कोने में राजा शिवकुमार 'वफ़ा' के किसी शेर पर बहस हो रही थी। दूसरी तरफ़ कुछ सज्जन संगीत के किसी नुक़्ते

पर एक-दूसरे के विचार जान रहे थे। नीलाम्बर दत्त क्षण भर के लिए शर्माया-सा दरवाज़े के पास खड़ा यह सब देखता रहा। उसने अपना सर्वश्रेष्ठ चोग़ा पहन रखा था और उसके सिर पर पगड़ी थी। मगर उसकी शक्ल-सूरत ही पुकार-पुकार कर कह रही थी कि परदेसी है। उपस्थित सज्जनों ने उसे देख कर शिष्टाचार के नाते ही किसी प्रकार का आश्चर्य प्रकट नहीं किया। मुख्य स्थान पर बैठे नवाब कम्मन ने उसे अपने पास बुला कर मसनद के पास जगह दी और उससे कुशल समाचार पूछते रहे।

"हमारा भी कलकत्ते जाने को बहुत जी चाहता है। मगर 'मोआज़-अल्लाह' (अल्लाह बचाए) बहुत जोख़िम का सफ़र है !" उन्होंने कहा। वह गंगा-जमुनी गुड़गुड़ी पीते जाते थे और उनके ख़ूबसूरत चेहरे पर फ़ानूस की रोशनी आँखमिचौली खेल रही थी। "बंगाले के ज़मींदारों का क्या कहना बड़ी शान-शौकत के रईस उस मुल्क में हैं ! जनाब का ताल्लुक़ा बंगाले में किस तरफ़ है ?" नवाब कम्मन ने पान की थाली पेश करते हुए पूछा।

"मेरा ताल्लुक़ा नहीं है। नौकरी करता हूँ।"

"नौकरी ?"

अब नीलाम्बर को फिर वही झुँझलाहट महसूस हुई जिसका उसे नाके पर सामना करना पड़ा था। "मैं कम्पनी की सरकार में नौकर हूँ।"

"ख़ूब !" नवाब कमाल रज़ा ने पहलू बदला।

"तब तो जनाब अंग्रेज़ी भी पढ़े होंगे !" किसी और ने यह सवाल किया।

"जी हाँ, थोड़-सी शुद-बुद है।"

"अच्छा, भला कितनी ? खत पढ़ लेते हैं ?"

नीलाम्वर मुस्कराया। "जी हाँ !" अब ज़रा उसने आराम की साँस ली। ये बड़े नेक स्वभाव के और भोले लोग थे। इनसे घबराने की क्या बात थी ! यद्यपि यह अजीब बात थी कि ये भी उसी दुनिया में रहते थे, जिसमें वह ज़िन्दा था।

नवाब कम्मन उसे नवाब सआदत अली ख़ाँ का वर्णन सुनाते रहे, जिनका देहान्त हुए कुछ ही वर्ष हुए थे; और जिन्होंने लखनऊ में कलकत्ते के तर्ज़ की इमारतें बनवा कर शहर को यूरोपियन रंग दे दिया था। गौतम नीलाम्बर उनको कलकत्ते की बातें बतलाता रहा।

इतनी देर में साज़ मिलाये गये। एक सत्रह-अठारह साल की लड़की नख-शिख से दुरुस्त, चम्पई रंगत, सियाह-भँवरे बाल और काली आँखें, नाक में हीरे की लौंग, ऊदे रंग का फ़र्शी पायजामा पहने, गोदनों की तरह ज़ेवरों से लदी, बड़े ठस्से से चलती हुई आकर बीच में बैठ गई और बड़े मनोहर अन्दाज़ से उसने झुक कर नीलाम्बर दत्त को तस्लीम की। फिर उसने शहाना में आसिफ़उद्दौला की ग़ज़ल शुरू की—

बुतों की गली में शब-ने-रोज़ 'आसिफ़'
तमाशा ख़ुदाई का हम देखते हैं।
तमाशा ख़ुदाई का हम देखते हैं।
तमाशा ख़ुदाई...

श्रोतागण मंत्रमुग्ध होकर उसकी आवाज़ सुनते रहे। गौतम छवि देखने में खोया रहा। कलकत्ते का अंग्रेज़ीदाँ बंगाली क्लर्क लखनऊ के जादू में गिरफ़्तार हो गया। दिन बीतते

गए। बारिशों की वजह से कलकत्ते तक के रास्ते बन्द थे। जन्माष्टमी का त्यौहार आया। भादों का महीना आया। अब अमावस की रातें, चम्पा अपनी सहनची में बैठ कर गौड़-मल्हार गाती। ब्रज के रासधारियों ने कृष्णलीला के स्वाँग तैयार किए। चम्पा राधा बनी। कभी चम्पा को गौतम ने हिज़ मैजेस्टी शाहे-जमन ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के दरबार में देखा था जहाँ वह आवाज़ के चमत्कार दिखाती थी। उसने चम्पा को जुमेरात के रोज़ दरग़ाह हज़रत अब्बास जाते देखा। मेलों और बाग़ों में देखा। गोमती में बजरे पर तैरते देखा। हर तरफ़ चम्पा थी।

वह शुनीला देवी का जो सन्देश उसके लिए लेकर आया था, ज़ाने कब का भूल चुका था।

उस रात जब वह चम्पा के यहाँ से लौटा, आधी रात का गजर बज चुका था। नीचे सड़कें सुनसान पड़ी थीं। गाना ख़त्म करके चम्पा ने उपस्थित सज्जनों से इजाज़त चाही थी और कोरनिश (फर्शी सलाम) बजा लाने के बाद अपने कमरे की ओर चली गई थी। चलते-चलते रुक कर उसने नीलाम्बर से कहा था—"आप ही बंगाले से आए हैं ना ? फिर भी आते रहिएगा। हम ग़रीबों को भूल न जाइएगा !" इसके बाद महफ़िल बर्ख़ास्त हुई। अब गलियों में साये फिर रहे थे। सारा शहर सोता था। केवल चौक के ऊपरी कमरों की रोशनियाँ जल रही थीं। मगर, अब वे भी एक-एक करके बुझती जा रही थीं। नवाब कम्मन और दूसरे प्रतिष्ठित सज्जन अपने-अपने हवादारों, तामजानों, पालकियों और बूचों पर सवार होकर अपनी-अपनी महलसराओं की ओर जा चुके थे। सोता हुआ शहर...

इस समय गौतम नीलाम्बर स्वभावतः जागता था। वह तो अपनी अक्सर रातें जाग कर गुज़ारता था। राजशाही में जहाँ उसका झोंपड़ा धान के खेतों में था, वह अपनी कोठरी में दिया जला कर रात-रात भर बंगाली पढ़ा करता था। बनारस में रात गए वह लैम्प के प्रकाश में संस्कृत का अध्ययन किया करता था तो विचित्र बातें उसके मन में आतीं।....परा भौतिक...ये जाने किस ज़माने की बातें थीं और कितनी अनावश्यक ! पर कालिदास और भर्तृहरि और राजशेखर पढ़ कर वह विचारों में खो जाता। क्या कभी ऐसा ज़माना भी था जब हम नेटिव लोग ऐसे योग्य होते थे !

कलकत्ते में वह रात-रात भर पढ़ता और फिर पुस्तकों पर सिर रख कर सो जाता। आज पहली बार रात को वर्ड्सवर्थ, शेली और कालिदास के बारे में सोचने के बजाय उसके मन पर चम्पा की कल्पना ने अपना आधिमत्य जमा लिया। उसे बड़ा क्रोध आया। कोफ़्त भी हुई। स्त्रियों की समस्या पर उसने बहुत कम सोचा था। राजशाही में जब सत्रह वर्ष में उसके माता-पिता उसका विवाह कर देना चाहते थे, वह बनारस पहुँच गया था। बनारस और कलकत्ते के विद्यार्थी जीवन में हज़ारों व्यस्तताएँ थीं। प्रेम करने के लिए अभी बहुत समय पड़ा था। अभी तो उसे बी. ए. करना था। बी. ए. की डिग्री प्राप्त करना उसके जीवन का लक्ष्य था। फिर सम्भव है वह इंग्लिस्तान भी जा सके।

लखनऊ की इस वेश्या से उससे मतलब ?...वह सिर झुकाए सड़क पर आगे बढ़ता गया। यहाँ तक कि उसके कहारों ने उसे आवाज़ दी—"फ़ीनस इधर है, ख़ुदावन्द !" वह मुड़ा और फ़ीनस पर सवार होकर अपने निवास-स्थान की तरफ़ चल दिया। दूसरे रोज़ भादों के झाले शुरू हो गए। दिन भर वह रेज़ीडेंसी के दफ़्तर में बैठा रहता। कभी काग़ज़ात लेकर

आग़ा मीर प्रधानमन्त्री के मकान पर जाता। कई बार वह शाही महल भी गया और हिज़ मैजेस्टी को अपनी आँखों से देखा। जो अंग्रेज़ बादशाहों के वेश में (जो गौतम नीलाम्बर ने विलियम चतुर्थ के चित्रों में देखा था) जड़ाऊ कुर्सी पर बैठे रहते, और रेज़ीडेंट झुक-झुक कर बड़े अदब से उनके कान में कुछ कहता। दिन इसी तरह संलग्नता और चहल-पहल में गुज़र जाता। रात क़यामत बन कर आती।

रात—जो चम्पा की राजधानी थी। इस रात में गौतम नीलाम्बर दत्त का कोई दख़ल न था। उसकी ज़िन्दगी और दुनिया में वेश्या की कल्पना ही घृणापूर्ण थी। फिर, वह सोचता—स्त्री जो देवी है—लक्ष्मी गौरी उमा; जो माँ, बहन, पत्नी और बेटी है, उसे वेश्या नहीं होना चाहिए। यह बड़ा अन्याय है। फिर उसे ध्यान आया—कहा जाता है, स्त्री तो केवल दुःख सहने के लिए ही बनाई गई है। इसी में स्त्री की महानता है जिसकी सारी उम्र मर्द की टहल करने में बीत जाती है, और फिर भी पुरुष उससे ख़ुश नहीं होता....पतिव्रता स्त्रियाँ, बाल विधवाएँ, अनाथ लड़कियाँ जिनको पैतृक सम्पत्ति नहीं मिलती, जो गाय की तरह मूक हैं; जो सती होकर जल मरती हैं कि उसी में उनकी शान है। मगर इस चम्पा को देखो ! जो ख़ुद जल कर मरने की बजाय दूसरों को जला-जला कर मारती है।

'न स्त्री स्वतंत्रम्।' मनु महाराज ने लिखा है, स्त्री स्वतंत्र नहीं है। बिलकुल सही है। रामायण के छठे काण्ड में तो यहाँ तक लिखा है कि संकट-काल में, विवाह के अवसर पर और आराधना के समय स्त्री बाहर आ जाए तो कोई आपत्ति जनक नहीं। और यह भी लिखा है कि नारी के वेद पढ़ने से बड़ी अस्त-व्यस्तता फैल सकती है।

सुनते हैं, किसी ज़माने में देश की नारियाँ बड़ी गुणवती होती थीं। पढ़ना-लिखना जानती थी; बेपर्दा घूमती थीं। और, जाने क्या-क्या ? अपने गाँव की मुसलमान औरतों से उसने भानुमती और कंचनमाला और कुसुम, मालती माला और रानी मैनामती की जो रूपकथाएँ बचपन में सुनी थीं, उन सबमें भी प्राचीन युग की स्त्रियों की बड़ाई के ही किस्से थे। पर यह सब गप थी। भला हमारी स्त्रियाँ जो ऐसी जाहिल और पिछड़ी हुई हैं, कभी भी अच्छी दशा में रही होंगी ! यह बुद्धि में नहीं आता। न स्त्री स्वतन्त्रम्।

राजकीय और जागीरदाराना समाज में स्त्री को स्वतन्त्रता केवल उसी समय हासिल होती है, जब वह बाज़ार में आकर बैठ जाए। तब उसको इज़्ज़त भी मिलती है, धन भी। फिर उसके लिए शेरो-शायरी करना भी ठीक है, और पढ़ना-लिखना भी, अन्यथा अलग से उसकी कोई स्थिति नहीं। चम्पाबाई इसी समाज में पली और बढ़ी थी और गौतम इस हैसियत को समझने में असमर्थ था क्योंकि वह स्वयं उस नए मध्यम वर्ग से सम्बन्ध रखता था, जिसने अभी-अभी जन्म लिया था, और जागीरदाराना ढाँचे से हट कर अपने मूल्य अलग से बना रहा था और मध्यम वर्ग बड़ी कट्टरता से नैतिकता में आस्था व विश्वास रखता है।

मुंशी हरिशंकर के साथ वह एक रोज़ नाव में नदी पार कर मेढ़ों की लड़ाई देखने रमना जा रहा था कि अचानक उसकी नज़र सामने पड़ी। एक सुनहरा बजरा आहिस्ता-आहिस्ता तैरता हुआ जा रहा था।

"दुहाई है कम्पनी बहादुर की !" उसके कानों में एक मधुर खनकती हुई आवाज़ आई। उसने पलट कर देखा। यह चम्पा की आवाज़ थी, जो दूसरे बजरे में बैठी थी। नीलाम्बर को

घबरा कर अपनी ओर देखते हुए वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

अगर वह लखनऊ वालों की सोहबत में ज़रा ज़्यादा रह लिया होता, तो उत्तर में कहता—"हुज़ूर ये फिक़रे हम पर ही तेज़ करती हैं !" मगर वह बिलकुल हड़बड़ा गया। सामने से आग़ा मीर का बजरा आ रहा था। कुछ और नक़्क़ाशीदार सजी हुई किश्तियों में अमीर, वज़ीर लोग, प्रतिष्ठित साहब (अंग्रेज़) और नगर की प्रसिद्ध वेश्याएँ रमना की ओर जा रही थीं। दरिया पर मछली और घोड़ों की आकृतियों के बजरों का मेला-सा लगा था। इतने में चम्पा की किश्ती निकट आ गई।

"हमारी किश्ती में आ जाइये !"—उसने कहा।

"ताकि आप इनको भी ले डूबिए !" हरिशंकर ने उत्तर दिया। इसके बाद दोनों में द्विअर्थक हँसी-मजाक शुरू हो गया। हँसते-बोलते ये सब घाट पर पहुँचे। बारहदरी की तरफ़ जाते हुए हिम्मत करके गौतम ने तय कर डाला कि जो दायित्व उसे शुनीला ने सौंपा था, उसे पूरा करके कम से कम अपने मन का बोझ हल्का कर ले। जिस समय चम्पा पाँयचे उठा कर सीढ़ियाँ चढ़ रही थी, गौतम ने उससे पूछा—"तुम स्रिल साहब को जानती हो ?"

वह चुप रही।

"चम्पाबाई जी, मैंने तुमसे जो सवाल किया है, उसका जवाब दो।"

"अच्छा, जानते हैं। फिर तुमसे क्या !"

"उनकी बीवी है, कलकत्ते में !" उसे आशा थी कि यह सुन कर चम्पा का रंग उड़ जाएगा। लज्जा और पश्चात्ताप से उसके माथे पर पसीना चमकने लगेगा। मगर वह इत्मीनान से बोली—"अच्छा तो फिर ! जितने लोग हमसे मिलते हैं, सबकी दो-दो, चार-चार बीवियाँ होती हैं।"

"उनकी एक लड़की भी है।" नीलाम्बर ने अपनी बात को और महत्त्व के साथ कहा।

"सबकी लड़कियाँ भी होती हैं और नाती-पोते भी ! तुम अपना मतलब बयान करो।"

"तुम स्रिल साहब से सम्बन्ध तोड़ लो। यानी, इस बार स्रिल साहब यहाँ आएँ तो उनसे न मिलना। वे रेज़ीडेंट बन कर यहाँ आने वाले हैं अगले महीने।"

चम्पा ठिठक गई, और एक क्षण के लिए उसे बड़ी दिलचस्पी से देखती रही। "आप अजीब भौंदू इन्सान हैं ! हजरत, यह कहिए कि अब आपकी हम पर तबीयत आई है !"

नीलाम्बर को चक्कर-सा आ गया। हद हो गई बेहूदगी की। उसका जी चाहा, वहीं से उल्टे पाँव वापस चला जाए। मगर अब मेढ़ों की लड़ाई शुरू होने वाली थी। एक भारी भीड़ एकत्र हो चुकी थी। बादशाह सलामत और दरबारी अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ रहे थे। बैण्ड बजना शुरू हो गया था। वह जाकर एक तरफ़ को चुपचाप खड़ा हो गया।

वापसी में उसे नवाब कम्मन और रेज़ीडेंट के पीछे-पीछे घाट तक आना पड़ा। बजरे में चम्पा का साथ हो गया। उस कश्ती में और कोई न था। वह उसे बड़ी मुहब्बत भरी नज़र से देखती रही—"सुनो जी !" उसने एकाएक कहा—"हम स्रिल साहब को हज़ार दफ़े छोड़ देंगे, मगर तुम हमको छोड़ कर मत जाओ ! तुम हमें बहुत ज़्यादा भा गए हो !"

वह ख़ामोश रहा।

चम्पा की रंगत सुर्ख हो गई—"तुमने सुना ? हम—चम्पा, जिस पर एक संसार जान

देता है, ख़ुद बेहया बन कर तुमसे यह कह रहे हैं–घमंडी आदमी !"

वह उसी प्रकार चुप रहा। डूबते सूरज की किरणें उसकी आँखों में तेज़ी से झिलमिलाने लगीं। उसने आँखें बन्द कर लीं। बजरा अब छतर मंज़िल के पास पहुँच चुका था।

"हमने आज तक किसी से यह नहीं कहा, घमंडी आदमी ! अपने आप पर ज़्यादा घमंड न करो ! यह वक़्त बहुत जल्दी गुज़र जाएगा।" उसकी आँखों में आँसू आ गए। किश्ती घाट तक पहुँच गई।

गौतम नीलाम्बर ने आँखें खोल लीं। चम्पा उसे त्यौरी पर बल डाले ग़ौर से देख रही थी। फिर वह हँस पड़ी। "भैंदू आदमी !" उसने प्यार से कहा–"बात करने की तुमको तमीज़ नहीं, और तुम पर हम आशिक़ हुए हैं ! यह कुदरत का तमाशा देखो।" नीलाम्बर चुपचाप बजरे पर से उतरा। चम्पा ने अपनी सुखपाल की ओर बढ़ते हुए कहा–"हमारे यहाँ आओगे न ? ख़ुदा के लिए ज़रूर आना, मियाँ नीलाम्बर साहब ! तुमको क्या कह कर पुकारूँ पंडित जी महाराज ! वर्ना–पाण्डे जी पछताएँगे, दाल चने की खाएँगे !" नीलाम्बर दूसरी तरफ़ देख रहा था। वह अपनी और हरिशंकर की पालकी ढूँढने में व्यस्त था।

"हमसे दोबारा मिलोगे ना ?"

"नहीं।" नीलाम्बर ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, और जल्दी से जाकर अपनी पालकी में बैठ गया।

इसके बाद वह तीन दिन तक नहीं सो सका। इस दौरान में उसके पास चम्पा के अनगिनत सन्देश आए। इस कदर अचानक ही इस स्त्री ने कैसा नाटक खेला था ! मगर, स्त्री के चरित्तर आज तक कौन समझ पाया है। यह लड़की, बड़े-बड़े धनवान् और सूरमा जिसके नाज़ उठाते थे, उसे मेरी कौन-सी अदा भा गई ? मुंशी हरिशंकर ने फ़ाइलों पर से सिर उठा कर उससे कहा–"भाई नीलाम्बर, हमारे काशी के कबीरदास कह गए हैं :

छुई-मुई सी कामिनी सब हैं बिस की बेल।
वैरी मारे दाँव से, ये मारें हँस-खेल।।

मगर तुम उसके यहाँ चले क्यों नहीं जाते ? इसमें क्या हर्ज है ?"

नीलाम्बर अवध के इस लाला भाई को यह न समझा पाया कि चम्पा के यहाँ जाने में क्या हर्ज है ?

"भगवान ने नारी हमारा जी बहलाने के लिए ही तो बनाई है।" हरिशंकर ने फिर कहा।

नीलाम्बर ने आश्चर्य से उसे देखा। "नारी बड़ी पवित्र चीज़ है। इसे तुम दिल को बहलाने की चीज़ समझते हो !" उसने कहा।

"अरे मियाँ !" हरिशंकर ने हुक़्क़े का कश लगा कर हँस के जवाब दिया–"हमने इस कूचे में बड़े-बड़े जटाधारी ब्राह्मण चक्कर लगाते देखे हैं। तुम किस खेत की मूली हो।"

नीलाम्बर उठ कर बाहर आ गया, और रेज़ीडेंसी के बाग़ में निरुद्देश्य टहलने लगा। मौलसिरी के नीचे कहारों की महफ़िल में कटोरा चल रहा था। गार्ड-हाउस के बरामदे में मँडियावन छावनी से आए हुए दो गोरे शराब के नशे में धुत्त एक-दूसरे से लड़ रहे थे। इतने में उसे टीले की ढलवान पर पीले रंग का डुपट्टा ओढ़े जमना मेहरी ऊपर चढ़ती दिखाई दी; जमना

मेहरी, जो चम्पा का सन्देश लाया करती थी। वह ख़ामोशी से फिर अन्दर चला गया।

कुँवार का महीना लग चुका था और इलाहाबाद में जहाज़ कलकत्ते जाने के लिए तैयार खड़े थे। कागज़ात का पुलिन्दा सँभाल कर वह वापस जाने के लिए तैयार हुआ।

वह नाके की तरफ़ जा रहा था कि सहसा उसने गाड़ीवान से पूछा—"यह सड़क किस तरफ़ जाती है ?"

"नख्खास—खुदावन्द !"

"उधर गाड़ी मोड़ लो !"

"बहुत खूब, खुदावन्द।"

शिकरम चम्पा के मकान के सामने जाकर ठहर गई। वह आहिस्ता-आहिस्ता क़दम रखता ऊपर गया। चम्पा सहनची में बैठी थी। नीलाम्बर की आवाज़ सुन कर उसका रंग सफ़ेद पड़ गया।

"तुम आ गए ?"

"नहीं, मैं जा रहा हूँ।"

"दो घड़ी रुक जाओ। शर्बत मँगवा दूँ ?" उसकी झिझक देख कर उसने कहा—"ब्राह्मण की दुकान से जलपान मँगवा दूँ ?"

"मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं।"

"मुझे मालूम है, तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं !"

"मैं—मैं सिर्फ़ तुमको खुदाहाफ़िज कहने आया था।"

"खुदाहाफ़िज।"

वह द्वार पर ठिठका रहा।

"हमारे शहर का दस्तूर है। दुआ देते वक़्त कहते हैं—'सिवा ग़मे-हुसैन के ख़ुदा कोई ग़म न दे !' यह दुआ मैं तुमको नहीं दे सकती। तुम हुसैन का ग़म भी नहीं जानते, तुम तो जानते ही नहीं कि ग़म कहते किसे हैं।"

"सुनो, चम्पा !" नीलाम्बर ने धीमे से कहा—"तुम्हारी ज़िन्दगी इतनी रंगीन है कि तुम बहुत ज़ल्द मुझको भूल जाओगी। किस चक्कर में पड़ गई ! मेरा और तुम्हारा क्या साथ है !"

"हाँ, मेरा और तुम्हारा क्या साथ है भला ! तुमने आज तक मुझे अपना हाथ भी नहीं छूने दिया। हमारे यहाँ के हिन्दू तो इतनी छुआछूत नहीं करते।"

"सुनो !" उसने चम्पा को फिर समझाने की कोशिश की। "तुमको मैं इसलिए पसन्द हूँ कि उन सब लोगों से अलग हूँ जो तुम्हारे वातावरण से सम्बन्ध रखते हैं। अनोखी चीज़ हर एक को भाती है।"

"क्या तुम्हारे देस में लड़कियाँ नहीं होतीं ?" चम्पा ने सादगी से सवाल किया।

नीलाम्बर को हँसी आ गई—"होतीं क्यों नहीं, मगर तुम्हारी जैसी नहीं। अच्छा अब मैं चलता हूँ।"

"अल्लाह, कितनी शान है ! मालूम होता है राजा झाऊलाल की कुर्सी पर आप ही बैठने जा रहे हैं !" चम्पा ने हँसने की कोशिश की।

अँधेरा तेज़ी से फैलने लगा। शहर में चारों ओर पंजशाखे[1] चढ़ाए गए। फ़ानूस जगमगाए, कंदीलें जलीं।....नीचे सड़क पर से एक बारात जा रही थी। जलूस के एक तख़्त पर नाच होता जा रहा था। सजाए हुए दहेज की कतार में लड़के वाले और शोहदे उछलते-कूदते जा रहे थे। दूसरे तख़्त पर स्वाँग और करतब हो रहे थे। रोशन-चौकी बज रही थी। मशालों की रोशनी बालाख़ाने की खिड़कियों पर आकर पड़ी। इस रोशनी में चम्पा का कामदानी का डुपट्टा झक-झक करने लगा। नीचे डोमनियाँ सुहाग गाती जा रही थीं। चम्पा खिड़की में आकर बारात देखने लगी। "जाने किस सुहागन की बारात है !" उसने कहा। नीलाम्बर ने पलट कर उसे देखा। वह कह रही थी—"इनकी माँग में सिंदूर होगा, पैरों में मेंहदी, नाक में सुहाग की नथ !" उसने धीरे-से अपनी माँग को छुआ, जिसमें अफ़शाँ चुनी थीं, लेकिन जो सिंदूर से खाली थी। अब यह फिर नाटक खेल रही है—गौतम नीलाम्बर ने परेशान होकर सोचा।

"आदमी इतना कठोर क्यों होता है !" चम्पा ने कहा।

"सदा से औरत और मर्द एक-दूसरे पर यह इल्जाम रखते आये हैं। यह तकरार भी फ़िज़ूल है।"

"तुम अभी जा रहे हो ?"

"हाँ।"

"सुबह होते-होते लखनऊ से बहुत दूर निकल चुके होगे !"

"हाँ।"

"यह दोहा सुना है—

सजन सकारे जाएँगे, नैन मरेंगे रोय
विधना ऐसी रैन कर भोर कबहु न होय।"

नीलाम्बर खिड़की में से नीचे देखने लगा। शहर का शहर किसी मेले के लिए एक ओर को चला जा रहा था। गलियों में सण्डे मूँछों पर ताव देते अकड़ते फिर रहे थे। क़लमाक़नियाँ, हब्शिनें, हुड़बंगियाँ, चूने वालियाँ, देहाती पतुरियाँ छन-छन करती टोलियाँ बनाए बाग़ की ओर जा रही थीं। बाँके अपनी तलवारें चमका रहे थे। मदकिए, चरसिये, भंगेड़िए चण्डूखानों में जमा थे। चौतरफ़ा कोलाहल मचा था। दुनिया किस क़दर रंगारंग जगह थी ! इसी दुनिया को भर्तृहरि ने रंगभूमि कहा था।

इस रंगभूमि पर एक निरर्थक नाटक यह भी खेला जा रहा था। अँधेरा छाने लगा। उसकी शिकरम नीचे प्रतीक्षा कर रही थी।

....भागो मियाँ, भागो यहाँ से, जल्दी ! कलकत्ते का रास्ता खोटा होता है। कलकत्ते चलो ! तुम्हारा ठिकाना वहीं है। मैं देखता हूँ कि तुम्हारे क़दम लड़खड़ा रहे हैं।....

फिर वह शीघ्रता से अपना काग़ज़ात का बुकचा सँभाल कर तेज़ी से ज़ीने से उतरा। उसने एक बार भी पलट कर न देखा और सीधे शिकरम में पहुँच कर दम लिया।

गाड़ी के पहियों ने सड़क के पक्के फ़र्श पर शोर मचाना शुरू कर दिया। बारात का हंगामा अभी शेष था।

भीड़ में से निकलती शिकरम आग़ा मीर की ड्यौढ़ी तक पहुँच गई। नवयुवक कोचवान

1. लोहे इत्यादि का बना पंजा जिस पर फलीते जलाकर जलूस में चलते हैं।

'हटियेगा मेहरबान ! जरा बच के, क़िब्ला !' की हाँक लगाता शहर के बाहर निकल आया। अब वह हज़रतगंज की परिचित सड़क पर से गुज़र रहे थे, जिसके दोनों ओर ऊँची गॉथिक शैली की अंग्रेज़ी इमारतों में कंवल जलते थे। सड़क पर सवारी की गाड़ियाँ और घोड़े और हाथी और पालकियाँ गुज़र रही थीं।

यह मार्ग अपेक्षाकृत सुनसान था। वह नाके पर पहुँच गए। जामुन के नीचे कुछ बैरागी बैठे थे। उन्होंने भेदभरी दृष्टि से नीलाम्बर को देखा। उनमें से एक तो वही था जिसे नीलाम्बर ने पहले रोज़ देखा था। अम्बे-भवानी के मठ के सामने लोबान सुलग रहा था। गाड़ी से उतर कर वह दो क़दम आगे बढ़ा और उसने मूर्ति को ध्यान से देखा। माता को वह काली के रूप में जानता था। अब वह धन्य हुआ कि माता ने उसे अपने जोगमाया के रूप के भी दर्शन करा दिए। "माँ, मैंने तुम्हारी यह लीला भी देख ली ! अब वापस जाता हूँ। अपनी शक्ति से इसी प्रकार मेरी रक्षा करती रहना !" उसने हाथ जोड़ कर सिर झुकाते हुए धीरे-से कहा।

एक जोगी, जिसने पहले रोज़ उससे बात की थी, उससे बोला—"बड़ी जल्दी वापस जाते हो !"

"मृगजल के किनारे देर करना बुद्धिमानी नहीं। यह तुम्हारा शहर मृगमरीचिका का शहर है।" नीलाम्बर ने लखनऊ की रोशनियों की ओर संकेत करके कहा। दूर मच्छी-भवन में चौथे पहर का गजर बजा।

बैरागी ने उसे ध्यान से देखा—"मरीचिका की हक़ीकत इतनी आसनी से समझने में नहीं आ जाती, बच्चा !"

"बाबा !" नीलाम्बर ने रुक कर कहा—"जोगमाया ने अपने दसों हाथों से मुझे अपनी ओर खींचना चाहा। लेकिन, देखो मैं सही-सलामत वापस जा रहा हूँ !"

"हममें से कोई सही-सलामत नहीं है। हम सब कुम्हार के खिलौने हैं और हर समय टूटते-फूटते रहते हैं। अपनी मजबूती पर गर्व न करना।" फिर बैरागी ने थोड़ी-सी मिट्टी उठा कर सूँघी।

"देखो, इसमें कितनी ख़ुशबू है। इस मिट्टी को ले जाओ। कटक में जोगमाया का मन्दिर है, उसमें चढ़ा देना।" नीलाम्बर ने हाथ बढ़ा कर मिट्टी लेने में कुछ आगा-पीछा किया। वह गोरखनाथी जोगी फिर अपने गोरखधन्धे दिखाने लगा था।

"ले लो ! यह लखनऊ की मिट्टी है। इसे अपने साथ ले जाओ, क्योंकि इस शहर का जादू यह है कि छुट जाए तो बुरी तरह याद आता है।"

जोगी बड़ी साफ़ मँजी हुई भाषा बोल रहा था।

"बाबा, तुम बैरागी क्यों बन गए ?" नीलाम्बर ने पूछा।

"तुम—तुम मुझे जानते हो ?" जोगी ने ज़रा घबरा कर पूछा।

"नहीं, मैं तो किसी को भी नहीं जानता।"

"हाँ, जानना बहुत मुश्किल है; और—और जानने वाले को कौन जानेगा ?" जोगी ने कहा और आँखें बन्द कर लीं।

नीलाम्बर ने उपनिषद् में यह वाक्य पढ़ा था। बैरागी बहुत पढ़ा-लिखा मालूम होता था। नीलाम्बर के मन में जिज्ञासा बढ़ी।

"बाबा, मैं पूछ सकता हूँ कि तुम कौन हो ?"

"क्यों ? क्या तुम्हारा भी इसी मार्ग पर चलने का विचार है ?"

"अरे...नहीं तो !"

"क्यों जी ! फिरंगी की जासूसी करते हो ?"

नीलाम्बर के दिल पर यह बात मोंगरी की तरह जाकर पड़ी। जोगी के लहजे में अत्यंत घृणा थी।

"मैं.....मैं फ़िरंगी की जासूसी नहीं करता !" उसने दुःखी स्वर में कहा।

"सच कहते हो ?" जोगी ने उसकी आँखों में आँखें डाल कर पूछा।

"हाँ। बिलकुल सच !"

"अच्छा, तो सुनो ! मैं राजा बेनीबहादुर का बेटा हूँ। राजा बेनीबहादुर का नाम सुना है ? वह मिर्ज़ा जलालुद्दीन हैदर नवाब शुजाउद्दौला के नायब थे—नायबुस्सल्तनत जो जनाब-ए-आली (नवाब अवध) और आली जाह (नवाब बंगाल) के साथ जी तोड़ कर तुम्हारे साहिबान-आलीशान की फौज से लड़े थे। गंगा के किनारे एक तरफ़ मेरा बहादुर बाप और बनारस के राजा बलवन्तसिंह और गुसाईं हिम्मत बहादुर और रोहीले थे, दूसरी तरफ़ फ़िरंगियों का लश्कर। गुसाईं हिम्मत बहादुर के नाँगे जान हथेली पर रख कर लड़ रहे थे। जनरल समरू की तोप दनादन चलती थी। मगर फ़िरंगियों ने मेरे बाप की फ़ौज पर अचानक हमला कर दिया। गोलियों की बाढ़ और तिलंगों के हमले में हमारे लश्कर के पाँव उखड़ गए। मेरा बाप घोड़े पर सवार एक-एक को पुकारता फिरा—'अरे कमबख्तो ! किधर भाग रहे हो !' जनाब-ए-आली ने ललकार-ललकार कर परेशान होकर कहा—'तुम मुग़ल कहलाते हो और मैदान छोड़ कर भागते हो !' मगर, हमारी फौज़ दुर्गावती नदी पार करके भाग खड़ी हुई। हज़ारों नदी में डूब गए। हिन्दुस्तान पर क़यामत गुज़र गई।" वह ज़रा दम लेने के लिए रुका। जोश के मारे उसका चेहरा सुर्ख़ हो रहा था। फिर वह सुर्ख़ी उदासी में बदल गई। उसने आहिस्ता से कहा—"तुम्हारी फ़िरंगी सरकार ने उसी समय देख लिया कि इस क़ौम में से एकता जाती रही। आलीजाह और जनाब-ए-आली ही में आपस में फूट पड़ गई। फ़िरंगियों ने देखा कि यह सब लोग एक-दूसरे से चुगली खाते हैं। एक-दूसरे के ख़िलाफ परवाने लिख कर एक तरफ़ बादशाह आली-गुहर को दिल्ली भेजते हैं, दूसरी तरफ़ कलकत्ते से शर्तें तै करने के लिए तैयार हैं। यह कैसा अधम मुल्क़ है ! इन सबका एक-दूसरे पर से विश्वास उठ गया है। मेरा बाप जनाब-ए-आली का सबसे ज़्यादा नमकहलाल और वफ़ादार नौकर था। दुश्मनों के बहकाए में आकर जनाब-ए-आली ने उसी को नमकहराम क़रार दिया और उसको सज़ा देने की बात सोचने लगे।"

"अरे !" नीलाम्बर के मुँह से निकला।

"जनाब-ए-आली ने मुँडियावन छावनी में मेरे बाप के ख़ेमे में कुछ देर आराम फ़रमाया और ख़ाने के बाद मेरे बाबा से कहा—'राजा, तुम भी इस वक़्त शिकार को चलो !' उन्होंने अर्ज़ की—'ग़ुलाम ने हुज़ूर की कृपा से बहुत से शिकार देखे हैं।' फ़रमाया—'आज का शिकार बहुत अजीबो-ग़रीब है। ऐसा कभी न देखा होगा ! जो दम है, ग़नीमत है।' वह बाबा को अपनी ख़वास में बिठा कर अपने लश्कर की तरफ़ चले। बाबा समझ गए कि यह मेरी गिरफ़्तारी

का जाल है। मगर, क्या कर सकते थे। हाकिम का हुक्म मानना ज़रूरी था। जनाब-ए-आली के हुक्म से बाबा की दोनों आँखों में नील की सलाइयाँ फेर दी गईं। उनका इलाक़ा सरकार ने ज़ब्त कर लिया। तेरह सौ घोड़ों, अठारह हाथियों और पूरे तोपख़ाने के अलावा एक लम्बी-चौड़ी ज़मींदारी के मालिक मेरे बाबा थे—मैं सिर्फ़ इस मृगछाला का मालिक हूँ।"

जोगी ख़ामोश हो गया।

नीलाम्बर स्तब्ध बैठा क़िस्सा सुनता रहा। जोगी ने आग में एक लक्कड़ और डाल दिया—और उकड़ूँ बैठ कर कहने लगा—"मृगमरीचिका की वास्तविकता तो मैंने जानी है। तुम इसकी वास्तविकता क्या जानो ! तुम उसी चक्कर में शामिल हो, और रहोगे। मुझे सल्तनतों के बनने और बिगड़ने, कम्पनी की ख़ुशी और नाख़ुशी, बादशाह के प्रकोप की आग, किसी चीज़ की परवाह नहीं है। मेरे बाबा को अंधा कर दिया गया था। मुझे अंधा कौन कर सकता है, सिवाय मेरे खुद के। जाओ, अब तुमको देर होती है। जोगमाया के मन्दिर में जाओ, तो देखना कि उसके चारों तरफ़ बरामदे हैं, और अनगिनत दरवाज़े। और एक दरवाज़े के बाद दूसरा दरवाज़ा खुलता है। उसके बाद तीसरा। इसी तरह की भूलभुलैंया और बरामदे चारों तरफ़ बने हैं, जिनसे इन्सान निकल नहीं सकता। तुम समझते हो कि तुम इस भूलभुलैंया से निकल आए हो ! मगर तुम गलती पर हो, जाओ !"

नीलाम्बर उठा। झुक कर उसने जोगी के पैरों के पास से मिट्टी उठाई और भारी-भारी क़दम रखता शिकरम में आ बैठा। गाड़ीवान ने बागें सीतापुर जाने वाली सड़क की तरफ़ मोड़ लीं।

एकाएक पुल के पास जाकर शिकरम रुकी। गाड़ीवान नीचे उतरा। सामने एक अंग्रेज़ फ़ौजी घोड़े से उतर कर एक राहगीर को कोड़े लगा रहा था। और अंग्रेज़ी में गालियाँ देता जाता था।

यह मँडियावन छावनी थी। चारों ओर अंग्रेज़ों की कोठियाँ थीं; और फ़ौज का मेस, और गिरजा और अस्पताल।

गोरा राहगीर को अच्छी तरह पीटने के बाद घोड़े पर बैठ कर अँधेरे में ग़ायब हो गया।

"साले ! हमारा ही खाते हैं, हम ही पर गुर्राते हैं।" गंगादीन नाम के उस गाड़ीवान ने क्रोध से कहा। "शाह-ए-जमन के बखत में यह अन्धेर !" वह बड़बड़ाता रहा। गौतम नीलाम्बर फिर अपने विचारों में खो गया। रात गए वह राजा टिकैतराय की बनवाई हुई एक धर्मशाला में उतरा। गंगादीन अब तक बड़बड़ा रहा था। नीलाम्बर के साथ शिकरम से उतरे रेज़ीडेंसी के सिपाही और हरकारों को देख कर धर्मशाला में कानाफूसी होने लगी—"बंगाली बाबू हैं। कलकत्ते जा रहे है। अंग्रेज़ी जानते हैं। इनसे पूछो, हमारी मालगुजारी में कम्पनी बहादुर कब कमी करेगी।...सुना है नए कानून लन्दन में बने हैं, यहाँ भी लागू होंगे। इन बेचारे को क्या मालूम ! क्यों नहीं बंगाल और अवध में एक्कै कानून लागू होत है ?—ए बाबू साहब, मालगुजारी में कमी करवाइये। हमरी तो कमरें टूट गईं।" आँगन के पक्के फ़र्श पर नीलाम्बर के चारों ओर भीड़ लग गई। ये सब आसपास के देहातों के किसान थे, जो अपने-अपने मुक़दमे और फ़रियादें लेकर राजधानी जा रहे थे। एक बूढ़ा फोंस ग्रामीण ज़मींदार लाठी टेकता नीलाम्बर के पास आकर बैठ गया।

"कौन जात हो ?" उसने दिये की रोशनी में नीलाम्बर को देखते हुए पूछा।

"ब्राह्मण।"

बूढ़े ने नीलाम्बर के पैर छुए, "ठाकर मेरे गाँव चले चलो तो तुम्हारी सेवा करूँ। मेरा मकान हियाँ से कोस भर है।"

"मुझे प्रातःकाल ही सफ़र पर रवाना होना है। बाबा, सेवा तो मुझे तुम्हारी करनी चाहिए। मेरे योग्य कोई सेवा बताओ" नीलाम्बर ने कहा। उसका दिल भर आया। ये लोग, सबके सब, कितने मासूम, कितने भोले थे ! उसे दुःख हुआ कि वह अवधपुरी छोड़ कर जा रहा है।

"ठाकुर !" बूढ़े ने चारों ओर देख कर धीरे से कहा—"अपनी अंग्रेज़ी सरकार से कहो, हम पर ज्यादा जुलुम न तोड़े !"

वह चुप हो गया।

"नखलऊ से आते हो ना ?"

"हाँ।"

"हुआँ हमरे बादशाह के दर्शन किये ?"

"हाँ।"

"हमरे बादशाह को कम्पनी बहादुर ने रुपये के लिए तंग कर रखा है।"

"पता नहीं।"

"ठाकुर तुमको मालूम है !" अब बूढ़े ने ज़्यादा उत्तेजित होकर बोलना आरम्भ किया—"कम्पनी बहादुर ने वचन हमारे बादशाहों को दिए और एक-एक करके सबको तोड़ा। तुमको मालूम है, बक्सर की हार के बाद जनाब-ए-आली से.....।"

लीजिए, यह फिर बक्सर और जनाब-ए-आली का किस्सा शुरू हो गया—नीलाम्बर चौंका। बूढ़े ने नीलाम्बर को क्षण भर के लिए देखा। "तुमको इन किस्सों से दिलचस्पी नहीं होगी। लेकिन ये घाव हमरे दिलों पर लगे हैं और ये घाव ताजे हैं। हमरा देस कम्पनी बहादुर ने बर्बाद करके रख दिया है।.....तुमको मालूम है, बक्सर की हार के बाद जनाब-ए-आली से अंग्रेज़ों ने लिक्खा-पढ़ी की थी कि वह पैंतीस हज़ार से ज़्यादा फ़ौज नहीं रखेंगे ! अब मँडियावन में हालत देखो। आसिफुद्दौला बैकुण्ठवासी ने कलकत्ते लिखा—'अंग्रेज़ी फ़ौज सारे मुल्क की आमदनी खा गई। घर के आदमियों को खाने को नहीं बचता। खेत उजड़ गए। फिरंगी अफ़सर खुद को मुल्क का मालिक समझते हैं। कब तक मेरे गले पर यह छुरी रहेगी ?' मुला उसका नतीजा का निकला ? हम गरीब से गरीब होते चले गए। ठाकुर, हम बहुत दुखी लोग हैं ! जब मनरो ने हमला किया—हमारे सिपाही 'या हुसैन, या हुसैन!' कह कर रोते जाते थे और लड़ते जाते थे। इस प्रकार हमने फिरंगियों से जंग की। मगर, इसका कुछ फ़ायदा नहीं। मुकाबले का कोई फायदा नहीं। पर अब हमारे पास कम्पनी के ख़ज़ाने में देने के लिए और कुछ नहीं रह गया।" वह ख़ामोश हो गया। नीलाम्बर चुपचाप बैठा चिराग की लौ देखता रहा। दूसरी टुकड़ी में कुछेक किसान बैठे दिवंगत नवाब सआदत अली ख़ाँ के सुप्रबन्ध को याद कर रहे थे, जिन्होंने अपने शासन-काल में देश की बिगड़ी बना दी थी। "मगर शाह-ए-जमन बिचारे अब क्या कर सकते हैं। उनके बस में कुछ नहीं—" वह कह रहे थे।

चिराग की लौ हवा में झिलमिलाया की। नीलाम्बर दीवार से पीठ लगा कर बैठ गया।

उसने देखा, इस देश का बच्चा-बच्चा, बूढ़ा-जवान, हिन्दू-मुसलमान अपने बादशाह पर जान छिड़कता है। जोगी जिसने उसे अपने बाप बेनी बहादुर का किस्सा सुनाया उसे भी यहाँ के बादशाह या इस शासन से घृणा नहीं थी। वह तो शायद शुजाउद्दौला से भी खफ़ा न था, जिसने उसके बाप को अंधा करवाया। उसका केवल यह दृष्टिकोण था कि दुनिया मायाजाल है और उसमें यही सब कुछ हुआ करता है। दूसरे यह कि मुल्क ख़ुदा का था और हुक्म बादशाह का। और बादशाह की आज्ञा मानना सबका धर्म है। ये सब लोग अपने बादशाहों पर मरते थे। हर ज़बान पर आसिफ़ुद्दौला और सआदत अली ख़ाँ के क़िस्से थे—आसिफ कि जिसने अपनी उदारता से कहारों को पालकियों पर सवार करा दिया; और सआदत जिसने अपने सुप्रबन्ध से अवध के ख़ाली ख़ज़ानों को फिर से भर दिया। और, ये सब लोग, अवध के ये सारे निवासी जिनसे नीलाम्बर मिला, फ़िरंगियों से सख़्त नफ़रत करते थे।

32

कलकत्ते वापस पहुँच कर वह फिर अपनी जानी-बूझी, परिचित दुनिया में खो गया। दफ़्तर, पुस्तकें, अंग्रेज़ी और बंगाली अख़बार, लैक्चर।...वह शुनीला से मिलने धरमतल्ला गया। मगर, वहाँ पहुँच कर उसे मालूम हुआ कि वह मर चुकी है। वर्षा के दिनों में वह पूजा के लिए कालीघाट जा रही थी। साँप ने काटा और मर गई।...सिरल साहब उपनगरों तथा गाँवों में कहीं दौरे पर गए हुए थे।

नीलाम्बर ने अपने बरामदे में लौट कर शीतलपाटी निकाली और लैम्प जला कर फिर अंग्रेज़ी डिक्शनरी पर झुक गया।

मगर अब उसका मन नौकरी में नहीं लग रहा था। मानकतल्ला में उसके घर से ज़रा दूरी पर एक सुन्दर गार्डन-हाउस था। उसके बाग़ में लीची के पेड़ थे और यहाँ बहुत से नवयुवक इकट्ठा होते थे। इस स्थान पर राममोहन बाबू रहते थे।

एक दिन वह अपने एक मित्र के साथ राममोहन बाबू का भाषण सुनने गया तो धर्म के सम्बन्ध में उसके मन में जो उलझनें थीं, वे और बढ़ गईं। अब वह कालीघाट न जाता। घर में बैठा-बैठा सोचा करता--क्या सैरामपुर वाले ईसाई ठीक कहते हैं ? क्या राममोहन बाबू सही रास्ते पर हैं ? कौन कह सकता है, कौन सही है कौन ग़लत ! इन प्रश्नों से झुँझला कर उसने निश्चय कर लिया कि जब तक वह स्वयं बहुत अच्छी तरह अध्ययन न करे, ख़ुद किसी निर्णय पर नहीं पहुँचेगा। कम्पनी बहादुर की नौकरी से त्यागपत्र देकर वह हिन्दू कॉलेज में भरती हो गया। इसी कॉलेज में शहर के एक रईस प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर का लड़का देवेन्द्रनाथ भी पढ़ता था। वे दोनों क्लास के बाद इकट्ठा बैठ कर पश्चिमी दर्शन पर विचार-विमर्श करते, आत्मा और परमात्मा की खोज लगाते, देवेन्द्रनाथ में सूफ़ियों वाली सारी विशेषताएँ थीं। वे नीलाम्बर को बड़ी रोचक मालूम होतीं। शाम को वे राममोहन राय के घर जाकर उसकी गोष्ठी में सम्मिलित होते, और विद्वानों और दार्शनिकों की बातें सुनते; या अद्वैतात्मक भजन गाते या नीलाम्बर देवेन्द्रनाथ से हाफ़िज़ की फ़ारसी ग़ज़लें सुनता।

जिस साल नीलाम्बर दत्त ने बी. ए. किया उसी साल से वह राममोहन राय के ब्रह्म-समाज

का बड़ा जोशीला और सरगर्म कार्यकर्त्ता बन गया था। तभी एक रोज़ उसने अख़बार में पढ़ा कि सर सिरिल हार्वर्ड ऐश्ले का पक्षाघात होने से देहान्त हो गया। देहान्त के समय उनकी मेम साहिबा, लेडी ऐश्ले जिनसे उन्होंने केवल तीन वर्ष पूर्व विवाह किया था, अपने दो बरस के पुत्र के साथ दार्जिलिंग गई हुई थीं।

सिरिल को बिहार के एक उदास और अजनबी डाक बँगले में मौत आई। वह दौरा करके लौटा और बूट उतार कर आरामकुर्सी पर लेटा था। उसी समय हरकारे ने उसे उसकी बदमिज़ाज, घमण्डी और ख़ासी कुरूप पत्नी का पत्र लाकर दिया जिसमें उसने दार्जिलिंग की सोसायटी के ताज़ा समाचार लिखे थे और यह लिखा था कि "नन्हाँ सिरिल बहुत शैतान हो गया है। आज उसने एक कुली को अपनी छोटी-सी लकड़ी से खूब पीटा" पत्र पढ़ने के बाद सिरिल ने अख़बारों के पुलिन्दे की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि एकाएक उसे महसूस हुआ कि वह मरने वाला है। उसने अपने चोबदार को आवाज़ देनी चाही, मगर उसकी ज़बान लड़खड़ा गई। दूसरे ही क्षण वह समाप्त हो गया।

कलकत्ते के अख़बारों में उसके सम्बन्ध में लेख लिखे गये, उसकी जीवनी प्रकाशित हुई और बरतानिया और हिन्दुस्तान की उसने जो सेवाएँ की थीं उनका विस्तृत विवरण इन लेखों में दिया गया। अपनी आयु के चालीस साल उसने बंगाल में गुजारे थे। बंगाल एशियाटिक सोसायटी ने उसकी स्मृति में एक विशेष स्मृति सभा की। कॉलेजों में उस पर भाषण हुए। उसके पन्द्रह दिन बाद लोग उसे भूल गए।

लेडी ऐश्ले—जो मद्रास के चीफ़ जस्टिस की बहन थी और शराब बहुत पीती थी अपने पुत्र सिरिल को लेकर, सारे साज़-सामान के साथ इंग्लैंड चली गई। सर सिरिल मरते वक़्त लाखों-करोड़ों का आदमी था। उसका रुपया 'सिटी' में भी लगा था और कलकत्ते में भी।

बड़े होकर उसके बेटे सिरिल एडविन डेरिक ऐश्ले ने अपने बाप के कमाए हुए रुपए से जबर्दस्त कारोबार शुरू किया, जिसकी शाखाएँ दक्षिण अमरीका तक फैल गई थीं।....बरतानिया का साम्राज्य अब सारी दुनिया पर छा चुका था। बर्मा में टीन की ख़ानें थीं, मलाया में रबर के जंगल और चीन में अफ़ीम का व्यापार।

हिन्दुस्तान 1857 के बाद अब विधिपूर्वक विक्टोरिया के एम्पाएर में शामिल हो चुका था। सारा पूर्व अब स्वर्गीय सर सिरिल हार्वर्ड के बेटे लॉर्ड सिरिल डेरिक एडविन ऐश्ले का था।

33

एक दिन प्रोफ़ेसर गौतम नीलाम्बर दत्त बन्द घोड़ागाड़ी से उतर कर अपने मकान की बरसाती में आए तो माली ने उनको सूचना दी कि मटियाबुर्ज़ वाले नवाब साहब आपसे मिलने आए थे। बड़ी देर तक आपकी राह देखते रहे। अभी-अभी वापस गए हैं।...नीलाम्बर दत्त उल्टे पाँव बाहर गए और सड़क पर आकर जल्दी से चारों ओर देखने लगे। सामने एक बूढ़ा सफ़ेद जामदानी का अँगरखा पहने, जरीब टेकता, सड़क के किनारे-किनारे चला जा रहा था ! नीलाम्बर दत्त ने लपक कर उसे जा लिया।

"अख़्खा, मियाँ नीलाम्बर साहब !" बूढ़े ने ख़ुशी से खिल कर कहा—"हमारा ख़याल

था, आपसे मुलाक़ात न हो पाएगी।"

"क्यों नवाब साहब, ख़ैरियत तो है? आपसे यों भी बरसों गुज़र जाते हैं, मिलना नहीं हो पाता। अब आइये, चल कर दो घड़ी अन्दर बैठिए। मेरी नतिनी स्कूल के बोर्डिंग हाउस से लौट कर आई है। आपने शायद अभी तक उसे नहीं देखा !" नवाब साहब का हाथ पकड़ कर वह उनको मकान के अन्दर ले आए।

"अच्छा मियाँ।" नवाब साहब ने ड्राइंग-रूम में आकर सोफ़े पर बैठते हुए कहा—"तुमको देख लिया। तुम्हारे बच्चों को देख लूँ !" फिर जाने ज़िन्दा लौटना नसीब हो, न हो !"

"क्यों ! कहाँ का इरादा है? लखनऊ का?"

"कर्बला-ए-मुअल्ला जा रहा हूँ। ख़ुदा वहीं यह मिट्टी अज़ीज़ करे ! यहाँ अब क्या रखा है !" उनकी आवाज़ भर्रा गई और उन्होंने काँपते हाथों से मशहदी रूमाल निकाल कर आँसू पोंछे।

नीलाम्बर दत्त उन्हें मुहब्बत से देखते रहे। नौकर चाय लेकर आया। ड्राइंग-रूम समकालीन विक्टोरियन तर्ज़ में सजा हुआ था। दीवारों पर अनगिनत चित्र थे। प्राकृतिक दृश्य और फ़ोटोग्राफ़। मोतियों के पर्दे दरवाज़ों पर पड़े थे। फ़र्न और पाम के पौधे पीतल के गमलों में रखे थे। पास वाले कमरे में पियानो बज रहा था।

पियानो की आवाज़ नीलाम्बर दत्त को सहसा बड़ी उदास मालूम हुई। उन्होंने आवाज़ दी—"नीलिमा बेटी, बाजा बन्द करो, और यहाँ आओ। देखो, तुम्हारे मटियाबुर्ज़ वाले चाचा आए हैं।"

एक पन्द्रह साल की लड़की अन्दर आई। उसने झुक कर नवाब साहब के पाँव छुए।

"यह मेरी नतिनी है, नवाब साहब। इसको आपने अब तक नहीं देखा था। स्कूल ही में रहती है !"

वे धुँधली आँखों से उसे देखते रहे। वह पन्द्रह साल की लड़की शादी करके गोद में बच्चा खिलाने के बजाय स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ रही थी और आरगन बाजा बजाती थी।

नवाब कम्मन ने सोफ़े पर बैठे-बैठे खिड़की से बाहर नज़र डाली—कलकत्ते की रोशनियाँ चारों तरफ़ जगमगा उठी थीं। शाम का अँधेरा छा रहा था। नीलाम्बर दत्त उनसे इधर-उधर की बातें करते रहे। दोनों के पास समान रुचि का ऐसा कोई विषय न था जिस पर वे बातें करते, सिवाय अतीत युग के। मगर, उस अतीत की याद नीलाम्बर दत्त कहाँ तक घसीट सकते थे। उनके सामने भविष्य था। नवाब कम्मन के पास केवल अतीत था। शिष्टाचार का कर्त्तव्य निभाने के लिए दोनों बड़े तपाक से एक-दूसरे से मिलते थे। जब लखनऊ उजड़ा और कलकत्ते में महाराजा बर्दवान की कोठी आबाद हुई, मटियाबुर्ज़ में दूसरा लखनऊ बसाया गया। उस समय नवाब कम्मन ने जो सुलतान-ए-आलम के साथ यहाँ आ गए थे नीलाम्बर दत्त को मुलाक़ात के लिए बुलवाया। वह इस समय कलकत्ते का प्रसिद्ध पत्रकार बन चुका था। उसने अब तक कई पुस्तकें लिख डाली थीं और वह ब्रह्म-समाज के प्लेटफार्म का बड़ा उग्र प्रवक्ता था। नीलाम्बर उनसे नियमित रूप से वर्ष में दो-एक बार अवश्य मिल लेता था। जब राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर के यहाँ संगीत के नवीनीकरण की बुनियाद डाली गई और देश भर के संगीतकार कलकत्ते में एकत्र होना आरम्भ हुए, उस समय भी नीलाम्बर नवाब कम्मन को नए संगीत की गोष्ठियों

में निमंत्रित करता रहा।

अब कमरों में लैम्प रोशन कर दिए गए थे। बाहर गलियों में बारिश का पानी जमा हो गया था, और वहाँ मेंढक टर्राते थे। नीलाम्बर दत्त के मकान की ऊपर की मंज़िल में उनके बेटे मनोरंजन दत्त के विश्वविद्यालय के साथी और आर्ट-स्कूल के लड़के एक अंग्रेज़ी नाटक के रिहर्सल में लगे हुए थे। कलकत्ते के बंगाली थियेटरों में इन दिनों कुछ बहुत अच्छे-अच्छे नाटक स्टेज किए गए थे। मनोरंजन के मित्र माइकेल मधुसूदन दत्त ने एक नया नाटक लिखा था। इस समय वे सब उसकी प्रैक्टिस में जुटे थे और क़हक़हे लगा रहे थे। कैम्पबेल मेडिकल स्कूल का एक लड़का खिड़की में बैठा हारमोनियम बजा रहा था।

मनोरंजन तरुलता की नई अंग्रेज़ी कविता पढ़ रहा था। हारमोनियम के सुर, लड़कों के क़हक़हों और संवादों की आवाज़ें नीचे ड्राइंग-रूम तक पहुँच रही थीं।

नवाब साहब लाठी पर उँगलियाँ फेरते रहे। यह एक दूसरा ज़माना था—दूसरा युग ! यह सन् 1871 ई. था। दुनिया बूढ़ी हो चुकी थी—नवाब कमाल रजा की दुनिया। नीलाम्बर दत्त भी उन्हीं के समवयस्क थे। मगर, उनकी दुनिया अब जवान हो रही थी। सहसा नवाब कम्मन को अनुभव हुआ कि इस नई दुनिया में उनकी कोई जगह नहीं। राजधानी के इस आधुनिक ड्राइंग-रूम में बैठे वह ख़ुद को बड़े उपहासास्पद दिखाई दिए।

"नवाब साहब ! मनोरंजन लखनऊ के कैनिंग कॉलेज के क़ानून का लेक्चरर होकर जा रहा है"—गौतम नीलाम्बर दत्त की आवाज़ उनके कानों में आई। यह आवाज़ भी किसी दूसरे भूगोल से आ रही थी। वे चौंक पड़े। "अच्छा ! अच्छा ! माशाअल्लाह से !" उन्होंने हड़बड़ा कर कहा, "जायें, सिधारें ! उनको इमामजामिन की जामिनी (शरण) में दिया !" फिर वे लाठी के सहारे उठे और नीलाम्बर दत्त को ख़ुदाहाफिज़ कह कर मटियाबुर्ज़ लौट गए।

रात गहरी हो चुकी थी। नीलाम्बर दत्त नवाब कम्मन के जाने के बाद थोड़ी देर ड्राइंग-रूम में टहलते रहे। उन्होंने घूमने वाली अल्मारियों में से एक पुस्तक निकाली और उसके पन्ने पलटने लगे। मगर, उसमें भी उनका मन न लगा। उन्होंने चारों तरफ़ देखा। अल्मारियों में हर तरफ़ पुस्तकें ही पुस्तकें थीं। अख़बारों की जिल्द-बँधी फाइलें, क़ानून की पत्रिकाएँ, कमेटियों की रिपोर्टें और प्रस्ताव। हर तरफ़ समस्याएँ थीं; और समस्याओं का हल उन्होंने ढूँढ़ लिया था।

समस्याओं का हल उन्होंने पा लिया था—नीलाम्बर दत्त का दम घुटने-सा लगा। हवा बन्द थी और रात गर्म थी। बाहर सड़कों पर लैम्प मद्धिम-मद्धिम टिमटिमा रहे थे। सहसा नगरों की रानी कलकत्ता नगरी उनको अत्यन्त भयानक जान पड़ी। वे घबरा कर बाहर बरामदे में निकल आए। ऐसी ही रातों में दुःखी आत्माओं की उड़ान की सनसनाहट सुनाई देती है। आँगन में केले और पाम के पत्ते निश्चल खड़े थे। पक्के हौज़ के किनारे एक कुत्ता अपनी दुम टाँगों में समेटे सो रहा था। अगर वे आवागमन में विश्वास करते होते तो कदाचित् सोचते कि यह कुत्ता किसी की दुःखी आत्मा है। वे बरामदे से उतर कर गेंदे के किनारे-किनारे टहलते रहे। ऊपर मनोरंजन के कमरे में ख़ामोशी छा चुकी थी। कैम्पबेल मेडिकल स्कूल का विद्यार्थी अभी तक खिड़की में बैठा था। वह भी हारमोनियम के पर्दों पर सिर रख कर सो चुका था। मनोरंजन के कमरे से जो ज़ीना बाग़ में उतरता था, उसकी आख़िरी सीढ़ी पर बैठा कोई तरुलता की नई अंग्रेज़ी कविता धीरे-धीरे पढ़ रहा था। चाँद अब दत्त हाउस के बिलकुल ऊपर आ चुका

था। बरामदे में लड़कों का एक दल बैठा तरुलता की कविता पर सिर धुन रहा था—

मुहब्बत और प्रकाश और संगीत को तुम्हारी खोज है।
प्रकाश लाल आसमानों पर मौजूद है;
संगीत लार्क गा रहा है;
प्रेम मेरे दिल में है।
एक दूसरे से जुदा
हम प्रकृति के उद्देश्य को खो रहे हैं।
अपने भाग्य को धोखा देने की हम क्यों कोशिश करते हैं !
मेरा प्रेम तुम्हारी आत्मा के लिए रचा गया है;
तुम्हारा सौंदर्य मेरी आँखों के लिए।
अब जाग उठो।
मैं प्रतीक्षा में हूँ और रोती हूँ।
तुम कहाँ हो?
इस धरती पर एक बे-आसरा रुग्ण, कुरूप और तुच्छ
बच्चे के समान मैं पैदा हुई।
मैं जन्म से ही अभागी लड़की हूँ !
हर एक ने मुझे ठुकरा दिया है।
फिर मेरे होंठों से एक विलाप निकला :
हे भगवान !
और भगवान ने उत्तर में कहा :
"गाए जा—बेचारी लड़की—गाए जा !"

नीलाम्बर दत्त मूर्तिवत इस कविता को सुनते रहे। उन्होंने आवाज़ पहचान ली। यह उनके बेटे की आवाज़ थी। मनोरंजन ! वह धीमे-धीमे रो रहा था। वह, जिसने कलकत्ता विश्वविद्यालय की दर्शन और तर्कशास्त्र की परीक्षाओं में सारे रिकार्ड तोड़े थे, जो अगले सप्ताह कैनिंग कॉलेज का प्रोफ़ेसर होकर परदेस जाने वाला था।

नीलाम्बर दत्त मुस्कराये। "धन्य हैं वे लोग"—उन्होंने अपने-आप से कहा—"जो प्रेम कर सके, चाहे उसमें उन्हें असफलता ही मिली हो !" फिर उन्होंने चाँद को देखा जो तैरता-तैरता दत्त-हाउस के ठीक सामने आ चुका था। उसकी किरणें हौज़ के पानी पर अपना प्रतिबिम्ब डाल रही थीं। चाँद ने उनको बहुत-सी कहानियाँ सुनाईं। वह पूर्णिमा की रात थी।

उस रात चेतपुर रोड से वापस जाने के बाद नवाब अबुल मंसूर कमालुद्दीन अली रज़ा बहादुर जब गार्डन-रीच पहुँचे—जहाँ मटियाबुर्ज़ में उनका मकान था—तो अपने पलँग पर लेटते हुए उनको ध्यान आया—कैसी अजीब बात है कि इंसान सिर्फ़ एक मर्तबा दुनिया में आता है, और फिर खत्म हो जाता है। जीवन केवल एक ही बार जीवित रहने के लिए मिलता है। इंसान मर जाता है; फिर कभी इस दुनिया को देख नहीं पाता—जैसे शाह-ए-ज़मन गाजीउद्दीन हैदर मरे, और नसीरुद्दीन हैदर और मोहम्मद अली शाह—और अमजद अली शाह। इन सबको मरते नवाब कम्मन ने अपनी आँखों से देखा। ये लोग जो अवधपुरी के राजा थे। ये सब जब

मौत आई तो पट् से ख़त्म हो गए। और, बेचारे सुलतान-ए-आलम वाजिदअली शाह, जो इस समय पड़ोस की 'राधा मंज़िल' में "इन्द्रसभा" का आयोजन करवा के ख़ुद को विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे कि अभी क़ैसरबाग़ में ही मौजूद हैं—एक दिन वे भी ख़त्म हो जाएँगे। बादशाही तख़्त हो या गरीब परदेसी, अपार आनन्द हो या असह्य दुःख-यातना, मौत आकर सारा क़िस्सा ही चुका देती है। जाने मरने के बाद क्या अंत होता होगा ! क़ब्र का अन्दर ही अन्दर खुलना और वे दो फरिश्ते मुन्किर नकीर और...और...यह सोचते-सोचते नवाब कम्मन को बेहद डर मालूम हुआ। उन्होंने तकिए पर से सिर उठा कर अपने घरवालों को आवाज़ देना चाही। उन्होंने अली और हुसैन और अब्बास अलमदार को पुकारा, मगर कंठ से आवाज़ न निकली। गर्मी की प्रचंडता से दम घुटा जा रहा था। उन्होंने पलँग से उठना चाहा, मगर पीछे को गिर गए।

क्योंकि कर्बला-ए-मुअल्ला की यात्रा करने के बजाय नवाब अबुल मंसूर कमालुद्दीन अली रज़ा बहादुर जीवन की अन्तिम यात्रा पर रवाना हो चुके थे।

34

नवाब सफ़दरजंग से लेकर सुलतान-ए-आलम तक नौ शासकों ने अवधपुरी पर राज किया। सुलतान-ए-आलम के ज़माने में सलीमन साहब आया। सफ़दरजंग ने अपनी शक्ति के बल पर इस सल्तनत की बुनियाद डाली थी। जो दिल्ली के पतन के बाद हिन्दोस्तान की सबसे शानदार सल्तनत थी : जिसके बादशाह फ्रांस के लुई चौदहवें से अधिक प्रतापी और प्रतिष्ठित थे। सलीमन साहब, चूँकि उन सबसे शक्तिशाली था, उसने पल की पल में इतनी बड़ी फूँक मारी कि यह सारी दीपमाला आँख झपकते ही बुझ गई। हैवलॉक जीता, सुलतान-ए-आलम हारा। लखनऊ की इन्द्रपुरी उजड़ गई। नौटंकी ख़त्म हो गई। क़ैसरबाग़ की चाँदी वाली बारादरी में सब्जपरी का नाच, ऐशबाग़ के मेले, मोहर्रम और रामलीला के हंगामे—दिलकुशा महल अब सुनसान पड़ा है। बेलीगार्द को तोपों ने उड़ा दिया। हज़रतगंज में अंग्रेज़ी दुकानें हैं, अमीनाबाद में कॉलेज और स्कूल। अख़बार छप रहे हैं। टेलीग्राफ़ के तार झनझना रहे हैं। अयोध्या के रामचन्द्र की गद्दी लुट चुकी, सुबह हुई और आँख खुली तो मालूम हुआ कि यह सब उमर-ऐयार का इंद्रजाल था। अन्तिम 'ऐक्ट' शुरू होने से पहले ही राजा इन्द्र का, उसके अखाड़े सहित, देवलोक से देश निकाला हो गया।

कलकत्ते के प्रोफ़ेसर नीलाम्बर दत्त अपने बेटे से मिलने के लिए लखनऊ आए हुए थे। रेलगाड़ी जब स्टेशन पहुँची और वह फ़िटन पर बैठ कर बाहर आए तो उन्होंने देखा कि नक़्शा ही बदला हुआ था। वे आज से अड़तालीस साल पहले सन् 1823 ई. में लखनऊ आए थे। वह शाही ज़माने का लखनऊ था। यह अंग्रेज़ी समय का लखनऊ है। यहाँ घूमीबेग कोतवाल के बजाय अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर का राज है, जो सआदत अली ख़ाँ की 'नूरबख़्श' कोठी में विराजता है। बेचारे सआदत अली ख़ाँ की 'हयातबख़्श' कोठी अब बैंक्स-हाउस कहलाती है। इसमें कमिश्नर रहता है। कैसरबाग़ में कैनिंग कॉलेज है, जिसमें कलकत्ते का मनोरंजन दत्त क़ानून पर लेक्चर देता है ! शहर की गलियाँ और मुहल्ले वही हैं, लेकिन ज़माना बदल गया।

नख़्ख़ास, चौक, मआलीखाँ की सराय, पाटानाला, चौपाटियाँ, चौलक्खी, गोलागंज, बारूदख़ाना, सआदतगंज, डालीगंज, हुसैनगंज, सारी जगहें वही हैं—मकान, इंसान—मगर समय दूसरा है। अँधेरे मुहल्लों और टूटे-फूटे मकानों में ज़माने की कायापलट के मारे हुए लोग सिर झुकाए बैठे हैं। दौलतमन्द लुट गए, ग़रीब अमीर हो गए। विद्रोहियों को फाँसियाँ और स्वामीभक्तों को ताल्लुके मिले। अख़्तर पिया (नवाब वाजिदअली शाह)—जब से परदेस सिधारे, तब से उनके लिए रोते-रोते अब तो आँसू भी सूख गए। यह अवधपुरी है। यहाँ से राम को भी इसी तरह वनवास मिला था।

फ़िटन स्टेशन से शहर की ओर चली। कोचवान ने सिर पर अँगोछा लपेट कर नीलाम्बर दत्त को देखा—"बाबू साहब, पीछे साईस बैठा है, उसे ऊपर बुला लूँ? बूढ़ा है, गिर कर मर जाएगा।"

"हाँ, बुला लो।" उन्होंने उत्तर दिया। पीछे से एक बूढ़ा कूद कर कोचबक्स पर आ गया। फ़िटन फिर रवाना हुई।

"बाबू साहब, कलकत्ते से तशरीफ लावत हैं?"

"हाँ।"

"हम भी सोचते हैं, कलकत्ता चले जाएँ। यहाँ अब जी नहीं लगता।" नौजवान ने कहा।

"को है?" बूढ़े साईस ने नौजवान के कान के पास मुँह ले जाकर बड़े रहस्यमय ढंग से पूछा।

कलकत्ते के बाबू !" नौजवान ने चिल्ला कर कहा। उसका नाम शम्भू था।

कलकत्ता...!" बूढ़े ने जिसका नाम गंगादीन था और जो ऊँचा सुनता था, अविश्वास से दोहराया और फिर मुड़कर धुँधली आँखों से बंगाली बूढ़े को देखा।

"हाँ, हाँ, समझ में नहीं आवा?" शम्भू ने कहा।

"बाबू साहब !" गंगादीन ने मुड़ कर बड़ी दीनता से नीलाम्बर दत्त से कहा—"हमका भी कलकत्ता पठाए देओ !"

नीलाम्बर दत्त की समझ में उसकी बात नहीं आई। नौजवान ने हँस कर बूढ़े से कहा—"बाबू साहब तुम्हारी बोली नहीं समझते। उर्दू में आपन मतलब बयान करो।"

बूढ़े ने बहुत सँभल कर कहा—"खुदावन्द, हमको कलकत्ते पठा दीजिये ! वहाँ हमरे बादशाह रहत हन्।"

नौजवान हँस पड़ा—"हुजूर, बाबा की बात पर ध्यान मत दीजिये। जो मुसाफ़िर रेल से उतरता है, उससे यही बात कहते हैं—'मियाँ मुसाफ़िर, तुम कलकत्ते से आए हो, हमको भी वहीं पहुँचा दो !' पूछो, हमरे बादशाह खुद जोखम में हैं। ऊपर से ये भी पहुँच जायें ! जैसे बस इन्हीं की कसर है।"

नीलाम्बर दत्त मौन रहे। फ़िटन अब अमीनाबाद की ओर बढ़ रही थी।

"सरकार पहले भी लखनऊ तशरीफ लाए हैं?" नौजवान ने पूछा।

"हाँ" नीलाम्बर दत्त ने चौंक कर कहा।

"कब?"

"बहुत ज़माना गुज़रा, जब तुम पैदा नहीं हुए थे। ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के वक्त में।"

"बाबा !" कोचवान ने फिर चिल्ला कर बूढ़े साईस के कान में कहा—"बाबू साहब तुम्हारे ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के समय में आए रहे हियाँ।"

फिर कोचवान ने नीलाम्बर दत्त को सम्बोधित किया—"बाबा कहा करते हैं, कि ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के चोबदार थे। इससे पहले शिकरम हाँकते थे। मगर, कहते हैं कि शाही महल में पहुँच कर उन्होंने बड़े अच्छे दिन देखे। सारे बादशाहों की ड्यौढ़ी पर नौकरी की है। सुलतान-ए-आलम इनको बहुत मानते थे।"

"खुदावन्द !" गंगादीन ने कहा—"सुलतान-ए-आलम को आपने देखा है? कैसे हैं? खैरियत से हैं?" फिर वह बच्चों की तरह रोने लगा।

नीलाम्बर दत्त बहुत प्रभावित हुए। उनकी समझ में न आया कि लोग इतने भावुक भी हो सकते हैं ! एक लम्बे समय तक केवल बौद्धिकता के पुजारी रहे थे। अब उन्होंने हृदय की महानता को सराहा। फ़िटन अब अमीनाबाद के चौराहे पर पहुँच चुकी थी।

अचानक कोचवान ने पुकारा—"अरे, सामने से हटती नहीं, बुढ़िया ! काहे अपनी जान की लागू होत हो !" उसने बागें खींच कर फ़िटन रोक ली। एक बुढ़िया दुलाई में लिपटी हुई सामने आ गई और उसने हाथ फैला कर मशीनी ढंग से अपनी याचना दोहरानी शुरू कर दी—"जनाब-ए-अमीर का सदक़ा ! खुदा तुम्हें सिवाय ग़म-ए-हुसैन के और कोई ग़म न दे !"

नीलाम्बर दत्त फ़िटन के तकिये से पीठ लगाए बैठे सोच रहे थे—लखनऊ क्या बूढ़ों का शहर है? यहाँ के जवान कहाँ चले गए? उनको मालूम न था कि यहाँ के जवान मलिका हज़रत-महल के लिए लड़ते हुए मारे गए और जो बाकी बचे, वे समय से पहले ही बूढ़े हो गए। मगर, ज़िन्दगी का हंगामा उसी तरह जारी था। अमीनाबाद रोशनियों से जगमगा रहा था। फूल बेचने वाले आवाज़ें लगा रहे थे। लोगों की भीड़ चारों तरफ मौजूद थी। शाम-ए-अवध उसी तरह अपनी महफ़िल सजाए हुए थी। फ़क़ीरनी उसी तरह आँखें बन्द किए खड़ी दोहराती रही—"खुदा सिवाय ग़म-ए-हुसैन के और कोई ग़म न दे ! एक टका, ख़ाली एक टका !"

गौतम नीलाम्बर दत्त चौंक पड़े।

यह आवाज़ जानी-पहचानी थी ! यह आवाज़ सैकड़ों-हज़ारों बरस का सफ़र तय करके उनके कानों तक पहुँच रही थी। इस आवाज़ ने बड़ी खूबसूरत बातें की थीं। राग सुनाए थे। क़हक़हे लगाए थे।

उन्होंने हड़बड़ा कर ऐनक ठीक की और फ़िटन से बाहर झाँका। मगर, सड़क के किनारे तो वही फ़क़ीरनी खड़ी थी, जिसने ऊदे रंग की फटी-पुरानी दुलाई ओढ़ रखी थी।

"इसे कुछ मत दीजिएगा, खुदावन्द !" शम्भू ने कोचबक्स पर से झुक कर आहिस्ता से सभ्य ढंग से कहा—"इसे कोकीन की लत है, जो मिलता है उसकी कोकीन खा जाती है, नेकबखत !"

नीलाम्बर दत्त ने अपने काँपते हाथों से एक रुपया जेब से निकाल कर भिखारिन की फैली हुई हथेली पर रख दिया।

भिखारिन ने अपनी चुंधी-चुंधी आँखों से उस बूढ़े बंगाली को देखा जिसकी लम्बी सफ़ेद दाढ़ी थी और जो सफ़ेद बुर्राक धोती पहने, अगरई शाल में लिपटा टाँग पर टाँग रखे फ़िटन में बैठा था।

बुढ़िया को गौतम नीलाम्बर ने पहचाना। बुढ़िया चम्पा थी।

रुपया मुट्ठी में मज़बूती से बन्द करने के बाद एक क्षण के लिए उसे बड़ी हैरत हुई। यह कैसा दयालु रईस है, जो टका माँगो तो चाँदी का रुपया देता है ! सिक्के को दृढ़ता से पकड़ कर भिखारिन ने फिर रटे हुए ढंग से दुहराना आरम्भ कर दिया—"सरकार, ग़रीब परवर आपको पोतों-नवासों की खुशियाँ देखनी नसीब हों ! मैं ग़दर की मारी हूँ, बन्दानवाज़ !—शाही में मेरे दरवाज़े पर हाथी झूमता था, अब कोई दो रोटी का सहारा देने वाला नहीं ! अल्लाह आपको...!" शम्भू ने घोड़े को चाबुक लगाया। फ़िटन आगे बढ़ गई। शम्भू हँस कर कहने लगा—

"बुढ़िया की बातें ! दरवाज़े पर हाथी झूमता था ! शेखी मारने का यार लोगों को अच्छा बहाना मिल गया है ! जिससे सुनो यही कहता है—मैं गदर से पहले यों तुर्रम-जंग था, फ़लाना था, ढिमका था ! बाबा ही को देख लीजिए बाबू साहब ! गर्दी से पहले बादशाह के ख़ास चोबदार थे, अब साईसी करते हैं !" वह व्यंग से हँसा और उसी प्रकार अपने विचारों को व्यक्त करता हुआ मोतीमहल के ब्रिज की दिशा में चलता रहा।

चम्पा ने रुपये को शाम के अँधेरे में कई बार उलट-पलट कर देखा और आहिस्ता-आहिस्ता चलती एक अँधेरी गली में मुड़ गई, जहाँ एक तहख़ाने की दुकान में कोकीन बिकती थी और जहाँ भँगेड़ी और मदकिये घुटनों में सिर दिए बैठे रहते थे।

अँधेरे ने सारे शहर को अपने आँचल में समेट लिया। जिस समय फ़िटन अमीनाबाद के चौराहे से आगे बढ़ी, नीलाम्बर दत्त ने एक बार पीछे मुड़ कर नज़र डाली। चम्पा सड़क के किनारे दुलाई में लिपटी खड़ी उनका दिया हुआ रुपया लैम्प के प्रकाश में उलट-पलट कर देख रही थी, जैसे उसको अपनी आँखों पर विश्वास न आता हो। उसके बाल चाँदी की तरह चमक रहे थे, और उसके चेहरे पर अनगिनत झुर्रियाँ थीं, उसकी दुलाई में जगह-जगह पैबन्द लगे थे। कहीं-कहीं पर गोखरू की गोट और बनत टँकी रह गई थी, और उसके तार निकले हुए थे।

उन्होंने फ़िटन के कुशनों से पीठ लगा कर आँखें बन्द कर लीं—

क्योंकि गौतम नीलाम्बर ने वैशाली की आम्रपाली को देख लिया था।

गोमती के उस पार शाह-ए-नजफ़ के सामने ही सिंघाड़े वाली कोठी थी, जिसको बाबू मनोरंजन दत्त ने अपने रहने के लिए किराए पर ले रखा था। फ़िटन मोती-महल के पुल पर से गुज़र कर नदी के किनारे वाली कच्ची सड़क पर मुड़ गई और कुछ देर बाद सिंघाड़े वाली कोठी के फाटक में दाख़िल हुई।

उस रात जब मनोरंजन अपने कमरे में जाकर सो गया और मकान-मालिक के कमरों की बत्तियाँ बुझा दी गईं, तब नीलाम्बर दत्त बरामदे में आकर जिसकी सीढ़ियाँ नदी में उतरती थीं, बहुत देर तक नदी के बहते हुए पानी को देखते रहे। रात अब भीग चली थी, लेकिन कमरे में जाकर सोने के बजाय वे बाहर निकल आए और गोमती के किनारे-किनारे सड़क पर चलने लगे। चारों ओर पूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था। उनके पीछे-पीछे भूतों का एक पूरा जुलूस लग गया था। आगे-आगे पिछल-परियाँ नाचती जाती थीं, सामने कुछ दूर पुल के नीचे

नावें बँधी थीं और चण्डी का मन्दिर दिखाई दे रहा था। पेड़ों पर लाल आँखों वाले बन्दर सो रहे थे। यह बहुत जाने-पहचाने भूत थे जो उनके पीछे दाँत निकाले लँगड़ाते, उछलते-कूदते चले आ रहे थे।

अवध के सारे बादशाह...सआदत अली ख़ाँ और जान बैली, नसीरुद्दीन हैदर और उनका यूरोपियन हज्जाम और कुद्सिया महल और बूढ़े मोहम्मद अली शाह, स्रिल हार्वर्ड ऐश्ले और शुनीला, लॉर्ड मैकाले और विशप हैवर—इन अंग्रेज़ भूतों को भी वह खूब जानता था, जब वे ज़िन्दा थे; और मरने के बाद वे अब जाने किस नरक में गए होंगे। मगर वह तो उसी प्रकार सिर पर सवार थे ! दुनिया का सारा ऊँच-नीच, उनका उत्थान और पतन, गौतम ने देख लिया था। अब उसे कौन-सा तमाशा देखना बाकी था ! नदी बह रही थी। किनारे पर मकान बने थे। इन मकानों के नाम थे। इन मकानों में इंसान सो रहे थे। इन इंसानों के भी नाम थे। मकान पत्थर के बने थे। नदी के किनारे पर पत्थर बिखरे हुए थे। समय प्रवहमान था—समय पत्थर में जमा हुआ था। मरघट में लपटें उठ रही थीं। आज की रात जाने कौन-कौन मरा होगा !

नीलाम्बर दत्त आगे बढ़ते गए।

सामने मरघट था। मरघट में काली नाच रही थी—काली, जो सारी सृष्टि को उसके अन्त पर अपने अन्दर समेट लेती है। केवल वही उससे भयभीत हुए बिना उसकी आराधना कर सकता है जो अपनी समस्त इच्छाओं को जीत कर उसकी सत्ता में लीन हो सके।

मरघट—जहाँ सारी इच्छाएँ जल कर भस्म हो जाती हैं। और, काली जो बुद्धि और वाक्‌चेतना से परे सारे प्राणी-जगत को नकारता का रूप दे देती है—वह जो शून्य को पूर्ण बनाती है—पूर्ण जो प्रकाश और शान्ति है।

काली—जिसका लिबास आसमानी है—वह विस्तार है, क्योंकि असीम है। महान शक्ति है। माया से ऊपर है, क्योंकि स्वयं माया बन कर संसार की सृष्टि करती है।

मरघट में काली शिव के श्वेत शरीर पर खड़ी है।

शिव, जो श्वेत है क्योंकि स्वरूप है, प्रकाश प्रदान करता है, और माया तथा आत्मपूजा के राक्षसों को नष्ट करता है। वह स्थिर है, क्योंकि परिवर्तन से परे है। काली उसके परिवर्तन की द्योतक है।

शिव, जो परिवर्तित नहीं होता, परन्तु हर परिवर्तन में मौजूद है। लपटों के धुएँ में काली नृत्य कर रही है। वह काली है—तारा धूमवती। वह शांतरस का नृत्य नाच रही है और सृष्टि जय के नारे लगा रही है।

नीलाम्बर दत जिसने काली को सती, गौरी और योगमाया के रूप में देखा था। उन्होंने मरघट पर दृष्टि डाली और उसे पहचाना—

क्योंकि मरघट जीवन की यथार्थता थी।

वह कुछ देर पुल पर खड़े मद्धिम लपटों को देखते रहे। फिर, आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुए सिंघाड़े वाली कोठी की ओर लौट आए।

सुबह के चार बजे तो घर की बीवी बिस्तर से उठीं और उन्होंने जाकर महरी को जगाया। "चाय का पानी रख देओ। छुटके का स्कूल आज छः बजे से लगिहै।" महरी आँखें मलती

हुई उठी और बालों का जूड़ा लपेटती पानी के नल की ओर बढ़ी। अब वह स्नानघर में जगमगाती पीतल की बाल्टियाँ पानी से भर कर रखेगी। बड़े साहब और भैयन साहब के शेव का पानी प्यालियों में लाएगी। फिर चाय का इंतज़ाम करेगी।

नीचे बाग में मौलसिरी के पेड़ों पर चिड़ियों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था। दूर कच्ची सड़क पर से एक बैलगाड़ी चर्रखचूँ करती गुज़र रही थी। दूध वाला अल्मोनियम की बाल्टियाँ साइकिल के हैंडिल पर लटकाए लपका हुआ बस्ती की ओर चला जा रहा था। घर की बीवी पूजा के लिए ठाकुरद्वारे में चली गई। ठाकुरद्वारा दूसरी मंज़िल पर पूरब के रुख की बुर्जी में था। कमरे में उमस थी, और बरसात की गर्मी। दरवाज़ा खुला तो अन्दर के अँधेरे में गोपीनाथ ठाकुर सदा की भाँति अपनी ख़ाली-ख़ाली आँखों से सामने की ओर शून्य में देखते नज़र आए। उनके केसरी वस्त्रों पर झूठा गोटा लगा था और उनके मुकुट में मोर का एक ही पंख था, जो ज़रा टेढ़ा हो रहा था। वे उसी प्रकार एक टाँग पर दूसरी टाँग रखे, बाँसुरी उठाए, पीतल के छोटे से मन्दिर में ठुँसे खड़े थे। निश्चल, स्थिर, राग-विराग-मुक्त उनके चेहरे पर बड़ी भयानक-सी मुस्कराहट थी। कमरे में मच्छर भिनभिना रहे थे। बुर्ज़ी के सामने बरामदे के सिरे पर दूसरी बुर्ज़ी थी। बरामदे में दोनों लड़कियाँ सो रही थीं। छत में काले रंग की कड़ियाँ थीं। फ़र्श जगह-जगह से टूटा हुआ था।

पुराने ढंग की मसहरियाँ और तख़्त चारों तरफ़ बिछे थे। तुलसी का विचित्र गमला ऐन बीच में रखा था। सामने की दीवार पर किसी मोटे सरमुँड़े महन्त की तस्वीर टँगी थी। बरामदे के सिरे पर दूसरी बुर्ज़ी जो छतर-मंज़िल के सामने थी, उसमें लड़कियों का भाई सोता था। वह मज़े से हल्की दुलाई ताने खिड़की के पास सन्ना रहा था। निकट ही टेबुल-फ़ैन घूँ-घूँ कर रहा था। बुर्ज़ी के आठों दरवाज़े चौपट खुले हुए थे और बड़ी ठंडी हवा अन्दर आ रही थी। कमरा काफ़ी लम्बा-चौड़ा था। अल्मारियों में ढेरों पुस्तकें रखी थीं—फ़ारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी की पुस्तकें। पलँग के पास वाली मेज़ पर 'दीवान-ए-ग़ालिब' रखा था और कबीर की ग्रंथावली और इलियट का 'वेस्ट लैंड'; एक ओर उर्दू के नए प्रगतिशील मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों के ढेर लगे थे। 'पायनियर' और 'लीडर' के पर्चे और कलकत्ते से निकलने वाली अंग्रेज़ी की साहित्यिक पत्रिकाएँ, और 'विश्वभारती' मैगज़ीन। दीवारों पर नन्दलाल बोस, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, ख़स्तीगर, एम. एल. सेन और रवि वर्मा के वाटर कलर्ज़ आदि के प्रिंट थे। कमरे में सब कुछ अस्त-व्यस्त था। टेनिस के रैकेट पर टाइयाँ पड़ी थीं। गेंद के डब्बों में मोज़े ठुँसे थे। मसहरी के सिरहाने दीवार पर जवाहरलाल नेहरू का चित्र टँगा था। चित्र में वह नैनी जेल से बाहर निकल रहे थे। एक चित्र कमला नेहरू का था। आठों दरवाज़ों के बीच जो स्थान ख़ाली था उस पर यूनिवर्सिटी के ग्रुप फोटो फ्रेमों में लगे थे। सन् 1937-38 और 39 की अखिल भारतीय गोष्ठियों में जो ट्रॉफ़ियाँ जीती गई थीं उनके ग्रुप फोटो, यूनियन के पदाधिकारियों की तस्वीरें, हिस्ट्री सोसाइटी और अंग्रेज़ी-विभाग के ग्रुप फोटो जिनमें लड़के अपने प्रोफ़ेसरों के साथ बैठे थे—प्रो. सिद्धान्त, डॉक्टर राव, मिस्टर सी. जी. राय। एक कोन में आतिशदान के ऊपर एक ग्रुप फोटो था जो अब बिलकुल पीला पड़ चुका था। उस पर सन् 1897 लिखा था। यह ग्रुप भी कैनिंग कॉलेज का था। यह चित्र उस लड़के के पिता के विद्यार्थी-जीवन का था। उसमें उस लड़के का बाप गोल काली टोपी पहने और बन्द गले का कोट पहने बड़ी चुस्ती से फ़ैकल्टी

ऑफ़ आर्ट्स के चेयरमैन स्वर्गीय डॉ. मनोरंजन दत्त के पीछे खड़ा था। डॉ. मनोरंजन दत्त की टैगोर जैसी लम्बी सफ़ेद दाढ़ी थी (यह दूसरी बात है कि हर दाढ़ी वाला बंगाली टैगोर जैसा दिखाई देता है, जिस प्रकार हर दाढ़ी वाला अंग्रेज़ सम्राट् पंचम्-जार्ज मालूम होता है); और वह अपनी छड़ी पर दोनों हाथ रखे कैमरे को बहुत घूर कर देख रहे थे।

इसी तरह घर के सारे कमरों में अनगिनत तस्वीरें टँगी थीं। कांग्रेस के सम्मेलन, संगीत सम्मेलनों के ग्रुप फोटो, जिसमें पटना, महाराष्ट्र, ग्वालियर और अलवर के उस्ताद लोग बड़े-बड़े पगड़े बाँधे बैठे थे और चैम्बर्ज ऑफ़ प्रिंसिस के ग्रुप फोटो।

निचली मंज़िल में ड्राइंग-रूम के आतिशदान के ऊपर एक तैलचित्र टँगा था। जिसमें एक रूढ़िवादी बूढ़ा हरी गोट का जामा और चुना हुआ पाजामा पहने सिर पर मन्दील ओढ़े चित्रित कुर्सी पर बैठा था। यह चित्र शाही ज़माने में एक अंग्रेज़ चित्रकार ने बनाया था। उसके नीचे उर्दू में लिखा था—'रायज़ादा बख़्शी मेहताब चन्द।' कुछ चित्र पुराने ज़माने की दुल्हनों के थे और ऐसी बीबियों के जो ऊँची साड़ियाँ बाँधे, अंग्रेज़ी जूते पहने, एक हाथ मेज़ पर टिकाए खड़ी थीं। मेज़ पर मोटी-मोटी पुस्तकें या गुलदान रखे थे। इस कोठी में तीन बुर्ज़ियाँ थीं। तीसरी बुर्ज़ी में लकड़ी का फ़र्श था। यहाँ साज़ रखे थे और लड़कियाँ शाम को जब सूरज बख़्श साहब आते थे तो उनसे गाना और नाच सीखती थीं।

यह कोठी इसके निवासियों के लिए विश्व का केन्द्र थी। (हर घर अपने रहने वालों के लिए विश्व का केन्द्र होता है।)

यहाँ से अपने प्यारों की अर्थियाँ निकलीं, दुल्हनों के डोले आए, बरातें चढ़ीं, बेटियाँ विदा हुईं, बड़े-बड़े त्यौहार मनाए गए। राम नवमी और जन्म अष्टमी, और दीवाली और शिवरात्री। यहाँ बच्चे पैदा हुए, लड़ाई-झगड़े हुए, लोग हँसे और रोए। हर घर में यह सब होता है। घर खामोशी से यह सब देखता रहता है। उसकी कहानी कोई नहीं सुनता। उसकी समय से हमेशा ठनी रहती है...'देखता हूँ तुम मेरा साथ कब तक देते हो ! तुम मेरी निशानदेही कब तक करते रहोगे।' समय कहता है। घर फिर भी चुप रहता है। वर्ष बीतते हैं। सदियाँ बदलती हैं। मौसम पलट-पलट कर आते हैं। घर समय की नदी में छोटे से जहाज़ की तरह लंगर डाले खड़ा रहता है। कभी-कभी लहरें उसे बहा ले जाती हैं। फिर उसका नामो-निशान भी नहीं मिलता।

यह कोठी नवाब सआदत अली ख़ाँ के समय में उनके अर्थ-मन्त्री रायज़ादा बख़्शी मेहताब चन्द ने बनवाई थी। इस समय उनके पड़पोते इसमें विराजमान थे, और औसत दर्जे के बैरिस्टर थे। उनका एक लड़का था और दो लड़कियाँ। तीनों अभी विद्यार्थी थे।

बैरिस्टर साहब का सारा समय कांग्रेस के चक्कर में निकल जाता; या वे बैठ कर 'ज़माना' और 'निगार' में उर्दू शायरी पर लेख लिखते। फिर प्रैक्टिस की ओर ध्यान कौन दे। परन्तु, घर की जमींदारी थी, इसलिए आराम से गुज़र रही थी। दोनों लड़कियों के दहेज तैयार थे। लड़के को वह केम्ब्रिज भेजने की सोच में थे, जहाँ उन्होंने खुद पढ़ा था। इस समय वह बरसाती के ऊपर की खुली छत पर मच्छरदानी लगाए पड़े सो रहे थे। पत्नी की खटर-पटर की आवाज़ ने उनको जगा दिया। पत्नी में यही तो एक बुरी आदत थी कि सवेरे-सवेरे अपनी खड़ाऊँ की आवाज़ से सारे घर को जगा देती थीं। कभी गोदाम का दरवाज़ा खोल रही हैं, कभी रसद घर की अल्मारी बन्द कर रही हैं, कभी इस कमरे में जा रही हैं, कभी उस कमरे में। इसके

बाद पूजा करने बैठ जाती थीं और ज़ोर-ज़ोर से रामायण पढ़ती थीं।

बड़ी सुहावनी हवा चल रही थी। सामने नदी पर अभी धुँधलका छाया था। सारे में सन्नाटा छाया था। सामने नदी के उस पार छतरमंज़िल, शाह-ए-नज़फ और मोतीमहल के गुम्बद ऊदे रंग के कुहरे में छुपे थे। मोतीमहल-ब्रिज पर अभी सन्नाटा था। पुल के नीचे मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो गए थे।

फिर नीचे की मंज़िल के दरवाज़े खुले। तिरलोचन ने झाड़ू लगाने पर कमर बाँधी। बिस्तरे लपेटे गए। सुराहियाँ उठा कर अन्दर रखी गईं। "उठो बिटिया, जल्दी करो ! तुम्हारा स्कूल आज से सवेरे का हुइ गवा है।" जमना मेहरी ने आकर छोटी लड़की से कहा। लड़की हड़बड़ा कर उठ बैठी। जल्दी से उसने तकिये के नीचे से घड़ी निकाल कर देखी।—"पाँच बज गए—अरे राम रे !" आज से स्कूल खुल रहा था। वह पलँग पर से कूद कर तेज़ी से गुसलख़ाने की ओर भागी।

बड़ी लड़की ने आलस्य से करवट बदल कर आँखें खोलीं और नदी की ओर देखती रही। वह सत्रह-अठारह साल की रही होगी। कॉलेज में पढ़ती थी और उसका कॉलेज चौदह जुलाई को खुलता था। शीघ्र ही उसकी शादी होने वाली थी और उसे कॉलेज की बिलकुल परवाह न थी। वह निश्चिंतता से लेटी नदी को देखती रही।

बुर्ज़ी वाले कमरे से निकल कर उसका भाई चप्पल घसीटता अफ़ीमचियों की तरह बाहर आया और वह भी बरामदे के एक खम्भे के पास टिक कर आलस्य से नदी को देखने लगा—जिधर पुल था। उसने एक ज़ोरदार अँगड़ाई ली और तौलिया कंधे पर डाल कर बेसुरी आवाज़ में गाता गुसलख़ाने में घुस गया।

"स्कूल में अपनी गुँइयों से कह देना, शाम को आकर बड़की के लहँगे की गोट ख़तम कर डालें !" घर की बीवी ने ठाकुरद्वारे से बाहर निकल कर छोटी लड़की को आवाज़ दी, जो जल्दी-जल्दी चाय पीने के बाद बालों की दो चोटियाँ गूँथे, हल्का नीला ट्यूनिक पहने, सुर्ख़ रंग की पेटी कसे किताबें उठाए ज़ीने की ओर भाग रही थी। नीचे बरसाती में लामार्टिनेयर की बस ने हॉर्न बजाया। "अच्छा-अच्छा, कह दूँगी !" उसने सीढ़ियाँ उतरते हुए मुड़ कर उत्तर दिया।

घर की बीवी ख़ालिस पूर्वी थीं। वह बड़ी बेटी को 'बड़की' कहती थीं, छोटी को 'छुटकी'। बैरिस्टर साहब उनको बम्बई, कलकत्ता, कश्मीर, सब जगह घुमा लाए थे। हर साल नैनीताल और मसूरी जाती थीं, मगर क्या मजाल जो उनके रंग-ढंग में कोई फ़र्क आया हो !

इतने में बड़ी लड़की ने बरामदे से नीचे झाँका। नीचे बाग़ की सड़क पर स्कूल की बस खड़ी थी। बस में दो-चार हिन्दुस्तानी लड़कियों के अलावा सब अंग्रेज़ लड़कियाँ बैठी थीं। हिन्दुस्तानी लड़कियों में से एक ने खिड़की से सिर निकाल कर हाथ हिलाया। "हम लोग शाम को आएँगे, मैरिस कॉलेज से लौट कर !"

"अच्छा !" बड़ी लड़की ने उत्तर दिया।

बस फाटक से बाहर निकल गई।

इसके बाद लड़का सीटी बजाता नीचे उतरा। बरसाती में उसकी साइकिल खड़ी थी। उसने एक नोटबुक बड़े स्टाइल से साइकिल के हैंडिल में अटकाई और लापरवाही से पैडिल

चलाता कच्ची सड़क पर आकर यूनिवर्सिटी की ओर रवाना हो गया जिसकी लाल पत्थर की बुर्ज़ियाँ दूर धुंध में नज़र आ रही थीं।

सूरज निकल आया। अब दुनिया अपने कारोबार में लगी। अदालतें, दुकानें, कॉलेज, सरकारी दफ़्तर, अख़बार के प्रेस, रेडियो स्टेशन, कौंसिल चेम्बर, कारख़ाने, जेल—जनता ज़िन्दा रहने में लीन रही।

फिर शाम हुई। रोशनियाँ जगमगाईं। बाज़ार, मुहल्ले, कोठियाँ, सिनेमा हाउस, क्लब, बॉलरूम, महलसराय, झोंपड़ियाँ।

नदी के किनारे उस कोठी के बरामदे में से लड़कियों के क़हक़हों की आवाज़ें उठीं। ये चार-पाँच नई उम्र की लड़कियाँ बरामदे के जंगले पर बैठी इस तरह हँस रही थीं जैसे दुःख से अपरिचित हों...शायद वे दुःख से अपरिचित थीं।

छतरमंज़िल के पीछे सूरज डूबा। नदी के किनारे-किनारे डोंगियों में चिराग़ जले। नदी ने अपना सफ़र जारी रखा।

35

सूरज जिस समय जामुनों के पीछे पहुँचता, तब फ़िटन मैरिस कॉलेज से लौट कर अपनी नपी-तुली रफ़्तार से चलती नदी के पुल पर आ जाती। यह समय आम तौर पर झुटपुटे के ज़रा बाद का होता। नदी के पुल पर से उतर कर एक साफ़, सीधी सड़क यूनिवर्सिटी रोड कहलाती थी, और उसके दोनों तरफ़ नदी के किनारे-किनारे दो कच्चे रास्ते जाते थे। एक रास्ता पुल से उतर कर यूनिवर्सिटी बोट-क्लब, आर्ट स्कूल और नदवतुलउलेमा की तरफ़ जाता था, दूसरा कच्चा रास्ता काठ के पुल की ओर। यहाँ से नदी के किनारे-किनारे चाँद-बाग़ तक कोठियाँ बनी थीं। यह इलाक़ा ट्रांसगोमती, सिविल लाइंज़ और हैदराबाद कहलाता था। यहाँ बेशुमार सीमेंट के मकान थे। बम बहादुर शाह का दो मंज़िला महल, कुछ पुरानी कोठियाँ भी थीं। जैसे कालाकाँकर-हाउस और सिंघाड़े वाली कोठी। और, आगे बढ़ कर निशातगंज की बस्ती थी। राय बिहारी लाल रोड, जिसका एक सिरा यूनिवर्सिटी रोड पर था, बलखाती इस इलाक़े से गुज़रती, फ़ैज़ाबाद रोड पर जा पहुँचती थी। वहाँ इज़ाबेला-थॉबर्न कॉलेज था। यह बड़ा शान्त और निस्तब्ध इलाक़ा था। कभी-कभार कोई मोटर निकल जाती या साइकिल सवार कॉलेज का लड़का या लड़की। उपनगर या डालीगंज की ओर जाने वाले इक्के फ़ैज़ाबाद रोड से गुज़रते रहते। और, आगे मुस्लिम गर्ल्स-कॉलेज था। इसके आगे अरहर और गन्ने के खेत थे; और रेलवे लाइन और महानगर और बादशाहनगर के छोटे-छोटे स्टेशन, तालाब और अमरूदों के झुंड, इसके बाद अंग्रेज़ों का क़ब्रिस्तान था और पेपर मिल जिसकी आवाज़ समय के समप्रवाह में लगातार विघ्न डालती रहती थी। उसी तरफ़ काठ का पुल भी था। उधर से रास्ता चिरैया-झील और भैंसा-कुंड को जाता था : इधर से और आगे सिकन्दर बाग़ और बनारसी बाग़ और वह सारा इलाक़ा था जहाँ गवर्नमेंट-हाउस था। जिसके पीछे ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की नहर थी और हज़रतगंज, लामार्टिनियर कॉलेज और लामार्टिनियर रोड; हरेभरे कुंजों से निकलती दिलकुशा-पैलेस की तरफ़ जाती थी; जिसके आगे लम्बी-चौड़ी हरीभरी छावनी थी।

मोतीमहल-ब्रिज से आगे बढ़ कर मैरिस कॉलेज था और क़ैसरबाग़ की बारहदरी और क़ैसरबाग़। उसके आगे अमीनाबाद पार्क था और अमीरुद्दौला पार्क; और शहर और झाऊलाल का पुल और फिर सड़कें नख़्ख़ास और चौक की तरफ़ जाती थीं। जहाँ मेडिकल कॉलेज था और शाहमीना की दरग़ाह और इमामबाड़ा हुसैनाबाद। वहीं अकबरी दरवाज़ा था, और गोल दरवाज़ा। यह सारा इलाका पुराना लखनऊ था। यह नए लखनऊ से बहुत दूर था, मगर नए लखनऊ में गो पुराना शहर हर जगह मौजूद था। शाही की एक कोठी की जगह गवर्नमेंट-हाउस खड़ा था। नदी के किनारे मोतीमहल में इम्पीरियल बैंक था। हज़रतगंज के बिलकुल बीच में बेग़म कोठी थी। छतरमंज़िल में क्लब था। यह बड़ा रख-रखाव का शहर था। यहाँ की चीज़ें नई होकर भी पुरानी थीं। इस शहर में समय ने बड़ी गम्भीरता और ठहराव के साथ गुज़रना सीखा था।

इस इत्मीनान और शान्ति के साथ फ़िटन शाम की कासनी, गुलाबी रोशनी में ख़रामाँ-ख़रामाँ चलती मोतीमहल-ब्रिज तक पहुँचती। यूनिवर्सिटी रोड पर उस समय कारों और साइकिलों की भीड़ होती। पुल से उतर कर इस सड़क पर जाने के बजाय अक्सर ऐसा होता कि फ़िटन बायें हाथ वाली कच्ची सड़क पर उतर आती। जहाँ रास्ता बड़े-बड़े, सफ़ेद फूलों की झाड़ियों से घिर गया था। जिधर पुराने वक़्तों की चन्द कोठियाँ थीं।

गंगादीन कोचबक्स पर बैठा मज़े में सिर झुकाए चला जाता—"बिटिया, सिंघाड़े वाली कोठी नहीं चलिएगा?" वह झुक कर पूछता।

"यह कहानी अब यहाँ से मैं सुना रही हूँ।" (तलअत ने कहा)—दास्तानगोई (पुराने क़िस्से सुनाने की कला) के विभिन्न तरीक़े होते हैं। मेरी समझ में एक तरीक़ा भी नहीं आ रहा। कौन-से पात्र ज़्यादा अहम हैं...क़िस्सा शुरू कहाँ से हुआ...क्लाइमेक्स कहाँ था...हीरोइन कौन थी...और, उसका अन्त कैसा होना चाहिए था...हीरो कौन था...इस दास्तान को सुनने वाला कौन है, और सुनाने वाला कौन? मेरा बड़ा भाई कमाल एक ज़माने में कहा करता था कि एक दिन बैठ कर वह यह सब तय करेगा। कमाल अब तक कुछ भी तय नहीं कर पाया। फिर चम्पा बाजी से पूछने भला कौन जाए? "हाँ चलेंगे—" मैं गंगादीन को जवाब देती !...फ़िटन आहिस्ता-आहिस्ता कच्ची सड़क पर चलती। यहाँ सब कुछ एकदम शांत रहता। कैसा अनन्त सन्नाटा ! इसी मार्ग पर बहुत आगे चलकर श्मशान घाट था। नदी के पानी में मोतीमहल की रुपहली इमारत की छाया काँपती रहती और छतरमंज़िल का सुनहरा गुम्बद और नजफ़ अशरफ़ का इमामबाड़ा—नदी इन इमारतों की सीढ़ियों के नीचे शिष्ट ढंग से बहती रहती। पेड़ों की घनी छाँव में पानी की मौजें गहरी सब्ज़ दिखलाई पड़तीं। कभी-कभी इस हरियाली में से तैरती हुई कोई डोंगी निकल जाती। लाल पत्थर के शानदार मोतीमहल-ब्रिज के नीचे, मन्दिर के चबूतरे पर बन्दरों का अखाड़ा जमा रहता। सिंघाड़े वाली कोठी की सीढ़ियाँ भी पानी में उतरती थीं। यह दुमंज़िला इमारत थी, और अपनी तीन अठकोनी बुर्ज़ियों के कारण सिंघाड़े वाली कोठी कहलाती थी। ये बुर्ज़ियाँ काई की वजह से गहरे हरे रंग की हो चुकी थीं। बरसात के महीनों में यह काई और नदी का पानी और आसमान, पेड़ों और घास की हरियाली, ये सब मिल कर एक मालूम होतीं। जाड़ों में यहाँ हल्के पीले रंग की रोशनी फैली रहती। कुहरे से ढँके हुए पेड़ों के पीछे सूरज निकलता और उसकी पीली लकीरें सारे में तैरती फिरतीं, जिनमें

आँखों पर हाथ रख देने पर रंग-बिरंगे कण उड़ते नज़र आते। चाँदबाग़ जाते हुए ओवरकोटों में नाकें छुपाए लड़कियाँ जल्दी-जल्दी सनोबर के झुंड की ओर बढ़तीं और घास पर ओस की बड़ी-बड़ी बूँदें पैरों में आकर इधर-उधर लुढ़क जातीं। जाड़ों में शाम को सूरज बहुत जल्दी डूब जाता। चुनांचे फ़िटन बढ़ती हुई खुनकी में छः-सात बजे पुल पर आ जाती।—"बिटिया, निर्मला बिटिया के यहाँ नहीं चलिएगा?" गंगादीन कोचबक्स पर बैठे-बैठे बेचैनी से पूछता।

और, फिर फ़िटन सड़क के ढलान में उतर कर एक धचके के साथ सिंघाड़े वाली कोठी में दाख़िल हो जाती।

"यह लो भैयन तुम्हारा 'आमदनामा' दे गए हैं।" लाज बरसाती की छत पर से आवाज़ लगाती।

भैयन, यानी हरिशंकर श्रीवास्तव, यूनिवर्सिटी में था और बी. ए. में उसने फ़ारसी ले रखी थी।

निर्मला बुर्जी में कथक का कोई नया तोड़ा शुरू कर देती। "ऐ—ज़रा आकर झपताल तो बजा देना।" वह बुर्जी के किसी दरवाज़े में से मुँह निकाल कर कहती।

उनकी अम्मा ठाकुरद्वारे में दिया जलाने के बाद दूसरी बुर्ज़ी से आवाज़ देतीं—"अरी बावलियो—पहले खाना तो भतुर लेव।"

निर्मला की बड़ी बहन लाज इत्मीनान से आलथी-पालथी मार कर बरामदे में नदी के रुख़ बैठ जाती—"अब यह बताओ कि ज्ञान ने कुसुम को क्या जवाब दिया?"

मैरिस कॉलेज की पॉलिटिक्स शुरू हो जाती। लाज वहाँ से फ़िफ़्थ-ईयर पास कर चुकी थी और अब उसका ब्याह हो जाएगा।

"राजकुमारी लाहौर जा रही हैं।" मैंने कहा।

"लाहौर ! अरे बाप रे बाप !"

लाहौर बहुत दूर था। बिलकुल दूसरे भूगोल पर कहिये। ऐसा ही था, जैसे कह देते राजकुमारी सिंगापुर जा रही हैं।

"ओफ़्फ़ोह !" घुँघरू बाँधे-बाँधे बाहर आकर निर्मला अपना विचार प्रकट करती—"पहले भी वह मेरे साथ मैरिस कॉलेज में थी। लेकिन, पिछले साल जब वह बीमार पड़ी तो डॉक्टरों ने कहा कि स्कूल और मैरिस कॉलेज की दोहरी मेहनत उससे न करवाई जाए। अब हमारी सखी मालती के बड़े भाई सूरज बख़्श श्रीवास्तव जो नेत्रहीन थे और मैरिस कॉलेज के स्टॉफ में थे, शाम को आकर उसे एक घंटा रियाज़ करवा देते थे। वह शम्भू महाराज के घराने के एक कथक नर्तक से नाच सीख रही थी ! लामार्टिनेयर में निर्मला मेरी सहपाठी थी—"हम दोनों दो साल बाद सीनियर केम्ब्रिज करेंगे।"

"कितनी अजीब बात है—यानी हममें से एक लाहौर जा रहा है—अरे वाह !" उसने सोचते हुए कहा—"मेरा भी बड़ा जी चाहता है कि अनोखी-अनोखी जगहें देखूँ।" उसने गोया अपने ख़तरनाक इरादों को प्रकट किया।

"पंजाब है ना—वहाँ उनकी एक यूनिवर्सिटी भी है। उसमें वह होने वाला है। वह क्या होता है ? अरे भई ! उसमें सुना है म्यूज़िक की क्लासें खुलने वाली हैं। उसमें राजकुमारी जी ही पढ़ाया करेंगी। मगर अभी तो वे इंद्रजीत की शादी में शमिल होने जा रही हैं।" इंद्रजीत

कौर देहरादून की एक सिख लड़की थी और कुछ दिनों के लिए उसने मैरिस कॉलेज में पढ़ा था।

वैसे यूनिवर्सिटी सिर्फ़ एक थी—भटकंडे यूनिवर्सिटी। बाक़ी यह जो 'अनवरसिटी' यानी कैनिंग कॉलेज था, जिसमें हम सबके बड़े भाई पढ़ते थे। वह तो एक क़िस्म का इन्द्रलोक था, जहाँ आपका दिमाग़ भी नहीं पहुँच सकता था। एल्जेबरा पर से सिर उठा कर अक्सर हम लोग हिसाब लगाते—एक, दो, तीन, चार, पाँच—पूरे पाँच साल बाद हम इस इन्द्रलोक में पहुँच सकेंगे। अभी तो हमने हाई स्कूल भी नहीं किया था।

"बड़े आग़ा साहब ने आज गायत्री निगम को फिर डाँट पिलायी।"

"थियोरी के क्लास के लिए लीला दीदी आयी थीं?"

"सुना है अब के से थर्ड ईयर के एक्सटर्नल इग्ज़ामिनर विनायक राव पटवर्धन होंगे।"

"अरे हाय—वे बड़े सख़्त आदमी हैं। 'वायवा' में उन्होंने मेरा पटरा कर दिया था।" लाज कहती।

सारे हिन्दुस्तान में मैरिस कॉलेज की तरह की कोई और संस्था न थी। पाँच साल का उसका कोर्स। एम. बी. बी. एस. की तरह सख़्त। इसके बाद कहीं जाकर बेचलर ऑफ़ म्यूज़िक की डिग्री मिलती थी। अब उसे यूनिवर्सिटी का दर्जा मिल गया था और भटकंडे यूनिवर्सिटी ऑफ हिंदुस्तानी म्यूज़िक कहलाती थी। ज्ञान, राज, लीला, राजकुमारी—ये सब लड़कियाँ अब स्टॉफ़ पर थीं। तीन साल पहले रेडियो स्टेशन खुला था। ये सब लोग वहाँ जाते। क्लासिकल संगीत के लिए यह रेडियो स्टेशन सारे देश में प्रसिद्ध था।

"पर राजकुमारी हम सबसे अलग इतनी दूर जाकर बोर नहीं हो जाएँगी?" निर्मला ने चिन्तित होकर पूछा।

"जब भैयन स्टूडेंट्स फैडरेशन के जलसे के लिए कराची गए थे तो मुझे भी संग ले गए थे—याद है? लाहौर तो इतना दूर भी नहीं है" लाज कहती।

"मुझे भी दुनिया घूमने का शौक़ है।" मैं तुरंत अपनी समुंदरी यात्राओं की बात छेड़ती।

"मगर कराची की यात्रा की बात और ही थी।" मैं ईर्ष्या से लाज को देखती।

"तुमको क्या पता ऊँट गाड़ी कैसी होती है? मैंने देखी है।" लाज ने रौब से सूचित किया।

नदी में डूबते सूरज की किरणें अब रंग-बिरंगी लहरों पर चमचम करतीं। सारी दुनिया, यह सृष्टि—जीवन के आगे का जो धुँधला-सा अटकल-पच्चू ख़ाका हमारे दिमाग़ों में था, वह हमारे सामने इन लहरों पर नाचता रहता। शाही ज़माने की इमारतें (हम ख़ुद शाही ज़माने की इमारत में मौजूद थे), दूर लाल पत्थर का पुल, बोट-क्लब की डोंगियाँ, सिंघाड़ेवाली कोठी की सुरक्षित काईदार सीढ़ियाँ—भूगोल के विशेषज्ञों की तरह हम दिमाग़ पर ज़ोर डालकर सोचते—"इसके आगे क्या है..., और, क्या-क्या होता है?"

"अप्पी बिदा होकर कहाँ जाएँगी?" अक्सर निर्मला कुछ सोचते-सोचते अजीब से सवाल कर बैठती।

"वहीं जाएँगी, जहाँ भैया साहब ले जाएँगे—और कहाँ जाएँगी !" मैं झुँझला कर जवाब देती।

"भैया साहब कहाँ जाएँगे?"

"क्या मालूम।" मैं सिटपिटा जाती।

अब कमाल अपने कोने से उठ कर आया और एक मेज़ से टिक गया, मानो, तलअत की बात समाप्त होने की प्रतीक्षा करता हो। उसके बाद उसने मानो 'क्यू' लेकर कहना शुरू किया—

"भैया साहब, जो मेरे चचेरे भाई थे, मेरे बहनोई भी हो सकते थे। बचपन से मैं यही सुनता चला आया था। भैया साहब जब जवान होकर, लिख-पढ़ाकर बड़े आदमी बन जाएँगे, तब अप्पी को ब्याह कर ले जाएँगे। मेरा कोई सगा भाई न था। वही मेरे हीरो थे। मेरे लिए गैरीकूपर और अशोककुमार से ऊँचा दर्जा रखते थे। भैया साहब ने मुझे सीनियर केम्ब्रिज के इम्तहान के लिए मार-मार कर मैथ्स पढ़ाए थे। उनकी दिल से उतरी हुई टाइयाँ मैं बड़े चाव से खुद पहन लेता था। भैया साहब जो किताबें पढ़ते, वही मैं पढ़ता। उन्हें बैटी डेविस से नफ़रत थी। मैंने भी बैटी डेविस की फ़िल्म देखने से तौबा कर ली। पहले वे फ़ॉरवर्ड ब्लाक में थे। मैं भी उनके साथ जलसे-जुलूसों से वापस आकर रात को सोते में 'इंक़िलाब-ज़िन्दाबाद' के नारे लगाया करता। फिर, जब भैया साहब ने मुक़ाबले की परीक्षाओं में बैठना शुरू किया, तो मैंने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा कि उनकी पढ़ाई में विघ्न न पड़े; उनके कमरे की तरफ़ कोई न जाए। वे आम तौर पर लॉन पर बैठ कर पढ़ा करते थे, सेमल के पेड़ के नीचे।

भैया साहब बरसों से हमारे यहाँ रहते आए थे। वास्तव में किसी को इसका आभास न था कि हमारे यहाँ, उनके यहाँ से विभिन्न कोई चीज़ नहीं। जब चचा अब्बा का स्विट्ज़रलैंड में अचानक इन्तक़ाल हो गया, तो वे भैया साहब से मिलने वहाँ से गए हुए थे। उस वक़्त भैया साहब लूज़ान के एक स्कूल में पढ़ते थे। उनको स्विट्ज़रलैंड से वापस बुला लिया गया। भैया साहब बम्बई से सीधे हमारे यहाँ अल्मोड़े पहुँचे थे। अब्बा मियाँ उन दिनों अल्मोड़े में नियुक्त थे। बरसाती में वह फुलबूट पहने खड़े थे। अपने स्विस स्कूल के हरी और सियाह धारियों वाले मफ़लर में उनका चेहरा क़रीब-क़रीब छुपा हुआ था। उनकी आँखों के पपोटे रोते-रोते सूज गए थे और उनकी नाक सुर्ख़ हो रही थी। अपने उमड़े हुए आँसुओं को रोक कर उन्होंने मुझे और अप्पी को अपने पास बुलाया और हम दोनों को अपनी बाँहों में लेकर फूट-फूट कर रोने लगे। तलअत उस वक़्त बहुत छोटी थी और घर के दूसरे बच्चों के साथ इलायची के पेड़ पर चढ़ी होमवर्क कर रही थी।

इलायची का पेड़ हम लोगों की ज़िन्दगियों में विशेष महत्त्व रखता था। यह साथ के बरामदे के निकट थे। उसके सामने लॉन था। उस पेड़ पर बैठ कर हम स्कूल का काम करते थे। अक्सर खाना भी वहीं खाते। जाड़ों में उसके नीचे स्नो मैन बनाया जाता।

इसके बाद से भैया साहब स्थाई रूप से हमारे साथ रहने लगे। बाबा उनको देख कर जीते थे। मम्मी उन पर जान देती थीं। उनकी अम्मी का इन्तक़ाल बहुत पहले हो चुका था। सारा कुनबा उनके काम की माला जपता।

भैया साहब, चचा मियाँ मरहूम की इकलौती औलाद थे। हमारे बाप-दादों के घाघरा के किनारे आबाद क़स्बे कल्यानपुर में तालाब के किनारे एक फूस का बंगला था, जिसमें चचा अब्बा कभी-कभी आकर रहा करते थे। भैया साहब भी यूरोप से लौट कर जब क़स्बे पहली

बार गए तो इसी बंगले में जाकर रहे थे। यह बंगला छोटी बारहदरी कहलाता था और इसके बरामदे में बैठ कर भैया साहब मोटी-मोटी किताबें पढ़ा करते। ख़ानदान को इनसे बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं कि यह भी अपने मरहूम बाबा की तरह नाम पैदा करेंगे, बड़े आदमी कहलाएँगे।

गर्मियों की छुट्टियों के बाद भैया साहब लामार्टिनेयर कॉलेज में भर्ती कर दिए गए। यह कॉलेज डेढ़ सौ साल हुए नवाब आसिफ़उद्दौला के ख़ास मुसाहिब जनरल क्लाड मार्टिन फ्रांसीसी के रुपये से यूरोपियन लड़कों के लिए खोला गया था।

सवाल यह पैदा होता है कि इस दास्तान के हीरो क्या भैया साहब भी हो सकते थे? मैं कहानी सुनाने बैठा हूँ तो पात्रों के बारे में भी तो तय करता चलूँ। सोचता हूँ, भैया साहब में हीरो वाली सभी ख़ास बातें मौजूद थीं। अब तक जो कुछ मैंने तुम्हें बताया है—तुम समझदार हो, ख़ुद ही तुमने अन्दाज़ा लगा लिया होगा कि ऐसा रूमानी बैकग्राउंड हीरो के अलावा और किसका हो सकता है ! ज़रूरी बात है कि हीरो लोग चार्ल्स ब्वायर होते हैं। अगर तुम पुराने विचारों के पाठक नहीं हो तो तुमको यह जान कर बड़ी झुंझलाहट होगी कि भैया साहब भी बहुत खूबसूरत थे। मुझे डरते-डरते निहायत अफ़सोस के साथ सूचना देनी पड़ती है कि भैया साहब ऐनमैन चार्ल्स ब्वायर थे। फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड के स्कूलों में पढ़ने की वजह से शुरू-शुरू में उनका लहजा भी बिलकुल फ्रांसीसी था। जब वह 'त' और 'द' के साथ रुक-रुक कर अंग्रेज़ी बोलते, मत पूछो कि किस तरह एज़ाबेला-थॉबर्न कॉलेज की लड़कियों के दिलों पर छुरियाँ चलतीं।

रहीं अप्पी, तो वह उस अफ़सानवी प्रकार की चचेरी बहन नहीं थी जो अपने इस तरह के कज़न लोगों के लिए पकवान बनाती या पुल-ओवर बुनती वग़ैरा वग़ैरा। इस किस्म के मशग़ले मैंने उर्दू कहानियों में पढ़ा है कि मुस्लिम चचेरी बहनों के होते हैं। अप्पी लामार्टिनेयर गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ती थीं, जो नजफ़ अशरफ़ के पास ही नदी के दूसरे किनारे पर ख़ुर्शीद-मंज़िल में था। पहाड़ी की ढलवान पर ख़ुर्शीद-मंज़िल की ऊँची इमारत नवाब सआदत अली ख़ाँ ने, डेढ़ सौ साल हुए अपनी बेग़म ख़ुर्शीदज़ादी के लिए बनवाई थी। उसके ऊँचे कंगूरे और बुर्जियाँ दूर से बड़ी साफ़ नज़र आतीं और ऐसा जान पड़ता मानो अठारहवीं सदी के किसी लैंडस्केप पेंटर की मद्धम, मोहक, स्वच्छ रंगों वाली बड़ी-सी पेंटिंग चौखटे में जड़ी सामने धरी है। अक्सर जब मैं बनारसी बाग़ की ओर जाते हुए पुल पर से उतर कर इस स्कूल के सामने की मौन सायेदार सड़क पर से गुज़रता तो अप्पी मुझे क़िले के किसी दरीचे में खड़ी किसी लड़की से बातें करती नज़र आतीं। इस दृश्य में एक ऐसी शान्ति छाई रहती जो बयान में नहीं आ सकती।

भैया साहब हरेभरे कुंजों, लम्बी बलखाती साफ़-सुथरी सड़कों और बाग़ों के इस सिलसिले के दूसरी तरफ लड़कों के लामार्टिनेयर कॉलेज में पढ़ते थे। कॉलेज के तालाब के किनारे, अपने क्लास के अंग्रेज़ लड़कों के साथ, कोई किताब हाथ में लिए, आहिस्ता-आहिस्ता फ्रांसीसी लहजे में बातें करते, टहलते, या कभी-कभी किसी बात पर खिलखिला कर हँस पड़ते। उनकी तबीयत में जो धीमापन, जो खोई-खोई उदासी थी, उसने उनको और ज़्यादा रोमैंटिक बना दिया था।

देखिये, मैं अर्ज़ करूँ, मुझे इस लफ़्ज़ 'रोमैंटिक' से दिली नफरत है। यह मैं कोई महिलाओं की मासिक पत्रिका के लिए सीरियल उपन्यास नहीं लिख रहा हूँ, जिसमें सिवा चाँदनी रात और गुलाब की कलियों के और कुछ नहीं होता और जिनका हीरो अच्छा-खासा स्पेनिश बुलफ़ाइटर

नज़र आता है। इसे एक इत्तफ़ाक ही कहिए और कहानी सुनाने वाले के रूप में मेरी बदकिस्मती, कि भैया साहब फ्रांसीसी स्वर में बात करते थे, लामार्टिनेयर में पढ़ते थे और धीमी-धीमी आवाज़ में हँसते थे।

सीनियर केम्ब्रिज के बाद भैया साहब इण्टरमीडिएट के लिए कॉल्विन ताल्लुक़ेदार के कॉलेज में आ गए। जो हमारा ख़ानदानी कॉलेज था और यहाँ हमारे घराने के लोग कई पीढ़ी से पढ़ते चले आ रहे थे। मेरे और हरिशंकर के बाप-दादा सबने यहीं पढ़ा था। यहाँ भैया साहब दूसरे डिकेडेन्ट रईसज़ादों के साथ घुड़सवारी करते और सितार बजाते। साल भर बाद वे सड़क पार करके कैनिंग कॉलेज में दाख़िल हो गए। और कई बरस तक यूनिवर्सिटी के 'वृन्दावन के कन्हैया' बने रहे।

अप्पी ओर भैया साहब एक-दूसरे के मामलात में दख़ल नहीं देते थे। उन दोनों की अलग-अलग टीमें थीं। अप्पी, भैया साहब के दोस्तों में कीड़े डालतीं। ये अप्पी की सहेलियों की नक़लें उतारते। इन दोनों में हमेशा तले-ऊपर के बहन-भाइयों की तरह लड़ाई हुआ करती। लाजवती श्रीवास्तव अप्पी की सबसे प्यारी सहेली थीं। ये मेरे चहीते, जान के टुकड़े दोस्त हरिशंकर की बहन थीं। जाने क्यों, पर अक्सर ऐसा हुआ कि चम्पा बाजी का ज़िक्र सुनते ही लाज एकदम चुप हो जातीं। अप्पी लापरवाही से बैठी हँसती रहतीं। हरिशंकर बेवकूफ़ों की तरह सिगरेट सुलगाना शुरू कर देता। चम्पा बाजी हममें से किसी की 'टीम' में शामिल न थीं। वे सब से अलग थीं, हमारे लिए काफ़ी अजनबी थीं। हम सब जनम से एक-दूसरे को जानते थे, एक ही बैकग्राउंड और एक ही वर्ग से सम्बन्ध रखते थे। चम्पा बाज़ी की पृष्ठभूमि का हमें परिचय न था। मुझे अक्सर यह गहरा शक हुआ कि चम्पा बाज़ी मिडिल क्लास हैं।

जब भैया साहब 'लॉ' कर रहे थे, उस वक़्त चम्पा बाज़ी ने बनारस से आकर इजाबेला-थॉबर्न कॉलेज में दाख़िला लिया।

यह सन् 1941 ईस्वी था।

अप्पी लामार्टिनेयर स्कूल से इजाबेला-थॉबर्न कॉलेज आ चुकी थीं। भैया साहब एक के बाद एक मैदान मारते रहे। यूनिवर्सिटी की महफ़िलें, सोसायटी के ड्राइंग-रूम, हर मैदान में उनकी धाक बैठी हुई थी। मैं उनके ए. डी. सी. की तरह साथ-साथ लगा रहता। बड़ी श्रद्धा से उनकी हाँ में हाँ मिलाता।

जिस साल अप्पी ने अपनी पढ़ाई ख़त्म की, उसी वर्ष भैया साहब और अप्पी की शादी की बात टूटी।

अब मैं मन में एक बात सोच रहा हूँ। वह बात यह है कि जिस तरह जिस विस्तार और स्पष्टता के साथ मैं उस ज़माने की यह कहानी दुहराना चाहता हूँ, उसमें मैं सफल न हो सकूँगा...बहुत-सी छोटी-छोटी बातें हैं। बादशाह-बाग़ का शाही वक़्त का फाटक—जिसमें यूनिवर्सिटी पोस्ट आफिस था—फूलों के तख़्ते, सड़क पर से गुज़रने वाली कहारिनें और वह बुढ़िया जो लाल लहँगा पहने दोपहर को सुनसान सड़क पर इमलियाँ चुना करती थी और जो एक रोज़ ट्रेन के नीचे आकर मर गई।

इन सब चीज़ों का मेरे लिए बहुत ही बड़ा महत्त्व है। तुमको ये सब मालूम होगा। तभी तो कहानी सुनाना कोई आसान काम नहीं। प्लॉट का संतुलन, संवाद की निःसंकोचता

और अनावश्यक बातों से बचना—यही सब तो कहानी कला की टेकनीक कहलाता है; और क्या टेकनीक में कोई हाथी-घोड़े लगे होते हैं !

मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसा तरीक़ा हो जिससे उस वातावरण, उस माहौल और उस वक़्त का सारा प्रभाव, सारी सपनों-जैसी कैफ़ियत दुबारा लौट आए। वह तुम्हारे जहन में स्थानांतरित हो।...यह 'कम्युनिकेशन' कहलाता है और बड़ी मुश्किल चीज़ है। मैं आर्टिस्ट नहीं हूँ। कम्यूनिकेट नहीं कर सकता। तलअत शायद ऐसा कर सके।

बहरहाल...विवरण मुलाहिजा हो :

यह देखिए, यह बैनेट हॉल है। मैं इसकी एक ऊँची जगह पर बैठा हूँ और रेडियो के लिए कन्वोकेशन की कमेंट्री सुना रहा हूँ। नीचे लम्बे-चौड़े क्वाडरेंगल में काली कैप और गाउनों में लोग-बाग इधर-उधर चल-फिर रहे हैं। हरेभरे घास के खंड और सुर्ख़ और ज़र्द केना और लाला की क्यारियाँ। लाल पत्थर की इमारतों के साए, साड़ियों और काले गाउनों और फैकल्टी के ज़रतार चित्रित वस्त्रों के सारे रंग आपस में गडमड हो जाएँगे। समय तेज़ी से उड़ता जा रहा है। उसकी उड़ान की सनसनाहट मेरे कानों में आ रही है। नीचे घास पर बहुत सारे लोग जमा हैं और मोटरों की क़तारें खड़ी हैं। भैया साहब नीचे लाल कालीनों वाले लंबे रास्ते के किनारे-किनारे चम्पा बाजी के साथ-साथ चलते दूसरे क्वाडरेंगल की तरफ़ जा रहे हैं। जिधर 'ऐट होम' के लिए सफ़ेद मेज़ें बिछी हैं। लाउडस्पीकर पर सहसा न्यूथियेटर्स का नया रेकार्ड लगा दिया गया है "यह कूच के वक़्त कैसी आवाज़"—पहाड़ी सान्याल की आवाज़ मारे में गूँजती जा रही है। पहाड़ी सान्याल बादामी, रेशमी कुर्ता पहने, धोती का लम्बा पल्लू हाथ में सँभाले मैरिस कॉलेज वालों के साथ कुर्सियों की एक कतार में बैठे हैं और हँस-हँस कर किसी बंगाली लड़के से बातें कर रहे हैं। दूसरी तरफ़ इजाबेला-थ्रॉबर्न कॉलेज की लड़कियों का गिरोह अपने अमरीकन स्टाफ़ के साथ घास पर से गुज़र रहा है। सामने से वाइस-चांसलर हबीब उल्लाह आ रहे हैं। उनके साथ बहुत से जुग़ादरी प्रोफ़ेसर अपने-अपने चोग़े पहने रास्ते पर चल रहे हैं। एक दिन ऐसा भी होगा जब इन इंसानों में से एक भी बाक़ी न बचेगा।

अब मैं माइक्रोफ़ोन अपने पूज्य मित्र हरिशंकर के हाथ में देता हूँ !..."हलो ! मेरी आवाज़ आ रही है !....हलो !"

"हलो.....हाँ....." (हरिशंकर ने जो लैम्प के पीछे अँधेरे में छुपा बैठा था जवाब दिया और ऐसा मालूम हुआ जैसे स्टेज के बाहर से उसकी आवाज़ गूँजती हुई आ रही हो—वह ख़ुद नज़र नहीं आ रहा था।)

"हलो.....हलो.....मैं, हरिशंकर, अब आप से बात कर रहा हूँ। मैं हरिशंकर श्रीवास्तव, कमाल का हमज़ाद.....लाज और निर्मला का इकलौता बड़ा भाई, चम्पा बाजी का साथी, मेरा पार्ट भी काफ़ी महत्वपूर्ण है.... । मेरे पार्ट के बहुत से पहलू हैं। मैं कहानी में इतने सारे अलग-अलग रोल अदा कर रहा हूँ—मैं बात कहाँ से शुरू करूँ, स्टेज पर कैसे दाखिल हूँ, यह बड़ा घपला है।"

सामने विस्तृत मैदान है और हज़ारों-लाखों फूल घास पर खिले हैं—गुलाब, लाला, स्वीट पी। पेड़ों की हरी और नारंगी पत्तियाँ जाड़ों की सुनहरी धूप में झिलमिला रही हैं। अप्पी अपना गाउन पहने अपने साथ की लड़कियों के साथ अगली क़तार में जा बैठी हैं। भैया साहब और

चम्पा बाजी आम के पेड़ के नीचे खड़े बड़ी व्यस्तता से किसी दोस्त से बातें कर रहे हैं। कैनिंग कॉलेज के क्वाडरेंगल में चारों ओर क़ालीन बिछे हैं। अब भीड़ कम होगी। शाम को लड़कियों के झुंड अपनी तस्वीरें खिंचवाने हज़रतगंज जाएँगे। लड़के कॉफ़ी हाउस में इकट्ठे होंगे। यह यहाँ की पुरानी रीत है। हर साल यही सब होता है। फिर इन अवसरों के ग्रुप फोटो, फ्रेम करके दीवारों से लटका दिए जाते हैं। और, वक़्त गुज़रता है और उनके काग़ज़ पीले पड़ जाते हैं।

कमाल ने शायद आपको बताया होगा, मैं उसका बड़ा चहीता दोस्त हूँ। उसकी बहन तहमीना से, जिसे घर में अप्पी कहा जाता है, मुझे उतनी ही मुहब्बत है, जितनी लाज, और निर्मल से। परन्तु मेरा और कमाल का अप्पी के लिए दौड़-भाग करते-करते नाक में दम आ जाता है। 'अल्लाह ! हरिशंकर हमारे लिए बाटा से यह जूतों की जोड़ी बदलवाते लाना।'—'अय मियाँ, जरा आज अमीनाबाद जाओ, तो हाजी साहब से कहना कि हमारी साड़ी कब तलक रंग देंगे।'—'अय जनाब हज़रतगंज जाते हैं ? ज़रा हमारे और लाज के लिए 'मारीवालो वस्का' के दो टिकट ख़रीद लाइएगा !'

"ख़ुदा के लिए, अप्पी आख़िर तुम्हारी वह साइकिल किस मरज़ की दवा है। ऐसी काहिली भी किस काम की ?" मैं बाज़ दफ़ा झुँझला कर कहता—"और, इतनी बड़ी जहाज़ की जहाज़ मोटर जो गैराज में पड़ी झख मारती है, वह किस दिन काम आएगी ? इतनी घाम में ऐसी-ऐसी बेगार करवा कर हम मजदूरों का लहू-पसीना एक करवाती हो।"

"अय भैयन, मैरिस कॉलेज जाकर ज्ञान से मिलना और उससे कहना कि नीडलवर्क का वह वाला नम्बर भिजवा दे जिसमें—" लाज खिड़की में से सिर निकाल कर हुक्म चलाती।

"लाहौल विलाक़ूवत।" गुस्से के मारे दिल चाहता है कि इन दोनों चुड़ैलों की चुटिया पकड़ कर घसीटता हुआ नदी तक ले जाऊँ और पानी में डुबो दूँ।

अगर मर गईं तब भी दोनों के भूत आकर 'नीडलवर्क' की मैगज़ीनों और सिनेमा की टिकिटों की फ़र्माइश किया करेंगे।

मैं एक पैर साइकिल पर रखते हुए, दूसरा बरसाती की सीढ़ी पर टिका कर सिगरेट जलाता और उदासी से दोनों को देखता रहता।

"मेरा लायब्रेरी-कार्ड ही कहीं गुम हो गया। शंकर मियाँ, टैगोर लायब्रेरी तक जाकर..." अप्पी इत्मीनान से घास पर बैठे-बैठे आवाज़ देतीं। अब वे यूनिवर्सिटी में पहुँच चुकी थीं और हमारी मुसीबतें भी बढ़ गई थीं।

"भैयन, आज शाम को पिक्चर नहीं दिखलाओगे ?" लाज अप्पी की शह पाकर बोलती।

"चुप रह, चुड़ैल।" मैं गुर्राता।

'अच्छा है, डाँट लो ग़रीब को। बेचारी चार दिन के लिए नैहर में मेहमान हैं।" अप्पी बड़ी ग़मभरी आवाज़ में कहतीं।

"और क्या—कर लो कमीनापन।" लाज हौज़ की मुंडेर पर बैठ कर पैर हिलाते हुए सूँ-सूँ करती।

"हम कोई चम्पा बाजी हैं; जो हमको कॉफ़ी-हाउस ले जाकर आइसक्रीम खिलाओ। हम तो बेचारी लाज और अप्पी हैं।"

"चम्पा बाजी—उनका कौन ज़िक्र है।" मैं हड़बड़ा कर कहता और पैडल पर ज़ोर से पैर मार कर ज़न्नाटे के साथ बरसाती से बाहर निकल आता।

अक्सर शाम को अप्पी और कमाल की छोटी बहन तलअत मैरिस कॉलेज से लौटते में मेरे घर पर रुक जातीं। मैं अपनी बुर्ज़ी की खिड़की में से फ़िटन को अपनी कोठी की तरफ़ बढ़ते देखता। सड़क पर गहरा सन्नाटा छाया होता, और उदासी; और मौसम के सारे फूलों की महक; नदी के पानी का शान्त संगीत मेरे कानों में पहुँचता, और जाने क्यों मेरा दिल धड़क उठता। मेरा हमज़ाद कमाल कहता था कि कभी-कभी वह भी चौंक पड़ता है, उसे भी बहुत डर लगता है।

मुझे यक़ीन है कि हमारे दिमाग़ों की एक-एक चूल ज़रा ढीली थी।

"जब हम दोनों किसी सफ़र से लौटते तो सुबह-सुबह हल्के ठंडे धुँधलके में संदीले का छोटा-सा स्टेशन आता"—(कमाल ने कहना शुरू किया) "यहाँ लड्डू होते हैं"—शंकर ने ख़याल ज़ाहिर किया। ठीक उसी वक़्त 'लड्डू—संदीले वाले' की आवाज़ सुनाई दी। लाल बजरी के प्लेटफ़ॉर्म पर सभ्य ग्रामीण शरीफ अँगरखे, दुपल्ली टोपियाँ, सफ़ेद ढीले-ढाले पाजामे, उजली धोतियाँ पहने दूसरी ट्रेन के इन्तज़ार में इत्मीनान से टहलते थे। प्लेटफ़ॉर्म के किनारे चन्द पालकियाँ रखी थीं। सफ़ेद फूलों से घिरा हुआ स्टेशन, जिसके पीछे की ओर आम के बाग़ थे, बारीक सुर्ख़ काग़ज़ में लिपटी हाँडियों में रखे हुए लड्डू बेचने वालों की आवाज़ें। दूर लाल चादर ओढ़े कोई लड़की विदा होकर चहको-पहको रोती स्टेशन के फाटक की ओर जा रही थी। उसके आगे-आगे तीन-चार देहाती चल रहे थे। दूल्हा ने हल्दी के रंग का जोड़ा पहन रखा था।

मैंने बर्थ पर लेटे-लेटे ज़रा सिर ऊँचा करके खिड़की से बाहर देखा, फिर घड़ी पर नज़र डाली। ऊपर की बर्थ पर से शंकर ने आवाज़ लगाई—"मैं ज़रा भैरव का रियाज़ करना चाहता हूँ। अगर तुम बुरा न मानो.... ।"

"मियाँ, तुमको कौन मना कर सकता है। तुम भैरव छेड़ो..."

"आ....आ....रे....रे....धा पा....गा ओ हो हो...जागो...जागो...अरे भाई जागो मोहन...!" उसने दहाड़ना शुरू किया।

"लाहौल विला....किस क़दर एलिमैण्ट्री भैरव ! यह वाला भजन तो फर्स्ट ईयर में सिखलाया जाता है।"...मैंने करवट बदल ली। "और दूसरी बात यह कि मैं ज़रा चन्द लड्डू खाना चाहता हूँ" मैंने विचार प्रकट किया। "अय मियाँ...ए भाई....जहन्नुम में जाए तुम्हारा रियाज़, तुम किसी दिन मुझसे यही बात ध्रुत में सुनना।" मैंने आधी बात शंकर से कहने के बाद फिर लड्डू वाले को आवाज़ दी, "आय भाई !"

"कहिए मेहरबान।" लड्डू वाले ने खिड़की में से अन्दर झाँक कर बड़ी सभ्यता से पूछा।

"जागो....ही—ही—ही—अरे, क्या मुरकियाँ लेता हूँ.... ।" शंकर चिंघाड़ता रहा।

"ज़रा दिमाग पर ज़ोर डालो और कल्पना करो कि बराबर वाले डिब्बे से एक मधुर तान उठे : ग्वाल-बाल सब गैयाँ चरावत.... ।"

उसने अन्तरा उठाया।

"तुम्हरे दरस को भूके ठाड़े.... ।" मैंने गुस्से के साथ, गरज कर आवाज़ मिलाई—"मियाँ शंकर ! ये सब बातें महज़ कहानियों में होती हैं। तुमने कानन का वह नया फ़िल्म देखा

है—'जवानी की रीत' कि—"

'मोहे उन बिन ये जल्सा सुहाये ना।"

"कहाँ देखा ? हम तो मिर्ज़ापुर में बैठे झींक रहे थे।"

"क्यों गप मारता है बे। मिर्ज़ापुर में झींक रहे थे ?—तुम मुझे न भेजो वहाँ झींकने के लिए।" मैंने गुस्से से कहा।

"चला जा भाई, लिल्लाह, तू ही चला जा—और, मेरी जान बख़्शी कर।" उसने हाथ जोड़ कर विनती की।

यह मुझे मालूम था कि गप हाँकता है नामाकूल। ख़ुद ही ख़ुद वर-दिखावे के लिए वहाँ पहुँच गया था और मुझ पर रौब झाड़ रहा था। मैं सारी छुट्टियाँ अकेला मसूरी में बोर होता रहा और हरिशंकर श्रीवास्तव थे कि मिर्ज़ापुर में बैठे, कजरियाँ अलाप रहे थे। अब पिछले हफ़्ते अम्माँ बेगम का ख़त मेरे पास पहुँचा कि फ़ौरन लौटो। कल्यानपुर से अप्पी भी लौट कर आ रही थीं। यूनिवर्सिटी खुलने में अभी एक हफ़्ता बाक़ी था। मगर घर में एक क्राइसिस उठ खड़ा हुआ था। अम्माँ बेगम ने लिखा था कि ख़ुदा-ख़ुदा करके भैया साहब ने ब्याह के लिए हाँ कर दी थी। मगर, सबके हाथों के तोते उड़ गए कि भैया साहब ने हाँ की तो लड़की ग़ायब। सूचना मिली कि अप्पी ने इन्कार कर दिया है। अब घर पर 'हाई कमांड' का इजलास होने वाला था। शंकर भी मिर्ज़ापुर से लौट आया था और लाज के मियाँ से मिलने के लिए दिल्ली पहुँचा हुआ था। मैंने मसूरी से उसको तार दिया। मुरादाबाद के स्टेशन पर वह मुझसे आ मिला।

"भैया की शादी का क्या होगा ?" उसने पूछा।

"पता नहीं। लाज-निर्मल से पूछना, कोई लौंडिया है उनकी नज़र में ? यह इस क़दर लड़कियाँ दुनिया भर में भरी हुई हैं, मगर वक़्त पर कोई नहीं मिलती।"

"चम्पा बाजी भी लखनऊ पहुँच गई होंगी। कैलाश होस्टल ही में रहेंगी न।" शंकर ने सहसा बड़ी गम्भीरता से कहा।

"पता नहीं।" मैं चुप हो गया—"लाओ एक बीड़ी देओ।" मैंने कुछ देर बाद ख़ालिस इक्के वालों के लहजे में उससे कहा। उसने चुपचाप सिगरेट केस ऊपर से फेंक दिया। मैं फिर खिड़की से बाहर देखने लगा। अब हम तेज़ी से शहर की ओर आ रहे थे। आलम-बाग़ शुरू हो चुका था। मैंने आँखें बन्द कर लीं। मेरा दिमाग़ वास्तव में एक क़िस्म का भानुमती का पिटारा था। मैं बहुत-सी बातों को अलग-अलग करके उन पर ग़ौर करना चाहता था। मगर वे सब फिर गडमड हो जाती थीं।

चम्पा बाजी उसमें एक डिस्टर्ब करने वाले तत्व की हैसियत से आ शामिल होती थीं। मैं उनको ध्यान से हटाना चाहता था। मुझे इस समय किसी चीज़ की ज़रूरत न थी, सिवाय एक सन्दीले के लड्डू के। मैंने शंकर से कहा—"लड्डू फेंको।"

"समाप्त हुए।" उसने इत्मीनान से मुँह चलाते हुए कहा—"क्या चम्पा बाजी ने मँगवाए थे ?"

"वह मुझसे कौन चीज़ मँगवाती हैं। मैं कोई भैया साहब हूँ ?"

"हाँ, यह भी ठीक कहते हो।" शंकर ने अक़्लमन्दी से कहा—"तुम भैया साहब नहीं

हो, मैं कमाल रज़ा नहीं हूँ, अप्पी चम्पा बाजी नहीं हैं। हम सब अलग-अलग हस्तियाँ हैं। हम अपने-अपने दायरों में ज़िन्दा रहेंगे।"

"यह वेदान्त का रैकेट मत चलाओ सवेरे-सवेरे।" मैंने ग़ुस्से से कहा।

"अच्छा....लड्डू लेओ।"

"तुम्हारी तो बड़ी ख़ातिरें हुई होंगी मिर्ज़ापुर में।" मैंने करवट बदलते हुए कहा।

"हाँ—आँ—हुई थीं।" उसने उपेक्षा से जवाब दिया—"मगर ख़ातिरें तो हमारी गोरखपुर में हुई थीं पिछले साल।"

यह शंकर का बाक़ायदा 'कैरियर' बनता जा रहा था। हर साल गर्मी की छुट्टियों में कहीं न कहीं वर-दिखावे के लिए बुलाया जाता था। ठाठ थे भाई के।

"अब तो लाज को विदा करके बन्दा चैन की बंसी बजाएगा।" उसने आराम से लेटते हुए विचार प्रकट किया।

"कमीने ! बहन को विदा करते समय, बजाय इसके कि रोओ, बैठे ख़ुश हो रहे हो कि अब फ़ुर्सत है लौंडियों में घूमने की। यह तुम्हारा स्टूडेण्ट्स-फ़ेडरेशन का रैकेट फ्रॉड है—सारा का सारा—उस हीरावती पाण्डे का क्या हुआ ?"

"और मैं तुमसे सवाल कर सकता हूँ कि लाहौर में जो आप वहाँ की तरक़्क़ीपसन्द लड़कियों से भाई-चारा कर रहे थे पिछले साल; और वह इलाहाबाद में जो थी शिवलीला बहादुरी—और—"

"मियाँ क्यों दिल को जलाते हो सुबह-सुबह।"

"और, कलकत्ते में जो है वह—क्या नाम है उसका—मधुर लेखा मोजूमोदोर।" शंकर ने होंठों को गोल-सा बना कर बंगाली लहजे में कहा।

"जभी तो लाज और अप्पी कहती हैं कि हम लोग सख़्त चपड़कनाती हैं।"

मैंने स्वीकार किया।

शंकर सहसा बड़ा उदास हो गया—"देखो, बहनें हैं" उसने कहा—"और वे विदा हो जाती हैं।"

"हाँ।" मैं चुप हो गया।

"लाज ने मुझसे कहा था—कमाल भैया ! चम्पा बाजी ऐसी लड़की हैं, मुझे लगता है, जैसे उनकी वजह से बहुत-से लोग बहुत दुःखी होंगे। लाज में यह छठी इन्द्रिय जाने कहाँ से जाग उठती है।"

"शंकर !"

"हाँ यार।"

"हफ़्ते के रोज़—रेडियो पर यूनिवर्सिटी का प्रोग्राम है।"

"हवापार यूनिवर्सिटी का कैन्वोकेशन ?"

"हाँ यार।"

"तज़्इन पूछेंगी कि स्क्रिप्ट पूरी की या नहीं।"

"स्क्रिप्ट चम्पा बाजी के पास है। चले जाना, कैलाश होस्टल—क्या रखा है ?"

जो बात मैं ख़त्म करना चाहता था, शंकर अचानक उसी नुक़्ते पर पहुँच गया।

"हाँ—नहीं—पता नहीं— ।"

इन चार लफ़्जों में जैसे हम सबकी ज़िन्दगियाँ लिखी हुई थीं :

"हाँ—नहीं—पता—नहीं।"

"ज़रूर जाऊँगा, कैलाश होस्टल। वाक़ई इसमें रखा क्या है आख़िर। वह मेरा कर ही क्या सकती हैं। वह पीली रंगत वाली दुबली-पतली लड़की ! यूनियन में बोलने खड़ी होती हैं तो घबरा जाती हैं। अभी तक यही तय नहीं कर पायीं कि मुस्लिमलीगी रहें या कांग्रेस में शामिल हो जाएँ—हर क़िस्म की अक्ल से लाचार हैं। एक हज़ार बार समझाया—हवाई जहाज़ ऐसे उड़ता है, रेडियो ऐसे बजता है, ग्रामोफ़ोन में आवाज़ इस तरह भरी जाती है। मगर, हर दफ़े मुर्गे की वही एक टाँग कि मेरे पल्ले तुम्हारी साइंस नहीं पड़ती।....वाह, क्या अदा है। जी हाँ, मैं उनसे कोई डरता हूँ। बिलकुल नहीं डरता हूँ उनसे। मुझसे उम्र में एक ही आध साल बड़ी होंगी, मगर बुज़ुर्गी पर इस क़दर इसरार है कि अगर भूले से 'बाजी' न कहा तो खफ़ा हो जाती हैं। "मैं बहुत मामूली हूँ" उन्होंने भैया साहब से कहा था। भैया साहब कौन आइंस्टाइन थे, मैं कौन मार्शल फोश हूँ। पर, भैया साहब चम्पा बाजी से इश्क फरमा रहे थे तो लगता था कि हरिपुरा-कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा है या हाउस-ऑफ़-लॉर्ड्ज़ में बहस की जा रही है या सिद्धान्त साहब अठारहवीं सदी के 'प्रोज़' पर लेक्चर दे रहे हैं।"

"अप्पी ने ऐसा क्यों किया—मेरा मतलब है—शादी से इंकार।" शंकर ने सहसा प्रश्न किया। मैंने ग़ुस्से से दाँत पीसे। मैं इस शंकर श्रीवास्तव से तंग था। जो बात मैं सोचता था, वह बेतार बर्की (विजली) तार की तरह उसके दिमाग़ में पहुँच जाती थी—या पहले से होती थी। हमज़ाद की तरह। कहीं उससे पीछा नहीं छूटता था। अगर मैं उससे बातें न भी करता तो भी बेकार था। क्योंकि मुझे मालूम था कि उसे ज़बानी बातचीत की ज़रूरत ही नहीं। हम दोनों एक-दूसरे के लिए भगवान कृष्ण और अर्जुन का दर्ज़ा रखते थे। अक्सर ये दर्ज़े अदलते-बदलते रहते थे। जब से चम्पा बाजी ने बनारस से आकर लखनऊ में दाखिला लिया था, उसे मालूम था कि मुझे उनसे सच्चा प्रेम हो गया है। बड़ी ढिठाई से वह भैया साहब से कहता—"चम्पा बाजी आपको बहुत पसन्द करती हैं—वैसे आप हैं ही पसन्द लायक़—मगर यह कि—"

और क्योंकि अप्पी से भैया साहब की मँगनी हो चुकी थी, अप्पी भैया साहब को आम हिन्दुस्तानी लड़कियों की तरह अपना देवता समझती थीं और भैया साहब चम्पा बाजी पर दम दिये दे रहे थे। बस, इसलिए यह सिचुएशन बेहद गुंजलक हो गई थी। और, यह शंकर निहायत खूबसूरती से भैया साहब को समझाता रहता था कि वे बड़ी ग़लती कर रहे हैं और चम्पा बाजी जैसी लड़कियाँ तो हर साल यूनिवर्सिटी में तीन सौ साठ आती हैं : अप्पी का और उनका क्या मुक़ाबला ! फिर उसे भैया साहब के इस चपड़कनातीपन पर सख़्त गुस्सा आता, क्योंकि लाज की तरह अप्पी को भी वह अपनी जिम्मेदारी समझता था।

वास्तव में हम लोगों की ओरिजिनल ग़लती यही थी कि हम सब एक-दूसरे की अपनी ज़िम्मेदारी समझते थे, और ज़िन्दगी के बारे में निहायत गम्भीर, भारी-भरकम कल्पनायें लिए बैठे थे।

"अप्पी क्या करेंगी—अभी तो वे विलायत भी नहीं जा सकतीं।" उसने चिंता प्रकट

करते हुए कहा।

"विलायत जाना ही तो सारे दुःखों का इलाज नहीं है।" मैंने कहा। फिर मुझे एक भयानक ख़याल आया—अप्पी....क्या लाज की तरह मैं उनको विदा नहीं कर सकूँगा ? अप्पी की शादी किससे होगी ? उनकी ज़िन्दगी में ख़ुशी किस तरह प्रवेश करेगी ? भैया साहब किस क़दर कमीने ज़लील इंसान हैं ! मेरी आँखों में आँसू आ गए। मगर भैया साहब तो शादी करना चाहते थे। अप्पी ही ने इंकार कर दिया था। मुझे मालूम था वह किस तरह स्वाभिमानी हैं—प्रतिष्ठा, इज़्ज़त, वग़ैरह—ये शब्द उस उम्र में मुझे, हम सबको बहुत महत्त्वपूर्ण और ज़ोरदार लगते थे। इन शब्दों के अर्थ भी बदलते रहते हैं—यह हमें मालूम न था। न मुझे—न अप्पी को—न शायद चम्पा बाजी को...

क्योंकि हम अभी बहुत कम-उम्र थे।

ट्रेन अब शहर के बाहर के इलाक़ों में दाख़िल हो रही थी। खिड़की में से हवा का झोंका कम्पार्टमेंट में आया। उसमें आम के पत्तों की महक थी। अब मीलों दूर तक आलमबाग़ का सिलसिला फैलता आ रहा था। बारिश में भीगी अनगिनत रेल की पटरियाँ, रेलवे-वर्कशॉप, किनारे-किनारे पर फूलों में छुपे हुए बंगले, जिनके सामने एंग्लो-इण्डियन बच्चे खेल रहे थे। फिर ट्रेन आहिस्ता-आहिस्ता आलमबाग़ को छोड़ती हुई चारबाग़-जंकशन में दाखिल हुई। स्टेशन की लाल पत्थर की राजपूत, मुग़ल तर्ज की सैकड़ों गगनचुंबी बुर्जियों, गुंबदों, मीनारों वाली लम्बी-चौड़ी इमारतों का सिलसिला जब एकदम आँखों के सामने आ गया तो दिल डूब-सा गया। हम लखनऊ पहुँच गए। मैंने दिल में कहा—घर आ गया—घर।

प्लेटफ़ॉर्म के साफ़-सुथरे सुरमई फ़र्श पर लोग धीमी गति से इधर-उधर चल-फिर रहे थे। चीख़-पुकार थी। लेकिन इस सारे शोर में तैरते हुए वे उर्दू जुमले और फ़िकरे कानों में आते थे, जो पंडित रतननाथ 'सरशार' ने अपने नाविलों में लिखे थे।

हम लखनऊ पहुँच चुके थे।

स्टेशन की बरसाती में मोटर दाख़िल हुई। मोटर क़दीर चला रहे थे।

मोटर में बैठ कर हम लोग ट्रांसगोमती-सिविल लाइंज की ओर चले। शंकर को सिंघाड़े वाली कोठी उतारते हुए मैं घर पहुँच गया।

(अब ख़ामोशी छा गई और भरपूर अँधेरा। जैसे वे सब कुछ याद करते हों और याद न आता हो। फिर यह अन्दर का ब्लैक-आउट ख़त्म हुआ और कमाल ने दोबारा कहना शुरू किया :)

तीसरे पहर का वक़्त था। स्टेशन से जब मैं घर पहुँचा, अप्पी अपने कमरे में बैठी एकनामिक्स के नोट्स बना रही थीं। अम्माँ बेगम और ख़ाला तख़्तों वाले कमरे में बैठी थीं। क़दीर की बीवी बड़ी लगन से पान बना रही थीं। मैं कोठी के ख़ामोश कमरों में इधर-उधर घूमता रहा। फिर मैंने उकता कर शंकर को फ़ोन किया। मालूम हुआ वह स्टेशन से लौट कर नहाने और कपड़े बदलने के बाद फ़ौरन फिर बाहर चला गया है।

आख़िर मैंने साइकिल उठाई और कैलाश होस्टल पहुँचा। वहाँ मालूम हुआ कि चम्पा बाजी अभी नहीं आई हैं। वे अपने मामू मियाँ के यहाँ वज़ीर हसन रोड ही पर हैं। मैं भैंसा-कुण्ड की तरफ़ रवाना हुआ।

चम्पा बाजी के मामू मियाँ के मकान में लॉन पर हमेशा धूप की सुर्ख़ और सफ़ेद धारियों वाली छतिरयाँ लगी रहती थीं। मैं अन्दर गया। वे एक छतरी के नीचे बैठी थीं।

वे बड़ी लगन के साथ इकनामिक्स के नोट्स बना रही थीं।

दूसरी कुर्सी पर भैया साहब बैठे कुछ पढ़ रहे थे। ये लीजिए वे तो यहाँ मौजूद थे। मुझे आता देख कर वे उठे, और 'हैलो कमाल, मसूरी से लौट आए।' कहते हुए बरसाती की तरफ़ बढ़े। उधर ही उनकी साइकिल खड़ी थी। दूसरे ही पल वे फाटक से बाहर जा चुके थे।

मुझे बड़ा अजीब-सा लगा।

आख़िर मैं एक डक-चेयर साये में घसीट कर बैठ गया।

"बड़ी घाम है।" चम्पा बाजी ने बेध्यानी से पेड़ों की ओर देखते हुए कहा।

"भैया इतनी जल्दी उठ कर क्यों चले गए?" मैंने कोशिश करके रेडियो के स्क्रिप्ट पर ध्यान देते हुए कहा, जो मैं साथ लेता आया था। 'हवापुर यूनिवर्सिटी का कैन्वोकेशन'—मैंने बेदिली से देखा।

"अल्लाह बेहतर जानता है—या तुम—तुम उनके कज़िन हो...।"

"बजिया—यह रहा आपका पार्ट, लीजिए।"

"तुम्हारे घर में..." उन्होंने काग़ज उठा कर कहा—"मैंने सुना है कि एक क्राइसिस आ गई है।"

"बजिया, यह दूसरा स्क्रिप्ट कमला को दे दीजिएगा।"

"तुम्हारा हमज़ाद हरिशंकर—तुमने उसे कहाँ रवाना कर दिया? वह आया नहीं तुम्हारे साथ !"

"पता नहीं, कहाँ है इस वक़्त। दिन भर तो वह भैया साहब के साथ ही घूमता रहा है।"

"तुम लोग किस क़दर ड्रैमेटिक हो।" चम्पा ने कहा।

मैंने उनको ग़ौर से देखा। वे मेज़ के किनारे उँगलियाँ रखे यों बैठी थीं, जैसे वह उनका हाथ नहीं था, कहीं और से वहाँ आ गया था।

"कहाँ गए हैं तुम्हारे भैया साहब?"

"देवी क्या उदास थी, हम सबसे खफ़ा थी?"

अन्दर रेडियो से ज्ञानवती के गाने की आवाज़ आ रही थी। दुनिया में सुरक्षा का एहसास था और बहुत शान्ति और अत्यंत बेचैनी और जुलाई की धूप !

(फिर तलअत ने कहना शुरू किया)—"फ़िटन मोड़ पर से उतरती, सड़क के गढ़ों पर से गुज़र कर एक धचके के साथ सिंघाड़े वाली कोठी में दाख़िल हो गई। यह उसी साल की बात है जब अप्पी की मँगनी टूटी।

लाज अन्दर से निकल आई। उसने केसरिया साड़ी बाँधी है। उसकी शादी हो चुकी है। उसके पाँव में बिछुए हैं। अप्पी उसके साथ-साथ बरसाती में आ गईं। अप्पी ने अभी बिछुए

नहीं पहने। सिर्फ़ वे लड़कियाँ जिनका ब्याह हो जाता है यह ज़ेवर पहन सकती हैं। जब अप्पी का ब्याह होगा और ये बिछुए पहनेंगी तब उनके छोटे-छोटे पाँव ख़ूबसूरत लगेंगे। बरामदों के ठंडे फ़र्श पर नंगे पाँव साड़ी का पल्लू आगे डाले, कुंजियों का गुच्छा कमर में उड़साये वे घर के धंधे में सहज अभिमान और गम्भीरता के साथ इधर-उधर लगी नज़र आएंगी।"

"मगर ब्याह को तो, आज क़दीर की बीवी कह रही थीं कि उन्होंने मनाही कर दी है।"

मैं गाड़ी से कूद कर अन्दर भागी।

"अप्पी आप यहाँ कब से आई हुई हैं? स्टेशन से आकर कमाल भैया आपको पूछ रहे थे। अभी, जब मैं शकीला को उतारने के लिए भैंसा-कुण्ड की तरफ़ से गुज़री तो वहाँ चम्पा बाजी के लॉन पर दोनों को मैंने बैठे देखा।"

"कौन दोनों...?"

"भैया साहब और कम्मन भैया...छतरियों के नीचे। वह अमलतास का पेड़ नहीं है, चम्पा बाजी के मामू के घर में—वहीं। हमारी फ़िटन सड़क पर गुज़रती देख कर उन्होंने बड़े ज़ोर से हाथ हिलाया और मुस्कराईं। बेहद ख़ूबसूरत लग रही थीं।" मैंने तत्परता से एक साँस में सब बता दिया।

अप्पी और लाज ख़ामोशी से क्यारियों की रविश पर से गुज़रती बरसाती की ओर बढ़ गईं, जैसे उन्होंने मेरी बात ही नहीं सुनी।

मैं चमेली की झाड़ी फलाँग कर निर्मला की ओर चल दी। वह और मालती ऊपर म्यूज़िक-रूम की बुर्जी में बैठी थीं।

"भैयन तो मिर्ज़ापुर और दिल्ली गये थे ना?" मालती ने पूछा।

"हाँ, सुबह ही आए हैं। मगर आने के साथ ही सीधे पहुँचे चम्पा बाजी के यहाँ। इस समय वहीं डटे होंगे।" निर्मला ने कहा।

"चम्पा बाजी को उस दिन मैंने गायत्री के घर पर देखा था। लाल-हरे लहरिये की साड़ी पहने इतनी सुन्दर लग रही थीं कि क्या बताऊँ !" मालती ने कहा।

"भैयन तो हमारे लिए भी इस क़दर प्यारी जयपुरी चुनरी लाए थे कि बस ! जब कमाल भैया के साथ राजपूताना गए थे तब"—निर्मला ने रौब डाला।

"चुनरियाँ पहनना मैं तो छोड़ चुकी हूँ। मेरा मन ऊब गया है।" मालती ने लाज और अप्पी के लहजे की नक़ल करते हुए कहा।

"मैंने ऐसा सुन्दर लहँगा बनवाया है दिवाली के लिए...सेर भर तो उस पर गोखरू ही होगी। लल्लूलाल जुगल किशोर के यहाँ से।" निर्मला ने सूचना दी।

यह गोखरू और बुनत वाले जोड़े साल के साल ही नसीब होते थे। दिवाली, ईद-बकरीद और बस ! अप्पी वग़ैरा के ठाठ थे कि वे रोज़ पार्टियों के लिए एक-ऐ-एक बढ़िया साड़ियाँ और ढीले पायजामे अपनी अल्मारियों से निकालती थीं। अपनी हालत तो यह थी कि सवेरे नीला ट्यूनिक लादा और पढ़ने चले गए। शाम को वापस आकर दूसरा कोई मनहूस फ्रॉक पहना और तानपूरा सँभाले मैरिस-कॉलेज चले जा रहे हैं कुत्तों की तरह। जब से जंग छिड़ी

थी और पेट्रोल राशनिंग से मिलने लगा था, फ़िटन ही अपनी क़िस्मत में लिखी थी। मोटर सिर्फ़ माता-पिता की सवारी के लिए सुरक्षित थी। ईद-बकरीद, इस बेचारी की हालत पर तरस खाकर जोड़ा बनवा दिया जाता। अब उसे लादे, हाथों में ढेरों चमाचम करती बनारस की नगोंवाली चूड़ियाँ पहने, बेगमों की तरह ठस्से से तख़्त पर चढ़े बैठे हैं—कोई नोटिस नहीं लेता। 'ये क्या फ्रैंसी ड्रेस किया है !' कमाल दहाड़ता ! 'सुना है, आज बरेली की सारी काजल की दुकानों में डाका पड़ गया।'—भैया साहब फ़रमाते। 'यह काजल की लकीर के एक्सटेन्शन का क्या मतलब है?' 'अगर ढीला पायजामा पहना है तो क़रीने से बैठो, पेड़ों पर क्यों चढ़ रही हो, नेकबख़्तो।'—ख़ाला बेगम कहतीं। तीज-त्यौहार का दिन यों चीख-पुकार में कटता। फिर निर्मला की इज़ार[1] और हमारा ढीला पायजामा अगले त्यौहार के लिए उठा कर रख दिए जाते। दूसरे दिन से फिर वही मोची के मोची।

निर्मला और मालती जब चुनरियों का ज़िक्र ख़त्म कर चुकीं तो अब निर्मला ने गहनों का क़िस्सा निकाला। उस 'भात' पर समीक्षा की गई जो विजय मामा लाज के लिए लाने वाले थे। उसमें पन्ने का जुगनू किस क़दर ख़ूबसूरत था। हमारे मामा भी जो भात लेकर आएँगे उसमें पन्ने का जुगनू होगा। फिर, अप्पी को जबर्दस्ती सारे गहने पहनने होंगे। भैया साहब हाथी पर बैठ कर आएँगे। अप्पी के चेहरे पर वह सफ़ेद बुन्दकियों वाली सजावट कितनी सुन्दर लगेगी, और अफ़शाँ। फिर छाज में सात क़िस्म का अनाज रख कर उसमें दिया जलाया जाएगा। अप्पी के हाथों में चाँदी का कँगना बाँधा जाएगा और इमाम बाँदी मंगल गाएँगी और भैया साहब दूल्हा बन कर कैसे अच्छे लगेंगे !

मगर उसी वक़्त मुझे क़दीर की बीवी की बात याद आई। जब मैं कॉलेज से लौट कर चाय की मेज़ पर बैठी थी तो क़दीर की बीवी ने मक्खनदानी सामने रखते हुए बड़े रहस्यपूर्ण अन्दाज से मुँह लटका कर कहा था—"बड़ी बिटिया ने ब्याह के लिए मनाही कर दी।"

"अप्पी के ब्याह में पहनने के लिए मैं तो बड़ी बढ़िया साड़ी बनवाऊँगी—कारचोबी...।" निर्मला कह रही थी।

फिर सहसा तलअत ख़ामोश हो गई, "देखो !" उसने कमाल से कहा, "मैंने आज यह महसूस किया है कि मेरा बीता हुआ ज़माना सिर्फ़ मेर लिए महत्त्व रखता है। दूसरों के लिए—दुनिया के लिए उसका कोई अर्थ नहीं है—उनको इससे कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती है।"

"मेरा अतीत सिर्फ़ मेरा है।" कमाल ने तलअत की बात दोहराई।

"और, दुनिया को सिर्फ़ 'वर्तमान' से दिलचस्पी है—" हरिशंकर की आवाज़ गूँजी।

"लेकिन अतीत वर्तमान है। वर्तमान अतीत में शामिल है और भविष्य में भी। वक़्त के इस इंद्रजाल ने मुझे बहुत हैरान कर रखा है।" तलअत ने उदासी से कहा। "मैं वक़्त के हाथों आजिज़ आ चुकी हूँ। तुममें से कोई मेरी मदद क्यों नहीं करता?"

"तुम्हारी मदद, तलअत बेगम, शायद आइंस्टाइन भी नहीं कर सकता।" हरिशंकर ने कहा।

"मेरे अतीत से दूसरों को क्या दिलचस्पी हो सकती है।" कमाल ने फिर ज़िद से दोहराया।

1. यू. पी. की अविवाहित कायस्थ लड़कियों का गरारे की तरह का पायजामा।

"वक़्त बराबर मौजूद है। वक़्त लगातार वर्तमान है।" तलअत ने कहा।

ये लोग जो लंदन के एक फ्लैट में बैठे सन् 1954 ई. में ये बातें कर रहे थे, उनकी परछाइयाँ खिड़कियों के शीशों पर प्रतिबिम्बित हो रही थीं। बाहर तेज़ हवा चल रही थी। सड़क पर मोटरें आ-जा रही थीं। रेडियो से वियाना के किसी कंसर्ट की आवाज़ आ रही थी।

वक़्त के इसी अँधेरे में तलअत सन् 1940 की जुलाई में सिंघाड़े वाली कोठी के बरामदे में बैठी निर्मला और मालती से बातें कर रही थी। इस तलअत में और उस लड़की में कोई अन्तर न था। मगर दोनों दो विभिन्न हस्तियाँ थीं। महात्मा बुद्ध शाक्य मुनि ने कहा था कि मनुष्य हर क्षण बदलता रहता है। मनुष्य बचपन में कुछ और होता है और जवानी और बुढ़ापे में कुछ और। तुम इस क्षण से पहले नहीं थे। केवल निरन्तरता शेष रहती है। पहाड़ों पर ग्लेशियर टूट-टूट कर बह रहे थे। हवाएँ, अँधेरा—समय, जो तरल था—समय, जो बर्फ़ में जमा हुआ था।

"हम अपना क़िस्सा दोहरा कर अपना इत्मीनान करना चाहते हैं।" हरिशंकर ने कहा—"क्योंकि हम बहुत भयभीत हैं।"

"हम समय से और अँधेरे से डरते हैं, क्योंकि वक़्त एक रोज़ हमें मार डालेगा और अँधेरा हमारी शरण लेने की आख़िरी जगह होगी।" तलअत ने कहा।

"और गौतम नीलाम्बर का इस समय ज़िक्र न करो। तुम असल विषय से बहुत दूर हट रहे हो। तय यह करना है कि ज़िन्दगी में असल विषय क्या है?" कमाल ने कहा, "मैं चौदह साल पहले भी मौजूद था और अगर जिन्दा रहा तो चौदह साल बाद भी हरिशंकर ही समझा जाऊँगा और, जब वक़्त के सारे अनुभव हम अपने ऊपर कर लेंगे तो यह जो छोटे-छोटे गिनीपिग हम लोग हैं, हम भी ख़त्म हो जाएँगे और इनके अलावा और सब भी जिनका इस कहानी में ज़िक्र है।"

(वक़्त के पैटर्न में तलअत वहाँ बैठी थी, मगर वही उसी पैटर्न में एक जगह और भी मौजूद थी। और, दोनों बिन्दुओं के बीच बरसों का फ़ासला था। और, इस अन्तर पर इन्सान सिर्फ़ आगे की ओर चल सकता था—आगे और आगे ! पीछे जाना असम्भव था; गो कि हज़ारों तलअतें अनगिनत टुकड़ों में बिखरी, अनगिनत जगहों पर मौजूद थीं, जैसे दर्पण के टूटे हुए टुकड़ों में एक ही चेहरे के अलग-अलग प्रतिबिम्ब नज़र आते हैं।)

36

लखनऊ—1940 ई.।

अब दिए सारे में जल चुके थे। नदी के किनारे डोंगियों में दिये जले। नदी ने अपना सफ़र जारी रखा। बरामदे में लैम्प जला दिये गए थे। लौ पर बरसाती परवाने चक्कर काट रहे थे।

लड़कियाँ बरामदे में बैठी रहीं।

सीतलपाटी पर ऊदे रंग का ज़री का लहँगा फैला दिया गया, जिसकी गोट बड़ी सावधानी से तलअत काट रही थी। गोट काटने में तलअत बड़ी उस्ताद समझी जाती थी। लाज एक

ओर को ज़रा उदासीनता से बैठी यह दृश्य देखती रही। पास ही मालती रायज़ादा बैठी थी।

फिर जब रात अधिक हो गई तो नीचे से गंगादीन ने जो अब तक हौज़ की मुंडेर पर बैठा महरी से बातें कर रहा था, आवाज़ लगाई—"बिटिया, अब चलिए।"

मालती को शहर जाना था। वह बारूदख़ाने में रहती थी।

"भैयन आ जाएँ तो मोटर से तुमको पहुँचा आएँगे।" लाज ने उससे कहा।

तलअत उन सबको शुभ रात्रि कह कर नीचे उतरी और अब फ़िटन ने राय बिहारी लाल रोड की ओर चलना शुरू किया।

कुछ फ़र्लांग चलने के बाद फ़िटन एक बड़ी-सी सीमेंट की कोठी में दाखिल हुई, जिसके बाग़ में रात की रानी महक रही थी। घर के सब लोग पिछले चबूतरे पर बैठे थे।

कुर्सियाँ बिछी थीं। पलँग के पास टेबल-फ़ैन रखा था। सुराहियाँ घिडौंची पर धरी थीं, जिन पर चमेली के गजरे लिपटे हुए थे। चबूतरे के सिरे पर छतवाला रास्ता था जो खाने के कमरे से सीधा बावर्चीख़ाने की तरफ़ जाता था। उधर से बघार की सुगन्ध आ रही थी। बरामदे में नमाज़ की चौकी बिछी थी। नीचे बहुत से बड़े लोटे एक पंक्ति में रखे जगमगा रहे थे।

"कहो, गोट काट आई ?" अम्मा बेगम ने नमाज़ की चौकी पर पाएँचे समेट कर चप्पलों में पैर डालते हुए कहा।

"अल्लाह रहम करे। लाज बेचारी के दहेज के कपड़े हैं। इन पर मश्क मत करो। बेचारे राय साहब के यहाँ इतने अलल्ले-तलल्ले नहीं हैं कि तुम लाज के कपड़े काट-पीट कर बराबर कर दो, तो नए बनवा दिये जाएँ" कमाल ने किताब पर से सिर उठा कर आवाज़ लगाई। वह बरामदे में दरवाज़े के पास टेबल-लैम्प जलाये पढ़ रहा था। अप्पी खाने के कमरे में कुछ सटर-पटर कर रही थीं। हाथ में एक डिश लिए जब वे बावर्चीखाने की ओर से आती नज़र आईं तो तलअत ने उनको आवाज़ दी।

"अप्पी, कल लाज ने तुमको बुलाया है।"

"अच्छा।" वे बावर्चीखाने में दाखिल हो गईं।

"लाज बाहर नहीं निकलती—क्या अभी से माइयों बैठ गई है ?" ख़ाला बेगम ने पूछा।

"जाने अभी से उसका ब्याह कर देने का क्या तुक है।" कमाल बड़बड़ाया।

"गौना तो उसका बी. ए. के बाद होगा। क्या हर्ज़ है। मैं तो कहती हूँ बड़ी बिटिया का भी इसी तरह ब्याह कर देना चाहिए। निकाह हो जाए, रुख़सती अपने जब दिलों में आए तब होती रहेगी।" ख़ाला बेगम ने कहा।

अप्पी के ब्याह का मामला फिर से छिड़ गया। तलअत गुनगुनाती हुई अपने कमरे की ओर चली गईं।

यह मकान 'गुलफ़िशाँ' कहलाता था। सामने राय बिहारी लाल रोड बड़ी ख़ामोश सड़क थी। दोनों तरफ़ जो कोठियाँ थीं, उनके फाटकों पर नामों की पट्टियाँ चुपचाप अपने वास्तविक यथार्थ की घोषणा करती रहतीं—नाम, लोग, ख़ानदान, अस्तित्व के तानेबाने, झमेले। 'गुलफ़िशाँ' के फाटक के अन्दर एक हौज़ था; और खम्भों पर बनी सीमेंट की एक नाली बाग़ की सड़क के साथ-साथ पीछे के बड़े हौज़ तक जाती थी, जिस पर अमरूद का एक पेड़ झुका हुआ था। इस हौज़ के ऊपर पानी की एक मोटर लगी थी। नाली के साथ-साथ चलो तो रास्ते

में खाने के कमरे की फ्रेंच खिड़की पड़ती थी, जिसमें स्टैण्ड पर लोटा रखा रहता था। इसमें रोज़ ताज़े पत्ते डाले जाते थे। इस फ्रेंच-दरीचे में से झाँको तो अन्दर खाने का कमरा दिखाई देता, और उसके आगे गोल कमरा, जिसमें शीशे के लम्बे-लम्बे दरीचे थे। गोल कमरे के तीन तरफ़ बरामदा था। उसमें भी शीशे की खिड़कियाँ लगी थीं। उसमें बैंत का सोफ़ासेट पड़ा था। बरामदे के एक सिरे पर भैया साहब का कमरा था। बरामदा सारी कोठी का चक्कर लगा कर बाजू के चबूतरे पर ख़त्म होता था, जहाँ बरसाती थी। उसके आगे मोटरगेराज की ओर सड़क जाती थी। फिर पीछे के भाग में दो लॉन थे। उनके बाद शहतूत के पेड़ और उसके पीछे सीमेंट के बने नौकरों के क्वार्टर्स, जो बड़ी-सी कॉटेज के ढंग के थे। यहाँ सरकन्डे लगा कर नौकरों ने अपने-अपने लिए आँगन बना लिए थे। 'गुलफ़िशाँ' के एक तरफ़ खुला मैदान था; जिसके आगे धोबियों की झोंपड़ियाँ थीं और पान वाले की गुमटी। एक बार गुलाबी जाड़ों में क्या हुआ कि निशातगंज की बस्ती के लोगों ने इस मैदान में आकर वालीबाल के दो खम्भे गाड़ दिए और एक फटी-पुरानी जाली इन खम्भों से बाँध दी। अब शाम-पड़े ग़रीब लोग आकर वालीबाल खेला करते और झुटपुटे में उनकी आवाज़ें गूँजा करतीं। तलअत पिछले बरामदे में तख़्त पर बैठी उनकी आवाज़ें सुना करती और होमवर्क करती जाती। पिछले लॉन के बीच में चौड़ा-सा रास्ता था। रामऔतार माली घंटों खुरपी लेकर निरुद्देश्य इधर-उधर घूमता—कभी किसी पेड़ के तने में खुरपी खोंस कर आसमान की ओर देखता रहता और तोतों को आम के पेड़ों से उड़ाने के लिए अजीब-अजीब आवाज़ें हलक से निकालता।

'निचले' वर्ग के लोगों ने महीना भर ही वालीबाल खेला होगा कि कोठियों में रहने वालों ने मैदान के मालिक से शिकायत की—इनकी वजह से वातावरण में फ़र्क़ आता है। उसके बाद से वालीबाल वालों का आना बन्द हो गया और मैदान में फिर सन्नाटा छा गया।

अहाते के पीछे एक मन्दिर भी था। सुबह इसके घन्टे टनटन बजा करते। मन्दिर के निकट धोबियो के चौधरी का पक्का दुमंज़िला मकान था। रविवार के दिन सुबह-सुबह इजाबेला-थॉबर्न कॉलेज की ईसाई लड़कियाँ धोबियों की बस्ती में धर्मोपदेश के लिए आतीं। उर्दू भजन गाये जाते और मिठाई बाँटी जाती। बराबर की कोठी में चक्रवर्ती साहब थे जो सुपरिटेन्डेंट इंजिनियर थे। उनके लड़के का नाम अनिल था। लड़की का रेखा जो सोने के बंगाली तर्ज़ के टाप पहनती थी जिसमें झालर लगी होती है। ये लोग ढाका के रहने वाले थे।

अनिल कॉलेज में अपनी सुंदरता के लिए बहुत प्रसिद्ध था और सुना गया था कि सुजाता से उसका ब्याह होगा। सुजाता और नंदबाला दो बहनें थीं जिनके बाप यूनिवर्सिटी के किसी महत्वपूर्ण विभाग के अध्यक्ष और बहुत प्रसिद्ध साइंसदान थे। सुजाता गुलफिशाँ से चौथी कोठी में रहती थी। उसके आगे अर्चना और प्रभाती रहती थीं ये जुडवां बहने थीं और उनके बाप दर्शन शास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे। उनके घरों में पलंगों के बजाय तख़्त बिछे थे और हर कमरे में रामकृष्ण परमहंस की तस्वीरें थीं जो बंगाल के बहुत बड़े संत थे। उसके आगे जसपाल्ज़ की कोठी थी जिनकी लड़कियाँ यूनिवर्सिटी में पढ़ती थीं तथा सुंदरता और प्रतिभा के लिए बेहद प्रसिद्ध थीं। इस तरह और बहुत-सी कोठियाँ थीं। उनमें एक ही तरह के लोग रहते थे। इन सबके यहाँ मोटरें थीं ओर टेलीफोन लगे थे। सुबह होती तो इनकी लड़कियाँ साइकिलों पर अपने-अपने फाटकों से निकल कर इजाबेला-थॉबर्न कॉलेज या यूनिवर्सिटी की ओर चल

देती थीं। यह बड़ा दृढ़ और मज़बूत समाज था। ये बड़े शरीफ़ लोग थे। रख-रखाव वाले समृद्ध और प्रतिष्ठित। इनके यहाँ के रिवाज़ भी एक से थे। रंज और खुशियाँ और समस्याएँ एक-सी थीं। इनके फ़र्नीचर, इनके बाग़ों के पौधे, इनकी किताबें, वस्त्र, सब चीजें एक-सी थीं। इनके नौकर--इनके काम--इनकी दिलचस्पियाँ।

तलअत के यहाँ का ख़ानसामा भी उसी क़िस्म का था, जैसे और सब कोठियों में ख़ानसामा थे। उसका नाम हुसैनी था।

सारे बावर्चियों के नाम हुसैनी, हुसैनबख़्श, या मदारबख़्श होते हैं। सारे धोबी नत्थू कहलाते हैं। सब कोचवान गंगादीन हैं। सारी नौकरानियों के नाम बुलाकन, रसूलिया, हमीदन की माँ और मंजूरुन्निसा होते हैं। सारे बैरे 'अब्दुल' कहलाते हैं, जिस तरह होटलों में वायलिन बजाने वाला अदबदा कर 'टोनी' होता है; सारे बापों का नाम ख़ान बहादुर, तकी रज़ा बहादुर होता है।

उपन्यासों वाले बापों का नाम भी यही होता है और असलियत वाले बापों का भी। तभी तो कहा जाता है कि उपन्यास यथार्थ का चित्रण करते हैं। वैसे इधर-उधर की हाँकने की दूसरी बात है।

हुसैनी को अम्माँ ने तलअत का एक पुराना ओवरकोट दे दिया था। ओवरकोट जिसके कॉलर पर फ़र लगा था। अब फ़र का फ़ैशम ख़त्म हो चुका था। इसलिए तलअत उसे कहाँ पहनती ? और, हुसेनी सुबह-सुबह बावर्चीख़ाने की ओर जाते हुए छतवाले रास्ते में सूँ-सूँ करता हुआ गुज़रता और सौदे के पैसे लेने के लिए कमरे में आता। अब वह ख़ाकी रंग का फ़रकोट पहने काम करता ऐसा मसख़रा मालूम होता कि जिसकी हद नहीं। क़दीर उस पर खुशदिली से हँसते--"मेम साहब आवत हैं--हट जाओ रास्ते से !"

क़दीर मोटर ड्राइवर--जब तलअत चार साल की थी, कमाल आठ साल का था और भैया साहब स्विट्ज़रलैण्ड में थे--तब आकर इनके यहाँ नौकर हुआ था। क़दीर मिर्ज़ापुर का रहने वाला था और बेहद दिलचस्प। उसकी बीवी का नाम कमरुन्निसा था और बच्चे का फद्दन। जब तलअत के बड़े अब्बा इटावे में नियुक्त थे तो एक मर्तबा फद्दन को जिले के बेबी-शो में ले जाया गया और उसे पहला इनमा मिला। अब पूछिये, क्या इनाम मिला ?--एक गाढ़े की छपी हुई छोटी लड़कियों के पहिनने की साड़ी और एक झुनझुना। क़दीर के यहाँ उस दिन ईद हो गई। फिर एक रोज क़दीर को क्या सूझी कि कैमरा लूंगा। अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ घर में सबको दिखाते फिरे। 'अय बिटिया, अय बेगम साहब....यह कैमरा कितने का है ?' पूछो, मियाँ क़दीर, तुम कैमरा क्या करोगे ?--'बेगम साहब फोटो खींचा करूँगा। खुदाय-से मुझे फोटोगराफी का बहुत शौक है।'--फिर क़दीर ने अपनी तनख़्वाह में से पैसा बचा-बचा कर डेढ़ सौ रुपये का कैमरा मँगवाया; और तीन टाँगों वाला स्टैण्ड और मोर और महल वाले पर्दे। अब दोनों मियाँ-बीवी ने सर्वेण्ट-क्वार्टर के सामने सरकण्डे खड़े करके बक़ायदा स्टूडियो बनाया और घर भर की तस्वीरें खींचनी शुरू कर दीं। हायपो और यह और वह--न जाने कौन-कौन से सामान मँगवाये गए। उन्होंने अप्पी और भैया साहब और तलअत और कमाल और सबकी तस्वीरें खींच डालीं। चित्रों के लिए क़दीर की कल्पना-शक्ति बड़ी ज़ोरदार थी। अप्पी बैठी सितार बजा रही हैं; पर्दे पर मोर नाच रहा है; महल के ऊपर चाँद निकला है, हौज़ पर परियाँ खड़ी

हैं। अप्पी क़लम हाथ में लिए दार्शनिकों की तरह बैठी हैं। कमाल अपने सारे कप और ट्रॉफियाँ सँभाले खड़े हैं। भैया साहब टेनिस का रैकेट हाथ में लिए मुस्कराते हैं। ख़ाला बेगम और अम्माँ बेगम बड़ी गम्भीरता से हाथ घुटनों पर रखे बैठी सामने की ओर देख रही हैं। निर्मला और लाज राधा और कृष्ण की ड्रेस में खड़ी हैं। निर्मला के हाथ में बाँसुरी है और वह सख़्त टिपिकल वाला कृष्ण का पोज़। हरिशंकर किताब का अध्ययन कर रहे हैं। तस्वीरों के पोज़ के बारे में क़दीर की अटल थियोरीज़ थीं और इस मामले में वे किसी राय को बरदाश्त नहीं कर सकते थे। अपनी मनमानी करते थे अतः उनके माडलों को बिना चूँ-चाँ किए उनका हुक्म मानना पड़ता था। अब फ़ुर्सत के वक़्त मियाँ-बीवी बैठे तस्वीरें धो रहे हैं, सुखा रहे हैं। आठ-आठ आने की लागत में एक पोस्टकार्ड-साइज़ तस्वीर बनती थी।

अपना-अपना शौक़ होता है।

गर्मियों की दोपहरों में जब सारा घर सो जाता तो नौकरों के कॉटिज से क़दीर के आल्हा गाने की आवाज़ आती। कभी जाकर देखो तो मियाँ क़दीर ड्यौढ़ी पर उकड़ूँ बैठे पेट्रोल का खाली टीन बजा रहे हैं। कमरुन एक ओर को बैठी कुरोशिया से जाली बना रही है। आपको आते देखा, फौरन पीतल की पनदनिया खींच कर पान बनाना शुरू कर दिया। कमरुन पूरब की सारी औरतों की तरह बेहद साँवली-सलोनी और सुबुक बीवी थी। एक ही वतन की होने के नाते लाज और निर्मला की माता से उनकी बड़ी मित्रता थी। अक्सर सिंघाड़े वाली कोठी में बुलवाई जातीं। या जब मिसेज रायज़ादा 'गुलफ़िशाँ' आतीं तो तुरंत कमरुन की तलबी होती। रंगीन किनारे वाली गाढ़े की धोती बाँधे, जिसका पल्लू सामने पड़ा होता, घूँघट निकाले, वह बाग़ के रास्ते चबूतरे पर पहुँचतीं और उनके पैरों के झाँझन सूचना देते कि बहन कमरुन्निसा आ पहुँचीं।

एक रेशमी साड़ी भी थी बहन कमरुन के पास, जो पूरे अठारह रुपये में ख़रीदी गई थी, और वह भी कलकत्ते में। जिस रोज़ कोठी में कोई उत्सव होता, वे रेशमी साड़ी और अपने सारे चाँदी के ज़ेवर पहन कर घूँघट निकाले आकर चुपचाप काम में जुट जातीं। मेहमान-बीबियों का स्वागत करतीं और उनको सलीक़े से बिठातीं।

कमरुन और क़दीर दोनों किसानों की औलाद थे। ड्राइवर बनने से पहले क़दीर अपने जिले की किसान-सभा में शामिल थे और चर्खे का प्रचार करते फिरते थे। यह वह ज़माना था जब मोतीलाल नेहरू का विलायत-पलट बेटा जमींदारी की जड़ें खोदने के लिए तुला हुआ था, गाँव-गाँव घूमता था, किसानों की झोंपड़ियों में रहता था, और अवध के किसानों का नेता बना हुआ था। ताल्लुक़ेदारी सिस्टम ने किसानों की जो दुर्गति बना रखी थी, उससे क़दीर से अधिक परिचित कौन हो सकता था। इसीलिए जब 'गुलफ़िशाँ' के लॉन पर कमाल के मित्रगण समाजवाद पर लम्बी-चौड़ी बहसें करते, तो क़दीर भी किसी न किसी बहाने जा खड़े होते और उनकी बातों को समझने की कोशिश करते। उनको तो केवल यह मालूम था कि उनके गाँव के जमींदार ठाकुर साहब के सिपाहियों ने एक रोज़ जब लगान न देने पर उनके बाप को डंडों से इस कदर मारा कि वह ख़त्म हो गए तो क़दीर को कलकत्ते जाकर क्लीनरी करनी पड़ी और उनके घर में अब भी रोटियों के लाले पड़े थे।

उन दिनों, यानी सन् 31 ई. के लगभग कांग्रेस ने आन्दोलन चला रखा था कि सरकार

को टैक्स मत दो। गाँव-गाँव यह आन्दोलन चल रहा था। सरकार और ज़मींदार एक तरफ़ थे; किसान और कांग्रेस दूसरी तरफ़। क़दीर के घर एक ज़माने से क़ालीन भी बुने जाते थे, मगर सारा मुनाफ़ा मिडिलमैन ले जाता था। सरकारी पालिसी के आयात के कारण घरेलू उद्योग नष्ट हो चुके थे; ज़मीन पर बोझ बढ़ गया था और ज़मींदार को लगान देना एकदम 'उचित' था। इन्हीं स्थितियों ने क़दीर के बाप की जान ली। मगर, जो कुछ लखनऊ शहर में हो रहा था, वह क़दीर की अक़्ल में नहीं आता था। असन्तोष और बिखराव का मूल कारण आर्थिक था; जमींदार और किसान का संघर्ष था। अंग्रेज़ सरकार इस असन्तोष को साम्प्रदायिक रंग दे रही थी; ताकि जनसाधारण का ध्यान दूसरी ओर लग जाए।

शहर में रह कर कमरुन को अपने मिर्जापुर के गाँव की याद बहुत सताती और साल दो साल बाद छुट्टी लेकर दोनों अपने गाँव हो आते। दोनों पति-पत्नी में बड़ी मुहब्बत थी राम-सीता की जोड़ी जैसी।

कमरुन अभी दस बरस की ही थीं कि उनका ब्याह-गौना सब हो गया था। यह शारदा-एक्ट के ज़माने में भी ग़रीब और छोटे लोग सरकार की आँख में किस प्रकार धूल झोंकते हैं। बी कमरुन अब मर-मर कर पच्चीस साल की हुई थीं। क़दीर उनसे दस-बारह साल बड़े थे। इन दोनों के प्रेम को मिसाल के रूप में दूसरे नौकरों बल्कि सगे-सम्बन्धियों तक के सामने पेश किया जाता था। वैसे बी कमरुन दूसरे नौकरों की बीवियों से मेलजोल नहीं रखती थीं; क्योंकि मोटर ड्राइवर की पत्नी होने की हैसियत से उनका समाजी स्तर सर्वेण्ट-क्वाटर्स की सोसायटी में बहुत ऊँचा था। उनका क़ायदा था कि दोपहर के खाने-पकाने, झाड़ू-बुहारू से फ़ारिग होकर फद्दन को गोद में लिए, कोठी में आ जातीं और अम्माँ बेगम के बैड-रूम में महफ़िल जमती। अम्माँ बेगम तख़्त पर लेटी मासिक 'नैरंग-ए-ख़याल' या 'इस्मत' पढ़ रही हैं, ख़ाला बेगम नमाज़ की चौकी ही पर आड़ी-आड़ी लेटी हैं। कोई मेहमान बीवी आई हुई हैं, तो वह भी किसी मसहरी पर आधी लेटी हैं। पानदान सामने रखा है।

"आ गई क़दीर की बीवी—आओ—बैठो।"

कमरुन बड़ी नजाकत से सबको आदाब करके क़ालीन पर बैठ गई। फद्दन को एक ओर सुला दिया। बाजी अम्माँ ने पान बना कर बढ़ाया।

"कहो बी, आज क्या पकाया था ?" ख़ाला बेगम पूछतीं।

"अरहर की दाल, भात और मंगौचियाँ, बेगम साहब।"

इसके बाद खानों पर टीका-टिप्पणी होती। तरकारियों के भाव और घी के मूल्य पर विचार-विनिमय करने के बाद बातचीत अपने प्रिय विषय पर आ जाती। शादी-ब्याह के क़िस्से, कुनबे की पॉलिटिक्स। किसकी शादी किससे हो रही है, इत्यादि इत्यादि। कमरुन सारी बातचीत में पूरा-पूरा भाग लेतीं, और उनकी राय को महत्त्व दिया जाता। कभी ख़ाला बेगम तख़्त पर लेटे-लेटे कजरियाँ गुनगुनाना शुरू कर देतीं—'भरी गगरी मोरी ढरकाई श्याम'—तो बी कमरुन उनके साथ-साथ नीची आवाज़ में गातीं। उनकी आवाज़ ज़्यादा अच्छी न थी, पर संगत में गा लेतीं।

गाने में मियाँ क़दीर उस्ताद थे। नौटंकी के गाने, थियेटर की ग़ज़लें—(मैं फ़ैशन से, पोज़ीशन से, खाऊँ मटन चाप !!), कजरियाँ, बारहमासे, दादरे, ठुमरियाँ, बिरहा, आल्हा-ऊदल—हर

चीज़ के बादशाह थे। उनकी मनभाती तुकबन्दी की ग़ज़लें ये थीं—

उठाओ न खंजर, मुड़ेगी कलाई !
गला काटो नाज़ुक बदन धीरे-धीरे !!

और—

शबे ग़म की आहें वशर हो रही हैं !
मनाते-मनाते सहर हो रही है !!

गाने में क़दीर शेरों के छन्द आदि पर ध्यान के कायल न थे। उनके पेट्रोल के टीन पर आकर सारे शेर और शब्द एक नया रूप धर लेते थे, जो सिर्फ़ उन्हीं की कला थी। उनकी पसन्द के कुछ शेर भी थे, जो सर्वेंट-क्वार्टर की 'साहित्यिक' गोष्ठियों में पढ़ा करते थे। एक था—

इत्रे गुलाब खुशवू लवण्डर ने छीन ली।
जंत्री की तमाम खबरें कलण्डर ने छीन लीं।।

क़दीर कलकत्ता-पलट थे, इसलिए उनका दर्ज़ा वैसे भी बहुत ऊँचा था। जिसने कलकत्ता देखा, उसने मानो लन्दन, पेरिस, सारी दुनिया देख ली। कमाल और तलअत वग़ैरह के बचपन में वह अक्सर अपने विस्तृत ज्ञान से इन लोगों को लाभ पहुँचाया करते और बच्चे बड़ी श्रद्धा से उनकी बातें गिरह में बाँधते जाते। उदाहरणतः एक रोज़ बनारस की एक तारकोल की सड़क पर क़दीर बच्चों को मोटर में विठलाए कहीं लिए जाते थे। तलअत ने बड़े दार्शनिक ढंग से नाखून कुतरते हुए कहा—"यह पालिश की हुई सड़कें तो बहुत महँगी वनती होंगी—है ना क़दीर ?"

"जी हाँ, विटिया।" क़दीर ने गला साफ करके उसी दार्शनिक ढंग से पीछे मुड़ते हुए उत्तर दिया था—"एक रुपया भर जगह मतलब, सवा इंच सड़क पर पालिश करने का एक ही रुपया खर्च बैठता है।"

"उफ्फोह !" पिछली सीट पर से हैरानी का कोरस हुआ।

"वह कैसे, क़दीर ?" तलअत ने पूछा। वह हमेशा की बेवकूफ़ थी।

"अब यह देख लीजिए—" क़दीर ने वड़ी गम्भीरता से जवाब दिया—"जैसे एक-एक रुपया करके सड़क पर बिछाती चली जाइए—इतने ही रुपये ख़र्च होते हैं।" और, वह खँखार कर चिंतन में डूबे मोटर चलाते रहे।

"एक बार—" उन्होंने बताया कि "कलकत्ते में साहब लोगों ने यह ढिंढोरा पीटा कि जो डरेबर मोटर से मुर्ग़ी मार दे, उसे पच्चीस रुपये इनाम ! बड़े-बड़े डरेबर आए। महाराजा बर्दवान का डरेबर, और बंगाल के लाट साहब का डरेबर। मुर्ग़ी सड़क पर छोड़ी गई। कोई न मार पाया।"

"तुमने मार दी होगी" तलअत ने जिज्ञासा और श्रद्धा से पूछा।

"जी हाँ, बिटिया।" उन्होंने उत्तर दिया।

"इनाम का क्या किया ?" कमाल ने पूछा।

"डरेबर की बीवी के लिए सोने[1] के बुन्दे बनवा दिए।"

1. उस ज़माने में सोना पच्चीस रुपये तोला था।

कमरुन क्योंकि सारे में 'ड्राइवर की बीवी' कहलाती थीं, इसलिए क़दीर भी इन्हें इसी नाम से सम्बोधित करते। तीसरे पहर को कमाल और अप्पी और तलअत और भैया साहब अपने-अपने कॉलेजों से लौटते तो घर में एकदम चहल-पहल शुरू हो जाती। खाने के कमरे में बरतन खनखनाते। चाय की किश्तियाँ तैयार करके विभिन्न कमरों में भेजी जातीं, या सब अम्माँ बेगम के कमरे में जमा हो जाते। एक प्याली चाय कमरुन को बना कर दी जाती। अप्पी और तलअत उनसे विचार विनिमय करतीं। इतने में मोटर बरसाती में दाखिल होती। क़दीर, नवाब साहब को चीफ़-कोर्ट से वापस लाते, जहाँ वह लगभग रोज़ाना मुक़द्दमा लड़ाने के सिलसिले में जाया करते थे। मोटर की आवाज़ सुन कर कमरुन घूँघट काढ़ लेतीं और फद्दन को गोद में उठा कर फिर अपने कॉटेज की ओर रवाना हो जातीं।

वह बेहद रख-रखाव वाली औरती थीं। बरसों अवध में रह लीं, लेकिन अपनी खू-बू न छोड़ी। एक बार हुसैनी ख़ानसामा की बीवी ने उनसे कहा—"ऐ—बहनी, कभी खड़े पाँयचे भी तो पहन कर देखो।" और, कमरुन ने होंठ पिचका कर जवाब दिया था—"हम कोई पतुरिया हूँ जो ई पहनावा पहनी !"—अत: बहन कमरुन्निसा अपनी गाढ़े की सफ़ेद धोती ही पहना कीं, और उसी तरह घूँघट काढ़े घूमती रहीं, जैसे आज ही ब्याह कर आई हों। न ही कभी शहर की मेहरियों की तरह उन्होंने "आती हूँ, जाती हूँ" वाली भाषा सीखी ! जब उन्होंने पहली बार लखनऊ की लड़कियों की बातचीत सुनी—बड़ी बिटिया अपनी किसी सहेली से कह रही थीं—"अल्लाह आप कहाँ जाती हैं ! हुज़ूर, जाए आपका दीन ईमान। ये अपनी अदाएँ तो रखिए छप्पर पै, मैं कह देती हूँ। ज़री मेरे दिमाग में भी ख़न्नास है।" और, कोठी की साहबज़ादियाँ ही क्यों, मेहरियाँ और मामाएँ तक एक से एक फ़िकरेबाज़ पड़ी थीं—तो कमरुन हैरान-परेशान खड़ी सुना कीं। सर्वेण्ट-क्वार्टर में वापस आकर कमरुन खूब हँसीं। क़दीर जब बाहर से काम निपटा कर आए तो उनसे माजरा बयान किया : "शहरन की बीवियाँ पतुरियन-ऐसी होत हैं। सारा पहनावा भी पुतरियन ऐसा बाटै।" क़दीर उनके इस भोलेपन पर बहुत हँसे और उनको दुनिया के हालात का थोड़-सा परिचय दिया कि वह 'पतुरियन' की बोली नहीं। यह टकसाली और बेगमाती ज़बान कहलाती है। तुम भी अब इसी तरह बोला करो—आती हूँ, जाती हूँ। अब तो ख़ैर उनको लखनऊ में रहते दस साल होने आए थे; मगर इसके बावजूद हुसैनी की बीवी से उनकी दोस्ती न हो सकी थी। हुसैनी की बीवी को अपने लखनौवा होने पर बड़ा गर्व था। उनके दादा, परदादा नवाबी के ज़माने में शाही रक़ाबादार थे। कमरुन बेचारी तो क़स्बाती भी नहीं, खालिस देहातिन थीं। लेकिन कमरुन की सामाजिक हैसियत, जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है, हुसैनी की बीवी से ऊँची थी। उन्होंने भी हुसैनी की बीवी का नोटिस कभी न लिया। उनकी तो निर्मला और लाज की माता श्रीमती रायज़ादा के अलावा एक सहेली और थी, उसका नाम रामदैया था। हमवतन होने का नाता बुरी चीज़ होता है। कहाँ रामदैया, जात की अहीरन—रामऔतार माली की बीवी। सुबह-शाम उसका आदमी उसको पीटे। न वह तलअत की आया सौसन की तरह फ़िल्मी गाने गा सके, न हुसैनी की बीवी की तरह घुरसवाँ पायजामा पहन कर ठुमक-ठुमक चलना उसे आए—मगर वही हमवतनी ! परदेस की अजनबी दुनिया में रामदैया ही कमरुन का सुख-दुःख समझ सकती थी। सर्वेन्ट क्वार्टर के समाज में माली का

दर्ज़ा बहुत नीचे पहुँचता था, मगर वहन कमरुन्निसा की हमजोली थी तो रामदैया। रामदैया गोरखपुर की रहने वाली थी। कमरुन की तरह नौ-दस बरस की उम्र में उसका भी ब्याह-गौना सब हो गया था। रामऔतार उससे सिर्फ़ तीस साल बड़ा था। आज से कई वर्ष पहले, कमरुन के यहाँ आने के कुछ समय बाद एक दिन रामऔतार उसे इक्के पर बिठला कर स्टेशन से लाए थे। वह रामबास की लाल साड़ी पहने चेहक्‌-चेहक्‌ रोती उतरीं। पहले उन्हें कोठी में सलाम करवाने के लिए पेश किया गया। इसके बाद वह सर्वेंट-क्वार्टर में दूसरे नौकरों की बीवियों के लिए बातचीत का विषय और बच्चों के लिए तमाशा बनीं। छोटी-सी दस साल की दुल्हन--सबके आख़िर में कमरुन ने उनके पास जाकर उनसे बातें शुरू कीं। मालूम हुआ, यह तो अपने देश की हैं। उनकी बड़ी बहन हरदैया मिर्ज़ापुर ही में कमरुन के गाँव में ब्याही गयी थीं। ऐ लीजिए, यह तो बी रामदैया से समधियाने का रिश्ता निकल आया। बस, उस दिन से रामदैया और कमरुन सहेलिया थीं। छूतछात के होते हुए आपस में लेनदेन भी रहता। कमरुन रामदैया की हथेली पर चाय की पत्तियाँ ऊपर से रख देतीं--"लेओ, कुठरिया माँ जाइ के चाइ पी लेओ।" इसी प्रकार फल-फलारी, अमरूद, गन्ने, सिंघाड़े से एक-दूसरे की ख़ातिर होती। जाड़ों में घंटों सर्वेण्ट-क्वार्टर के पीछे फुलवाड़ी में कमरुन और रामदैया खाट पर बैठी बातें किया करतीं। साड़ियाँ हरसिंगार में रंग कर मुंडेर पर सुखाई जातीं। चावल बीने जाते। कमरुन रामदैया को कुरोशिया सिखलातीं। कभी-कभी हुसैनी की बीवी, जूहीख़ानम, उधर आ निकलतीं और देखतीं कि दोनों पुरबनें बैठी चावल साफ़ कर रही हैं, या चादर पर मंगौचियाँ सुखा रही हैं तो हुसैनी की बीवी नाक-भौं चढ़ा कर सौसन या जमर्रुद से कहतीं--डरेबर की बीवी ने भी क्या अहीरन से बहनापा गाँठ रखा है।

फिर जब 'पुकार' फ़िल्म नई-नई चली और उसके रिकार्ड कोठी में आये तो एक गाना कमरुन को बेहद पसन्द आया : धोबियों का गाना, जिसमें मिर्ज़ापुर का नाम आता था--मिर्ज़ापुर में औरन-ठौरन, काशी हमारो घाट--कमरुन तलअत के कमरे की देहली पर उकड़ूँ बैठ जातीं और फ़रमाइश करतीं--"बिटिया, वह धोबन वाला तवा फिर बजाइए।" इसके अलावा 'कंगन' फ़िल्म में कमरुन को एक और गीत पसन्द आया था--"अरे रे कबीर, सुन रे कबीर ! रमैया की जोरू ने लूटा बजार।"--इसमें रमैया की बीवी के बजाय कमरुन "हुसैनी की बीवी" गातीं और बहुत ख़ुश होतीं ! इसके जवाब में हुसैनी की बीवी, किसी दोहे में कमरुन का नाम चिपका देतीं। और, इसी तरह मजे-मजे नोकझोंक चला करती।

गंगादीन साईस अभी बैचलर था। चुनांचे कोठी से लेकर सर्वेण्ट-क्वार्टर तक सारी औरतों को उसके रिश्ते की बड़ी फ़िक्र थी। ख़ाला बेगम ने अनगिनत कहारियों से उसकी बात लगाई। रामऔतार तो उसे अपना साढ़ू बनाने पर उधार खाये बैठा था। उसकी एक छः साल की साली गोरखपुर में मौजूद थी। रामदैया भी उसकी बहुत खातिरें करती। रामदैया की बहन छः साल की थी तो क्या हुआ दो-तीन बरस में बड़ी हो जाएगी, मगर मुसीबत यह हुई कि गंगादीन ज़रूरत से ज़्यादा पढ़-लिख गया था और शादी पर तैयार ही न होता था।

उसके पढ़-लिख जाने की वजह यह हुई कि 'गुलफिशाँ' में अक्सर ही विभिन्न प्रकार के मशगलों और दिलचस्पियों की हवा चला करती थी। एक ज़माने में सबने संगीत सीखना

शुरू किया। भैया साहब बरामदे में बैठे सूरज बख़्श श्रीवास्तव के साथ रियाज़ कर रहे हैं। सुबह-सुबह भैरवी उड़ रही है—"धन मन मूरत कृष्ण मुरारी।" तीसरे पहर को चाय की मेज़ पर गाना हो रहा है। सब आवाज़ें मिला रहे हैं। तलअत तो बाक़ायदा मैरिस कॉलेज में दाख़िल थी। लेकिन, कमाल और अप्पी पाँचों सवारों में शामिल थे। ख़ाला बेगम ढोलक के गीत बहुत अच्छे गाती थीं। इमाम बाँदी मिरासन उत्सव के अवसरों पर अपने सारे परिवार सहित हफ़्तों 'गुलफिशाँ' में रहती थीं। सौसन और जमर्रुद दादरे गाती थीं। संक्षिप्त यह कि बच्चा-बच्चा राग झंकर बना हुआ था। फिर, जब क़दीर ने फोटोग्राफ़ी शुरू की तो हर एक व्यक्ति कैमरा लिए घूम रहा है। बिल्ली-कुत्तों के फ़ोटो खींचे जा रहे हैं। इसका शौक़ भी जल्दी ख़त्म हो गया। इसी तरह ग्राम-सुधार का सिलसिला कुछ दिन चला। प्रौढ़-शिक्षा का आन्दोलन इज़ाबेला-थांबर्न में आरम्भ किया गया। हर लड़की पर ड्यूटी लगाई गई कि वह कम-से-कम दो अनपढ़ लोगों को शिक्षित बना कर दिखाए। ख़ाली घण्टों में लड़कियाँ कैम्पस पर कॉलेज के नौकरों को पढ़ाती नज़र आतीं। सायंकाल आस-पास से ग़रीब लोग आकर 'गुलफिशाँ' की बरसाती की सीढ़ियों पर बैठ जाते। बरसाती के बल्ब और बाग़ के लैम्प की रोशनी में शब्दों के हिज्जे करते। घर की लड़कियाँ और लड़के उर्दू और हिन्दी पढ़ाते। बरसाती का बल्ब और बाग़ का लैम्प बहुत मद्धम था, मगर ग़रीब-गुरबा बड़े शौक़ और उत्साह से रात गए तक पढ़ते। क़दीर बड़े ही बुद्धू और ठसदिमाग़ साबित हुए। वैसे भी वे बहुत सुपीरियर थे, इस बकवास में क्या पड़ते। गंगादीन अलबत्ता अँगोछा सिर पर लपेटता सबसे पहले प्रौढ़-शिक्षा की ओर लपका। अमीनाबाद के पुस्तक-भंडार से हिन्दी प्रवेशिका ख़रीद लाया और सबसे अधिक होनहार शिष्य निकला। अब तो ख़ैर वह बहुत पढ़ गया था। फरफर हिन्दी उपन्यासों को पढ़ता था और इरादा कर रहा था कि हिन्दी-मिडिल की परीक्षा पास कर डाले।

चुनाँचे गंगादीन छः साल की बच्ची से ब्याह करने के पुराने किस्म के प्रस्ताव को सुना-अनसुना कर देता। औरों की तरह उसने भी भैया साहब को अपना आइडियल बना रखा था—जब भैया साहब अभी ब्याह नहीं करते हैं तो हम काहे करी।...उसे तलअत ने यह भी बता रखा था कि अंग्रेज़ी के कवि रडयार्ड किप्लिंग ने इसका ज़िक्र किया था और उसके बारे में एक फ़िल्म भी अंग्रेज़ी में बन चुकी है। संक्षिप्त यह है कि गंगादीन निहायत रोशनदिमाग़ हस्ती थी और भैया साहब का जाँनिसार ख़ादिम। बचपन में वह साईस की हैसियत से आया था। शम्भू के मरने के बाद उसे कोचमैन का पद मिल गया था। उसे अपनी फ़िटन से बेहद मुहब्बत थी और उसके मुक़ाबले वह क़दीर की 'शैवरले' को ख़ातिर में न लाता था।

यह फ़िटन बड़े अब्बा मरहूम की थी, यानी भैया साहब के वालिद की। उनके मरने के बाद जब भैया साहब 'गुलफ़िशाँ' में रहने के लिए आए तो सारे साज़-सामान के साथ फ़िटन गंगादीन सहित यहाँ भेज दी गई। पेट्रोल राशनिंग शुरू हुई तो एकाएक गंगादीन का महत्त्व बहुत बढ़ गया। अब वह क़दीर को ताने दिया करता—"अब चलाओ ना अपनी मोटरिया। हमें देखो, हिटलर का खटका न कुछ, मज़े से दनदनाते हैं।"

गंगादीन भैया साहब का ख़ास साथी था। उनसे उसकी वफ़ादारी इसलिए ज़्यादा थी कि वह बहरहाल उनके स्वर्गीय पिता का सेवक था और उनके घर से यहाँ आया था। अक्सर

छोटे सरकार को याद करके रोता। अप्पी और भैया साहब के ब्याह के सिलसिले में भी वह अपनी राय ज़ाहिर न करता, क्योंकि, गो दुनिया का कहना था कि यह रिश्ता जरूर होना चाहिए, लेकिन भैया साहब ने अपनी कोई राय प्रकट नहीं की थी।

बैरे का नाम अमीर ख़ाँ था। ये बेहद नेक और हँसमुख दार्शनिक क़िस्म के इंसान थे। चुपचाप अपने काम में लगे रहते। बड़े-बड़े लम्बे-चौड़े सवालों का सिर्फ़ "जी हाँ" और "जी नहीं" में जवाब देते। यह भी बेहद रख-रखाव वाले आदमी थे। बिल्ली तक का जिक्र बड़े आदर से करते। "आ गईं, चली गईं।"—"जी हाँ, बेगम साहब, दूध भी उन्होंने पिया है। अभी खिड़की में से कूद कर भाग गईं।"

37

सन् चालीस के दिसम्बर में तलअत को जूनियर केम्ब्रिज का इम्तिहान देना था। इसी साल सितम्बर के महीने में उसे डबल निमोनिया हो गया। रोते-रोते उसने बुरा हाल कर लिया—'हमारा एक साल बरबाद हो गया, हमारा एक साल बरबाद हो गया' की रट लगाए रखती। सारा घर उसकी दिलजोई में लगा रहता। कमाल उसके लिए कहीं से एक प्रोजेक्टर उठा लाया। वह नवाबों की तरह तकिये के सहारे बैठ जाती और दस साल पहले की मूक फ़िल्में देखा करती, जो जाने कहाँ से प्राप्त की गई थीं। दीवार पर बीते समय की परछाइयाँ डोलती बड़ी अजीब-सी लगतीं। रोडेल्फ़ वेलेंटिनो, डगलस फ़ेयर बैंक्स, ग्लोरिया स्वान-सन। दो दस साल पुरानी हिन्दुस्तानी फ़िल्में भी थीं, जिनमें सुलोचना घोड़े की सवारी करती और ई. बिल मोरिया तलवार चलाता। इतवार के दिन अप्पी की सहेलियाँ टहलती हुई आ जातीं और उसके पास बैठ कर गप्पें हाँका करतीं। ये बड़ी स्मार्ट, और गम्भीर लड़कियाँ थीं।

दिन भर तलअत पलँग पर लेटी रहती या गंगादीन को और आगे हिन्दी पढ़ाती। उसने कमाल, हरिशंकर, भैया साहब और अप्पी की सारी दिलचस्प किताबें पढ़ डालीं। मगर, इस दुःख का इलाज किसके पास था कि नवम्बर में वार्षिक परीक्षा थी और वह बीमार पड़ी थी।

एक दिन सुबह-सुबह हरिशंकर उसके कमरे में आया। "तलअत, अत्यन्त मूर्ख कन्या अस्ति।" उसने बड़े नाटकीय अन्दाज़ में संस्कृत बोली।

"क्यों ?"

"मत रो, हे निर्बुद्धि मत रो।"

"क्यों न रोऊँ ?"

"इसलिए न रो कि तेरे कल्याण की हमने व्यवस्था कर ली है। हम तेरा दाख़िला टट्टर वाले स्कूल में करवा रहे हैं। तू अप्रैल में हाई स्कूल की परीक्षा देना और मज़े से अगले वर्ष लामार्टिनेयर के नवें स्टैन्डर्ड में घिस-घिस के बजाए आई. टी. कॉलेज में दनदनाना।"

"रघुवीर मामा के स्कूल में ?" तलअत ने साँस रोक कर पूछा।

"हाँ।" हरिशंकर ने जवाब दिया और उसी नाटकीय अन्दाज़ से वह दूसरे दरवाज़े से ग़ायब हो गया।

निर्मला को जब मालूम हुआ कि तलअत हाई स्कूल की परीक्षा देकर आई. टी. पहुँचा

ही चाहती है तो उसने महनामथ मचा दी, अतएव लामार्टिनेयर से हटा कर तलअत के साथ वह भी नए स्कूल में भेज दी गई।

टट्टर वाला स्कूल अपनी जगह एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता था। यह एक पुरानी इमारत थी, जिसमें शाही वक़्तों का बड़ा फाटक, बुर्जियाँ, बैठकें, बरामदे अब तक मौजूद थे। उसके आगे बड़ा लॉन था। इमारत के चारों ओर चटाई की दीवारें खड़ी कर दी गई थीं, जिन पर नीले फूलों की बेलें चढ़ी थीं। यह रघु मामा का स्कूल था। बनारस यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध था और गिनी-चुनी लड़कियाँ उसमें पढ़ती थीं। बिलकुल घर का-सा माहौल था। पास वाले घर में रघु मामा अपने परिवार सहित रहते थे। ये बड़े साधुस्वभाव आदमी थे—पुराने ख़याल के कायस्थ। लड़कियाँ, शहर के अच्छे-अच्छे ख़ानदानों की सुपुत्रियाँ मोटरों में बैठ कर आतीं और यहाँ शिक्षा प्राप्त करतीं। यहाँ स्टाफ़ और लड़कियाँ—सबका एक-दूसरे से कोई न कोई नाता था। ये रिश्ते ख़ून के नहीं रख-रखावों की वजह से बन गए थे—मौसी, मामा, भाभी, आपा, दीदी, भैया। इसी तरह इन्हें निभाने का भी विचार रखा जाता था।

बाज़ लड़कियाँ बेहद दिलचस्प थीं, मसलन हमीदाबानो—जो बीच शहर की एक विशाल महलसरा में रहती थी—शायरी करती थी और बड़ी रोमैण्टिक थी। बीना माथुर कथक में निपुण थी और हर साल ऑल इंडिया म्यूज़िक कॉन्फ्रेंसों से बड़े-बड़े कप उठा लाती थी। मेहरआरा एक ऐसी नवाबज़ादी थी जिसकी दासी उसका ख़ासदान लिए साथ-साथ रहती थी, और पीछे खड़ी होकर पंखा झलती रहती थी। ये सब लड़कियाँ एक-दूसरे के परिवारों की पुश्तों से परिचित थीं। सब एक तरह के वातावरण में पली थीं। इन सबकी, इस शहर और इस वर्ग की सारी सोसायटी की इस तरह जत्थाबन्दी थी जैसी चोरों के यहाँ होती है।

म्यूज़िक-क्लास फाटक के ऊपर वाले कमरे में थी। फ़र्श पर नीली धारियों वाली दरी बिछी थी। उसके पास वाली बुर्ज़ी में तंग और अँधेरा ज़ीना था। बुर्ज़ी के मोखों में से हल्की-हल्की रोशनी अन्दर आती। छुट्टी के घण्टे में लड़कियाँ इन सीढ़ियों पर बैठ जातीं और हमीदाबानो जिसके व्यक्तित्व में नाटक की अनुभूति बेहद तीव्र थी—अपना सिर हिला कर बड़े रहस्यमय ढंग से कहती—"शाहे-ज़मन ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की अंग्रेज़ साली अशरफुन्निसा बेगम यहाँ रहती थीं। उनकी महरी को बादशाह के आदमियों ने इसी ज़ीने पर क़त्ल किया था।"

"क्यों गप मारती हो।" कुसुम बहस करती, "कौन, अशरफुन्निसा बेगम ! वह जॉन हापकिंज वाल्टर्ज़ की लड़की !"

"हाँ वही।"

"वह तो बेगम कोठी में रहती थी।"

"अपनी माँ से लड़ कर यहाँ से चली आई थी—मुझे मालूम है।"

हमीदाबानो से लखनऊ के इतिहास के बारे में कोई अधिक बहस न कर सकता था। उसे देख कर ख़ामख़ाह यह विचार आता था कि यह ख़ुद सौ साल पहले के लखनऊ का एक ऐसा पात्र है जो उस पुरानी बुर्ज़ी में से झाँक कर हमसे बातें कर रहा है। अभी ज़ीने का दरवाजा बन्द होगा और यह ग़ायब हो जाएगी।

फिर घण्टा बजता और रघु मामा की पत्नी अपने रसोईघर से निकल कर, कमर पर हाथ रख कर चिल्लातीं—"अरी लड़कियो ! चलो बॉटैनी पढ़ने।" ये कान्ति दीदी थीं, और

इनको देख कर किसी के सान-गुमान में यह बात न आ सकती थी कि यह इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एम. एस-सी. हैं—और ऊपर से गोल्ड मेडलिस्ट भी।....बॉटेनी पढ़ाने के बाद वे लपक कर फिर रसोईघर में जा घुसतीं और रघु मामा के लिए खाना बनाना शुरू कर देतीं।

एक मर्तबा क्या हुआ कि उर्दू-फ़ारसी वाले मौलवी साहब, जो एक बहुत बूढ़े कश्मीरी पण्डित थे, बीमार पड़ गए। रघु मामा ने निर्मला से कहा—"ज़रा हरिशंकर से कह देना, आके उर्दू-फ़ारसी पढ़ा जाया करें।" चुनांचे अगले रोज़ हरिशंकर बहुत रौब-दाब से खँखारते हुए क्लास में आए और बड़ी गम्भीरता से उर्दू पढ़ाने में जुट गए। बनारस विश्वविद्यालय के मौलवी महेश प्रसाद का चयन और हरिशंकर जैसे कठोर उस्ताद की पढ़ाई ! लड़कियों की जान निकल कर रह गई। उर्दू के घण्टे में बसन्ती महरी बाग़ में आकर लड़कियों को सूचित करती—"बिटिया चलिए—छोटे मौलवी साहब आय गए।"

अतः एक महीने तक, जब तक उन्होंने इस संस्था में पढ़ाया, ये आफ़ीशल तौर पर मौलवी हरिशंकर कहलाते रहे और अपने कठोर अनुशासन और तीखे स्वभाव की धाक बिठा कर वापस चले गए।

स्थिति यह थी कि कान्ति दीदी बॉटेनी पढ़ातीं। उनकी मौसेरी बहन जोगेश्वरी दीदी संस्कृत की अध्यापिका थीं। मालती के बड़े भाई संगीत विभाग के अध्यक्ष थे। हरिशंकर तो उर्दू-फ़ारसी पढ़ा ही रहे थे। पर, हालात क़ाबू से बाहर उस वक़्त हुए जब मिस केथरीन मौनादास की शादी लालबाग़ के मैथोडिस्ट चर्च के आर्गेनिस्ट मि. जॉन फ़ज़ल मसीह से तय हुई और उन्होंने एक महीने की छुट्टी ली; तो रघुवीर मामा ने तलअत को हुक्म दिया कि वह भूगोल की क्लास ले लिया करे, क्योंकि वह भूगोल में बहुत होशियार थी। यह क्लास इस कदर मज़ेदार साबित हुई कि जब श्रीमती फ़ज़ल मसीह तंग आस्तीनों वाला नया गरम कोट और कानों में छोटे-छोटे सोने के बुन्दे पहने वापस आ गईं तो लड़कियों को बड़ा रंज हुआ। और उन्होंने घिड़ौंचियों के पास ठंडी धरती पर बैठ कर तलअत को 'विदाई पार्टी' दी। इसके लिए रघु मामा की रसोई में फुल्कियाँ तैयार की गई थीं। इस मौक़े पर बाक़ायदा भाषण हुए, जिनमें तलअत की अध्यापन-सम्बन्धी योग्यताओं पर प्रकाश डाला गया।

वह दिन भी एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है जब मिसेज़ फ़ज़ल मसीह ने अपने नए घर में लड़कियों की दावत की और जब तलअत अपनी इकलौती नीली कारचोबी साड़ी पहन कर मक़बरा-कम्पाउण्ड गई; क्योंकि उस रोज़ से पहले तलअत ने साड़ी कभी नहीं पहनी थी। आज उसे आभास हुआ वह सचमुच बड़ी हो गई है।

हज़रतगंज में अंग्रेज़ी दुकानों के बीच एक बड़ा-सा शाही ज़माने का फाटक है। फ़ाटक के अन्दर विशाल अहाते में सामने ही अवध के आठवें शासक अमजदअली शाह बादशाह का मक़बरा और इमामबाड़ा नज़र आता है। इस इमारत पर बड़ी वीरानी बरसती है। इसके चारों तरफ़ अहाते के किनारे-किनारे जो कोठरियाँ बनी हैं, उनमें अब निम्न-मध्य वर्ग के ईसाई रहते हैं। उन्होंने अपने छोटे-छोटे कमरों के आगे साफ़-सुथरे बग़ीचे लगा रखे हैं ! इन कमरों में, नन्हें-मुन्ने ड्राइंग-रूम में जिसमें काटेज पियानो रखे हैं और खिड़कियों में जाली के पर्दे पड़े हैं—ईसाई औरतें नीचे-नीचे फ्रॉक या अटंगी साड़ियाँ पहने अपने बाग़ीचों में खड़ी होकर अपनी सन्तान को खेलता-कूदता देखती हैं। ये बड़े मूक-स्वभाव और शरीफ़ लोग थे और इनका इस तरह

की ज़िंदगी से वास्ता नहीं था जिसके साथ आमतौर पर इस फ़िर्क़े के लोगों का संबंध किया जाता है। मिसाल के तौर पर इनकी जवान लड़कियाँ आवारा नहीं थीं और इनके लड़के जीन्ज़ पहन कर नाचते नहीं थे। उस वक़्त अमरीका लाखों मील दूर था।

मक़बरा साल भर उजाड़ पड़ा भाँय-भाँय करता रहता। ख़ाली मुहर्रम के ज़माने में इसमें चहल-पहल होती। तब यहाँ बड़ी ज़बर्दस्त ज़नानी और मर्दानी मजलिसें होतीं। इमामबाड़े के चबूतरे के नीचे कोठरियों और तहख़ानों में ईसाई फकीरनियाँ रहती थीं। कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता था कि शायद बेचारे अमजदअली शाह बादशाह ख़ुद भी हिन्दुस्तानी ईसाई थे। सन् 1857 के बाद जब जनरल ओटरम ने लखनऊ पर क़ब्ज़ा किया तो इस इमामबाड़े में अंग्रेज़ी चर्च बना लिया गया, और एक बार स्वयं लॉर्ड कैनिंग इसमें आराधना करने के लिए पधारे थे।

यहाँ भूतपूर्व मिस मौनादास और वर्तमान मिसेज फ़ज़ल मसीह ने अपने छोटे-से, बड़ी ही नफ़ासत से सजे हुए ड्राइंग-रूम में अपनी शिष्याओं को चाय पिलाई और लड़कियों ने उनकी शादी का तोहफा जो रास्ते में अमीनाबाद से ख़रीदती लाई थीं उनको पेश किया; और सबने मिल कर अंग्रेज़ी गाने गाए।

लामार्टिनियर के विशुद्ध यूरोपियन वातावरण के बाद टट्टर वाला स्कूल बिलकुल एक दूसरी दुनिया थी। तलअत और निर्मला अपने वर्ग के दूसरे व्यक्तियों की तरह ऐसे दुरंगे वातावरण में पली-बढ़ी थीं जिसे इण्डो-यूरोपियन सभ्यता कहा जा सकता है। इस वर्ग के बच्चे बिलिंगुअल पैदा होते हैं। अंग्रेज़-गवर्नेसों के साथ-साथ कस्बाती खिलाइयाँ और अन्नाएँ उनको पालती-पोसती थीं। लड़कियों को कान्वेण्ट स्कूलों में पढ़ाया जाता था। और, जब उनकी शादी होती थी तो हफ़्तो माइयों बिठाई जाती थीं, और पुराने ज़माने की दुल्हनों की तरह शर्माती थीं। अक्सर उनकी शादियाँ उनकी मर्ज़ी के विरुद्ध भी कर दी जाती थीं। ये लोग मॉडर्न हो चुके थे, लेकिन अल्ट्रा-मॉडर्न नहीं बने थे। नैतिक मूल्यों की दृष्टि से ये लोग विक्टोरियन थे, और अपनी देशी परम्पराओं पर भी कट्टरता से बद्ध। ऊपर से उन्होंने पश्चिम का रंग स्वीकार कर लिया था; लेकिन वास्तव में बड़े कट्टर हिन्दुस्तानी थे। इन लोगों ने एक बहुत बड़े दुराहे पर अपने मकान बना रखे थे। यह बरतानवी औपनिवेशिक समाज था, जो जागीरदाराना समाज के सहयोग से बदलते हुए हिन्दुस्तान में पुरानी बुनियादों पर खड़ा किया गया था। इस प्रकार का समाज मिस्र और तुर्की के पाशाओं के यहाँ भी मौजूद था। रज़ाशाह और मुस्तफ़ा कमाल के लाए हुए इन्क़िलाब के बाद उन देशों में समाज बिलकुल पश्चिमी रंगों में रंग गया था। इसी तरह का दोगला वातावरण मलाया और इण्डोनेशिया के उच्च वर्ग में भी वर्तमान था। शंघाई और हांगकांग और कलकत्ता और बम्बई एक ही शृंखला की विभिन्न कड़ियाँ थीं। मगर, हिन्दुस्तान के समाज में यह विशेषता अभी बाक़ी थी कि यहाँ की अपनी देशी सभ्यता के मूल्य इतने दृढ़ थे और उनका आकर्षण इतना अधिक था कि ये लोग तुर्कों या मिस्त्रियों या ईरानियों की तरह यूरोप की पूरी-पूरी नक़ल करने को तैयार नहीं थे। उन्नीसवीं शताब्दी में जो राजनैतिक चेतना यहाँ पैदा हुई थी, उसके कारण प्राचीन भारतीय संस्कृति के नवीनीकरण का ज़बरदस्त आन्दोलन यहाँ चला था। अब भारतीय संगीत, भारतीय कला और भारतीय रहन-सहन पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा था ! और पश्चिमी रंग में रंगे 'काले साहब लोग' का मज़ाक़ उड़ाया जाता था।

कांग्रेस के आन्दोलन ने इस नवीनीकरण की धारा को और अधिक शक्ति दी थी। लेकिन, साम्प्रदायिक तत्त्व प्राचीन हिन्दू संस्कृति और इस्लामी स्वर्णयुग का ज़िक्र कर रहे थे। एक संयुक्त राष्ट्रीयता और एक विशुद्ध भारतीय सभ्यता के आदर्श की राह में अड़चन आ चुकी थी। अब यह प्रश्न सामने आ रहा था कि हिंदुस्तानियत वास्तव में है क्या चीज़ ? एक राजनैतिक पार्टी का कहना था कि यह हिन्दुओं का रचाया हुआ राजनैतिक ढोंग है। दूसरी राजनैतिक पार्टी का कहना था कि इस देश के असली निवासी हिन्दू हैं; मुसलमान विदेशी हैं। 'गुलफ़िशाँ' के सर्वेण्ट-क्वार्टर्स में रहने वाली मिर्ज़ापुर की कमरुन्निसा और रामदैया से इस विषय में किसी ने राय ली कि हिन्दुस्तान के असल नागरिक तो तुम लोग हो; तुम्हारी इस विषय में क्या राय है ?

ताहम तलअत और निर्मला इसी ऊपरी वर्ग की पली-बढ़ी लड़कियाँ थीं जिनको पूर्व और पश्चिम के मिले-जुले वातावरण ने परवान चढ़ाया था। अतएव, जब ये दोनों लामार्टिनियर से निकल कर रघु मामा के यहाँ गईं, तो वहाँ भी इसी तरह घुल-मिल गईं जिस तरह वह लामार्टिनियर के यूरोपियन वातावरण में घुली-मिली थीं।

हर त्यौहार के दिन रघु मामा के आँगन में सारी लड़कियाँ जमा होतीं। कढ़ाई चढ़ाई जाती; चटाइयों पर बैठ कर छपी हुई साड़ियों में लचका टाँका जाता; ढोलक पर 'जय अम्बे गौरी मैया' गाया जाता; कीर्त्तन और क़व्वाली होती और बिलकुल ऐसा मालूम होता कि दरवाज़े पर बारात आने वाली है। इस सुखी परिवार में बीस-पच्चीस हिन्दू लड़कियाँ थीं, इतनी ही मुसलमान और दो लड़कियाँ ईसाई थीं, जिनमें से एक लालबाग़ के पादरी साहब की बेटी थी और फ्रॉक़ पर दुपट्टा ओढ़ कर आती थी। इस उल्लासपूर्ण घरेलू वातावरण के साथ-साथ रघुवीर मामा 'खिलाओ सोने का निवाला और देखो शेर की निगाह' के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। पुराने विचारों के कायस्थ थे, और ख़ुद उनको मक़तब में मौलवी साहब ने कमचियाँ मार-मार कर पढ़ाया था। अतः वह भी पढ़ाते-पढ़ाते लड़कियों को अधमुआ कर देते। बड़े कट्टर राष्ट्रभक्त थे। असहयोग के ज़माने में जेल काट चुके थे। अब तैयार बैठे थे कि कब महात्मा गांधी आज्ञा दें और कब वे सत्याग्रह शुरू करें। युद्ध छिड़े एक साल हो चुका था। कांग्रेस मंत्रिमण्डल त्यागपत्र दे चुके थे। राजनैतिक स्थिति अत्यधिक खराब होती जा रही थी।

मार्च का महीना आया और लड़कियाँ परीक्षा के लिए बनारस जाने को तैयार हुईं। कमाल और हरिशंकर, निर्मला और तलअत को स्टेशन पहुँचाने के लिए आए। "तुम चलो, हमारे पर्चे ख़त्म हो जाएँगे तो हम भी आते हैं पीछे-पीछे। बहुत दिनों से रामनगर के आम नहीं खाए"—कमाल ने कहा। यह इन दोनों का पुराना तरीक़ा था। गर्मियों की छुट्टी आई नहीं कि दोनों ने निकल घर से राह जंगल की ली। सारे देश की ख़ाक छानते फिरते थे। जाने कहाँ-कहाँ जाते, स्टूडेंट फ़ेडरेशन का अधिवेशन है, हैदराबाद जा रहे हैं, इन्दिरा नेहरू ने मीटिंग बुलाई है, इलाहाबाद का इरादा है। अमुक मित्र कलकत्ते में अकेला बोर हो रहा है, ज़रा वहाँ तक हो आएँ।....

"बनारस से कहाँ जाओगे ?" निर्मला ने पूछा।

"अरे हम संन्यासी आदमी, हमारा क्या पूछती हो। जिधर मुँह उठाया निकल गए।" कमाल ने मुँह लटका कर कहा। लड़कियाँ प्लेटफ़ॉर्म पर अपने सूटकेसों के पास खड़ी बातें कर रही थीं। रघु मामा यात्रा का प्रबन्ध करते भागे-भागे फिर रहे थे।

"ऐसे बड़े संन्यासी ही तो हो। बगुला भगत कहीं के।" निर्मला ने हँस कर कहा।

"काशी की पाठशालाओं में बड़ी मनोहर कन्याएँ पढ़ती हैं।" हरिशंकर ने आँख बन्द करके कहा।

"शरम करो भैयन।" तलअत ने कहा, "यह सामने तुम्हारी स्टूडेंट लोग खड़ी हैं। क्या कहेंगी कि मौलवी साहब ऐसी अफ़सोसनाक बातें करते हैं !"

हरिशंकर फ़ौरन पलट कर बड़ी गम्भीर मुद्रा में हमीदाबानो के पास गया और बड़े रौब और बड़प्पन के साथ उसे समझाने लगा कि परीक्षा के लिए ग़ालिब की कौन-कौन-सी ग़ज़लें पढ़े।

ट्रेन आई और यह दिलचस्प क़ाफ़िला बनारस की तरफ़ रवाना हो गया।

38

चम्पा अहमद ने बेसेण्ट कॉलेज के क्लास-रूम की खिड़की में आकर नीचे नज़र डाली। लू चल रही थी। दूर सड़क पर एक बगुला उड़ता हुआ जा रहा था। सारे में अमलतास के पीले पत्ते उड़ते फिर रहे थे। नीचे कॉलेज का लम्बा-चौड़ा वेरौनक़ मैदान गरमी के तीसरे पहर में पड़ा तप रहा था। जाने बारिश कब होगी—चम्पा ने सोचा। सफ़ेद खादी की साड़ियाँ पहने लड़कियों की एक टोली कॉलेज की दूसरी इमारत की तरफ़ जा रही थी। क्लास-रूम के डायस के ऊपर से मिसेज़ एनीबेसेन्ट का तैलचित्र मुस्करा रहा था। यह मुस्कराहट भी चम्पा को वहुत उदास मालूम हुई। घन्टा बजा और लड़कियाँ बराबर के कमरे से निकल कर बाहर आईं। लीला भार्गव के साथ उसने ज़ीना तय करना शुरू किया। पास के एक बरामदे में हाईस्कूल के इम्तहान का कोई परचा किया जा रहा था। छतरी सँभाल कर वह और लीला सड़क पर निकल आईं। अभी उन्हें किसी प्रोफ़ेसर से मिलने यूनिवर्सिटी जाना था। ताँगे पर बैठ कर वे यूनिवर्सिटी की तरफ़ रवाना हुईं।

यह चम्पा के जीवन का नियम था। बेसेन्ट कॉलेज, यूनिवर्सिटी, घर, जाड़े, गर्मियाँ, बरसात, फिर जाड़े। बनारस का शहर, अपना घर, मुहल्ला, रिश्तेदार, किताबें। वह अठारह साल की थी लेकिन बूढ़ियों की तरह सोचती थी; शायरों की तरह महसूस करती थी और बच्चों की तरह हँसती या दुःखी होती थी, जैसे सृष्टि का सारा बोझ उसके कंधों पर था। उसके पिता मध्यम वर्ग के एक शरीफ़ आदमी थे। माँ भी मध्यम वर्ग की एक नेक महिला थीं। उनके यहाँ कोई ग्लैमर न था। कोई कहानियाँ न थीं, न कोई 'परम्पराएँ'। सीधे-सादे लोग थे, जिस तरह के सीधे-सादे लोग हिन्दुस्तान के शहरों में बसते हैं। चम्पा के पिता वक़ालत करते थे। मुरादाबाद के रहने वाले थे। चम्पा की ननिहाल बनारस में थी। वहीं चम्पा के पिता प्रैक्टिस करते थे। औसत दर्जे की आमदनी थी। उनके यहाँ टेलीफ़ोन नहीं था, न मोटरकार, न फिज़ीडेयर। और, वे लोग कोठी में नहीं रहते थे। चम्पा अपने माँ-बाप की इकलौती लड़की थी। उसका सारा दहेज़ तैयार रखा था। धड़ाधड़ पैग़ाम आ रहे थे। घरवालों का विचार था कि चम्पा बी. ए. पास कर ले तो उसका विवाह कर देंगे। चम्पा ने किसी कान्वेन्ट स्कूल में नहीं पढ़ा था, न वह गर्मियों में मसूरी जाकर रोलर-स्केटिंग करती थीं। उसका ननिहाल कुछ अधिम समृद्ध

था यद्यपि वे सब भी मध्यमवर्गीय नौकरीपेशा लोग थे। चम्पा के एक मामा बहुत ख़ुशहाल थे और लखनऊ में रहते थे। वहीं वज़ीरहसन रोड पर उनकी कोठी थी। चम्पा के पिताजी राजनीति में हल्की-फुल्की दिलचस्पी रखते थे। उसके एक चाचा मुरादाबाद सिटी मुस्लिम लीग के अध्यक्ष थे। सन् 1937 में लखनऊ में जब धूमधाम से मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ तो उसमें चम्पा के पिता और चाचा दोनों सम्मिलित हुए थे। राजा साहब महमूदाबाद जब भी बनारस आते, चम्पा के पिता उनकी सेवा में अवश्य उपस्थित होते थे और पाकिस्तान की माँग के बारे में विचार-विनिमय करते।..."पाकिस्तान बना तो मुरादाबाद तक का इलाक़ा तो उसमें जरूर शामिल होगा। क्या वजह है कि पश्चिमी ज़िलों में मुसलमान अधिक ताक़तवर हैं?" चम्पा के पिता अपना विचार प्रकट करते।

"ऐ वाह, मुरादाबाद पाकिस्तान में शामिल हो जाए और हम काशीवाले कहाँ जाएँगे?" चम्पा की वालिदा चमक कर कहतीं।

"अजी तुम पूर्बियों का क्या है? चलो तुमको भी वहीं बुलाएँगे।" उसके वालिद हुक़्क़े का कश लगा कर मज़ाक में जवाब देते। इन अस्पष्ट और भावुक बुनियादों पर ये लोग राजनीति से खेल रहे थे।

वैसे भी बनारस में हर रोज़ कोई न कोई 'आल इंडिया' क़िस्म का हंगामा रहता। यह शहर हिन्दू-महासभा का गढ़ था और 'हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी' के आन्दोलन का भी यही मुख्य केन्द्र था।

इसी बनारस में पंचगंगा घाट था, जहाँ कबीर रहे थे; और यहीं सारनाथ था, जहाँ शाक्य मुनि गौतम ने अपना धर्म चक्र चलाया था; और यहीं विश्वेश्वरनाथ का मन्दिर था। यह शिवपुरी थी। शिव—हर्ष और आनंद के देवता की नगरी।

चम्पा बेसेन्ट कॉलेज में, जो बसन्त कॉलेज कहलाता था, सेकण्ड ईयर में थी। इस साल उसने इन्टर की परीक्षा दी थी और अब उसे इज़ाबेला-थॉबर्न कॉलेज जाना था। क्योंकि इस संस्था में शिक्षा प्राप्त करने से लड़कियों का समाजी स्तर सहसा बहुत ऊँचा हो जाता था। चम्पा के पिता उसे अलीगढ़ भेजना चाहते थे। मगर, अम्माँ ने कहा—"ना, बिटिया तो आई. टी. में पढ़ेगी। जैसे रानी फूलकुँवर और रानी साहब बिलारी की बेटियाँ आई. टी. में पढ़ती हैं।" चम्पा की अम्माँ को यह भी मालूम था आई. टी. में पढ़ने वाली लड़कियों से आई. सी. एस. लोग विवाह करते हैं। और, फिर उनके बड़े भाई लखनऊ में रहते थे और वहाँ के सारे बड़े-बड़े लोगों से परिचित थे।

चम्पा कॉलेज से लौट कर आती तो छत वाले, अपने छोटे-से कमरे में बैठ कर क्षितिज तक फैले हुए शिवालयों के कलसों को देखा करती, या अंग्रेज़ी के उपन्यास पढ़ती। वह जॉन आस्टिन पर आशिक थी, और मध्ययुग पर, और उन्नीसवीं सदी के कीट्स और रॉज़ेटी आदि पर। जब वह यूनिवर्सिटी-लायब्रेरी में अवनीन्द्रनाथ टैगोर और नन्दलाल बोस के चित्र देखती तो उसे बेहद अच्छा लगता। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि चम्पा अहमद भी एक रोमेंटिक आत्मा थी।

लीला भार्गव के साथ वह यूनिवर्सिटी पहुँची। यहाँ भी परीक्षा का वातावरण हर तरफ़ छाया हुआ था—गहमागहमी, चहल-पहल। कुछ चेहरों पर परेशानी थी, कुछ पर सन्तोष। सब

जाने-पहचाने चेहरे थे। ये लड़के और लड़कियाँ सब उसी की दुनिया के वासी थे। भीड़ में चम्पा को शक्ति महसूस होती—समूह उसके साथ है। समूह उसकी रक्षा करेगा। ये लोग सारे उसके भाई-बन्द थे। यूनिवर्सिटी के विभिन्न कॉलेजों की विद्यार्थिनियाँ, लेक्चरर, लड़कियाँ, मद्रासी और बंगाली बूढ़े प्रोफ़ेसर, महाराष्ट्र की महिलाएँ, वैज्ञानिक, संस्कृत और फ़ारसी के विद्वान्—ये सब जो तेज़ी से और व्यस्तता से इधर-उधर आ-जा रहे थे। यूनिवर्सिटी ज्ञान का घर है। ज्ञान में साम्प्रदायिकता किस प्रकार घुस आती है यह उसे मालूम न था। साम्प्रदायिकता और घृणा, और संकीर्णता, संदेह-शंकाएँ और हठधर्मी—इन भूतों से वह अभी परिचित न हुई थी। उसे सिर्फ़ इतना मालूम था कि उसके आसपास की दुनिया में बड़ा ज़बरदस्त शोर मच रहा है; और यह शोर उसकी शान्ति को भंग करता है तो उसे बड़ी तकलीफ़ महसूस होती है।

सामने एक बड़े चबूतरे पर शामियाने के नीचे हाई स्कूल का संगीत का परचा हो रहा था। चारों तरफ़ से लड़कियों के हल्के-हल्के गुनगुनाने की आवाज़ें आ रही थीं। इन्हीं लड़कियों में तेज़-तर्रार और हँसमुख लड़कियों का वह गिरोह भी शमिल था जो लखनऊ से आया था। चम्पा और लीला एक लेक्चरर से बातें करने में लीन थीं। सामने सरस्वती का संगमरमर का मन्दिर था। लड़के और लड़कियाँ फ़ाउन्टेनपेन और किबातें सँभाले आते, देवी के सामने सिर झुका कर दुआ माँगते और अपने-अपने परीक्षा-स्थल की ओर रवाना हो जाते।

इतने में घन्टा बजा। शामियाने के नीचे से लड़कियों ने निकलना शुरू किया। दो लड़कियाँ बच्चों की तरह उछलती-कूदती सीढ़ियों पर से उतरीं और भाग कर एक और गिरोह से जा मिलीं। गिरोह के बीच में एक सूरदासजी खड़े थे। सब लड़कियाँ जल्दी-जल्दी उनको बतला रही थीं कि संगीत की थ्यौरी के परचे में उन्होंने क्या लिखा। ये दोनों लड़कियाँ फ्रॉक पहने थीं और बाक़ी की सारी लड़कियों के मुक़ाबले में बहुत कमउम्र थीं।

इतने में दो नौजवान लड़के जो शक्ल-सूरत में इन दोनों बच्चियों के भाई मालूम होते थे—भीड़ में कहीं से प्रकट हुए। रामनगर स्टेट की एक कार आकर रुकी और ये चारों उसमें जा बैठे। दूसरे ही क्षण कार धूल उड़ाती आँखों से ओझल हो गई।

लखनऊ से आई हुई लड़कियों में एक लीला भार्गव को पहचानती थी। उसने निकट आकर कहा—"नमस्ते, लीला दीदी। हम लोग परीक्षा के बाद अपने यहाँ एक पार्टी कर रहे हैं। आप ज़रूर आइयेगा।"

"नमस्ते, बीना—ये चम्पा हैं।"

उसने दुबारा नमस्ते किया—"आप भी आइयेगा चम्पा दीदी!"

"ज़रूर।"

"तुम लोग तो मैरिस कॉलेज वाले हो। तुम सबके नाच-गाने की इतनी धूम सुनी है—ख़ाली पार्टी दे रही हो। तुम्हारा नाच हम नहीं देखेंगे?" चम्पा ने पूछा।

"चम्पा दीदी काशी और लखनऊ का मुक़ाबला करना चाहती हैं!" एक और लड़की ने करीब आकर कहा।

"अच्छा, यह बात है।" बीना माथुर ने उत्तर दिया—"तो फिर हो जाए फ़ैसला—कहाँ की भैरवी बेहतर है? कहाँ का दादरा और कहाँ का कथक? चलिए, आइये मैदान में।"

"रही?"

"रही।"

अब इनके आसपास लड़कियों की भीड़ लग गई। लखनऊ वालियों से बातों में कौन जीत सकता था ! वहीं तय किया गया कि बसन्त कॉलेज में इन लोगों को बनारस का कथक दिखाया जाएगा, मगर इससे पहले वे सब लखनऊ की लड़कियों के होस्टल पर धावा करेंगी।

इन सब हँसी-मज़ाक की बातों के बाद चम्पा और लीला फिर ताँगे पर बैठीं और अपने घरों की ओर रवाना हो गईं।

39

बनारस पहुँच कर तलअत और निर्मला और सारी लड़कियाँ जिस जगह पर ठहरी थीं, वह ऐसी अजीब और अनोखी जगह थी, जिसका वर्णन आज से दस वर्ष बाद हमीदाबानो अपनी कहानियों में किया करेंगी, (यदि उसने कहानियाँ लिखीं तो) यहाँ पर निश्चय ही उसकी हीरोइन रहेगी, या हीरो उसकी छत पर से कूद कर घोड़े पर सवार होगा, इत्यादि। और, इस जगह पर एक ऐसी दुनिया आबाद हो गई थी, जिस प्रकार की दुनिया विशाल काले समुद्र में घिरे हुए जहाज़ पर विभिन्न दिशाओं में जाने वाले यात्रियों के इकट्ठे हो जाने से आबाद हो जाती है।

यह एक बड़े विशाल अहाते के बीच में बना हुआ एक बहुत बड़ा, लाल पत्थर का तीन-मंजिला महल था, जिसकी मालिक एक निःसंतान विधवा ब्राह्मणी थीं। जो कांग्रेस वर्कर थीं, और बराबर तीर्थयात्राओं पर जाती रहती थीं। महल उसी तर्ज़ का था, जिस तर्ज़ के आम हिन्दुस्तानी महल होते हैं। बीच में एक बड़ा भारी आँगन था, जिसके चारों ओर दालान और कमरे थे, और गलियारे और कोठरियाँ और सहनचियाँ, और तहख़ाने और बैठकें और अनगिनत ताक और ताकचे। मकान-मालिक ने—जिन्हें सब पण्डिताइन साहबा कहते थे, बड़े गर्व से बतलाया कि जब सुलताने-आलम वाजिदअली शाह फ़िरंगियों की क़ैद में लखनऊ से कलकत्ता ले जाए जा रहे थे तो महाराजा बनारस ने उनको इसी मकान में अत्यन्त आदर के साथ ठहराया था। यह बात सुन कर हमीदाबानो बहुत प्रभावित हुई और उसने पण्डिताइन को सुलताने-आलम के युग से संबंधित कुछ कहानियाँ और लतीफ़े सुना डाले। पण्डिताइन से हमीदाबानो की खूब घुटी। वह स्वयं भी हिन्दी कहानियाँ लिखती थीं। मगर लड़कियों के आने के तीसरे दिन ही वह एक दूसरी यात्रा के लिए जगन्नाथपुरी चल दीं, और जाते-जाते अपने रहने के कमरों की चाभियाँ भी लड़कियों के हवाले करती गईं। अपनी क़ीमती बनारसी साड़ियाँ उन्होंने लड़कियों को जबरदस्ती भेंट कीं। सुबह से शाम तक इस क़दर ख़ातिरदारी में लगी रहीं कि अगर उनका वश चलता तो लड़कियों की तरफ़ से परचे भी खुद ही कर आतीं। पण्डिताइन अगर ऐसी विचित्र न होतीं तो बात न बनती ! इस ऐतिहासिक कहानियों के महल की मलिका को भी इतना ही 'अवास्तविक' होना चाहिए था।

दिन भर महल में ऐसा हंगामा रहता मानो बहुत-सी बारातें ठहरी हुई हों। महल का नाम 'चन्दन-निवास' था। हर तरफ़ लड़कियों की टोलियाँ नज़र आतीं। आँगन में टहल-टहल कर पढ़ा जा रहा है। किसी बैठक में उल्टे लेट कर अध्ययन किया जा रहा है। बाग़ के एक

कोने में एक टूटा-फूटा मन्दिर था; उसकी सीढ़ियों पर बैठ कर परीक्षा की तैयार हो रही है। संगीत के परचों के दिनों में हर कोने-खुदरे से गुनगुनाने की आवाज़ें आतीं। रघु मामा उत्तरदायित्व के गहरे एहसास के साथ इधर-उधर प्रबन्ध करते फिरते या लड़कियों को डाँटते-फटकारते—"फिर हुड़दंगेपन में लग गईं; जाइए—पढ़िए।" खाने के लिए दस्तरख्वान बिछता, तो बेहद मोटा ब्राह्मण-रसोइया हुंकारा भरता अन्दर आता। उसके पीछे-पीछे उसका असिस्टेंट रसोइया दही की बाल्टी उठाये आता। पीतल की एक बड़ी-सी डोई में दही भर-भर कर चीफ़ रसोइया लड़कियों की प्लेटों में बहुत ऊँचाई से टपकाता। फिर थालियों और कटोरियों में खाना परोसा जाता। रात को आँगन में तारों-भरे आकाश के नीचे महफ़िल जमती। जब परीक्षा आरम्भ हुई तो हर रोज़ परचे करने जाते समय, जब लड़कियाँ महल के मुख्य द्वार से निकलतीं, वहाँ कान्ति दीदी दही और उड़द और तेल लिए खड़ी मिलतीं और वह हर लड़की को बारी-बारी दही-मछली का शगुन करवातीं।

संगीत की परीक्षा बहुत कठिन थी। उससे लड़कियाँ थर-थर काँप रही थीं; हालाँकि मैरिस कॉलेज का सेकण्ड ईयर का पाठ्यक्रम यहाँ भी था, मगर फिर भी यह दूसरी यूनिवर्सिटी थी, और परीक्षक महानुभावों में नारायणराव व्यास शामिल थे। उनका नाम सुन कर ही डर के मारे जान निकलनी थी।

(जिस रोज़ इम्तिहान था, तेज़ धूप पड़ रही थी। एक लाल रंग की उदास इमारत की छत पर दो कमरे बने थे। लड़कियाँ छत की मुंडेरों की छाया में खड़ी जल्दी-जल्दी कठिन रागों को नीची आवाज़ में दोहरा रही थीं। कमरे में बैठे हुए एक परीक्षक इतने रुष्ट दिखाई देते थे, मानो अभी सबको कच्चा चबा जाएँगे। कुसुम सक्सेना घबरा-घबरा कर बुटवल के संतरे खा रही थीं, ताकि गला न सूखे। मुंडेर पर एक चील अधखुली-सी आँखों से तंद्रा की-सी अवस्था में, यह सारा दृश्य देख रही थी, मानो सोचती हो, इन सब बातों से क्या अन्तर पड़ता है। फिर वह चील सारनाथ की ओर उड़ गई।)

थ्योरी ऑफ़ म्यूज़िक के परचे के रोज़ कमाल और हरिशंकर आ धमके। तलअत और निर्मला परचा करके शामियाने से बाहर निकलीं तो उन्होंने सरस्वती के मन्दिर के नीचे दो लड़कियों को श्रीमती वेसकर से बातें करते देखा। इन लड़कियों के पास ही से कहीं से कमाल और हरिशंकर प्रकट हो गए। इन लड़कियों में से एक की बहुत प्यारी शक्ल थी और उसका रंग धूप में कुन्दन की तरह दमक रहा था ! दोनों लड़के रामनगर के दीवान साहब के यहाँ ठहरे थे, जो तलअत और कमाल के रिश्तेदार थे। फिर, तेज़ धूप में नदी पार करके वह चारों रामनगर पहुँचे और 'पालिश की हुई सड़कों' पर से गुज़रते हुए तलअत को एकदम कदीर याद आ गया। वह बचपन में विभिन्न प्रकार की जानकारी से उनको परिचित कराता रहता था।

"मुझे कमरुन के लिए साड़ियाँ और चूड़ियाँ ख़रीदनी हैं।" तलअत ने ऊँचे स्वर में कहा।

"अभी तुम्हारी ख़रीदारी की मुहिम शुरू नहीं हुई।" कमाल ने पीछे मुड़ कर पूछा।

"नहीं—पैसे लाओ।"

अब दोनों लड़कों ने गुर्रा कर दोनों लड़कियों को देखा।

"तुम्हारा ख़याल है, हम महाजन हैं? कोठी चलती है हमारी?" कमाल ने गुस्से से कहा।

"हम तो दो दरिद्र कंगाल ब्रह्मचारी विद्यार्थी हैं। खुद दान-पुन पर गुज़र करते हैं।" हरिशंकर ने कहा।

"लेकिन, इसके बावजूद हम दिल बादशाहों का रखते हैं।" कमाल ने कहा।

"सही कहते हो।" हरिशंकर ने गला साफ़ करके कहा।

"और अगर तुम हमको बतला दो कि सरस्वती के मन्दिर की छाया में खड़ी वह महासुन्दर रूपवती कौन है तो बनारस की सारी चूड़ियाँ हम तुम्हें खरीद दें।" कमाल ने कहा।

"कौन महासुन्दर रूपवती?" तलअत और निर्मला ने एक-दूसरे को देखा।

"तुम नहीं जानतीं उस देवी को, वही जो देवी के स्थान के पास खड़ी मुस्करा रही थी?" कमाल ने निराशा के स्वर में पूछा।

"बिलकुल नहीं। मगर, पैसे लाओ।"

"तुम अगर उसका पता चला दो—" हरिशंकर ने कहा।

"भैयन, तुम्हारे लिए तो लड़कियों के पते चलाते-चलाते नाक में दम आ गया है।" उम्र में बड़ी और कुछ समझदार निर्मला ने चिढ़ कर उत्तर दिया।

इसी तरह झगड़ा करते वे रामनगर पहुँचे। वहाँ ख़स की टट्टियों के पीछे बैठ कर उन्होंने दिन गुज़ारा, आम खाए, रिश्तेदारों से गप्पें हाँकी, और दीवान साहब की बेगम साहिबा ने फ़ौरन काशी की बहुत-सी रईसजादियों की लड़कियों से हरिशंकर की बात तय कर दी, और सब बहुत खुश हुए।

जब परीक्षा समाप्त हुई तो लड़कियों ने घूमने पर कमर बाँधी। मामा और कान्ति दीदी के नेतृत्व में उनके झुंड गली-कूचों में घूमते फिरे। चूड़ियों की दुकानों के सामने ये लोग धरना देकर बैठ रहीं। उन्होंने अनगिनत चूड़ियाँ ख़रीद डालीं। शाम-पड़े नावों में बैठ कर जब वे गंगा के धारे पर दुनिया भर के गाने गातीं, तो हमीदाबानो पाटदार आवाज़ में—इक़बाल की "अय आबे-रुदे गंगा—" वाली कविता शुरू कर देती और सब लड़कियाँ मिल कर उसे उठातीं। उन्होंने शहर में जाकर सबसे ताज़ी फ़िल्म देखी जिसका नाम था 'खजांची'। फिर एक रोज़ भरी दुपहरिया में वे सब सारनाथ पहुँचे। जहाँ एक मन्दिर के मरमरी फ़र्श पर दीवटों का प्रकाश मानो नृत्य कर रहा था, और हाल में छोटी-बड़ी असंख्य सुनहरी मूर्तियाँ राजकुमार गौतम सिद्धार्थ की रखी थीं। तो वातावरण की पावनता से प्रभावित होकर सब लड़कियों ने दुपट्टों और साड़ी के आँचलों से सिर ढँप लिए और बुद्ध की उपस्थिति में स्वयं को अत्यन्त पवित्र महसूस किया।

"यहाँ कितनी शान्ति है।" तलअत ने कहा। वे सब हॉल में दीवार से टेक लगाए चुपचाप बैठी थीं।

"हाँ।" हमीदाबानो ने सिर हिलाया और फिर वह बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराई; मानो अब किसी बड़े ज़बरदस्त सत्य को प्रकट करने वाली हो।

"बात यह है—" उसने कहा—"कि हम सब इतने घाम में मारे-मारे फिरने के बाद यहाँ आकर बैठे हैं, इसलिए ख़ामख़ाह शान्ति का अनुभव हो रहा है।" तलअत को हमीदाबानो की यह यथार्थवादिता बहुत खली।

"मगर यह सत्य है कि महात्मा बुद्ध के चेहरे को देख कर सुकून मिलता है।" तलअत ने सोच कर कहा।

"अजी, तुम क्या जानो ये बातें।" हमीदाबानो ने बुर्ज़ुर्गी से कहा—"असल में हम मुसलमानों को यह सब नहीं सोचना चाहिए।" फिर वह सिर झुका कर विचारों में लीन हो गई। वह पाँचों वक़्त की नमाज पढ़ती थी, और बड़ी रूमानपरस्त थी। मगर, इस बौद्धिक उलझन और मानसिक कशमकश का हल तलाश करने की उसकी उम्र न थी : कि जब वह कलमा पढ़ती है तो उसे मूर्तियों से भी उल्फत किस वास्ते है? मन्दिर-मस्जिद की समस्या पर वह कुछ देर और ग़ौर करती, मगर इतने में यों ही हठात् तलअत उठी और उसने बड़ी मूर्ति के सामने जाकर नृत्य करना शुरू कर दिया। फिर बीना माथुर भी नृत्य में शामिल हो गई। कुछ ही क्षण बाद सब लड़कियाँ घेरा बाँधे नाच रही थीं, और सबमें हमीदाबानो आगे-आगे थी। एक स्तम्भ के पास विज़िटर्ज़-रजिस्टर खोले बैठे, दो जापानी भिक्षु आश्चर्यचकित यह दृश्य देखते रहे।

बाहर इमारत के साए में खड़े-खड़े हरिशंकर महायान-शाखा के इतिहास पर कमाल को एक लेक्चर दे रहा था, और कमाल ने पास ही एक स्तूप के पत्थरों पर हाथ रख कर सोचा--मैं इस स्पर्श के द्वारा उस दूसरे समय में उपस्थित हूँ, जो बीत चुका, लेकिन जो अब भी है। उसे यह सोच कर एक क्षण के लिए चक्कर-सा आ गया। फिर उसने आँखें खोल कर हरिशंकर को देखा, वह बड़े महत्त्व से एक जापानी भिक्षु से कुछ अण्ट-सण्ट उड़ा रहा था, और जापानी भिक्षु हरिशंकर के ज्ञान से बहुत प्रभावित दिखाई दे रहा था। चारों ओर लाल रेत फैली हुई थी और धूप में स्तूप खड़े तप रहे थे। एक रास्ता चक्कर काटता नीचे से ऊपर जाता था और स्तूप के चारों ओर घूम कर वह रास्ता फिर नीचे लौट आता था। कमाल ने हरिशंकर के साथ-साथ उस पर चलना शुरू किया। अब लड़कियाँ बाहर आ चुकी थीं और हमीदाबानो कान्ति दीदी से कहती हुई गुज़र रही थी—"मैं सपने में यहाँ कई बार आ चुकी हूँ। मुझे लगता है, मैं इस जगह से वाक़िफ़ हूँ, पहले भी यहाँ आ चुकी हूँ! मैंने यह लाल रेत वाला तपता हुआ रास्ता पहले भी देखा है।"

"गुड ओल्ड, हमीदाबानो।" कमाल ने मुस्करा कर दिल में कहा। "यह लड़की बड़ी होकर ज़रूर कहानीकार बन जाएगी, अध्यात्म में दिलचस्पी लेगी और शायद थियोसोफ़िकल सोसायटी में शामिल हो जाए।"

"हमीदाबानो! जुहर का वक़्त है, चलो नमाज़ पढ़ लें।" रुक़ैया बाजी ने स्तूप की सीढ़ियों से उतरते हुए आवाज़ दी। हमीदाबानो हड़बड़ा कर लाल रेत वाले रास्ते पर से उतरी और एक आम के पेड़ की ओर चली गई। वहाँ कुछ लड़कियाँ पहले से सुस्ताने के लिए जा बैठी थीं।

कमाल ने इस दृश्य को देखा।

स्तूप और म्यूज़ियम की इमारत और बड़ा मंदिर जिसका शानदार सुनहरा घण्टा दूर से ही दिखाई दे रहा था--और लोग चारों ओर फिर रहे थे और उनके साए ज़मीन पर थरथरा रहे थे।

साए स्थापित रह जाते हैं, इंसान ख़त्म हो जाता है। साए में बड़ी शक्ति है। हम जीवन

भर विभिन्न सायों का पीछा करते हैं मगर साया हाथ नहीं आता। वह अपनी जगह अमिट है। साए का और समय का आपस में षड्यन्त्र है।

"चार बज रहे होंगे !" रघुवीर मामा ने फाटक की छाया को धरती पर देख कर समय का अनुमान लगाते हुए अपना विचार प्रकट किया—"अब वापस चलना चाहिए।"

"चलो लड़कियो।" कान्ति दीदी ने आवाज़ लगाई।

लखनऊ वापस जाने के दिन निकट आए। चलने से एक दिन पहले चन्दन निवास के आँगन में सदर दालान के पास स्टेज बना और उसे केले के पत्तों से सजाया गया। महल के लम्बे-चौड़े ईंटों के फ़र्श वाले आँगन में छिड़काव हुआ था और बड़ी-सी चाँदनी बिछाई गई थी। पिछले दालान में ग्रीन-रूम था, और अगले दालान में जाजम टाँग कर पर्दा बनाया गया था। जिसके पीछे साज़ रखे थे, और बीना माथुर म्यूज़िक-डायरेक्टर बनी बैठी थी। बाक़ायदा ड्रामा करने की किसे फ़ुर्सत थी। वक़्त के वक़्त तय किया गया था कि 'राजरानी मीरा' होगा; इसलिए कि उसमें ज़्यादा संवाद आदि की आवश्यकता न थी। सारा काम मीरा के भजनों द्वारा चल सकता था, और लड़कियाँ इतनी कुशल कलाकार थीं कि स्टेज पर आकर ख़ुद ही संवाद बना कर बोलती थीं। साजिदा को राणा बनाया गया, मगर बार-बार उसकी भौंहें गिर पड़ती थीं। कुसुम अकबर बादशाह थी। परन्तु उसकी बेमौके हँसी ने सारा चौपट कर दिया। ज्ञानवती भटनागर क्योंकि संगीत की अच्छी जानकार थी, इसलिए वह मीरा बनी। वह तो रेडियो की इतनी प्रसिद्ध आर्टिस्ट थी कि उसके लिए मीरा का पार्ट बाएँ हाथ का खेल था। सारे समय वह तानपूरा हाथ में उठाए आँख बन्द किये स्टेज पर इधर से उधर चलती रही। तलअत जनरल रोल अदा कर रही थी। जहाँ एक्टरों की कमी पड़ी, वहाँ यह झट से मौजूद। एक सीन में वह अकबरे महान की मंत्री बनी, दूसरे में मीरा की सहेली; तीसरे में जहाँ मीरा से राणा की शादी होती है वहाँ जल्दी से अकबरे महान की मूँछें उधार लेकर वह पण्डित बन गई और मण्डप में जाकर 'अडंग-बडंग ओम् स्वाहा' कह कर उसने मीरा का विवाह करा दिया।

फिर, बहुत-सी लड़कियाँ रासलीला के नाच के लिए छन-छन करती आईं। उन्होंने दुनिया भर के ज़ेवर पहन रखे थे। हद यह कि रफ़िया बाजी जैसी मोटी लड़की भी माथे पर चाँदी का बौर सजा कर मथुरा की ग्वालिन बनी थी। हमीदाबानो नक़ली मोतियों और पन्नों का मुकुट पहने बड़े स्टाइल से बाँसुरी उठाए खड़ी रही। निर्मला सितार सँभाले दालान के पीछे से मानो बैक-ग्राउण्ड म्यूज़िक दे रही थी।

सामने आडियंस थी। खुले आसमान के नीचे जगमगाते तारों की छाँव में बहुत से लोग बैठे थे। जाने कौन-कौन ! बसंत कॉलेज और यूनिवर्सिटी की लड़कियाँ, लेक्चरर और प्रोफ़ेसर साहबान और बहुत से लड़के ! इन्हीं में अगली क़तार के सिरे पर चम्पा अहमद और लीला भार्गव बैठी थीं। हरिशंकर और कमाल चाँदनी के फ़र्श पर विराजमान थे। रघु मामा टिक कर नाटक देखने के बजाय खुश-खुश घबराए-घबराए फिर रहे थे।

चम्पा और कमाल और हरिशंकर तीनों इस समय अलग-अलग आँखों से सामने का तमाशा देखा किए।

लड़कियाँ इस समय सारी दुनिया भूल कर सिर्फ़ स्टेज पर मौजूद थीं और बेहद खुश थीं।

लड़कियाँ स्वाँग रचने की बेहद शौकीन होती हैं। बचपन में वे पलँग खड़े करके, उन पर पलँगपोश के पर्दे लगा कर 'घर-घर' खेलती हैं। घरौंदा सजा कर कल्पना करती हैं कि यह सचमुच का मकान है। हंड-कुलिया उनके निकट बड़ा महत्त्वपूर्ण भोज है। गुड़ियाँ-गुड्डे उनके लिए जानदार इंसान हैं। जब ज़रा बड़ी हो जाती हैं तो अपना बनाव-सिंगार करके कितनी प्रसन्न होती हैं ! बाहर जाने से पहले घण्टा भर आईने के सामने लगाएँगी। जूतों और कपड़ों का चुनाव उनके लिए अलौकिक महत्व रखता है। सजना, बहुरूप भरना उनके लिए बेहद ज़रूरी है। राधा और कृष्ण का नाच नाचती हैं, तो कल्पना करती हैं कि वास्तव में वृन्दावन में मौजूद हैं। उनकी सारी उम्र अपनी एक नाज़ुक-सी दुनिया बसाने में गुज़रती है। और, यह दुनिया बसा कर वे बड़े इत्मीनान से उसमें अपने आपको पुजारिन या दासी का दर्ज़ा दे देती हैं। शुरू दिन से ही उनके बहुत से छोटे-बड़े देवता होते हैं, जो उनकी रंगभूमि के सिंहासन पर इत्मीनान से आलती-पालती मार कर बैठे रहते हैं : बाप, भाई, पति, बेटे, ख़ुदा, भगवान, कृष्ण... । पूजा करना और सेवा करना उनके भाग्य में लिखा है। जब रंगभूमि का निर्देशक उनसे कहता है कि तुम महारानी हो, दिल की मलिका हो, दुनिया की सबसे सुंदर लड़की हो, रूपवती हो, तो ये बेचारियाँ बहुत खुश होती हैं।

लड़कियाँ बेहद उपहासास्पद होती हैं। नाटक करती हैं।

यह किस मसख़रे ने कहा है कि औरत का काम दिलों को तोड़ना और दुनिया पर हुकूमत करना है ? सब झूठ है—गप, बकवास। यह तो कहीं से कहीं पहुँच जाएँ—कितनी ही विद्वान बन जाएँ, कितनी बड़ी सल्तनत का ताज उनके सिर पर हो, उनकी औक़ात वही रहेगी—पुजारिन—दासी।

लाहौल विलाक़ूवत....!

कमाल रासलीला देखता रहा। सामने गोपियाँ अब कृष्ण की आरती उतार रही थीं। दालान में निर्मला और बीना माथुर ज़ोर-ज़ोर से गाती रहीं—

"मोहन सुना दे मीठी तान
मधुर रस भरी, रसीली, प्यारी प्रेम की तान !"

वाह ! क्या बात है !

अरी मूर्ख़ लड़कियो तुमको ख़बर भी है ? प्रेम की तान कितनी बड़ी मुसीबत का घर है—'कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।'

कमाल को कबीरदास का एक दोहा याद आया। उसने पहलू बदल कर, सिगरेट सुलगा लिया।

40

वैसाख का महीना गुज़रा। जेठ का भी। असाढ़ में रिजल्ट निकला। चम्पा अहमद पास हो गई थी और जैसी कि आशा थी फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हुई। अब उसके सफ़र की तैयारियाँ शुरू हुईं। साड़ियाँ ख़रीदी गईं। हाउस-कोट तैयार हुए। लखनऊ मामू मियाँ को ख़त लिखा गया—जुलाई में चम्पा बेगम आ रही हैं।

एक रोज़ शाम को वह लीला भार्गव के साथ बाज़ार से घर जाते हुए चन्दन निवास के सामने से गुज़री। उसके क़दम आपसे आप रुक गए। बाग़ पर भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। महल सुनसान पड़ा था। तीसरी मंज़िल के एक कमरे में रोशनी हो रही थी। शायद पंडिताइन अपनी यात्रा से लौट आई होंगी। बाक़ी सारी इमारत अँधेरे और ख़ामोशी में डूबी हुई थी। जब वह वहाँ से आगे बढ़ी तो उसे लगा जैसे बहुत-सी आवाज़ें उसका पीछा कर रही हैं। लड़कियों के क़हक़हे, घुँघरुओं की झंकार, तानपूरे की गूँज...और सबसे बड़ी, सन्नाटे की आवाज़...।

उसे वक़्त के भूत ने सताना शुरू कर दिया था।

लीला को उसके घर पर उतारने के बाद वह हमेशा की तरह अपने घर की ओर बढ़ी। महरी ने ताँगे से उतर कर छोटा-सा फाटक खोला। वह अंदर दाख़िल हुई और आँगन में जा बैठी। बाहर, गली भी सुनसान पड़ी थी। बराबर के तीन-चार मकानों में कई रेडियो एक साथ बज रहे थे। लखनऊ से ख़बरें सुनाई जा रही थीं। चम्पा के वालिद बैठक में किसी असामी के साथ बातचीत में व्यस्त थे।

"डाक में तुम्हारा यह लिफ़ाफ़ा आवा रहा।" उसकी माँ ने एक नीले रंग का चपटा-सा लिफ़ाफ़ा उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, और बावर्चीख़ाने की तरफ़ चली गईं।

शाम के बढ़ते हुए अँधेरे में उसने पत्र खोला। फिर बरामदे की बत्ती जला कर उसे पढ़ना शुरू किया। अजनबी-सी जनानी लिखावट थी और किसी अजनबी का ख़त था। मसूरी से आया था, और अंग्रेज़ी में था; और 'माई डियर चम्पा' कह कर उसे बड़ी बेतकल्लुफ़ी और अपनापे से सम्बोधित किया गया था। उसमें लिखा था—"मुझे यह मालूम करके बेहद ख़ुशी हुई कि तुम इस साल हमारे कॉलेज आ रही हो।" इसके बाद, उस कॉलेज के सम्बन्ध में विभिन्न विवरणों से उसे सूचित किया गया था। यदि वह अमुक-अमुक चीज़ों में दिलचस्पी रखती है तो अमुक-अमुक क्लब उसका स्वागत करेंगे। यदि वह आउट-डोर लड़की है तो स्पोर्ट्स की डायरेक्टर जयमाला अप्पास्वामी से उसे मिलना चाहिए। टेनिस की सेक्रेट्री लीला श्रीनागेश भी उसकी सहायता करके बहुत प्रसन्न होंगी। यदि वह पाश्चात्य संगीत की शौक़ीन है तो म्यूज़िक-वर्कशॉप उसकी प्रतीक्षा में है। ड्रामा-गिल्ड उसकी अभिनय-कला की सम्भावनाओं से परिचित होने के इच्छुक हैं (अगर उसे स्टेज से लगाव है) इत्यादि-इत्यादि। फिर उसे सारे होस्टल्स के बारे में जानकारी दी गई थी, और फ़ैकल्टियों के बारे में। आख़िर में लिखा था कि नई लड़की की हैसियत से उसे इस पत्र की लेखिका के चार्ज में दिया गया है, और वह उसकी ऑफ़ीशियल 'एडवाइज़र' है। अतएव, सोलह तारीख़ को जब वह कॉलेज पहुँचे तो उसे वह फ्लोरेंस निकल्स हॉल की सीढ़ियों पर मिलेगी और उसकी सारी समस्याओं का हल खोज देगी।

नीचे उसका नाम लिखा था—

तहमीना रज़ा, तारा हाल, मसूरी।

चम्पा हक्का-बक्का खड़ी सोचती रही कि तहमीना रज़ा कौन है, और उसे मेरा पता कैसे मालूम हुआ ? और, इतना मित्रतापूर्ण पत्र उसने क्यों लिखा ? यह पत्र उसे बड़ा रहस्यपूर्ण लगा। यानी इस तरह की बातें केवल उपन्यासों में होती हैं। उसे लगा कि वह अब बड़े अनोखे वातावरण और बड़ी विचित्र दुनिया की ओर रवाना होने वाली है।

उसका यह ख़याल ग़लत न था।

41

बनारस से लौट कर सारी लड़कियाँ अपने-अपने घरों को चली गईं और एक सप्ताह बाद सब एक-दूसरे से अन्तिम बार मिलने के लिए स्कूल में जमा हुईं। बड़ा क्लास-रूम खुलवाया गया। लाडो महरी सबकी आवभगत करती आगे-पीछे दौड़ती रही। लड़कियाँ डेस्कों पर चढ़ कर बैठ गईं और एकाएक सब ख़ामोश हो गईं, जैसे बोलना जानती ही न हों। उनमें से बड़ी लड़कियाँ सोच रही थीं—अब जाने हमारा क्या हशर होगा ? उसमें से वहुतों की शादी होने वाली थी। कुछ को अभी कॉलेज में पढ़ना था। सहसा स्वभाव से ही बेहद ड्रामेटिक हमीदाबानो ने स्नेहप्रभा प्रधान की नई फ़िल्म का गाना शुरू कर दिया—"हँस ले जी भर-भर कर हँस ले। जाने कौन कहाँ फिर जाए।" इसके बाद दूसरा ताज़ा फिल्मी गाना गाया गया—'रुक न सको तो जाओ।--तुम जाओ।" और इसके बाद तीसरा "ओ जीने वाले, हँसते-हँसते जीना, सूरज न कभी डूबे तेरा।" इत्यादि। इन सब गानों के कारण बड़ी उदासी छा गई और सब खूब चहको-पहको रोईं।

वाकई लड़कियों की क़ौम किस कदर बेवकूफ़ है।

मगर, कितनी अजीब बात थी कि इनमें से दो-तीन लड़कियों के अलावा बाकी सारी लड़कियों को तलअत ने उम्र भर न देखा। वे सब जाने कहाँ ग़ायब हो गईं--जो इतनी अच्छी हमजोलियाँ थीं।

यह हमेशा होता है। जब हम इकट्ठे होते हैं तो कभी ख़याल नहीं आता कि अलग-अलग हो जाएँगे; और जब बिछुड़ जाते हैं तो लगता है जैसे कभी मिले ही न थे।

42

हिंदुस्तान का सर्वश्रेष्ठ गर्ल्स कॉलेज इजाबेला-थॉबर्न—

चाँद बाग़ !!!

लखनऊ की फ़ैजाबाद रोड पर एक वहुत बड़ा फाटक है; और, दूर ही से एक लम्बी-चौड़ी दुमंजिला इमारत नज़र आ जाती है। जिसके यूनानी शैली के ऊँचे-ऊँचे पोर्टिकों के स्तम्भ दूर से दिखलाई पड़ते हैं। इस इमारत में चमकते हुए साफ़ शीशों वाली ऊँची-ऊँची बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हैं और झिलमिलाते हुए फ़र्श और चौड़े संगमरमर के ज़ीने, ऊँची छतों में झाड़ फ़ानूस लटके हैं। इसका 'ब्राऊनिंग रूम' जहाँ लड़कियाँ बैठ कर फुर्सत के समय में विद्या चरती-चुगती हैं, अपनी सजवाट की वजह से किसी वर्तानवी लार्ड का ड्राइंगरूम मालूम होता है। इसमें बहुमूल्य प्राचीन वस्तुएँ हैं और अलभ्य पुस्तकें रखी हैं और मशहूर पेंटिंग्ज़ से इसकी दीवारें सजी हैं। सारी इमारत में जगह-जगह ईरानी क़ालीन बिछे हैं। यह इमारत एडमिनिस्ट्रेशन-बिल्डिंग कहलाती है। इसके पीछे एक लम्बे-चौड़े कैम्पस में, इतनी ही बड़ी चार इमारतें और विखरी हुई हैं। जिनके ऊपर फूलों की खूबसूरत बेलें फैली हैं। ये कोरीडोर कई फलांग लम्बे हैं। इन इमारतों में से तीन में होस्टल हैं, जो निशात-महल, नौनिहाल-मंज़िल और मैत्री-भवन कहलाते हैं। ये भी इस क़दर शानदार हैं, मानो किसी बड़ी हिन्दुस्तानी रियासत के गेस्ट-हाउस हों। चौथी इमारत

फ़ैकल्टी की है। जिसके कमरे और सैटिंग रूम दुल्हन की तरह सजे हुए हैं। कैम्पस के बीच में डाइनिंग-हॉल की इमारतें हैं, और एक सिरे पर अस्पताल है, जिसकी इन्चार्ज एक नीग्रो नर्स है। बराबर में ही कॉलेज का प्रसिद्ध पूजा-स्थान है जो मॉडर्न तर्ज़ का बनाया गया है : जिस तरह के पूजा-स्थान स्वीडेन और कैलिफ़ोर्निया में बनाये गए हैं। यह अत्यंत स्ट्रीम लाइन्ड जगह है और उसमें बैठ कर ईश्वर से लौ लगाते वक़्त ख़ामख़ाह यह महसूस होता है कि ईसा मसीह भी किसी अमरीकन यूनिवर्सिटी के अध्यक्ष या न्यू इंगलैंड के दयावान और सुशील प्रोफ़ेसर हैं। इस कॉलेज की इमारत की निर्माण-शैली उसी किस्म की है जैसी अमरीकन यूनिवर्सिटी की होती है। बैरुत की अमरीकन यूनिवर्सिटी की तरह यह पूर्व में अमरीकनों का बनाया हुआ विशाल विद्यापीठ है।

चाँद बाग़।

पूर्णमासी की रातों में जब चाँदनी कैम्पस पर बरसती है तो लगता है कि यह सारा समाँ बेहद अवास्तविक है—हरे-भरे लॉन, फूलों के कुंज, सफेदे के झुंड, इमारतों की रोशन खिड़कियाँ। इस समय कैम्पस के विभिन्न कोनों से संगीत के सुर उठते हैं। बियोफ़ेन, शोपां, वैबर, जार्ज ग्रेशान—या किसी कोरीडोर में से कोई लड़की छाया की तरह गुज़र जाती है। नीग्रो नर्स अस्पताल के शीशों वाले बरामदों की खिड़की खोल कर आकाश को देखती है जिस पर बैतुल्हम् का अकेला सितारा कुहरे में छुपा झिलमिला रहा है। चैपल में से इलेक्ट्रिक आर्गन की गहरी गूँजती हुई आवाज़ ऊपर उठती है। अन्दर वेदी के ऊपर चित्रित लैम्प जलता रहता है। सन्नाटे के सारे प्रतिबिम्ब इन्द्रधनुष के रंगों की तरह सारे में फैल जाते हैं। सवा सौ साल उधर यहाँ रमना था। यहाँ के बाग़ों में हिरन चौकड़ी भरते फिरते थे; और बारहसिंगे और नीलगायें और अवधपुरी के शासकों के बजरे नदी के इस किनारे पर आकर लगते थे और शहर की ऊँची सोसायटी यहाँ आकर मेढ़ों और हाथियों की लड़ाई का नज़ारा करती थी। कैम्पस के उस कोने में खड़े उस पुराने बरगद के पेड़ की पत्तियाँ उस समय भी पिछले पहर की हवा में इसी तरह सरसराती होंगी।

अस्सी साल से यह विद्यालय क़ायम है। सन् 1862 ई. में जो समृद्ध घरानों की लड़कियाँ, लम्बी आस्तीनों के ब्लाउज़ पहने और गाउन के ढंग से साड़ियाँ बाँधे यहाँ से अपनी शिक्षा पूरी करके निकली थीं, उनकी क़ब्रों पर नए क़ब्रिस्तान बन चुके। जो लड़कियाँ कल यहाँ आँखों में सपने लेकर गाती-गुनगुनाती आई थीं, आज वह नानियाँ-दादियाँ हैं; या दुनिया के बहुत से दुःख उन्होंने उठाए हैं या बड़ा साधारण जीवन गुज़ार रही हैं।

इसलिए बेचारी लड़कियो, तुम जो हॉल में घुसी यूज़ीन ओनियल का रिहर्सल कर रही हो, खुश हो लो, क्योंकि कल तुम भी मर चुकी होगी। चूँकि जीवन के जिस समर में भाग लेने के लिए तुम यहाँ से निकलोगी, उसके मोर्चे पर काम आने वालों के लिए पीतल की तख्तियाँ दीवारों पर नहीं लगाई जातीं।

इस चैपल की सफ़ेद सीढ़ियों पर खड़े होकर सोचो। कौन कहता है कि सभी धर्मों का जीवन-दर्शन गलत है। सीधा रास्ता केवल एक है—सीधा और तंग। एक जन्म से एक मृत्यु की ओर जाने वाला, जिसके बाद कोई वापसी नहीं। इसलिए बेचारी लड़कियो, तुम जो फूलों के कुंज में गरबा नाच रही हो, चाहे तुम किसी ईश्वर की आराधना करती हो (और, क्योंकि

तुम स्त्री हो, इसलिए नास्तिक मुश्किल ही से बनोगी) याद रखो, जब तुम चाँदनी की इस दुनिया से बाहर चली जाओगी तो फिर कभी लौट कर न आओगी। दूसरे तुम्हारी जगह ले लेंगे। इन सब जगहों पर वही सब होगा, जो तुम्हारे समय में होता रहा है। लेकिन तब दुनिया बदल चुकी होगी। दुनिया क्षण-प्रतिक्षण बदलती रहती है।

तुम बदल जाओगी।

क्या तुमको मालूम है कि तुम्हारी सोश्योलॉजी की चहेती प्रोफ़ेसर, बगुले के जैसे सफ़ेद बालों वाली, झुकी हुई कमर की बुढ़िया जो खट-खट करती, मुस्कराती गैलरी में से गुज़र रही है, सन् 1902 में तुमसे ज़्यादा हसीन थी और 'फ़िलाडेल्फिया का गुलाब' कहलाती थी।

ये सारे जश्न, सारे उत्सव, रस्में, त्यौहार, कार्निवल, मोरेस डांसिंग की प्रतियोगिताएँ, स्पोर्ट्स के हंगामे—यह सब तुमसे पहले हो चुका है और तुम्हारे बाद भी होता रहेगा।

यह कैम्पस इस काँच-घर का जिसे दुनिया कहते हैं—एक बहुत ही छोटा-सा मॉडल है।

निशात-महल के पीछे डच नमूने के बाग़ के बराबर से एक सायादार रास्ता स्वीमिंग-पूल की तरफ़ जाता है। जो आम के झुण्ड से घिरा हुआ है। यह जुलाई महीना है और भाँति-भाँति की लड़कियाँ सारे में फैली हुई हैं—मरहठी, गुजराती, बंगाली, मद्रासी, उड़िसा, नेपाली, पंजाबी, पठान, यूरोपियन, अमरीकन, बर्मी, सिंहली। देश का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं, जहाँ की भाषा यहाँ न सुनी जाती हो। धर्म से ये लड़कियाँ हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं, ईसाई हैं और बौद्ध और यहूदी। दुनिया की कोई धार्मिक आस्था नहीं, जिसका अनुयाई यहाँ मौजूद न हो।

इस कॉलेज की छात्राएँ अपनी सादगी के लिए मशहूर हैं। आम तौर पर ये लोग सफ़ेद साड़ियाँ पहनती हैं, और जिस तरह के फ़ैशन ये करती हैं, उनकी सारे सूबे में नक़ल की जाती है।

इस ऐरिस्टोक्रेटिक-कॉलेज में राजनीतियों की चर्चा बिलकुल नहीं होती। बस, केवल दुनिया में ग्रेसफुल और संतुलित ढंग से जीवन व्यतीत करने की कला पर ध्यान दिया जाता है। "हम देने के लिए लेते हैं।"—यहाँ का मोटो है।

पहले यहाँ पश्चिम के अनुकरण का बहुत ज़ोर था। लेकिन, राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण वह ज़ोर अब कम होता जा रहा है। अब यहाँ टैगोर-जयन्ती मनाई जाती है—और, ईद और दीवाली का मिला-जुला त्यौहार बहुत धूम से मनाया जाता है। उस समय मुसलमान लड़कियाँ सारे में दिये जला कर सजाती हैं और हिन्दू लड़कियाँ ग़रारे पहन कर इतराती फिरती हैं।

इस कॉलेज की बहुत पुरानी परम्परायें हैं और रीति-रिवाज़, और अपने गाने हैं। यह एक ऐसी रहस्यमय दुनिया है, जिसमें कोई बाहर वाला प्रवेश नहीं कर सकता।

43

वादे के अनुसार सोलह तारीख़ को तहमीना रज़ा, चम्पा अहमद को फ़्लोरेंस निकल्स हॉल की सीढ़ियों पर मिली। चम्पा ज़रा परेशानी से चारों ओर देख रही थी कि उसकी हमउम्र एक लड़की ने आगे बढ़ कर पूछा—"तुम चम्पा अहमद हो?"

"हाँ।"

"आओ, मेरे साथ चलो।"

और, दूसरे ही क्षण चम्पा चाँद बाग़ की दुनिया में शामिल हो गई। उस रात हॉल में नई लड़कियों को कॉलेज की परम्पराओं के सम्बन्ध में एक लेक्चर दिया गया। उन्हें यहाँ के जीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराया गया। शुरू के कुछ सप्ताह चम्पा को 'ब्रेक-इन' होने में लगे। तभी उसको इस नियम का भी ज्ञान हुआ कि हर साल कॉलेज के दफ़्तर की ओर से नई लड़कियों के पते सीनियर छात्राओं को भेज दिए जाते हैं और वे उनकी 'एडवाइज़र्स' नियुक्त की जाती हैं। कॉलेज में दाख़िल होने वाली सारी लड़कियों को कुछ ख़ास-ख़ास सीनियर छात्राओं की ओर से इस तरह के ख़त मिले होंगे, जैसा एक चम्पा को मिला था।

तहमीना की बहन तलअत आरा फ़र्स्ट-ईयर में भर्ती हुई थी। वह बड़ी बेतकल्लुफ़ी से उससे बोली—"अरे चम्पा बाजी, हमने तो आपको बनारस में भी देखा था।"

और, निर्मला श्रीवास्तव ने सोचा कि अब कम्मन भैया और भैयन साहब की तो पाँचों घी में और सिर कढ़ाई में। उनकी देवी तो यहीं आ पहुँची।

चम्पा दूसरी लड़कियों के साथ 'गुलफ़िशाँ' भी गई।

यहाँ सब उससे बड़ी अपनायत से मिले। तहमीना का भाई कमाल रज़ा यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। उसने बड़ी नम्रता और शिष्टाचार से उससे बातचीत की और तलअत के अनुकरण में उसे 'चम्पा बाजी' कह कर सम्बोधित किया। सिंघाड़े वाली कोठी ने भी उसका स्वागत किया। शंकर श्रीवास्तव उसके लिए ख़ुद चाय की ट्रे उठा कर लाया।

एक इतवार को तीसरे पहर वह 'गुलफ़िशाँ' पहुँची। तलअत और तहमीना पिछले बरामदे के साइड-रूम में खिड़की के पास तख़्त पर चढ़ी बैठी थीं। प्याज़ और मिर्चों का टोकरा नीचे रखा था। निर्मला आलू छील रही थी। शायद शाम को उनके यहाँ कोई दावत थी !

चम्पा भी तख़्त के किनारे बैठ कर आलू छीलने में जुट गई। उसी वक़्त भैया साहब अन्दर आए। वे भी परम्परागत नायकों वाली शान से टैनिस-रैकेट हाथ में लिए बहुत ख़ूबसूरत लग रहे थे। भैया साहब आम तौर पर घर में नहीं आते थे, ख़ासकर जब तहमीना की सहेलियाँ मौजूद हों, क्योंकि तहमीना के 'क्राउड' से उनकी कोई ख़ास नहीं बनती थी। तहमीना के असल कॉमरेड तो कमाल और हरिशंकर थे।

मगर, भैया साहब बहरहाल भैया साहब थे।

चम्पा बैठी आलू छीलती रही। उसने अपनी उँगलियाँ नहीं काटीं।

भैया साहब शाम के डिनर के सम्बन्ध में तहमीना से कुछ पूछने आए थे। उससे बात करके वे उल्टे पाँव वापस चले गए।

मगर, अपने कमरे में जाकर उन्होंने गंगादीन को बुलाया—"यह नई बिटिया कौन हैं, जो अन्दर बैठी हैं?"

"पता नहीं, सरकार।" गंगादीन हड़बड़ा गया। भैया साहब ने आज तक लड़कियों के सम्बन्ध में कोई पूछगछ उससे नहीं की थी। आख़िर बड़ी बिटिया से उनका ब्याह होने वाला था—"बड़ी बिटिया के पास चाँद बाग की सब्बै बाबा-लोग आवत हैं।"

"अच्छा, जाओ।"

कमाल आया। उससे क्या पूछते ! तलअत की तबीयत की तेज़ी से वे ज़रा घबराते थे कि यदि उससे इशारतन भी मालूम करना चाहा तो वह सारे में ढिंढोरा पीटती फिरेगी ! क्या मुसीबत थी कि चूँकि तहमीना से 'आफ़ीशल' तौर पर बँध गए थे, इसलिए दुनिया-जहान की किसी और लड़की को आँख भर कर देखना भी उन पर हराम था। यह कैसी क़ैद थी !

वाक़या यह है कि वे बेहद एकाकी थे।

भैया साहब अपने व्यक्तित्व के रोमांस में स्वयं घिर कर रह गए थे।

चम्पा को सुजाता ने बताया—"यह महाशय तहमीना के फियांसे हैं, लेकिन तहमीना उनको एकदम 'नोलिफ़्ट' किए रखती है।"

ओह ! किस क़दर टिपिकल परिस्थिति थी...। दो कज़िन...और, वे पहले ही एक-दूसरे के साथ मँगनी के सम्बन्ध में बाँध दिए गए थे।...'गुलफ़िशाँ' जैसे नामों वाली कोठियों के वासियों के सम्बन्ध में जितनी कहानियाँ उसने पढ़ी थीं, उन सबमें लगभग यही होता था।

मगर, ये कहानियाँ—निकट से देखो तो उनमें कुछ भी नहीं था। जो दूसरों के जीवन को एक कहानी समझता है, वह दरअसल ख़ुद भी तो एक कहानी है, और उसे दूसरे लोग पढ़ रहे हैं—यह बात चम्पा को उस वक़्त मालूम न थी।

44

बरसात बीती। कार्त्तिकी पूर्णमासी आई। फिर माघ-पूस की हवाएँ चलीं। कमरों में अँगीठियाँ जलीं। बाग़ों पर कुहरा छाया। रात के फूलों पर ओस के कण जमे। चाँद बाग़ में क्रिसमय के त्यौहार की तैयारियाँ आरम्भ हुईं। अमीरों ने इस साल के फ़ैशन के ओवरकोट सिलवाए। ग़रीब-निर्धन पाले में ठिठुर कर मौत के गले लगे। बड़े लोगों ने शिकार के लिए कालपी और तराई की ओर रुख़ किया। कलकत्ते की रौनक़ दोबाला हुई। जाड़े बीते, बसन्त आया। सरसों फूली कोंपलें फूटीं। बहार की ख़ुशबुओं से फ़िज़ाएँ महकीं। अण्डर-ग्रेजुएट शायरों ने अंग्रेज़ी में नए तर्ज़ की कविताएँ लिखीं। गर्मियाँ आईं। तहख़ाने आबाद हुए। ख़स की टट्टियाँ लगीं। ज़िलों के कम्पनी बाग़ चमेली के फूलों से महके। तीचियों की खाँचियाँ उतरीं। लू चली। गोमती की रेत में ख़रबूज़े पके। सावन आया। अमराइयों में झूले पड़े। ऐ लीजिए, एक साल निकल गया। अनमोल उम्र का एक बरस ख़त्म हुआ। अब दीवाली आ रही है। खाँड रखी गई है। निर्मला अपने घर के आँगन में रंगों से बेलबूटे बनाने में जुटी है।

तलअत 'गुलफ़िशाँ' के पिछले बरामदे की सबसे निचली सीढ़ी पर लोट लगाती रही। यहाँ से बाग़ का दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई दे रहा था। आसमान की तेज़ नीलाहट से आँखें चुँधियाँ गईं। यह नीलाहट जो, दूर, नीचे जाकर पेड़ों की हरियाली में खो गई थी और स्वच्छ सन्नाटा सारे में फैला था। बराबर की कोठी में मिसेज़ टैगोर के यहाँ तबला बज रहा था। अन्दर शायद भैया साहब वायलिन बजा रहे थे। उसने ज़मीन पर कान रख दिया। याजूज़-माजूज़ की तरह मैं ज़मीन पर कान बिछाए लेटी हूँ। ठंडक, शान्ति जो सारनाथ के मंदिर में भी मिली थी। याजूज़-माजूज़ थे, या कौन थे? बहरहाल हाथ बढ़ा कर उसने खटमिट्ठी ति-पत्तिया घास तोड़ी और उसे आराम से चबाने लगी। सिंदूरी गमलों में सुबह पानी पड़ा था और उसकी वजह

से उनका रंग बहकर नीचे आ गया था।

एक साल निकल गया। भैया साहब यूनिवर्सिटी छोड़ चुके थे और अब मुक़ाबलों की तैयारी कर रहे थे। कमाल और हरिशंकर एम. ए. फ़ाइनल में आ गए थे। अप्पी ने बी. ए. कर लिया था। तलअत और निर्मला ख़ुद अब सेकण्ड-ईयर में थीं। भैया साहब कुछ सिड़ी हो गए थे क्या? ये चम्पा बाजी से इश्क़ कर रहे थे और वह भी उनको पसन्द करती थीं। चम्पा बाजी पर तो सारी दुनिया ही जान दे रही थी। कमाल और हरिशंकर का उनकी तारीफ़ें करते मुँह न थकता। वे लोग तलअत से कहते—जब तुम बड़ी हो जाओगी तो तुमको एहसास होगा कि चम्पा कैसी अजीब हस्ती हैं। अच्छा भाई, होंगी।

अप्पी की उनसे अब भी वैसी ही मुलाकात थी। अप्पी बड़ी रख-रखाव वाली लड़की थीं। खुल कर बड़े साफ़ दिल से मिलतीं। उनका बहुत बड़ा दिल था। ज़्यादा अजीब और सराहनीय हस्ती कौन था? अप्पी या चम्पा बाजी? मगर, यह इन लोगों को कौन बताने जाए? मैंने यह हिसाब लगाया है, तलअत ने सोचा कि—आदमी लोग ख़ाली सूरत को पसन्द करते हैं। चम्पा बाजी सुन्दर हैं, अप्पी सुन्दर नहीं हैं बस, यह है सारी बात—यह सोच कर उसे बड़ा दुःख हुआ। यानी, सौन्दर्य की इतनी भारी कीमत लोगों ने लगा रखी है। अफ़सोस के साथ उसने और खट्टमिट्ठी घास तोड़ी और उसे चबाने में लीन रही।

कमाल देहरादून की एक सड़क पर मुँह लटकाये चला किया। वह हमेशा की तरह दीवाली की छुट्टियों में चक्कर पर निकला हुआ था। उसके पुराने लामार्टिनेयर कॉलेज का एक युवा अंग्रेज़ प्रोफ़ेसर कुछ ही वर्ष पहले ऑक्सफ़ोर्ड से आया था और साधु होकर घर से निकल भागा था। उसे पकड़ने के लिए कमाल को भेजा गया था, क्योंकि कमाल उसका प्रिय विद्यार्थी रह चुका था। उसने हरिशंकर के साथ हरिद्वार की गुफायें छान मारीं। चकराता, ऋषिकेश और हर की पौड़ी के मन्दिर और हिमालय की पहाड़ियों को खूब खोजा। तब एक रोज़ योगमाया के मन्दिर के पास प्रोफ़ेसर साहब उसे मिल गए और उन्होंने हाथ जोड़ कर उससे प्रार्थना की कि—"भाई, अब मैं जंजाल से निकल आया हूँ, मुझे वापस मत ले जाओ। मुझ पर दया करो मैं बहुत मजे में हूँ"—और कमाल ने कहा—"लखनऊ में अफ़वाह है कि यह पब्लिसिटी हासिल करने का एक रैकेट चलाया है आपने।"

"भाई।" वह हाथ जोड़े आग्रह करते रहे—"ख़ुदा के लिए चले जाओ, भाई।" और इसके बाद ब्राह्मणों की तरह ज़ोर से खँखारते हुए अपने गेरुए वस्त्र सँभाले और एक नाले को लाँघ कर जंगल में गायब हो गए थे। अब कमाल मुँह लटकाये देहरादून के मोहिनी रोड पर चल रहा था। हरिशंकर उसके साथ था। सामने रिस्पना बह रही थी।

"यार हरिशंकर—" कमाल ने कहा।

"हाँ यार।"

"यार यह प्रोफ़ेसर हैमिल्टन ठीक तो कहता था। हम लोग किस जंजाल में फँसे हुए हैं, ख़ुदा की कसम।"

उस दिन उन्होंने त्याग के मसले पर काफ़ी सोच-विचार किया और बहुत गहरा दार्शनिक मूड उन पर छाया रहा।

"आओ, कोठियों के नाम पढ़ें। नामों के चुनाव से मकान वालों की सायकोलॉजी का

पता चलता है।" चलते-चलते रुक कर एक फाटक के पास जाते हुए हरिशंकर ने कहा।

"हम कभी मकान बना कर नहीं रहेंगे, कि शाहीन (बाज़) बनाता नहीं आशियाना !" कमाल ने कहा।

"ठीक कहते हो ! देखो, बुर्जुआज़ी किस क़दर अफसोसनाक तौर पर स्लोपी (Sloppy) है। ज़रा यह नाम पढ़ना।"

"ख़्वाबिस्तान। लाहौल विलाक़ूवत।"

"मगर तुम खुद भी 'गुलफ़िशाँ' और 'ख़याबाँ' में रहते हो।"

"जानता हूँ।"

"यार, कमाल—"

"हाँ यार।"

"ज़रा सोचो ! लोगों ने मकान बना रखे हैं। यहाँ से वहाँ तक एक से एक खूबसूरत। सारी दुनिया में मकान बने हुए हैं।"

"हाँ, यार, बड़ी अजीब बात है।"

वे दोनों एक फाटक की पुलिया पर बैठ गए, और फिर इस समस्या पर सोच-विचार करने लगे। असल में उनको प्रोफ़ेसर के दुनिया तज देने ने बहुत व्याकुल कर दिया था। एक सही दिमाग़ इंसान, साइंटिस्ट, और चल दिया जंगल को ! हद है !

"इसका मतलब कुछ न कुछ ज़रूर होगा।"

अँधेरा पड़े तक वह डालनवाला की शांत, सुगंधित सड़कों पर मकानों के नाम पढ़ते फिरे—'नस्तरन', 'दौलतख़ाना', 'शैमरॉक', 'आशियाना', 'राजमहल'। कमाल के वालिद का मकान 'खयाबाँ' भी सामने मौजूद था।

इन मकानों क बाग़ों में लगे हुए पहाड़ी फलों के पेड़ों की महक सारे में उड़ रही थी और दुनिया बड़ी सुन्दर जगह थी।

वे दोनों मुँह लटका कर फिर एक फाटक की पुलिया पर बैठ गए और नहर के पानी को देखते रहे। नहर सड़क के किनारे-किनारे बह रही थी। पानी में एक टूटा-फूटा जूता, धारे के ज़ोर से उछलता-कूदता बहता चला जा रहा था।

चम्पा अहमद ने निशातमहल होस्टल के विशाल ड्राइंग-रूम में आकर रोशनी जलाई और किताब खोल कर स्टैण्डर्ड लैम्प के नीचे बैठ गई।

तहमीना रज़ा 'गुलफ़िशाँ' की बरसाती की सीढ़ियों पर बैठी रामऔतार को हिन्दी पढ़ाती रही।

अंग्रेज-साधु इत्मीनान ने टाँगें फैलाए हिमावत् के जंगल में एक चट्टान पर पड़ा सो रहा था।

45

दो साल और निकल गए। अगस्त सन् 42 का आन्दोलन भी पुरानी बात हो चुकी। 'पण्डित जी' और 'मौलाना' और सारे नेता अहमदनगर के क़िले में क़ैद थे। सारे में बरतानवी

और अमरीकन सिपाही घूमते नज़र आते थे। हजरतगंज में ऐंग्लो-इण्डियन "वैक आई" लड़कियों के झुण्ड टहलते। दुनिया का रंग तेज़ी से बदल रहा था। दीवारों पर से 'क्विट इण्डिया' के शब्द मिटते जा रहे थे। सोसायटी में हर तरफ़ फ़ौज़ी नज़र आते।

'गुलफिशाँ' के सैयद आमिर रज़ा ने इम्पीरियल सर्विस के मुक़ाबलों में असफल होने के बाद नेवी में कमीशन ले लिया। तहमीना एम. ए. फ़ाइनल में आ चुकी थी। चम्पा एम. ए. प्रीवियस में थी, और कैलाश होस्टल में रहती थी। तलअत और निर्मला बड़ी धूमधाम की अण्डर-ग्रेजुएट छात्राएँ थीं। चम्पा भी अब एक समय से उस ग्रुप में थी जो शहर का "फैशनेब्ल स्मार्ट इंटलैक्चुअल सैट" कहलाता था। इस भीड़ में ग़फ़रान मंज़िल की रख़शिंदा और कंवर पी. चौ. और गिनी कौल और किरण बहादुर काटजू और पराक्रम विमलेश्वर और फैज़ाबाद रोड की मीरा नलिनी राजवंश और अरुण राजवंश और फ़व्वाद और राहेल बिलग्रामी और अली और एल्मर रेक्सटन भी शामिल थे। फिर गुलफ़िशाँ और सिंघाड़े वाली कोठी के व्यक्ति। चाँद बाग़ और यूनिवर्सिटी। इतने बहुत से नाम—इतने बहुत से चेहरे। इन सब लोगों की बहुत बड़ी जत्थाबन्दी थी। चोरों का मानसिक बावर्ची घर, ब्लैक, सफ़ेद चेहरों का समुन्दर चारों ओर ठाठें मार रहा था। उन सबके बीच में, उन सबसे घिरी हुई वह अकेली खड़ी थी, क्योंकि अंतिम मूल्यांकन में यह स्पष्ट मालूम होता है कि इंसान बिलकुल और एकदम अकेला है। इसके बावजूद हम चारों ओर इंसानों से विभिन्न प्रकार के इक्वेशन स्थापित करने की कोशिश में लगे रहते हैं।

जब ये इक्वेशन ग़लत होने शुरू हो जाते हैं तो यह भी पता लगता है कि हम बेहद साधारण हैं।

यही बात चम्पा ने सहसा सैयद आमिर रज़ा से, जो भैया साहब कहलाते थे कही।

उस रोज़ भैया साहब मद्रास के लिए रवाना होने वाले थे। वे उससे मिलने कैलाश आए। वह उस समय लायब्रेरी जा रही थी। अपनी साइकिल हाथ में लेकर वह उनके साथ-साथ सड़क पर निकल आई। भैया साहब ने उससे कहा—"मैं यहाँ से भागना चाहता हूँ, और शुक्र है कि मुझे भागने का मौका मिल गया। मेरा तबादला मद्रास हो गया है। तुम...तुम...मुझसे शादी करके मेरे साथ चलने को तैयार हो?"

भैया साहब एक तो वैसे ही बेहद सुन्दर और रूपवान थे। नेवी में शामिल हो जाने ने और सोने पर सुहागे का काम किया, गोया चार्ल्स ब्वायज़ को यूनिफ़ॉर्म पहना दीजिए।

चम्पा का चेहरा किसी अज्ञात भावना के कारण सुर्ख़ हो गया। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात थी जो उसने सुनी। एक आदमी उसे अपनी ज़िंदगी में शामिल होने के लिए निमंत्रित कर रहा था, और वह उस आदमी को बेहद पसन्द करती थी।

मगर उसने कहा, "कमाल है। आपको यह कहते हुए शर्म तो न आई होगी !"

"फिर तुमने मुझे बाग़ के रास्ते पर क्यों चलाया था?" उन्होंने गुस्से से कहा।

"मैंने आपको किसी बाग़ के रास्ते पर नहीं चलाया।"

"तुम ईमानदारी से कह सकती हो कि तुमने मुझमें दिलचस्पी नहीं ली; यह जानते हुए भी कि तुम्हारी दोस्त तहमीना से मेरी शादी होने वाली है !"

वह ख़ामोश हो गई। यह बिलकुल सही था। अब उसे पहली मर्तबा मालूम हुआ कि

उसमें बड़ी कमियाँ हैं। सिद्धान्त, ऊँचे विचार और दर्शन अलग चीज़ हैं—और हम वास्तविक जीवन में अपने विचारों से बिलकुल भिन्न होते हैं। विशुद्ध दर्शन और नैतिकता के सिद्धान्तों का भावनाओं और इम्पल्स से कोई इक्वेशन नहीं। हम वास्तव में बेहद कमजोर हैं।

भैया साहब ने मानो उसके विचार पढ़ लिए, "तुम भी बेहद मामूली निकलीं।" उन्होंने कहा।

"मैंने असाधारण होने का किस रोज़ दावा किया था?" अब वह बादशाह बाग़ के फाटक तक पहुँच चुके थे, जिसमें यूनिवर्सिटी पोस्ट आफ़िस था। "ठहरिए, आप मेरे साथ-साथ क्यों चले आ रहे हैं? मुझे अपने काम से जाना है। आप घर तशरीफ ले जाइए।"

"मेरा कोई घर नहीं है।"

"घर तो हममें से किसी का भी कहीं नहीं है।" चम्पा ने उकता कर कहा—"अब मैं इस समय आपसे फ़लसफ़ा नहीं छाँटना चाहती। आपका मकान मौजूद है, जो 'गुलफ़िशाँ' कहलाता है। लाहौल विला...किस क़दर बोगस नाम है—और वहाँ तहमीना मौजूद है। वापस जाइये।"

"तुम बेहद मामूली हो। और आम औरतों की तरह मुझसे लड़ रही हो। तुम्हारी सारी प्रतिक्रियाएँ बहुत मामूली हैं। तुम भी आख़िर टाइप पर लौट गईं। तुम्हारे जैसी हज़ारों लड़कियाँ दुनिया में मौजूद हैं। तुमने पहले मुझसे फ़्लर्ट किया और अब आगे साथ देने की हिम्मत नहीं। हद है !"

"आम मर्दों की तरह आप भी मुझसे झगड़ रहे हैं।" उसने मुस्करा कर कहा—"इसीलिए यह साबित हो गया कि हममें से कोई देवी-देवता का दर्जा नहीं रखता। ख़ुदाहाफ़िज़।" वह साइकिल पर बैठ कर तेज़ी से टैगोर-लायब्रेरी की ओर रवाना हो गई।

'गुलफ़िशाँ' पहुँच कर भैया साहब बड़ी तल्लीनता से पैकिंग में व्यस्त हो गए। उसी रोज़ तहमीना एम. ए. का अन्तिम परचा करके यूनिवर्सिटी से लौटी थी। सारे दिन घर में खिचड़ियाँ पकती रही थीं। बड़ी बिटिया ने तालीम ख़त्म कर ली। भैया साहब नेवी के अफ़सर बन गए। अब पोस्टिंग पर जा रहे हैं। अब आख़िर ब्याह में क्या देर है। "लोगो, यह बड़ा अंधेर है।" ख़ाला बेगम ने कहा—"कि लड़की और लड़का घर में मौजूद, ठीकरे की माँग, और शादी का कोई नाम नहीं लेता। इसी को कलजुग कहते हैं।"

रात को भैया साहब ख़ामोशी से मोटर में बैठ कर स्टेशन चले गए।

उनके जाने के बाद गंगादीन भी नज़रों से उतर गया। नौकर-चाकर उसे गुस्से से देखते। "बे-मुरव्वत थे दोनों जने"—हुसैनी की बीवी ने ज़र्दा फाँकते हुए सौसन से कहा—और अपनी लड़की की चुटिया गूँथने लगीं। "अरी कमबख़्त निचली बैठ।" उन्होंने लड़की को एक चाँटा रसीद किया। लड़की ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

सारे घर में बद-मिज़ाजी का दौरा पड़ गया। नवाब तक़ी रज़ा बहादुर ने अपनी बीवी से कहा—"और बनाओ साहबज़ादे को अपना बेटा। और करो लाड़ ! ज़माने का ख़ून सफ़ेद हो गया है। दुनिया यही कहेगी कि लड़की ही में कोई कमी रही होगी; तभी तो बचपने के मँगेतर ने छोड़ दिया।"

कमाल और हरिशंकर तहमीना के सामने जाते हुए कतराते। गर्मियों की छुट्टियाँ शुरू हो चुकी थीं। चम्पा बनारस लौट गई। अब हमेशा की तरह पहाड़ पर जाने का प्रोग्राम बना।

सारे घरवाले नैनीताल के लिए रवाना हो गए। हरिशंकर को अपने वर-दिखौवे के लिए मिर्ज़ापुर जाना था। उसके आजकल धड़ाधड़ रिश्ते आ रहे थे। कमाल अपनी फूफी के निमंत्रण पर मसूरी चला गया।

जुलाई में फिर सब लोग पहाड़ों से उतरना शुरू हुए। 'गुलफ़िशाँ' के दरवाज़े खुले। पुरवाई में बाग़ के पौधे सरसराये कि एक रोज़ अचानक भैया साहब आन पहुँचे। तीन दिन वह 'गुलफ़िशाँ' में ठहरे और तीनों दिन अपने कमरे में बैठे रहे। प्रस्थान से एक दिन पूर्व वह अम्माँ बेगम के कमरे में गए।

"मुबारक हो, आपकी बिटिया एम. ए. पास हो गई।" उन्होंने तख़्त के किनारे पर बैठते हुए बड़ी शान्त आवाज़ में कहा।

अम्माँ बेगम ख़ामोश रहीं।

"मेरा ख़याल है; अब आपको उनकी शादी कर देनी चाहिए।"

"किससे?" अम्माँ बेगम ने ज़रा कटुता से पूछा।

"मुझसे, और किससे?" उन्होंने भी उसी कटुता से उत्तर दिया।

"तुमको मियाँ शर्म तो न आती होगी अब यह कहते। चचा की बेटी को छोड़ कर ग़ैर लड़की के फेर में पड़ गए ! हम जिधर जाते हैं, उँगलियाँ उठती हैं।"

"यह आपने किस तरह तय कर लिया कि मैं अपने फ़र्ज़ से गाफ़िल हूँ। मैं पाल-पोस कर इस घर में इसीलिए परवान चढ़ाया गया हूँ कि तहमीना बेगम का शौहर कहलाऊँ। अब मैं इतना एहसान-फ़रामोश भी नहीं कि आपकी बिटिया को ज़ुल दे जाऊँगा।" इतना कह कर वे बाहर चले गए।

सौसन ने जाकर तहमीना से कहा—"बिटिया, हम तो इमामबाँदी को बुलाने जा रहे हैं, गाने के लिए। कुछ सुना नहीं आपने, आपका ब्याह हो रहा है।"

"सौसन ! तुम जाकर सब लोगों से कह दो, कि चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाए, मैं हर्गिज़-हर्गिज़ भैया साहब से ब्याह न करूँगी।"

इतना कह कर तहमीना फूट-फूट कर रोने लगी। सौसन हक्का-बक्का रह गई।

सारे घर में 'एमरजेंसी' का ऐलान कर दिया गया। चारों तरफ़ फ़ोन और ट्रंककाल हुए। कमाल को मसूरी तार दिया गया कि वह बहन को आकर समझाए। हर शख़्स ने अपनी शक्ति भर तहमीना को समझाने की कोशिश की—तुम लड़की हो, एम. ए. पास हो, तो क्या हुआ ! और, बड़े घर की बिटिया हो तो क्या हुआ, हो तो लड़की। शादी कर लो। उसके बिना गुज़र नहीं। रिश्तेनाते के मामलों में ऐसी ऊँच-नीच होती ही रहती है। वग़ैरा वग़ैरा।

मगर तहमीना ने एक 'ना' के बाद 'हाँ' करके ही नहीं दी, यद्यपि ख़ालिस लड़कियों वाले अन्दाज़ में वह रात-रात भर रोया करती।

चम्पा भी वापस आ चुकी थी। यह उसका कैनिंग-कॉलेज में आख़िरी साल था।

कमाल ने मसूरी से आकर घर का यह नक़्शा देखा। फिर वह चम्पा से मिलने कैलाश गया। वहाँ मालूम हुआ कि चम्पा अभी अपने मामू के यहाँ है; अगले सप्ताह होस्टल आएगी। चम्पा के यहाँ पहुँचा तो वहाँ भैया साहब से उसकी मुठभेड़ हुई। पता नहीं, वह चम्पा से अब क्या कहने गए थे। वह उसी वक़्त उठ कर चले गए। उसी दिन वह मद्रास के लिए रवाना हुए।

धीरे-धीरे स्थिति फिर नॉर्मल हो गई। तहमीना के सामने बड़ी समस्या थी कि वह अपने समय का क्या करे। लड़कियों के लिए नौकरी की कोई राहें नहीं थीं, सिवाय एक शिक्षा-विभाग के। तंग आकर उसने फिर यूनिवर्सिटी में दाख़िला ले लिया, और कानून पढ़ने लगी। चम्पा उसी तरह उसके गिरोह में शामिल रही। इन दोनों लड़कियों ने निहायत रख-रखाव और सलीक़े के साथ एक-दूसरे से अपनी दोस्ती निभाई। कभी भूले से भी भैया साहब का ज़िक्र नहीं किया। दोनों अपनी-अपनी जगह पर यह समझती रहीं कि हम बहुत गम्भीर और क़ायदे की महिला हैं। कोई कल की छोकरियाँ हैं जो भावुकता के छिछोरेपन का शिकार हों।

और, यह भी है कि वक़्ती तौर पर जो बातें हमको क़यामत मालूम होती हैं, वक़्त गुज़र जाने के बाद ख़याल आता है हम कितने मूर्ख थे कि इस प्रकार व्याकुल हुए।

46

अकाल के सहायता-कार्य के सिलसिले में कमाल कलकत्ता जाने वाला था कि उसे जीजा जी का पत्र मिला। लाज की शादी को एक साल हो चुका। वह अपने पति के साथ नई दिल्ली में थी। वहीं जीजाजी सरकार के किसी विभाग में अंडर-सेक्रेटरी थे। अब निर्मला के विवाह की चिंता की जा रही थी। जीजाजी ने लिखा था—तुम कलकत्ता जा रहे हो। सर दीपनारायण का लड़का गौतम भी आजकल वहीं है। उसके लिए हमारा इरादा है कि निर्मला की बात भेजी जाए। वह भी तुम्हारे बंगाल-रिलीफ़ और इप्टा-विप्टा के चक्कर में ही वहाँ गया हुआ है, या शायद विश्व-भारती में कुछ कर रहा है। हर हाल में, तुम ज़रा उससे मिलना और मालूम करना कि किस रंग-ढंग का लड़का है। कुछ गम्भीरता भी है स्वभाव में या तुम सबकी तरह 'बोहीमियन' ही है।

कमाल ने ख़त जेब में रख लिया—कमाल के आदमी हैं जीजाजी भी ! इंसान देश में मक्खियों की तरह मर रहे हैं। देश तबाही की ओर जा रहा है। ये शादी-ब्याह के क़िस्से लेकर बैठे हैं। (वह बड़ा जोशीला स्टूडेंट-वर्कर था, और तहमीना और भैया साहब के क़िस्से के बाद से शादी-ब्याह की समस्या से बुरी तरह बोर हो चुका था।) -मैं कलकत्ते में अकाल-पीड़ित इंसानों की लाशें उठाऊँगा या निर्मला साहिबा के लिए दूल्हा खोजता फिरूँगा--उसने झुँझला कर तलअत से कहा। मगर फिर भी कर्त्तव्य के रूप में उसने उन साहब का पता नोट कर लिया। पता जीजाजी ने खत में लिखा था। और, कमाल सफ़र पर रवाना हो गया। उसके साथ यूनिवर्सिटी के और बहुत से लड़के-लड़कियाँ थे। रास्ते भर ये लोग इक़बाल, जोश, टैगोर और नज़रुल इस्लाम के ज़ोशीले गीत गाते गए। ट्रेन की खिड़की में से वह वतन के लहलहाते खेत देखता रहा और सोचता रहा—यह मेरा देश है—यह मेरा देश है। देश-भक्ति और क्रान्ति, राष्ट्रीय जोश और बरतानवी सरकार के विरुद्ध गुस्से और क्षोभ की भावनाओं ने उसके दिल में अज़ीब कैफ़ियत पैदा कर दी। उस दिन के अखबार में एक बंगाली आर्टिस्ट ज़ैनुल आबिदीन के बनाए हुए अकाल के दृश्यों के स्कैच छपे थे। रेखा ने अख़बार उसकी ओर बढ़ा दिया। कमाल ने नज़र उठा कर रेखा की ओर देखा। वह रो रही थी।

सबने मिल कर फिर गाना शुरू कर दिया, "यह जंग है...जंग-ए-आज़ादी, आज़ादी के

परचम के तले। हम हिन्द के रहने वालों की—हम हिन्द के रहने वालों की"—रेल की छकछक गीत की आवाज़ में आवाज़ मिलाती हुई जान पड़ी। दूसरे कोने में कुछ लड़के ज़ोर-ज़ोर से बहस कर रहे थे—

कमाल ने आँखें बन्द कर लीं और सोने की कोशिश की। उसके साथी उसी तरह वादविवाद करते रहे। ट्रेन बिहार के हरे-भरे क्षेत्र से गुज़रती बंगाल में दाख़िल हो गई।

गंगा के किनारे एक छोटे से खूबसूरत ज़िले के स्टेशन पर ट्रेन रुकी। लड़कों ने खिड़की के बाहर देखना शुरू किया। चारों ओर तालाब थे और हरे-भरे मैदान और बाँस के झुण्ड। दूर, सूरज गंगा की लहरों में अस्त हो रहा था। स्टेशन पर दो पालकियाँ खड़ी थीं। प्लेटफ़ॉर्म पर देहातियों का जमघट था, जो चावल की खोज में कलकत्ता जाने के लिए ट्रेन पर टूटे पड़ रहे थे। प्लेटफ़ॉर्म के दूसरी ओर सामने ही फ़ौजियों की ट्रेन खड़ी थी। सिख और पंजाबी सिपाही बर्मा जा रहे थे और उर्दू के फ़िल्मी साप्ताहिक और मासिक हाथ में लिए इधर-उधर टहलते फिर रहे थे।

एक हिन्दुस्तानी मेजर साहब अपनी बेगम साहिबा और दो बुलटेरियर कुत्तों के साथ फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे के सामने खड़े एक अंग्रेज़-कर्नल से बातचीत करने में व्यस्त थे।

"जब तक यह फ़ौजी ट्रेन न चली जाए आपकी गाड़ी रवाना नहीं होगी।" एक गार्ड ने कमाल को बताया।

"इसका मतलब है?"

"जी हाँ, कोई चार-पाँच घण्टे लेट होगी आपकी यह ट्रेन। यह वार-टाइम है, जनाब।"

लड़के और लड़कियाँ प्लेटफ़ॉर्म पर उतर आए।

अरधो गोगू ने बाजा सम्हाला। नज़रुल इस्लाम का एक और गीत शुरू कर दिया।

मेज़र साहब की बेगम साहिबा दिलचस्पी से उन लोगों को देखने लगीं।

"ये कौन लोग हैं? कितनी प्यारी आवाज़ है सबकी।"

"कम्युनिस्ट हैं साले।" मेज़र साहब ने मुँह फेर कर जवाब दिया। "चलो, कर्नल हमें रेस्तराँ-कार में इन्वाइट कर गया है।"

वे दोनों टहलते हुए रेस्तराँ-कार की ओर चले गए।

कमाल और उसके साथी अब गाते-गाते भी थक गए। ट्रेन चलने का नाम न लेती थी।

एकाएक रेखा चीख़ कर एक ओर को दौड़ी। उसके साथी भी उसके पीछे-पीछे लपके। प्लेटफ़ॉर्म के सिरे पर किसानों का एक छोटा-सा परिवार सहमा और सिकुड़ा हुआ बैठा था। छोटी-सी, छिदरी, काली दाढ़ी वाला एक नौजवान मरा हुआ पड़ा था। उसकी पत्नी साँवली-सलोनी, दुबली-पतली लड़की, धाड़ें मार-मार कर रो रही थी। उसके दोनों बच्चे साथ-साथ चिल्ला रहे थे।

"कमाल !" नरेन्द्र ने आवाज़ दी—"इधर आओ।—हमारा लाशें उठाने का काम तो मियाँ यहीं से शुरू हो गया।"

सिसकियों के बीच उसने बंगाली में बताया कि वह और उसका पति अबुल मोन्शूर अन्न खोजने कलकत्ते जा रहे थे। उन्होंने एक हफ़्ते से कुछ नहीं खाया था। आमिना बीबी

ने भी एक हफ्ते से कुछ नहीं खाया था। फ़ौजियों के ट्रेन में से फेंके हुए दो बिस्कुट और तोस के कुछ टुकड़े उसने जमा किए थे और वह अपने बच्चों को खिला चुकी थी। इतना कह कर वह भी प्लेटफ़ॉर्म पर लेट गई और उन सबके सामने ही उसने भी दम तोड़ दिया।

ऐंग्लो-इंडियन स्टेशन मास्टर उनकी ओर आया– "आप लोग इधर क्या गड़बड़ मचाता है। आजकल रोज़ सौ-पचास आदमी इसी प्लेटफ़ॉर्म पर मरता है। हम किस-किस का फ़िक्र करें। यह रेलवे स्टेशन है, अस्पताल नहीं। यह बंगाली हमेशा का भूका है—भूका बंगाली ! आप क्यों फ़िक्र करता है?"

"यहाँ क़ब्रिस्तान किधर है?" नरेन्द्र ने गुस्से से होंठ चबाते हुए पूछा।

"हमको मालूम नहीं—क्यों, क्या आप इन लोग का कबर खोदेगा?—दैट इज़ वेरी फ़नी !!"

लड़कियों ने दहाड़ें मारते हुए बच्चों को साथ लिया और बाज़ार की तरफ़ चल दीं। लड़के क़ब्रिस्तान और किसी मुसलमान मौलवी की खोज में आबादी की ओर रवाना हो गए।

कमाल लाशों के पास बैठ गया। इतने में फ़ौजियों की ट्रेन भयानक आवाज़ें करती, धुआँ छोड़ती, रवाना हुई। फ़र्स्ट क्लास का डिब्बा पास से गुज़रा, जिसमें सिख मेजर और उसकी बीवी बैठे थे। उन्हें इन दोनों की लाशें नज़र नहीं आईं, क्योंकि उन्होंने खिड़कियों की झिलमिलियाँ चढ़ा दी थीं। फ़ौजी ट्रेन के जाने के कुछ मिनट बाद ही कमाल और उसके साथियों की यह ट्रेन भी सरकने को हुई। गार्ड कमाल के पास आया–"ट्रेन जाता है। आप लोग इधर क्या करने लगा? आपका फ्रेंड लोग किधर गया?"

"हम अब कल सुबह ही जा सकेंगे।" कमाल ने जवाब दिया, और थर्ड क्लास के डिब्बे में जाकर सारा सामान निकाल कर प्लेटफ़ॉर्म पर रखने के बाद, लाशों के पास आ बैठा। यह ट्रेन भी चली गई। स्टेशन सहसा बिलकुल सुनसान हो गया।

प्लेटफ़ॉर्म के सिरे पर घुप अँधेरा था। स्टेशन मास्टर नेकदिल इंसान मालूम होता था। उसने एक लालटेन लाकर कमाल के पास रख दी और फिर अपने दफ़्तर की तरफ़ चला गया।

कमाल लाशों के पास बैठा रहा। हवाएँ बाँस के झुण्ड में साँय-साँय करती रहीं। कमाल ने अपने होल्डाल में से एक चादर निकाल कर इन लाशों पर उढ़ा दी। आमिना बीबी जिसने सुर्ख़ साड़ी पहन रखी थी और अबुल मोन्शूर जिसकी नीली चारख़ानादार तहमद में बहुत से पैबंद लगे थे दोनों उस एक चादर में छुप गए।

कमाल स्टेट्समैन उठा कर लालटेन की रोशनी में ज़ैनुल आबिदीन के स्केच देखने लगा। इस देश के चित्रकार ने क्या इसी जोड़े का चित्र बनाया था? कुछ क़दम दूर पर गंगा बह रही थी। उसकी लहरों पर एक अकेली नौका चल रही थी। नाव में चिराग़ जल रहा था, और कोई बड़े हृदयबेधी स्वर में भटयाली गाता जा रहा था। जिसके शब्द कमाल की समझ में अच्छी तरह नहीं आए। पेड़ों के पास लॉर्ड कार्नवालिस के ज़माने की बनी हुई ऊँचे फीलपाँवों और झिलमिलियों के बरामदे वाली, ज़िला-कलक्टर की शानदार कोठी थी। उससे ज़रा दूरी पर ज़िले के सबसे बड़े ज़मींदार राजा गिरीशचन्द्र राय का महल था। वहाँ रेडियो बज रहा था। रात के सन्नाटे में हवा पर तैरती हुई बी. बी. सी. के लाइट-प्रोग्राम की आवाज़ यहाँ तक साफ़ सुनाई दे रही थी। कमाल का दिल डूबता चला गया। उसने आँखें बन्द कर लीं। यह रवीन्द्रनाथ और सरोजिनी देवी और शरत्चन्द्र का देश था। उपन्यासकारों और कवियों का प्रिय विषय।

हम सब विभिन्न प्रकार की पुस्तकों के विषय हैं। इतिहास के अध्याय, शब्द, आँकड़े, रिपोर्ट, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लीडरों के भाषण, कम्युनिस्ट पार्टी के मैनीफ़ेस्टो। गत सप्ताह डॉक्टर अशरफ़ कह रहे थे कि राष्ट्रों की स्वाधीनता की माँग ठीक लेनिन के सिद्धान्तों के अनुसार है। पाकिस्तान—तो क्या, जो मुसलमान है वह ऑटोमैटिक तौर से पाकिस्तानी हो जाएगा? या, क्या होगा? लेनिन, स्तालिन, गोर्की, डॉक्टर अशरफ़, सज्जाद ज़हीर, जिन्ना साहब, महात्मा गांधी, पण्डित जी...

कमाल के दिमाग़ में घटनाओं और नामों और व्यक्तित्वों का जुलूस मंडलाया किया। लेकिन, सारी दुनिया का केन्द्र बिन्दु इस समय ये दो लाशें थीं। सारी घटनाओं और सिद्धान्तों के सिलसिले की कड़ी आकर इसी केन्द्र पर टूट जाती थी। आमिना बीबी और अबुल मोन्शूर—दो लाशें।

दूसरे रोज़ सुबह से सब फिर अपने सफ़र पर रवाना हुए। शाम को ट्रेन हावड़ा पहुँची। लड़के और लड़कियाँ अपने-अपने ठहरने के स्थान की ओर रवाना हुए। प्रमोद कुमार का घर इन सबके मिलने का अड्डा था। वहीं इन सबको दूसरे रोज़ जमा होना था। कमाल मानिकतल्ला की ओर चला, जहाँ उसके एक मामू, 'मटियाबुर्ज़ वाले नवाब' रहते थे।

47

चेतपुर रोड के एक मकान के फ़ाटक के सामने एक बन्द गाड़ी आकर रुकी। इस मकान की निर्माण-शैली कम्पनी के युग की थी। इसी तरह के मकान कलकत्ते में जगह-जगह पर दिखाई देते हैं। बड़े-बड़े फीलपाए, चौड़ा बरामदा, बरामदे और दरवाज़ों पर वेनीशियन झिलमिलियाँ। अन्दर कमरों में बेलबूटेदार सुनहरे फ्रेमों में अंग्रेज़ी दृश्य लगे थे। कश्मीरी कढ़त के पर्दे दरवाज़ों पर पड़े हुए थे। पीतल के गमलों में चीनी पाम सजा था। बाहर बाग़ की छोटी-छोटी क्यारियों में बेला महक रहा था।

ऊपर की मंज़िल से लड़कियों ने आवाज़ लगाई, "अरे कम्मन भैया आ गए लखनऊ से।" सारे घर में शोर मच गया। नौकरानियाँ और नौकर बाहर दौड़े। नीचे बरामदे में फर्न के पत्ते झूम रहे थे। नवाब साहब भानजे के स्वागत के लिए आरामकुर्सी से उठे।

यह मकान पचास-पचपन साल पहले दत्त-परिवार से मटियाबुर्ज़ वाले नवाब कमाल रज़ा बहादुर के छोटे बहनोई ने खरीद लिया था। यहाँ एक ज़माने में बड़ी धूमधाम से ब्रह्मसमाज के जल्से हुआ करते थे। ऊपर की मंज़िल के एक कमरे में अब तक दत्त-परिवार के लोगों के धुँधले-धुंधले चित्र लगे हुए थे। ग्रुप फ़ोटोग्राफ़; जिसमें महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर मध्य में बैठे थे। उस कमरे में एक तरफ़ संगमरमर का चबूतरा था। यहाँ बैठ कर, सुना है, महर्षि हारमोनियम पर भजन गाते थे। मकान-मालिक बाबू मनोरंजन दत्त के देहान्त के बाद जो कभी कैनिंग कॉलेज में प्रोफ़ेसर थे उनकी सन्तान ने यह मकान बेच कर बालीगंज में एक बहुत बड़ी कोठी बनवा ली थी। उनकी सन्तानों में अब कई आई. सी. एस. अफ़सर थे और कई कम्युनिस्ट लीडर। उनकी लड़कियाँ ज़्यादातर यूरोप में शिक्षा प्राप्त करती थीं। बाबू मनोरंजन दत्त की एक पोती का विवाह चटगाँव के पहाड़ी राज्य के एक राजा से हुआ था। मौजूदा मकान-मालिक और

दत्त-परिवार की कई पीढ़ियों की दोस्ती थी।

वर्तमान मकान-मालिक लखनऊ के उजड़े हुए नवाब थे। वज़ीफ़ा पाते थे और कलकत्ते में रहते थे। उन लोगों का धंधा बस जीवित रहना था।

नवाब कमाल रज़ा बहादुर, सुलतान-ए-आलम वाजिदअली शाह के साथ मटियाबुर्ज़ आए थे। उनके ख़ानदान के बहुत से लोग उनके साथ थे। नवाब अली रज़ा बहादुर उनकी सबसे छोटी बहन के पति और चचेरे भाई थे। उन्नीसवीं सदी के अन्त का कलकत्ता बेहद मॉडर्न शहर था। वहाँ अनगिनत कॉलेज थे और राजनैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलन; और प्रेस और अखबार। नए बंगाली उपन्यासों में हिन्दू संस्कृति के नवोत्थान का प्रचार किया जा रहा था। राजा सर सुरेन्द्रमोहन टैगोर ने हिन्दुस्तानी संगीत के पुनरुत्थान का सिलसिला आरम्भ कर रखा था। स्वामी विवेकानंद यहाँ से बाहर जाकर यूरोप और अमरीका में वेदांत का प्रचार कर रहे थे। मुल्क में हर तरफ़ राजनैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों की चर्चा हो रही थी। कांग्रेस, बदरुद्दीन तैयबजी और दूसरे नेताओं के नेतृत्व में बड़े-बड़े अधिवेशन कर रही थी। परन्तु, नवाब अली रज़ा बहादुर को इन सब हंगामों से कोई मतलब न था। अलीगढ़ में एम. ए. ओ. कॉलेज खुल गया था, मगर नवाब साहब को अंग्रेज़ी शिक्षा से कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनके समाजी सम्बन्ध मुर्शिदाबाद, ढाके और अज़ीमाबाद के नवाब-परिवारों तक सीमित रहे। उनकी संतान और कुटुम्ब वालों की शादियाँ लखनऊ और अवध के ताल्लुक़ेदार घरानों में हुआ कीं। लखनऊ में ये लोग कलकत्ते वाले नवाब कहलाते थे। कलकत्ते में उन्हें लखनऊ वाले नवाब कहा जाता था। उनके जीवन के केन्द्र सिर्फ़ तीन थे : कलकत्ता, पटना-अज़ीमाबाद, और लखनऊ। इससे आगे की दुनिया की उन्हें ख़बर नहीं थी। उनका सारा समय लखनऊ, दिल्ली और अज़ीमाबाद की साहित्यिक और शायराना नोंकझोंक में व्यतीत होता था। वज़ीफ़े की आमदनी के कारण निश्चिन्तता से गुज़र होती थी। सिर पर बरतानिया की छत्रछाया सलामत थी। इतिहासकार सुख-चैन से लिखता था।

तब उनके ख़ानदान में पहली मर्तबा एक अजीब बात हुई। नवाब अली रज़ा के जो दामाद लखनऊ में रहते थे, वे सर सैयद की 'नेचरी फ़ौज' में जा शामिल हुए और उन्होंने अपने बड़े लड़के को अलीगढ़ भेज दिया।

नवाब अली रज़ा के दूसरे दामाद पटने के रहने वाले थे। वे भी बड़े रौशन-ख़याल निकले। पटने में क़ानून की बहुत चर्चा थी। अनगिनत हिन्दू-मुसलमान क़ानून पढ़-पढ़ कर बैरिस्टर बन रहे थे, और बड़ा नाम इस पेशे में उन्होंने पैदा किया था। चुनांचे नवाब अली रज़ा के पटने वाले नवासे को भी इतना पढ़ाया गया कि वे बहुत ज़्यादा पढ़ गए और बैरिस्ट्री के लिए विलायत चले गए। यह इस ख़ानदान के पहले आदमी थे जो उन्नीसवीं सदी के आख़िर में विलायत गए।

नवाब अली रजा के लखनऊ वाले दामाद अंग्रेज़ी तालीम के तो कायल हुए ही थे, अब वे राजनीति में भी दिलचस्पी लेने लगे। सर सैयद मुसलमानों को अलग प्लेटफ़ॉर्म पर जमा करके अंग्रेज़ों का वफ़ादार रखना चाहते थे। इस समस्या पर उनका सर सैयद से मतभेद था। वे कांग्रेस के हमख़याल हो गए। अब उनके यहाँ, लखनऊ के गोलागंज वाले मकान में, लाला भाइयों का जमघट रहता। ये सब लोग अभी सरकार के वफ़ादार भी थे और सिर्फ़

राजनैतिक छूट, सुविधाएँ और सोशल रिफ़ॉर्म चाहते थे। अनगिनत मुसलमान इस आन्दोलन में शामिल थे।

हिन्दुस्तान में मुसलमानों की राजनैतिक हैसियत का मसला बहुत टेढ़ा बनता जा रहा था। हिन्दू सौ-सवा सौ साल से अंग्रेज़ी शिक्षा को अपना चुके थे, और वह अपनी जटिल परा भौतिक और विशुद्ध अमूर्त दर्शन के बावजूद, प्रैक्टिकल थे, मुसलमानों के शासन-काल में फ़ारसी पढ़ कर शासन-प्रबन्ध में भाग लिया। मुसलमान शासक और सूबेदार केवल फ़रमानों पर हस्ताक्षर कर देते थे। देहातों का एडमिनिस्ट्रेशन हिन्दू चलाते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी आई, तब भी हिन्दुओं ने तुरन्त परिस्थिति से समझौता कर लिया; और मुगलों का कर्मचारी मुंशी पल की पल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के क्लर्क में बदल गया। पिछले सौ सालों से हिन्दू ज़ात-पाँत के बंधनों और प्राचीन दर्शन के बावजूद पश्चिमी शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अधिक निकट आ चुके थे। जब राष्ट्रवाद का आंदोलन शुरू हुआ, तब उसकी रोक-थाम के लिए अंग्रेज़ी सरकार ने तुरंत देश के पिछड़े वर्गों पर, जिन्हें सन् 57 के बाद हर तरह से कुचला गया था, अब अपनी कृपा दृष्टि करनी शुरू की। हिन्दुओं के यहाँ एक बुर्जुआज़ी भी पैदा हो चुकी थी, और लीडरशिप और लिबरल राजनीति के लिए तैयार थी। मुसलमान अभी फ़्यूडल स्टेज से आगे न निकले थे। उनके मन में अभी तक शहंशाहियत की कल्पना बसी हुई थी। यही वजह है कि जब उनकी अपनी बादशाहत का ख़ात्मा हुआ, तो उसके स्थान पर उनकी भावना में तुर्की सुलतान के प्रति श्रद्धा-भक्ति आ गई। वह उनका खलीफ़ा था और कुस्तुनतुनिया में रहता था। गोरों में मुसलमानों के नेतृत्व के लिए जब अंग्रेज़ों के भेजे हुए हिज़ हाइनेस आग़ा ख़ाँ और दूसरे नवाब आए, तो मुसलमान जनसाधारण को बहुत अच्छा लगा। साफ़ है कि नाम और उपाधियाँ बीते दिनों की याद दिलाती थीं।

अंग्रेज़ और ज़मींदार वर्ग का गठजोड़ बहुत सफल सिद्ध हो रहा था।

बंगाल में मुसलमानों के शासन-काल में माफ़ी की ज़मीनों की आय से मदरसे स्थापित थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इन ज़मीनों पर अधिकार कर लिया। मदरसे बन्द हो गए और मुसलमान पिछड़ गए। उनके मुक़ाबले में हिन्दू अंग्रेज़ी पढ़ रहे थे। मुसलमान-जागीरदार ख़त्म हो चुका था। मुसलमान-कारीगर नष्ट कर दिया गया था। उसका स्थान लॉर्ड कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त के नए हिन्दू-ज़मींदारों और हिन्दू-मध्यम वर्ग ने ले लिया था। अब बंगाल के अधिकतम वर्गों की उलटफेर की इस पृष्ठभूमि के साथ बंगाल में पुनर्जागरण का आंदोलन शुरू हुआ था। नई हिन्दू बुर्जुआज़ी नेतृत्व संभालने के लिए तैयार थी।

नौकरियाँ प्राप्त करने की दौड़ में भी हिन्दू मुसलमानों से आगे निकल गए थे। मुसलमानों में भय की मनोवृत्ति उत्पन्न होना आरम्भ हो गई थी, और इसी भय को अंग्रेज़ों ने सही वक़्त पर हवा दी।

वफ़ादार अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे मुसलमानों का मध्यवर्ग बनना शुरू हुआ। मुल्क की धरती पर मेहनत करके ज़िन्दा रहने वाले मुसलमान जुलाहों और किसानों का किसी को भी ख़याल न आया। सबको यही चिन्ता थी कि अपने लिए अधिक से अधिक आर्थिक सुरक्षा और नौकरियाँ कैसे प्राप्त कर ली जाएँ।

फिर जंग छिड़ी और डॉक्टर अंसारी आए और अली बन्धु; और खिलाफ़त-आन्दोलन

चला; और गांधी आए; और कांग्रेस ने खुल्लम-खुल्ला स्वराज्य की माँग की। अब हालात तेज़ी से बदलना शुरू हुए—खादी-आन्दोलन और राष्ट्रभक्ति। एक अजीब जोश सारे मुल्क में छा गया।

नवाब अली रज़ा बहादुर के दामाद तक़ी रज़ा बहादुर जो ताल्लुक़ेदार थे, खुले बन्दों राष्ट्रीय भावनाओं में भाग न ले सकते थे। अवध के ताल्लुक़ेदारों ने 1857 ई. में अवध को बचाने के लिए जम कर अंग्रेज़ों का मुक़ाबला किया था। मगर, बाद में यही ताल्लुक़ेदार अंग्रेज़ों के वफ़ादार सिद्ध हुए, क्योंकि, उनके और अंग्रेज़ों के गठजोड़ के द्वारा किसानों पर उनका आधिपत्य स्थापित रह सकता था। यह लखनऊ में 'नवाब' सर हारकोर्ट बटलर का ज़माना था—उसने ताल्लुक़ेदारों वाली आदतें अख़्तियार कर रखी थीं। यह लखनऊ के ताल्लुक़ेदारों का स्वर्ण-युग था। एक तरफ़ आज़ादी की आँधी चल रही थी, दूसरी तरफ़ क़ैसर बाग की बारहदरी में बड़ी धूम से मुशायरे होते थे। जानेआलम के युग का नवीनीकरण हुआ था, यह महाराजा महमूदाबाद और ठाकुर नवाब अली और राय राजेश्वरबाली का लखनऊ था।

इसी ज़माने में उनके अलीगढ़ के शिक्षित बेटे नवाब अबुल मकारम तक़ी रज़ा बहादुर के यहाँ, बड़ी अल्ला-अमीन से एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम अपनी दादी अम्माँ के मामू, मटियाबुर्ज़ वाले नवाब कमालुद्दीन अली रज़ा बहादुर के नाम पर कमाल रखा गया।

उनके यहाँ दो साल की लड़की पहले से मौजूद थी। जिसका नाम तहमीना बेगम था। कमाल को अपने वर्ग के दूसरे बच्चों की तरह पहले देहरादून स्कूल भेजा गया। फिर उसने लामार्टिनेयर कॉलेज में पढ़ा। यह कॉलेज़ बरतानवी और फ़्यूडल परम्पराओं का गढ़ था।

कमाल को अपने बचपन का ज़माना बड़ी अच्छी तरह याद था, उस समय वह घर में बड़ों से राजनीति की बातें सुनता था। नवाब अबुल मकारम तक़ी रज़ा बहादुर का ख़ानदान अब अगले वक़्तों के जैसा नहीं था। अब इस घराने के लोग सरकारी नौकरियाँ भी कर रहे थे। कमाल के चचा मियाँ, यानी भैया साहब के पिता बैरिस्टर थे और कांग्रेसी नेता। मगर उनका ऐन जवानी में इन्तकाल हो गया था। पटने वाले मामू भी कांग्रेसी थे, और आए दिन जेल जाते रहते थे। कमाल को असहयोग-आन्दोलन का ज़माना याद था, जब पटने वाले मामू उसे अपने साथ ले जाते थे और वह बड़े जोशो-खरोश से स्टेज पर सभाओं में खड़े होकर अपनी तोतली ज़बान में उर्दू की राष्ट्रीय कविताएँ पढ़ता और पुलिस आकर लाठी-चार्ज़ से सभा को तितर-बितर कर देती। राजनीति अब केवल अख़बारों तक सीमित नहीं थी। रोज़मर्रा के जीवन में प्रवेश कर गई थी।

जब ज़रा और बड़ा हुआ तो अपने हिन्दोस्तानी होने पर उसे गर्व-सा अनुभव हुआ। इस गर्व में अधिकांश अपने अतीत पर गर्व करने का हिस्सा भी शामिल था—हम यूँ थे, हम वूँ थे। इसी क़िस्म के भाषण लीडर दे रहे थे। सेलर्ज़-सूट के बजाय पटने वाली मुमानी ने उसके लिए खादी की शेरवानी बनवाई। उसके कज़िन जामिया-मिलिया में पढ़ते थे। उसने भी ज़िद की कि उसे भी दिल्ली भेज दिया जाए, मगर उसकी किसी ने न सुनी। बहरहाल, "कर्नल ब्राउन्ज़ स्कूल" और लामार्टिनेयर के अंग्रेज़ लड़कों के मुक़ाबले में वह हिन्दुस्तानी था और हिन्दुस्तान उसका बहुत प्यारा वतन था।

यह हिन्दुस्तान क्या था, इसका सचेतन रूप में उसने विश्लेषण नहीं किया। बचपन से वह इस हिन्दुस्तान का आदी था, जहाँ वह पैदा हुआ था, जहाँ उसके पुरखे पिछले सात-आठ

सौ साल से पैदा होते आए थे। इस हिन्दुस्तान में सरसों के खेत थे और रहँट; और सीतलादेवी के मन्दिर। हिन्दुस्तान बस्ती-ज़िले का वह मठ था, जहाँ बरामदे में तख़्त पर एक मोटा बी. ए. पास महन्त बैठा था और जिसको मम्मी ने दस का नोट चढ़ाया था, और जिसने आशीर्वाद दिया था। हिन्दुस्तान इटावे की वह काई चढ़ी दरगाह थी, जिसकी मुंडेरों पर बहुत से कलन्दर उकड़ूँ बैठे रहते थे, जिनमें से एक ने कमाल को बुटवल के संतरे खिलाए थे। हिन्दुस्तान क़दीर ड्राइवर की बूढ़ी माँ थी, जो पीले रंग की धोती पहने मिर्ज़ापुर के स्टेशन पर कमाल के लिए मिट्टी के खिलौनी लेकर आई थी। हिन्दुस्तान सिविल-लाइंज़ की वे सड़कें थीं जिन पर साहब लोगों के 'डॉग ब्वॉयज़' शाम को कुत्तों को हवा खिलाने के लिए निकलते थे। हिन्दुस्तान बूढ़ा हाज़ी बशारत हुसैन ख़ानसामा था जो, जब कमाल को सीतला निकली थी, तो अपनी दुपल्ली टोपी उतार कर, एक टाँग पर हाथ जोड़ कर उसके सामने खड़ा हो गया था और गिड़गिड़ा कर बोला था--

"माता--अब माफ़ करो--भैया को छोड़ कर चली जाओ--माता, तुम्हारे आगे हाथ जोड़ता हूँ।"

यह सीतला के सामने हाथ जोड़ने वाला मुसलमान बूढ़ा--हिन्दुस्तान था। इसके अलावा उसकी अम्माँ और खालाएँ और घर की दूसरी महिलाएँ भी हिन्दुस्तान थीं। उनकी आपस की उर्दू बोलचाल, मुहावरे, गीत, रस्में, और फिर पुरानी कहानियाँ जो मुगलानियाँ सुनाती थीं : "अयोध्या के राजा दशरथ की दो बीवियाँ थीं। एक का नाम था कैकयी और दूसरी का कौशल्या।", हिन्दू पुराणों और दयमाला की कथाएँ, मुसलमान औलिया के क़िस्से, मुग़ल बादशाहों के क़िस्से--ये सब कमाल की मानसिक पृष्ठभूमि थी। एक गर्व अपने अतीत पर, एक पश्चात्ताप अपने वर्तमान पर, एक आशा अपने भविष्य के बारे में--इन तीन तत्त्वों से उसके मस्तिष्क का निर्माण हुआ था। गांधी जो धोती बाँधे घूमते थे, और मुल्क के सन्तों, कबीर, तुलसीदास और तुकाराम--की परम्परा पर पूरे उतरते थे, वे उस किसान के साकार अवतार थे जो स्वयं भी धोती बाँधे नंगा घूमता था। नेहरू इस हिन्दुस्तान की नई पीढ़ी के सिम्बल थे, जिसके दिल में ये सारे दरिया उमड़ रहे थे।

इस हिन्दुस्तान में अनगिनत रहस्य थे--धर्म, दर्शन, कला, रहस्यवाद अध्यात्मवाद, तसव्वुफ़, साहित्य, संगीत, क्या कुछ यहाँ नहीं था ! एक ओर यह महान् शक्तिशाली धरोहर थीं; दूसरी ओर अंग्रेज़ी सभ्यता थी। साहब लोगों का राज था। असेम्बली के क़ानून थे। गवर्नर के दरबार थे। अंग्रेज़-लड़के, जो कर्नल ब्राउंज़ और लामार्टिनियर में उसके साथ घुड़सवारी करते थे; अंग्रेज-अफ़सर, जो 'गुलफ़िशाँ' में डिनर खाने आते थे; उसकी गोलागंज वाली हवेली की बैठक में बैठ कर मुहर्रम के जुलूस का नज़ारा करते थे--ये अंग्रेज़--हेलीबरी के अफ़सरों के उत्तराधिकारी, जिनको सिखलाया गया था कि ये हिन्दुस्तानी जब तुम्हारी कोठी पर सलाम के लिए हाज़िर हों तो इन्हें बरामदे ही में बिठाओ; साथ ही यह भी सिखलाया गया था कि इनमें से किनको ड्राइंगरूम में बुलाने का सम्मान प्रदान करो, किनको सिर्फ़ खड़े-खड़े ही डाली लेकर वापस कर दो; किनके घर ख़ुद भी, निमंत्रित हो तो चले जाओ। कमाल उस 'सौभाग्यशाली' वर्ग में पैदा हुआ था, जिसे अंग्रेज़ों से बराबरी से मिलने का गौरव प्राप्त था--'हिन्दुस्तान का फ़्यूडल वर्ग।'

सन् 34 ई. में पंडित नेहरू ने यह प्यारी-सी आशा प्रकट की थी कि यद्यपि मुस्लिम राजनीति पर फ़्यूडल तत्त्व छाया हुआ है, उनका निम्न मध्य वर्ग औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ है, लेकिन चूँकि उनके यहाँ समाजी रिश्तों की चेतना अधिक दृढ़ है, इसलिए ये लोग हिन्दू लोअर मिडिल क्लास की तुलना में समाजवाद के रास्ते पर अधिक तेज़ी से आगे बढ़ेंगे। पंडित नेहरू यह भी कहते थे कि हमारे पूँजीपति और उद्योग के कर्त्ता-धर्त्ता और मिल-ओनर्स अत्यधिक प्रतिक्रियावादी हैं। वे तो अभी नए युग के पूँजीपति भी नहीं बने हैं। कांग्रेस पर हिन्दू-बहुमत छाया हुआ है और हिन्दू-बहुमत साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का शिकार है। ऐसी स्थिति में मुसलमानों में भय की मनोवृत्ति का पैदा होना अनिवार्य है; और इस स्थिति को अंग्रेज़-सरकार खूब अच्छी तरह अपने हितों के लिए उपयोग में ला रही है। मुल्क़ का फ्यूडल तत्त्व यह भी नहीं चाहता कि जनसाधारण आर्थिक रूप में स्वतंत्र हों। अतः उन्होंने बरतानवी सरकार से साजिश कर रखी है। मिडिल-क्लास के इन्टेलिजेंशिया में फ़ासिज़्म के तत्त्व भी उभर रहे हं। इन सब ख़तरों का मुक़ाबला करने में हमें अपनी पूरी कोशिश करनी चाहिए। पंडित नेहरू बहुत जबरदस्त सोशलिस्ट थे। उनको गांधीजी का अध्यात्मवाद और बात-बे-बात भगवान का हवाला देना बहुत खलता था। कमाल और उसके साथ की नौजवान पीढ़ी का पंडित नेहरू पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

इस नए, सचेत हिन्दुस्तान और ब्रिटिश हिन्दुस्तान के अलावा एक और अलिफ़लैलवी (अवास्तव) देश इसी मुल्क़ में बसता था। जिसकी झलक कमाल ने हैदराबाद, कश्मीर, भोपाल और रामपुर में देखी थी। यह रियासती हिन्दुस्तान था। यहाँ राजनैतिक स्वतंत्रता का सवाल ही नहीं उठता था। ये राजे-महाराजे अंग्रेज़ों के चहीते सुपुत्र (फ़र्ज़न्दाने-दिलबन्द) कहलाते थे और कम्पनी स उन्नीसवीं सदी में जो संधिया उन्होंने की थीं, उनके आधार पर निरंकुश शासन करते थे। इन रियासतों में ख़ास तौर से हैदराबाद दकन मुसलमानों के लिए विशेष भावनात्मक महत्त्व रखती थी। यहाँ पर मुसलमानों का कल्चर अभी अपने बुनियादी स्वरूप में मौजूद था।

जागीरदारों, मध्यवर्गीय नेताओं, बुद्धिवादियों और यूनिवर्सिटियों के जोशीले छात्रों की दुनिया से अलग एक और दुनिया थी, जो असली हिन्दुस्तान थी। यह दुनिया आसाम और दक्षिण भारत के चाय और कहवे के बाग़ों में और कानपुर, बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद और टाटा नगर के कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों और सारे देश के लाखों गाँवों में रहने वाले किसानों की सम्मिलित दुनिया थी। कांग्रेस ने मुद्दतों से कृषि-सम्बन्धी सुधारों के लिए एजीटेशन कर रखा था। किसानों के सिलसिले में बरतानवी सरकार ने विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न प्रकार की नीति अपना रखी थी। बंगाल में, जहाँ उन्होंने मुसलमानों से सत्ता छीनी थी, वहाँ मुसलमानों को आर्थिक रूप से बिलकुल तबाह करके हिन्दुओं को उनके स्थान पर शक्तिशाली बनाया था। पंजाब उन्होंने सिखों के हाथों से लिया था, अतः यहाँ उन्होंने मुसलमानों का साहस बढ़ाया था। जो सूबे सबसे अधिक समय से अंग्रेज़ों के अधीन थे, वे सबसे अधिक तबाह थे—बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मद्रास। बंगाल में बराबर अकाल पड़ते थे। पंजाब अंग्रेज़ों के हाथ में सबसे आखिर में आया था अतः सबसे अधिक खुशहाल सूबा यही था। यू. पी. जो हिन्दुस्तान का दिल था और मुल्क़ की सारी प्राचीन और मध्ययुगीन सभ्यताओं का पालना था, वहीं का किसान सबसे अधिक दरिद्रता का मारा था। किसान, जो कांग्रेस-आंदोलन की तरफ़ बढ़ा आ

रहा था समझता था कि 'सुराज' का मतलब कृषि-सम्बन्धी सुधार हैं—जब उसे जन्म-जन्म के अत्याचार और ऋण के बोझ से छुटकारा मिलेगा।

शहरों में ट्रेड-यूनियन स्थापित हो रहे थे। सन् 1929 में सरकार ने बंगाल, बम्बई, पंजाब और यू. पी. के मज़दूर-लीडरों को पकड़ लिया। जिनमें कम्युनिस्ट भी शामिल थे। मेरठ का मुक़दमा आरम्भ हुआ। कम्युनिस्ट—यह एक नया तत्त्व अब राजनैतिक रंगमंच पर आया। ये अधिकतर यूरोप की यूनिवर्सिटियों में पढ़े हुए इन्टेलैक्चुअल थे। सारे संसार में आर्थिक संकट छाया हुआ था। एक नया संघर्ष बड़े व्यापक पैमाने पर आरम्भ हो चुका था। इस वर्ग-संघर्ष में अमरीका सबसे आगे था।

फिर सन् 1937 ई. में जब कमाल अभी लामार्टिनेयर में ही था लखनऊ में दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं—मुस्लिम-लीग का अखिल भारतीय अधिवेशन; और कांग्रेस-मंत्रिमण्डलों की स्थापना। उसे अब तक याद था कि उसे बेगम शाहनवाज़ के व्यक्तित्व ने बहुत प्रभावित किया था। वे बहुत चौड़े रुपहले बार्डर की साड़ी और लम्बे-लम्बे बुन्दे पहने डायस पर खड़ी भाषण दे रही थीं।

इसी साल कांग्रेस ने सन् 35 ई. के विधान के प्रस्ताव स्वीकार करके अपना मंत्रिमण्डल बनाया। यह एक नया अनोखा प्रयोग था। पहली बार देश में राष्ट्रीय नेता राज्य के शासन-प्रबन्ध में सम्मिलित हुए। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित लोकल-सेल्फ गवर्नमेंट की मंत्री बनीं। सफ़ेद साड़ी और चीनी काट का बिना आस्तीन का ब्लाउज़ पहने मोटर में बैठी वे कौंसिल चेम्बर की ओर जाती दिखाई देतीं। अगले साल रेडियो-स्टेशन खुला, तो उन्होंने उस पर उद्घाटन-भाषण किया। उसी ज़माने में गोमती के किनारे औद्योगिक प्रदर्शनी हुई। कमाल, अँधेरा पड़े 'गुलफ़िशाँ' की सीढ़ियों पर बैठा होता। शाम के सन्नाटे में हवाओं के साथ बहती, प्रदर्शनी में बजते रिकार्डों की आवाज़ उसके कानों में पहुँचती। इनमें से एक फ़िल्मी रिकार्ड अक्सर बजता—

"काया एक घरौंदा है—काया एक घरौंदा है..."

इसी ज़माने में कांग्रेस ने नेशनल प्लानिंग कमेटी बनाई। कृषि, उद्योग, शिक्षा, बेकारी आदि के लिए दसवर्षीय योजना तैयार की गई। तभी कांग्रेस ने मेडिकल मिशन चीन भेजा। फिर जंग छिड़ गई और हिन्दुस्तान की राय लिए बग़ैर बरतानिया ने इस मुल्क को भी जंग की भट्टी में झोंक दिया। अंग्रेज़ों की ख़ातिर पिछले सत्तर साल से हिन्दुस्तानी फ़ौज दूसरे एशियाइयों से लड़ती आ रही थी। हिन्दुस्तानी सिपाही अफ़गानों से लड़ने और चीनियों को मारने के लिए भेजे गए। वे ईराक़ में तुर्कों और अरबों से लड़े और अब उनको फिर यूरोपियन इम्पीरियलिज़्म की बलिवेदी पर भेंट चढ़ा दिया गया। कांग्रेस-मंत्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। अब फिर गवर्नर का राज्य शुरू हुआ। कांग्रेस ने असहयोग-आन्दोलन आरम्भ किया।

फ्रांस के पतन के बाद जब मित्रराष्ट्रों की दशा बेहद ख़राब हो गई, तब कांग्रेस ने एक बार फिर प्रस्ताव रखा कि यदि केन्द्र में पूर्ण रूप से स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार स्थापित कर दी जाए तो वह युद्ध में सहयोग देने के लिए तैयार है। जब अंग्रेज़ों ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया, तो महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया। हज़ारों मर्द और औरतें जेलों में ठूँस दिए गए। हरिशंकर और कमाल भी जेल गए। कुछ समय बाद इनको दूसरे विद्यार्थियों के साथ छोड़ दिया गया।

7 अगस्त, 1942 ई. को 'क्विट इंडिया रेवोल्यूशन' पास किया गया। मुल्क में विद्रोह आरम्भ हुआ। अहमदनगर-फ़ोर्ट फिर आबाद हुआ। यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी इस आन्दोलन में आगे-आगे थे। दस हज़ार हिन्दुस्तानी पुलिस की फ़ायरिंग से मारे गए।

अब बंगाल में क़यामत का सामना था। चौंतीस लाख इंसान अब तक भूख से मर चुके थे।

चौंतीस लाख इंसान–

चौंतीस लाख आमिना और अबुल मोन्शूर !

कमाल दूसरी सुबह जल्दी-जल्दी नाश्ता करने के बाद चेतपुर रोड से निकला और प्रमोद दा के घर की तरफ़ रवाना हो गया।

48

पार्क-सर्कस में प्रमोद दा के घर पर बहुत से लड़कों और लड़कियों की सभा थी--कलकत्ता विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, इप्टा के कार्यकर्त्ता, पार्टी के लोग, लखनऊ वाले भी सब पहुँच चुके थे।

प्रमोद दा कलकत्ते के विद्यार्थियों के नेता थे। इस समय उनके मकान के बड़े हॉल में बड़ी गहमा-गहमी दिखाई दे रही थी। रिलीफ़ वर्क की योजना बनाई जा रही थी। चन्दा एकत्र करने के लिए जो प्रोग्राम स्टेज किया जाने वाला था, उसकी रिहर्सल हो रही थी। कोने में हारमोनियम रखा था। एक-दो लड़कियाँ रवीन्द्रनाथ की चित्रांगदा के गानों का अभ्यास कर रही थीं। हॉल के सिरे पर शीशों वाला बरामदा था। उसमें प्रमोद दा की बहन का स्टूडियो था। वे शान्ति-निकेतन की कलाकार थीं। स्टूडियो में एक लड़का सफ़ेद शाल ओढ़े ईज़ल के सामने खड़ा एक पोर्टरेट को अंतिम टच दे रहा था। ड्रामे के बाद यह चित्र भी रिलीफ़-फंड के लिए नीलाम किया जाने वाला था।

प्रमोद दा की बहन अरुणा दीदी एक दूसरे कैन्वस पर झुकी हुई थीं। सब अपने-अपने काम में लगे हुए थे।

ब्रश साफ़ करके एक तरफ रखने के बाद, माथे पर से बाल हटाता हुआ यह चित्रकार लड़का हॉल के दरवाज़े में आ खड़ा हुआ। उसने हॉल के दृश्य पर एक दृष्टि डाली। इन सबको इस तल्लीनता से काम में लगा हुआ देखकर उसके होंठों पर एक उदास-सी मुस्कराहट बिखर गई।

"दादा, इधर आओ।" एक लड़की ने उसे आवाज़ दी। "देखो, अब मेरे क़दम ठीक हैं न?"

"तुम्हारे कदम तो कभी ठीक नहीं होंगे" उसने लड़की की तरफ़ जाते हुए कहा–"तुम बंगालियों की रोमानप्रियता ने नाक में दम कर रखा है।" लड़के ने कहा।

"दादा यह तो विशुद्ध भरत नाट्यम कर रही हूँ मैं।"

वह उसे उसी उदासी से खड़ा देखता रहा।

यह लड़का भी यू. पी. का रईसज़ादा था। आजकल विश्वभारती आया हुआ था।

एम. ए. और लॉ इलाहाबाद से कर चुका था। अभी उसके दिमाग़ में स्पष्ट रूप से यह नहीं आया था कि उसे क्या करना चाहिए। बहुत से प्रोग्राम थे—पत्रकारिता, राजनीति, "पुस्तकें लिखा करूँगा बड़े-बड़े गूढ़ विषयों पर। ऐसे-ऐसे दृष्टिकोण पेश करूँगा कि दुनिया वाह-वाह कर उठेगी। कला का समालोचक बनूँगा।" राजनैतिक रूप में आप कट्टर साम्यवादी थे। बाप का कहना था (बाक़ी सभी बापों की तरह) कि आई. सी. एस. में बैठो। वे स्वयं अंग्रेज़-सरकार के "नाइट" थे; और चोटी के बैरिस्टर। बचपन में उसे नैनीताल पढ़ने के लिए भेजा गया। फिर यूनिवर्सिटी की शिक्षा समाप्त करने और इधर-उधर मारे-मारे फिरने के बाद उसके मन में आया कि शान्ति-निकेतन चलो। उसने बाप से कहा—"बाबा, हमें विश्वभारती भेज दीजिए।" बाप ने उसे घूर कर देखा—"क्यों मियाँ साहबज़ादे, चित्रकार बनोगे? दिमाग़ तो नहीं ख़राब हो गया?" दुनिया के सारे बाप यही बात कहते मगर, क्योंकि वह इकलौता बेटा था, इसलिए बाप ने ज़िद पूरी कर दी। अब वह दो वर्ष से बोलपुर में था और विश्वभारती के दूसरे विद्यार्थियों के साथ रिलीफ़ कार्य के सिलसिले में कलकत्ते आया हुआ था।

"ये लखनऊ से लोग आए हैं, उनसे नहीं मिले?" किसी ने निकट से गुज़रते हुए उससे कहा। वह हॉल पार करके उस कोने की ओर बढ़ा, जिधर कमाल दूसरे लड़कों के साथ बैठा ज़ोर-ज़ोर से, "पालकी चले, पालकी चले, हा—।" गा रहा था। यह भी ड्रामे की रिहर्सल का एक अंग था। दूसरा लड़का उसके पास जाकर खड़ा हो गया और गाना समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा।

चारों ओर ज़ोर-ज़ोर से बंगाली बोली जा रही थी।

कमाल ने दृष्टि उठा कर उसे देखा—"नोमश्कार।" कमाल ने गाना समाप्त करने के बाद हारमोनियम बन्द करते हुए उससे कहा।

"आदाब अर्ज़।" उसने मुस्कराकर उत्तर दिया।

कमाल की जान में जान आई। बंगाली बोलते-बोलते उसकी हालत तबाह हो चुकी थी।

"गौतम नीलाम्बर।" लड़के ने अपना परिचय कराया।

"कमाल रज़ा।" उसे सूचना मिली। दोनों ने हाथ मिलाया।

दोनों का एक ही हुलिया था—तंग पायजामा, कुर्ता, नेहरू-वास्कट और ऊपर से कश्मीरी शाल। यह हुलिया इस दल के लगभग सभी नवयुवकों का था।

"मियाँ कहाँ आ फँसे? इन बंगालियों ने तो बंगाली बोल-बोल कर हालत पतली कर रखी है। आओ, बाहर चलें।"

दोनों ने बाहर एक रेस्तराँ में जाकर कॉफ़ी पी और फिर वापस आ गये।

"आओ तुमको अपने चित्र दिखाऊँ।" गौतम ने अरुणा दीदी के चित्रालय में दाख़िल होते हुए कहा।

"यार, तुम हरिशंकर से नहीं मिले?" कमाल ने कहा।

"हरिशंकर यह कौन है?" गौतम ने निःसंकोच पूछा, और बड़े आर्टिस्टों वाले अन्दाज़ में सिगरेट होंठ में दबा कर, चित्र पूर्ण करता रहा।

"हरिशंकर—यार है मेरा। बड़ा हँसमुख आदमी है।"

"कहाँ है? बुलाओ।" गौतम ने नवाबों की तरह कहा।

"घास खा गए हो? वह यहाँ नहीं है। लखनऊ में है। बीमार पड़ा है बेचारा।"

"तुम सब लखनऊ में क्यों रहते हो?" गौतम ने ब्रश एक तरफ़ रख कर मुड़ते हुए पूछा।

"और फिर कहाँ रहें?"

"हाँ, यह भी ठीक कहते हो।"

"तुमने इसकी नाक ग़लत बनाई है।"

"होंठ बनाने बहुत मुश्किल होते हैं।"

"माशा अल्लाह–क्या जवाब दिया है। मारूँ घुटना, फूटे आँख।"

"सिगरेट लो।"

"क्या तुम आर्टिस्ट हो?"

"और क्या तुम्हें ग्रास-कट नज़र आता हूँ?"

"अरे-रे ! तुम्हारा ही ज़िक्र जीजाजी ने किया है ख़त में।"

"जीजाजी–यह कौन बुज़ुर्ग हैं?"

"हमारी लाज के मियाँ।"

"तुम्हारी लाज कौन है?"

"हद है। जीजाजी तो तुमको जानते हैं !"

"मुझको तो बहुत से लोग जानते हैं।"

"तुम्हें अपने बारे में भ्रम भी है।"

"हाँ, तुम्हें नहीं?"

"है तो सही...।"

"ठीक है।" गौतम तस्वीर में लगा रहा।

"अगर रह लिये शान्ति-निकेतन में चार-पाँच साल तो शायद लोट-पीट कर बन जाओगे आर्टिस्ट। फ़िलहाल तो इसकी कोई उम्मीद नहीं।" कमाल ने तस्वीर को ध्यानपूर्वक देखते हुए अपना विचार प्रकट किया।

"ख़ाली आर्टिस्ट–अरे मेरा इरादा तो है कि बंगलौर जाकर रामगोपाल से भरतनाट्यम भी सीखूँ।" गौतम ने अल्टीमेटम दिया।

"यह इरादा तो एक ज़माने में इस ख़ाकसार का भी था। मगर, जब मैंने इसे सबको बताया तो मेरी बहनें हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई और उन्होंने बुरी तरह मेरी हूटिंग की। असल में लड़कियाँ बड़ी बोगस होती हैं। आर्ट को समझने की उनमें योग्यता नहीं होती।"

"तुम्हारी बहनें भी हैं?"

"हाँ।...तुम्हारी नहीं हैं?"

"न...।"

"यह बड़े अफ़सोस की बात है। बहनें हों तो ज़िंदगी में एक शान्त और कोमल-सा भाव बना रहता है।"

"हूँ।...फिर क्या हुआ?"

"क्या?"

"तुम कह रहे थे कि...।"

"यार गौतम, तुमको मालूम है, मैं बुद्धिस्ट भी हो गया था एक ज़माने में !"

"सचमुच?"

"चंद साल हुए, मैं सारनाथ गया तो वहाँ मुझे बहुत ही शान्ति मिली। इस पर मैंने सोचा कि यार इस बुद्धिज़्म में कुछ न कुछ होगा ज़रूर।"

"हूँ !"

"तुम पार्टी में हो?"

"पार्टी? नहीं अभी मैं इस क़ाबिल नहीं बना। इसके लिए बड़ा पित्ता मारने की ज़रूरत है।"

"हाँ, ठीक कहते हो। वैसे तुम कोई ऐसे रिवोल्यूशनरी दिखाई भी नहीं पड़ते।" कमाल ने कहा।

गौतम ने क्रोध से उसे देखा।

"मालूम है महात्मा गांधी ने तुम्हारे गुरुदेव से क्या कहा था?--कहा था कि घर में आग लगी है और आप बैठे चिड़ियों का गाना सुनते हैं?" कमाल ने कहा।

गौतम ने ब्रश झटक कर रखा। "बेवकूफ़ी की बातें मत करो जी। क्या तुम्हारे हरिशंकर में भी तुम्हारे जितना ही बचपना है?"

"तुम भैया साहब से भी मिलना।" कमाल ने उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके कहा।

"वह कौन हैं?"

"मेरे चचेरे भाई।"

"वे भी बहुत क़ाबिल हैं?"

"हाँ।"

"लखनऊ ही में रहते हैं?"

"हाँ, मगर आजकल मोर्चे पर गए हुए हैं।"

"लखनऊ में एक से एक आदमी पड़ा हुआ है, इसका मतलब है... ।"

"और क्या।"

"चलो, फ़रपो चल कर चाय पी लें।" गौतम ने उठ कर चित्र पर कपड़ा डालते हुए कहा।

"फ़रपो। तुम सख़्त बुर्जुआ मालूम होते हो।"

"बको मत।"

"अच्छा एक बात बताओ। मैं हर चीज़ के बारे में बहुत खुले हुए विचार रखने का क़ायल हूँ।" कमाल ने कहा।

"शूट।"

"क्लास' के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है? तुम प्रोलेतारियत के भविष्य में यकीन रखते हो?"

"हाँ।"

"हाथ मिलाओ।" उन्होंने हाथ मिलाया।

"तुम समझते हो फ़्यूडल-समाज अपनी मौत आप मर जाएगा?"

"हाँ !"

उन्होंने दुबारा हाथ मिलाया।

"तुमको विश्वास है कि तुमको फ़्यूडल-समाज से सच्ची, दिली नफ़रत है, और तुम उसको जड़ से मिटा करके दम लोगे?"

"मुझे तो, ख़ैर, विश्वास है, लेकिन तुम तो ख़ुद फ़्यूडल-समाज से जुड़े हुए हो।"

"तुमको कैसे मालूम है?" कमाल ने घबरा कर पूछा, मानो उसकी कोई बहुत बड़ी चोरी पकड़ी गई हो।

"मुझे इस तरह मालूम हुआ कि अभी-अभी हॉल में कोई ज़िक्र कर रहा था कि तुम्हारी मटियाबुर्ज़ वालों से रिश्तेदारी है और तुम चेतपुर रोड वाले नवाब साहब..।"

"हाँ-हाँ—ख़ैर।" कमाल शर्म से पानी-पानी हो गया—"वह तो जो हुआ सो हुआ। इतिहास पर मेरा क्या बस है। मगर, अब मैं पूरी कोशिश में लगा हूँ कि ख़ुद को पूरी तरह से 'डीक्लास' कर लूँ।"

"तुम्हारा हरिशंकर भी फ़्यूडल है?"

"है तो सही, मगर वह बेचारा भी क्या कर सकता है।"

"ख़ूब।" गौतम मुस्कराया—"मैं बड़ा सख़्त मिडिल-क्लास हूँ।" उसने सूचना दी।

"रंज न करो।" कमाल ने उसे दिलासा दी—"हम लोग तो दरअसल उस नए समाज का हिस्सा हैं, जो अब जनम ले रहा है—जनता का समाज।"

इस तरह की विशुद्ध विद्यार्थियों की-सी चर्चा के बाद दोनों बाहर आ गए। कमाल पर गौतम का रौब पड़ गया। गौतम में बड़ी गहराई थी और वह बहुत ज़्यादा समझदार था। हर हाल में वह सीनियर लड़का था। और कमाल अभी प्रभावित होने वाली स्टेज से नहीं निकला था।

लखनऊ वापस पहुँच कर कमाल ने जीजाजी को जो ख़त लिखा, उसमें गौतम नीलाम्बर की तारीफ़ों के दरिया बहा दिए।

इसी साल गर्मियों में गौतम लखनऊ आया। अपने आवास-स्थान से उसने 'गुलफ़िशाँ' फ़ोन किया। वहाँ मालूम हुआ कि सब लोग रेडियो-स्टेशन गए हुए हैं। रेडियो-स्टेशन से सूचना मिली कि अभी-अभी सब लोग कमला जसपाल के यहाँ फ़ैजाबाद रोड गए हैं; फ़ैज़ाबाद रोड से पता चला कि वे सब तो सिंघाड़े वाली कोठी चले गए।

"सिंघाड़े वाली कोठी...क्या बेतुका नाम था।"...अब मकानों के ऐसे-ऐसे नाम होने लगे जैसे 'ख़रबूज़े वाली हवेली' और 'तरबूज़ वाला क़िला' या 'गाजरमंज़िल' और 'मूलीहाउस'। उसे बेहद हँसी आई। शायद ये लोग सिंघाड़े बहुत खाते होंगे, या क्या होता होगा !

उसने सिंघाड़े वाली कोठी फ़ोन किया तो चम्पा से रिसीवर उठाया।

"हलो, आदाब अर्ज़। देखिये मेरा नाम गौतम है—गौतम नीलाम्बर ! अगर आप लोग अभी वहाँ से कहीं और तशरीफ़ न ले जाते हों तो मैं हाज़िर हो जाऊँ।"

"आप ज़रूर तशरीफ़ लाइए।" चम्पा ने जवाब दिया। "और अगर आप सोशलिस्ट हैं तो ज़रा तैयार होकर आइएगा। आज हम सब तुले बैठे हैं कि कोई सोशलिस्ट मिले तो उसे कच्चा चबा जाएँ।"

गौतम ने उस दिन का अख़बार अभी तक नहीं पढ़ा था, मगर उसने फ़ौरन जवाब दिया, "बहुत ख़ूब। अभी हाज़िर होता हूँ—आप लोग भी तैयार रहिएगा।"

सिंघाड़े वाली कोठी में जब वे सब लोग जाकर नदी के सामने वाले बरामदे में बैठ

गए तो गौतम ने प्रश्न किया—"तलअत आरा बेगम आप सब में से कौन-सी ख़ातून हैं?"

"जी, मैं हूँ, फरमाइए।"

"देखिए, मिस साहिबा, कोई लिखने बैठ जाए तो उसकी क़लम थोड़े ही पकड़ी जा सकती है। मगर यह कि आप अगर ऐसा न करतीं तो कितना अच्छा होता !"

"आपने भी 'इप्टा' की तरफ़ से जितने बोगस ड्रामे कलकत्ते में प्रोड्यूस किए हैं, उनका हाल मैं भी कमाल की ज़बानी सुन चुकी हूँ। मैं आपको मार्जिन देती हूँ कि पन्द्रह मिनिट तक हम सब पर अपना रौब डालिए। इतना ही समय हम आप पर अपना रौब डालने में लगाएँगे। इसके बाद नॉर्मल हो जाइए, क्योंकि नॉर्मल रहना ही बहुत उत्तम होता है। अच्छा अब डालिए रौब। शुरू कीजिए। सुना है, आप विश्व-भारती की शोभा बढ़ा रहे हैं। यहां भी एक से एक बड़ा कलाकार पड़ा है—हर क़िस्म का। और ये सब बारी-बारी, एक-एक करके और फिर सब मिल कर आपको इम्प्रेस करना चाहेंगे। पहले आप पोलिटिकल विचार हमारे सामने रखिए। रिएक्शनरी तो नहीं हैं आप? या महारामाई?"

"आप चेले बनाते हैं ?" निर्मला ने पूछा।

"जी नहीं। मगर कभी-कभी बना लेता हूँ।"

"गौतम आपका तख़ल्लुस है?" तलअत ने सवाल किया।

"जी नहीं। माँ-बाप ने यही नाम रखा था। तलअत बेगम ! मैं आपसे फिर कहूँगा कि आप अभी और पढ़िए। इसके बाद लिखना शुरू कीजिएगा। आपके ज्ञान में अफ़सोसनाक कमी है।"

"भैया साहब नहीं पहुँचे।" कमाल ने कहा—"उन्होंने फ़ोन किया था कि चाय यहीं पिएँगे।"

"भैया साहब" तलअत ने घड़ी देख कर जल्दी से ऐलान किया—"राइडिंग के लिए गए हुए थे। अब स्वीमिंग करके वापस आते होंगे।" सब लोग अपनी जगह पर ज़रा लज्जित हुए।

"खुदा की पनाह। ये कौन साहब हैं—कोई फ़िल्म स्टार—अशोक कुमार वग़ैरा--?" गौतम ने प्रश्न किया।

"भैया साहब—मैंने तुमसे कहा नहीं था कि उनसे ज़रूर मिलना।" कमाल बोला।

"अवध के ताल्लुक़ेदारों के बारे में मेरी जानकारी बहुत कम है। क्या आप सब, यही राइडिंग वग़ैरा करते हैं? मैं दरअसल सारे मिडिल-क्लास लोगों की तरह अमीर तबक़े पर रीझा हुआ हूँ। जंग से पहले विलायत गया था, अपने बाबा के साथ, तो ब्रिटिश लॉर्डों को देखने की इच्छा में घूमा-घूमा फिरता था। जहाँ दूर कोई लॉर्ड नज़र आया और मैं लपका उसकी तरफ़ ! बाद में मालूम हुआ कि वहाँ के 'अण्डरटेकर' भी वही लॉर्डों वाला ड्रेस पहनते हैं।"

"हम लोग भी अण्डरटेकर्ज़ हैं।" कमाल ने कहा।

"और, अतीत की क़ब्रों के मुजावर (सेवादार)।" हरिशंकर ने कहा।

"लेकिन, तुम्हें हमको पसन्द करना पड़ेगा।" कमाल ने दुबारा कहा—"क्योंकि हम लोग अपनी दिलकशी के सहारे ही पर ज़िन्दा हैं।"

"मैं तुमको ज़रूर पसन्द करूँगा। मेरे दिल में बड़ी विशालता है।" गौतम ने बड़े अभिमान से जवाब दिया।

49

चम्पा अब गिरोह में शामिल थी। उसने गिरोह के नियमों से समझौता कर लिया था। गिरोह में सहानुभूति थी, क्योंकि वह स्वयं अकेला था। हम कितने करुण रूप से सहारे की तलाश में रहते हैं। गिरोह केवल एक और पात्र ही था, जिस तरह वातावरण एक पात्र था–कल्पनाओं का साकार रूप। मानवीय सम्बन्ध बड़े नाज़ुक, बड़ी गुंजलक बुनियादों पर स्थित हैं। बराबर ये सम्बन्ध टूटते भी रहते हैं, इसीलिए मीर अनीस ने कहा था–'ख़याल-ए-ख़ातिर-ए-अहबाब चाहिए हर दम' हर तरफ़ शीशे के बर्तन थे जो शीशे के घरों में रखे थे। यह सारा का सारा कारख़ाना शीशे का था। कमाल ने उससे कहा–"चम्पा बाजी, चोरों के मानसिक बावर्चीख़ाने में अपनी उठक-बैठक रखिये। आप हमारा घर रखाइये, हम आपका घर रखाते रहेंगे। हम कभी आपको अकेला न छोड़ेंगे। अपने ज़हन को थोड़ा-सा डिसिप्लिन्ड कीजिए। यही असल चीज़ है। मुसीबत सारी यह है कि आप रोमेण्टिक हैं।"

मगर ज़िंदगी में डिसिप्लिन की गुंजाइश कहाँ थी ! यहाँ हर तरफ़ इतनी अस्त-व्यस्तता थी ! कमाल ने कहा–"अगर आप, आर्टिस्ट होतीं तो ठीक था। आप इस हलचल को शब्दों में ढाल देतीं। मगर, आप न लिखती हैं न किसी और तरह से अपने विचार प्रकट करती हैं।"

"ये लेखक लोग बड़े संतुलित होते हैं?" चम्पा ने पूछा।

"संतुलित न हों, मगर रचना के 'प्रोसेस' के दौरान वे अपनी स्वर को खोज लेते हैं।... चम्पा बाजी, आप तस्वीरें ही बनाया कीजिए।"

"तुमने तो मुझे बिलकुल विक्टोरियन ज़माने की रूमानवादी समझ लिया है। नहीं कमाल ! ठीक है–मैं एकदम कुशल से हूँ। मैं तुम सबके साथ रहूँगी। मैं तहमीना के साथ भी रहूँगी।"

"मगर साथ ही यह भी तय कर लीजिए कि मन और बुद्धि का आपस में क्या इक्वेशन होना चाहिए। अगर यह तय कर लिया तो बस समझ लीजिए कि बेड़ा पार है।"

"फिर वही दृष्टिकोण।"

"अच्छा तो आप प्रयोग करना चाहती हैं? चम्पा बाजी, आप स्वयं प्रयोग न कीजिएगा। दुनिया आपको ख़ुद ही इतने सबक़ देगी कि होश ठिकाने आ जाएँगे।"

इसी तरह, लॉन पर बैठ कर या सड़क पर टहलते हुए ये लोग लम्बे-लम्बे वाद-विवाद करते। चम्पा इस यूनिवर्सिटी के वातावरण में बेहद ख़ुश थी। कैलाश होस्टल जहाँ वह एम. ए. के लिए रह रही थी, वह एक अलग और ख़ास दुनिया थी। यहाँ एक बहुत बड़े अहाते में यूकलिप्टस, मौलसिरी और समल के वैभवपूर्ण पेड़ खड़े थे। एक पीले रंग की लम्बी-चौड़ी कोठी थी जिसमें मिसिज़ वांचू रहती थीं। उसके निकट ही एक आधुनिक शैली की सीमेंट की विशाल दो-मंज़िला इमारत खड़ी थी। इसमें लड़कियाँ रहती थीं। यह जगह चाँद बाग़ से बहुत भिन्न थी। यहाँ अधिकतर लड़कियाँ पोस्टग्रेजुएट थीं। वे बहुत जागरूक और सीनियर होने के एहसास के साथ रहती थीं। चाँद बाग में राजनीति का दख़ल न था। यह जगह धारे में शामिल थी। चाँद बाग़ में बेताफेन और इब्सन का राज था। यहाँ हर तरफ़ महात्मा गांधी और नेहरू, काएदे-आज़म जिन्ना और कार्ल मार्क्स की चर्चा थी। अमरीका के विशिष्ट और

ऊँचे वर्ग के ब्राइनमार और स्मिथ कॉलेज की शैली में चाँद बाग़ के वातावरण को बनाया गया था। वहाँ से निकल कर जब लड़कियाँ यूनिवर्सिटी में आतीं तो कैलाश में रहते हुए खुद को देश के वातावरण के अधिक निकट महसूस करतीं।

अब चम्पा, तहमीना, निर्मला और तलअत बहुधा इकट्ठा ही समय बितातीं। एक दिन तहमीना ने चम्पा से कहा—"सुनो—आओ। वयस्क सतह पर इस समस्या को देखें। भैया साहब दिसम्बर में मद्रास से आ रहे हैं। इस साल तुम एम. ए. कर लोगी। रूहानी तौर पर इस क़दर दुस्साहसी बनने का इरादा एक तरफ़ रखो और उनसे शादी कर लो।"

"बको मत।"

"बकने का इसमें क्या सवाल है।"

"तुम खुद ही न कर लो उनसे शादी।"

"मैं तुम्हारी परछाईं बन कर ज़िन्दा नहीं रहना चाहती।"

"बकवास।" चम्पा ने जवाब दिया। फिर तहमीना कुछ देर बाद बोली—

"इसके अलावा भैया साहब ही जीवन का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। मर्द इस लायक़ ही नहीं कि उनको इतना आसमान पर चढ़ाया जाए।"

"ज़ाहिर है।"

"ज़िंदगी का लक्ष्य पार्टी है। कहो, हाँ।"

"हाँ।" चम्पा ने ज़रा-सा ठहर के जवाब दिया।

तलअत दूसरे कमरे में बैठी थी। यह बातचीत उसके कानों में पड़ी तो वह बहुत खुश हुई—"खुदा का शुक्र है। इन दोनों की समझ में बात आ गई।" उसने निर्मला से फ़ोन पर कहा। निर्मला ने भी खुदा का शुक्र अदा किया।

लेकिन, भैया साहब दिसम्बर में लखनऊ आए, और चम्पा के सारे नए दृष्टिकोण फिर हवा हो गए। वह दिन भर खुश-खुश फिरती रही।

"वे 'गुलफ़िशाँ' वाले गुलफ़ाम आए हुए हैं आजकल।" होस्टल में लड़कियों ने एक-दूसरे से कहा।

इसी बीच गौतम नीलाम्बर भी आ पहुँचा। उसको कृषि विभाग में एक बहुत अच्छी नौकरी मिल गई। और, लोगों ने कहा—"अपने बाप की बड़ी हैसियत की वजह से देखो, कैसे तुरन्त ही उसे नौकरी मिल गई ! बड़ा कम्युनिस्ट बना फिरता था !"

यह ज़माना जो इन लोगों ने एक साथ गुज़ारा, यह इनके सबके जीवन का सर्वश्रेष्ठ काल था—ऐसा काल जो एक बार चला जाए तो फिर कभी वापस नहीं आता।

50

"शान्ता, यह बड़ी शांतिपूर्ण जगह है। झाड़ियों पर कोयलें बैठी हैं। आमों के बाग़ हैं, जिनके बीच से होकर एक मालिन कड़ा बजाती जा रही है। बड़े सभ्य रिटायर्ड कलक्टरों, ज़मींदारों और बैरिस्टरों की कोठियाँ यहाँ पर हैं। घाट पर डोंगियाँ खड़ी रहती हैं, छायादार रास्तों पर

लम्बे-लम्बे पीले फूल नीचे बरसते रहते हैं। बारीक़, नाजुक टहनियों वाले वृक्षों पर बड़े सुबुक फूल-पत्ते खिले हैं, उन्हें देख कर चीनी पेंटिंग्ज़ याद आती हैं। इतवार की सुबह को लड़कियाँ बर्मी छतरियाँ सँभाले एक-दूसरे के घर जाती हैं–और, घास पर बैठ कर निटिंग करती हैं–और बड़ी इन्टेलैक्चुअल वार्त्तालाप इन लोगों का दस्तूर होता है। ज़िंदगी में हर तरफ़ सलीक़ा ही सलीक़ा है, और नफ़ासत। बरामदे के हरे जंगले पर फैली हुई बेल, ठण्डी धरती पर शीतल पाटियाँ। एक दीवार के सहारे खोल-चढ़े तानपूरे रखे हैं। कमरों में ऊँचे-ऊँचे दोहरे दरवाज़े हैं, इन दरवाज़ों पर झिलमिलियाँ हैं। चौड़ी सीढ़ियाँ, ऊँची कुरसी, बड़े से घास के समुन्दर में ये मकान डूबे हुए हैं ! छतें डाट की हैं। छत के ऊपर छोटे-छोटे इटैलियन ढंग से ख़म्भों वाले जंगले हैं। ऐसे मकान सारे प्रान्त में फैले हैं। किस क़दर मज़बूती इनकी नीवों में होगी। बरामदों की सीढ़ियों पर किसी ज़माने में पंखाक़ुली ऊँघते रहे होंगे। बहराइच में, जहाँ मैं पैदा हुआ, वहाँ मेरा मकान भी ऐन-मैन ऐसा ही है। मैं मकानों की कथा लेकर बैठ गया। शान्ता मैं विवरणों से प्रभावित होने और उन पर ध्यान देने की अपनी आदत से तंग आ चुका हूँ। मगर बताओ तो भला, लोगों ने मकान बना रखे हैं और ज़रा इनके नाम तो सुनो।

नाम भी अजीब चीज़ होते हैं। उदाहरण के लिए चम्पा बेग़म–अच्छा नाम है, है ना कहो शान्ता? मेरी राय पर सहमति प्रकट करो। देखो, तुम इतनी दूर हो, तो मेरा जी चाहता है हर चीज़ मेरी आँखों से देखो। मेरे साथ-साथ रहो। जब मैं नये लोगों से मिलता हूँ तो सोचता हूँ–शान्ता होती तो अमुक के लिए यह कहती, अमुक को पसन्द करती, अमुक का मज़ाक उड़ाती। शान्ता, तुमने मुझे डाँटा भी नहीं बहुत दिनों से। अब क्या मैं तुम्हारी मातृ-भावना को अपील नहीं करता? तुम्हारे कथनानुसार–बड़ा हो गया हूँ? शान्ता, काश तुम यहाँ होतीं और इन सबसे मिलतीं।''

बड़ी दिलचस्प बात यह है कि मैं यहाँ एक क़िस्म के अनआफ़ीशियल वर-दिखौवे के लिए बुलाया गया था। निर्मला रानी बी. ए. हैं। बजाय इसके वे आम रिवाज़ में पली लड़कियों की तरह कुछ शरमातीं, और हारमोनियम पर उनसे गाना सुनवाया जाता, उन्होंने बिलकुल शरमा कर नहीं दिया। न शायद वे यह जानती हैं कि उनके परिवार वाले उनसे मेरा रिश्ता तय करना चाहते हैं। बहरहाल, उन्होंने मुझमें किसी दिलचस्पी का इज़हार नहीं किया। उनको बातों से ही फ़ुर्सत नहीं। उनके बहुत ज़बरदस्त प्रोग्राम हैं–केम्ब्रिज जाएँगी, डॉक्टरेट करेंगी। निर्मला और तलअत दोनों बड़ी ही तेज़ ज़हन की लड़कियाँ हैं। ख़ुदा बचा के रखे। हर वक़्त टर्राती रहती हैं–"

"लिख लिया भाषण?"

निर्मला ने बरामदे के जंगले के नीचे से उचक कर पूछा।

"लिख रहा हूँ।"

"दिखलाइए।"

"ओफ़्फ़ोह–भई, असल में भाषण नहीं लिखा। एक ज़रूरी ख़त लिखना था–वह शुरू कर दिया।"

"यह पत्राचार का कौन-सा वक़्त है। मैं कहती हूँ–"

"न वे चीन से निकले, न जापान से निकले।

न ईरान से निकले, न इंग्लिस्तान से निकले।
मुहम्मद मुस्तफ़ा निकले, तो अरबिस्तान से निकले।
...मुहम्मद मुस्तफ़ा—"

कमरे में सबने मिल कर अपनी एक क़व्वाली शुरू कर रखी थी।

"चलिए, चल कर क़व्वाली गाइए।" निर्मला ने दूसरा हुक्म लगाया।

गोया सिंघाड़े वाली कोठी में आकर 'न वो चीन से निकले' गाना इतनी गम्भीर और ज़रूरी चीज़ थी ! गोया उसकी ज़िंदगी का मुख्य लक्ष्य ही केवल यह था कि—'न वो चीन से निकले' गाए ! उसने निर्मला को उदासी से देखा—बेवक़ूफ़ लड़की, कितनी ख़ुश है। "चलो निर्मला, मैं आता हूँ, मगर एक शर्त पर—"

"वह क्या?"

"अपने भैया साहब से मिलवाओ।"

ठीक उसी समय उसने नज़र उठा कर देखा कि बरसाती की सीढ़ियों पर भैया साहब खड़े हैं। वे घबराए हुए से, मुस्करा रहे थे। उनका स्वागत करने के लिए सब बरामदे में आ गए।

"बड़े नर्वस-टाइप के आदमी जान पड़ते हैं।" गौतम ने धीरे से कहा।

"लड़कियों से घबरा जाते हैं बेचारे। बड़े शरीफ़ आदमी हैं।" निर्मला ने जवाब दिया।

"शरीफ़ आदमी हैं, तो हम सब क्या लफ़ंगे हैं? वाह-वाह !" हरिशंकर ने विरोध किया।

"उनकी अचेतन अवस्था में कोई पेचीदगी है।" गौतम ने दूसरी घोषणा की। हरिशंकर ने उसे मुक्का दिखाया।

भैया साहब ऊपर नज़र डाल कर चम्पा की तरफ़ चले गए। चम्पा ने कुर्सी छोड़ दी और फ़र्श पर बैठ कर उनके लिए चाय बनाने लगीं।

"यह सिलसिला भी है।" गौतम ने एकाएक बोर होकर पहली बार ज़रा गंभीरता से कहा।

"भैया साहब नाचते बहुत अच्छा हैं।" निर्मला ने मौक़े को सँभालना चाहा। ये तीनों बाक़ी लोगों से अलग बरामदे की सीढ़ियों पर जा बैठे थे।

"लोक-नाच या क्लासिकल?" गौतम ने दिलचस्पी से पूछा।

"ओल्ड वाल्ज़ के उस्ताद हैं" निर्मला ने मरी हुई आवाज़ में कहा।

"तब मैं उनको माफ़ कर सकता हूँ" गौतम ने सिर हिला कर कहा - "मैं बहुत कुछ माफ़ कर देता हूँ। मेरा बहुत बड़ा दिल है !" उसने पहुँचे हुए फ़क़ीरों की तरह आँखें बन्द कर लीं।

अन्दर कोई और बहस छिड़ गई थी। हरिशंकर ज़ोर-ज़ोर से शोर मचा रहा था।

"उफ़्फ़ोह। तुम लोग किस क़दर की टर्र लगाते हो।" गौतम ने एक आँख खोल कर कहा।

"जीवन अनेक युगों में बँटा हुआ है—" कमाल ने यों मोती बिखेरे।

"ख़ूब !—यानी—?"

"यह महज़ बातों का युग है।"

"फिर कुछ करने और कुछ रचने का युग कब आएगा?"

"मियाँ, जब से दुनिया बनी है—अगर पैग़म्बरों, फ़िलासफ़रों और सोचने वालों ने बातें न की होतीं तो आज दुनिया की लायब्रेरियों में गधे लोट रहे होते। शुक्र करो कि हम बातें करते हैं, और तुम सुनते हो। एक समय ऐसा आने वाला है, जब तुम्हारे कान हमारी आवाज़ सुनने को तरस जाएँगे।" कमाल ने कहा।

"तुम समय की विनाशकारिता के क़ायल हो?" गौतम ने पूछा।

"हाँ।" कमाल ने कहा।

सूर्य नदी में डूब रहा था, और छतरमंज़िल के सुनहरे गुम्बद किरणों में नारंगी रंग के नज़र आ रहे थे। सामने लहरों पर से एक नाव शान्त रूप से गुज़र गई।

"क्या तुम संकेतों के रहस्यों में विश्वास रखते हो?" गौतम ने कमाल से पूछा।

"हाँ।"

"यह सामने जो नाव जा रही है—यह बड़ा रहस्य रखती है।" गौतम साधारण-सी बात को भी बेहद नाटकीय और दार्शनिक रंग में प्रस्तुत करता था। और उसका यह अन्दाज़ लोगों को बहुत अच्छा लगता था। हरिशंकर भी उसके पास आन बैठा।

वे सीढ़ियों पर जा खड़े हुए। सीढ़ियाँ नदी में उतरती थीं।

नदी बहता हुआ समय है—पत्थर 'टाइमलेस बिकम' (Timeless become) का प्रतीक है। पत्थर समय का जमा हुआ रूप हैं; और इस संसार का अन्त चूहे की मौत की तरह अटल है—और उतना ही महत्त्वहीन। वेदान्त में लिखा है कि—

"यह नदी हमारी ज़िंदगियों का सिम्बल है—" हरिशंकर ने अपने आप से कहा।

"मुझे नदियों से इश्क़ है। तुमको नदियों से इश्क़ है?" उसने मुड़ कर कमाल से अत्यधिक गम्भीरता से पूछा।

"हाँ।"

"मैं नदी के पानी में डूब कर मरूँगा।" गौतम ने दूसरा अनाउंसमेन्ट किया।

"गौतम ! तुम क्या पेटीबुर्जुआ रूमान-परस्त होते जा रहे हो?" उनके करीब आकर उकड़ूँ बैठते हुए तलअत ने चिंतित स्वर में पूछा।

"नहीं !" वह चौंक उठा—"यह समय का जादू है, तलअत आरा बेगम !" उसने उँगली हवा में लहरा कर जवाब दिया—"तुम समय की शक्ति नहीं जानतीं।"

पुल के पार बहुत दूर से नौबत बजने की आवाज़ आई। वे शाम के सन्नाटे में चुपचाप यह आवाज़ सुनते रहे।

"आओ, भूतों को ढूँढें।"

"आओ।"

वे चारों लॉन में वापस आए।

"चम्पा बेगम। भैया साहब। अप्पी।"—गौतम ने बड़ी शिष्टता से झुक कर उनको सम्बोधित किया—"आइए हम सब चल कर भूतों को ढूँढें।"

वे खामोशी से मोटर की तरफ़ बढ़े।

झुटपुटा वक़्त था। मोटर अब काठ के पुल पर से गुज़र रही थी।

"एक मोड़ होता है, जहाँ से इंसान कभी वापस नहीं आता।" आमिर रज़ा ने अपने आप से कहा।

कमाल ने मोटर रोक ली—"आइये ज़रा लहरों को गिनें।" वे पुल के ऊँचे जंगले पर झुक गए।

उनके नीचे नदी की लहरों पर से रंग-बिरंगे बजरों का एक जुलूस गुज़र रहा था। उनमें जो लोग बैठे थे, उन्होंने अजीब से कपड़े पहिन रखे थे—मुन्देलें, जवाहिरात, मालाएँ, आबेरवाँ के दुपट्टे, तुलवाँ पाजामे। जवाहिरात की चमक से नदी का पानी जगमगा उठा।

उन लोगों ने हाथ उठा-उठा कर इन लोगों को बुलाना शुरू किया। उनकी आवाज़ें इनकी समझ में न आईं। चिड़ियों की चहकार की तरह सुरीली, अस्पष्ट, सारंगी की चीख़-सी तेज़, डरावनी ! तट पर कुत्ते और गीदड़ चिल्ला रहे थे। श्मशान घाट की लकड़ियाँ चरचरा रही थीं। क़ब्रों के ताबूत के तख़्ते चीरे जा रहे थे।

"यहाँ से भागो। चलो, आगे चलें।" चम्पा ने कहा। उसे लगा जैसे उसकी अपनी आवाज़ गहरे पानी के बीच से आ रही है।

"इन आवाज़ों से भाग कर कहाँ जाओगी? यह आख़िरी आवाज़ें हैं।" गौतम ने जवाब दिया। लकड़ियाँ चरमराया की।

"मेरा सिर चकरा रहा है। मुझे भूतों से बचाओ।" आमिर रज़ा ने पुल के जंगले पर सिर रख दिया। चम्पा उसके पास खड़ी थी।

"ख़ूबसूरत आदमी अगर मैं तुम्हारे दिल को जान सकती।"

"तुम नहीं जानोगी। मुझे कोई नहीं जानेगा।" आमिर रज़ा ने जवाब दिया।

मोटर फिर एक धचके से स्टार्ट हुई। कमाल ने गाना शुरू कर दिया था। चाँद की रोशनी एकदम बहुत तेज़ हो गई। इसमें उन सबके चेहरे धुले हुए सफ़ेद नज़र आ रहे थे।

"पुल। हर तरफ़ पुल बना रखे हैं।" गौतम गुस्से से बड़बड़ाया।

वे सिकन्दरबाग़ की सड़क पर आ गए। पास से ही एक हाथी झूमता हुआ गुज़रा। उस पर शाहेअवध गाजीउद्दीन हैदर सवार थे। चम्पा ने उनकी शक्ल ग़ौर से देखी और वे बड़े मसख़रे नज़र आए।

"उनसे 'हाउ डू यू डू' ही कर लो कम से कम।"

"ये तो बड़े अंग्रेज़ मशहूर हैं। देखो, क्या विलायती बादशाहों वाला जोड़ा पहन रखा है।" कमाल ने कहा।

शाहेज़मन हौदे में सिर झुकाये बैठे रहे। मोटर फिर आगे निकल गई। सब चुपचाप थे। गौतम अपने पाइप को ठोंकता-बजाता रहा—"अगर मुझे कोई यह बता दे कि ये लोग क्या सोच रहे हैं तो मैं उसको ये बड़ा इनाम दूँ।" चम्पा ने फिर अपने आप से कहा—"घंटों मैंने उनसे दलीलें छाँटी पर मुझे कभी मालूम न हुआ कि ये लोग चाहते क्या हैं। गिरोह की संगत बेकार है। एकान्त असल हकीक़त है।"

कमाल ने सहसा कार रोक ली। सामने लामार्टिनेयर कॉलेज था।

"यहाँ उन्होंने मुझे क्या-क्या नहीं पढ़ाया।" कमाल और आमिर रज़ा और हरिशंकर ने उँगलियाँ उठा कर एक स्वर में कहा। "तुम इतना पढ़ते क्यों हो?" उन्होंने पलट कर गौतम

से प्रश्न किया।

"यह अजब बिगड़े दिल हैं। इनको समझाना बेकार है।" तलअत ने कहा। गौतम खामोश रहा।

वे सब उतर कर इमारत के निकट गए और खिड़कियों से अन्दर झाँकने लगे। अन्दर कमरे अँधेरे और सुनसान पड़े थे—सुबह को इनमें फिर पढ़ाई होगी। छतों पर बने हुए इटैलियन बार-रिलीफ के गुलाबी, हरे और नीले रंग हल्के अँधेरे में झिलमिला रहे थे। दीवार पर ज़ोफ़नी का बनाया हुआ जनरल-मार्टिन की हिन्दुस्तानी बेगम का चित्र लटका हुआ था। तलअत खिड़की के शीशे से नाक चिपकाए खड़ी रही। बाक़ी लोग सिर झुकाये झील की ओर चले गए।

"आओ, इधर आओ—मेरे पास।" तलअत ने मुड़ कर देखा। जनरल-मार्टिन की हिन्दुस्तानी बेगम झील के किनारे खड़ी थी। उसने इशारा करके उनको फिर बुलाया।

"मुझसे बातें करो।" उसने कहा—"मुझसे कोई बातें नहीं करता। दिन भर यहाँ इतना हंगामा रहता है। किताबें पढ़ी जाती हैं, लेक्चर होते हैं। मेरी तरफ़ कोई पलट कर देखता भी नहीं।" वह सूँ-सूँ करके रोने लगी। तलअत बड़ी घबराई कि इसको किस तरह चुप कराया जाए। "सुनो मेरी बात।" तलअत ने समझाने की कोशिश की—"तुम अनन्त के बिन्दु पर अपना ध्यान जमाया करो। समय के विभिन्न टुकड़े वास्तव में—"

"वादा करो कि कभी नहीं पढ़ोगे।" कमाल ऊँची आवाज़ में गौतम से कह रहा था।

"यहाँ से हमारा एक अंग्रेज़-प्रोफ़ेसर किताबें छोड़ कर हिमालय निकल भागा था। कौन जाने कि वह अब भी वहीं ज़िन्दा है, या उसे किसी शेर ने खा लिया या चिड़ियों ने उसकी दाढ़ी में घोंसले बना लिये हों, या वह किसी गुफ़ा में बैठा नारदमुनि का संगीत सुन रहा होगा।" हरिशंकर ने कहा।

"ओम्...ओम्।" यह आवाज़ अब सारे में गूँज उठी। वातावरण में कम्पन-सा भर उठा..."हरि। हरि।" वे झील को पीछे छोड़ कर लाल बजरी वाले मार्ग पर चलने लगे। चम्पा ने हाथ बढ़ा कर फूलों की एक डाली को छुआ। एक पत्ता टूट कर रास्ते पर आ गिरा।

"विष्णु, जो पत्ते के गिरने में छिपे हैं। हरि। हरि।" चम्पा ने दोहराया।

तहख़ाने में जनरल मार्टिन पड़ा सोता है। उसके ऊपर से दुनिया गुज़रती जा रही है।

लायब्रेरी की छत पर से एक अकेला चण्डूल उड़ता हुआ निकल गया। किताबों के शब्द जुलूस बना कर चारों ओर फैल गए—लैटिन, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ी, अर्थहीन शब्द। उनके अर्थ अगियाबैताल की तरह मुँह चिढ़ा रहे थे। बहुत से शब्द टैरेस पर रखी तोप पर चढ़ कर बैठ गए और अपनी पतली-पतली काली-काली टाँगें हिलाने लगे। तोप ने गरज कर सूचना दी—"मेरा नाम 'लॉर्ड कार्नवालिस' रखा गया था।—और मैं श्रीरंगापट्टम् में इस्तेमाल की गई थी।" टैरेस पर बैठे हुए पत्थर के शेर और ऊपर छत की मुंडेर पर रखी मूर्तियाँ और ज़ोर से अट्टहास करने लगीं। फिर तलअत किसी बात पर खिलखिला कर हँसी। "आओ, दिलकुशा चल कर पद्मिनी आचार्या के यहाँ काफ़ी पिएँ।" सोती हुई सुगंधित सड़कों पर से गुज़र कर वे दिलकुशा की तरफ़ बढ़े।

कुछ देर बाद कमाल जो रास्ते से ही कहीं ग़ायब हो गया था, उनसे आ मिला। वे सब दिलकुशा के फाटक में दाखिल हुए।

"तुम कहाँ चले गए थे?" गौतम ने गुस्से से पूछा।

"मैंने सुना था कि बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर के यहाँ बसन्त का त्यौहार बहुत धूम से मनाया जाता है। उसी को देखने चला गया था। फ़रहबख़्श में अजब दृश्य था। एक तरफ़ डॉक्टर मैक्लोड बैठे फ़ारसी में बातें कर रहे थे। कमरे के एक कोने में एक अंग्रेज़ तिपाई पर बैठा बैग-पाइप बजा रहा था। फिर रजबअली फ़ज़लअली क़व्वाल ने बसन्त का ख़याल छेड़ा। बरामदे में अंग्रेज़ी बैण्ड बज रहा था। फ़िर लंदन के बादशाह की सेहत का जाम पिया गया। बादशाह को इंजीनियरिंग की सनक है। दुनिया भर की अल्लम-ग़ल्लम मशीनें जमा कर रखी हैं। एक वह टॉमस डैनहम उनको फ़ण्टी चढ़ाता रहता है। लेकर एक स्टीमर गोमती में छोड़ दिया। राबर्टहोम आर्टिस्ट बैठा चित्र बना रहा था। बिशप हेबर भी मौजूद थे। मुझे देख कर छूटते ही धर्मोपदेश देने लगे। ज़ीने के सिरे पर खड़े बादशाह अंग्रेज़-मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। फिर वह सबको अपनी पिक्चर-गैलरी में ले गये। खाना मेज़ पर ख़ालिस अंग्रेज़ी फ़ैशन का पेश किया गया। दरबार में बड़ी अंग्रेज़ियत है, भई। मेरा तो दम बोल गया। फिर जब मैं फ़रहबख़्श से वापस आ रहा था तो राह में साहब-रेज़ीडेंट-बहादुर जोड़ीदार पगड़ी, सरपेच गोशवारे पहने एकदम हिन्दुस्तानी जामे में, झालरदार पालकी में बैठे चले जाते थे। मैंने पूछा--"कहाँ तशरीफ़ लिए जाते हैं?" कहा--"बादशाह का जुलूस है--कॉरोनेशन।" मैंने पूछा--"कौन से बादशाह का? एक के दरबार से तो मैं अभी आ रहा हूँ।" बोले- "वे तो मर गए। उनके बेटे नसीरुद्दीन हैदर अब तख़्त पर बैठे हैं।" अजब तमाशा है यार, हरिशंकर, ये बादशाह लोग मर भी जाते हैं।" वह ख़ामोश हो गया।

अब ये सब दिलकुशा के बागों में दाख़िल हो चुके थे। सारे में पूर्णमासी का उजाला सॉय-सॉय कर रहा था। दूर, वृक्षों में छिपी एक पीले रंग की कोठी थी, और उसमें अँधेरा पड़ा था। लॉन पर एक मोर सो रहा था। उन्होंने कोठी के बरामदे में जाकर पद्मिनी को आवाज़ दी। वह और उसका पति बाहर आए। "हल्लो"। उन्होंने मुस्करा कर कहा।

"कॉफ़ी बनाओ।" कमाल ने हुक्म चलाया।

कोठी के पीछे उन अंग्रेज़-फ़ौजियों की क़ब्रें थीं जो सन् सत्तावन में यहाँ खेत रहे। वहाँ झाड़ियों में घुस कर उन्होंने पच्चीसवीं मर्तबा उन पर लगी हुई शिलाओं को पढ़ा। लेफ़्टीनेन्ट पॉल, फ़ोर्थ पंजाब रायफ़ल्स--कैप्टेन मेकडॉनल्ड, 93 हाई लैंडर्ज़--लैफ़्टीनेन्ट चार्ल्स डैशवुड।

"हैलो। हाउ डू यू डू?" उन तीनों ने सामने आकर प्रसन्नता से हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाए।

"हैलो चार्ली !--लो पाइप पियो।" गौतम ने उनको तम्बाकू पेश किया।

फिर नवाब कुदसिया महल ने चमेली की झाड़ी में से निकल कर कहा--"अगर कोई मुझे दिल का चैन दिला दे तो मैं उसे अपनी पूरी सल्तनत बख़्श दूँ।"

"मैंने अक्सर सोचा कि तुमने ज़हर क्यों खाया था।" चम्पा ने नवाब कुदसिया महल से इस तरह बेतकल्लुफ़ी से बात की मानो वह भी कॉलेज की सहपाठिनी हो। लड़कियाँ सब एक-दूसरे को जानती हैं। चौबीस साल की ख़ूबसूरत मलिका-ए-अवध नज़ाकत से अपने पाँयचे समेट कर एक पत्थर पर बैठ गई। बाक़ी सब लोग टहलते हुए दिलकुशा महल के खंडहर की ओर चले गए।

"एक रोज़ यहाँ एक फ्रांसीसी अपना गुब्बारा उड़ाने लाया था। बड़ी भीड़ इकट्ठा हुई। मेरे ससुर शाहेज़मन भी तमाशा देखने आए थे। देखो, इतना मज़ा आया कि यह फ्रांसीसी गुब्बारे में बैठ कर उड़ा और शहर से बारह मील बाहर कबूतरों की चौकी पर जा उतरा।—तुम कभी गुब्बारे में उड़ी हो?" मलिका ने चम्पा से पूछा।

"नहीं। मगर तुमने ज़हर क्यों खाया था?" चम्पा आग्रह करती रही। साफ़ ज़ाहिर है कि मलिका टाल रही थी। वह अपनी आरसी को ग़ौर से देखा की।

"तुम तो बड़ी दानी मशहूर थीं—तुमसे ज़्यादा दान दाता और नेकदिल बेगम लखनऊ की गद्दी पर नहीं बैठी। लाखों रुपए तुमने ग़रीबों को बख़्श दिए। तुम मुझे बताओ कि इस सारे दान और मुहब्बत के बदले में दुनिया ने तुमको क्या दिया? अल्लाह, बताओ न भई !" चम्पा ने पूछा :

"जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।" मलिका बेध्यानी से गुनगुना रही थी। "यह मेरे बादशाह का मिसरा है।" उसने चम्पा को सम्बोधित किया, "तुमको शेर पसन्द हैं?"

बाग़ वसन्त के सारे फूलों की ख़ुशबू से महक रहा था, जैसे गंधियों ने इत्र की हज़ारों शीशियाँ उँडेल दी हों।

"बरखा ऋतु थी और तुम दिलकुशा-महल में मनोरंजन के लिए आईं और, चूँकि बादशाह तुमसे नाराज़ थे, तुमने संखिया ली और फॉक ली। ज़रा बताओ, तो इसका क्या मतलब है?—क्या मर्द इस लायक़ होते हैं कि उनके लिए इन्सान जान पर खेल जाए। उनकी तो इत्ती-सी भी परवाह नहीं करनी चाहिए, इत्ती-सी भी।" चम्पा ने उँगली पर उँगली रखकर बताया।

क़ुदसिया महल ने कोई जवाब न दिया।

"ए लो, वह राजा ग़ालिब जंग चले आते हैं। आज पूरनमासी है ना—बादशाह यहाँ मनोरंजन के लिए आते होंगे। मुझे देखेंगे तो फिर ख़फ़ा हो जाएँगे। मैं अब चल दूँ।"

"कहाँ जाती हो?" चम्पा ने घबरा कर पूछा।

"कहीं नहीं। हम सब यहीं मौजूद हैं। हम और तुम अलग-अलग कहाँ हैं। बल्कि अब तुम भी चली जाओ। तुम्हारे इस वक़्त के साथी तुम्हें बुलाते हैं।"

"चम्पा बाजी ! चम्पा बाजी !" रात के सन्नाटे में कमाल की आवाज़ सुनाई दी। वह पत्थर से उठ कर दिलकुशा-महल की तरफ़ चल पड़ी। खंडहर की सबसे ऊँची सीढ़ी पर कर्नल आचार्य बैठे गिटार बजा रहे थे। सब लोग आसपास बैठे थे।

"लड़कियो चलो, कॉफी तैयार है।" पद्मिनी ने पुकार कर कहा। अन्दर खंडहर के कमरों में बादशाह-ए-अवध नसीरुद्दीन हैदर के हरम की अंग्रेज़-बेगमें बड़े-बड़े झालरदार साए पहने कोहनियों के बल बैठी बड़ी तल्लीनता से गिटार सुन रही थीं। फिर उन बेगमों ने मिल कर पोलका नाच शुरू कर दिया। वे सब सीढ़ियाँ उतर कर पद्मिनी की कोठी की तरफ़ चले गए।

चम्पा फिर अकेली रह गई।

"माद्मोजेल, वूज़ेत तरीशारमा ! माद्मोज़ेल !!" उसने मुड़ कर देखा बादशाह नसीरुद्दीन हैदर का फ्रेन्च हज्जाम सामने खड़ा मुस्करा रहा था। बड़े शिवैलरस अन्दाज़ में उसने अपना झालरदार रूमाल निकाल कर पत्थर पर बिछाया और घुटनों के बल झुक कर उससे कहा—"तशरीफ़ रखिये।"

चम्पा टकटकी बाँधे सामने देखती रही।

"मादमोज़ेल। अपने सौंदर्य पर जी भर के नाज़ कर लीजिए। जी भर कर खुश रहिये। ग़म बेकार है। आइए, मैं आपको मरी हुई औरतों का गीत सुनाता हूँ।" उसने एक झंकार के साथ गिटार बजाना शुरू कर दिया। यह गिटार कर्नल आचार्य वहीं भूल गए थे। "मरी हुई औरतों का बैलेड :

मुझे बताओ कि लेडी फ्लोरा और हाई पेशया खूबसूरत
और ताइस कहाँ छुप गई?
जोन कहाँ गई, जिसे अंग्रेज़ों ने जलाया था !
ओ माँ मरियम !
इन सबका क्या हुआ ?
लेकिन—पिछले वर्षों की बर्फ़ किसने देखी है?

मादमोज़ेल ! याद रखिए खूबसूरत औरतें दो बार मरती हैं।—अपने सौंदर्य पर नाज़ कीजिए। दौलत और शोहरत और इज़्ज़त पर गर्व कीजिए। वक़्त बहुत कम है—बहुत जल्दी यह सब आपके पास से चला जाएगा। मेरी सुनिए—मैं पेरिस का हज्जाम—मैंने बादशाह की ऐसी हजामत बनाई कि पूरे चौबीस लाख रुपये से अपना घर भर लिया। सारे लखनऊ पर मेरी हुकूमत थी। बादशाह मेरे अधीन थे। मुल्क का असली हाकिम मैं था। अब किसी को मेरा नाम भी याद नहीं।" उसने अपने साटन के जूतों को उदासी से देखा। उसके खूबसूरत चेहरे से पाऊडर की खुशबू आ रही थी।

चम्पा सीढ़ियाँ उतरने लगी। "यह गिटार लेती जाइए। अब मैं जाकर कहीं और मँडलाऊँगा। इज़ाज़त दीजिए, मादमोज़ेल।"—उसने झुक कर बड़े स्टाइल से कहा।

पद्मिनी के लॉन पर बैठ कर कॉफी पीने के बाद वे मोटर की तरफ़ बढ़े। दूर खंडहर पर चमगादड़ें अपने पर फैला रहीं थीं। ज़रा फ़ासले पर गोमती बह रही थी। नदी किनारे ही मरघट था। मीलों फैले हुए बाग़ के चारों तरफ़ छावनी की कोठियाँ थीं। ज़रा दूर पर दिलकुशा-क्लब में नाच हो रहा था। "आओ छतरमंज़िल चल कर नाचें।" कमाल ने प्रस्ताव रखा।

"आज तुम लोग क्या रतजगा मनाने निकले हो?" पद्मिनी ने हँस कर कहा।

"हाँ ऐसी खूबसूरत रात को सोकर बर्बाद किया जाए?" हरिशंकर ने जवाब दिया। "तुम भी चलो।"

वे फाटक से निकल कर कासल्ज़ रोड पर आ गए। किंग ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की नहर पर से गुज़रते वे हज़रतगंज में दाख़िल हुए। फिर क़ैसरबाग़ की तरफ़ मुड़ गए।

सामने चाँदी वाली बारादरी रोशनी से झक्-झक् कर रही थी।

"अरे आज तो यहाँ बसन्त का मेला है।" तलअत ने खुश होकर कहा।

"आज मालूम होता है—सुलतान-ए-आलम ऑपेरा भी कर रहे हैं।" निर्मला ने कहा—"चलें अन्दर?"

"कैसे चलें, हमें निमंत्रण तो मिला नहीं?" कमाल ने दुविधा के साथ कहा।

"चले चलो, चोबदारों के पीछे छिप कर खड़े हो जाएँ।" शंकर ने जवाब दिया।

वे चुपके से इमारत में दाख़िल हो गए। अन्दर बारादरी का चाँदी का फ़र्श झक्-झक् कर रहा था। स्टेज पर राजा इन्द्र के दरबार के खम्भों पर चाँदी चढ़ी हुई थी। हर तरफ़ आईने झिलमिला रहे थे। 'पुखराज परी' गा रही थी—

रुत आई बसन्त बहार, खिले जर्द फूल बिरवन के हार,
हर के दुआर माली का छोरा, गरवा डारत गेंदन के हार।

वे सब पंजों के बल चलते स्टेज के पीछे आ खड़े हुए। तलअत ने चुपके-चुपके साथ-साथ गुनगुनाना शुरू कर दिया—

फिर धुन बदली। अब 'पुखराज परी' ने अपनी ग़ज़ल शुरू की—

है जल्वा-ए-तन से दर-ओ-दीवार बसन्ती,
पोशाक जो पहने है मेरा यार बसन्ती।
क्या फ़स्ल-ए-बहारी ने शगूफ़े हैं खिलाए,
माशूक़ हैं फिरते सर-ए-बाज़ार बसन्ती।

हॉल में वाह-वाह के डोंगरे बरसने लगे। ये सब चुपके से उधर से निकल कर एक दरवाज़े में आ गए। सामने अली नक़ी प्रधान मंत्री बैठे थे। उन्होंने इन सबको देखा नहीं।

'पुखराज परी' गाए जा रही थी—

मोती कानों में नहीं यार की ज़ुल्फ़ों के क़रीं
झाले भादों के वो हैं, और यह घटा सावन की।

ऑपेरा होता रहा। ये लोग भीड़ में रिलमिल कर इधर-उधर घूमते रहे। इन सबको रोशनदान में झाँकता देख कर सिंगार-कमरे में खड़ी स्टेज पर जाने की तैयारी करती 'सब्ज परी' ने घबरा कर 'काले देव' से कहा—"इधर नज़र डालो—आने वाले समय के भूत हमें घूर रहे हैं।"

'काला देव' ज़ोर से हँसा—"क्या कुछ वाही हुई है। कैसे भूत? मैं अब पर्दे के बाहर जाता हूँ।"

कमाल ने एक चोबदार से पूछा—"सब्ज़ परी कौन है?"

"अरे, उसको नहीं जानते, ख़ुदावन्द?—चम्पा बाई—शाहेज़मन ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के ज़माने से उनकी कमान चढ़ी हुई है। चालीस के पेटे में आ गईं, मगर वही आनबान, वही शान है। क्या क़यामत की छवि है कि सल्लेअल्लाह !—उनसे बेहतर सब्ज़ परी का स्वाँग और कोई नहीं भर सकता। अल्लाह ने गले में नूर उतार दिया है। क्या गाती हैं ! क्या आप लखनऊ में नहीं रहते?"

कमाल जल्दी से वहाँ से हट गया।

इतने में 'काले देव' की गरजदार आवाज़ आई :

लाया शाहजादे को मैं जाकर हिन्दुस्तान,
तू अपने माशूक़ को सब्ज़परी पहचान।
तू अपने माशूक़ को...

अब 'शाहज़ादा गुल्फ़ाम' स्टेज पर आ चुका था। उसने लहक कर गाया—

महलों में रहता हूँ मैं, ऐश है मेरा काम,
शाहज़ादा हूँ हिन्द का, नाम मेरा गुल्फ़ाम।

फिर उसने बड़ी दिलदोज़ आवाज़ में कहा–

सुबह होती है, मिरी जान, कोई आन के बीच,
भैरवी मुझको सुना चलके परिस्तान के बीच।

वे लोग बारादरी से बाहर आ गए। अन्दर से शाहज़ादे की आवाज़ आती रही–

उड़के तू जाएगी इक पल में परिस्तान के बीच,
हाथ फैला के मैं रह जाऊँगा अरमान के बीच।

बाहर जलपरियों का फाटक, चीनी बाग़, जुलूख़ाना, सब जगहें रोशनी से झिलमिला रही थीं। कुंज में श्रीकृष्ण का रास हो रहा था। जान-ए-आलम गेरुआ कपड़े पहने, धूनी रमाए एक पेड़ के नीचे बैठे थे। मेले वाले, शहर के निवासी, सब गेरुआ जोड़े पहने थे। दुर्गा प्रसाद मौलसिरी की छाया में फूल की थाली के किनारे पर कत्थक नाच-नाच कर भाव बता रहा था। फ़व्वारों से सुगंधित पानी उबल रहा था। बाग़ की बैठकें सुनहरे और रुपहले रंग की पॉलिश से चमक रही थीं। हर तरफ़ फूल ही फूल थे।

बारादरी से 'जोगन' की भैरवी की तानें उठ रही थीं–

तारकशी दुपट्टा तू ओढ़े किरन जो टाँक के,
हो शब-ए-माहताब में क्या ही सनम झलाझली।
आई बहार, साक़िया, जाम-ए-शराब दे पिला,
फूल खिले, फले शजर, अब्र उठा, हवा चली।
बहके ज़मीन-ए-शेर में पाँव, 'अमानत', अपना क्या,
जब हुई लग़ज़िश इक ज़रा निकला ज़बाँ से या अली !

'जोगन' की आवाज़ धीरे-धीरे चाँदनी में डूबती गई। ये लोग मेले वालों की भीड़ से निकल कर फिर सड़क पर आ गए। मोटर में बैठ कर नवाब सआदत अली ख़ाँ के मक़बरे से आगे निकले। उधर ही रोशनउद्दौला की लाल रंग की इमारत थी। सड़क के उस पार छतरमंज़िल के महल अर्ध अँधेरे में खड़े थे। अन्दर से वाल्ट्ज़ की आवाज़ें आ रही थीं। मोटरों की क़तारें खड़ी थीं। फाटक के अन्दर जाकर उन्होंने कार रोकी। लखनऊ का उच्च फ़ैशनेबल वर्ग 'सैचरडे-नाइट' मना रहा था।

"आज शायद गवर्नर भी आया हुआ है–अभी एक ए. डी. सी. को मैंने अन्दर जाते देखा।" हरिशंकर ने अपना विचार प्रकट किया।

"कौन वाला ए. डी. सी.। वही सिसी जो इतालवी जगलू जगलू मालूम होता है।" तलअत ने बे-ध्यानी से पूछा।

"बको मत–तुम हर एक पर आपत्ति करने को तैयार–सिसी है तो हुआ करे, तुम से मतलब?" कमाल ने डाँटा।

वे अन्दर जाकर लाउंज में बैठ गए। आमिर रज़ा ने शरबतों का ऑर्डर दिया। मिस ईडन ने लिखा था–"अलिफ़ लैला की ज़ुबैदा ने अपना निशातबाग़ ख़लीफ़ा की चित्रशाला से हारने की शर्त बदी थी। वह निशातबाग़, मुझे विश्वास है, यही रहा होगा–।" कमाल उकताहट के साथ स्तम्भों के नारंगी चित्र देखता रहा।

फ़्लोर पर मशहूर नाम तैर रहे थे जो "ऑन लुकर" में छपते थे और गर्मियों में मसूरी,

नैनीताल, शिमले और दार्जिलिंग में जगमगाते थे।

"इनका भी एक ज़माना है" गौतम ने आहिस्ता से कहा।

बाहर सीढ़ियों के नीचे गोमती धीमी गति से बह रही थी। वे सब उठ कर बाहर आ गए। टैरेस सुनसान था। सीढ़ियों पर नसीरुद्दीन हैदर बादशाह नंगे पाँव बैठे थे। उन्होंने अपना एक जूता लहरों में फेंक दिया था। जब वह ज़रा बहता हुआ दूर निकल जाता, तो ये ताली बजाते, ताकि चोबदार आए। जब कोई चोबदार न आता और केवल बॉलरूम के क़हक़हों की आवाज़ सुनाई देती रहती तो ख़ुद उठ कर पानी पर झुकते और जूता निकाल लेते। थोड़ी देर बाद दूसरा जूता पानी में फेंक देते। इसी तरह वे बैठे अपना दिल बहला रहे थे। देर तक यही तमाशा होता रहा। आख़िर गौतम ने आगे बढ़ कर उनको भी सिगरेट पेश की।

"नहीं- हम मुश्कबू गुड़गुड़ी पीते हैं। कोई है?"

"माफ़ कीजिएगा—हम लोग हैं।" गौतम ने घबरा कर कहा।

"तुम लोग कौन?" उन्होंने बेदिमाग़ होकर पूछा।

"बस हम ही लोग।"

वे ख़ामोश हो गए।

"इनको यहीं छोड़ दो--क्या करेंगे हम इनका--आओ चलो यहाँ से।" कमाल ने चुपके से गौतम से कहा।

नसीरुद्दीन हैदर बादशाह को पानी के किनारे अकेला अपने जूतों से खेलता छोड़ कर वे फिर सड़क पर आए और पुराने शहर की तरफ़ चल खड़े हुए। यहाँ कहारिनें, पालकीबरदार और महरियाँ और इक्के वाले घूम रहे थे--सब्ज़ीफ़रोश, बिसाती, कुम्हार, शहर की असली आबादी, असल अहलज़बान (विशुद्ध भाषा बोलने वाले)। वे मेडिकल कॉलेज के सामने से गुज़रे। जिसके अन्दर इन्सान मर रहे थे और पैदा हो रहे थे। इसके आगे गुंजान और रहस्यपूर्ण शहर था। हवेलियाँ, फाटक, अहाते, छत्ते, पेच-दर-पेच तंग अँधेरी गलियाँ, जिनके अन्दर एक दुनिया आबाद थी--आसिफ़उद्दौला का चौक, नख़ास, अकबरी दरवाज़ा, सब्ज़ी मण्डी, हुसैनाबाद, गोल दरवाज़ा, विक्टोरिया पार्क, बड़ा इमामबाड़ा, मच्छीभवन, रूमी दरवाज़ा। आसिफ़उद्दौला का लखनऊ, लखनऊ का दिल, सड़कें और गलियाँ अब सुनसान पड़ी थीं। एकाएक बारिश आई और चंद मिनट बरस कर खुल गई। आकाश पर इन्द्र के ऐरावत हाथी की तरह एक बादल झूमता हुआ निकल गया। सामने एक बालाख़ाने पर रोशनी हो रही थी।

"मेरा हमेशा जी चाहा है कि ऊपर जाकर 'कमरा' देखूँ।" तलअत ने कहा।

"अरे यह तो तनवीर का मकान है जो रेडियो स्टेशन आती है।" निर्मला ने कहा—"नीचे उसकी स्टूडी बेकर खड़ी थी—उसके पास चलें। बड़ी प्यारी लड़की है। बेचारी पूँजीवादी व्यवस्था की शिकार। चलो उसके पास चलें।" तलअत आग्रह करती रही।

"बको मत" चम्पा ने डाँटा।

"अरे बजिया आपको तो इस वर्ग को सोश्योलोजिकल दृष्टिकोण से—"

"बहस मत करो। ख़ामोश रहना सीखो।" गौतम और कमाल मोटर से बाहर उतरे खड़े थे और रात की ताज़ा हवा नाक से ले रहे थे।

दुकानों के बरामदों में से एक बूढ़ा कायस्थ जामदानी का अँगरखा पहने लकड़ी टेकता

गुज़रा। इन नौजवान लड़कों को एक बालाख़ाने के नीचे मोटर रोके खड़ा देख कर उसने 'लाहौल विलाकूवत' कहा और आगे बढ़ गया। फिर वे लोहे के पुल पर से गुज़रते, डालीगंज होते, फ़ैज़ाबाद रोड पहुँचे। सामने चाँद बाग़ था। दूसरी तरफ़ बादशाह बाग़।

"आओ, प्रोफ़ेसर बैनर्जी के पास चलें।" उन्होंने नारा लगाया।

वे बादशाह बाग़ के शाही फाटक में दाख़िल हुए। फाटक कैलाश होस्टल के पहलू में खुलता था। बाग़ यहाँ भी ख़ुशबू से गमक रहे थे। नहर के सिरे पर लाल बारहदरी चाँदनी में नहाई खड़ी थी। टैगोर-लायब्रेरी की इमारत शान्त और गम्भीर नज़र आ रही थी। "शब्दों में बड़ी ताक़त है"–इमारत ने कहा–"मेरे अन्दर आओ, मैं तुम्हारे दुःख भुला दूँगी।"

"शब्द दुःख भुलाते नहीं, दुःख को और गहरा करते हैं।" गौतम ने जवाब दिया।

"ख़ामोशी सबसे अच्छी चीज़ है, इसीलिए लोग मुनि हो जाते हैं। मौन रहते हैं।" हरिशंकर ने कहा।

"ख़ामोशी की ज़बान जितनी तकलीफ़ देती है उसका तुमको क्या अन्दाज़? सन्नाटा मार डालता है।" कमाल ने हरिशंकर से कहा।

वे नहर के पुल पर जाकर बैठ गए। यूनिवर्सिटी की इमारतों पर चाँदनी बरसा की। नसीरुद्दीन हैदर का बादशाह बाग़–

बेचारे नसीरुद्दीन हैदर !

फिर उन्होंने प्रोफ़ेसरों की कोठियों की ओर चलना शुरू किया। दूर पेड़ों में छिपे हुए अपने लॉन पर प्रोफ़ेसर बैनर्जी ख़ामोशी से टहल रहे थे।

"ये लोग इतनी सारी समस्याओं का हल जाने किस तरह सोच लेते हैं।" कमाल ने मुँह लटका कर कहा। शुभ रात्रि प्रोफ़ेसर ! उन्होंने सड़क पर खड़े होकर आहिस्ता से कहा और वापस आ गए।

यूनिवर्सिटी का सारा फ़ासला तय कर क्वाडरेंगल से गुज़रते वे उस सड़क पर पहुँच गए जो यूनिवर्सिटी रोड के बराबर से चलती हुई मोतीमहल-ब्रिज पर जा निकलती थी, इसके सिरे पर रजिस्ट्रार का आफ़िस था। सामने कबूतर वाली कोठी थी जिसमें वाइस चांसलर रहता था। ब्रिज पर आकर उन्होंने एक बार चारों ओर नज़र डाली। फिर वे उस कच्चे रास्ते पर उतर गए, जो सिंघाड़े वाली कोठी की तरफ़ जाता था।

आधी रात का गजर बजा। गौतम ने एक आँख खोल कर नदी के बहते पानी को देखा। वह सिंघाड़े वाली कोठी की सीढ़ियों पर बरामदे के खम्भे से टेक लगाए बैठा था। चम्पा, तलअत, निर्मला और तहमीना दूसरी सीढ़ी पर बैठी थीं। कमाल और हरिशंकर और आमिर रज़ा पानी में टाँगें लटकाए हुए थे। नदी बह रही थी। नदी के सामने दूसरे किनारे पर नजफ़ अशरफ़, मोतीमहल और छतरमंज़िल मौन खड़े थे। नाव सामने से गुज़र गई।

समय का जादू टूट चुका था।

"सुबह होती है मेरी जान कोई आन के बीच।
भैरवी मुझको सुना चलके परिस्तान के बीच।"

गौतम ने आहिस्ता से दुहराया।

"ओफ़्फ़ोह, गौतम भाई। तुम तो 'इन्दर सभा' के शेरों पर उतर आए। किस कदर डिकेडेण्ट

हो !" तलअत कह रही थी।

वह अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ।

"चलो यार, अब महफ़िल बरख़ास्त की जाए। सारी रात यहीं बैठे-बैठे गुजार दी।" कमाल की आवाज़ आई।

वे सब तितर-बितर होकर अपनी-अपनी नींदों की तरफ़ रवाना हो गये।

मैं शान्ता का पत्र भी पूरा न कर सका—गौतम ने अपने निवास-स्थान की ओर जाते हुए उदासी से सोचा।

51

प्रोफ़ेसर बैनर्जी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अर्थशास्त्र के विद्वान् थे। उनकी कोठी पर भी बड़ी उदासी छाई रहती और पूर्ण शांति। उनका घर सचमुच ज्ञान का केन्द्र था—शान्त, सुन्दर और ख़ामोश। इतवार के रोज़ तीसरे पहर को अक्सर लड़के और लड़कियाँ साइकिलें लिए उनके घर पहुँचते। प्रोफ़ेसर उनको सेमल के पेड़ के नीचे कुर्सी बिछाए बैठे नज़र आते, या अन्दर चाय की मेज़ पर बैठे होते। और खाने के कमरे के ठंडे अँधेरे में साइड बोर्ड पर रखे चाँदी के बर्तन झिलमिलाया करते। उस समय वे अपने शिष्यों से बड़ी उदास आवाज़ में बातें करते। प्रोफ़ेसर के यहाँ की बैठकों में गौतम नीलाम्बर विशेष महत्त्व प्राप्त कर चुका था। उसके बिना अब महफ़िल पूरी न समझी जाती। जाड़ों में लॉन पर धूप में, और गर्मियों में पेड़ों के नीचे बैठ कर घंटों बातें होतीं। धर्म, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, कला, साहित्य—जिज्ञासु मन की दुनिया बहुत विस्तृत थी। बड़ी आकर्षक, बड़ी तकलीफ़ देने वाली और ख़तरों से भरी।

"प्रोफ़ेसर !" एक दिन चम्पा ने पूछा—"मन और भावनाओं की कशमकश से किस तरह मुक्ति मिलेगी? चारों ओर ये साए फैले हैं। जिस तरह जंगल में झक्कड़ चलता है तो पेड़ों के साए आपस में गुत्थमगुत्था हो जाते हैं, वैसे ही यह कशमकश भी हर सतह पर जारी है। क़ौमें, राष्ट्र, हुकूमतें, इंसान, सम्प्रदाय—हर तरफ़ ये सब एक-दूसरे से उलझे हुए हैं। मेरे आसपास चारों खूँट भय की अमलदारी है, और बेइत्मीनानी, नफ़रत, खिंचाव, डर और वफ़ादारियों की कशमकश। अँधेरे जंगल में छिपे हुए अगियाबैताल अपने चिराग़ दिखाते हैं; और जब उनकी ओर दौड़ो तो पलक झपकते में गायब ! मुझे अपने मन और बुद्धि के अन्दर बड़े गहरे संघर्ष का सामना करना पड़ रहा है।

जब मैं बनारस में पढ़ती थी, मैंने 'दो क़ौमों' के दृष्टिकोण पर कभी नहीं सोचा। काशी की गलियाँ और शिवालय और घाट मेरे भी इतने ही थे जितने मेरी सखी लीला भार्गव के। फिर यह क्या हुआ कि अब मैं बड़ी हुई तो मुझे पता चला कि इन शिवालयों पर मेरा कोई हक़ नहीं, क्योंकि मैं माथे पर बिन्दी नहीं लगाती और तपलेश्वर की आरती उतारने के बजाय मेरी माँ नमाज़ पढ़ती हैं। बस, इसीलिए मेरी तहज़ीब दूसरी है, मेरी वफ़ादारियाँ दूसरी हैं। मैंने बसन्त-कॉलेज में तिरंगे के नीचे खड़े होकर "जन गन मन" गाया है। लेकिन मुझे वहाँ पर अक्सर ऐसा महसूस हुआ है कि मुझे इस तिरंगे के साये में अजनबी समझा जाता है। मैं तो इसी देश की वासी हूँ, अपने लिए दूसरा देश कहाँ से लाऊँ। हिज़रत (प्रवास) का फ़लसफ़ा

मेरी समझ में कभी नहीं आया। यहूदियों को देखो कि उनका कोई वतन नहीं है। वफ़ादारियों की कशमकश का सामना करते उनको हज़ारों साल बीत गए। वे जर्मन हों, तब भी यहूदी हैं; और अमरीकन हों, तब भी यहूदी। जब यूरोप में जंग छिड़ी तो एक नया मसला मेरे सामने आया। हमलावर क़ौमें एक देश के रहने वालों को निकाल बाहर करती हैं और वे लोग राजनैतिक शरणार्थी बन जाते हैं। और फिर दुनिया भर में भटकते फिरते हैं। उन पर तरस खाया जाता है। चन्दे जमा होते हैं। उनको तुच्छ समझा जाता है, क्योंकि उनका कोई घर नहीं होता। इनमें भी दो प्रकार के शरणार्थी रहे हैं। एक वे, जिन्होंने अपनी मर्ज़ी से वतन छोड़ा—दूसरे वे, जिनको मज़बूरन निकलना पड़ा। तब मुस्लिम-राजनीति में एक नई आवाज़ सुनाई दी। मैंने देखा कि मेरे साथ के मुसलमान बड़ी ख़ुशी के साथ अपना वतन छोड़ने के लिए तैयार हैं और एक नया मुल्क बसाना चाह रहे हैं। मुझे अक्सर यह विचार बहुत अच्छा लगा, क्योंकि आइडियलिज़्म इंसान की प्रकृति में दाख़िल है और अगर ऐसा न होता तो दुनिया में किसी नए विचार पर अमल न किया जाता, नए सपने न देखे जाते। मगर इस नए सपने की दूसरों के सपने से टक्कर हो गई। कशमकश और टक्कर का मुझे फिर सामना करना पड़ा।

अमन और जंग का मसला बहुत कठिन है। मैंने तॉलस्तॉय पढ़ा और गांधी और वुडरो विल्सन। लेकिन अमन के क्या मानी हैं? वफ़ादारियों के मानी तय करने वाला कौन है ? राजनीति में महात्मा गांधी के अध्यात्म का कहाँ तक दख़ल होना चाहिए और क़ायदे-आज़म जिन्ना के इस्लाम का कहाँ तक? मुझे मालूम है कि फ़िरकापरस्ती घातक है। एक बार हम बिछुड़े तो कभी न मिल सकेंगे। मगर मेरे कुछ साथी कहते हैं कि हम कभी एक न थे। यह सब कांग्रेस का फ्राड है। वह मुसलमानों को गुलाम बनाना चाहती है।"

"तुमने कभी सोचा है..." प्रोफ़ेसर ने ऊपर पेड़ की डाल पर बैठी हुई एक गौरैया को देखते हुए धीमी आवाज़ में कहा—"कि अंग्रेज़ों से पहले इस देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे नहीं होते थे—युद्ध होते थे? और यह शुद्ध राजनैतिक होते थे। हिन्दू राजाओं की फ़ौज में मुसलमान जनरल और सिपाही होते थे। मुसलमानों की तरफ़ से हिन्दू लड़ते थे। ये राजनैतिक गुटबन्दियाँ थीं। फिर अंग्रेज़ों ने दुनिया पर अपनी यह नई खोज प्रकट की कि इस मुल्क में हज़ारों ज़बानें बोली जाती हैं, हज़ारों क़ौमें बसती हैं। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे से घृणा करते हैं। यह मुल्क एक मुल्क नहीं है। यह केवल भूगोल में ही एक है। उनकी लिखी इतिहास की किताबों के द्वारा घृणा का बीज बोया गया। मिसाल के लिए, एक कर्नल टॉड का 'राजस्थान का इतिहास' ही देख लो, या उन्नीसवीं सदी के ईसाई मिशनरियों के सफ़रनामे देखो। लेकिन, तुमको सन् '57 याद है जब इसी लखनऊ में हिन्दू अमीर-उमरा और प्रजा ने बिरजीस क़दर की हुकूमत को—जो बहरहाल मुसलमान हुकूमत थी बचाने के लिए अपनी जानें लड़ा दीं ! मगर हमारा आज का धार्मिक और मज़हबी पागलपन...!"

"मज़हब आपके ख़याल में बेकार है? आप तो खुद बड़े पक्के वैष्णव हैं।"

"वैष्णव धर्म, भक्ति का धर्म है। उसकी बुनियाद विशुद्ध प्रेम है।"

"प्रोफ़ेसर, हर धर्म की बुनियाद विशुद्ध प्रेम है, यह तो कोई बात न हुई।"

"हाँ लेकिन असल चीज़ यह है कि मैं दूसरे धर्म को तुच्छ न समझूँ।"

"अब हरेक तो आपकी तरह सूफ़ी हो नहीं सकता।"

"तुम बड़ी कटु बातें करने लगी हो। ऐसा न करो।"

"प्रोफ़ेसर यहाँ चारों तरफ़ कटुता है और नफ़रत है। मैं क्या कर सकती हूँ? कल रात मैं वहाबी आंदोलन के बारे में पढ़ रही थी। उसमें जो लोग शामिल थे उनको मज़हबी दीवाने कहा जाता था। मगर अपने दृष्टिकोण से वे लोग ठीक रास्ते पर थे। वे इस्लाम का नवीनीकरण करना चाहते थे। उनके निकट दुनिया दो भागों में बँटी हुई थी। कुफ़्र (अकृतज्ञता) और इस्लाम में। उन्होंने कुफ़्र के विरुद्ध जेहाद किया। आख़िर कौन यह बताने जाएगा कि दूसरा इंसान सच्चाई के रास्ते पर है या नहीं। सब अपने दृष्टिकोण से सच्चाई के रास्ते पर होते हैं। यही तो सबसे बड़ी मुसीबत है। प्रोफ़ेसर, कल रात हम लोग निर्मला के यहाँ रात गए तक बैठे रहे थे। वहाँ हम अतीत के बारे में सोच रहे थे और समय के गोरखधन्धे पर। घर वापस आकर मैं देर तक जगा की। यहाँ तक कि सवेरा हो गया। उस वक़्त मैं सोच रही थी, हमारा और इतिहास का आख़िर आपस में क्या रिश्ता है, और क्या होना चाहिए। हम लगातार जुर्म और सज़ा के मसले का सामना करते रहते हैं। अतीत का प्रायश्चित्त हमको करना पड़ता है। मेरी क़ौम ने जो जुर्म किए हैं या कर रही है, व्यक्ति की हैसियत से मुझे इसकी सज़ा भुगतनी होगी। और एक व्यक्ति के तौर पर मैं जो जुर्म करूँगी उसकी सजा मेरी क़ौम को भुगतनी पड़ेगी क्योंकि ख़याल में बड़ी ताकत है और मैं प्रोपेगंडे की मशीनरी से अपने विचारों का प्रचार करके बहुत कुछ कर सकती हूँ। जो कुछ आज इस क्षण तक हुआ, उसका असर मुझ पर पड़ा है। जो कुछ मैं सोच रही हूँ उसका प्रायश्चित्त आने वाली पीढ़ियाँ करेंगी। मेरी वजह से यह दुनिया तबाह होगी या सुखी और ख़ुशहाल? इतिहास में घृणा और धार्मिक कट्टरता के मसलों पर मैं जितना ग़ौर करती हूँ उतनी ही मुझे वहशत होती है। मुझे आप से जाती तौर पर नफ़रत नहीं, मगर कम्यूनिटी का स्टोरियोटाइप मुझे आपसे नफ़रत करवा रहा है। सोश्योलोजी की विद्यार्थी की हैसियत से मैंने स्टोरियोटाइप की घृणा और धार्मिक कट्टरता के रवैयों का अच्छी तरह विश्लेषण करने की कोशिश की है। मैं इतिहास की बात कर रही थी। प्रोफ़ेसर, कल मैंने निर्मला के घर से लौट कर किताबों की अल्मारी खोली, और एक पुरानी किताब मेरे हाथ में आ गई, जिसमें उन्नीसवीं सदी के वहाबी मौलवियों के जेहाद (धर्मयुद्ध) का ज़िक्र था। उसमें एक नज़्म भी दर्ज थी। फ़ैजाबाद का माज़रा है जो अयोध्या कहलाता है। लिखा है : मुग़ल बादशाहों और उनके सूबेदारों ने रामघाट और दूसरी जगहों पर मस्जिदें बनाईं। जब मंदिर गिरे तब भी एक हिन्दू योगी इमली के पेड़ के नीचे झंडी गाड़े बैठा रहा। वाजिदअली शाह के शासनकाल में हिन्दुओं ने फिर उस जगह पर ठाकुरद्वारा बनाने की कोशिश की। बड़ा फ़साद रहा, फ़ौज ने चढ़ाई की। फिरंगी महल के अलामा लोगों ने जेहाद का फ़तवा दे दिया। मुजाहिदों के लश्कर पहुँचे। बड़ा ख़ून-ख़राबा हुआ। मौलवियों ने फ़ौज की चढ़ाई से पहले सुलतान-ए-आलम को प्रार्थना पत्र भेजा जो कविता की सूरत में था, मैंने वह कविता नकल कर ली थी। आप को सुनाती हूँ—"

उसने बैग खोल कर एक कागज़ निकाला और घास पर आलती-पालती मार कर बैठे प्रोफ़ेसर को सुनाना शुरू किया—

मुजाहिदों की प्रार्थना बादशाह अवध की सेवा में

करीब दैर-ए-महावीर वाजिबुल ताज़ीर

बना थी मस्जिद-ए-इस्लाम हम चू बद्र-ए-मुनीर
लगे बनाने बढ़ाकर यह काफ़िर-ए-मक़हूर
सवाद-ए-मस्जिद-ए-अक़दस में खाना-ए-लंगूर
उमीद है कि शहंशाह किब्ला-ए-आलम
अबुमुज़फ़्फ़र ओ-मंसूर ओ ख़ुस्रो-ए-आज़म
शहपर-ए-रिफ़अत ओ क़ुदसी सफ़ात, वालाजाह
खिदेव-ए-किशवर-ए-हिंदुस्तं फ़लक दरगाह
ज़बान-ए-फ़ैज-ए-मुबारक से यूँ करें इरशाद
कि काफ़िरान अवध पर शताब हुए जिहाद
रवा न होगा शम्बे को लश्कर-ए-इस्लाम
बराए ग़ारत ओ ताराज शहर-ए-लछमन-ओ राम

यह मज़हब की कट्टरता है अपने विशुद्ध स्वरूप में यद्यपि यह एक अलग बात है कि सुलतान-ए-आलम वाज़िदअली शाह ने बजाय इसके कि प्रार्थना पत्र पर कान धरते उन्होंने मुजाहिदों का सिर कुचलने के लिए फ़ौज फ़ैज़ाबाद भेजी और मुजाहिदीन लड़ते हुए सरकारी सिपाहियों के हाथों मारे गए और अयोध्या में अमन क़ायम हुआ। यह वाक़या अवध राज के ख़त्म होने से सिर्फ़ एक साल पहले सन् 1855 ई. का है। यह भी एक अलग बात है कि सुलतान-ए-आलम को अंग्रेज़ों ने इस 'जुर्म' पर तख़्त से उतारा कि वे राज का इन्तज़ाम अच्छी तरह नहीं करते थे।

"प्रोफ़ेसर यह बताओ मैं किस-किस से नफ़रत करूँ? अंग्रेज़ों से जिन्होंने मेरे बेकसूर बादशाह को अपदस्थ किया था या उस कलमा पढ़ने वाले बादशाह से नफ़रत करूँ जो हिन्दू देवमाला का आशिक़ था। कृष्ण और राजा इन्द्र का स्वाँग भरता था और मुसलमान मुजाहिदों (धर्म के लिए लड़ने वाले) को कत्ल करवाता था। उन मुजाहिदों से घृणा करूँ जो लक्ष्मण और राम के शांतिपूर्ण सुंदर शहर को तबाह करते जा रहे थे। या उन हिंदू योगियों को अपराधी ठहराऊँ जो रामघाट पर दुबारा हनुमान का मंदिर बनाना चाह रहे थे। मैं किसको ठीक रास्ते पर चलने वाला ठहराऊँ?"

अब कमाल करीब आकर घास पर बैठ गया और चम्पा के हाथ से कविता लेकर पढ़ने लगा। लॉन पर लड़कों और लड़कियों के ग्रुप विभिन्न टुकड़ियों में बिखरे हुए थे।

"और फिर तुम आशान्वित हो—" कमाल ने कहना शुरू किया था। "तुम जो गर्व से अपने आप को मूर्ति भंजक कहते हो और सोमनाथ से लेकर आज तक तुमने जो कुछ किया है इसके बावजूद हिन्दू तुमसे मुहब्बत करेंगे। यह अच्छी धाँधली है।"

"कमाल ! तुम तो बिलकुल महासभाई हो अच्छे-खासे। तुमसे कोई बात करना बेकार है। तुम नफ़रतों से आज़ाद बड़े दूरदर्शी होने का दावा करते हो लेकिन तुम्हारी इस प्रचंडता से राष्ट्रभक्ति भी एक और कट्टरता है।" चम्पा ने कहा।

"इस तर्क का मैं जवाब नहीं दे सकता।" कमाल ने कहा। वह दोनों उठ कर सेब के पेड़ों के किनारे-किनारे टहलने लगे।

"असल किस्सा यह है चम्पा बाजी कि मुसलमान क़ौम की साइकोलोजी अजीब और

विचित्र है। तुमको कभी धरती से मुहब्बत नहीं हुई। छूटते ही—'मेरे मौला बुला लो मदीने मुझे' का नारा तुमने लगाया। मैंने एक हज़ार वर्ष यहाँ सांस्कृतिक और आध्यात्मिक नाता जोड़े रखा। अरब, ईरान, आदि देशों से। फिर मुझे महासभाई कह रही हो—वाह भई—क्या यह सच्चाई नहीं है कि राष्ट्रीय संग्राम में हर जगह मुसलमानों ने बाजी मारी और अकस्मात विदेशी तत्त्वों से जा मिले।'' उसने टहलते-टहलते रुक कर जोश से कहना शुरू किया। ''क्या सच्चाई नहीं है कि 1937 में जब कांग्रेस ने सूबे में शराब पर प्रतिबंध लगाया तो मुसलमानों ने तुरंत उसके विरुद्ध आंदोलन शुरू कर दिया कि उनके धर्म में शराब पहले ही हराम है अतः उनके ऊपर यह कानून लागू नहीं होता। उन्हें वास्तविक समस्या से कोई दिलचस्पी नहीं। क्या तुम इसका खंडन करोगी कि जब लीग ने 'मुक्ति दिवस' मनाया तो राजेंद्र बाबू ने कहा—लीग ने जो आरोप..."

"क्या कांग्रेस सरकार ने मुसलमानों पर अत्याचार नहीं किए?" चम्पा ने बात काटी।

"यही अर्ज़ कर रहा हूँ। राजेंद्र बाबू ने कहा कि लीग ने कांग्रेस पर जो आरोप लगाए हैं वे फीड्रेल कोर्ट के सामने इंक्वायरी और फैसले के लिए रखे जाएँ। लीग ने यह भी मंजूर कर लिया और कहा कि यह मामला रायल कमिशन के सामने अलबत्ता पेश किया जा सकता है। इस पर बर्तानवी सरकार तैयार न हुई।"

"हाँ ! क्योंकि बर्तानवी गवर्नरों को तुम लोगों ने पहले ही अपनी तरफ़ मिला लिया था।"

"तुम्हारा ख़याल है कि बर्तानवी गवर्नर वफ़ादार मुसलमानों को छोड़ कर दूसरे का तरफ़दार हो गया था। होश के नाखून लो चम्पा बाजी, 1935 के एक्ट द्वारा उनको अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के विशेष अधिकार दे दिए थे।"

"चुनांचे यह तुम मानते हो कि अल्पसंख्यकों की समस्या हिन्दुस्तान में है।"

"निस्संदेह !" कमाल ने गला साफ़ किया। "लेकिन यहाँ रूस की तरह मल्टीनेशनल स्टेट बन सकती है।"

"यही तो मुसीबत है कि तुम्हारे साथ जो बात करो तान जाकर मामलों पर टूटेगी !" चम्पा ने कहा।

"और आपकी तान जाकर मक्के-मदीने पर टूटती है। ऐटम के युग में मध्य युग के मज़हबी ख़यालों को लिए फिर रही हैं आप !"

"देखो, तुम पण्डित नेहरू की कही हुई बातें न दोहराओ।"

"क्यों न दोहराऊँ? देखिए चम्पा बाजी सारी बात यह है कि मुसलमान सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ है और धर्म उसके लिए एक बहुत स्पष्ट दृष्टिकोण है। अत्यंत व्यक्तिगत और निजी। हिन्दू के यहाँ धर्म एक सामाजिक प्रबन्ध है। हज़ारों-लाखों देवता हैं, वह जिनको चाहे माने जिनको चाहे रद्द कर दे। एक तरफ विशिष्ट प्रकार की तंग-नज़री है दूसरी तरफ विशिष्ट प्रकार की आज़ाद ख़याली। फिर उसकी इंटेलिजेंशिया ने साइंटिफिक होना सबसे पहले सीखा। वह धर्म के बारे में भावुक नहीं, उसका मस्तिष्क अत्यंत गुप्त प्रयास और जोड़-तोड़ का माहिर है। हिसाब-किताब, योग और जाहिर है कि मुसलमानों के मुकाबले में वह कहीं ज्यादा चालाक है। मुसलमान बेचारा खुदा रसूल का आशिक़। बात-बात पर हिज्रत (प्रवास) के लिए तैयार।

तुर्की में किसी को छींक आई आप भागे चले जा रहे हैं। अफ़गानिस्तान में किसी के पाँव में काँटा चुभा, ये व्याकुल हो गए। हिन्दी होकर भी हिन्दी न हुआ मगर मुसीबत यह है कि यह अजमेरी पिया भी है। महबूब-ए-इलाही। यहाँ ताज पर भी भाई को बहुत गर्व है कि हमारे बादशाहों ने बनाया था मगर इस इस्लामी अंतर्राष्ट्रीयता के चक्कर ने उसे कहीं का न रखा।"

कमाल ने चलते-चलते एक मेज़ पर से उठा कर पानी का गिलास पिया--"मुसलमानों का सारा इतिहास उठा कर देख लो।" उसने थोड़ी देर बाद कहना शुरू किया। ''हमेशा देश विजय करना और निजी सत्ता के लिए आपस में लड़े। शान-शौकत और साम्राज्यवाद की जिस कदर शौक़ीन यह क़ौम है मैंने आज तक कहीं नहीं देखी। बनुअम्पिया, बनु-अब्बास, ईरान की हुकूमतें, उस्मानी तुर्क, हिन्दुस्तानी मुग़ल, अफ़गान, अरब, मिस्री—सबने आपस में क्या-क्या किया, उस समय उनका इस्लाम कहाँ गया था? बेकार इस्लाम-इस्लाम की रट लगा रखी है।''

"लेकिन राशदीन खलीफ़ों का ज़माना—?"

"चम्पा बाजी क्यों जख़्मों पर नमक छिड़कती हो। रसूल-ए-ख़ुदा की आँखें बंद होते ही धर्म वालों ने गृहयुद्ध शुरू कर दिया। जंग-ए-जमल भूल गईं—आज तक वे जख़्म हरे हैं। पक्षपात और घृणा। पक्षपात की समस्या को तुम्हारा इस्लाम भी हल न कर सका। मैं लखनऊ का शिया हूँ मुझसे पूछो, शिया और सुन्नी एक-दूसरे से किस क़दर घृणा करते हैं। नहीं चम्पा बाजी—मुझे मज़हब नहीं चाहिए—फ़का (धर्म-शास्त्र) हदीस (मुहम्मद साहब का कथन) और इमाम गज़ाली और इब्न-ए-खुल्दूं सब ठीक है मगर इस वक्त मेरे सामने दूसरी समस्याएँ हैं। इंसान को अमन चाहिए, और रोटी ! हाँ, उसके बाद वह ज़रूर इमाम गज़ाली के दर्शन पर ग़ौर कर सकता है।" अब वह फिर पार्टी-लाइन चला रहा था।

कमाल नई पीढ़ी का प्रतिनिधि लड़का था। बुद्धिवादी उसूलों पर चलने वाला, ईमानदार, अत्यंत निश्छल, कल्पनाशील। चम्पा उसे ग़ौर से देखती रही। आमिर रज़ा जिन्होंने सिर्फ़ फ़्रांसीसी प्रोवेंशल काव्य और वियाना के संगीत की बातें की थीं किसी दूसरी दुनिया में बसते थे। कमाल और गौतम और हरिशंकर—ये लोग उनसे कितने भिन्न थे, कितने ऊँचे थे।

मगर वह तो गुलाबों की दुनिया में भी जाना चाहती थी, जहाँ देवदार के दरख़्तों में छिपे हुए कॉटेज हैं और जिनमें शूपाँ का संगीत बजता है।

"हमारी लड़कियों और औरतों को सत्याग्रह के आंदोलन में जेलों में कोड़े लगाए गए...।"

उसके कानों में कमाल की आवाज़ आई। वह जोश के साथ बोले जा रहा था—"हमारे लीडरों ने पन्द्रह-पन्द्रह बरस का एकांत कारावास काटा। तुम जो जेल जाने वालों का मज़ाक उड़ाती हो—ज़रा सोचो, ज़िंदगी और आज़ादी किसे प्यारी नहीं? प्रिय जीवन के अनगिनत साल जेल में काट देना किसे पसंद है? केवल एक उसूल एक दृष्टिकोण की ख़ातिर हज़ारों लोगों ने जाकर कारावास में चक्कियाँ पीसीं और अंग्रेज़ सिपाहियों के अत्याचार सहे। क्या ये लोग यश और प्रसिद्धि के भूखे थे? क्या खाली भावनाओं के तहत उन्होंने ये कुर्बानियाँ दीं? इंसान को ज़िंदगी सिर्फ़ एक मर्तबा ज़िन्दा रहने के लिए मिलती है; और इस ज़िंदगी का बड़ा हिस्सा उन्होंने जेलों में गुज़ार दिया। हँसी-खुशी जाकर काल-कोठरियों में बन्द हो गए। राजनैतिक प्रयास बहुत बड़ी चीज़ है। उसका मज़ाक न उड़ाना। इस आग में तप कर जो लोग निकलते हैं,

वे कुन्दन की भाँति हैं। जो लोग आपकी तरह आरामकुर्सियों पर बैठ कर उन पर हँसते हैं और फिर भी क़ौम की हमदर्दी का दावा करते हैं; वक़्त आने पर ख़ुद ही मालूम हो जाएगा कि कौन कितने पानी में है। घटिया लोग और बड़े इंसान सब आप ही अलग-अलग रास्तों पर चले जाएँगे। तुमको मालूम है, देहरादून जेल में पण्डितजी की कोठरी में साँप और बिच्छू थे। किन-किन मुसीबतों का इन सबने सामना किया ! मगर, अब, बजाय इसके कि एकता में बँध कर हम एक महान् शक्ति बनें हम अंग्रेज़ों के हाथों कठपुतली बने हुए हैं।" कमाल का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा।

"तुम बड़े पक्के नेशनलिस्ट हो, कमाल !" चम्पा ने कहा।

"हाँ। हर ईमानदार और अपने अंतःकरण की आवाज़ पर चलने वाला मुसलमान नेशनलिस्ट होगा। क्या वजह है कि देश के अक्सर मुसलमान इंटेलैक्चुअल राष्ट्रवादी हैं? क्या वे सब आत्म विक्रेता हैं? कांग्रेस ने उनको रिश्वत दे रखी है? खुदा के प्रकोप से डरो, चम्पा बाजी ! एक और बात..." उसने टहलते-टहलते रुक कर कहा—"तुम्हारे नज़दीक सिर्फ़ शहरों की राजनीति है। तुम देहात से वाक़िफ़ नहीं। शहरों में प्रतिक्रियावादी पूँजीपति हैं जो अपना समाज क़ायम रखने के लिए साम्प्रदायिक राजनीति को उछाल रहे हैं। तुम कभी किसी गाँव में गई हो? अगर माधोपुर की हिन्दू-लड़की ब्याह कर करनगंज जाए तो माधोपुर का मुसलमान किसान कभी करनगंज में पानी नहीं पिएगा, क्योंकि वह उसकी बेटी की ससुराल है। यह है जनता की संस्कृति, जनता का चलन; चम्पा बाजी, जो मज़हब और राजनीति से कहीं ऊँचा है।"

अब शाम का अँधेरा छा रहा था। लॉन पर पेड़ के नीचे तलअत बैठी गौतम और चन्द लड़कों से बातें कर रही थी। वह उठ कर उनकी तरफ़ आ गई। कमाल कहता रहा—"हमारी सारी राजनीति की असल बुनियाद विशेष अधिकार और रियायतें हासिल करने का मुकाबला था। मुसलमानों को इतनी नौकरियाँ मिलनी चाहिए, सिक्खों को इतनी, और हिन्दुओं को इतनी !—मिडिल क्लास राजनीति ! मुझे बताओ, मुसलमानों की आठ करोड़ आबादी में मिडिल क्लास और यूनिवर्सिटी के शिक्षित कितने हैं और किसान और कारीगरों का अनुपात क्या है? और, हिज़-हाइनेस दि आग़ाख़ान क्या इन किसानों और कारीगरों का प्रतिनिधित्व करते हैं? उनमें और अहमदाबाद या बम्बई के किसी दूसरे सेठ में क्या फ़र्क है। वह और बिड़ला और डालमियाँ..."

"उफ़्फ़ोह" चम्पा ने आँखों पर हाथ रख लिए—"वही कम्युनिस्ट पार्टी के घिसे-पिटे तर्क।"

"तुमसे बहस करना बिलकुल बेकार है चम्पा जी" कमाल ने दुःखी होकर कहा।

तलअत अब उनके साथ-साथ टहल रही थी। "तुमने आज का अख़बार पढ़ा?"

"हाँ, मुझे मालूम है।" कमाल ने नीची आवाज़ में जवाब दिया।

"क्या हुआ?" चम्पा ने पूछा।

"मेरे बाबा खानबहादुर नवाब तक़ी रज़ा बहादुर ऑफ कल्यानपुर मुस्लिम लीग में शामिल हो गए। यानी दूसरे शब्दों में यः कि टाइप पर लौट गए।"

माया से माया मिले कर-कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की कोई न पूछे बात।।

कमाल ने कहना शुरू किया, "बाबा समझते हैं कांग्रेस ताल्लुकेदारों को समाप्त करने

पर तुली हुई है। कांग्रेस सरकार बनते ही फिर वही खड़ाग शुरू हो जाएगी। कृषि सुधार और यह और वह। उन्हें नेशनलिज़्म से क्या दिलचस्पी हो सकती है। वे फ़्यूडल-आदर्शों के आख़िरी हामी हैं। मुझे उनसे पूरी-पूरी हमदर्दी है। मैं अपने वालिद के दृष्टिकोण को खूब समझता हूं। मैं घर जाकर उनसे बहस नहीं करूँगा। मगर मुझे सिर्फ़ इसका अफ़सोस है कि इस धरती में इनकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि वे अपने वतन से प्रवास करके सिंध और बलोचिस्तान को अपना मुल्क कैसे समझेंगे। बाबा बूढ़े आदमी हैं। मैं इस उम्र में उनका दिल टूटता नहीं देखना चाहता। मगर उस समय तीर कमान से निकल चुका होगा।"

"कमाल, वतनियत इतनी बड़ी चीज़ नहीं। अगर वे समझते हैं कि पाकिस्तान में ही मुसलमानों का रहना मुमकिन है तो तुम ऐतराज़ करने वाले कौन हो? क्या तुम हरेक के लिए विचारों की आज़ादी के क़ायल नहीं?" चम्पा ने जवाब दिया।

"वतन को पुराने कोट की तरह उतार कर नहीं फेंका जा सकता" तलअत ने गुस्से से कहा।

"क्या वतन है यार ! बकवास ! मुसलमान का वतन सारा जहान है।"

तलअत उसे ग़ौर से देखती रही। "बजिया, आइए !" उसने कहा, "प्रोफ़ेसर चाय के लिए बुला रहे हैं।"

प्रोफ़ेसर के पास ही घास पर गौतम आ बैठा था। उसने उठ कर चम्पा को नमस्ते किया।

"चम्पा बाजी मुस्लिम लीगी हो गई हैं, वड़ी भारी ! आज के लीग की ओर से बयान छपा है कि हिन्दुओं का सोशल बॉयकाट कर दिया जाए। अतः कल से हमारी महफ़िलों में नहीं आएँगी !" कमाल ने कटुता से कहा।

शाम की नीली रोशनी में वे पेड़ों के बल्वों के नीचे बैठे रहे। वातावरण की उदासी गहरी होती गई।

"चम्पा, चलो। नौ बजे से रिहर्सल शुरू है।" फूलों के परे से किसी लड़की ने पुकारा।

"अच्छा !" वह साइकिल सँभाल कर फाटक की तरफ़ चली गई। घास पर बैठे हुए लोग उसे क्यारियों के किनारे से गुज़रती देखते रहे।

52

कैलाश होस्टल में वार्षिक ड्रामा था। लड़कियाँ हफ़्तों से तैयारी में जुटी थीं। शाम को हॉल में या घास पर रिहर्सल की जाती। संगीत कम्पोज़ होता। नाच का अभ्यास किया जाता। कास्ट्यूम्ज के ड़िजाइन तैयार होते। स्टेज के डेक्योर पर बहस होती। फ़िरोज़ ज़बीन बड़ी तल्लीनता से सबको पार्ट याद करवा रही थीं। कमला अनारकली थी, तलअत दिलआराम, ईनिड सलीम—एक और स्वाँग। फिर कवाडरेंगल में स्टेज तैयार हुआ। वाइस चांसलर और स्टाफ़ अगली पंक्तियों में आकर बैठे। रेडियो स्टेशन के आर्केस्ट्रा ने स्टेज के पीछे बरामदे में अपनी जगहें सँभालीं।

अब कुसुम महलसरा में कनीज़ों के साथ बैठी गा रही थी—

लब-ए-जू हो, फ़र्श-ए-आब हो,
शब-ए-माह हो, बादा-ए-नाब हो।

ईनिड खिड़की में खड़ी कह रही थी—"रावी के नौजवान मल्लाह !"...'अनारकली' कह रही थी—"हिन्दुस्तान का शाहज़ादा और कनीज़ से मोहब्बत, कैसी हँसी की बात है !" यह सब सपने की तरह गुज़रता गया। फिर पर्दा गिरा और लोग बातें करते बाहर निकले।

कमाल ने कहा—"चम्पा बाजी, बस स्वाँग रचती रहिए ! अनारकली से बेहतर कोई प्लॉट न मिल सका आपको? रूमानपरस्ती की भी हद होनी चाहिए !" फिर वह भीड़ में गायब हो गया।

गौतम ने पास आकर कहा—"चम्पा बाजी, क्या आप कमाल से खफ़ा हैं? उस रोज़ प्रोफ़ेसर के यहाँ कमाल ने आपसे काफ़ी कटु बातें कहीं। मैं उसकी तरफ़ से आपसे माफ़ी माँगता हूँ। आप इतनी ख़ामोश क्यों हैं ? आप हँसती हुई अच्छी लगती हैं। ज़िंदगी में इतनी उदासी है। इस उदासी में वृद्धि न कीजिए।"

"नहीं" उसने गौतम को जवाब दिया, "मैं असल में आजकल जीने के विभिन्न ढंगों की स्टडी कर रही हूँ।"

"मैं इस मसले पर कुछ रोशनी डालूँ।" तलअत ने ख़ुश-ख़ुश निकट आकर कहा। वह अभी तक दिलआराम का ड्रेस पहने थी। "आज मेरी इस क़दर तारीफ़ें हुईं, तो मैंने सोचा, किस तरह का एक्सप्रेशन अपने चेहरे पर क़ायम रखूँ—रौब, प्रसन्नता, गंभीरता...। मुसीबत यह है कि अगर नम्रता दिखाओ तो समझा जाता है यह हीनता की भावना है और अगर नम्रता न दिखाओ तो उसे घमंड मान लिया जाता है। हर एक से अच्छी तरह बातें करो तो लोग कहते हैं, अजब चिबिल्ली लड़की है। रखरखाव से रहो, तो बोर या बद्दिमाग़ समझा जाता है, या यह कि, बेचारी चार आदमियों से बात करने में घबरा जाती है, 'कोनेघुस' है। मैं इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि इंसान जैसा है, उसको वैसा ही रहना चाहिए। कभी ऐसी चीज़ों की इच्छा न करो जो अपने बस से बाहर हों। मिसाल के तौर पर, भाई गौतम को ही देखिए। इनसे बातें कीजिए तो लगता है, अफ़लातून के साथ वार्तालाप किया जा रहा है या ख़लील जिब्रान का अल्मुस्तफ़ा देवदारों के बाग़ में बातचीत में व्यस्त है...नहीं, चम्पा बाजी, जीने के ढंग पर मत सोचिए।" फिर वह भी छलावे की तरह भीड़ में ग़ायब हो गई।

गौतम ने हँस कर चम्पा को देखा, "किस कदर टर्राती है यह लड़की !"

"मुझे इस पर रश्क आता है। इसके मन में कोई उलझन नहीं।" चम्पा ने कहा।

"उलझनों से हम सब ख़ुद को बचा सकते हैं?"

"वाक़ई?"

"हाँ, चम्पा बाजी !"

"तुम कभी उलझनों से दो-चार नहीं हुए?"

"शायद...नहीं।"

"सुनो, गौतम, कौन किससे कह सकता है कि इस तरह न जियो, इस रास्ते पर चलो, यह बातें सोचो ! तुम मुझसे कह सकते हो?"

"शायद नहीं !"

सड़क पर मौलसिरी की टहनियाँ झुकी हुई थीं। हवाओं के राग बहुत सुरीले थे। वह एकाएक फाटक की पुलिया के पास ठिठक गई। "नहीं गौतम, मैं कमाल से ख़फ़ा नहीं हूँ। मुझे किसी से भी ख़फ़ा होने का हक़ नहीं है।"

"आप शहीदों के दर्जे पर पहुँचने वाली हैं। यह दुखियों वाला लहजा क्यों?"

"तुम–तुम लोग बड़े कमीने हो !" उसने कटुता से कहा।

"हम लोग महज़ निश्छल हैं। मगर, शायद निश्छलता की एक क़िस्म और भी होती है, और वह भैया साहब के पास मौजूद है।"

"तुम–तुम ऐसी बातें क्यों कर रहे हो? मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं एक लम्बी साफ़-सुथरी गैलरी में खड़ी हूँ और मेरे सामने से एक के बाद एक फर्राटे से पर्दे उठते चले जा रहे हैं। वे पर्दे जिन पर ख़ूबसूरत तस्वीरें बनी हैं और दृश्य–अब आख़िर में सिर्फ एक काला पर्दा बाक़ी रह गया है।"

"चम्पा बाजी–आपकी प्रॉब्लेम, आपकी बेहद निजी है। आपको भैया साहब से बहुत मुहब्बत है, बस सारी बात यह है। बाक़ी सब बकवास है, और आपकी दूसरी प्रॉब्लम शब्द हैं।" गौतम ने अपनी आदत के मुताबिक़ एक पहुँचे हुए बुज़ुर्ग की तरह पते की बात बताई।

नफ़रत से चम्पा ने उसे देखा–"शब्द–"

"हाँ–मैंने यही शब्द इस्तेमाल किया था।"

"और जो कुछ है, वह अर्थहीन है?"

"कोई चीज़ अर्थहीन नहीं। ख़ुद इस शब्द 'अर्थहीन' के भी अर्थ मौजूद हैं।"

"तलअत ठीक कहती थी, तुम भी पोज़ करते हो। तुमसे बातें करो तो लगता है, ख़लील जिब्रान के अल्मुस्तफ़ा से बातचीत की जा रही है।"

"चम्पा बाजी !" वह घबरा गया। "लिल्लाह ख़फ़ा न होइए। चलिए, मुझे अपने घर ले जाकर कॉफ़ी पिलाइए। वहाँ हम इन मसलों पर और रोशनी डालेंगे और लिल्लाह उदास न होइए। इंसान सिर्फ़ एक बार पैदा होता है।...अगले जन्म की किसे खबर है, आइए।"

चम्पा, चाँद बाग़ की एक पहाड़ी-लेक्चरर सीता दीक्षित के साथ कॉलेज के पीछे एक छोटी-सी कॉटेज में रहती थी। वहाँ पहुँच कर वे दोनों बरामदे में बैठ गए। सामने अमरूदों के अँधेरे बाग़ में रखवाला सुग्गों को उड़ाने के लिए आवाज़ें लगा रहा था। सुग्गे रात का बसेरा लेने के लिए टहनियों पर आन बैठे थे।

गौतम बेंत की कुर्सी पर बैठा केले के झुण्ड को देखता रहा। चम्पा कॉफ़ी बना कर लाई और उसके सामने सोफ़े पर बैठ गई।

"चम्पा बाजी, आप बहुत ग्रेट हैं, ख़ुदा की क़सम !"

"वाक़ई !"

"चम्पा बाजी, एक बात बतलाइये !"

"पूछो।"

"आप भैया साहब को कितने समय से जानती हैं?"

"कई साल से।"

"और, इतने समय आपने क्या किया?"

"पढ़ा, और क्या किया?"

"इसके बाद...?"

"और पढ़ा।"

"उसके बाद?"

"बस पढ़ती चली गई।" चम्पा ने झुँझला कर जवाब दिया।

"और, भैया साहब को इतने दिन से बरदाश्त कर रही हैं? जब आप उनसे पहले मिली होंगी तो सत्रह-अठारह साल की रही होंगी। उनका ख़याल आपके लिए एक बड़ी रईसाना आदत में शामिल हो चुका है, यद्यपि आप ख़ुद रईस नहीं हैं। मैं आपको एक बात बताऊँ, आप ज़रा ग़ौर करतीं तो आपको मालूम होता कि आपका इश्क़...।"

"वाहियात बातें मत करो।"

"वाहियात? ग़ज़ब ख़ुदा का ! आप तो बड़ी कट्टर ब्लू-स्टॉकिंग निकलीं। अरे, इश्क में क्या बुराई है। बड़ी उम्दा चीज़ है। मैं ख़ुद इसमें अक्सर पड़ जाया करता हूँ। मगर, मध्यवर्ग की लड़कियों का क़ायदा है कि इस तरह के शब्दों को बहुत बुरा समझती हैं। चम्पा बाजी, सॉरी ! इतना सुहाना समय है। मुझे चाहिए था कि आपसे सितार बजवा कर, उस पर गत वागेश्वरी, तीन ताल सुनता और, यहाँ मैंने आपके प्रॉब्लम्स का विश्लेषण करना शुरू कर दिया।"

"यह दूसरों के प्रॉब्लम्स का विश्लेषण करना भी बड़ा ज़बरदस्त रैकेट है। और, आप भूलते हैं कि आपके जैसे स्टूडेन्ट्स को रोज़ कॉलेज में पढ़ाती हूँ।"

"मैं जानता था, आप यही कहेंगी। हमारी सारी ज़िंदगी एक से पिटेपिटाये वाक्य दोहराते बीत जाती है।" वह मुँह लटका कर खिड़की से बाहर देखने लगा। "मैं यह भी जानता हूँ कि रोमेण्टिक बने रहने के लिए आपके भैया साहब कौन-से मैनेरिज़्म इस्तेमाल करते होंगे, कौन-से वाक्य दोहराते होंगे? सुना है फ्रेंच बहुत फ़र्स्ट-क्लास बोलते हैं?"

"लेकिन, आख़िर तुम भैया साहब से इतना चिढ़ते क्यों हो?" चम्पा ने कहा।

वह सहसा झेंप गया। इतना झेंपा कि उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया।

"मुझे चिढ़ने दीजिए, आपसे मतलब?" वह अपने आक्रमणात्मक हथियारों पर उतर आया। इतना मज़बूत इंसान और इतना कमज़ोर निकला—चम्पा को अचम्भा हुआ।

"मतलब यह..." चम्पा ने कहा, "कि हमारे ग्रुप के सब लोग भैया साहब को बड़ा भाई समझ कर उनकी इज़्ज़त करते हैं। कम से कम तुम्हें इसका ख़याल तो करना ही चाहिए। तमीज़ भी कोई चीज़ है ! यहाँ आए हो तो ज़रा तमीज़ भी सीखो। यह क्या, कि हर समय हुल्लड़, दंगा, फौज़दारी। यह चण्डूख़ाना ही क्या कम था कि ऊपर से तुम भी टपक पड़े !"

"भैया साहब से अगर आप ब्याह कर रही हैं, तो यह दूसरी बात है। आपका फ़र्ज़ है कि उनको आसमान पर चढ़ाएँ। हर हिन्दुस्तानी लड़की यही करती है।"

"मैंने कब दावा किया था कि मैं अमरीकन लड़की हूँ। और, दूसरी बात यह कि..."

"दूसरी बात यह है, चम्पा बाजी, कि आप उनसे ब्याह करके अजीब मसख़री लगेंगी। अप्पी की और बात थी। वह पैदा ही इसीलिए हुई थीं। मगर आप...हद है !"

अब चम्पा झेंपी। "मैं आपसे राय नहीं ले रही हूँ।" उसने तुरन्त बुज़ुर्गी धारण कर ली।

"मैं राय कब दे रहा हूँ। अगर आपमें इतनी अक्ल होती कि मुझसे राय लें तो यह नौबत ही क्यों आती ! मगर आप हैं कि...आह...इस बाह्य रूप से शिक्षित लड़की को देखो !" उसने टहल-टहल कर थियेट्रिकल अन्दाज़ से कहना शुरू किया..."यह एकनॉमिक्स की अध्यापिका, डाइलेक्टिक्स पर दिमाग़ खपाने वाली, बेचारी, बरसों से किस मुसीबत में गिरफ़्तार है ! ऐ रूमानियत की शिकार नादान कन्या !" कमरे के बीच में खड़े होकर वह दहाड़ा।

"गौतम, तुम बिलकुल दीवाने हो ।" चम्पा ने हँस कर कहा।

"अब यानी आप मुझे मेरी दीदी या मौसी की तरह पुचकारा भी करेंगी। मैं कहता हूँ, यह तुक क्या है ! यानी ग़ज़ब ख़ुदा का ! जो शख़्स पाबन्दी के साथ क्लब जाकर ओल्डवाल्ज़ नाचे, पिकनिकों और पार्टियों में कॉलेज की लौंडियों की मूवी खींचता फिरे, ख़ुद लौंडियों की तरह हसीन हो और क़यामत यह कि अपनी सुंदरता पर नाज़ भी करता हो, उसको आप पसन्द करती हैं ! अगर आपको इश्क़ ही करना मंजूर है तो मुझसे ही कर डालिये ! या, कमाल और हरिशंकर में ही क्या बुराई है। वैसे इनके अलावा हज़ारों हैं, यद्यपि यह दूसरी बात है कि मैं बेहद अद्वितीय हस्ती हूँ।" उसने ज़रा विनम्रता से इतना और जोड़ा। फिर दूसरे ही क्षण उसने गंभीरता से कहना शुरू किया–"नहीं, चम्पा बाजी, मुसीबत यह है कि आप लोग परम्पराओं पर जान देते हैं। बस एक देवमाला का होना ज़रूरी है। आपकी परम्परा, भैया साहब के ग्लैमर की परम्परा, 'गुलफ़िशाँ' और 'सिंघाड़े वाली कोठी' की परम्परा, दिलकशी, आकर्षण मगर, खाली दिलकशी का नतीजा क्या है?—कुछ नया बनाने और सँवारने का ही काम करतीं।"

"पढ़ाती जो हूँ।" चम्पा ने अपने आप को इस क़दर बेबस महसूस किया, ऐसा अप्रत्याशित, ऐसा बेरहम हमला उस पर किया गया था कि उसका कवच टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। वह जो बरसों से अपने आप को, अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को बेहद महत्त्वपूर्ण समझती आई थी, पल की पल में वह अपने आप को बड़ी दयनीय मालूम हुई। "अब हर एक तो कलाकार नहीं बन सकता !" उसने ऊँची आवाज़ में कहा।

"कलाकार न बनिए। आजकल कलाकारों की तो फ़ौज़ की फ़ौज़ हर जगह घूम रही है। कोई बुनियादी काम कीजिए। इतना कुछ करने को पड़ा है।" उसने चारों ओर नज़र डाल कर थकी हुई साँस ली। "आपको नज़र नहीं आता?"

"नज़र आता है" चम्पा ने कहा। "लेकिन, ज़िन्दा भी तो रहना है। नौकरी करती हूँ, तो तीन सौ रुपये महीने के मिलते हैं। मेरे अब्बा बहुत मामूली हैसियत के वकील हैं। मैं तुम रईसज़ादों की तरह ख़ाली ग़रीबी की थ्योरी ही नहीं जानती। मुझे ग़रीबी की वास्तविकता भी मालूम है।"

किसी और मौके पर उसे इस तरह की बातें करते बड़ी शर्म आती, क्योंकि वह ख़ालिस सफ़ेदपोश घराने की लड़की थी, लेकिन गौतम उसके सामने फ़ादरकन्फेसर की तरह बैठा था। उससे कौन-सी बात छिपाई जा सकती थी !

"और, भैया साहब से ब्याह हो गया, तो आप भी क्लब जाकर ओल्डवॉल्ज़ नाचेंगी और राइडिंग के लिए जाएँगी?" उसने भोलेपन से पूछा।

"तो क्या मैं लाल झण्डा लेकर सड़क पर दौड़ूँ ? किस क़दर एलिमेण्ट्री बातें करते हो तुम ! जिस तरह की बहस तुम मुझसे कर रहे हो, इसी तरह की बहसें करते, इसी लखनऊ

में मुझे ज़माना गुज़र गया है।"

"तो गोया शादी आपके एकनॉमिक मसलों का हल है। शादी हिन्दुस्तान की हर लड़की की निजी और ख़ानदानी प्रॉब्लम का हल माना जाता है। चम्पा बेगम, मैं तुमको औरों से कुछ अलग समझता था।"

"अण्डरग्रेजुएट बातें मत करो !" चम्पा ने गुस्से से कहा।

"'अण्डरग्रेजुएट आपके यहाँ बड़ा भारी ताना है। ठीक है। लेकिन, इससे यह कब साबित होता है कि आप भैया साहब से लौ लगाये बैठी रहें ! बताइये तो, आपको ये साहबज़ादे इतना पसन्द क्यों हैं?"

"पता नहीं !" उसने कमउम्र लड़कियों की तरह झेंप कर कहा, और उसे बड़ी कोफ़्त हुई। उसे अपनी ज़िंदगी में आज तक इतनी शर्मिन्दगी कभी नहीं उठानी पड़ी थी।

"अच्छा, आपको अच्छी शक्लें पसन्द आती हैं? शायराना तबीयत है आपकी?" फिर वह टहलता हुआ हैट-रैक के आईने के पास चला गया, और भँवें उठा कर ग़ौर से अपना चेहरा देखने लगा। "मुझसे भी कोई लड़की इतना ही ऊँचा इश्क़ कर सकेगी? अगर क़ायदे से देखा जाए तो मैं ऐसा बदसूरत नहीं।"

"शान्ता तुमसे उत्तम इश्क़ नहीं करती?"

अब गौतम अपनी जगह भौंचक्का खड़ा रह गया। चम्पा को यह देख कर ख़ुशी हुई कि उसका कवच टूट रहा है।

"गौतम बहादुर ! तुम भी शीशे के घर में रहते हो। दूसरों पर पत्थर फेंकने से पहले यह बात याद रखा करो।"

"तुमको शान्ता के बारे में क्या मालूम है?"

"तुम उसको चाहते नहीं हो? जो कोई भी वह है, वह तुम्हारे कजिन की पत्नी है, और तुमसे पाँच साल बड़ी है। हम किसको उपदेशक समझें और ख़ुद किसको उपदेश दें। और, अब तुम उस अपनी शान्ता नीलाम्बर को भूलते भी जा रहे हो। बहुत दिनों से तुमने उसको पत्र लिख कर यहाँ की रिपोर्ट नहीं भेजी। वह तुम्हारी मानसिक साथी है। तुम उससे शादी नहीं कर सकते। तुम किसी से भी शादी नहीं कर सकोगे। निर्मला से भी नहीं। गौतम बहादुर, यह बड़े गहरे मामले हैं। यहाँ तुम्हारे सिद्धान्त नहीं चल सकते। मै भैया साहब को पसन्द करती हूँ। उनका मेरा कोई मानसिक साथ नहीं। मगर, गौतम बहादुर, मुझे तो तुम भी पसन्द हो। बताओ, इसका क्या किया जाए? इंसानी रिश्ते बड़े अनोखे होते हैं। मुझे धीरे-धीरे तुम भी अच्छे लग रहे हो। क्या मैं प्रकृति से फ़्लर्ट हूँ? हरगिज़ नहीं। ज़रा बाहर जाकर पूछो, मेरी किस क़दर उम्दा रेपुटेशन है। मुझे 'देवी' कहा जाता है, मेरी तबीयत में आवारगी नहीं। मगर इंसानों को पसन्द करना मुझे आता है। अब जो मैंने इतना बड़ा कन्फ़ेशन किया तो इसलिए कि तुम्हारा भी शीशे का घर टूट चुका है। उसे तुमने, अफ़सोस कि, ख़ुद ही तोड़ कर गिरा दिया। कुछ दिन और साबित रह लेने देते ! बड़ा ख़ूबसूरत था। बिल्लौर का मंदिर था और उसके अन्दर गौतम सिद्धार्थ की मूर्ति विराजमान् थी। सारनाथ से परिचित हो? सारनाथ मेरी ज़िंदगी में बड़ा महत्त्व रखता है। मैं काशी में पैदा हुई थी।" उसने उदासी से बात ख़त्म की।

अँधेरे में वह जिस किश्ती पर सवार था, वह तूफ़ानी रेले के साथ कहाँ से कहाँ पहुँच

गई। वह चुपचाप खड़ा रहा।

चम्पा को उस पर बड़ा तरस आया—कैसा प्यारा लड़का है ! उसमें, हरिशंकर और कमाल में कितनी एकरूपता है—उन्हीं के जैसा गम्भीर, और शैतान। ये दोनों भी न जाने कहाँ से ढूँढ़-ढूँढ़ कर अपने-जैसे 'क्रुक' निकाल लाते हैं ! इसी को देखो, न जाने कहाँ से बहता-बहता आ निकला। "आया था किसी देश से एक हंस बिचारा", "सिलसिला-ए-रोज़ोशब", "नक़्शगर-ए-हादसात", "नक़्शगर-ए..." वह अपने मन को ख़ाली करके बहुत-सी बेतुकी बातें सोचती रही, ताकि भावुकता के उस लैण्ड-स्लाइड की उपेक्षा कर सके।

"तुमको शान्ता के बारे में क्या मालूम है?" गौतम ने खिड़की में खड़े-खड़े पूछा। वह उससे लड़ रहा था। यानी, इतना निकट आ चुका था कि उसे डाँटे, उसे बुरा-भला कहे, उससे लड़े, उसकी आलोचना करे। अपनेपन के इस आभास ने चम्पा को और उदास कर दिया।

"गौतम !" उसने कहा—"इस बेहद पिटे हुए वाक्य को माफ़ करना...! मगर यह कि हम सब खुली हुई किताबें हैं। हममें से किसी में कोई मिस्ट्री नहीं। तुम मुझसे किस क़दर वाक़िफ़ हो चुके हो ! हर इंसान बेहद एक्सपोज्ड है। तेज़ रोशनी में है। वह हलका अँधेरा, वह धुँधलका तुमको कहीं न मिलेगा, जिसमें जाकर तुम खुद को छुपा सको।...जब मैं तुमको देखती हूँ तो मुझे लगता है, मैं भी इसी तेज़ रोशनी में खड़ी हूँ और तुम मुझको आरपार देख रहे हो। लेकिन, मैं तुमको खुद आरपार देख रही हूँ। इसीलिए मुझे मालूम है कि तुम मुझे..."

"आरपार देख रहा हूँ—चम्पा शब्दों को ख़त्म कर दो—शब्द हमें खा जाएँगे !"

"शब्दों को ख़त्म करो, मगर अर्थ के अर्थ तो मौजूद रहेंगे। बताओ, हम क्या कर सकते हैं?" चम्पा ने बड़ी बेबसी से कहा।

53

भैया साहब के अचेतन मन का हाल तो अल्लाह ही बेहतर जानता होगा, अलबत्ता यह ज़रूर है कि जब तक वे अपनी छुट्टी के ज़माने में लखनऊ में रहे, उन्होंने बिलकुल मौनव्रत रख लिया। पहले ही वह कौन-सी बात करके देते थे, मगर अब तो उनकी चुप्पी को उदाहरण के रूप में पेश किया जाने लगा था।

"भैया साहब की ख़ामोशी में बड़े-बड़े अफ़साने छुपे हुए हैं।" हमीदाबानो ने एक दिन रहस्योद्घाटन किया।

"वाह क्या बात है ! अफ़साने नहीं, जूता छुपा हुआ है—लाहौल विलाक़ूवत !" तलअत ने क्रोध से उत्तर दिया। इस बुर्जुआ रूमानियत ने हर तरफ़ ऊधम मचा रखा था। खुद हमीदाबानो इन दिनों बड़े ज़ोरों में शायरी कर रही थी।

"हमें इस बुर्जुआ ज़हनियत के ख़िलाफ़ सबसे पहले जेहाद करना है। ज़ागीरदाराना समाज ने जिस तरह के ज़हन बना दिए हैं..." तलअत ने निर्मला से कहना शुरू किया।

"और ज़रा सुनना—क़सम ख़ुदा की, दिल चाहता है, इन सबसे पन्द्रह दिन सड़कें कुटवाई जाएँ, तो सारी रूमानियत तशरीफ़ ले जाए !—सुना तुमने, ये भैया साहब जो हैं हमारे, ये गौतम

से जलते हैं।" तलअत ने एक दिन निर्मला को ख़बर दी।

"गौतम से? हाय रे ! यह तो बड़ा लतीफ़ा है। कौन जलेगा उस बेचारे से ! इतना तो वह असुरक्षात्मक है !"

"हाँ, हाँ, और क्या ! मतलब यह कि वह तो...हद है भई।"

ठगों की मण्डली की तरह इन सबको अपनी मण्डली से बड़ी ही वफादारी थी। जो इसमें शामिल हुआ, बाक़ी सभी उस पर जान छिड़कने को तैयार।

"मगर क्या चम्पा बाजी तो कहीं...?" निर्मला ने सहसा सोच कर कहा।

"हिश्त, ऐसी बचपने की बातें मत करो !"

"इसमें बचपना क्या है? वक़्त की बात होती है।" निर्मला ने बेहद बुज़ुर्गी से कहा।

"ग़लत !" तलअत ने ज़ोरदार विरोध किया। "चम्पा बाजी अब ऐसी इम्मेचुअर नहीं। अच्छा, तुम गौतम से कर सकती हो इश्क़?" उसने भयानक तरीक़े से पूछा।

"गौतम से? हद हो गई ! इतनी जान-पहचान के बाद अब इसकी गुंजाइश ही नहीं रहती। इश्क़ करने के लिए मेरी जान, थोड़ा-सा रहस्य चाहिए।" निर्मला ने कहा।

"और इसी रहस्य और धुँधलके के खिलाफ़ हम लोग जेहाद करने वाले हैं।" तलअत ने कहा।

"और क्या !" निर्मला ने पुष्टि की।

"असल में चम्पा बाजी के इस लगातार इश्क़ ने हम सबकी सायकोलोजी ख़राब कर दी है। ग़ज़ब ख़ुदा का, जबसे यह यहाँ आई हैं, याद है...? हम लोग फ़र्स्टईयर में थे, तब से यह सिलसिला चल रहा है। कितनी थर्ड क्लास बात है !"

"बेहद थर्ड क्लास !" निर्मला ने दोबारा पुष्टि की।

"और, समझ में नहीं आता कि जब भैया साहब इतना ज़ोर दे रहे हैं, तो ये उनसे कर क्यों नहीं लेतीं शादी।"

शाम का अँधेरा बहुत जल्दी फैल गया। नदी के किनारे मन्दिरों में चिराग़ जल उठे थे। किश्ती में बैठा कोई 'आरज़ू' की ग़ज़ल गाता जा रहा था। तलअत ने ध्यानपूर्वक सुनना चाहा, लेकिन शब्द समझ में न आए, मगर एक बात उसकी समझ में ज़रूर आ गई। दूर गीत गाया जा रहा हो और फ़ासिले की वजह से उस गीत के शब्द समझ में न आएँ तो कैसा लगता है ! वह सीढ़ियों पर से उठ कर अन्दर आ गई—"आओ तुरुप चाल खेलें।" उसने हरिशंकर से कहा।

"भैया साहब अभी दिलकुशा-क्लब में मिले थे" हरिशंकर ने सोफ़े पर से उठते हुए बताया। "वे हमसे ख़फ़ा हैं कि हमने गौतम को इतनी लिफ़्ट क्यों दे रखी है कि वह हर समय यहाँ घुसा रहता है।"

"माशा अल्लाह !" तलअत ने कहा—"क्या ये हमारे गार्जियन हैं?"

"अब बहरहाल—बड़े भाई तो हैं ही।" हरिशंकर ने पक्ष लेना चाहा। वफ़ादारियों की खींचातानी उसके सामने थी' भैया साहब से वफ़ादारी, गौतम नीलाम्बर से वफ़ादारी। ग़रीब शंकर श्रीवास्तव करे तो क्या करे !

"और चम्पा बाजी कहाँ हैं?"

"वे तो कल से हिस्ट्री कांग्रेस के लिए इलाहाबाद गई हुई हैं।"

इतने में साइकिल आकर रुकी और गौतम नीलाम्बर आ मौजूद हुआ।

"चम्पा नहीं हैं?" उसने आते के साथ ही सवाल किया।

"नहीं ! मगर हम लोग तो मौजूद हैं, आओ बैठो !"

"यह सूचना देने आया था कि ख़ाकसार का दानापानी यहाँ से उठ गया !"

"अब कहाँ जाते हो?" तलअत ने पूछा।

"यही, ज़रा विलायत तक। अख़बार भेज रहा है। पर, सोचता हूँ, दो-तीन साल अगर वहाँ टिक गया, तो साथ ही कुछ पढ़ भी लूँगा। बहुत वक़्त बरबाद किया है।"

"यही, ज़रा विलायत तक !" तलअत ने नक़ल उतारी। "कितना रौब डाल रहे हैं ' जैसे हम लोग तो विलायत कभी जा ही नहीं सकते। चलो तुम, हम सब भी आते हैं पीछे-पीछे।"

"क्या वहाँ भी इस मण्डली से छुटकारा नहीं मिलेगा? अगर यह बात है तो विलायत का सफ़र रद्द ! बन्दा जापान जाएगा।"

"हम जापान भी आएँगे !"

"अर्थात् यह कि अब पलायन करना भी मुश्किल है।"

"ज़ाहिर है। पहले ही तुम्हारी शामत आई थी तो शहर का रुख़ तुमने किया, अब भुगतो।"

"ज़रा चम्पा को भी 'खुदाहाफ़िज़' कह लेता मगर वे छलावे की तरह गायब हो जाती हैं।"

"अरे तुम पेरिस ही तो जा रहे हो। तुम्हारा देहांत तो नहीं हो रहा, फिर मिल लेना--" शंकर ने कहा।

"हिस्ट्री कांग्रेस कब खत्म हो रही है?"

"हो जाएगी ख़त्म हफ़्ते भर में...मगर उसके बाद दशहरा है। वे सीधी बनारस चली जाएँगी।"

"ये हिस्ट्री कांग्रेस में जाने लगी हैं।"

"और क्या, इतनी काबिल जो हैं।"

"यार बड़ा अफ़सोस हो रहा है, वाक़ई, कि तुम जा रहे हो।" हरिशंकर ने कहा।

"हाँ, यार अफ़सोस तो होना ही चाहिए। मैं इतना हँसमुख और ख़ुश मिज़ाज आदमी था।"

तलअत इन दोनों को बातें करता छोड़ कर अन्दर निर्मला के पास चली गई।

"गुरु जा रहा है।" उसने कहा।

"मैंने सुना अभी।" वह रो रही थी। तलअत हैरान रह गई।

"अरे किस क़दर महा बेवक़ूफ़ लड़की है ! रोती क्यों है? शादी करके तू भी साथ चली जा—तेरा तो उसके लिए जाने कब का पैग़ाम जा चुका है।"

"वह भला मुझसे करेगा शादी? चम्पा बाजी का दम भरता है। उम्र भर मेरा मुक़ाबला उनसे करता रहेगा। मैं चम्पा बाजी की परछाईं बन कर जिऊँगी?"

"चम्पा बाजी, चम्पा बाजी, तुमसे ज़्यादा बुरा कौन होगा ! अब जाने तुम और किस-किस की क़िस्मत बर्बाद करोगी !" तलअत चौखट पर उकड़ूँ बैठ गई—"मत रो, ऐ बेवक़ूफ़ !"

उसने रुँधी हुई आवाज़ से कहना चाहा। बरामदे से गौतम और शंकर के क़हक़हों की आवाज़ें आ रही थीं।

तलअत को चम्पा से उस रोज़ से अधिक घृणा कभी नहीं हुई।

54

यह गोकुल बहुत ही सुन्दर स्थान है। मधुमालती हवा में झूलती है। पुरवाई के झोंके बच्चों की तरह कुंज में किलकारियाँ भरते फिरते हैं। फूल माँ के मन के सोच की तरह ख़ूबसूरत हैं। यह गोकुल, यह दृश्य किसकी छवि का प्रतिबिम्ब है ! 'तुम्हारे माथे का तिलक आकाश में डूबते सूरज की तरह जगमगाता है,' कल उसने कहा था, और मैं अबला नारी—मुझे अपनी शक्ति का अनुभव हुआ। धरती चुप है। सारी सृष्टि मानो मन ही मन प्रार्थना में लीन है।...लड़कियाँ घाट पर पानी फेंक रही हैं। उनमें से एक लड़की चिल्ला उठती है—हरि ! हरि !! हरि !!!—एक लड़की रो रही है। गोपाला !—वह कहती है, जीवन में उसके कारण सुख है ! जीवन में उसके कारण अथाह दुःख है।

वृन्दावन मेरे अंग-अंग में रच गया है। सुबह तड़के मुंडेर पर रखी हुई गागरें धुँधलके में झिलमिलाती हैं। गायों की घण्टियों की आवाज़—हरी घास की गरमगरम महक, दूध के सफ़ेद झाग, जंगल की हरियाली—मेरी आत्मा सुख से भर गई है। रात को सितारे वृन्दावन पर झुक कर उसी सुख का जाप करते हैं। पक्षियों के परों की मद्धम सरसराती आवाज़ 'ओम् ! ओम् !' का कीर्तन कर रही है। मेरे अन्दर शान्ति लहरें मार रही है, जैसी चाँदनी की लहरें जमुना पर फैल जाती हैं। रंग, प्रकाश, संगीत, कृष्ण, मोहन, हरि, नन्दलाला, कान्हा ! उसका हर नाम उस दैवी राग के नए सुर की तरह बजता चला जा रहा है। वही उसको जान सकते हैं, जो उससे मुहब्बत करते हैं।

और सहसा स्वर्ण-संगीत की बौछार मेरे कानों पर आन गिरी, जैसे हर सुर के किनारे पर सितारा जल रहा हो। और फिर वह फुहार तेज़ रंगों वाले इन्द्रधनुष में बदल गई और उसकी तेज़ जगमगाहट को बर्दाश्त न कर सकने के कारण मैंने अपनी आँखों पर हाथ रख लिए। मुझे पता न चला कि मैं संगीत को सुन रही हूँ या देख रही हूँ। उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि समाधि का अर्थ क्या है ! वह क्षण, जब आत्मा परमात्मा के सम्मुख खड़ी होकर कहती है—"यह मैं हूँ !"

लड़कियाँ घास पर रास नाच रही हैं। एक-दो-तीन-चार—मा-आ-ध-व ! माधव ! माधव !...!

बादलों में छुपी हुई देवी की तरह वह गागर उठाए धीरे-धीरे जा रही है। कामिनी श्रीराधेकृष्ण की सबसे बड़ी भक्त और गुरु—राधाकृष्ण ! संसार की सृष्टि से लेकर आज तक इससे अधिक सुंदर संगीत किसी ने सुना था? वृन्दावन पर बसन्त का सूरज चमक रहा है। हिरण संगीत की तानों की तरह कुलेलें भरते फिर रहे हैं। मुरली की आवाज़ ऊँची हुई—संगीत उसकी आवाज़ है, फूल उसकी मुस्कराहट, समुद्र उसकी कल्पना का विस्तार, सूर्योदय से पहले का आकाश उसकी समाधि की छाया। मैं, शर्मीला, मैं भी गाऊँगी।

सृष्टि गहरी नीली रोशनी में तैर रही है। धरती, आकाश, शून्य–'ओम्' की सनसनाहट से गूँज रहे हैं–"शर्मीला?"

मेरा नाम अब शर्मीला नहीं, मैं भी कृष्ण हूँ। हर वस्तु कृष्ण है।

मेरे सम्मुख एक नया सूर्य उदय हुआ और सारा वातावरण जगमगा उठा। और उसने कहा–ओ मूर्ख गोपियो ! तुम जो पाँचों इन्द्रियों के झमेले में ग्रस्त हो, सुनो और समझो कि हर वस्तु दृष्टि का भ्रम है। एक सम्पूर्ण वृन्दावन है, जिसमें मैं आँख-मिचौली खेलता रहा हूँ।... पेड़ के फूल नारंगी कुमकुमों की तरह जगमगा रहे थे, राधाकली का गुच्छा उसकी काली लटों के पास झुका था और उसकी आँखें भटकी हुई आत्मा को मार्ग दिखाने वाले सितारों की तरह झिलमिला रही थीं। वह समाधि में खो गया और उसके जगते ही डालियाँ फिर सरसराई, सितारे चमके, हवाएँ बहने लगीं, क्योंकि उसके साथ-साथ सृष्टि भी समाधि में खो गई थी।

और सृष्टि संगीत से भर गई–

मुरारी–तीनों लोकों के प्रकाश–जय-जय कृष्ण !

कुछ को तू अपनी सुंदरता से अपनी ओर खींचता है।

कुछ को बाँसुरी की आवाज़ से।

कुछ को तू अपने दैवी प्रताप के द्वारा अपना भक्त बना लेता है।

कुछ को अपने प्रकोप से प्रभावित करता है–गोपियों ने कहा।

कुछ को तू युद्धस्थल में नष्ट-भ्रष्ट कर देता है।

कुछ को तू अपनी आवाज़ के जादू से उन्मत करता है–गोपियों ने कहा।

परन्तु, तेरा सब से बड़ा हथियार प्रेम है।

जय कृष्ण !–जय-जय कृष्ण !!

ओम् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

संगीत धीरे-धीरे विलीन हो गया। चम्पा चौंक उठी। अँधेरे कमरे में केवल रेडियो का डायल चमक रहा था। "रेहाना तैयबजी की अंग्रेज़ी पुस्तक 'गोपी के दिन' का अनुवाद आपने सुना। अब आप कुमारी ज्ञानवती भटनागर से चंद्र कोनस का..." तलअत की आवाज़ आ रही थी। चम्पा ने हाथ बढ़ा कर रेडियो बन्द कर दिया।

फिर वह खिड़की में जाकर शाम के आसमान को देखने लगी। कृष्ण-कृष्ण--उसने दिल में दोहराया। बराबर की कोठी में कीर्तन हो रहा था। वह कान लगा कर आवाज़ सुनती रही। अंतर्ज्ञान क्या चीज़ होती है और मुहब्बत और शान्तिपूर्ण मित्रता की अनुभूति–यह सब क्या है ! और, भक्ति...रेहाना तैयबजी–इस मुसलमान लड़की ने भक्ति की ज़िस भावना में डूब कर यह किताब लिखी है, उसे बड़े-बड़े पण्डित भी न समझ पाएँगे।

यह क्या चीज़ है? मैं डायलेक्टिक्स में इसका हल ढूँढूँगी।

और मुहब्बत–ख़ुदाबंदा–जय, जय कृष्ण !

"बनत बनाऊँ बन नाहीं आवे हरि के बिना !–हरि के बिना !" बराबर के कमरे में कोई लड़की पूर्वी का ख़याल गा रही थी।

सहसा उसकी समझ में इसका मतलब आ गया। प्रेम वास्तव में विरह को कहते हैं।

घास पर लड़कियाँ टहल रही थीं। सोशल-रूम में पियानो बजाया जा रहा था। हर तरफ

गोपी का दिल दिखाई दे रहा था।...

"बजिया, क्या कर रही हैं?" हमीदाबानो ने खिड़की में से सिर डाल कर अन्दर झाँका—"प्रोफ़ेसर बैनर्जी के यहाँ आपका इन्तज़ार किया जा रहा है।"

"अरे !" उसने चौंक कर घड़ी देखी। सारे में जन्माष्टमी का त्यौहार मनाया जा रहा था। हवा में तूफ़ान काँप रहे थे। बाग़ों में झूले पड़े थे जिनमें कन्हैया को झुलाया जा रहा था। दूर सड़क पर एक टोली कीर्तन करती जा रही थी। ओम् जय जगदीश हरे—भक्त जनों के संकट—छन में दूर करे—

वह उतर कर नीचे आई और हमीदाबानो के साथ बादशाह-बाग़ रवाना हो गई। प्रोफ़ेसर के यहाँ बहुत बड़ा जमघट था। उसे जरा हैरानी हुई। शायद जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाएगा। उसने सोचा। वह अभी तक वृन्दावन में घूम रही थी।

"डायरेक्ट ऐक्शन ! कलकत्ता—कलकत्ता—दो हज़ार मौतें !"

यह क्या बातें हो रही हैं ? सपने से उसे किसी ने झिंझोड़ दिया। सामने गौतम भी मौजूद था। और, काग़ज़ों पर झुका जल्दी-जल्दी कुछ लिख रहा था।

"क्या हो गया?" उसने घबरा कर पूछा।

तलअत ने गुस्से से उसे देखा। रेडियो स्टेशन से वह भी सीधी वहीं पहुँची थी और उसकी साँस फूली हुई थी--"जो कुछ हो गया, चम्पा बाजी, वह आपको खुद ही मालूम हुआ जाता है।"

"हम शान्ति चाहते थे—हम शान्ति चाहते हैं। हम लड़ना नहीं चाहते। हम कदापि नहीं लड़ेंगे।" गौतम धीरे-धीरे कह रहा था। उसने दृष्टि उठा कर चम्पा को देखा भी नहीं। वह अपने कार्य में व्यस्त रहा।

"लेकिन, डायरेक्ट ऐक्शन?" किसी ने जोश से कहा।

"बकवास मत करो।" हरिशंकर ने कहा।

"ज़रा अपने लीडरों से जाकर पूछो, चम्पा बेगम—अब यह क्या हो रहा है !" किसी और ने उसके निकट आकर कहा।

चम्पा ने हड़बड़ा कर चारों तरफ़ देखा—"मेरे लीडर !" उसका कंठ सूख गया।

"हाँ हाँ--तुम्हारे लीडर। बड़े जोरों से लीग को वोट देने गई थीं।" नरेन्द्र ने कहा।

"यह ग़लत है !" उसने धीरे से कहा। फिर उसने गौतम की ओर देखा। लेकिन, गौतम ने मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

"चलो, यहाँ से चलें। हमारे घर चलो। वहाँ बैठ कर तय करेंगे।" हरिशंकर ने कहा।

"तय करेंगे कि चम्पा बाजी को फाँसी पर चढ़ाया जाए या न चढ़ाया जाए।" चम्पा ने कटुता से कहा।

जमघट ने उसे घूर कर देखा।

"रशीदा आपा के यहाँ चलो।" किसी और ने कहा।

"रशीदा आपा क्या कर लेंगी—और तुम।"

एक और व्यक्ति (ये सब फिर सफ़ेद, खाली चेहरे थे) हरिशंकर की ओर मुड़ा—"बड़े कम्युनिस्ट बने फिरते थे बेचारे? पाकिस्तान की माँग,' जनता की माँग है !"

"अब ख़ाली शान्ति की अपीलें करने और अमन-कमेटियाँ बनाने से क्या होगा?" दूसरे लड़के ने कहा—"अमन की अपील पर आज तक दुनिया में किसी ने अमल किया है?"

"हम नहीं लड़ेंगे।" गौतम ने दोहराया।

"हुँह ! गांधीवादियों से अधिक बड़ा फ़्रॉड कहीं नहीं देखा !" तीसरे ने कहा।

वह फिर लौटी। कैलाश होस्टल में यूनियन का संकटकालीन अधिवेशन हो रहा था। वह वहाँ से आगे बढ़ी। चाँद बाग़ के चैपल से आर्गन की आवाज़ उठ रही थी। राय बिहारी लाल रोड पर से गुज़रते हुए उसने मकानों पर दृष्टि डाली। उसका स्वागत करने वाला कोई दरवाज़ा कहीं नहीं था। अपने कमरे में वापस पहुँच कर उसने गौतम को फ़ोन करने के बाद बहुत देर तक रिसीवर उठा रखा—"कौन है !" गौतम की थकी हुई आवाज़ सुनाई दी। वह शायद अभी-अभी घर लौटा था।

"हैलो, मैंने सोचा तुमसे बात कर लूँ।"

"क्या बात है?" गौतम ने ज़रा झुँझला कर पूछा।

"तुम भी समझते हो कि मैं रिएक्शनरी हूँ?"

"मैं कुछ नहीं समझता, चम्पा रानी। यह समय निजी समस्याएँ और उलझनें हल करने का नहीं है। अगर तुम अपनी समस्याओं के रहते हुए भी धारे के साथ रहना चाहती हो तो यह बहुत बड़ी बात है। और, अगर नहीं तो हम क्या कर सकते हैं !"

"हम"—गौतम दल की ओर से बोल रहा था। वह फिर अकेली थी।

"लेकिन, मैं तुम्हारे साथ चलना चाहती हूँ।"

"मेरे साथ !"

"हाँ।"

वह बड़ा हैरान हुआ। "चम्पा मैं अभी पेरिस नहीं जा रहा हूँ।"

चम्पा को बहुत चोट लगी। वह उसे कितना ग़लत समझने पर तुला हुआ था।

"गौतम नीलाम्बर, तुम्हारे साथ पेरिस जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता। मैं कह रही हूँ, तुम लोग रिलीफ़-वर्क के लिए कलकत्ते जा रहे हो कल, मैं भी साथ चलना चाहती हूँ।"

"कहाँ मारी-मारी फिरोगी। जान का ख़तरा अलग है। और तुम्हारे अब्बा बनारस सिटी-मुस्लिम-लीग के प्रधान हैं। क्यों उनका नाम डुबोती हो?"

"तुमने भी मुझे ताने देने शुरू कर दिए।"

"मैंने भी ! क्या मुझमें कोई विशेषता है? मैं और सबकी तरह हूँ। उनके साथ हूँ। चम्पा रानी यह समझ लो कि संगठन बड़ी चीज़ है और आख़िरी सच्चाई है। अकेले व्यक्ति के रूप में तुम अपने ख़ोल में जा घुसीं तो इसका हमारे पास कोई इलाज नहीं।"

"तुमने फिर सैद्धांतिक बहस शुरू कर दी, अच्छा—गुडनाइट, गौतम !" चम्पा ने झुँझला कर फ़ोन बंद कर दिया।

दूसरे दिन सुबह उसे मालूम हुआ कि ग्रुप सिर पर कफ़न बाँध कर कलकत्ते रवाना हो गया। निर्मला, तलअत, तहमीना, सब चली गईं। केवल वह अकेली रह गई।

महीने गुज़रते गए।

ग्रुप कलकत्ते के बाद अब बंगाल और बिहार के सारे इलाक़ों में 'अमन', 'अमन' की

रट लगाता फिर रहा था। रात को गांधीजी के साथ बैठ कर वे 'रघुपति राघव राजाराम' अलापते, दिन में घायलों की मल्हम-पट्टी करते।

लड़कियाँ वापस आ चुकी थीं। लखनऊ का जीवन हमेशा की तरह चल रहा था। और अधिक ड्रामे, पार्टियाँ और कान्फ्रेंसें। एक दिन चम्पा ने अख़बार में पढ़ा कि बिहार में फल्गू नदी के किनारे बलवाइयों ने कुछ कार्यकर्त्ताओं पर हमला कर दिया। जो लोग घायल हुए उनमें कमाल, शंकर और गौतम भी थे। चम्पा ने घबरा कर साइकिल उठाई और 'गुलफ़िशाँ' रवाना हो गई। फाटक पर से उसने देखा कि स्टेशन-वैगन पर सामान लद रहा है। तहमीना, तलअत और निर्मला सफ़र के लिए तैयार खड़ी हैं। मियाँ क़दीर घबराए-घबराए फिर रहे हैं। अख़बार की सूचना दो-तीन दिन पुरानी थी। तहमीना ने उसे बताया कि सौभाग्य से शंकर के चाचा उस समय गया में मौजूद थे और इन तीनों को मोटर पर लाद कर गोरखपुर ले गए। वे वहाँ के सिविल सर्जन थे। और, अब वे तीनों भी गोरखपुर जा रही थीं।

"खैरियत से हैं वे लोग?" चम्पा ने चिंता से पूछा।

"गौतम की आवाज़ से तो यही ज़ाहिर होता है। अभी मैंने ट्रंककाल किया था।"

"हालाँकि चोट सबसे ज़्यादा उसी को आई है। चाचा कह रहे थे फ़ोन पर।"

"चम्पा तुम भी चलो।" तहमीना ने कहा।

वह व्यस्तता से झुकी एक अटैची बंद कर रही थी—"तुम पिछले दिनों इतनी अलग-अलग रहीं कि हम समझे बहुत व्यस्त हो।"

"मैं न तुम सबकी तरह किताबें लिखती हूँ न गाती-बजाती हूँ। सिवाय पढ़ाने के मेरी व्यस्तता क्या हो सकती है?"

"कॉलेज तो बंद है तुम्हारा। चलो—हमारे साथ, हम वापसी में तुमको बनारस छोड़ते आएँगे।" तहमीना ने कहा।

चुनांचे चम्पा को ग्रुप ने फिर वापस बुला लिया।

तीनों लड़के सिविल सर्जन साहब के बंगले के पिछले चौड़े बरामदे में लेटे हुए गला फाड़-फाड़ कर गा रहे थे। 'चलो हे ना गोरी—जोल पाये गोरी घामे !' तीनों बहुत ज़ख्मी हुए थे। दिन भर पड़े-पड़े दुनिया भर के गाने गाया करते। इप्टा के गीत, बंगाली कोरस, राजस्थानी और गुजराती लोक गीत, फिल्मी गाने। लड़कियाँ पहुँच गईं तो अब दिन भर रम्मी खेली जाती। शंकर के चाचा ने हुक्म दे रखा था कि दैनिक समाचारपत्र उन लोगों के निकट न आने पाए, रेडियो की खबरें उनके कान में न पड़ें। बड़े आयोजन से कोई लड़की रात को अख़बार स्मगल कर लाती है। प्रति दिन ख़बरों के साथ-साथ गौतम अपने भविष्य के कार्यक्रम बदलता रहता। उसके बाएँ हाथ की उँगलियों पर अभी प्लास्टर चढ़ा हुआ था—"पता नहीं मैं अपनी ये तीन उँगलियाँ कभी प्रयोग में ला सकूँगा या नहीं !" वह कई बार उदास होकर कहता। "चम्पा !" एक दिन उसने चिल्ला कर कहा—"ज़रा सोच सकती हो कि अब मैं पियानो कभी नहीं बजा सकूँगा !"

"क्यों नहीं बजा सकोगे, यार मॉरबिड न बनो। क्या 'ड्रामा' खेल रहे हो !" कमाल ने कहा। उसकी अपनी टाँग की हड्डी में चोट आई थी।

"अब ख़ैर क्या हो सकता है?"

जब वे तीनों चलने-फिरने योग्य हो गए तो वापसी की तैयारी शुरू हुई।

"चलो, पहले ज़रा आवारागर्दी करें। जाने इधर फिर कब आना हो !" कमाल ने कहा। कमाल को अब चुप लग गई थी। वह बैठे-बैठे सोच में डूब जाता, मगर गौतम को मॉरबिड न बनने का उपदेश देता।

"हमको यहाँ के गाँवों की दशा देखनी चाहिए। हम मिर्ज़ापुर भी जाएँगे, जहाँ हमारी कमरुन का घर है।"

"मिर्ज़ापुर में और न ठौर, न काशी हमरो घाट !" गौतम ने हँस कर चम्पा को देखा।

वह उदासी से मुस्कराई।

यह इलाक़ा बड़ा आकर्षक था। हराभरा और शान्तिपूर्ण। यहाँ के लोग भी बड़े मोहक थे—भोले-भाले और शान्तिप्रिय—रामदैया और रामऔतार और क़दीर और कमरुन का देश। यहाँ चारों ओर जुलाहों और ठाकुरों की बस्तियाँ थीं और क़स्बों में जमींदारों की हवेलियाँ और शहरों में पीले रंग की उदास कोठियाँ, जिनमें डिप्टीकलक्टर रहते थे।

वह छोटी लाइन की एक ट्रेन पर सवार हो गए। ब्रजभानगंज स्टेशन पर गाड़ी रुकी। यहाँ हरिशंकर की एक मौसी ढेरों फल-फला और नाश्ते के अंबार लेकर प्लेटफॉर्म पर मौजूद थीं।

"यहाँ से ज़रा आगे कपिलवस्तु है। चलो वहाँ होते चलें।" चम्पा ने प्रस्ताव रखा।

"मैं एक ज़माने में बुद्धिस्ट था बड़ा भारी" कमाल ने उदासी से कहा।

"कहाँ जंगलों में मारी-मारी फिरोगी चम्पा बेगम" गौतम ने उकताए हुए स्वर में कहा।

"बहुत लम्बा सफ़र बाटे"—हरिशंकर की मौसी ने कहा—"हियाँ मोटरऊ नाहीं मिलत है।"

वह स्वयं बहली पर आई थीं। यहाँ सवारी के लिए केवल हाथी मिलते थे—तराई के हाथी। वे हाथियों पर बैठ कर कपिलवस्तु पहुँचे। गाँव वाले उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे।

दूर हिमावत् की गुलाबी चोटियाँ धूप में झिलमिला रही थीं। चारों ओर लाल छतों वाले मकान थे और आम के बाग़ और बाँस के झुण्ड।

कपिलवस्तु के खंडहरों में पहुँच कर चम्पा ने चारों तरफ़ दृष्टि डाली। कमाल बड़ी तल्लीनता से एक पत्थर को रूमाल से साफ़ करने लगा। उस पर लिखा था—

"महाराजा पियादास ने अपने जुलूस के इक्कीसवें साल स्वयं यहाँ आकर आराधना की—क्योंकि इस स्थान पर बुद्ध शाक्य मुनि पैदा हुए थे। क्योंकि यहाँ बुद्ध ने जन्म लिया था, इसलिए इस गाँव की मालगुज़ारी माफ़ की जाती है।"

अब यहाँ वे कमल के तालाब और सुनहरे हिरनों की डारें और वृक्षों के कुंज और चमेली के फूलों से घिरी हुई बारहदरियाँ कहाँ हैं?—चम्पा ने अपने आप से पूछा। वह इन सबसे ज़रा अलग एक पत्थर पर बैठी थी। यहाँ तो वीराना है, और रातों को गीदड़ चिल्लाते हैं। यहाँ फ़सील की टूटी-फूटी दीवारें हैं और मिट्टी के टीले और टूटे-फूटे चौकोर तालाब, महारानी मायादेवी के वे महल सुर्ख ईंटों के एक ढेर की शक्ल में चाँदनी में नज़र आ रहे थे। करीब ही रोहिणी नदी इस शांति से गुनगुनाती हुई बह रही थी जैसे कोई बात ही नहीं।

"यार, बड़ा सन्नाटा है।" कमाल ने सहसा घबरा कर कहा।

"बड़ा गहरा सन्नाटा है।" हरिशंकर ने उत्तर दिया--"चलो, अब वापस चलें। हाथी हमारा इन्तज़ार कर रहे हैं।"

गौतम ने कैमरा उतार कर हाथ में ले लिया। "दिन का वक़्त होता तो तस्वीरें ही खींचता।" उसने और ज़्यादा बोर होकर कहा।

कमाल मुँह लटकाए बैठा रहा।

"शंकर, यार, इतिहास बड़ा जबरदस्त फ्रॉड है। इतिहास हमें बराबर धोखा देता है।" उसने कहा।

"हाँ, ठीक कहते हो !" शंकर ने हमेशा की तरह उसकी बात का समर्थन किया।

वे धीरे-धीरे चलते हाथियों की तरफ़ आए। उनकी परछाइयाँ चाँदनी में महारानी मायादेवी के महल के खंडहरों पर से गुज़रती बड़ी अजीब-सी लगीं।

55

वापसी में चम्पा बनारस उतर गई। केंटोनमेंट के स्टेशन पर पहुँच कर उसने साथियों को खुदाहाफ़िज कहा और ताँगे में बैठ कर घर की ओर रवाना हो गई। दुर्गा पूजा और रामलीला का हंगामा शुरू हो चुका था। उसने अपने शहर पर नज़र डाली 'तपलेश्वर'—उसने कहा—अनादि काशी—काशी मुझे अपनी शरण में रखना। अपने मुहल्ले में पहुँच कर उसे दूर से अपने घर का छोटा-सा फाटक दिखाई दिया। गुलाबी जाड़ों की रात थी। उसके मकान में इस तरह रोशनी हो रही थी, जिस तरह अँधेरे समुंदर में जहाज़ रौशन होता है। वह अन्दर पहुँची। एक रिश्ते की बहन की शादी का हंगामा था। चारों तरफ़ शोर मच रहा था। दालान में रुई के पर्दे लटके थे। अन्दर तख़्त पर मिरासिनें बैठी थीं। वह जाकर एक अँधेरी सहनची में खुर्रे पलंग पर लेट गई, जिसके पाँएती किसी मेहमान बीबी का बच्चा दुलाई में लिपटा बेख़बर सो रहा था। दालान में से बुआ हुसैन बाँदी की पाटदार आवाज़ आ रही थी—

उसने कहा, तू कौन है?
मैंने कहा, शैदा तिरा !
उसने कहा, करता है क्या?
मैंने कहा, सौदा तिरा !

आँगन की दीवार पर औरतों की चलती-फिरती परछाइयाँ काँपती रहीं। किसी ने ज़ोर से लोटा चौकी पर रखा, सहनची में कोई बच्ची सोते में रोई।

मिरासिनों ने गाया--

उसने कहा, करता है क्या?
मैंने कहा, सौदा तिरा !

उनकी आवाज़ बहुत से अर्थहीन शब्द दोहराती रही। फिर एक नवयुवती मिरासिन ने गाना आरम्भ किया—"अर्टा... पे चोर, भौजी दिया तो जलाओ !" फिर समधनों की गालियाँ शुरू हुईं। उसके बाद सुहाग गाया गया। वह आँखें बंद किए यह सारी आवाज़ें सुनती रही। बावर्चीख़ाने में तेल का दिया जल रहा था। चारों ओर धुएँ की कालौंच थी और बघार की महक।

घर ! घर...!! अपना घर...!!

फिर रात का सन्नाटा छाया, और एक बैलगाड़ी खिड़की के नीचे सड़क पर चर्रखचूँ करती गुज़री। उसके पहियों से एक विचित्र-सी कर्णकटु ध्वनि निकल रही थी। चम्पा को याद आया, बचपन में जब वह गंगापार अपने नाना के गाँव शेख़मपुर जाया करती थी तो एक बार रसूलन महरी ने कहा था—"जानो जब्बे गाड़ी से ई आवाज़ निकली, जानो भवानी खफ़ा हुईं—बुरा सगुन हो—बोहुतै बुरा सगुन...!"

एकाएक उसका दिल धड़कने लगा—क्या होगा ! क्या होने वाला है? और, उसके तार्किक अस्तित्व ने उसे समझाया—कुछ नहीं, सब ठीक हो जाएगा। अब ऐसा भी अँधेर नहीं मचा है...मगर कमाल का विश्लेषण तो यह है...ऊँह, कमाल को मारो गोली, क्या उसी का विश्लेषण ठीक हो सकता है ! और, ये कम्युनिस्ट क्या कहते हैं? ऊँह...इनकी भली चलाई ! सोचते-सोचते गौतम नीलाम्बर और कमाल का जोश-ख़रोश, तलअत की वाचालता, तहमीना का शांतिपूर्ण व्यक्तित्व, सब एक-एक करके उसके मस्तिष्क में आए और वह स्वयं कौन थी, क्या थी—उसको लोग क्या समझते थे, गौतम उसे क्या समझता था? गौतम की राय इस कदर प्रिय क्यों है? जहन्नुम में गया वह, और आमिर रज़ा—आमिर रज़ा—

सुबह को वह दिन चढ़े तक सोती रही।

दिन बीतते गए। सूर्पणखा की नाक कटी, रावण जला, भरत-मिलाप हुआ, दुबले-पतले लड़के मुँह पर सेरों पाउडर और सफ़ेदा पोते, पन्नी के नक़ली मुकुट पहने राम और लक्ष्मण बने, बड़े गर्व के साथ गतिमय सिंहासन पर सवार हुए। इंसानों को उनमें भगवान के दर्शन हुए। छुट्टियाँ समाप्त होने पर वह लखनऊ वापस आ गई। ज़िंदगी जारी रही। कार्तिक के महीने में अमावस की रात को दीपमालिका ने रौशन कर दिया। छोटी और बड़ी दीवाली मनाई गई। घर-घर लक्ष्मी की पूजा की गई। "आज लोना चमारी की अमलदारी है।" 'गुलफ़िशाँ' के बरामदे में ख़ाला बेगम ने अपना विचार प्रकट किया—"बच्चो, बाहर मारे-मारे मत फिरो। आज की रात जाने कितने जादू-टोने होंगे।"...सामने चौराहे पर दोने में मिठाई रखी थी और दिया जल रहा था। जाने कौन वहाँ रख गया था। "याद है? एक बार जादू की हंडिया उड़ती हुई आई थी और हमारे अहाते में गिरी थी।" तलअत ने कहा। वे घास पर आकर आकाश को देखने लगे। "आज की रात लक्ष्मी अपनी सवारी उल्लू पर बैठी सारी दुनिया पर उड़ती फिर रही हैं ! जाने वे किस-किस के दरवाज़े में प्रवेश करेंगी।"

"बाहर घास पर मत जाना बच्चो !"—ख़ाला बेगम ने फिर आवाज़ लगाई। "बरसात का साँप दिवाली का दिया चाट कर बिलों में जाता है।"

जगह-जगह चौराहों और गलियों में जुआ हुआ। रामऔतार और क़दीर जुआ खेलने गए ("अरे अगर आज जुआ न खेला तो अगले जनम मा छछून्दर की जोनी मिली !"—रामऔतार ने कहा।) फिर भैयादूज का त्यौहार आया। हरिशंकर क़ालीन पर चढ़ा बैठा था और निर्मला उसके माथे पर तिलक लगा कर उसके सामने मिठाई परोस रही थी। "गंगा के भाई की तरह मेरा भैया अमर रहे।" उसने मंत्र दोहराया। फिर अगहन और पूस के पाले ने पेड़ों पर चाँदी के पत्र चढ़ा दिए। गाँवों में नौटंकियों के गीत गूँजे। चौपालों में महाभारत की कहानियाँ दोहरायी गईं। सफ़ेद अटंगी साड़ियाँ पहने ईसाई औरतें गाती फिरीं—"ओहो मसीह आया सरे आस्माँ,

सरे आस्माँ—!" खिचड़ी का त्यौहार आया तो लोग माघमेला नहाने त्रिवेणी चले। बसन्त-पंचमी में घर-घर सरस्वती-पूजा की गई। इंसानों ने अपनी कल्पना में देखा कि गोरे रंग की देवी सफ़ेद साड़ी पहने, सफ़ेद कँवल पर बैठी स्वच्छ देवी जल पर तैर रही हैं। कुम्हारों के हाथ की बनाई हुई मिट्टी की मूरत में भी उन्हें देवता के दर्शन हुए। फिर फागुन की ऋतु आई। शिवरात्रि की तैयारियाँ की गई। निर्मला ने 'सिंघाड़े वाली कोठी' के ठाकुरद्वारे में विल्व की पत्तियाँ, धतूरा और चावल थाली में रख कर शिव की आरती उतारी।

मुहर्रम का हंगामा हुआ। घर-घर घास, मोम और कागज़ के ताज़िए तैयार किये गए। इंसानों ने अपनी सारी कला उन पर ख़त्म कर दी। इन कागज़ों, पन्नियों और रेशम के पालनों, ताबूतों और ताज़ियों में भी उन्हें ख़ुदा का जलवा नज़र आया। इमामबाड़ों में चरागाँ। गली-कूचों से पीलू सोहनी और दुर्गा में शोकगीतों की आवाज़ें उठीं। सारे वातावरण ने शोक का लबादा ओढ़ लिया। हर व्यक्ति हुसैन का शोक मनाने लगा। सिब्तैनाबाद के इमामबाड़े में आठवीं की मजलिस के बाद एक ईसाई फ़क़ीरनी ने चम्पा का दामन पकड़ कर कहा—"बिटिया, सिवा ग़मेहुसैन के ख़ुदा आपको कोई ग़म न दे ! मौला के नाम पर एक डबल देती जाइए !" शाहनजफ़ के इमामबाड़े में चरागाँ के दिन हमेशा की तरह बिजली के क़ुमकुमों से बने हुए अक्षरों में "हिज़ मजस्टी किंग गाज़ीउद्दीन हैदर" का नाम जगमगाया। मार्च के महीने में सारा वातावरण गुलाल और अबीर से लाल हो गया। कृष्ण की मूर्ति को झूलों में बैठाया गया। सुबह-सुबह बोन फ़ायर से राक्षसी होलिका जली। होलियारे सड़कों पर कबीर गाते फिरे।

यह सब दिमाग़ का धोखा था। ज़हन का छलावा, नज़र का बहलावा। किसी चीज़ का कोई अर्थ नहीं था। केवल व्यक्तिगत आनन्द मूल वस्तु थी—जहाँ मिले, जिस मूल्य पर मिले, निजी आनन्द प्राप्त करो। तुम्हारे सिद्धान्त, तुम्हारी जेल-यात्राएँ, तुम्हारी कांग्रेस, तुम्हारी मुस्लिम-लीग, सब बकवास है। तुम लोग, जो इन्सानियत की क़िस्मत का फ़ैसला करवाने चले हो, मारा-मारी में इंसानों का मानो ख़ून बह गया। नहीं—मुझे केवल व्यक्तिगत आनन्द चाहिए ! घर, शान्ति, बच्चे, पति का प्रेम।

"तुम क्या अफ़सोसनाक बातें सोच रही हो, चम्पा बेगम। शर्म करो ! शर्म करो !" खिड़की में टाँगें लटकाए बैठा उसका तार्किक अस्तित्व पलट कर उससे बोला—"शर्म करो ! शर्म करो !" हवा में आवाज़ की प्रतिध्वनि गूँजी। भादों के झाले उसे यही सुनाते हुए मालूम हुए। काले बादलों ने चारों ओर से बढ़ कर उसे अपने में समेट लिया। इतना ज़ोरदार रेला आया कि धरती-आकाश एक हो गए। नदी-नाले जल से भर गए। गौड़-मल्हार की तानों में दुनिया भर का दर्द सिमट आया। पुरवाई के झोंकों ने दिल को काट-काट डाला।

वह पेड़ों की टहनियाँ सामने से हटाती सड़क पर आ गई। सामने प्रोफ़ेसर बैनर्जी की कोठी थी। उनके ड्राइंग-रूम में बहुत बड़ा जमघट था। आज के दिन संसार में बड़े महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए थे (ये लोग निर्णय करते समय मेरे सम्बन्ध में क्यों नहीं सोचते? मैं चम्पा अहमद, जो यहाँ अकेली खड़ी हूँ।) ड्राइंग-रूम के पर्दों के पीछे वे सब जमा थे। वह धीरे-धीरे चमेली की भीगी झाड़ियों में से गुज़रती खिड़की के नीचे आकर खड़ी हो गई और अन्दर झाँका। प्रोफ़ेसर सफ़ेद धोती और कुर्ता पहने सैटी पर चुपचाप बैठे थे। गौतम भी था और कमाल भी। गौतम नए हिन्दुस्तानी दूतावास के साथ मास्को जा रहा था। कमाल फ्लीट स्ट्रीट में पाकिस्तान के

दृष्टिकोण के विरुद्ध प्रचार करने के लिए लंदन भेजा जा रहा था कि आज मालूम हुआ कि पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली गई। नौकरी-पेशा अब इस चिंता में डूबे थे कि अपनी नौकरियाँ कहाँ ट्रांसफर कराएँ। यहाँ रहे तो नुकसान है।

"...उनका ख़याल भी ठीक है।" गौतम कह रहा था—"पाकिस्तान मुसलमानों की आर्थिक समस्या हल करने के लिए बनाया गया है—तुम्हारे बाबा का क्या इरादा है?"

"बाबा कैसे जा सकते हैं ! जमींदारी नहीं चली जाएगी साथ? भैया साहब ने अलबत्ता ऑप्ट कर दिया है" कमाल ने उत्तर दिया।

दिल्ली, शिमला, नं. 10 औरंगज़ेब रोड़, वॉयसरीगल लॉज, भंगी कॉलोनी—ये शब्द चम्पा के कानों में आते रहे। वह खिड़की से हट आई, और चलती हुई फिर सड़क पर आ गई।

अब उसके सामने दो दुनियाएँ थीं।

एक ओर ये लोग थे। उनके दिल-दिमाग़, उनके आदर्श, उनका संघर्ष। मगर, यहाँ भविष्य बहुत अस्पष्ट था। दूसरी ओर, शान्ति थी, और सुरक्षा, निजी आनन्द। आमिर रज़ा पाकिस्तान जा रहे हैं। क्यों न जाएँ, आख़िर वह कमाल की तरह सिरफिरे थोड़े ही हैं। यहाँ उनका भविष्य क्या है? नये देश में उन्नति करके वे कहीं से कहीं जा पहुँचेंगे। निजी आनन्द, निजी उन्नति, निजी उद्देश्य—आख़िर क्यों नहीं। राजनीति ही तो सारा जीवन नहीं। दूसरों के लिए मैं क्यों सोचूँ? दूसरों ने मुझे अब तक क्या दिया?--चुनांचे उसने विस्तार से सोचना शुरू किया--मैं आमिर रज़ा से शादी करके पाकिस्तान चली जाऊँगी—कितनी आसान बात है !...सहसा ऐसा लगा जैसे हुल्लड़ समाप्त हो गया। सब जगह शांति छा गई। उसने कल्पना में अपना नाम पढ़ा--बेगम आमिर रज़ा—कराची। वाह भई! मगर ये लोग—कम्बख़्त बहुत याद आयेंगे : पर, अब इंसान को दुनिया में हर चीज़ तो हासिल नहीं हो सकती। तुम केक लो भी, और उसे खाओ भी, नामुमकिन है। वह शाही फाटक तक पहुँच गई। उसके पीछे-पीछे गौतम आ रहा था।

"चम्पा बाजी, ख़ुदाहाफिज़।" उसने कहा।

"जा रहे हो मास्को?"

"हाँ।"

"कमाल का क्या हुआ?"

"वह जा तो रहा है। जुलाई में चला जाएगा। तलअत और निर्मला भी जा रही हैं। उन सब को केम्ब्रिज में दाख़िला मिल गया है।"

"बहुत ख़ूब !"

"आप भी क्यों नहीं बाहर चली जातीं, चम्पा बाजी? यहाँ बेकार अपना वक़्त गँवा रही हैं। हाँ, अगर शादी कर रही हों तो दूसरी बात है, मुझे विश्वास है, कि आप पाकिस्तान चली जाएँगी।"

वह बादशाह बाग़ के फाटक के पुराने गुम्मों से पीठ टिका कर खड़ी हो गई। गौतम उसके सामने मौजूद था लेकिन वह बिलकुल अकेली थी।

"आख़िर तुम बताते क्यों नहीं, कि मुझे क्या करना चाहिए !" उसने लगभग चीख कर कहा।

"आप किस-किस सिलसिले में मुझसे राय ले रही हैं? आप ही ने तो कहा था—कौन किसको राय देगा? कौन किसका उपदेशक बन सकता है? मैं कमीना नहीं हूँ, चम्पा बाजी, सिर्फ़ यथार्थवादी हूँ।"

"तुम्हारे पास मेरे लिए सिर्फ़ यही शब्द हैं?"

"आप तो शब्दों में उनके मानी नहीं देखना चाहतीं, इसलिए क्या फ़र्क़ पड़ता है। मैं जो भी कहूँ, वह अर्थहीन होगा। ख़ुदाहाफ़िज़। 'गुलफ़िशाँ' जाइए तो अप्पी को बता दीजिएगा। मैं सुबह दिल्ली जा रहा हूँ।" वह आगे चला गया।

तलअत और निर्मला बातें करती पास से गुज़रीं।

"दिल नहीं मानता, कि देश को इस दशा में छोड़ कर हम इंग्लिस्तान भाग जाएँ, हालाँकि शिक्षा भी बहुत ही ज़रूरी चीज़ है ! फिर भी यह बड़ी सख़्त बुर्जुआ अवसरवादिता हुई ना?" तलअत कह रही थी।

"बिलकुल !—हालाँकि कैम्ब्रिज में इतनी कठिनाई से दाख़िला मिलता है। अगर अब न गए तो समझो कई साल बेकार गए।" निर्मला ने जवाब दिया।

"हाँ, यह भी ठीक कहती हो।" वे दोनों भी उसे 'हलो' कहती हुई आगे बढ़ गईं। अब कमाल पास से गुज़रा।

"चम्पा बाजी, मुबारक हो ! तुम्हारा पाकिस्तान बन गया।" उसके स्वर में जितनी कटुता, नफ़रत और निराशा छिपी थी, उसकी कल्पना करके चम्पा काँप उठी। उसका विचार था कि अब कमाल एक और लेक्चर देगा, उसे बुरा-भला कहेगा, मगर यह क्या हुआ कि कमाल अब बिलकुल ख़ामोश था ! जैसे कि अब और कुछ कहने-सुनने, ख़फ़ा होने, बहस करने का समय गुज़र गया। बातों का दौर ख़त्म हुआ। अब एक वास्तविक दुनिया सामने थी—फ़ैसले और अमल की प्रतीक्षा में। कमाल क्षण भर के लिए ख़ामोश खड़ा फाटक को देखता रहा। जिसके एक अँधेरे ताकचे में चौकीदार की लालटेन जल रही थी। इसके बाद वह भी चुपचाप आगे चला गया।

वह अकेली वहाँ फूलों के हलके अँधेरे में खड़ी रही। ये सब उसका साथ छोड़ कर अपने-अपने रास्ते पर चले गए। वह फाटक से निकल कर सड़क पर आ गई। मकानों और पेड़ों के पार 'गुलफिशाँ' में रोशनियाँ जल रही थीं। 'गुलफिशाँ' जो उसके लिए अजनबी था मगर उसमें 'वह' भी मौजूद था—'वह' जो उसका हाथा थामेगा। वह उसके रास्ते पर चलेगी। आख़िर ज़िंदगी में रूमान और मुहब्बत और गुलाब की कलियों का अस्तित्व है कि नहीं? इंसान कहाँ तक केवल परछाइयो का पीछा करे। वह उससे कहेगी—लो, भई, मैं यहाँ हूँ। हंगामे ख़त्म हुए। अब सकून और आराम का वक़्त है। इन लोगों को संघर्षों और कष्टों की घाटी में पागलों की तरह अपने बाल नोचने और ख़ाक छानने दो। एक समय आएगा, जब ये भी थक जाएँगे और मुँह लटका कर कहीं शरण लेने की जगह तलाश करेंगे। लो मैं आ पहुँची। ख़ालिस रूमान का अर्थ मैं पूरी तरह नहीं समझ पाई। जिसके तुम सिम्बल हो। (यहाँ हर चीज़ का सिम्बल मौजूद है। इन लोगों ने सिम्बल में सारी ज़िंदगी को बाँट दिया है), मगर अब मैं तुम्हारी ओर आती हूँ।

फाटक पर उसे रामऔतार मिला।

"भैया साहब हैं?" उसने सहसा अनुभव किया कि उसकी आवाज़ काँप रही है। वह चोरों की तरह डरी हुई है जैसे वह 'गुलफिशाँ' में सेंध लगाने आई है।

"भैया साहब तो अभी-अभी चले गए।"

"कहाँ?"

अब बाग़ के अँधेरे में से निकल कर गंगादीन भी सामने आ गया।

"कहाँ चले गए भैया साहब?" चम्पा ने दोहराया।

"वहीं।" रामऔतार ने कटुता से उत्तर दिया—"मुसलमानों के पाकिस्तान। अब आप भी चली जाइएगा—सब जने चले जइहैं? हम यहाँ अकेले रह जइहैं।"

गंगादीन रामऔतार के निकट आ गया। वह बड़ा पढ़ा-लिखा आदमी था और रोज़ हिन्दी अख़बार पढ़ा करता था। "भैया साहब बड़े बेवफ़ा निकले। चम्पा बिटिया को छोड़ कर चले गए चुप्पे से। उन्होंने हमें भी छोड़ दिया। भैया साहब ने गंगादीन से दग़ा की...बड़ी बेवफ़ा, बड़ी बेमुरव्वत क़ौम है, उसे आज के हिन्दी अख़बार का सम्पादकीय याद आया जिसमें मुसलमानों को ग़द्दार बताया गया था।

"भैया साहब बम्बई गए हैं। हुआँ जहाजन का बटवारा होत है। अपने मुसलमानी जहाज लेकर कराची चले जइहैं—कदीर बतावत रहे।" रामऔतार ने सूचना दी—"हां लला ला लला—" उसने तोतों को उड़ाने के लिए फलों के पेड़ों पर एक पत्थर फेंका।

गंगादीन और रामऔतार को अपने-अपने सोच में डूबा छोड़ कर वह वापस लौटी। भैया साहब चले गए, क्योंकि घोड़ों, मोटरों और लड़कियों के अतिरिक्त अब उनकी ज़िंदगी में एक नई दिलचस्पी पैदा हो चुकी थी। नया देश, नया पद, उन्नति, नई समस्याएँ- पुरुषों की दुनिया बिलकुल अलग होती है।

"इस व्यक्ति के लिए मैंने इतना वक़्त बर्बाद किया ! अरे, मैं कितनी बेवक़ूफ़ थी !" फिर उसे एहसास हुआ—सारी बात यह थी कि भैया साहब बेहद रूपवान हैं और उसने भैया साहब के साथ बहुत अच्छा वक़्त गुज़ारा था। यादों के ख़ज़ाने में ऐसे वक़्त की ज़रूरत भी होती है। लेकिन, मुझे उनसे प्रेम नहीं था--हरगिज़ नहीं। सामने भैया साहब की पिछली दुनिया फैली हुई थी। 'गुलफिशाँ' का लॉन, जिसके सिरे पर यूक्लिप्टस के पेड़ खड़े थे...उनके मुसाहिब—कमाल, गंगादीन, उनका ख़ानदान, उनकी कज़िन तहमीना, जो अन्दर बैठी होगी। वह भी उन पर जान देती थी। भैया साहब ख़ूबसूरत थे और घमंडी। उनको घमंड जाने काहे का था !—चम्पा को सोच कर हँसी आ गई। उसका जी चाहा, ख़ूब ज़ोरों का क़हक़हा लगाए। इंसानों को आख़िर ग़रूर होता किस बात पर है ? अपने व्यक्तित्व पर? व्यक्तित्व ! गौतम नीलाम्बर को अपनी प्रतिभा पर घमंड है। कमाल को अपने उसूलों पर अटल रहने का घमंड है। तहमीना अपने मिज़ाज की नम्रता पर गर्व करती है। लोग इतने आत्म पूजक क्यों हैं? चम्पा ने चलते-चलते आसमान की तरफ़ देखा। बारिश आ रही है। हवाओं में आज़ादी थी। पत्तियों की सरसराहट में अजीब क़िस्म का सन्तोष छिपा हुआ है। केवल मैं ही यह महसूस कर रही हूँ या और लोग भी इस आज़ादी का अनुभव कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर तहमीना—और गौतम, जो अपने कज़िन की बीवी शान्ता को प्यार करता है...।

"हा-हा-हा...हाउ फ़नी !" उसने दिल में कहा।

फिर उसने अंधाधुंध भागना शुरू किया। विस्तृत भीगी सुगंधित धरती चारों तरफ़ फैली थी। बाग़ों के गीले रास्ते, जिनके दोनों तरफ़ ऊँची-ऊँची बाड़ें थीं—रविशें—घास, जिस पर बीरबहूटियाँ चल रही थीं। आम के पेड़ों पर ऊदे गहरे बादल झुके थे। ज़मीन में से आर्द्रता और सुगन्ध की लपटें उठ रही थीं। स्वच्छ पानी के बरसाती नाले के बराबर जो पगडण्डी जैसी बन गयी थी, उसे उलाँघ कर वह बरसों दूसरी लड़कियों के साथ यूनिवर्सिटी जाती रही थी। सामने मौलसिरी वाली सड़क से गुज़रते अब भी लड़कियों के झुंड होस्टल की ओर जा रहे थे—'गुलफ़िशाँ' के अहाते का चक्कर काटकर वह पिछवाड़े वाली सड़क पर आ गई। उधर से एक कच्चा रास्ता 'सिंघाड़े वाली कोठी' और नदी की ओर जाता था। सामने सरकंडे की टट्टी लगी हुई थी। चारों ओर फूलों की बेलें झुकी थीं। हरे तोते शोर मचा रहे थे। हर चीज़ वही थी। सामने लौकी की बेल में से उसे कमरुन का आँचल नज़र आया।

"का बात है, बिटिया?" कमरुन ने एकाएक सामने जाकर पूछा।

"कुछ नहीं डरेवर की बीवी..." उसने कहा।

कमरुन चुप खड़ी देखती रही।

"हम यहाँ बैठ जाएँ, डरेबर की बीवी?"

"जी हाँ आइए—ज़रूर बैठिए। बारिश आ रही है, बिटिया—ओसारे में आ जाइए।"

वह सर्वेंट-क्वार्टर के बरामदे में आ गई। बरामदे की धरती गीली थी। मुंडेर पर रखे बर्तन जगर-जगर कर रहे थे। दीवार पर क़दीर की गोल, काली टोपी खूँटी पर टँगी थी। चादर पर पापड़ फैले थे।

"पापड़ सुखावे खातिर तनिकौ घाम नाहीं मिलत है।" कमरुन ने बात शुरू की। उसे मालूम था, कोई बात ज़रूर है। अन्दर कोठी में भी सन्नाटा था—"बिटिया, आप लोग मनई की तबीअत नाहीं जानत हैं। हम पंच तो ई जानत हैं कि मनई जबै खुश रहत है जब बराबर ऊ की टहल किए जाओ, ऊ की खातिर अपनी ज़िंदगी तज डालो। वैसे ई लोग कबौ खुश नाहीं होवत हैं। हम तहमीना बिटिया को कैसे समझाई कि लड़कीयन का अपनी औकात पहचाने का चाही। ऊ भैया साहब से बिगड़ गई रहिन। लो, वह उनसे एक ठो बात किए बिगैर ही पाकिस्तान चले गइन। अब बिटिया साहब रोवत है।"

चम्पा चुप रही।

"लड़की की का औकात है—?" कमरुन उदासी से कहती रही—"मेहरारू बन जाए तब भी मनई की नौकर, महतारी बन जाए तब भी, और बुढ़ौती के जमाने में पतोहू ब्याह कर लाए, ऊ की धौंस अलग सहे। का आप हू दिल्ली ... जा रही हैं?"

"हाँ, शायद।"

"अच्छा है, बिटिया। मुल अगर इनका चाहत हैं, जी का चैन इनका छोड़ कर भी न मिलिहैं।"

"भैया साहब न स..., कोई और सही। सब मनई एक-से थोड़ा ही होत हैं, डरेबर की बीवी।" चम्पा ने ज़रा घबरा कर कहा। पुरवाई का एक झोंका आया। बादलों से बूँदें टप-टप छप्पर पर बरस पड़ीं।

"सब मनई एक से होवत हैं बिटिया!" कमरुन ने कहा। "पान बनाई?"

"नहीं कमरुन, रहे दयो—अब हमहू चलबै।" चम्पा पीढ़ी पर से उठ खड़ी हुई। और, छतरी सँभाल कर पगडण्डी पर से होती हुई पेड़ों में ग़ायब हो गयी।

कमरुन छप्पर में से बाहर उदासी से उसे देखती रही—"ई बिटियान बात काहे नहीं समझ पावत हैं।" उसने छुटकी रामदैया से कहा।

"बिटियान में हिम्मत नहीं, डरति हैं। समझति हैं थोड़ा-सा अंग्रेज़ी पढ़ लिहिन तो दुनिया जान गईं। बिटियान में हिम्मत नहीं।" छुटकी ने सिर हिला कर उत्तर दिया।

56

तलअत तानपूरा उठा कर बरामदे में आ बैठी। उसने—'अबके सावर घर आजा' अलापना चाहा, मगर आवाज़ उसके कंठ में अटक गई। तहमीना कमरे में बैठी मशीन पर ब्लाउज़ सीं रही थी। बारिश बन्द हो जाने से एकदम उमस छा गई। तलअत उठ कर कमरे में आ गई।

भैया साहब को गए कई दिन गुज़र चुके थे। अब वह कराची में होंगे। ऐसा लगता था मानो वे कभी यहाँ थे ही नहीं। यह बिलकुल सही था कि इस हमारी दुनिया में उनकी कोई जगह न थी—"वे पाकिस्तान न जाते तो और कहाँ जाते? हर व्यक्ति का विचार उसके हौसले के अनुसार होता है" तलअत ने सोचा। उनका जाना बिलकुल लाजिकल था। उनके जाने से मानो पहला ऐक्ट समाप्त हुआ। वे भला क्या खाकर हमारे साथ हमारे तूफ़ानों का सामना करते !—भगोड़े कहीं के ! वह तहमीना की मदद के लिए मशीन का हैंडल घुमाने लगी। "चम्पा बाजी ने बड़े सुन्दर शोपीस ख़रीदे हैं !" उसने केवल कुछ बात करने के लिए कहा।

तहमीना ने सिर उठा कर उसे इस तरह देखा मानो वह बड़ी रहस्यमयी लड़की थी। पंखा घूँ-घूँ करता चलता रहा। बाहर दरख़्तों में एक कोयल बराबर 'कुऊ' 'कुऊ' किए जा रही थी। बहुत दूर से रामऔतार की आवाज़ आ रही थी। तलअत में सहसा आत्मविश्वास लौट आया।

"असल में अप्पी, यह सब भावनाओं की बात है—भावनाओं और मानसिक हमदर्दी और इक्वेशन।" उसने विद्वतापूर्ण ढंग से कहना शुरू किया। इतना समय गोतम वग़ैरा की संगति में गुज़ार कर उसे इन शब्दों पर विश्वास आ गया था।

"अब तुमने भी यह चार सौ बीसी शुरू की।" तहमीना ने उकता कर कहा।

"चार सौ बीसी !" तलअत ने भयभीत होकर कहा। "अप्पी, यह सच है। प्रॉब्लम्स् का त्रिकोण बन जाता है। तुम्हारी प्रॉब्लेम, भैया साहब या चम्पा बाजी की प्रॉब्लेम और इन सबका इंटर-एक्शन—यानी कि..."

तहमीना ने उसे ग़ौर से देखा—"तुम केम्ब्रिज जा रही हो ना?"

तलअत बुरा मान गई। अप्पी मुझे बेवकूफ़ समझती हैं। क़सम ख़ुदा की, अप्पी मुझे बेवकूफ़ समझती हैं।

"आपके नज़दीक मैं चुग़द हूँ?" उसने दुःखी होकर पूछा।

"नहीं, तुम बहुत अक़्लमन्द हो—मगर औरत भी हो !"

"अप्पी !" तलअत दहाड़ी—"अप्पी, तुमने हद कर दी। तुम इतनी बुर्जुआ हो गईं। तुमने पढ़-लिख कर गधे पर लाद दिया !" उसका जी चाहा, अप्पी की मनोवृत्ति पर दहाड़ें मार-मार कर रोए—"हाय अप्पी !" उसने तहमीना को अलमारी में से रंगीन धागे की रीलें निकालते हुए देख कर कहा—"अरे, तुम तो मूवमेंट में शामिल थीं। तुमने बड़े-बड़े मोर्चे सर किए थे। वह सन् '42 का वाक़या याद नहीं, जब सर मारिस गायर आया था और तुम काली झंडियों के जुलूस में आगे-आगे थीं। रशीदा आपा की तुम लेफ़्टीनेंट रहीं। क्या-क्या तक़रीर तुमने यूनियन में कर डाली ! चम्पा बाजी जैसी रिएक्शनरी को तुमने एजुकेट करने की कोशिश की। और, अब तुम औरत का लेबल चिपका कर सन्तुष्ट हो गईं !—अरे लड़ो, काम करो। भैया साहब चले गए तो क्या हुआ। जहाँ मुर्ग़ा नहीं होता, वहाँ सवेरा नहीं होता क्या? और यह रहस्य मेरे पल्ले नहीं पड़ते कि उनसे ब्याह करने से ज़ोर-शोर से इन्कार भी है और अब बैठी रोती भी हैं। जहन्नुम में जाएँ भैया साहब ! अरे उनका दिमाग़ भी तुम्हीं ने खराब किया था। निर्मला बिलकुल ठीक कहती है। मर्दो को इतना मुँह ही न लगाना चाहिए, वरना उनका दिमाग़ खराब होते क्या देर लगती है। अरे, पूछो, आप हैं कौन चीज़? न शक्ल, न सूरत ! गोरा रंग मूली जैसा। हर इंटेलियन लोफ़र इसी शक्ल का होता है। ऐसे-ऐसे सिली तीन सौ साठ हर जगह मारे-मारे फिरते हैं। पूरे छः साल तक ठीक तुम्हारी नाक के नीचे चम्पा बाजी से फ़्लर्ट करते रहे; और अब वे तशरीफ़ ले गए तो आप बैठी चिहकू-पिहकू रोती हैं। अरे, लगातीं एक जूता भैया साहब की नाक पर !"

"तलअत—वे तुम्हारे बड़े भाई हैं ! बदतमीज़ी मत करो।"

"हाँ, और क्या, अब इसी की क़सर रह गई है कि तुम उनकी तरफ़दारी भी करो, बकौल क़ुटकी, 'पुराणां में यही लिखा है।...स्त्री का यही धर्म है।' लाहौल विलाकूवत ! मैं कहती हूँ तुममें और क़ुटकी रामदेया में क्या फ़र्क़ है? वह भी रामऔतार के हाथों रोज़ पिटती है। हुसैनी की बीवी ने कल उसकी हमदर्दी मे रामऔतार को बुरा-भला कहा तो, ए लो, वह तो हुसैनी की बीवी की ही जान को आ गई—कि ख़बरदार जो मेरे आदमी को कुछ कहा !"

इतना कहते-कहते ग़म ओर ग़ुस्से से तलअत रुआँसी हो गई। भैया साहब के बजाय उसे अप्पी पर ग़ुस्सा आ रहा था। अगर उम्र में बड़ी न होतीं तो उनकी इतनी ठुकाई करती कि सारी वफ़ादारी और मुहब्बत और बुर्जुआ रूमानियत हवा हो जाती। हाय-हाय ! उसने दिल ही दिल में तिलमिलाना शुरू किया। आख़िर वह उठ कर कमरे से निकल भागी। साइकिल उठा कर निर्मला के घर पहुँची। वहाँ जाकर उसने चुक़न्दर की भुजिया खाकर पानी पिया और निर्मला, मालती और हरिशंकर के साथ बैठ कर तुरुप चाल खेली, तब जाकर कहीं उसका ग़ुस्सा ज़रा ठंडा हुआ।

तलअत के जाने के बाद तहमीना मशीन पर से उठी और खिड़की में जाकर खड़ी हुई। पहला ऐक्ट ख़त्म हुआ—उसने दिल में कहा। हवा में तूफ़ान काँप रहे हैं और 'गुलफ़िशाँ' की बुनियादें हिल चुकी हैं। हम सबके निजी तूफ़ान हैं। अगर ड्रामा लिखा जाए तो मेरे कैरेक्टर की व्याख्या यों होगी—

'नवाबज़ादी तहमीना बेगम, उम्र पच्चीस वर्ष। फ़र्स्ट क्लास एम. ए., साँवली, दुबली, सेंटिमेंटल। अन्दर ही अन्दर ग़म खाती रहती है। घर में अप्पी के नाम से पुकारा जाता है।

मिलनसार, नर्ममिज़ाज और घमंडी।' इस मामूली व्याख्या के बाद और क्या बाक़ी रह जाता है? ड्रामे के पाँचवें ऐक्ट में होगा—

'दस साल का अंतराल। तहमीना अब ज़रा मोटी हो गई है, वह बच्चे को गोद में लिए गुनगुना रही है—'मैं खाऊँ, मोरा बाला खाए, बाले का जूठा कोऊ न खाए—बाले का—!' चेहरे पर भोलेपन और अनुराग की जगह सन्तोष और शांति की छाया आ गई है। सब्र और शांति!' लाहौल विलाक़ूवत—वह बरामदे में आ गई। बारिश थम चुकी थी। चबूतरे पर बहुत से रिश्तेदार बच्चे 'कोड़ा-जमालशाही' खेल रहे थे। पेड़ों के परे सौसन तलअत की चुनरिया रंग कर फैला रही थी।

कमाल ने चबूतरे की मुंडेर पर से झाँका—वाह, क्या सुहाना समाँ है ! दुपट्टे रंगे जा रहे हैं। अप्पी मशीन चला रही हैं। बरामदे में तखत पर तीन-चार ख़ालाएँ बातों में उलझी हुई हैं। वह भी अन्दर आकर उनकी बातों में भाग लेने लगा। "जी हाँ, छोटी ख़ाला ठीक कहती हैं। ज़रूर पाकिस्तान जाइए। वहाँ बड़े ठाठ रहेंगे।" वह बीच-बीच में बोलता जा रहा था और बढ़ावा देता जा रहा था। तहमीना ने उसे खिड़की में से देखा। यह सब ड्रामे के पात्र थे, सपने में चल-फिर रहे थे। स्टेज पर धुँधलका छा गया था। वह भी बाहर आ गई।

कमाल ने बच्चों को कोड़ा-जमालशाही खिलाना शुरू किया।

"कोड़ा-जमालशाही, पीछे देखा मार खाई—पीछे देखा—हलो अप्पी !" उसने दौड़ते-दौड़ते कहा—"सिल गए ब्लाउज़—कोड़ा-जमालशाही।"

तहमीना बरामदे के खम्भे से टिक कर उसे देखने लगी।

"कोड़ा-जमालशाही--अप्पी ! चम्पा बाजी तशरीफ़ ले जा रही हैं। बल्कि ले गई तशरीफ़—पीछे देखा मार खाई—"

"क्या हुआ—कहाँ?" तहमीना ने चौंक कर पूछा।

"फ्रांस—कोड़ा-जमालशाही।" उसने ज़ोर से एक छोटी-सी बच्ची को चुने हुए दुपट्टे से मारा। वह खिलखिला कर हँस पड़ी और उसके पीछे दौड़ी।

"कैसे?" तहमीना ने आवाज़ दी।

"यूनिवर्सिटी-स्कॉलरशिप मिल गई !" कमाल ने कहा। बच्चों ने तेज़ी से घूमना शुरू कर दिया--यहाँ तक कि कमाल दुपट्टे की कुंडली घास पर फेंक कर बाहर भाग गया।

सड़क पर आकर कमाल ने 'गुलफ़िशाँ' पर एक नज़र डाली और जेबों में हाथ ठोंस कर सिंघाड़े वाली कोठी की तरफ़ चल पड़ा।

अगस्त की बारिशें अबके ऐसी टूट कर बरसीं कि जमीन-आसमान उनमें डूब गए। सिंघाड़े वाली कोठी के बरामदे में सीतलपाटी बिछा कर वे सब बैठे बादलों को देखते रहे। वातावरण अनुकूल देख कर तलअत ने दोबारा तानपूरा ट्यून करके मल्हार शुरू करनी चाही, मगर सारी आवाज़ें डूब चुकी थीं।

बारिश का पानी—जो साफ़ और स्वच्छ था; श्रावण की अलौकिक धुंध—जो इस सृष्टि पर तैरती थी, उसमें खून मिला था। खून की बरखा-रुत, खून की कीचड़, खून बरसाने वाले बादल ! खून की इस अधिकता से तलअत तंग आ गई। निर्मला की नई कैनवस के लाल रंगों में उसे खून दिखाई दिया। गोमती खूनी नदी थी, जो बह रही थी। (हालाँकि यह केवल

डूबते सूरज का प्रतिबिम्ब था।) फूलों पर खून था। इंसानों की आँखों में खून उतर आया था। उसने सहम कर निर्मला और हरिशंकर को देखा।

57

और जब दोनों भाइयों में गृहयुद्ध शुरू हुआ तो अर्जुन ने अपना धनुष उठा कर श्रीकृष्ण से कहा—ओ जनार्दन ! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दो ताकि मैं देखूँ कि मुझे कौन से पक्ष का साथ देना चाहिए।

और श्रीकृष्ण ने रथ वहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया। और अर्जुन ने देखा कि दोनों सेनाओं में एक-दूसरे के पुरखे, बाप, दादा, चाचा, भाई, भतीजे, बेटे, मित्र, गुरु, साथी एक-दूसरे के विरुद्ध मोर्चा बाँधे खड़े हैं।

तब कुन्ती के बेटे ने दुःख में डूब कर कहा—ओ कृष्ण, यह दृश्य देख कर मेरे हाथ-पाँव शिथिल पड़ गए हैं, मेरा कंठ सूख रहा है। मेरा शरीर थर-थर काँप रहा है। मेरे सिर के बाल खड़े हो गए हैं, मेरा धनुष मेरे हाथ से गिरा जा रहा है। मेरा शरीर तप रहा है। ओ केशव, मैं सीधा खड़ा नहीं हो सकता। मेरा दिमाग़ चकरा रहा है। मुझे बुरे शगुन दिखलाई दे रहे हैं। ओ माधव, मैं अपने ही कुटुम्ब, अपने ही मित्रों और अपने ही गुरुजनों को मारना नहीं चाहता—

क्योंकि, कुटुम्ब के नष्ट हो जाने से प्राचीन परम्पराएँ समाप्त हो जाएँगी और अध्यात्म की समाप्ति के साथ कुटुम्ब भी नष्ट हो जाएगा। स्त्रियाँ सच्चरित्र नहीं रहेंगी और पुरखों की प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी। उनका आदर और अनुकरण करने वाला कोई न रहेगा।

ओ मधुसूदन, मैं नहीं जानता कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है—मैं या मेरे शत्रु? हमें उनको पराजित करना चाहिए या उन्हें हमें। ओ गोविन्द ! मैं नहीं लड़ूँगा।

58

हिन्दुस्तान—सन् 1947 ई.।

59

सिरिल डेरिक एडविन हार्वर्ड ऐश्ले ने फिर वक़्त पर नज़र डाली और पिकेडली के ट्यूब-स्टेशन में सारी दुनिया को समय बतलाने वाली घड़ी के नीचे टहलना शुरू कर दिया। उसे बड़ी उलझन अनुभव हो रही थी। इस प्रकार के मिलन से उसे हमेशा से चिढ़ थी, मगर वह चम्पा अहमद को वचन दे चुका था कि वह उसे थियेटर ले जाएगा और वचन का पालन हर हालत में ज़रूरी था। तंग आकर उसने 'स्टेट्समैन एंड नेशन' को दुबारा पढ़ना शुरू कर दिया। उसमें गौतम नीलाम्बर नाम के एक हिन्दुस्तानी का पत्र हिन्दुस्तान के बँटवारे और युद्ध और शांति की समस्या के सम्बन्ध में छपा था। सिरिल बेताब था कि सुरेखा आहूजा के घर

पर इस विषय पर मित्रों से बात करे।

सिरिल दूसरे लॉर्ड बार्नफ़ील्ड का छोटा पुत्र था। उसके दादा पहले लॉर्ड सिरिल डेरिक एडविन ऐश्ले ने इस एरिस्टोक्रेट खानदान की बुनियाद रखी थी। जो अब सिटी ऑफ़ लंदन में रबड़ और जूट के व्यापार पर छाया हुआ था। सिरिल के परदादा सर सिरिल हार्वर्ड ऐश्ले एक दरिद्र पादरी के बेटे थे और अठारहवीं सदी के अन्त में क्लर्क की हैसियत से बंगाल गए थे। वहाँ उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी के दौरान नील के व्यापार में लाखों रुपए कमाए थे। कहा जाता है कि अवध के बादशाह के दरबार में भी उन्होंने खूब हाथ रंगे। और जो हीरे-जवाहिरात शाहे-अवध ने उनको भेंट दिए, सो अलग। अपनी मृत्यु के पहले वे किसी सूबे के हाकिम बन चुके थे और उनके इकलौते बेटे ने जवान होकर इंग्लिस्तान में रबड़ का व्यापार आरम्भ किया। गाँव और महल ख़रीदे। लॉर्ड की उपाधि प्राप्त की। पार्लियामेंट में बैठा और बाक़ायदा एरिस्टोक्रेसी में सम्मिलित हो गया। यह प्रथम लॉर्ड बार्नफील्ड थे। उनका व्यापार बढ़ता और फैलता हुआ ब्रिटिश राज्य के साथ-साथ सारे पूर्व में फैल गया। उनका बेटा दूसरा लॉर्ड बार्नफ़ील्ड साम्राज्य का और भी अधिक गौरवपूर्ण पुत्र सिद्ध हुआ। उसने बरतानिया के विदेश-विभाग की नौकरी में बड़े-बड़े काम किए। तुर्कों और अफ़गानों का सफ़ाया किया। हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता-आंदोलन के विरुद्ध पार्लियामेंट में क़ानून बनाए। कलकत्ते से एक कंज़रवेटिव अख़बार निकाला। एक सच्चे 'टोरी' की हैसियत से उसे कालों--विशेषतः अर्द्धसभ्य हिन्दुस्तानियों--से हार्दिक घृणा थी। वह कुछ उच्चकोटि के मुहम्मडंज़ को अलबत्ता सहन कर लेता था। उनके साथ जब कभी वह हिन्दुस्तान जाता तो ग्रे-ईस्टर्न, कलकत्ता या इम्पीरियल होटल, दिल्ली की लाउंज में बैठ कर अपने दादा 'नवाब' सिरिल ऐश्ले का ज़िक्र कर लिया करता। उसके दादा 'नवाब' सिरिल ऐश्ले वास्तव में बड़े रोमैंटिक व्यक्ति रहे होंगे, जो उर्दू में शेर कहते थे और मुर्ग़ें लड़ाते थे, कथक नाच देखते और हुक़्क़ा पीते थे। उनका एक चित्र रॉयल-एकेडेमी के चित्रकार ज़ूफ़नी ने बनाया था। जिसमें वे एक बड़े स्तम्भों वाले बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठे पेचवान गुड़गुड़ा रहे हैं। और काला-भुजंग नेटिव सेवक पीछे खड़ा मोरछल झल रहा है। पृष्ठभूमि में ताड़ के पत्ते हैं। यह चित्र 'मनोर' के बीच के हॉल में लगा था।

दूसरे लॉर्ड बार्नफ़ील्ड दूसरे महायुद्ध में जर्मनों की बमबारी का निशाना बने। उनके दो लड़के थे। बड़ा लड़का तीसरा लॉर्ड बार्नफ़ील्ड अब ख़ानदानी कारोबार और सम्पत्ति का मालिक था। सिरिल छोटा लड़का था।

बार्नफ़ील्ड-परिवार का सितारा अब गर्दिश में था। मलाया में उनके रबड़ के जंगलों में कम्युनिस्ट छुपे बैठे थे। कीनिया में माओ-माओ ने ऊधम मचा रखा था। हिन्दुस्तान को जब से आज़ादी मिली थी कलकत्ता की मार्केट भी डाऊन हो चुकी थी। लॉर्ड बार्नफ़ील्ड अब पूर्वी पाकिस्तान में रुपया लगा रहे थे। और इतवार के दिन अपने ख़ानदानी महल बार्नफ़ील्ड-हॉल पर टिकिट लगा कर पब्लिक को उसकी सैर कराते थे। महल बहुमूल्य प्राचीन वस्तुओं से पटा पड़ा था। और उसके चारों ओर सैकड़ों एकड़ का पार्क फैला हुआ था। लॉर्ड बार्नफ़ील्ड को व्यापार और ज़मींदारी की परेशानियों और आर्थिक कठिनाइयों ने समय से पहले बूढ़ा कर दिया था।

लेकिन, सिरिल इन सब भौतिक झगड़ों से बेपरवाह केम्ब्रिज में दर्शन पढ़ता था। छोटा

बेटा था इसलिए उसे हर हालत में अपनी आजीविका स्वयं ही कमानी थी। एक और मुसीबत यह थी कि जब से उसने रोज़मैरी से विवाह किया था, बड़े भाई लॉर्ड बार्नफ़ील्ड ने उससे संबंध-विच्छेद कर लिया था। उनका विचार था कि लेडी सिंधिया से उसका ब्याह रचायेंगे। शाही खानदान के व्यक्ति उसमें सम्मिलित होंगे। स्निल एक ड्यूक का दामाद बनेगा। इंग्लैंड की एरिस्टोक्रेसी के बचे-खुचे व्यक्तियों को चाहिए कि इस नाज़ुक समय में एक-दूसरे का साथ न छोड़ें। मगर स्निल--इस सिरफिरे लड़के ने तो लुटिया ही डुबो दी। पहले उनका विचार था कि लौंडा कम्युनिस्ट हो गया है, लेकिन उनका सन्देह ग़लत निकला। इस लड़के को राजनीति से कोई लगाव न था। वह तो भगवान की दया से दार्शनिक था। युद्ध के दिनों में शिक्षा अधूरी छोड़ कर उसको पायलट बनना पड़ा। महात्मा गांधी की अहिंसा का प्रशंसक था और बर्लिन तथा कोलोन पर जाकर बम गिराता था। युद्ध के बाद वह केम्ब्रिज वापस लौटा। उसकी पत्नी रोज़मैरी मध्यम वर्ग की एक लड़की थी, जिससे उसकी भेंट आर्टिस्टों की एक पार्टी में हुई थी। वहाँ आर्टिस्ट लोग रतजगा मना रहे थे। यह लड़की सुन्दर न थी। मूर्तियाँ बनाती थीं। बेचारी सफल मूर्तिकार भी न थी, इसीलिए स्निल को बहुत अच्छी लगी। सम्पूर्ण दक्ष कलाकार लड़की बिलकुल अपूर्ण थी। उसमें पूर्णता लाना बहुत आवश्यक है—स्निल ने सोचा। अतः, उससे विवाह कर लिया और लंदन से फोन पर अपने भाई और भाभी को सूचना दे दी। एक तो रोज़मैरी गुमनाम और दरिद्र, ऊपर से रोमन-कैथोलिक। लॉर्ड बार्नफ़ील्ड आगबबूला हो गए। लेकिन, स्निल ने परवाह नहीं की। वह हीगेल और कान्ट्स के अध्ययन में जुटा रहा। स्निल केम्ब्रिज में पढ़ता रहा। उसकी पत्नी स्टैफ़र्डशायर के चीनी के खिलौने और बर्तन बनाने के एक कारख़ाने में नौकर हो गई। स्निल को कभी-कभी अपनी उँगली पर विवाह की अँगूठी देख कर बड़ा आश्चर्य-सा होता। फिर उसे सहसा याद आता कि वह विवाहित है। और उसकी एक पत्नी भी है जो बड़ी प्यारी लड़की है।

महीने में एक-आध बार उसकी रोज़मैरी से मुलाक़ात हो जाती।

एक दिन उसे बड़ा आनन्द आया जब वह कुछ मित्रों के साथ एक शिलिंग का टिकिट ख़रीद कर स्वयं अपने 'स्टेटली होम' की सैर करने के लिए जा पहुँचा। उसके भाई और भाभी दक्षिणी फ्रांस गए हुए थे। हाउस-कीपर और स्टाफ़ के लोग महल की सैर करा रहे थे। वे नए लोग थे। किसी ने स्निल को नहीं पहचाना। वह सब जगह घूमा और सोचता रहा, कैसी अजीब बात है, मैं यहाँ पैदा हुआ था।

स्निल का महल क़स्बे के आख़िरी सिरे पर था। चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व उसका निर्माण हुआ था। उसकी खिड़कियाँ असली ब्लाउन ग्लास की थीं। असंख्य कमरे और हॉल और गैलरियाँ। सिरे पर लेडी-चैपल था। बाग़ में हौज़ थे और 'रॉक गार्डन' और डच स्टाइल की चमनबन्दियाँ। इटैलियन संगमरमर की मूर्तियाँ फूलों में खड़ी थीं। एक ज़माने में वह इन बाग़ों में विशुद्ध 'कंट्री-स्क्वायर' की तरह ट्वीड का सूट पहने चहलक़दमी किया करता, और टहलते-टहलते महल के पश्चिमी भाग की ओर चला जाता। वहाँ बारहवीं शताब्दी की दो संन्यासिनों की क़ब्रें थीं। क़ब्रें अब ख़ाली पड़ी थीं। उनके तावूत के स्थान पर जो पक्का खड्ड-सा बना था, उसमें अक्सर वर्षा का पानी जमा हो जाता था। इन क़ब्रों के पास बैठ कर स्निल लड़कपन में घंटों जीवन और मृत्यु के गोरखधन्धे के सम्बन्ध में सोचा करता था।

बाहर वालों के लिए इस महल के चप्पे-चप्पे में कहानीपन की अधिकता थी। सिरिल को यहाँ कोई विशेष बात नज़र न आती, सिवाय इसके कि इतना बड़ा खटराग जो धनिक वर्ग ने फैला रखा था, कितना हास्यास्पद है ! उसे अपने परदादा 'नवाब' सिरिल हार्वर्ड ऐश्ले के व्यक्तित्व में भी कोई रूमान नज़र न आया। जाने कितने ग़रीब हिन्दुस्तानियों का ख़ून चूस कर उन्होंने यह धन एकत्र किया होगा, वह सोचता। इस प्रकार के विचार उसके मन में कम्युनिज़्म के प्रभाव से नहीं आते थे, बल्कि इसलिए आते थे कि वह कुछ सूफ़ी प्रकृति का था। डब्ल्यू. बी. यीट्स का उसने काफ़ी अध्ययन किया और मध्ययुग के कैथोलिक दर्शन का भी। तभी तो उसने कहा कि संसार के नश्वर होने से कौन इंकार कर सकता है। इसीलिए जब वह स्वयं अपने ही महल में अपरिचित दर्शकों की तरह घुसा तो उसे एक अजीब-सी शांति और संतोष का अनुभव हुआ। उसे भय था कि कहीं वह दूसरे आधुनिक इंटेलैक्चुअल्ज़ की तरह रोमन-कैथोलिक न बन जाए। परन्तु, वह किसी एक विचारधारा के बंधन की अपेक्षा स्वतंत्र रहना चाहता था। अस्तित्ववाद के पुजारियों की इस आज़ादी की परिभाषा को बड़े गहरे अर्थ पहनाए जा सकते थे। यहाँ पहुँच कर उपनिषदों के अर्थ भी समझ में आ जाते थे।

सिरिल ऐश्ले सही अर्थों में आधुनिक इंसान था—इस युग की सारी मानसिक उलझनों, आध्यात्मिक असंतुष्टियों और भावनात्मक असन्तोषों और सन्देहों का शिकार।

रोरिंग-ट्वेंटीज़ का युग उसका बचपन था। सन् '30 से '39 ई. के युग में उसने होश सँभाला। लंदन में उसके टाउन-हाउस में अक्सर कलाकारों आदि का जमघटा रहता। कलाकार उसकी सौतेली माँ लेडी एलन से मिलने आते। माँ इस रूढ़िवादी परिवार में विवाह करने के बावजूद सारे आधुनिक आंदोलनों की पक्षपाती थी। यह बड़ा विचित्र युग था—'डेली-वर्कर' और बायें बाज़ू वालों का युग। ब्लूम्ज़बरी वाले फ़ासिस्ट-विरोधी थे। ओडन, डे-लुइस और स्पेण्डर प्रगतिशीलों के गुरु बने हुए थे। लंदन के यूनिटी-थियेटर में कम्युनिस्टों के नाटक होते थे। वेस्टमिंस्टर-थियेटर में ग्रुप-थियेटर वाले मिकनीस ओडन और इशरुड के नाटक स्टेज कर रहे थे। बायें बाज़ू से संबंध रखना मानसिक फ़ैशन में दाख़िल था। ये क्रिस्टॉफ़रवुड, सैड्रिक मॉरिस और बेन निकल्सन की पेंटिंग्ज़ का ज़माना था। कला, साहित्य, नाटक, संगीत, बैले, इंटीरियर डेकोरेशन—हर चीज़ में नवीनता के आंदोलन चलाए जा रहे थे। पूर्व के दर्शन में सिरिल को श्रीमती बेसेंट, डब्ल्यू. बी. यीट्स, कृष्णामूर्ति और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर डॉक्टर राधाकृष्णन के अध्ययन से लगाव पैदा हुआ। टी. एस. इलियट और एज़रा पाउंड ने बार-बार चीनी और संस्कृत हवाले दिए। 'शांतिः-शांतिः-शांतिः' के शब्दों ने उसे अपनी ओर खींचा। सिरिल वेंचेस्टर से ('नहीं—मैं ईटन कभी नहीं गया। वेंचेस्टर भी उतना ही भयानक था।) केम्ब्रिज भेजा गया, वहाँ सिडनी-ससेक्स कॉलेज में उसका दाखिला हुआ, और फिर लगातार मनोरंजन, लगातार मानसिक डिस्सीपेशन और कल्पना-विचरण का दौर आरम्भ हुआ। लेकिन, शीघ्र ही युद्ध छिड़ गया और बमबार पायलेट बन कर बहुत से सुन्दर जर्मन-नगरों को, जहाँ उसके प्रिय दार्शनिक, कवि और संगीतकार पैदा हुए थे, उसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

इसके बाद वह फिर कॉलेज वापस आया और हीगेल का अध्ययन फिर उसी पृष्ठ पर से आरम्भ कर दिया, जहाँ से अधूरा छोड़ कर वह एयरफोर्स में भर्ती होने के लिए चला गया था। यह युद्ध के बाद का संसार था। कल के दुश्मन आज के साथी थे, और कल के साथी

आज भयानक शत्रु ख़याल किए जा रहे थे। एशिया का नक़्शा तेज़ी से बदल रहा था। शांति के नारे लगाए जा रहे थे। तीसरे महायुद्ध की तैयारियाँ की जा रही थीं। कल के प्रगतिशील आज कट्टर प्रतिक्रियावादी बन चुके थे। किसी मूल्य में कोई स्थिरता बाक़ी न रही थी। समय अवास्तविक है। सारा समय अवास्तविक है। केम नदी के किनारे-किनारे टहलते हुए वह अल्डुस-हक्सले और जेम्स-ज्वाएस की तरह सोचता। अब मानसिक डिस्सीपेशन का दौर फिर से आरम्भ हुआ। युद्ध की विनाशकारिता और मानव का पाखंड देखने के बाद स्रिल में अधिक कटुता आ गई थी। माइकेल और डेनिस उसके साथी थे। माइकेल यहूदी था। डेनिस भी माइकेल की तरह मध्यमवर्गीय था। इन दोनों से स्रिल ने बहुत आशा की कि ज़रा उनमें स्नॉबरी (कुलीनपन) की झलक दिखाई दे जाए, परन्तु इस विषय में दोनों ने उसे बहुत निराश किया। डेनिस को शायरी की झक थी।

इनके अलावा और बहुत से लड़के थे, काले लड़के, यूरोपियन लड़के और लड़कियाँ।

स्रिल को उसकी अपनी कौम की लड़कियों ने कभी अधिक आकर्षित न किया। क्योंकि वे सब एक-जैसी ही थीं। दूसरे महायुद्ध के बाद की दुनिया एक ऐसा महान् युग था जिसमें संसार 'अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता', 'भाई-चारे' और 'सांस्कृतिक सूझबूझ' (यह सब बहुत शानदार फ्राड था।) के युग में प्रवेश कर रहा था। और, कैसी-कैसी लड़कियाँ दुनिया के सारे कोनों से इंग्लैंड शिक्षा प्राप्त करने के लिए आ रही थीं—काली लड़कियाँ, पीली यानी सुदूरपूर्व की लड़कियाँ और (याद करो पर्ल बक के उपन्यास) नीग्रो लड़कियाँ, जिनको देख कर आधुनिक मूर्तिकला और पेरिस के नए आंदोलनों और नए संगीत का ध्यान आता।

अपनी सह-जातीय लड़कियों में जोन कार्टर थी। आधुनिक अंग्रेज़ी उपन्यासों में 'बरतानवी यूनिवर्सिटी वुमन' का जो हुलिया दर्ज़ होता है, उस पर वह पूरी उतरती थी। काले फ्रेम की बेले-रिना ऐनक लगाए, सिर पर झब्बे जैसे भूरे बाल, बड़ी इंटेलैक्चुअल—यह टाइप अब पच्चीस-तीस साल पुराना हो चुका था और उसमें अधिक उन्नति की कोई गुंजाइश न थी।

रोज़मैरी थी। लेकिन उससे स्रिल ने शादी कर ली।

अब विभिन्न राष्ट्रों की 'सांस्कृतिक शामों' का सिलसिला आरंभ हुआ, जब विभिन्न एशियाई राष्ट्रों के विद्यार्थी एकत्र होकर बड़ा प्रयत्न करते कि गोरे विद्यार्थियों को अपनी-अपनी संस्कृति के प्राचीन होने का सबूत दे सकें। 'ओरिएन्टल नृत्य' होते (वे नृत्य अधिकांश बकवास थे, सुरेखा के नृत्य को छोड़ कर), कविताएँ पढ़ी जातीं, बेसुरे साज़ बजाए जाते। सुना था, अमरीका में यह रैकेट बड़े ऊँचे पैमाने पर चलाया जा रहा था। बहुत शीघ्र इस सुदूरपूर्वी और मध्यपूर्वी तमाशे से उसका जी उकता गया। जब वह अपने कमरे में लौटता और कोई उससे कहता कि थाईलैंड वाले या इंडोनेशिया वाले 'कल्चरल ईवनिंग' कर रहे हैं, तो उसका जी चाहता कि खिड़की में से कूद कर बाहर भाग जाए।

"जानते हो, स्रिल एशिया से अपना बचाव कर रहा है !" डेनिस ने एक दिन बड़े भयानक ढंग से रहस्य खोला।

एक दिन एक नया ग्रुप कॉलेज में दाखिल हुआ। ये लोग हिन्दुस्तानी थे और लखनऊ से आए थे। (बड़ी उदासी की बात यह थी कि लोगों के ग्रुप आते थे और चले जाते थे। एक दिन यह ग्रुप भी चला जाएगा, उसे यह सोच कर बड़ा दुःख होता।) नए लोगों से वह

बहुत प्रयत्न करके छुपाता कि वह लॉर्ड अमुक का बेटा है। किसी ने उसे डिकेडेंट कहा कि वह झट लड़ने-मरने को तैयार हो गया। इन नए आने वाले कालों से उसकी काफ़ी दिन तक भेंट न हुई, यद्यपि उसे मालूम हुआ कि ये बड़े अंगारे उगलने वाले लोग हैं। केम्ब्रिज में वह केवल एक काली लड़की को जानता था। उससे वह देर तक हिन्दुस्तान की प्रशंसा करता रहा था। परन्तु, बाद में मालूम हुआ कि पाकिस्तानी है। उस लड़की का नाम रौशनआरा था। इस हिन्दुस्तानी-पाकिस्तानी झगड़े ने सिरिल की नाक में अलग दम कर रखा था, मगर आम तौर पर वह इस टंटे का ज़्यादा नोटिस न लेता था।

वह वीक-एंड पर शहर गया हुआ था। वहाँ कुछ मित्रों के साथ वह एक ऐसी जगह गया जहाँ एक कल्चरल-ईवनिंग हो रही थी। यह ईवनिंग इंडिया वालों ने आयोजित की थी। वे लोग जूते उतार कर बड़े शिष्टाचार और आदर से फ़र्श पर बैठ गए। शायद टैगोर-जयन्ती मनाई जा रही थी। डेनिस तुरन्त ध्यानस्थ हो गया। लोगों पर बड़ी तीव्र आध्यात्मिक कैफ़ियत छाई हुई थी। पर, सिरिल अपने पतलून की क्रीज़ की चिन्ता में लगा रहा। उससे आलती-पालती मार कर बिलकुल नहीं बैठा जा रहा था। उसने उदासी से उन अंग्रेज़ों को देखा जो बड़े इत्मीनान से फ़र्श पर साधुओं की तरह बैठे थे। ये कौन लोग हैं—क्रोकर्ज़ होंगे शायद—उसने आलस्य से सोचा। डेनिस इन सबको जानता था। अभी प्रोग्राम समाप्त होने के बाद डेनिस इन सबसे बिछुड़ कर मिलेगा और उसका इन सबसे परिचय कराएगा, यह सोच कर उसे फुरेरी-सी आ गई।

इतने में एक दुबली-पतली लड़की स्टेज पर आई और कुछ अनाउंस किया। सिरिल के पल्ले कुछ न पड़ा, क्योंकि बड़े ज़ोर से तालियाँ बजीं। सिरिल ने पीछे मुड़ कर देखा—सारा हॉल जो छोटा और घरेलू-सा था और जो वास्तव में हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों का सांस्कृतिक केन्द्र आदि था—उसी तरह की लड़कियों से पटा पड़ा था। और, क़िस्म-क़िस्म के लड़के सब बड़े कामरेडाना और कुनबे-बिरादरी के से अंदाज़ में फ़र्श पर बैठे आपस मे बातें कर रहे थे।

लंदन की हिन्दुस्तानी कम्युनिटी।

उस लड़की को सिरिल ने ग़ौर से देखा। रौशन की तरह एक और लड़की, दूसरी हिन्दुस्तानी लड़कियों की तरह मोटे रेशम की साड़ी बाँधे, बालों में फूल लगाए।

अब इन लड़कियों में सिरिल के लिए कोई अनोखापन न रहा था। अगर ये लोग रोम आदि चली जाया करें तो अधिक अच्छा हो। इटली और फ्रांस में इनके लिए अधिक अवसर हैं।—उसने यों ही सोचा, क्योंकि कोई और विचार उसके मन में नहीं आ रहा था। और, टैगोर के बारे में वह कुछ सोचना नहीं चाहता था। रूमानपरस्त, मध्यमवर्गीय, भावुक योगी—उसने बड़ी एय्याशी से सोचा। (इन दिनों वह पश्चिमी ईसाइयत और पश्चिमी यूरोपियन सभ्यता का पक्षपाती बना हुआ था।)

इतने में काली साड़ी पहने एक मोटी-सी महिला स्टेज़ पर आई।

यह महिला पैंतीस-चालीस के लगभग होंगी और पन्द्रह वर्ष पूर्व कलकत्ते की सुन्दरियों में गिनी जाती रही होंगी, सूरत बंगाली, बड़ी-बड़ी काली आँखें, फूले-फूले गाल, कानों में सोने के फूल, बड़ा-सा जूड़ा। काली साड़ी के नीचे सफ़ेद पेटीकोट पहने थीं, जो अलबत्ता बड़ा अजीब-सा लग रहा था।

इन महिला ने बड़ी जादू-भरी आवाज़ में टैगोर का एक गीत गाना शुरू किया और गाने

के बाद उसका अनुवाद अंग्रेज़ी में सुनाया गया।

फिर एक भाषण में उन्होंने बताया कि टैगोर संसार का सबसे महान् कवि था।

"जानते हो ये कौन हैं?" डेनिस ने बड़े रौब से सिरिल को सूचना दी। डेनिस सारी हिन्दुस्तानी कम्युनिटी का शहर-ख़बूर था।

"अगर न जानता हूँ, तो क्या हर्ज़ है। ये थियोसोफ़िस्ट होंगी या हिन्दुस्तानी कल्चर की प्रतिनिधि—जो बतलाएँगी कि एटॉमिक थियोरी को सबसे पहले शंकराचार्य ने पेश किया था।"—सिरिल ने उकता कर कहा।

"ये मिसेज़ शुनीला मुकर्जी हैं।" डेनिस ने बड़े रहस्यमय ढंग से कहा।

"यानी?"

"इनसे मिलते रहना। इसमें बड़े फ़ायदे हैं। इनका यहाँ पत्रकारों के हलके में काफ़ी असर है। अगर तुम 'ऑब्ज़र्वर' के प्रतिनिधि बन कर हिन्दुस्तान जाना चाहते हो तो इनको 'कल्टिवेट' करो।"

सिरिल के सामने जो समस्याएँ थीं, उनमें से एक समस्या आजीविका की भी थी। शिक्षा समाप्त करने के बाद वह क्या करेगा? बी. बी. सी.? वह पहले ही उसके जैसे अंग्रेज़ इंटेलैक्चुअल्ज़ से अटाटूट भरी हुई थी। किसी फ़िल्म कम्पनी में स्क्रिप्ट-राइटिंग—इसकी भी गुंजाइश कम थी। क्योंकि बरतानवी प्रोड्यूसर अमरीकन सहयोग से फ़िल्में बना रहे थे और सिरिल को हर विशुद्ध कुलीन अंग्रेज़ की तरह अमरीकनों से हार्दिक घृणा थी। शिक्षा विभाग? वह कभी कॉलेज के लौंडों को न पढ़ाएगा। औपनिवेशिक नौकरी? यानी मैं, सिरिल ऐश्ले, मानवता प्रेमी, कीनिया या मलाया या वेस्ट-इंडीज़ में नौकरी करूँगा? सोला हैट पहन कर दौरों पर जाऊँगा? शाम को क्लब जाकर गोल्फ़ खेलूँगा? नहीं, हरगिज़ नहीं ! केवल पत्रकारिता ही ऐसी जगह थी जहाँ शरण मिल सकती थी, लेकिन यहाँ भी बड़ा कम्पिटीशन था।

प्रोग्राम समाप्त होने के बाद भीड़ तितर-बितर हुई और लड़के-लड़कियाँ टुकड़ियों में बँट कर ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगे। डेनिस उठ कर श्रीमती शुनीला देवी के पास गया जो 'ऑब्ज़र्वर' के कॉलमिस्ट बिल क्रेग से बातें कर रही थीं। "हलो डेनिस" उन्होने मुस्करा कर कहा।

"मिसेज़ मुकर्जी, हमें अपने घर ले जाकर कॉफ़ी नहीं पिलाएँगी?" डेनिस ने अपनी बच्चों वाली अदा से ज़रा मचल कर कहा।

"ज़रूर, सब लोग चलें !"

एक ख़ासा बड़ा ग्रुप उनके साथ चलने को तैयार हो गया। ये सब लोग काज़ी नज़रुल इस्लाम की जयन्ती की तैयारियों के बारे में बातचीत कर रहे थे। सिरिल को ये जमघट बड़ा दिलचस्प मालूम हुआ। इन लोगों ने अपनी ख़ास दुनिया बना रखी थी। उनकी अपनी गॉसिप थी—अपनी व्यस्तताएँ। उनकी आपस में शादियाँ भी होती थीं। अक्सर ये शादियाँ सनसनीखेज़ होती थीं। यानी, इस लंदन में एक और हिन्दुस्तानी लंदन आबाद था।

"चलो-चलो !" वे सब शोर मचाते बाहर आ गए। गली में हलका-सा अँधेरा था। लड़के सिगरेट ख़रीदने के लिए एक पब में चले गए। लड़कियाँ कहने लगीं—"शुनीला दीदी, थोड़ी-सी तरकारी ख़रीद लें। आपके यहाँ चल कर खाना बनाएँगी।"

श्रीमती मुकर्जी का फ़्लैट चैलसी की एक बहुत शानदार रिहायशी इमारत में था। इमारत

में लिफ़्ट लगे थे और गैलरियों में मोटे क़ालीन बिछे थे और वर्दी पहने पोर्टर थे। वे सब फ़्लैट में दाख़िल हुए। लड़कियों ने ग्रिल से बड़ी बेतकल्लुफ़ी से बातें शुरू कर दीं। इनमें से एक का नाम तलअत था और दूसरी का निर्मला। लड़कों के नाम उसे याद नहीं रहे। ये लड़कियाँ, उसे मालूम हुआ कि, इसी साल केम्ब्रिज में भर्ती हुई हैं।

श्रीमती मुकर्जी फ़रीदपुर, पूर्वी बंगाल की रहने वाली थीं और एक मशहूर ज़मींदार खानदान से संबंध रखती थीं। कल्चर जिनके यहाँ पानी भरती थी। उन्होंने स्वयं विश्वभारती में शिक्षा पाई थी, परन्तु विवाह के बाद अपने पति से उनकी न बनी (विवाह, भाई डियर, एक जुआ होता है—गुरुदेव ने कहीं पर लिखा है कि—)। उनका एक लड़का फ्लाइंग आफिसर प्रफुल मुकर्जी भारतीय वायु सेना में पायलेट था और सुंदर था। श्रीमती मुकर्जी अब एक लम्बे समय से यूरोप और लंदन में रह रही थीं। उनके पति के बारे में किसी को जानकारी नहीं थी कि कहाँ हैं।

"लेकिन, अब वे ऐसी असाधारण सुन्दरी नहीं हैं कि तुम उन पर लट्टू हो जाओ।" दूसरे दिन डेनिस ने बुरा मान कर कहा। वे लोग कॉलेज के डाइनिंग हॉल में नाश्ते की मेज़ पर बैठे थे। दोनों ओर काले गाउंस की कतारें। छुरी-काँटों का शोर। हॉल के सिरे की मेज़ पर प्रोफ़ेसरों की धीमी-धीमी आवाज़ों की भिनभिनाहट। ऊँची खिड़की में से बाग का दृश्य टर्नर की किसी पेंटिंग की तरह दिखाई दे रहा था।

"ऐं?" ग्रिल ने ज़रा झुँझला कर कहा।

"लेकिन, समय-समय पर उनसे मिलते रहा करो। वह आब्ज़र्वर की करेस्पॉण्डेंटशिप ..." डेनिस ने काँटा हवा में हिला कर उत्तर दिया।

ग्रिल अगली बार जब लंदन गया तो श्रीमती मुकर्जी की इमारत के पोर्टर ने उसे बताया कि वह जिनीवा जा चुकी हैं। वह बाहर निकल रहा था तो उसे एक और लड़की ज़ीने पर मिली और उसे पहचान कर ज़रा मुस्कराई—"हलो।" उसने कहा।

ग्रिल ने शिष्टता से झुक कर उसे सलाम किया। उसे याद आया, यह वही लड़की है जो उस दिन टैगोर-जयन्ती में स्टेज पर अनाउंसमेंट कर रही थी।

यह वही लड़का है जो, डेनिस ने बताया था कि किसी लॉर्ड का बेटा है—चम्पा ने याद किया। "मैं भी मिसेज़ मुकर्जी से मिलने आई थी" उसने सीढ़ियाँ उतर कर सड़क पार आते हुए कहा। "मगर वह जिनीवा गई हुई हैं।"

"आप यहीं पढ़ती हैं?"

"जी नहीं, मैं पेरिस में हूँ। आप निर्मला श्रीवास्तव को जानते हैं? वह गर्टन कॉलेज में है।"

"जी हाँ, मैं मिस श्रीवास्तव से यहीं मिला था।"

"और, कमाल रज़ा?"

"सुरेखा देवी से उनके बारे में सुना है। मिलने का संयोग अभी तक नहीं हुआ। आप रौशनआरा को जानती हैं?"

"जी नहीं ! मैंने भी सुरेखा और डेनिस ही से उनका ज़िक्र सुना है।"

शुरू के पन्द्रह-बीस मिनट हमेशा इसी प्रकार व्यतीत होते हैं कि आप अमुक को जानती

हैं और आप अमुक से परिचित हैं; और जी हाँ, अमुक भी मेरा सहपाठी रह चुका है।

"आप नरगीश कावसजी को जानते हैं?" चम्पा ने ऊँचे स्वर में पूछा।

"जी नहीं, मैं किसी को भी नहीं जानता। मेरा मतलब है—मेरे दोस्तों का हलक़ा डेनिस की तरह बहुत बड़ा नहीं है।"

चम्पा खिलखिला कर हँस पड़ी ! "मेरा ख़याल था कि आप शायद यंग आशुतोष से मिल चुके होंगे।"

"मैं यंग आशुतोष से नहीं मिला। वह कौन है?"

"श्रीमती मुकर्जी का लड़का। वह बड़ा अच्छा कलाकार है। पेरिस में रहता है।"

चैलसी का अंडर-ग्राउंउ आ गया।

"अच्छा अब आपसे शायद कभी केम्ब्रिज में मुलाक़ात हो, अगर आप कभी वहाँ आएँ।"

"या शायद न हो !" चम्पा ने कहा।

"बहरहाल इस धुँधली-सी उम्मीद पर कि आप से कभी दोबारा मुलाक़ात हो मैं आपसे इज़ाजत चाहता हूँ।"

"ख़ुदाहाफ़िज़ !" वह एक अख़बार ख़रीदने के बाद तेज़-तेज़ क़दम रखती शीघ्रता से एक्सलरेटर पर उतर गई। एक सम्पूर्ण, आश्वस्त, आधुनिक हिन्दुस्तानी लड़की।

और, अब आधे घंटे से वह पिकैडली के अंडर-ग्राउंड में चम्पा की प्रतीक्षा में टहल रहा था। गत दो वर्षों में चम्पा से कई बार उसकी भेंट हुई थी और आज चम्पा ने उसे सूचना दी थी कि वह पेरिस से लंदन आई हुई है और सुरेखा के यहाँ सब लोग जमा होकर खाना खाएँगे। सिरिल व्याकुल था कि सुरेखा के यहाँ पहुँच कर उसके पति गुलशन से बहस करे। पत्र के लेखक गौतम नीलाम्बर ने हिन्दुस्तान के बँटवारे का सारा आरोप अंग्रेज़ों पर डाला था और लिखा था कि शीतयुद्ध में निष्पक्ष रहने का जो रवैया उसके देश ने अपनाया है, ऐंग्लो-अमरीकन ब्लॉक इसको पसन्द नहीं कर सकता—आदि। सुरेखा ने बताया था कि यह गौतम नीलाम्बर बड़ा अंगारे उगलने वाला इंसान है। हाल ही में मास्को से बदल कर यहाँ आया है। सिरिल को दुःख था कि आज शाम को वह इस व्यक्ति से नहीं मिल सकेगा। क्योंकि सुरेखा की सूचना के अनुसार वह लंदन से बाहर गया हुआ था।

सिरिल 'अंतर्राष्ट्रीय समय' के नीचे टहलता रहा।

60

केम्ब्रिज में दुकान से निकल कर निर्मला फ़िट्ज़-विलियम-लायब्रेरी की तरफ़ जा रही थी कि उसे गौतम नीलाम्बर दिखाई दिया।

"निर्मल ! मैं तो तुमको सारे में ढूँढ़ता फिर रहा हूँ।" गौतम ने लपक कर उसकी तरफ़ आते हुए कहा, "एक अंग्रेज़-ब्रह्मचारी-महिला तुम्हारे कॉलेज में मिलीं, जो शायद अरबी, फ़ारसी पढ़ाती हैं। उन्होंने मुझे डाँट कर भगा दिया। फिर कमाल ने कहा, शायद इस समय तुम लायब्रेरी में हो। कैसी हो—क्या हालचाल हैं?"

निर्मला ने आँखें बंद कर लीं। यह गौतम था जो उसके सामने खड़ा उससे जल्दी-जल्दी

बातें कर रहा था।

"तुम यहाँ कैसे आ गए?"

"लंदन से आया हूँ, तुम लोगों से मिलने।"

"सुना है तुम अब फ़ॉरेन-सर्विस में नियमित रूप से हो?"

"ठीक सुना है।"

"मज़े से हो?"

"हाँ।"

बातें समाप्त हो गईं। गौतम ने देखा कि निर्मला बड़ी हो गई थी। गम्भीर, प्रतिष्ठापूर्ण, कम बोलने वाली।

"लायब्रेरी गोल करो। कमाल और तलअत ने कहा है, कोह-ए-नूर में मिलेंगे, चलो।"

निर्मला चुपचाप उसके साथ हो ली। पास से काले गाउन पहने विद्यार्थियों की टोलियाँ गुज़र रही थीं। निर्मला गौतम को बताती जा रही थी कि वह स्रिल ऐश्ले है, इधर वाला ब्लोंड लड़का। यह भी अपने समय के अलबेले आदमी हैं। इनका जवाब नहीं। ये भी चम्पा बाजी के चेले बन चुके हैं।

"अच्छा? चम्पा से तुम लोगों का मिलना होता रहता है?"

"अक्सर !"

"खुश हैं?"

"क्या पता—ख़ुशी तो बड़ी आपेक्षिक चीज़ है।"

गौतम ख़ामोश रहा। वे किंग्ज़ कॉलेज के सामने से गुज़र रहे थे। हल्की-हल्की फुहार आरम्भ हो चुकी थी।

"मुझे लगता है" निर्मला कह रही थी—"कि चम्पा बाजी कुछ वर्षों के बाद श्रीमती शुनीला मुकर्जी जैसी बन जाएँगी। यह कितने दुःख की बात होगी। तुम जानते हो मिसेज़ मुकर्जी को?"

"हाँ।"

"समय चोट देकर चुपके से आगे निकल जाता है। कितने दुःख की बात है !" निर्मला ने दोहराया। गौतम अब भी ख़ामोश रहा।

"शुनीला देवी पन्द्रह-बीस साल पहले क्या चीज़ रही होंगी। लोग उनसे दो बातें कर लेना भी गर्व की बात समझते रहे होंगे। अब बेचारी अपने बेटे की उम्र के लड़कों को घेर-घेर कर ले जाती हैं—अपने यहाँ कॉफ़ी पिलाने। किताबें लिखती हैं—फ़्लीट-स्ट्रीट में मशहूर हैं। मगर, क्या उनकी किताबें और उनका बड़ा नाम ज़िंदगी की निजी ख़ुशी का सही पारिश्रमिक है? चम्पा बाजी भी ऐसी ही बन जाएँगी, हालाँकि क़सूर उनका नहीं है। समय ने उनको चोट दी, उन्होंने दूसरों को चोट देने की कोशिश की।"

गौतम चौंक उठा। उसने निर्मला को ग़ौर से देखा।

निर्मला की आँखों पर बारिश की एक बूँद आन पड़ी। उसने अपना चेहरा रूमाल से साफ़ किया और कहती रही—

"यह स्रिल का दौर है, क्योंकि वह लॉर्ड ऐश्ले का बेटा है, जिस तरह तुम सर दीपनारायण और भैया साहब सर ज़की रज़ा बहादुर के सुपुत्र हो।"

"निर्मल, तुम चम्पा के साथ बड़ा अन्याय बरत रही हो।" गौतम ने आहिस्ता से कहा।

"नहीं गौतम, यह वास्तविकता है, चम्पा बाजी ने, अलावा इसके कि वह ख़ुद मायूस हुई हैं, हमें भी मायूस कर दिया है। कल कमाल कह रहा था कि क्या बात है, चम्पा बाजी का जादू धीरे-धीरे बिलकुल ख़त्म हो गया। इस पर तलअत ने भी ठीक ही बात कही। उसने कहा कि चम्पा बाजी वही हैं, हम लोग बड़े हो गए हैं।"

गौतम ने उदासी से देखा। निर्मला ने बात जारी रखी।

"पेरिस में थीं, मगर काम अधूरा छोड़ कर इंग्लिस्तान आ गईं। अब सुना है लंदन में कहीं नौकरी मिल गई है—और अब यहाँ भी दाख़िला लेने वाली हैं। अपने बारे में कोई फ़ैसला भी तो नहीं कर सकतीं—हद है ! गौतम, चम्पा उन लोगों में से हैं, जिनको हमेशा किसी न किसी सेंटिमेंटल सहारे की तलाश रहती है।"

जीज़स-लेन में से ट्रम्पेट की आवाज़ उठ रही थी। गौतम ठिठक गया।

"जाने कौन है। अक्सर बड़ी ग़मग़ीन धुनें बजाता है।" निर्मला ने कहा।

बारिश की फुहार में उसके बाल बिलकुल भीग गए—"भैया साहब भी लंदन में तशरीफ़ रखते हैं। पाकिस्तान-हाउस में डिप्लोमेट हैं, इसलिए हम लोगों से नहीं मिलते। आजकल वे बहन रौशनआरा को अपनी पेंटिंग्ज़ दिखाते रहते हैं।"

अब वे 'कोह-ए-नूर' तक पहुँच चुके थे।

"गौतम !" निर्मला ने सोचते हुए पूछा—"लोग इतने फटीचर क्यों होते हैं?" वह ख़ामोश रहा। पास से विद्यार्थियों का एक जत्था गुज़र गया। सड़क के किनारे असंख्य पीले फूल खिले हुए थे। बारिश की बूँदें केम की सतह पर जलतरंग बजा रही थीं।

"निर्मल !" गौतम ने रुक कर कहा।

"फ़र्माइए?"

"तुम मुझसे शादी करोगी?"

"हरगिज़ नहीं।"

"क्यों—निर्मल?" आवाज़ उसके हलक़ में अटकी।

"इसलिए—मैं" निर्मला ने बड़ी साफ़ और गहरी आवाज़ में कहा कि—"तुम भी फटीचर हो। आओ, अन्दर चलें। बारिश में भीगो मत।"

निर्मला सचमुच बड़ी हो चुकी थी।

वे भोजनालय के अन्दर चले गए।

61

सवेरे छः बजे चम्पा उठ बैठी। सूरज की एक तेज़ और गरम किरण ठीक उसकी आँखों के सामने नाच रही थी। रात वे दो बजे तक सुरेखा के यहाँ गप्पें हाँकते रहे थे। आख़िर लोग इतनी बातें क्यों करते हैं? बाथरूम में से जोन कार्टर ने सिर निकाल कर झाँका—"आज तुम्हारी नौकरी का पहला दिन है। जल्दी तैयार हो जाओ।" चम्पा ने बिस्तर से उतर कर अल्मारी खोली और बड़ी उलझन से साड़ियों को देखा। फिर उसने जोन को आवाज़ दी—"मैं वर्किंग-क्लास लड़की हूँ। बताओ, कौन-सी साड़ी पहनूँ?" फिर नाश्ता करके वह बस में बैठी और सेंट जान्ज़

वुड पहुँची। बिल क्रेग के फ़्लैट पर जाकर उसने घंटी बजाई। "कम इन" किसी ने अन्दर से कहा। वह साहस करके अन्दर पहुँची। कमरे में अंगीठी के सामने सोफ़ा बिछा था। नीची तिपाइयों और अल्ट्रा-मॉडर्न आर्टिस्टिक ढंग से सजाया गया था। दीवारों पर आधुनिक कला के चित्र टँगे थे। हिन्दुस्तानी मूर्तियाँ रखी थीं। एक अल्सेशियन कुत्ता निस्पृहता से आग के सामने बैठा था। बिल सोफ़े पर लेटा कुछ पढ़ रहा था। "हलो, माई डियर--क्या पियोगी?" "कुछ नहीं। शुक्रिया।" चम्पा ने कहा। पेरिस में रह कर उसे मालूम हो चुका था कि बोहीमिया के लोग किस अपनाइयत और बेतकल्लुफी से एक-दूसरे को सम्बोधित करते हैं।

"प्रूफ़ रीडिंग करना आता है?" बिल ने बेपरवाही से एक पुलिंदा उसके सामने डाल दिया और रसोई में ज़ाकर खटर-पटर करने लगा।

शान्ता कश्मीरी रेशम की काले, हरे और लाल फूलों वाली साड़ी और काला कार्डीगन पहने ज़ीने पर से उतरी जो कमरे के एक कोने में था। चम्पा ने देखा कि शान्ता बहुत सुन्दर है। बड़े ब्रिस्क ढंग से वह टाइपराइटर पर जाकर बैठ गई। पता नहीं, अपने पति से तलाक़ लेने के बाद गौतम से विवाह करने के बजाय उसने बिल से विवाह क्यों किया ! अजब घपला है ज़िंदगी—चम्पा ने हैरानी से सोचा !..."गुड-मॉर्निंग मिसेज़ क्रेग !" उसने शिष्टता से कहा। "सुना है मराठी में बहुत अच्छी कहानियाँ लिखती हैं ! अब मैं इनकी कहानियाँ पढ़ने के लिए मराठी सीखने से तो रही !" उसने स्रिल से कहा था। हाँ मराठी न सीखना, कोई फायदा न होगा। स्रिल ने जवाब दिया था।

"मैं गौतम से तुम्हारी बहुत चर्चा सुन चुकी हूँ। यह दुनिया बहुत छोटी है— ।" शान्ता ने टाइप करते हुए कहा।

बिल कॉफ़ी की ट्रे उठा लाया। चम्पा ने महसूस किया कि शान्ता ख़ासी घमंडी है। बिल उतना ही विनम्र था।

वे काग़ज़ों का पुलिंदा उठा कर प्रेस जाने के लिए तैयार हुए। चम्पा का बिल के पब्लिशिंग-हाउस में प्रूफ रीडर की नौकरी का यह पहला दिन था।

"तुम्हारा क्या प्रोग्राम है, ज़िंदगी का?" बिल ने लंच की छुट्टी में उससे पूछा। वह इंसानों का भी प्रूफ़ रीड करता था।

"यह तो बड़ा ज़बर्दस्त सवाल है।"

"क्या तुम बहुत कंफ़्यूज्ड हो?"

"हाँ।"

"तुम भी जाल में गिरफ़्तार हो?"

"हाँ।"

बिल मुँह लटका कर चुप हो गया। सब जाल में गिरफ़्तार थे। वह ख़ुद और उसकी पत्नी शान्ता जो पहले श्रीमती शान्ता नीलाम्बर थी और अंग्रेज़ी तथा मराठी में उपन्यास लिखती थी; और स्रिल ऐश्ले, और सारे लेखक और साहित्यकार और बुद्धिजीवी, सारे पश्चिमी इंसान और पश्चिमी यूरोपियन सभ्यता, और 'नया एशिया', जिसके प्रतिनिधि यहाँ मौजूद थे, विभिन्न

नरकों के बीच अधर में लटक रहे थे। उन्हें अब मालूम हुआ था कि 'पुल सरात' (नरक में स्थित पुल) पर से चलना क्या मानी रखता है ! उनकी ईसाई, मुसलमान, हिन्दू और बौद्ध रूहों को बहुत से कष्ट भोगने लाज़मी थे–ये लोग वे थे, जिनके बारे में टोयंबी ने दस ग्रन्थ लिख डाले थे और अभी तक किसी सन्तोषजनक निष्कर्ष पर न पहुँच सका था।

और, नया हिन्दुस्तान अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता और अपनी सांस्कृतिक उच्चता के सिलसिले में आक्रामक बनता जा रहा था। यह प्रचार की दुनिया थी। पत्र-पत्रिकाओं और सांस्कृतिक प्रचार के पैम्फलेटों और पुस्तकों में छपने वाले करोड़ों शब्दों की दुनिया। और, बिल शब्दों का व्यापारी था और शब्दों की शक्ति और शब्दों के खोखलेपन में विश्वास रखता था। इसीलिए, वह शाम को अपने स्टूडियो फ़्लैट लौट कर शान्ता को उपदेश देता था कि वह गीता का दूसरा अध्याय पढ़े, और शान्ता हँसती थी। वह भी जाल में फँसी हुई थी। इन सबके प्राइवेट नरक, निजी तहख़ाने और व्यक्तिगत दुनियाएँ ज़्यादा कष्टदायक इसलिए थीं कि उनमें से निकलने का कोई रास्ता न था।

एक रास्ता था, मगर वह बहुत भयानक था। बिल ने चम्पा को देखा–"तुम कम्युनिस्ट कभी नहीं बनीं?"

वह चुपचाप बैठी आलू खाती रही।

"तुम कहानियाँ लिखा करो। मैं तुमको 'बिल्ड-अप' करूँगा। हिन्दुस्तान के बारे में उपन्यासों का इस समय बड़ा स्कोप है। आर. के. नारायण और मुलकराज को देखो। तुम भी लिखो ! समझीं !" उसने निर्णयात्मक ढंग से कहा।

"मुझे दुख है कि मैं तुम्हारी माँग पूरी नहीं कर सकती। मुझे लिखना बिलकुल नहीं आता।"

"अच्छा? यह कैसे सम्भव है? तुम्हारे ग्रुप में तो एक से एक लेखक मौजूद हैं।"

"मुझे मेरे ग्रुप के समान न समझो।"

"अच्छा, तो आपका एक फैड यह भी है कि आप व्यक्तिवादी हैं? अच्छा है यह भी !" बिल ने उत्तर दिया।

यह 'चूज़े की सराय' थी जहाँ बहुत से जानने वाले दोपहर के खाने के बाद जमा हुआ करते थे। पास ही बी. बी. सी. के स्टूडियो थे। कुछ हिन्दुस्तानी लड़कियाँ कमरे में आईं और उसको देखे बिना काउंटर की ओर चली गईं। "वह चम्पा अहमद हैं। दूसरों के मँगेतर फाँसना इनका कैरियर है। अगर तुम समझो कि मैं स्कैंडल-माँगरिंग कर रही हूँ तो निर्मला श्रीवास्तव से पूछो, जिसे टी. बी. हो गई है–" एक लड़की ने काउंटर पर से ट्रे उठाते हुए कहा।

"निर्मला को टी. बी. हो गई?" दूसरी ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ। और वह लिडहर्स्ट-सेनीटोरियम जाने वाली है।" पहली लड़की ने उत्तर दिया। दोनों बातें करती हुई अपनी-अपनी ट्रे उठा कर कमरे के दूसरे सिरे पर चली गईं।

तब चम्पा ने चाहा कि दौड़ कर उनके पास जाए और उनसे पूछे कि निर्मला कैसी है? उसे टी. बी. किस तरह हुई? मगर, वह मूर्तिवत अवस्था में वहीं बैठी रह गई। खिड़की के बाहर सड़क से रंगारंग जनसमूह गुज़रता रहा। फिर उसे बहुत-सी जानी-पहचानी सूरतें सामने जाती दिखाई दीं–बहुत से सफ़ेद मॉस्ट जिनके ऊपर उनके नाम लिखे थे। ज़रीना, सुरेखा, तलअत,

नरगीश, कमला, फ़िरोज़ ये सब दूसरे दूसरे दरवाज़े से भोजनालय में दाख़िल हुए। उन्होंने उसे 'हलो-हलो' कहा और दूसरी तरफ़ चले गए। वे सब निर्मला की बीमारी की चर्चा कर रहे थे और बेहद परेशान नज़र आते थे।

फिर तीसरे दरवाज़े से आमिर रज़ा दाख़िल हुए। उनके साथ स्लिल की सहपाठी रौशनआरा थी। आमिर रज़ा को चम्पा ने आज इतने बरसों बाद देखा। उनमें कोई परिवर्तन नहीं आया था, सिवा इसके कि पहले से अधिक क़ीमती सूट पहने हुए थे और अधिक आत्मविश्वास से क़दम रखते थे। उन्होंने चम्पा को देखा। ज़रा ठिठक कर बड़ी शिष्टता से आदाब-अर्ज़ किया और दूसरे कोने की मेज़ पर जा बैठे।

"ये दोनों हमसे दूर रहना ही बेहतर समझते हैं।" तलअत की मेज़ पर किसी ने हँस कर कहा।

"अच्छा ही है। हमारी संगत में इनके विचार खराब हो जाएँगे।" किसी और लड़की ने जवाब दिया।

"और ईमान जो ख़राब होगा वह अलग" दूसरी बोली।

चम्पा ने इरादा न होने पर भी सिर उठा कर उनको देखा। सैयद आमिर रज़ा, 'गुलफ़िशाँ वाले', लामार्टीनेयर कॉलेज वाले भैया साहब, अब पाकिस्तानी थे। इंसान जिन उपकरणों और असोसियेशंस का मिश्रण होता है, वे पल की पल में कैसे बदल जाते हैं ! और, यह रौशन न जाने कौन थी, बेचारी लड़की, जो हँस-हँस कर उनसे बातें कर रही थी ! दुनिया के अन्दर और कितनी दुनियाएँ हैं !

चम्पा ने घड़ी पर नज़र डाली और बैग उठा कर बिल क्रेग के साथ दफ्तर की तरफ़ रवाना हो गई।

62

सामने देवदार के जंगल हैं। सुर्ख़ पत्तों ने चारों ओर आग-जैसी लगा दी है। घाटी में ट्रेनें मकानों के पीछे अलगनियों पर फैले कपड़ों में से लहराती उत्तर की ओर जा रही हैं जबकि पतझर की हवा मेरे बालों से गुज़रती रही है। और, अब महज़ एक अकेली डोंगी मेरी खिड़की के नीचे झील की ख़ामोश सतह पर डोल रही है। पार्क में ज़र्द पत्ते उड़ रहे हैं। झील में एक अकेली नाव डोलती है। आराम कुर्सियों पर निर्धन पेंशनर बूढ़े बैठे अपनी धुँधली और असहाय आँखों से सामने का धुँधलका देखते हैं, और काग़ज़ी लिफ़ाफ़ों में से 'बन' निकाल कर खा रहे हैं।

आज का दिन एक और दिन है। पुल पर से इंसानों की भीड़ यूनिवर्सिटी और लॉ-कोर्ट्स की तरफ़ बढ़ रही है। मैं कौन हूँ जो इस महत्व में शामिल रहने से इनकार करूँ?

हाँ यह बिलकुल सही है मुझे डर लगता है। चूजे की सराय में वे सब सुर्ख़ मेजों के गिर्द जमा बातों में व्यस्त हैं। ये कौन लोग हैं? मेरा इनसे क्या रिश्ता है? हमेशा की तरह यह भी जीरो आवर है। मुझसे बहुत फ़ासिले पर लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं और साल ख़त्म

हुआ जाता है। क्या यह ठीक है कि एक संकट आकर गुज़र गया?

मैं चिन्ता क्यों करूँ जबकि आज की कोलाहलपूर्ण ख़बरें कल को रद्दी में बिकती हैं ! सेंट-सेबेस्टियन अपने तीर के इन्तज़ार में खड़ा है। रौशन ने सोचा।

देवदार का जंगल अब लालिमा में डूब गया। इस जंगल से मैं भी गुज़री हूं। हम सब गुज़रे हैं। मैंने उसमें की छोटी-छोटी कलियाँ जमा की थीं।—तलअत ने कहा।

कॉलेज में छुट्टियाँ हैं। सोलत रोम से आई हुई है और शकुंतला के यहाँ ठहरी है। हम सब कमला के घर में सुरक्षित बैठे हैं। घर—नीचे सोफ़े, फ़र्श पर बिखरी हुई किताबें, खिड़की में रखी हुई अनन्नास की टोकरी न्यूटन और ब्रिल की बनाई हुई क्यूबस्ट, चित्र, पुराने वस्त्र। तुम चूल्हा सुलगाओ, मैं पोर्टर को फोन करती हूँ। दूध की बोतलें कहाँ रख गया, मिस्टर जिकन्ज-मिस्टर जिकन्ज। बस मिस—नो मिस। एक कमरा सारी सृष्टि का केंद्र है।

ऑफ़ोह रौशन डियर। आज इतना काम था—कमला कह रही थी। कुछ रोज़ बाद कामन वैल्थ के प्रधान मंत्रियों का सम्मेलन है और फिर सारा सूचना विभाग, कश्मीर की समस्या, कोरिया की शांति, सामूहिक योजनाएँ, आसाम के लोक नृत्य—पब्लिसिटी—पब्लिसिटी।

गैलरी में ऊपर की पाँचवीं मंज़िल से लिफ़्ट आन कर रुका। नरगीश अंदर आई। वे सब मिल कर शकुंतला के यहाँ पहुँचे जहाँ ड्राइंग रूम में शांता और बिल मौजूद थे और सुरेखा राम गोपाल की पार्टनर सीधी-सादी, दिलचस्प सुशील, और बुद्धिमान पंजाबी लड़की जो देखने में मराठी नज़र आती थी। और ज़रीना, बलोंड, सप्तभाषी कलाकार जो फ़र्राटे से रूसी बोल रही थी। वहीं डलन तामस भी बैठे थे। उन सबका रौशन से परिचय कराया गया। एक दुनिया के अंदर कितनी दुनियाएँ हैं उसने सोचा।

पेरिस में एक रोज़ आमिर रज़ा ने उसे मादुमोज़ेल दोपारी गाकर सुनाया था। और उससे कहा था मतीस की तस्वीरों के पीछे-पीछे घूमा-घूमा फिरता हूँ। मैं स्पष्ट रूप से मतीस का आशिक हूँ। आपकी शक्ल भी मतीस की पेंटिंग जैसी है—और उसने कहा था, "हसीन ख़ातून, मैं शांति की खोज में सारी दुनिया में घूमता हूँ। जहाँ पर छाँव देखी बैठ गया। किसी दिन मैं आपको अपनी कहानी सुनाऊँगा।" वह कहानी क्या होगी? कहानी कहने वाला कौन है और सुनने वाला कौन? जी हाँ, मैंने प्रोफ़ेसर राधाकृष्णन के लेक्चर अटेंड किए हैं। जी नहीं—मैं हेगल पर मोनोग्राफ़ लिख रही हूँ। उसने मुड़ कर बिल से कहा। जी नहीं, मुझे वेदांत से दिलचस्पी नहीं। पश्चिमी दर्शन मेरा विषय है। वह बातें करती बालकनी की तरफ़ चली गई जहाँ चाँद मकानों की चिमनियों में उलझा हुआ था। नीचे साफ़-सुथरी सड़क पर से बसें गुज़र रही थीं, थिएटरों में नाटक स्टेज किए जा रहे थे। दरिया पर से जहाज़ गुज़र रहे थे। हलके अँधेरे स्टूडियो की खिड़कियों में से चाँद अंदर झाँक रहा था। जहाँ असफल लेखक और गुमनाम कलाकार और धनवान चित्रकार और प्रसिद्ध लेखक अपनी-अपनी दुनिया में घिरे बैठे थे। जहाँ तक नज़र जाती मकान दिखाई देते जिनमें लोग रहते थे। उनको रौशन नहीं जानती थी। शानदार मकान और मिडिल क्लास मकान और ग़रीबों के मकान। और किले और महल और काटेज। इन सब जगहों में दुख और सुख और मुहब्बत और नफ़रत और आशा और निराशा और सफलता और दुखित ड्रामे हो रहे थे। बालकनी से शहर डी नेरु की एक पेंटिंग की तरह नज़र आ रहा था। सुर्ख़ और ज़र्द और काले धब्बों और लकीरों का भयानक संग्रह।

63

जोन कार्टर का मकान एक तंग और अँधेरी गली में था। जिसमें विक्टोरियन काल में अस्तबल था। अस्तबल के ऊपर कोचमैन के कमरों में जोन और नील और अजीत रहते थे। नील इंजीनियर होने के अलावा इस मोहल्ले की कम्युनिस्ट पार्टी का मंत्री था। अजीत क़ानून पढ़ रहा था। जोन केम्ब्रिज में सरल से दो साल सीनियर रह चुकी थी, और यहाँ यूनिवर्सिटी में हंगेरियन भाषा पढ़ाती थी। कोचमैन के कमरे बहुत ख़स्ता हालत में थे। बावर्चीख़ाने में किताबों की अल्मारियाँ थीं और नील की वर्कशाप जिसमें वह घड़ियाँ और बच्चों की मोटरें बनाया करता। नील की राजनैतिक गतिविधियों के कारण उसकी बीवी ने उसे तलाक देकर किसी मशहूर एक्टर से शादी कर ली थी। उसके दो बच्चे थे जो गाँव में अपनी दादी के पास रहते थे। फ़ुर्सत के समय में वह बड़ी लगन और तन्मयता से कोई मकैनिकल खिलौना तैयार करता और महीने के आख़िर में उसे अपने बच्चों को दे आता। वह बहुत ही कम बोलने वाला व्यक्ति था। बावर्चीख़ाने में एक टूटा सोफ़ा पड़ा था। एक टूटे स्टोव के ऊपर रेडियो रखा था, जो अक्सर बन्द रहता, क्योंकि नील उसे हमेशा ओवरहाल करता रहता। खाने की अल्मारी आम तौर पर ख़ाली रहती। बरतन धोने का हौज़ बरतनों से भरा मिलता, क्योंकि इस मकान में रहने वाले तीनों ही बेहद आलसी थे। अल्मारी में से कभी-कभार एकाध पनीर का टुकड़ा या बासी रोटी निकल आती, क्योंकि इस मकान के रहने वाले बेहद निर्धन थे। अजीत ग़रीब विद्यार्थी था; और नील और जोन अपनी तनख़ाहों का अधिकांश भाग पार्टी को दे देते थे। अजीत के कमरे में एक नीचा-सा पलंग पड़ा था, जो एक साथ ही उसकी सिंगार-मेज़, डेस्क, कपड़ों की खूँटी और बुक-शेल्फ़ का काम देता था। बहुत से शुभचिन्तकों ने बड़ी हिम्मत से कमर कस कर अजीत के कमरे में थोड़ी-सी व्यवस्था पैदा करने की कोशिश की। मगर, अजीत इन सब कोशिशों को सफलतापूर्वक विफल करता रहा। ग़ुसलख़ाने की छत के बाहर टैरेस था, जिस पर तामचीनी के टूटे बरतन और लकड़ी का सन्दूक़ पड़ा था जिसके पीछे मोहल्ले भर की बिल्लियाँ आकर लड़ती थीं। नीचे गली में लम्बी अयालों वाले घोड़ों की गाड़ी आकर रुकती और दूध वाला दूध की बोतलें दरवाज़े की दहलीज़ पर रख जाता। इसी गली के नुक्कड़ पर चार्ल्स डिकंज का मकान था।

जोन कार्टर का कमरा इस फ्लैट में मानो हर मैजेस्टी क्वीन एलिज़ाबेथ के कमरे का दर्जा रखता था। अल्मारियों में अनगिनत किताबें ठुँसी थीं क्योंकि बहन जोन कार्टर ईश्वर की कृपा से छः सात यूरोपियन भाषाओं में दक्ष थीं। अँगीठी पर रंग-बिरंगी गुड़ियाँ और पूर्वी यूरोपियन देशों की अप्राप्य वस्तुएँ सजी थीं क्योंकि जोन हर साल पूर्वी यूरोप में आयोजित होने वाले युवा मेलों में जाया करती थीं और वहाँ से तोहफ़ों के अंबार साथ लाती थीं। इस कमरे की खिड़कियों में पारम्परिक लाल जर्नेम के पौधे तक मौजूद थे, पलंग के बराबर टेलीफोन लगा था।

चम्पा अहमद कुछ ही सप्ताह पहले पेरिस से आकर जोन के यहाँ ठहरी थी, जिससे उसकी मुलाक़ात ग्रिल ने कराई थी। वह पब्लिशिंग हाउस से लौट कर यहाँ पहुँची तो उसे जोन दरवाज़े में खड़ी मिलीं। "मैं ज़रा एक शान्ति-सम्मेलन के लिए वार्सा जा रही हूँ। मेरे

आने तक तुम यहीं रहो। राशन के कूपन अँगीठी के ऊपर रखे हैं, और अजीत से कहे जा रही हूँ, वह 'हिस्ट्री ऑफ़ सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी, तुमको बाक़ायदे से पढ़ाता रहेगा।" इतना कह कर वह ग़ायब हो गई।

सुबह सवेरे दूध की बोतलें गैलरी में से उठा कर बावर्चीख़ाने में गई और नाश्ता तैयार किया। उसका ख़याल था कि दोनों लड़के ड्रेसिंग-गाउन पहने, अपने-अपने कमरों से निकल कर, गुडमॉर्निंग कहते चाय पीने के लिए आ जाएँगे। मगर, वहाँ का बाबा आदम ही निराला था। देर तक इन्तज़ार करने के बाद उसने उनके दरवाज़ों पर जाकर आवाज़ें दीं, मगर जवाब न मिला ! नौ बजे अजीत सोकर उठे। मालूम हुआ क्लास गोल कर दी है—"इरादा है, पलंग पर लेट कर ही अध्ययन करेंगे।" नील थोड़ी देर बाद प्रकट हुए। ठंडी चाय पीकर बड़े इत्मीनान से कोट कंधे पर झुलाते, लम्बे-लम्बे डग मारते ज़ीने से उतर गए।

फ़ासीसी अन्दाज़ में कन्धे उचका कर चम्पा मुस्कराई और बरसाती ओढ़ कर उसने भी अपने दफ़्तर का रुख़ किया। यह कार्य-नीति उसे नापसंद न हुई कि जिसकी मौज हुई दूसरे से बात कर ली, वर्ना अपने-अपने काम में मगन रहे। वीक एंड पर फ़िरोज़ या सुरेखा के यहाँ महफ़िल जमती और रात गए तक हंगामा रहता। चम्पा बनारस और लखनऊ और पेरिस के बाद ज़िन्दगी के इस पैटर्न की भी आदी हो गई।

गौतम चम्पा से कहीं नहीं मिला। सुना था कि वह अब बेहद महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बन गया है, बेहद व्यस्त रहता है। इंडिया हाउस का सबसे ज़्यादा कार्यरत अधिकारी। कमाल केम्ब्रिज़ में था। हरिशंकर अमरीका में।

एक रोज़ वह और सबके साथ हिंदुस्तानी विद्यार्थियों की कान्फ्रेंस में गई जो एस्सेक्स के हरे-भरे मैदानों में आयोजित की गई थी। यहाँ वे सब दिन भर नाचते और गाते और सिंपोज़ियम और मुशायरे आयोजित करते। एक रात जब वह एक चेरी के दरख़्त के नीचे खड़ी नवयुवकों के उस हंगामे को देख रही थी जो चाँद के तले हरी घास पर मचा था, उसे महसूस हुआ कि समय पानी की तरह सरसराता अब बहुत तेजी से बह रहा है, जिस तरह धीमी गति से बहने वाली नदी भयानक पहाड़ियों और घाटियों में पहुंच कर तेज़ गति हो जाती है और वह एक चट्टान पर अलग और अकेली खड़ी है। नौजवान लड़कों और लड़कियों का बहुत बड़ा दल इंटरनेशनल गा रहा था। एक ही वक्त में इसके शब्द अंग्रेज़ी, उर्दू और फ़्रांसीसी में अदा किए जा रहे थे। वह कान लगा कर सुनती रही। दुनिया भर से एक हुए नौजवान—एक आदर्श महान लिए।

One great vision unites us. Tho' remote be the lands of our birth.
Foes may threaten and smite us, still we live to bring peace to the earth.
Ev'ry country and nation stirs with youth's aspiration.
Young folks are singing happinees bringing, Friendship to all the world.
Ev'ry where the youth is singing freedom's song, freedom's song...

ये सब यहाँ से जाकर क्या करेंगे? इनके साथ क्या होगा? बाहर की दुनिया के साथ इनको कैसे समझौते करने पड़ेंगे। बराबर से बर्तानवी लड़कों और लड़कियों की एक टोली

बेलश गीत गाती गुज़री। दूर फ़ार्म हाउस के हॉल में ड्रामे की रिहर्सल हो रही थी।

मैंने यह सब पहले भी देखा है। उसने इलियट के चरित्र की तरह दोहराया। उसके करीब से दो लड़कियाँ और एक बूढ़ा आदमी बातें करते गुज़रे। उसने चाँदनी के धुँधलके में ग़ौर से देखा। लड़कियाँ फ़िरोज़ और तलअत थीं जो प्रोफ़ेसर लेवी से बातें करती हरे-भरे मैदान की ओर जा रही थीं। और इस वातावरण में संपूर्ण रूप से घुली-मिली मालूम हो रही थीं। मैं हमेशा हर जगह अलग रहूँगी? उसने अपने आप से कहा। हालाँकि अजीत मुझे सारी हिस्ट्री ऑफ़ सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी पढ़ा चुका है। आख़िर मैं वह सब क्यों नहीं कर सकती जो दूसरे करते हैं। वह आहिस्ता-आहिस्ता चलती हुई जाकर गुजराती लड़कों और लड़कियों के गर्बा में शामिल हो गई जो बाग़ के एक भाग में जारी था :

हे गोविंद राघव चरन अब तो जीवन हारे
सिंध के किनारे, सिंध के किनारे

लड़कियों ने दोहराया। नाचते-नाचते उसके दिल पर चोट लगी। सिंध—सिंध तो पाकिस्तान में है। फिर अचानक उसे याद आया। यह सच्चाई है कि देश बँट चुका है। दो कौमें हैं। मैं मुसलमान हूँ इसलिए धिक्कार योग्य। ये लोग हिंदू हैं, अतः क़त्ल किए जाने के योग्य हैं। पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल बंग—क्या बकवास है। मैं तो हमेशा टैगोर के इस रोमानवाद के विरुद्ध हूँ। वास्तविकता यह है कि मैं और ये लोग दो भिन्न कौमें हैं। मगर मैं हिंदुस्तानी हूँ। इसी से क्या हुआ? मुसलमान तो हूँ। और कहा जाता है कि हर मुसलमान दिल से पाकिस्तानी होता है। माइकेल से पूछना चाहिए। उसने यहूदी की हैसियत से इस दुविधा को कैसे हल किया। क्या मैं डॉक्टर लेवी से चल कर इसका हल पूँछू?

नाच की समाप्ति पर वह कुछ लड़कों के साथ फ़ार्म हाउस के बावर्चीख़ाने की तरफ़ चली गई।

64

अलाव सर्द हो चुका था। वे सब घास पर बैठे रहे। चाँद फ़ार्म हाउस की चिमनी पर पहुँच गया था। बार्न से अकार्डियन की आवाज़ आ रही थी।

प्रोफ़ेसर लेवी बातें किया किए। उनकी किताब 'लिट्रेचर इन दी एज ऑफ़ साइंस' पर एक घंटे से तर्क-वितर्क चल रहा था। उनके बर्फ़ से सफ़ेद बाल चाँद की रोशनी में चाँदी की तरह चमक रहे थे। हवा में ठंड आ चुकी थी।

"मुझे कुछ अपने बारे में बताओ" उन्होंने सोचते हुए कहा।

"अपने बारे में ?" तलअत ने जवाब दिया—"हम लोग—हम लोगों में कोई खास बात नहीं बिलकुल ज़रा-सा भी कोई रहस्य नहीं—कदापि..."

प्रोफ़ेसर लेवी के और उन लड़कियों के बीच कितना बड़ा फ़ासला था। प्रोफ़ेसर और उनकी अक्लों और उम्रों में आधी शताब्दी से ज़्यादा का फ़र्क था। लेकिन इसके बावजूद उनकी फरिश्तों की-सी कृपा की वजह से गर्मी की उस ठंडी रात को सहसा कैसी स्वजनता महसूस हुई। वे इतने बड़े आदमी थे, दुनिया के चोटी के दिमागों में से एक, और कितनी निश्छलता

से वे कह रहे थे, "जब तुम लोगों ने मुझे बुलाया तो, हालाँकि मेरे पास वक्त न था। पर मैंने सोचा मेरी क़ौम ने इतनी सदियों तक जो बर्ताव तुम्हारे साथ किया है, निजी तौर पर एक अकेले व्यक्ति की हैसियत से अपनी जगह उसका प्रायश्चित इसी तरह कर सकता हूँ कि तुम लोग जब भी कहो मैं तुम्हारी महफ़िल में आ शामिल हूँ।"

तलअत ने एक ख़ुश्क टहनी आग में फेंकी और उसने हाईमैन लेवी से कहा—"हम तो इतने से, यूँही से लोग हैं और सख्त भयभीत, जो तामस बैकट के कोर्स की पुजारी औरतों की तरह चिल्ला रहे हैं।"

"फ़िज़ा को धोओ। आसमान को धोओ ! हवा को धोओ ! पत्थर को पत्थर से अलग करके धोओ ! धरती नापाक है। हमारे जानवरों के गल्ले, हम खुद, खून में लथपथ हैं। खून की बारिश ने मेरी आँखें अन्धी कर दी हैं। मैं सूखे पत्थरों की धरती पर घूमती हूँ, और अगर मैं इन पत्थरों को छू लेती हूँ तो उनमें से भी खून बहने लगता है। मैं शीतल बसन्त की ओर किस तरह लौटूँ?"

"फ़िज़ा को धोओ ! आसमान को धोओ ! पत्थर को पत्थर से अलग करके धोओ। हड्डियों को धोओ ! दिमाग़ों को धोओ ! आत्माओं को धोओ।"

बार्न में से एकाएक गिटार की आवाज़ ऊँची हुई।

एवान मिक काल की साफ़ गहरी आवाज़ सारे में छा गई।

"अब रात ज़्यादा हो गई है। मैं अगर तेज़-तेज़ चलूँ तो करीब के किसी स्टेशन से शहर की ट्रेन पकड़ लूँगा" प्रोफेसर लेवी ने पत्थर पर से उठते हुए कहा।

"आप, आप पैदल जाइएगा ?" फिरोज ने घबरा कर कहा।

"क्या हर्ज है" उन्होंने इत्मीनान से जवाब दिया—"पैदल चलना कोई बुरी बात है। अभी तो शायद बस भी यहाँ से कोई मील भर के फ़ासले से मिल जाएगी।"

लड़कों और लड़कियों की टोलियाँ विभिन्न यूरोपियन भाषाओं के कोरस गाते फार्म हाउस की ओर जा रहे थे।

सामने सेब के झुंड में एक कार आकर रुकी।

"हलो"—आमिर रज़ा ने आवाज़ दी।

"हलो"—अजीत ने खालिस फ़्रांसीसी लहजे मे नारा बुलंद किया।

"आइए आइए भैया साहब" तलअत ने कहा।

सब बार्न में दाखिल हो गए।

"मैं जल्दी में हूँ। दूर से गानों की आवाज़ें सुनीं तो ठिठक गया।" उन्होंने तलअत से कहा। फिर वह एक इटैलियन लड़की से अत्यंत गेलेंट अंदाज में झुक कर संबोधित हुए।

"मुझे अपना सेक्सो फोन दो।"

"भैया साहब आप एवान से मिले हैं?" फ़िरोज ने लखनऊ के नाते से उनसे शिष्टाचार बर्तने की कोशिश की—"ये इस देश के सबसे बड़े बैले गाने वाले हैं और सर्वश्रेष्ठ नाटककार।"

"मुझे अपना सेक्सो फोन दो—मैं तुम्हें वीनस की लहरों का गीत सुनाऊँगा।" आमिर रज़ा ने फ्रांसीसी अंदाज़ में कहा

"लाहौल विला कुव्वत"—फ़िरोज ने झुँझला कर उनसे सोशल वार्तालाप त्याग दी।

"आइए यहाँ बैठिए आमिर भाई" विनोद ने उनके लिए पराल पर जगह बनाई। सब लोग उनसे तलअत और कमाल के कज़न की हैसियत से वाक़िफ़ थे। इटेलियन लड़की भी अपना बाज़ा सँभाल कर उनके करीब जा बैठी। "प्रगतिशील मोर्चा खतरे में है" सुरेखा ने चुपके से ज़रीना के कान में कहा।

"भाई आमिर की हालत पहले ही ख़राब है" फ़िरोज ने कानाफूसी में चिंता प्रकट की।

"और यह बहन मरेबा गर्ज़ोली इतनी दूर रोम से डैलीगेट बन कर इसलिए आई थी कि भैया साहिबान को वीनस के गीत सुनाए, या अल्लाह तू ही रहम कर" तलअत ने जल-भुन कर कहा।

"ये भी अपने समय के रेड वुल्फ़ वेलन्टेनो हैं" शीला ने विचार प्रकट किया।

लड़कों ने परछत्ती पर चढ़ कर एक स्पेनिश गीत शुरू कर दिया।

"अच्छा भई, बोन नोई" कुछ देर बाद आमिर रज़ा ने पराल पर से उठते हुए कहा।

"बोन नोई" कोरस हुआ।

बार्न से बाहर निकल कर वे सेबों के झुंड में गायब हो गए।

एवान ने जमघट की तरफ़ प्रश्नपूर्ण नज़रें उठाईं।

"यह मिक काल साहब—एक ऐसी मंज़िल हैं जिनकी तरफ़ बहुत-सी लड़कियाँ सफ़र कर चुकी हैं या कर रही या करना चाहती हैं" फ़िरोज ने खिड़की में से कहा।

"माशा अल्लाह से क्या प्रोफ़ाउंड बात कही है" तलअत ने दाद दी।

सबने मिलकर अमरीकन हब्शियों का बैलेड शुरू कर दिया।

For if you are white, you'are all right;
If you are brown stick around,
But if you are black,
Oh, no! Brother, get back, get back, get back.

गीत की आवाज़ देर तक खेनों के विस्तृत सन्नाटे में गूँजती रही। फिर सब लोग अपने-अपने खेमों और कैबिनटों की तरफ़ जाने के लिए उठे।

कोग कैबिन में सारी लड़कियाँ आ चुकी थीं। ये हिंदुस्तान के सारे प्रदेशों से आई थीं और बैरिस्टरी पढ़ रही थीं और डॉक्टरेट के लिए कार्य कर रही थीं और पत्रकारिता और डॉक्टरी की ट्रेनिंग हासिल कर रही थीं। वैज्ञानिक थीं और कलाकार थीं और गाती और नाचती थीं और पिछले एक सप्ताह से कान्फ्रेंस में युक्ति-संगत भाषण दे रही थीं और रात को फ़ार्म हाउस के बावर्चीख़ाने में प्रतिनिधियों के लिए खाना तैयार करती थीं। धीरे-धीरे रात का सन्नाटा आसमानों से उतर कर सारे में फैल गया। घाटी में कुछ दूरी पर खानाबदोशों का काफ़िला ठहरा हुआ था। सारी सृष्टि इस बरसते हुए एहसास के धारे में कहीं बह गई।

65

ए हमारे आसमानी बाप ! हमें आज के दिन हमारा दैनिक समाचार प्रदान कर—तलअत ने सम्मेलन से लौट कर शहर के स्टेशन पर पहुँचते ही आँखें बंद कर दुआ माँगी और सरपट

दफ़्तर की तरफ़ भागी। आजकल वह एक अखबार के दफ़्तर में काम कर रही थी।

न्यूज़ रूम में गहमागहमी थी। उसने अपनी मेज़ पर जाकर काग़ज़ को उलटा-पलटा इतने में टेलीफ़ोन की घंटी बजी।

"हैलो—हैलो !"

"हाँ कौन है भाई?" दूसरे सिरे पर फ़िरोज़ धाड़ रही थीं।

"साजिदा आपा किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन से लौटी हैं। चाचा ने कहा है शीघ्र स्टूडियो पहुँच कर उनका इंटरव्यू करो—"

वह तीसरे पहर को स्टूडियो पहुँची।

बी. बी. सी. की कैंटीन में हर रोज़ की तरह ज़बरदस्त शोर मचा था। यूरोपियन और मिडिल-ईस्टर्न और फ़ार्न ईस्टर्न सर्विसिज़ के लोग अपने-अपने दफ़्तरों से निकल कर लंच के लिए आ रहे थे। स्पेनिश, इसराइली, अरब, ईरानी, फ़्रांसीसी, हिंदुस्तानी, पाकिस्तानी। इन सब की विचित्र बिरादरी थी। बहुत-सी मेज़ें बराबर-बराबर लगाकर हिंदुस्तानी, पाकिस्तानी भीड़ इकट्ठी बैठा करती। ये लगभग सारे के सारे ओल्ड टाइमर्ज़ थे। सिद्दीक़ अहमद सिद्दीक़ी जो अलीगढ़ बिरादरी के जगत चाचा और अपनी ज़ात से अंजुमन थे। यावर अब्बास, एज़ाज़ बटालवी, तक़्क़ी सैयद, आले हसन, अतिया ज़रीना।

और वह प्रतिनिधि मंडल आ गया जिसका इंटरव्यू था। तलअत ने अंदर आकर फ़िरोज़ से पूछा। कैंटीन में एक तरफ़ को साजिदा आपा संतुष्ट बैठी प्याली में काँटा बजा रही थीं। "अब चलो उनका इंटरव्यू करने" ज़रीना ने चुपके से कहा।

"उनका—उनका—"

"और क्या?"

"और वह प्रतिनिधि मंडल कहाँ गया जो जाने कहाँ से होकर आया था।"

"यही तो वह प्रतिनिधि मंडल है।" ज़रीना ने इस अंदाज से कहा जैसे दुनिया का कोई दुख-दर्द उस पर अब और अधिक असर नहीं कर सकता।

"बस, वह बराबर कन्धे उचकाते, शक्लें बनाते, सड़कों के किनारे कुर्सियों पर बैठ कॉफ़ी पिया करते हैं।" साजिदा आपा बेज़ारी से फ़िरोज़ से संबोधित थीं।

"जी हाँ बड़े बेहूदा होते हैं। अब यहाँ देखिए, सड़कों पर बैठ कर कॉफ़ी पीने की कौन तुक है।" ज़रीना ने पूरी सहमति प्रकट की।

"कौन?" तलअत ने चुपके से पूछा।

"इतालवी या शायद फ्रेंच, इनमें से एक क़ौम से यह बहुत नाराज हैं।" ज़रीना ने बताया।

"चच-चच पूअर डियर" तलअत ने कहा।

"बाश"—साजिदा बेगम ने बात ख़त्म की। "मुझे हर दफ़ा इंग्लैंड दो....।"

स्टूडियो पहुँच कर साजिदा बेगम माइक के सामने बैठी थीं।

"जब मैं मैडरिड में थी, तो मैंने अहिलया अहरन बर्ग से कहा...।"

तलअत ने निढाल होकर स्क्रिप्ट एक तरफ़ रख दी।

"देखो साजिदा आपा गप न हाँको। मुझे मालूम है तुम मैडरिड कभी नहीं गईं।"

"चलो मैडरिड के बजाय ओसलो कर लो। फ़र्क़ क्या पड़ता है?" ज़रीना ने इत्मीनान

से राय दी।

"और अहलिया अहरन बर्ग कौन है" फ़िरोज़ ने तलअत से प्रश्न किया।

"यह अहरन बर्ग साहब के घर में से हैं।" ज़रीना ने जवाब दिया।

"दूसरी बात यह कि मैडरिड में क्या कर रहे थे।" फ़िरोज़ ने अधिक जिरह की—"कहाँ मैडरिड कहाँ गरीब अहलिया—"

साजिदा बेगम ने खुसर-फुसर सुनी तो स्क्रिप्ट पर से सिर उठा कर इधर आकर्षित हुईं और एक पल के लिए ज़रीना को देख कर चौंकीं कि यह हरी फ्राक पहने ब्लोंड लड़की यहाँ क्या कर रही है। फिर संभवतः उन्हें याद आ गया कि यह ज़रीना है—"क्या पूछना है आपको?"

"हाँ प्यारी बहन—पित्ता न मारो जो पूछना है पूछ लो। फिर यह वक़्त हाथ न आएगा।" ज़रीना ने तलअत से कहा।

साजिदा बेगम ने जो मानी हुई महिला लीडर थीं कहना शुरू किया—"मुझे यहीं की शिक्षा प्रणाली बहुत पसंद आई।"

"कितनी खुशी की बात है" फ़िरोज़ ने कहा।

"हालैंड में, जहाँ मैं अभी गई थी हर जगह लाला खिला होता है और लोग लकड़ी के जूते पहनते हैं" उन्होंने बताया।

इंटरव्यू होता रहा।

कुछ दिन बाद सुना गया कि साजिदा आपा ने विद्यार्थियों की सभा को संबोधित करते हुए कहा कि जब मैं देश का प्रतिनिधित्व करने कोपन हैगन गई तो डेनमार्क की बी. बी. सी. से एक भाषण के दौरान मैंने बतलाया कि वाई दी ग्रेस ऑफ़ अल्लाह....।

उसके कुछ दिन बाद सूचना मिली सैयद आमिर रज़ा ने साज़िदा बेगम को अस्तांबोल खाने पर आमंत्रित किया है।

यह आमंत्रण साजिदा आपा के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।

66

समय काले भुतनों की तरह आगे-आगे भाग रहा है। उसके कंपकंपा देने वाले साये चारों ओर मंडलाते हैं। समय जो गुज़र रहा है आख़िर मुझे ख़त्म कर देगा।

खुदावंद की माँ मरइया जिसका दिल सात बार जख़्मी हुआ। मुझ पर रहम कर मेरे पुराने दुश्मन। रौशन सेबों की परछाईं में चलती रही। जीज़स लेन में किसी ने ट्रम्पेट पर एक पुरानी धुन बजानी शुरू कर दी। पत्थरों पर से नदी का पानी बहता जा रहा था। एक कुत्ता हँसता हुआ उसे पार कर रहा था। पतली टहनियों वाले दरख़्त पानी की सतह पर झुके हुए थे। उनकी छाँव में एक बत्तख तैर रही थी।

वह क्वाडरेंगल में दाखिल हुई।

"रौशन" किसी ने खिड़की में आकर उसे आवाज़ दी।

"रौशन अंदर आओ। क्या तुम भी उस कान्फ्रेंस से वापस आ रही हो जिसमें दुनिया के भविष्य के बारे में प्रस्ताव पास किए गए हैं।" स्प्रिल ने दरवाज़े में आकर कहा।

"नहीं" उसने अपने पैरों को देखा। "नहीं मैं सिर्फ़ हेज़ल मेयर तक गई थी।"

"वहाँ क्या है ?"

"कुछ नहीं।"

"जैनिस ने एक नई कविता लिखी है।"

"हाँ डार्लिंग—" सुरेखा ने आतिशदान के पास से उठते हुए उससे कहा।

"तुम कब आई ?"

"मैं ? मुझे केम्ब्रिज मजलिस ने आमंत्रित किया था।"

"मैं अपनी नई किताब तुम्हारे नाम समर्पण करूँगा।"

डेनिस सुरेखा से कह रहा था। रौशन खिड़की में खड़ी होकर उन सबका वार्तालाप सुनती रही। (फिर ये सब लोग कोरिया और केनिया में मारे गए। कुछ कार की घटना में ज़ख्मी हुए या हलक में कैंसर निकल आने की वजह से खत्म हुए। कुछ को ऊँची नौकरियाँ मिल गईं। कुछ ने किताबें लिखीं, प्रसिद्धि पाई और दुनिया उनके कदमों के नीचे आ गई। चंद एक यों ही रह गए)

"हूँ—खुदा" डेनिस कह रहा था।

"खुदा" सुरेखा ने कहा, "जब मैं नाचती हूँ मुझे लगता है सचमुच शिव ने तिलाना के सुरों पर सृष्टि की रचना की थी। वही एहसास अगर स्थाई रूप से जमा दिया जाए तो शायद, खुदा होगा तिलाना की धुन का एहसास—पता नहीं।"

"अभी शायद दरवाज़े में से वह दाखिल होगा जिसका कोई नाम नहीं। देखो बाहर एक अशुभ चाँद पुरानी कंदील की तरह डोल रहा है" स्रिल ने कहा।

"वीक एंड के लिए शहर चलोगी ? गाड़ी से वापस जा रही हूँ।" सुरेखा रौशन से बात करने के लिए खिड़की की तरफ़ मुड़ी मगर रौशन बाहर जा चुकी थी।

'चलो हम सब रौशन के साथ हेज़ल मेयर चलें" स्रिल ने सिग्रेट रोल करते हुए प्रस्ताव रखा।

"क्यों ? हेज़ल मेयर किसलिए, और कोई जगह क्यों नहीं ?" माइकेल ने सवाल किया।

"सब जगहें एक-सी हैं। किसी बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता" डेनिस ने कहा।

"इसलिए हेज़ल मेयर चलो।" सबने मिल कर नारा लगाया।

"रौशन हम तुम्हारा पीछा कर रहे हैं। हम तुम्हारे दुश्मन नहीं हम तुम्हारे दोस्त हैं।" स्रिल ने कहा।

वे रात की मद्धम रोशनी में जंगल की तरफ़ जाने वाली सड़क पर आ गए।

यह मध्य ग्रीष्म की रात है। चुड़ैलें और भुतने और अगियावैताल पेड़ों की छाँवों में दौड़ते फिर रहे हैं।

सुंदरकार ? रौशन भागते-भागते थक कर एक पगडंडी पर बैठ गई।

"तुम्हारी हकीकत धुँधलके में छिपी है।" आमिर रज़ा ने उँगली उठा कर स्पष्ट किया। "मैं उसके सफ़र में शामिल रहूँ" उसने कहा और घास पर बैठ कर सोच में डूब गया।

पहाड़ियों पर रोशनियाँ जल रही हैं। जंगलों में सुर्ख़ कोट पहने शिकारी वैबर की धुनें

बजा रहे हैं। "इतवार के दिन हमें हैम्पटन-कोर्ट और आनरेबुल सिल ऐश्ले के महल में दाख़िल किया जाता है।"—माइकेल ने कहा।

"लेकिन हम भूखे थे, अतः अपनी किताबें बेच कर खा गए।" उस व्यक्ति ने कहा जिसका कोई नाम नहीं। जंगल में वे सब खरगोशों की तरह उछलते फिर रहे हैं।

डेनिस सिर के बल खड़ा कमला को अपनी कविता सुना रहा है। सुरेखा नटराज के एक अंदाज़ में स्थिर हो गई है। डलन तामस झील के किनारे बैठे गीता का पाठ कर रहे हैं।

"सुनो, क्या तुमको भी किसी दूर के फ़ासले की फ़ोनकाल का इन्तज़ार है?" स्रिल ने निकट आकर आमिर रज़ा से पूछा।

"हाँ—नहीं।"

आमिर रज़ा फिर घास पर बैठ कर सोच में डूब गया। फिर फूलों की झाड़ियों में छिप गया। "हमारे सपने अलग-अलग हैं। ज़ालिम विचार भयानक है। ठहरो, विस्तारों की इस दुनिया में हमारा जेरूशलम कहाँ है? जल्दी बताओ—जल्दी—मुझे देर हो रही है।" उसने अचानक घबरा कर रौशन से पूछा। वह रौशन के सामने घास पर झुक गया। वह समझ रहा था कि यह चम्पा है।

"हमें देर हो रही है ! जल्दी करो !—जल्दी !—चॉल-चॉल-चॉल...! पहाड़ियों पर घंटियाँ बजना शुरू हो गई हैं ! मेरे दिमाग़ के वीराने में जो हवाएँ सनसना रही थीं, अब वे आँधी बन कर सारे में फैल गई हैं।" चम्पा ने कहा जो वास्तव में रौशन थी। "मैं तुम्हारे थके हुए पाँव धोऊँगी। तुम गर्म कालीन पर आग के सामने बैठे रहना—जल्दी—जल्दी, देर हो रही है।"

शोर बढ़ गया। चलो-चलो हेज़ल मेयर ! दिल्ली चलो ! चर्चिल के घर चलो ! दुनिया भर के एक हुए नौजवान, एक आदर्श महान् लिए ! खतरा हो बलिदान का फिर भी हम लायेंगे सुख-चैन ! लायेंगे सुख-चैन !! इन बस्तियों को जगमगाना है सदा ! इन खेतियों को लहलहाना है सदा ! हम, क्या गोरे, क्या काले, सब एक हैं ! एक हैं हम मौत पर हँसने वाले, सब एक हैं ! ख़तरा हो बलिदान का, ख़तरा हो बलिदान का !!—जवानियाँ हैं गा रहीं, हँसी-ख़ुशी मना रहीं ! दुनिया भर से एक हुए नौजवान ! नौजवान !! कारराई तोहू कोपाट भंग रे ! भंगो कोर रे लो पाट, आज़ाद दिल्ली में है। नेहरू जिनेवा में हैं। एशिया का सबसे बड़ा स्टेडियम बहावलपुर में है। रौशन आमिर रज़ा के चक्कर में हैं। मिस्टर खन्ना, यह सारी सरमायेदारी की साज़िशें हैं! आर्थिक जीवन की ख़राबियाँ हैं। कल मैंने एक नया कोट ख़रीदा। दिमाग़ों को धोओ ! रूहों को धोओ! आलू को धोओ ! गोभी को धोओ ! पतीली को धोओ !

धीरे-धीरे भीड़ छँटी। ख़ामोशी छा गयी। चाँद ऐन ऊपर आ गया। आमिर रज़ा ने अचानक एक छलाँग लगाई और फूलों के धुँधलके में ग़ायब हो गया। वह पगडंडी पर बैठी रह गई। स्रिल और डेनिस और माइकेल दलदल के किनारे चलते हुए उसके पास आए और मुँह लटकाए इधर-उधर बैठ गये।

"ये ठंडे और उदास दिन !" रौशन ने सिर उठा कर उससे कहा।

"भीगे, नम, ख़ुर्द, खौफ़नाक दिन !" स्रिल ने कहा।

"भारी, घिसटने वाले, लँगड़े, अपाहिज दिन।" डेनिस ने कहा।

"यों हमारी ज़िन्दगी बीतती है" उन्होंने एक जबान होकर कहा। "हमारे लिए कठिन आजमाइशें हैं।"

"तकलीफ़े !"

"दिल का रंज !"

"शर्म !"

"पछतावा !"

"वह मगन है, हम राते हैं।"

हेज़ल मेयर का जंगल आहिस्ता-आहिस्ता धुँधलके में डूब गया।

67

दिन भर बारिश होती रही। वे सब आग के सामने बैठे थे।

"साजिदा आपा ने क़ौम को मरुस्थल के चूहे देखने के लिए आमंत्रित किया है।" तलअत ने सूचना दी।

"मरुस्थल के चूहे क्यों? मरुस्थल की लोमड़ी क्यों नहीं?" सुरेखा ने पूछा।

"असल में साजिदा आपा को रिचर्ड वर्टन के व्यक्तित्व से बड़ी श्रद्धा है" तलअत ने कहा।

"तो फिर करा दो इनका इंटरव्यू रिचर्ड वर्टन से। वे तो अक्सर ब्राडकास्टिंग हाउस आते रहते हैं।"

"असल में इनकी शक्ल एक और बुज़ुर्ग से मिलती है जो ओरिजिनल हैं।"

"ओहो तो यह बात है?" फ़िरोज़ ने कहा फिर सहसा वह चिल्लाई—"अरे यह तो सचमुच बड़ी इक्वेटी हो गई।"

उठा लाओ खंजर करो कतल हमको।
बड़ी देर से मूंडी झुकाए हुए हैं।

तलअत ने कहा। (यह कुदसिया का मनपसंद शेर था)

"यह बात है तो आओ मैदान में"—'बिस्मिल्लाह उलरहमान रहीम' की जगह बड़बड़ा कर फ़िरोज़ ने कहा 'इस्लामअलेकम !' "लाइए मेम साहब !"

शेर किसको याद थे अतः पहले गलत पढ़े गए। फिर आवश्यकता अनुसार तब्दीली की गई।

न कर हमनशीन, बेवकूफ़ी की बातें
मैं भूला नहीं हूँ बेवकूफ़ी की बातें

खुद शेर गढ़े गए। नौबत यहाँ तक पहुँची कि फिल्मी गानों के बोल बड़ी निसंकोचता से प्रयोग किए जाने लगे—"याद रखना चाँद तारो इस सुहानी रात को।"

"लाओ वाओ का" तलअत ने कहा।

"वाह कट-कट कर रही हैं मुर्गियाँ" कमला ने कहा।

"यह फाउल है" तलअत दहाड़ी।

"हरगिज़ नहीं।"

उठो वगरना हशर नहीं होगा फिर कभी
दौड़ो ज़माना चाल क़यामत की चल गया

तलअत ने मेज़ पर मुक्का मारा।

"आह कट-कट कर रही हैं मुर्गियाँ।" कमला ने गरज कर कहा।

जब दोबारा कमला की बारी आई तो उसने इत्मीनान से जवाब दिया—"हाय कट-कट कर रही हैं मुर्गियाँ।"

"यह सब हो चुका है" तलअत चिल्लाई।

"ये दूसरी मुर्गियाँ हैं" कमला ने इत्मीनान से जवाब दिया।

दूसरे दिन साजिदा आपा को तलअत ने विमेंस क्लब में फ़ोन किया।

"सुनो साजिदा बहन मैं मरुस्थल के चूहे देखने से क्षमा चाहती हूँ। मेरा सारा दिन तो बहुत से असली चूहे देखने में कट जाता है" तलअत ने कहा।

"नहीं मुझे तुमसे राय लेनी है। एक बहुत ज़रूरी बात है।"

"अच्छा तुम सीधी यहीं आ जाओ और लंच भी यहीं खाओ।" तलअत ने ज़ोर से रिसीवर पटक दिया। शहर की इन प्रेमग्रस्त औरतों ने जान और मुसीबत में कर रखी थी।

आध घंटे बाद साजिदा बेगम खाने की छोटी मेज़ पर तलअत के सामने बैठी थीं। वह अफ़ीमचियों की तरह साजिदा बेगम को देखा की।

"कल मैं आमिर रज़ा से मिली" उन्होंने कहना शुरू किया।

"यह चूज़े की सराय का ज़िक्र है जहाँ आप बी. बी. सी. वालों के साथ गई थीं ?" तलअत ने पूछा।

"नहीं हम 'अस्तांबोल' में खाना खा रहे थे।"

"ओह !"

"और फिर उन्होंने बताया—"

"उन्होंने बताया कि वे भीड़ से कितने घबराते हैं? कि वे परछाईं की तरह सारी दुनिया में घूमते हैं। जहाँ परछाईं मिली वहीं बैठ गए। यह तेज़ धूप उनकी आँखों को बुरी लगती है?"

"हाँ कहा तो था। बिलकुल यही कहा था उन्होंने—"

"खुदाया ! लो यह गोभी खाओ।" तलअत ने प्लेट उनकी तरफ़ सरकाई।

"मेरा ख़याल है इस मुल्क के बारे में जो मेरे विचार हैं उन पर एक कहानी लिखूँ" साजिदा बेगम ने सोच कर कहा।

"ज़रूर—इससे बढ़िया बात क्या हो सकती है।" तलअत ने वेटर को बुलाने का इशारा किया। "कॉफ़ी लोगी साजिदा" उसने ऊँघती आवाज़ में पूछा—"या आइसक्रीम?"

बराबर की मेज़ों पर बर्तानिया की प्रसिद्ध महिला पत्रकार टोपियों के नवीनतम फ़ैशनों पर विचारविमर्श कर रही थीं।

तलअत उदासी से साजिदा बेगम को देखती रही। उसका जी चाहा कि धाड़ें मार-मार कर रोए।

68

चम्पा ने नरगीश के कमरे में आकर चारों ओर दृष्टि डाली। जाना-पहचाना कमरा, सोफ़ा, तस्वीरें, नीले फूल। "मेरे लिए एक साड़ी निकाल देना।" नरगीश ने ग़ुसलख़ाने में से आवाज़ दी। दूसरे कमरे में शान्ता एक ही रेकार्ड बार-बार बजाए जा रही थी। उसी दिन उसकी एक नई किताब छप कर आई थी। बिल नीचे कोर्टयार्ड में, गुलशन के साथ टहल रहा था। चम्पा ने अलमारी खोली—ईवनिंग गाउन, साड़ियाँ, जूते और बैग। एक तख़्ते पर हाथी-दाँत का एक छोटा-सा मन्दिर था, जिसमें एक नन्हीं-सी मूर्ति रखी थी। पारसी किसकी मूर्ति पूजते हैं? वह सोचती रही। शायद ज़रतुश्त...या जाने क्या ! वह पारसी धर्म से परिचित न थी। वह किसी भी धर्म से परिचित नहीं थी। हम सबके तहख़ानों में एक छोटी-सी 'श्राइन' है, जिसमें एक अज्ञात मूर्ति रखी है। उस मूर्ति का नाम मुझे मालूम नहीं—ईसा, सेंट तामस, कृष्ण, नारायण, ज़रतुश्त। यह मूर्ति अन्त समय तक गुमनाम रहेगी। अन्त समय जब इंसान की आँखें आख़िरी बार हमेशा के लिए बन्द होने लगती हैं, उस समय उसे जाने क्या दिखाई देता है। वह गुमनाम मूर्ति कौन-सा रूप धारण करती है, यह किसे मालूम?

शान्ता ने अन्दर आकर नरगीश के लिए एक सुर्ख़ साड़ी निकाली। "अल्मारी बन्द कर दो, अल्मारी बन्द कर दो !" चम्पा ने ऊँचे स्वर में कहा।

"हैं...?" शान्ता ने कमरे में आकर पूछा--"किससे कह रही हो?"

"कुछ नहीं, मैं सोच रही थी कि दिन में कितनी बार नरगीश यह अल्मारी खोलती है।"

"हाँ...?" शान्ता बिलकुल न समझी।

"और उसमें से रंगबिरंगे कपड़े निकलते हैं।"

"हाँ, हाँ...तो?"

"और नीली घास का इत्र और पेरिस की टोपियाँ।" चम्पा कहती रही—"उसकी मूर्ति 'श्राइन' में रखी रहती है, उस कोने में। उसने यह अल्मारी बनाई और अब उसी में छुपा बैठा है। तुम्हारी अल्मारी में भी कोई मूर्ति है?"

"मेरी अल्मारी में ढाँचे हैं।" शान्ता अँगीठी के पास आकर बैठ गई और उसे ध्यानपूर्वक देखने लगी। "तुम...." उसने कहा, "तुम थोड़ी-सी दिवानी हो !"

"हाँ, तुम नहीं हो?"

"तुम्हारी बातें अध्यात्मवाद की सीमाओं को छू रही हैं। उस ओर मत जाना। बड़ी शोकजनक बात होगी।" शान्ता ने जवाब दिया।

सुरेखा सफ़ेद साड़ी पहने, बाल तौलिए में लपेटे बाहर आई और खिड़की में खड़े होकर बाहर टैरेस-गार्डन को देखने लगी। जहाँ फूल ही फूल थे और बसंत का चमकीला सूरज जगमगा रहा था।

"ज़िंदगी ! ज़िंदगी !!" सुरेखा ने ख़ुशी की गहरी साँस लेकर हवा में बाजू फैलाए।

"सुरेखा, मेरे लिए ज़िंदगी का लक्षण है—ख़ुशी—नाचती हुई।...लक्षणों में रहस्य होते हैं, तुम यह मानती हो?" चम्पा ने मुड़ कर शान्ता से पूछा।

शान्ता अँगीठी में बिजली के कृत्रिम सुर्ख़ अँगारों को देखा की। "ज़िंदगी मेरे सामने

सहमी खड़ी है। सफ़ेद साड़ी पहने ! हँसती, गुनगुनाती, भयभीत, निडर, साहसी, डरपोक—हर शब्द के दो, भिन्न उल्टे अर्थ हैं। ज़िंदगी...'' उसने शान्ता को देखा। ''मैंने एक बार गौतम से कहा था—''मैं और तुम हमेशा भिन्न रहेंगे।''

कई साल पहले 'गुलफ़िशाँ' के बावर्चीख़ाने में तरकारी बनाते हुए तलअत ने कहा था—''चम्पा बाजी, गौतम हर समय हर चीज़ को ठोक-बजा कर देखने पर तुला रहता है। इस बात को समझे रहियेगा। वह किसी को बख़्शने वाला नहीं, चाहे आप ही क्यों न हों !''

''मुझे ऐसे लोगों से बड़ी चिढ़ है जो बात-बेबात हर फ़िक़रे, हर लफ़्ज़, हर लिखे हुए वाक्य में मन की छिपी हुई उलझनों के इशारे खोजते रहते हैं। लाहौल विला...!'' उसने जवाब दिया था।

''गौतम भी यही सब करता है?'' निर्मला ने अनजान बन कर पूछा था।

''बिलकुल !'' तलअत ने जवाब दिया था।

''तब तो गौतम बहुत बुरा आदमी है। हम उसे मना कर देंगे कि लोगों की बातों में मन की छिपी हुई उलझनों के इशारे न तलाश किया करे—ख़ास कर आपकी बातों में !''—निर्मला ने कहा था। ये लड़कियाँ अब स्पष्ट रूप मे बदतमीज़ी पर उतर आई थीं। ''निर्मला मुझसे जलती है—किस कदर वाहियात—तहमीना की तरह—मेरी बातों से उसे मतलब?''—उसने क्रोध से लाल होकर ऊँचे स्वर में कहा था, ''तीन-चार बार तो उससे मुलाक़ात ही हुई है।'' दूसरे क्षण उसने अपने गुस्से को छिपा कर बातचीत को हास्य का रंग देना चाहा था—''और वहाँ उसने बातों की ऐसी टर्र छोड़ी कि किसी को बोलने ही न दे। हर सवाल का जवाब उसे आता है। कौन-सा गुन उसमें नहीं ! तौबा, आदमी न हुआ, राक्षस हो गया—दस सिर वाला !''

''है-है !'' तहमीना ने दक्षता से पेड़े काटते हुए बावर्चीख़ाने के दूसरे कोने से कहा था—''गौतम ने तुम पर बहुत रौब डाला है। और, आ गई तुम उसके रौब में !''

''मैं नहीं आई उसके रौब में।'' उसने बिगड़ कर कहा था, और उसकी आँखों में आँसू आ गए और वह जल्दी से प्याज़ों के ढेर पर झुक गई थी।

''फिर उसका इतना लम्बा-चौड़ा ज़िक्र क्यों कर रही हो? हम लोग तो बेचारे गौतम को इतनी चर्चा के क़ाबिल नहीं समझते—न राक्षस, न देवता। तुमने इस चक्कर में चाय भी ठंडी कर दी।'' तहमीना ने जवाब दिया था।

आवाज़ें अतीत के झरनों के शोर में डूब गईं। यह नरगीश का फ़्लैट था और सुरेखा फूलों में खड़ी बाल सुखा रही थी और शान्ता सोफ़े पर टाँगें रखे बैठी थी। चेहरे वही थे—मॉस्क नए थे।

''गौतम अब तक सरकुलेशन में है...?'' शान्ता ने ऊँचे स्वर में पूछा।

''क्या?'' वह चौंकी।

''मेरा मतलब है'' शान्ता ने सिगरेट जलाते हुए इस तरह पूछा मानो चम्पा एक खुली किताब की तरह सामने रखी थी, जिसे वह पिछले कुछ मिनटों से पढ़ रही थी। ''वह अब भी सरकुलेशन में है या उसे लायब्रेरी के बुकसेल्फ़ पर वापस रख दिया गया?''

''पता नहीं।''

''तुम्हारी मेम्बरशिप की अवधि ख़त्म हो चुकी?''

शान्ता क्रेग घमंडी होने के अलावा, कमीनी भी थी।

"यही सवाल शायद मैं तुमसे भी कर सकती हूँ।"

शान्ता उदासी से मुस्कराई। उसकी गर्वभरी मुस्कराहट, उसका अन्दाज़, उसकी वेशभूषा, चम्पा किस ध्यान से इन दिनों उसका अनुकरण करने में लगी थी। खूबसूरत, सफल, लोकप्रिय, कैरियर-वूमेन। वह भी शान्ता नीलाम्बर की तरह क्यों नहीं बन सकती? शान्ता ने इत्मीनान से उसे देखा। "मैं उसके इलूज़न तबाह नहीं करना चाहती थी। मुसीबत यह है कि वह शायर है।"

"वाक़ई, यह मुझे मालूम न था।" चम्पा ने व्यंग्य से कहा।

"तुम्हें यह मालूम नहीं हो सकता। तुम ख़ुद अपने ख़यालों की दुनिया में ज़रूरत से ज़्यादा डूबी हुई हो। आदमी कुरबानी चाहते हैं। बिना अपनी बलि दिये तुम उनको प्राप्त नहीं कर सकता। तुम पेरिस से यहाँ क्यों चली आईं, अपना एकेडेमिक साल अधूरा छोड़ कर, इसलिए कि वह यहाँ है?"

"बको मत ! यह तुमसे किसने कह दिया?" चम्पा को बेहद ग़ुस्सा आया। अब वह अपना अधिक अपमान नहीं करवाएगी।

"लेकिन, यह तो जंगली बत्तख का पीछा करना है।" शान्ता अपनी सुरीली आवाज़ में कहती रही।

"तुम कहानीकार हो ना, इसलिए मेरे बारे में तुमने अपनी कल्पना को बेलगाम छोड़ रखा है।"

"अब बिल तुमको बिल्ड-अप करना चाहता है।" शान्ता ने अपनी सुरीली आवाज़ में बात समाप्त की, और फिर इत्मीनान से अँगीठी पर रखी हुई तस्वीरों को देखने लगी।

तहमीना, रज़ा, निर्मला श्रीवास्तव, शान्ता क्रेग।

"अच्छा, यह बात है !" चम्पा ने अपना कोट और दस्ताने उठाए..."मैं नफ़रत के काबिल हूँ—मैं नफ़रत के काबिल हूँ।—अच्छा भई, अब चला जाए ! नरगीश, सुरेखा, शान्ता—ख़ुदा हाफ़िज़ !"

"कल दफ़्तर आओ तो वह नीली ऊन लेती आना जो हम लोगों ने उस दुकान पर देखी थी" शान्ता ने उसी इत्मीनान से कहा।

"मैं शायद कल दफ्तर न आऊँ" दरवाज़े तक पहुँच कर उसने दोबारा पलट कर कहा, "कल क्या मानी, मैं शायद कभी तुम्हारे दफ़्तर न आऊँ—गुड-नाइट !"

बाहर चेलसी की सड़क पर आकर उसने देखा, मकानों की खिड़कियाँ वर्षा के सुहाने धुँधलके में छुप गई थीं। नुक्कड़ की फूल बेचने वाली बूढ़ी औरत वर्षा से बचने के लिए बरसाती ओढ़े कुर्सी पर दीवार की तरफ़ मुँह किए बैठी जाने क्या सोच रही थी ! वह अपने घर पहुँची। घर बहुत दूर उपनगर में था। अपने कमरे की चौखट में उसे सिरिल का पत्र मिला। उसने लिखा था—"न्यूहम में तुम्हारा दाख़िला हो गया है। सितम्बर में तुम यहाँ आ रही हो। ये गर्मियों के कुछ महीने किसी उदास और रोमेण्टिक इटैलियन या स्पेनिश शहर में बिता आओ। मैं उत्तर जा रहा हूँ। रोज़मारी बीमार है।"

...रोज़मारी??

69

कोह-ए-नूर की एक मेज़ पर जो खिड़की के पास बिछी थी गौतम निर्मला के सामने बैठा बाहर बरसती हुई बारिश को देखता रहा। लड़कों और लड़कियों की टोलियाँ आ-आकर बैठ रही थीं या उठ-उठ कर बाहर जा रही थीं। कमाल 'माफ़ करना !' कह कर, किसी दोस्त से बात करने के लिए एक दूसरी मेज़ की ओर जा चुका था, और बड़े जोश-ख़रोश से किसी बहस में हिस्सा ले रहा था, बहस में बार-बार "माओ" और "पीपुल्ज-चायना" का नाम दोहराया जा रहा था। गौतम ने उदास-सी मुस्कराहट के साथ उस पर नज़र डाली।

"कमाल कितना प्यारा लड़का है।" उसने कहा।

"हाँ...कम्मन भैया के होने से मुझे यही लगता है कि भैयन यहाँ मौजूद हैं। अगर कम्मन भैया और तलअत न आ रहे होते तो अम्माँ मुझे हरगिज़ अकेला विलायत न भेजतीं।" निर्मला ने कहा।

"तुमने मुझे जो बातें चम्पा के बारे में बताईं, उन्हें सुन कर बड़ा दुःख हुआ।" गौतम ने कहा। वह अभी तक चम्पा के बारे में सोच रहा था। निर्मला ने अपने आँसू पीने की कोशिश की। कुछ मिनट पहले इस व्यक्ति ने उससे प्रपोज़ किया था। वह चुप बैठी रही।

"तुम सबने, हम सबने उनके साथ इन्साफ़ नहीं बरता। हमने उनको बराबर ग़लत समझा है—मिसाल के तौर पर"—गौतम ने ज़रा जोश से दोहराया और काँटा उठा कर निर्मला को समझाना शुरू किया—"उन्होंने कभी भैया साहब को अप्पी से, यानी कि, छीनना नहीं चाहा था।"

"जो भी हो, मेरा ख़याल है अब हम चम्पा बाजी पर और बहस नहीं करेंगे" निर्मला ने कहा और व्यस्त-सी लगने के लिए बैग में कोई चीज़ तलाश करने लगी। "तुम्हारे नज़दीक चम्पा बाजी मुकम्मल हैं मगर शायद तुम भूलते हो कि हम चम्पा बाजी को बचपने से जानते हैं।"

"यह बचपने से जानने की धौंस अच्छी है !" गौतम ने कहा। "तुम्हारे यहाँ हर समय बचपने का राग क्यों अलापा जाता है? जो लोग तुमको या चम्पा अहमद को बचपने से नहीं जानते, वे सब महज़ गधे हैं?"

अब गौतम पर चारों ओर से बड़ी तेज़ रोशनी पड़ रही थी। वह स्वयं भी गौतम के सामने तेज़ रोशनी में थी। लेकिन, देखो, क्या हुआ कि गौतम ने हाथ बढ़ा कर सहसा स्विच बन्द कर दिया !

गौतम, इंसानी चरित्र का निर्दयी आलोचक, वेदांत का गुरु, चम्पा जैसी फ्रॉड को मुकम्मल समझता है। भगवान, तेरी लीला न्यारी है। लेकिन वह कह रहा था—

"निर्मल...मैं तुम्हारी गलतफ़हमी दूर करना चाहता हूँ। मुझे चम्पा से क्या मतलब ! मैं बहुत फटीचर हूँ, तुमने ठीक कहा। मगर, मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ।"

"दया के रूप में ? नहीं, सॉरी, गौतम।"

"निर्मल...मुझे समझने की कोशिश करो। ओ निर्मल... !" अब वह फिर अँधेरे में चला गया। वह बहुत दयनीय था, स्कूल के लड़कों की तरह। कौन कहता है, मर्द समझदार होते

हैं। अरे, इनसे ज़्यादा मूर्ख़ कौन होगा ! मेज़ पर बैठे-बैठे निर्मला ने महसूस किया कि वह बेल की तरह, पेड़ों की तरह, बैरोमीटर के पारे की तरह, ऊँची होती जा रही है। उसमें ज्ञान आ रहा है। अब नक़ली बत्तियां बुझा कर वह भी उस अँधेरे में चली जाएगी जो सब अवस्थाओं से उत्तम है। उसमें बैठी वह बाहर झाँका करेगी। अब वह सुलेमानी टोपी पहन लेगी, जिसकी कहानी बचपन में उसे 'गुलफ़िशाँ' के सर्वेण्ट-क्वार्टर में क़दीर ड्राइवर ने सुनाई थी।

यह सुलेमानी टोपी हर एक को थोड़े ही प्राप्त होती है ! मैं तुम्हारी आभारी हूँ, श्री नीलाम्बर, कि तुमने मेरे बड़े होने में मेरी मदद की, और सुलेमानी टोपी पहनने का रास्ता दिखाया। काश, मैं तुमसे ब्याह कर सकती ! मगर, मुझमें बहुत ज़्यादा ज्ञान आ गया है। चम्पा अहमद की पूजा किए जाओ, गौतमजी ! शायद तुमको भी मुक्ति का मार्ग मिल जाए !

उसी रात निर्मला की एक्सरे-रिपोर्ट में मालूम हुआ कि उसे फेफड़ों का क्षय है।

70

जिस साल चम्पा केम्ब्रिज पहुँची, उस साल तलअत और निर्मला वहाँ से जा चुकी थीं। (मैं हमेशा मिडूहर्स्ट जाना चाहती हूँ, लेकिन इसकी नौबत नहीं आती। सिरिल अबके वीक-एंड पर ज़रूर मिडूहर्स्ट चलेंगे ! बेचारी निर्मला को देखने।) अब वह उच्च वर्ग की अंग्रेज़-लड़कियों के लहजे में बात करती। केम्ब्रिज की बद्‌दिमाग़ी भी उसने पूरी तरह ओढ़ ली। कुछ तौर-तरीक़े उसने लेखकों के खेमे में रह कर लंदन में सीख लिये थे। इसके अलावा, रखरखाव, सलीक़ा, शिष्टता, सहनशीलता, एक ख़ास सतह का धीमा-धीमा परिहास। रात को आईने के सामने खड़े होकर वह सहसा सोचती—चम्पा अहमद कहाँ रह गई ! चम्पा अहमद जो एक देवमाला हो चुकी है। वह बसन्त-कॉलेज बनारस वाली लड़की कहाँ गई—कहानी में तब्दील? या, वह लड़की, जिसको आमिर रज़ा ने 'गुलफ़िशाँ' के साइड-रूम में तरकारी बनाते देखा था? आमिर रज़ा का ख़याल अब उसे बहुत हास्यास्पद लगता। वह फ़िल्मस्टारों के हुलिये वाला डिप्लोमैट, जिसकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी समस्या यह थी कि शाम को कौन-सा सूट पहन कर, कौन-सी लड़की को लेकर थियेटर देखने जाए !

फिर एक रोज़ केम्ब्रिज में फ़िलासफ़र लड़की रौशन से उसकी मुलाक़ात हुई। वह लायब्रेरी की तरफ़ जाने वाली सड़क के किनारे एक पुलिया पर बैठी माइकेल से बातें कर रही थी। माइकेल साइकिल पर सवार, एक पाँव पुलिया से टिकाए यहूदियों के देशनिकालने की सायकोलॉजी पर रोशनी डालने में लीन था। हठात् उसने नारा लगाया—"रौशन !" मगर रौशन सोच में डूबी सामने से निकल गई। चम्पा अहमद ने कंधे उचकाए।

"हाँ डोन स्पोंजा" माइकेल ने कहा। दूसरे रोज़ रौशन काले फ़्रेम की पढ़ने वाली ऐनक लगाए सोच-विचार में डूब कर सिग्रेट पीती कीम के किनारे बैठी नज़र आई।

चम्पा को वह बहुत अच्छी लगी। अब चम्पा अपने विचार में उस स्टेज पर पहुँच चुकी थी, जब इंसान स्वयं असम्बद्ध होकर दूसरों का अध्ययन करता है और बड़ी उदारता से दूसरों को माफ़ करता रहता है।

रौशन ने चम्पा को बड़े सन्देह की नज़रों से देखा। किसी लड़की से उसे बताया था

कि यह चम्पा अहमद आमिर की 'ओल्ड फ़्लेम' है। चम्पा अगर यह लफ़्ज़ सुन लेती तो बेहद तौबा-तिल्ला करती और कहने वाले को बुरा-भला कहती, क्योंकि इस क़दर मॉर्डन बन जाने के बावजूद, थोड़ा-सा खुरचने के बाद वह वही ख़ालिस यू. पी. की मिडिल-क्लास लड़की थी, जिसकी कल्पनाएँ इस क़िस्म की बातों के सिलसिले में बड़े पुराने ढंग की होती हैं। ख़ैर जो भी हो, वह ख़ुद को किसी का 'ओल्ड फ़्लेम' कहलाना पसन्द न कर सकती थी।

उसने इसके बावजूद एक घंटे तक रौशन से स्पोंजा के बारे में विचार-विमर्श किया। रौशन पाकिस्तान सरकार के किसी बहुत ऊँचे अफ़सर की लड़की थी। उसे तरह-तरह की छात्रवृत्तियाँ मिली हुई थीं, और यहाँ भी बहुत योग्य और गम्भीर मानी जाती थी। संक्षिप्त यह कि वह उन प्रतिभाशाली विद्यार्थियों में से थी जो विदेशों में अपने प्यारे देश को चार चाँद लगाते हैं और प्रचार पत्रिकाओं में जिनकी अकसर तस्वीरें छपती रहती हैं।

एक छुट्टी के दिन चम्पा दूसरे लड़कों और लड़कियों के साथ एक देहाती चाय-ख़ाने के बाग़ में बैठी थी। एक इटैलियन विद्यार्थी एंजेलो सेब के नीचे गिटार बजा रहा था। निकट की आरामकुर्सी पर माइकेल बड़ी उदासी से सेब की कलियाँ सूँघने में लीन था। उस दिन उसने अनाउंस किया था कि वह देश त्याग कर इसराइल जा रहा है। वह कई घंटे से राष्ट्रीयता की समस्या पर विवाद करते-करते थक कर अब शान्त बैठे चाय की प्रतीक्षा कर रहे थे। 'मैं यह प्यारा, हरा-भरा सुन्दर इंग्लिस्तान छोड़ दूँगा, और इसराइल के रेगिस्तान में पत्थर कूट कर सड़कें बनाऊँगा', उसने कहा। ग्रिल ने उसे देख कर कहा—'हाँ, माइकेल, तुम ज़रूर ऐसा करोगे। मुझे मालूम है।' उसने कहा—यूनिवर्सिटी के कई यहूदी प्रोफ़ेसर, वैज्ञानिक, संगीतकार, इस समय इसराइल में पत्थर कूट कर सड़कें बना रहे थे।

"विज़न में बड़ी ताक़त है !" डेनिस ने कहा--"ज़रा शायरों की शायरी देखो !"

"ताक़त तबाह करने वाली होती है !" ग्रिल ने मुँह लटका कर कहा। सामने चाय-ख़ाने के फाटक पर एक कार आन कर रुकी। गौतम नीलाम्बर, कमाल, तलअत और कुछ और लोग उतर कर चाय-ख़ाने की ओर बढ़े। उन्होंने ऑर्चड में बैठे हुए लोगों को नहीं देखा।

"गौतम नीलाम्बर भी बड़ी तबाह करने वाली ताक़त है, क्योंकि उसका विज़न सबसे ज़बरदस्त है—नेहरू का हिन्दुस्तान—!" एंजेलो ने कहा।

"नई विचारधाराओं में शोवनिज़्म सबसे भयानक है !" ग्रिल ने माइकेल से कहा। "तुम्हारा यहूदीवाद, पाकिस्तानियों का इस्लाम, हिंदुस्तानियों का गुप्त काल का नवीनीकरण..."

"गौतम शोवनिस्ट नहीं है।" सुरेखा बोली—"वह केवल शान्ति चाहता है, जिसमें हिन्दुस्तान की आर्थिक उन्नति हो सके। हम धर्म की लाइन्ज़ पर नहीं सोचते। भारत का किसान इस समय हमारा सबसे अहम मसला है। हमारा...!"

"तुम तो इंडिया-हाउस के किसी पैम्फ़लेट की भाषा में बात कर रही हो !" ग्रिल ने मुस्करा कर उसकी बात काटी।

"आर्थिक तरक्क़ी से मज़हब का क्या संबंध, यह बात पाकिस्तानियों की समझ में नहीं आती।" गुलशन ने कहा। "अमरीका पाकिस्तान का सबसे बड़ा शुभचिंतक है। आजकल तुर्की में कुर्आन शरीफ़ के नुस्खे छाप-छाप कर बाँट रहा है। जिस प्रकार हिटलर और मुसोलिनी इस्लाम के सबसे बड़े शुभचिंतक थे" डेनिस ने कहा।

"पाकिस्तान का इस्लाम"—माइकेल ने कहा

"तुम तो मुसलमानों से नफ़रत करते हो?" रौशन ने माइकेल से कहा।

"नफ़रत की सायकोलॉजी" डेनिस ने कहना शुरू किया, "आज की दुनिया नफ़रत के ताने-बाने पर ज़िन्दा है। जीज़स ने बिलकुल ग़लत कहा था कि संसार का आधार प्रेम है। असलियत यह है कि हम सब जंगली दरिन्दों की तरह एक-दूसरे को खा रहे हैं।'

"मैं दरिंदा (श्वापद) हूँ?" माइकेल ने उदासी से पूछा। "मैं तो सिर्फ़ हैफ़ा जाकर सड़कें कूटना चाहता हूँ !"

"तुम सबको क्वाकर्ज़ से शिक्षा लेनी चाहिए। गांधी का अध्ययन करो !" डेनिस ने कहा।

"ज़रा गौतम को बुला कर पूछो, जो हर वक़्त पाकिस्तान के ख़िलाफ़ प्रोपेगेंडा करता है।" रौशन ने कुछ आवेश से कहा।

"और, पाकिस्तान उसके ख़िलाफ़ प्रोपेगेंडा करता है।" सुरेखा ने जवाब दिया।

"अगर सिर्फ़ एक रोज़ के लिए सारी दुनिया में प्रोपेगेंडे की मशीनरी रुक जाये तो कितनी शान्ति मिले !" चम्पा ने धीरे से कहा।

"यह कैसे हो सकता है ! हम सबको तो सुबह-शाम गोयबेल्ज़ की तस्वीर पर फूल चढ़ाने चाहिए। तुम गांधी की बात करते हो? हमारे युग का सबसे बड़ा पैगम्बर गोयबेल्ज़ था—डॉक्टर गोयबेल्ज़ ज़िन्दाबाद !" गुलशन ने कहा।

"असल में" डेनिस ने बात शुरू की—"हम सब अचेतन मन से फ़ासिस्ट हैं। हम सब तबाही और मौत चाहते हैं। मैं रूमान-परस्तों की 'मौत की आकांक्षा' के अर्थ खूब समझता हूँ।"

"मैं तो नहीं चाहती कि यह ख़ूबसूरत ऑर्चड तबाह कर दिया जाए !" चम्पा ने घबराहट के साथ कहा।

"हम सब छुपे हुए फ़ासिस्ट हैं। हम सब के हाथ में न दिखाई देने वाली मशीनगनें हैं, जिनका मुँह हमने दूसरों की ओर कर रखा है—विचारों की मशीनगनें ! सिर्फ़ बूढ़ी औरतें शान्ति चाहती हैं। लेकिन, दुनिया को बूढ़ी औरतों की ज़रूरत नहीं।" उसने चम्पा को देखा। वह उसे एक बूढ़ी, दुखी माँ की तरह दिखाई दी।

"मुझे हमेशा तबाह किया गया है" माइकेल ने सिर उठा कर कहा। "लेकिन मैंने अपने बन्धुओं की लाशों के ढेर पर बैठ कर तुम्हारे लिए संगीत की रचना की और विचारों के दीप जलाए। मैं जंगली पशु हूँ? मैं सिर्फ़..."

"सड़कें कूटना चाहते हो"—डेनिस ने बात काटी। "हम तुमको इसकी इजाज़त देते हैं, माइकेल ! तुम अपने विज़न के रास्ते पर चलो।"

"दूसरों के विज़न में दख़ल देकर उसको बरबाद करने की इच्छा सब से बड़ा गुनाह है। मूसा के दस आदेशों में इस गुनाह की कहीं चर्चा नहीं है।" सिरिल ने कहा—"इसलिए मैं तुमको इसकी इज़ाजत देता हूँ।"

एंजेलो ने गिटार एक तरफ़ रख दिया—"माइकेल, तुम यहूदी हो, लेकिन तुम अंग्रेज़ भी हो। तुमने अपने बम-बार जहाज़ पर उड़ कर मेरे ख़ूबसूरत शहरों को बरबाद किया है। लेकिन,

मैं तुमको माफ़ करता हूँ !"

"माइकेल !" सुरेखा ने कहा—"तुम यहूदी हो, लेकिन तुम अंग्रेज़ भी हो। इसलिए ख़ुद को हमसे ऊँचा समझते रहे हो। अब तुम बड़े शौक़ और उत्साह से एशियाई बनने जा रहे हो, क्योंकि तुम्हारा ख़याल है कि तुम्हारी जड़ें फ़िलिस्तीन में हैं, हालाँकि तुम्हारी जड़ें वास्तव में हेमस्टर्ड में हैं। लेकिन, हम तुमको माफ़ कर रहे हैं।...रौशन ! माइकेल एशियाई बनने जा रहा है। इसका स्वागत करो !"

"मैं इसका स्वागत नहीं कर सकती। यह सब बहुत ज़बरदस्त घपला है।" उसने मेज़ पर अपना सिर टिका दिया और प्यालियों पर बनी नक्काशियों को देखने लगी।

"तुम्हें सुरेखा से भी नफ़रत करनी चाहिए, क्योंकि यह हिन्दू है।"

"हाँ।"

"इसलिए, रौशन, मुझसे हाथ मिलाओ !" माइकेल ने गम्भीरता से हाथ बढ़ाया। "हिन्दुओं ने तुमको हिन्दुस्तान से निकाला।

"मैंने नहीं निकाला, ये ख़ुद निकली" सुरेखा ने आपत्ति की।

माइकेल सुनी-अनसुनी करके कहता रहा, "तुम्हारी तरह अगर हमने भी एक नेशनल होमलैंड बना लिया, तो हम ही क्यों गर्दन उड़ा दिए जाने के योग्य हो गए?"

"तुम? तुमने अरबों को उनके वतन से निकाला, जहाँ वे सैकड़ों साल से रहते आए थे।" रौशन ने कहा।

"तुमने भी हिन्दुओं को उनके वतन से निकाला, जहाँ वे हज़ारों साल से रहते आए थे।" माइकेल ने कहा।

फिर बड़ी उदास ख़ामोशी छा गई। पेड़ों के झुंड में तितलियाँ उड़ रही थीं। सामने नदी पर से एक किश्ती गुज़र गई। एंजेलो ने फिर गिटार बजाना शुरू कर दिया।

71

गौतम नीलाम्बर और उसके साथी कार से उतर कर, चायख़ाने के अन्दर चले गए। लाउंज में बैठ कर उन्होंने चाय मँगवाई थी, और गौतम ने कुछ पत्र वेटर को पोस्ट करने के लिए दिए। वह लंदन से आ रहे थे और मिड्हर्स्ट जा रहे थे। उनके साथ बिल था और ख़ूबसूरत बरनाई, जो स्कूल-ऑफ़-इकनॉमिक्स में अध्यापक था; और शान्ता, तलअत और नरगीश। वे लोग भी कोई विश्वव्यापी समस्या हल करने में लीन थे। कमाल ने खिड़की से बाहर झाँका, जहाँ से बाग़ का दृश्य दिखाई दे रहा था। ढलवान पर नदी बह रही थी। बैंत और प्रिम्रोज के पत्तों में से एक सफ़ेद लाँच नज़र आ रहा था। उस पर 'क्लारा जीन' लिखा था ! "शान्ति ! शान्ति !" कमाल ने दोहराया। गौतम ने उसे देखा।

"बाहर चम्पा बाजी और सिल वग़ैरह बैठे हैं !" तलअत ने खिड़की में आकर कहा।

"निर्मला के लिए मैं एंगस-विल्सन की किताब लाना भूल गया" बिल ने कहा। वे लोग निर्मला को देखने जा रहे थे। उसे अब सेनीटोरियम में तीसरा साल था। उसके एक फेफड़े का ऑपरेशन हो चुका था, और उसके चिकित्सक सर रोनल्ड ग्रे का ख़याल था कि अब वह

पूर्णरूप से स्वस्थ हो जाएगी। शनिवार के दिन उसके मित्र लंदन से उसे देखने के लिए आते। गौतम भी, बराबर, जब उसे फुर्सत मिलती, कमाल और तलअत के साथ उसे देखने के लिए जाता और नियमित रूप से पत्रिकाएँ और पुस्तकें उसके लिए भेजता। उसके ऑपरेशन के अवसर पर हरिशंकर भी वाशिंगटन से वहाँ पहुँच गया था। गौतम बड़ी लगन से निर्मला का ध्यान रखता। अक्सर अब कमाल शनिवार के दिन मिड्हर्स्ट न पहुँच सकना तो गौतम को तार दे देता। गौतम सब काम छोड़ कर वहाँ चला जाता। वह और निर्मला चम्पा का ज़िक्र कभी न करते। जीवन इतना गुंजलक, इतना व्यस्त, इतना ऊबड़-खाबड़ और इतना तर्कहीन था कि इंसान सारे परिचितों और सारे जानने वालों के साथ निबाह न कर सकता था। इतना समय ही नहीं था।

गौतम अब बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। उसने हिन्दुस्तान की विदेशी नीति और आर्थिक समस्याओं पर और देश की राजनीति पर दो पुस्तकें लिखी थीं, जिनकी धूम मच गई थी। अब वह एक 'सेलेब्रिटी' था—सफल और लोकप्रिय—बड़े संतुलित और झलके हुए विचारों वाला। उसकी समझ में न आता था कि लोग भावुक किस प्रकार हो सकते हैं। "सन् '47 ई. में हम क्या चाह रहे हैं। हमको इतना अवसर दे दो कि हम इन बीमारियों का इलाज करना चाह रहे हैं। हमको इतना अवसर दे दो कि हम तन्दुरुस्त हो जाएँ, फिर हमसे धर्म, अध्यात्मवाद और गीता की बातचीत करना। मुझे भी गीता बहुत पसंद है लेकिन इस समय मुझे पंचवर्षीय योजना अधिक पसंद है इसकी रिपोर्टों के अध्ययन से मुझे ज़्यादा शांति और संतोष प्राप्त होता है।" वह कहता—"हे मार्केट के राइटर्ज क्लब में बैठे हुए..."

प्रायः कोई वर्तानवी पत्रकार उससे सवाल करता—"गौतम तुम्हारी कोई निजी ज़िंदगी भी है या नहीं? तुम तो बिलकुल कृष्णा मेनन वनते जा रहे हो।"

"मुझे भय है कि गौतम लीडर बन जाएगा" ब्रिल कहता।

"गौतम लीडर नहीं बनेगा। बहुत बड़ा स्टेट्समैन बनेगा। वह एक अत्यंत बुद्धिमान चिंतक है।" वह कहता।

सन् 47 ई. ने ज़हनों की दुनिया हिला कर रख दी थी। गौतम और कमाल बदले हुए विश्वव्यापी हालात, अन्तर-राष्ट्रीय राजनैतिक अपराध, मक्कारी, बेईमानी और अन्तःकरण को बेचने वाले इस नए युग से समझौता नहीं कर सकते थे। गौतम के सेक्यूलर विचारों के कारण हिन्दू शोवनिस्ट और महासभाई दृष्टिकोण के लोग उससे नाराज़ थे। कमाल की राष्ट्रीयता और स्पष्टवादिता ने उसे कहीं का न छोड़ा था। उसके अधिकांश मुसलमान दोस्त और रिश्तेदार पाकिस्तान जा चुके थे। लंदन और केम्ब्रिज़ के पाकिस्तानी-विद्यार्थी उसे इंडिया-हाउस के गौतम नीलाम्बर का स्टूज कहते थे। यह सब सुन कर उसके दिल पर छुरियाँ चल कर रह जाती थीं।

निर्मला की बीमारी ने, जो उसे तलअत की तरह ही प्रिय थी, जीवन के सम्बन्ध में कमाल का सारा रवैया ही बदल दिया था। उसे सहसा यह अनुभव हुआ था कि जीवन और मृत्यु के बीच वाल से ज़्यादा बारीक सीमा-रेखा है। जीवन ऐसी चीज़ नहीं कि उससे मज़ाक किया जाए। मनुष्य बहुत महान् है। उसका दिल संसार की सबसे मूल्यवान वस्तु है। फिर उसे ख़याल आता कि ईसाई यीशु मसीह के हृदय के चित्र क्यों बनाते हैं, जिसमें काँटे चुभे हैं? हाँ, दूसरों का दिल दुख़ाना क्यों सबसे बड़ा गुनाह है?

निर्मला की बीमारी ने गौतम के सारे संसार में भी एक क्रान्ति ला दी थी। किसी को मालूम नहीं था कि वह निजी नरक, जो मनुष्य की आत्मा है, उसमें कैसी-कैसी दुनियाएँ आबाद है; उनमें कौन लोग बसते हैं ! विश्व के उस कोने में जहाँ पर 'गौतम नीलाम्बर' का बोर्ड लगा है, कैसी-कैसी आँधियाँ चलती हैं। घर में (जिस तरह का घर हर नौजवान के दिल में होता है) कौन लड़की बैठी है ! हर नौजवान सिर्फ़ एक बार इस घर के दरवाज़े खोल कर सिर्फ़ एक लड़की की माँग में सिंदूर भरता है; मगर, उस नौजवान का रहस्य कौन जाने जिसका नाम गौतम नीलाम्बर है। उसके दिल में दरअसल कौन है, शायद उसको भी मालूम नहीं ! या शायद मालूम हो। दूसरे जानने वाले कौन?

और, इस बाल से ज़्यादा बारीक पुल पर जिसे जीवन कहते हैं, निर्मला खड़ी थी। जीवन से मज़ाक़ नहीं किया जा सकता। दिल जो बहुत महान वस्तु है, उससे मज़ाक़ नहीं किया जा सकता।

गोपी का दिल, जो सारे संसार का केन्द्र है।

"चम्पा बाजी बाग़ में बैठी हैं" तलअत ने खिड़की में जाकर दोहराया।

"चलो, उनसे मिलने चलें। मुद्दत से उनसे मुलाक़ात नहीं हो सकी।"

गौतम ने घड़ी देखी—"नहीं, अब सीधे मिड्हर्स्ट चलो, वरना हमें वापसी में देर हो जाएगी।"

वे सब चायख़ाने की लाउंज से निकल कर कार में जा बैठे, और मिड्हर्स्ट की ओर रवाना हो गए।

72

चम्पा ने देखा कि कार ज़न्न से चायख़ाने के फाटक से बाहर निकल गई। एंजेलो पेड़ के नीचे बैठा गिटार बजाया किया। रौशन, माइकल, डेनिस, सुरेखा और गुलशन टहलते हुए नदी की ओर जा चुके थे। चम्पा ने आरामकुर्सी से झुक कर घास की एक पत्ती तोड़ी।

"क्या सोच रही हो?" स्रिल ने पूछा। वह धूप से बचने के लिए एक पत्रिका चेहरे पर रखे सामने की आरामकुर्सी पर बैठा था।

"कुछ भी तो नहीं।"

"वे तुम्हारे दोस्त लोग जा रहे थे, कार में...।"

"हाँ।"

"मैंने देखा है कि तुम 'क्राउड' में खुद को मिलाना भी नहीं चाहतीं, मगर तुम्हें 'क्राउड' की चाहत भी बहुत है। एक अजीब क़िस्म की वफ़ादारी, इसलिए कि तुम्हारा और उनका पिछला ज़माना एक रहा है। तुम अजब विरोधी बातों का संग्रह हो।" स्रिल ने दुखी स्वर में कहा—"मैं तुमको देखता हूँ तो बहुत उदास हो जाता हूँ।"

"इटैलियनों की तरह बातें मत करो !" चम्पा ने कहा।

"यह भी तुम्हारे साथ एक और मुसीबत है। निजी स्तर पर आते ही तुम ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर देती हो। कायर ! तुम्हें खुद अपनी कायरता और कमज़ोरियों का पता है?" वह कुर्सी से उतरा और पेड़ के तने से टिक कर बैठ गया। "अक्सर झूठ बोलती हो। ईर्ष्या करती हो।

दूसरों की ख़ुशी से जलती हो। दूसरों पर रौब डालने की कोशिश में हर वक़्त लगी रहती हो। दूसरों को अपने से बेहतर नहीं देखना चाहतीं।" वह कहता रहा—"मिसाल के तौर पर तुम्हें रौशन पसन्द नहीं, क्योंकि वह यूनिवर्सिटी में तुमसे ज़्यादा मशहूर है। तुम लखनऊ-यूनिवर्सिटी में मशहूर रही होगी, मगर वह सन् 1942 था और तुम भूलती हो कि इस बात को दस साल गुज़र चुके हैं, और रौशन तुमसे दस साल छोटी है। चम्पा, वक़्त का सबसे बड़ा कमीनापन यह है कि हम अभी एक चीज़ के लिए तैयार नहीं हो पाते कि हमको मालूम होता है कि हमारा ज़माना निकल चुका। चम्पा, ख़ुदा करे तुम शुनीला मुकर्जी कभी न बनो !"

"शुनीला मुकर्जी?"

"हाँ, मैं तुमको एक संस्था में बदलते हुए नहीं देखना चाहता। चम्पा अहमद आज से दस साल बाद चैलसी के एक स्टूडियो फ़्लैट में आर्टिस्टों और बुद्धिवादियों की पेटर्न और गुरु होगी। माई गॉड ! बड़ा डर लगता है मुझे इस ख़याल से !"

"मैं इतनी रहम के काबिल हूँ?"

"नहीं, हम सब रहम के काबिल हैं। तुम इन सारी बातों के बावजूद बहुत प्यारी हो। तुम नेकदिल हो, यह बहुत बड़ी चीज़ है। और, शायद तुममें दूसरों को माफ़ करने की योग्यता भी है। है ना?"

"हाँ, शायद।"

वह चुप हो गया। हल्की-हल्की फुहार पड़ने लगी। वे उठ कर चायख़ाने के लाउंज में आ गए। रौशन और माइकेल और उनके साथी दूर लाउंज पर बैठे दिखाई दे रहे थे। लाउंज के एक सोफ़े पर कुछ कागज़ और अख़बार रखे हुए थे, जो गौतम नीलाम्बर वहाँ भूल गया था।

"तुम दोस्ती कर सकती हो" स्रिल कहता रहा—"वरना बाक़ी तुम सारे में टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरी हुई हो, इस कागज़ के टुकड़े की तरह।" उसने बेध्यानी से ख़ाली लिफ़ाफ़ा उठाया। उस पर गौतम का पता लिखा हुआ था ! उसने लिफ़ाफ़े को मोड़-तोड़ कर अँगीठी में फेंक दिया।

"स्रिल, मैं इतनी तेज़ रोशनी में हूँ, जितनी तुमने अभी प्रकट की है।"

"हम सब इसी तेज़ रोशनी में मौजूद हैं" उसने सोफ़े पर से एक पत्रिका उठाई। उस पर भी गौतम का नाम छपा था।

"तुम इसे बहुत ज़्यादा चाहती हो ना?" उसने पत्रिका चम्पा की ओर फेंक दी।

एक समय था, ख़ुद गौतम ने उससे आमिर रज़ा के सम्बन्ध में इसी प्रकार के इम्तहान लेने वाले सवाल किए थे।

"लेकिन, वह तुमसे मिलता क्यों नहीं?" उसने दोबारा कहा।

"पता नहीं, मुझे उससे मिलने की फ़ुर्सत कहाँ है?"

"तुम फिर झूठ बोल रही हो !"

वह एक ऊँची चोटी पर खड़ी थी, और सारी दुनिया उसके रत्ती-रत्ती हाल से परिचित थी।—मैंने अपने आप को इस तरह क्यों बिखरने दिया? अब बहुत देर हो चुकी है। अब...अब क्या हो सकता है? सारा ज़माना निकल चुका...सारा ज़माना...!

बाहर बारिश में चन्द और मोटरें आकर रुकीं। चन्द मशहूर शेक्सपीरियन-अभिनेता लाउंज में दाखिल हुए। वे अपना नाटक लेकर किसी नाटक-पर्व के लिए बराबर के गाँव में आए हुए थे। उनमें से एक एक्टर सिरिल को जानता था। वे सब अँगीठी के पास जा बैठे। दूसरी बातें शुरू हो गईं।

73

मिड्हर्स्ट का शानदार सेनीटोरियम सैकड़ों एकड़ धरती पर फैले हुए सुगंधित जंगलों से घिरा, शान्ति के साथ वर्षा में भीग रहा था। उसके आनन्दमय सुन्दर वातावरण में हर तरफ़ फूल ही फूल थे, और मुस्कराते हुए हमदर्द चेहरे। साफ़-सुथरी लम्बी गैलरियाँ, सुन्दर ड्राइंगरूम, झिलमिलाता हुआ ऑडीटोरियम, जहाँ मशहूर थियेटर कम्पनियाँ आकर मरीज़ों के लिए ड्रामे स्टेज करतीं। इस हृदयग्राही स्वर्ग में लोग आराम से टेलिविज़न देखते हुए अपने अंत की प्रतीक्षा करते या किसी दूसरे प्रकार की समाप्ति तक के अवकाश के लिए फिर बाहर की दुनिया में वापस चले जाते। इमारतों के एक भाग के कोने में निर्मला का कमरा था जिसके तीन तरफ़ बाग़ था। "यह मेरा कमरा, हमारे आई. टी. वाले 'निशात महल' हॉस्टल के किसी कमरे जैसा है ना?" निर्मला ने तलअत से कहा था। ये लोग हर चीज़ अतीत से नत्थी करती जाती थीं। (स्विट्ज़रलैंड नैनीताल था। लेक डिस्ट्रिक्ट देहरादून की तरह थी, लंदन में बम्बई की झलक थी।) अतीत सुरक्षित था, क्योंकि उसमें किसी परिवर्तन की गुंजाइश न थी—किसी दुर्घटना की सम्भावना न थी।

निर्मला तकियों के सहारे अधलेटी, प्रसन्नता से सबको देखती रही। "अब मुझे लन्दन की ताज़ी ख़बरें सुनाओ।"

"अच्छा !" तलअत उचक कर खिड़की में बैठ गई। उसने विस्तार से बताना शुरू किया।

शान्ता, कमाल और सिरिल के साथ, निर्मला के पलंग के दूसरी तरफ़ बैठी थी। गौतम फूलों के बड़े वाज के नज़दीक कोने में बैठा बरनार्ड से बातें कर रहा था।

"गौतमजी !" निर्मला ने उसे सम्बोधित किया—"अब हिंदी समाचार हो जाएँ।" वह उठ कर उसके सामने खिड़की में जा बैठा।

"मजलिस-मेले की तैयारियाँ हो रही हैं?" निर्मला ने तलअत से बड़ी जिज्ञासा से पूछा।

"बड़े जोरों में !" तलअत ने कहा। फिर एक क्षण के लिए वे सब ख़ामोश हो गए। हर साल निर्मला मजलिस के वार्षिक मेले की तैयारियों में आगे-आगे रहा करती थी। मेले में उसकी अनुपस्थिति का यह तीसरा साल था।

"बस, सिर्फ़ इस अगस्त में तुम हमारे साथ नहीं हो।" कमाल ने कहा; "अगले साल, इंशाअल्लाह, तुम फिर मेले की लीडरी कर रही होगी !"

"इंशाअल्लाह !" निर्मला ने मुस्करा कर कहा।

"कल भैया साहब से मिले थे" गौतम बोला ! "कहते थे कि शायद आज तुम्हारे पास आएँ।"

"वह तो मुझे कई बार देखने के लिए आ चुके हैं, बेचारे।"—निर्मला ने कहा। "उनकी

लड़कियों की सिचुएशन कैसी चल रही है?"

"ठीक चल रही है" तलअत ने कहा।

"फिर स्कैण्डल शुरू हुए !" कमाल ने डाँटा।

"नहीं, मैं तो इसके बाद अभी प्रोफ़ेसर टोएनबी का ज़िक्र करने वाली थी।" तलअत ने ज़रा सहम कर कहा।

"तुमने उनको मेले में बुलाया है?" गौतम ने पूछा।

"हाँ !"

"यह अच्छा रैकिट है। बरतानिया के उन सब बड़े-बड़े इन्टेलैक्चुअल्ज़ को अपनी महफिलों में बुला-बुला कर दही-बड़े खिलाती हो, और इस तरह हिन्दुस्तान के लिए उनका समर्थन हासिल करती हो। दही-बड़ा डिप्लोमेसी !" बिल ने हँस कर कहा।

"दही-बड़ा और भरत-नाट्यम्। इन्हीं हरकतों से पाकिस्तान हाउस वाले जलते हैं !" गौतम ने कहा।

"अब राम गोपाल के मुक़ाबले में उन्होंने बुलबुल चौधरी को खड़ा किया है।" बरनार्ड बोला।

"तुम तो इस तरह कह रहे हो जैसे कि बहुत बड़ा अखाड़ा है, और राम गोपाल और बुलबुल चौधरी उसमें कुश्ती लड़ने के लिए उतर रहे हैं !" तलअत ने उदासी से कहा।

''तुम्हारी यह उपमा'' गौतम ने कहा—''बिलकुल सही है। सबसे बड़ी ट्रेजेडी वह है जब कलाकारों को कलाहीन उद्देश्य के लिए प्रयोग किया जाता है।''

"हमने मेले में स्पेंडर को भी बुलाया है।" तलअत ने मुँह लटका कर कहा।

"यह बिके हुए और ख़रीदे हुए इंटेलैक्चुअल्ज़ का युग है।"—गौतम ने कहा—"इस युग में आर्टिस्ट की बड़ी भारी क़ीमत मुक़र्रर हो चुकी है। कौन कहता है कि दुनिया में आर्टिस्ट की क़दर नहीं। देखो, एशिया के कलाकार लोग किस तरह फुलब्राइट और तरह-तरह की स्कॉलरशिपों पर धड़ा-धड़ अमरीका चले जा रहे हैं !"

"एशिया के कलाकार लोग तो धड़ाधड़ सोवियत-यूनियन और चीन भी जा रहे हैं।" बिल ने कहा। वह बड़ा कट्टर निष्पक्ष था।

बाहर देवदार के जंगल पर ऊषा का प्रकाश छा गया। इमारत के विभिन्न कमरों से संगीत की आवाज़ें आ रही थीं।

"अब चलें !" गौतम ने कहा "लंदन वापस पहुँचते-पहुँचते बहुत रात हो जाएगी।"

"तुम सब जा रहे हो?" निर्मला ने सहसा घबरा कर पूछा, "मैं फिर अकेली रह जाऊँगी।"

"तुम अकेली नहीं हो, निर्मल !" कमाल ने उसके पलंग पर झुक कर कहा, ''हम सब हर समय तुम्हारे साथ हैं।"

"मुझे मालूम है।" उसने आँखें बन्द कर लीं।

"अगले हफ़्ते तक के लिए, ख़ुदाहाफ़िज़, निर्मला !" तलअत ने उससे कहा।

"निर्मला, शायद मैं अगले हफ़्ते न आ सकूँ। 'पंडितजी' किसी कॉन्फ्रेंस के लिए दिल्ली से आ रहे हैं। बहुत ही ज़्यादा व्यस्त रहना पड़ेगा !" गौतम ने नर्मी से कहा।

"हाँ गौतम, तुम मेरे कारण अपने काम में हर्ज न किया करो।" निर्मला ने धीमे से

जवाब दिया।

वे सब गैलरियाँ पार करके बाहर आ गए। दूर विंग की प्रकाशमय खिड़की में से निर्मला उनको देवदारों के अँधेरे में आँखों से ओझल होता देखती रही।

74

तलअत का फ़्लैट सेंट जॉर्ज वुड में था। उसके नज़दीक ही शान्ता और बिल रहते थे। आसपास और बहुत से लेखकों और अभिनेताओं के मकान थे। बसंत ऋतु आती तो मकानों के पास बाग़ फूलों से भर जाते। साफ़-सुथरी सड़क पर से सुर्ख़ रंग की डबल डेकर्ज़ शांति से गुज़रती रहतीं। चौराहे के ग्रोसर और तम्बाकू बेचने वालों की दुकानों में खरीदारों और दुकानदारों के बीच नपा-तुला वार्तालाप जारी रहता। आगे बढ़ कर एक छोटा-सा इटैलियन रेस्तराँ था। उसमें एक दाढ़ी वाला पोलश बेदवी आर्टिस्ट अपने कोने में बैठा स्कैच बनाता नज़र आता। वह हमेशा इस आशा में रहता कि कोई उससे उसके स्कैच खरीद लेगा। कोई उससे उसकी तस्वीरें न ख़रीदता।

सेंट जॉर्ज वुड के इन ख़ूबसूरत मकानों में रहने वालों की मानसिक ज़िंदगियाँ बड़ी तूफ़ानी थीं। मुहब्बतों, तलाकों, मनोवैज्ञानिक उलझनों, द्वन्द्वों, और ब्लैक कहवे पर ये लोग अपनी ज़िंदगियाँ बिताते थे। उनके बैठने के कमरे बड़े कलाकाराना अंदाज में सजे थे। लड़कियाँ बालों की पोनी टेल बनाती थीं और काले रंग की तंग मोरी वाली पतलूनें पहनती थीं, अपने माता-पिता से नफ़रत करती थीं और अपनी साइको एनेलिसिज़ करवाती थीं। प्रायः मर्द अभिनेता 'होमो' थे। यह सफल और दौलतमंद कलाकारों का मुहल्ला था। ये लोग प्राचीन एशियाई सभ्यताओं रोमन-कैथोलिक चर्च, और गुप्त काल के आर्ट में दिलचस्पी रखते थे, यह बर्तानिया की एरिस्टोक्रेसी थी।

कुछ फर्लांग पर सुरेखा का मकान था। उसका पति गुलशन आहूजा स्कूल ऑफ एकनॉमिक्स में था। ये दोनों मियाँ-बीवी लाहौर के शरणार्थी थे और दिल्ली से यहाँ शिक्षा पाने के लिए आए हुए थे। सुरेखा नर्तकी की हैसियत से बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी और रायल अकादमी ऑफ़ आर्ट में क्रियोग्राफ़ी सीख रही थी। उसके करीब मियाँ-बीवी चोपड़ा रहते थे। आशा मूर्त्तिकार थी। सतीश चोपड़ा बी. बी. सी. के हिंदी सेक्शन में था। बुध के दिन उनके यहाँ हिंदी के "हलका-ए-अर्बाब-जौक" की बैठक होती। चैलसी के शानदार मॉडर्न ब्लाक में कमला का अल्टरा मॉडर्न फ़्लैट था। कमला, तलअत और निर्मला की बचपन की सहेली थी। अत्यंत प्रतिभाशाली और बड़ी ज़बरदस्त इंटेलैक्चुअल, बहुत ही सुंदर लड़की थी। क्लासिकल नृत्य की माहिर। वह फारन सर्विस में थी। नरगीश बम्बई के किसी करोड़पति की बेटी थी। केम्ब्रिज की शिक्षित। दूसरी पारसी लड़कियों की तरह पश्चिमी लिबास पहनती। वह भी कहीं मुलाज़िम थी और किसी अंग्रेज़ से शादी करने वाली थी। कमला की बड़ी बहन शकुंतला का मकान नाइट्स ब्रिज में था। यह भी एक असाधारण प्रतिभा की मालिक और बहुत ऊँचे स्तर की इंटेलैक्चुअल थी और अत्यंत मनमोहक और प्यारी लड़की थी। उसके पति इंडिया हाउस में पब्लिक रिलेशंस आफिसर थे। फ़िरोज जबीं विश्वविद्यालय में उर्दू में रिसर्च कर रही थी।

और रिजेंट पार्क में रहती थी। उसके वालिद दिल्ली में थे। उन सबकी बड़ी व्यस्त ज़िंदगियाँ थीं। ये सब अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति में जुटे थे। सिर्फ़ निर्मला श्रीवास्तव इस हंगामे से अलग मिडहर्स्ट में पलंग पर पड़ी थी। उसका ख़याल करके तलअत का दिल डूब जाता। उसको खुशी अब किस तरह हासिल होगी। निर्मला जिसको और सबकी तरह ज़िंदगी से बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। खुशी बहुत ही महान चीज़ है।

तलअत दूसरों की खुशी से खुश होती थी। सुरेखा के डांस के बाद कई बाद 'आंकुर' होता या गौतम की किताब का नया संस्करण निकलता या कमला की किसी अखबार में प्रशंसा छपती तो उस दिन तलअत की ईद हो जाती। वह दूसरों के दुख से दुखी होती थी। वह चम्पा का ख़याल करके बड़ी दुखी होती। अक्सर वह अंग्रेज़ी में एक जबरदस्त उपन्यास लिखने का कभी-कभी ऐलान करती रहती मगर सुस्ती और विभिन्न व्यस्तताओं की वजह से यह इरादा कभी पूरा न हो पाता। दिन भर और अक्सर रात गए तक अखबार की रिपोर्टिंग के सिलसिले में दौड़ना-धूपना पड़ता और इसमें तरह-तरह के एड्वेंचर होते। उसे आम तौर पर सेले बर्टनूज के इंटरव्यू के लिए भेजा जाता जो क़रीब से देखने के बाद पता चलता कि अत्यंत साधारण इंसान थे। असाधारण इंसानों से बेहद मामूली हालात में मुलाकात होती।

विद्यार्थियों ने तरह-तरह की व्यस्तताएँ बना रखी थीं। एक एशियन फिल्म सोसायटी स्थापित की गई थी जिसमें एक से एक बोगस हिंदुस्तानी फिल्म दिखाए जाते।

इंडिया क्लब में नेटिव आर्टिस्टों की प्रदर्शनियाँ होतीं। फ़िरोज़ के घर के पास हमराज़ भाई रहते थे। उनका मकान अलीगढ़ का एक्सटेंशन था। यहाँ हर वक्त मुशायरे हुआ करते।

बी. बी. सी. वालों की सारी ज़िंदगी बातें करते गुज़रती थी। कई बार ये लोग सारा दिन कैंटीन में वाद-विवाद करते बिता देते। हर एक अपनी-अपनी हाँकता। आल-ए-हसन और उसकी बीवी कृष्णा का मकान भी एक और गप का सेंटर था। कृष्णा कानून पढ़ रही थी, आले बी. बी. सी. के हिंदी सेक्शन में था। तरुणा और फ़िरोज़ के मकानों पर लड़कों और लड़कियों का जमघट रहता। उसमें ज़्यादातर बंगाली शामिल थे।

तलअत मिडहर्स्ट से लौट कर अपने फ़्लैट पर पहुँची उस वक़्त अजीत का फ़ोन आया—"हैलो सुनो" वह दहाड़ रहा था—"देखो, यह टैगोर-टैगोर का हर वक़्त बंगाली शोर मचाते हैं अब इकबाल ईवनिंग होना ज़रूरी है।" (अजीत खुद बंगाली था, उसे एक शब्द उर्दू का न आता था। प्रयाग में उसने इंजीनियरिंग पढ़ी थी।) तलअत ने राल्फ़ रस्सल को फोन किया। यह अलीगढ़ से उर्दू पढ़ कर आए थे और विश्वविद्यालय में उर्दू के उस्ताद थे। "इकबाल सिंह से कह दिया है" उन्होंने पूछा।

"हाँ" तलअत ने जवाब दिया। "और ओजीत ने तो अंग्रेज़ों के जिगर मुरादाबादी को भी बुलाया है।"

अंग्रेज़ों के जिगर साहब अंग्रेज़ी के गज़ल कहने वाले शायर थे। जिगर मुरादाबादी उन पर ऐसा चिपक गया कि उनका असली नाम अब किसी को याद ही न रहा था। यह अंग्रेज़ी के अच्छे-ख़ासे दूसरे दर्जे के शायरों में गिने जाते थे। आत्मिक तौर पर सख़्त मुसलमान थे और पूर्व की गरीबी में उनको खुदा की कुदरत और आत्मिक श्रेष्ठता नज़र आती थी।

अब फिर रिहर्सलें शुरू हुईं। ढाके का अता-उल-रहमान इक़बाल के कलाम के लिए संगीत

कम्पोज़ करने में व्यस्त हो गया। फ़िरोज़ स्क्रिप्ट तैयार करने में जुट गई। तरुणा, शीला, प्रमोद दा, अजीत और सारे बंगाली और कश्मीरी और गुज़राती लड़कों और लड़कियों ने गाने के लिए सही उच्चारण की प्रैक्टिस शुरू कर दी।

तलअत और रुमेश संगवी, मिडल टैम्पल की लायब्रेरी में इकबाल की नज़्मों का अंग्रेज़ी में अनुवाद करने में व्यस्त हो गए।

इक़बाल ईवनिंग आयोजित हो चुकी तो मेले की तैयारियाँ शुरू हो गईं।

75

लंदन मजलिस का वार्षिक मेला आरम्भ हो चुका था। हॉल के ऊपर के ज़ीने पर आकर रौशन ने नीचे का दृश्य देखा। एक कमरे में दही-बड़े और कचौरियाँ बिक रही हैं। बिलकुल अमानुद्दौला पार्क का नज़ारा है। हाकर्ज़ अपने अखबार बेच रहे हैं, कम्युनिस्ट अपना लिट्रेचर बेचने के लिए आवाज़ लगा रहे थे। सोशलिस्टों का एक दल अपने पैम्फलेट लिए खड़ा है।

बिल उसके निकट एक खम्भे से टिका चुपचाप खड़ा था। "हैलो रौशन" उसने कहा।

वे टहलते हुए दूसरे हॉल में चले गए। जहाँ विभिन्न एशियाई देशों के स्टाल थे। तस्वीरों की प्रदर्शनी। एक तरफ़ डाक्यूमेंट्री फिल्म दिखाए जा रहे थे।

सहसा ख़ामोशी छा गई। वे सब गाते हुए स्टेज पर आए। प्रमोद दा सदा की तरह ऑर्केस्ट्रा कण्डक्ट कर रहे थे।

लालई साल छे प्यार भरे नावाँ !

"कश्मीर !" एक अंग्रेज़ दर्शक ने कहा।

"कश्मीर--यह हमारे लिए ज़िंदगी और मौत का प्रश्न है !" रौशन ने कहा।

"ये लोग कौन से क्षेत्र का गीत गा रहे हैं, पराधीन या आज़ाद?" एक दर्शक ने सवाल किया--

पोशन माला करनावाँ छस
शालीमार गोशन छस दोरादाँ

"दोनों तरफ़ का कश्मीर एक-दूसरे के लिए आज़ाद और पराधीन है" गुलशन ने कहा।

बिल ख़ामोशी से पाइप पीता रहा।

रोशा रोशा यज़ाँ वंछ पोश कारवाँ
पोश माला कर--

फिर बंगाली गाते हुए आए।

"ये इतने जोश से गा रहे हैं...क्या यह आतंकवादियों का दल है?" एक टोरी अख़बार के संवाददाता ने पूछा।

"ये? हाँ ये दोनों बंगाल के रहने वाले हैं" तलअत ने निकट आकर बैठते हुए जवाब दिया।

पौन घंटा गुज़र गया। टोरी पत्रकार ख़फ़ा बैठा था।

"तुम हर समय राजनैतिक बातचीत क्यों करते हो?" एक अंग्रेज़ लेखक ने आहिस्ता

से पूछा। अब तक वह बड़ी उदासी से इस दृश्य को देखता रहा था।

"हम लोग बेहद बदकिस्मत हैं इसलिए" तलअत ने दुखी स्वर में जवाब दिया और फिर किसी काम से उठ कर स्टेज के पीछे चली गई।

अब ढोलक बज रही थी।

"पंजाब?" एक और पत्रकार ने पूछा।

"हाँ पंजाब भी दो हैं" करीब बैठे हुए सुरेखा के मियाँ गुलशन आहूजा ने उसे कटुता से जवाब दिया। "और सवाल करो मैं तुम्हारी जानकारी में बढ़ोत्तरी करने की कोशिश करूँगा।"

धरती ची आमी ही लेकर भागवान–
शीनावर जादोया संगाती गोदाया–रानो पाखर

यह मराठी लोकगीत था।

फिर गुजराती कोरस शुरू हुआ।

हमें खेतर नी बाड़ी दिती–जंगल नी झाड़ी दिती
सागर थी गरधर थी
सूनी साद आ वया–ओ हमीं सूनी साद आ वया

फ़्लैट स्ट्रीट के प्रतिनिधि स्टेज के निकट फुट लाइट्स के अँधेरे में फ़र्श पर आलती-पालती मार कर बैठे सामने के जगमगाते दृश्य को देखा किए।

स्टेज पर वे गा रहे थे–

हमें जुग जुग केरा कंगाल
भांगी नर को न द्वार
दितया डग एक ताल
धरती पर आविया–ओ हमें धरती पर आविया
देख देख ओरे अंध
कारसेन आविया
कारसेन आविया

फिर हॉल के मध्य में वे सब घेरा बना कर खड़े हुए और उन्होंने इंटरनेशनल शुरू किया–

हर जगह जवानियाँ हैं गा रही
हँसी ख़ुशी मना रही
और ला रही विश्व मित्रता,
दुनिया भर से एक हुए नौजवान एक आदर्श महान लिए
खतरा हो बलिदान का–फिर भी हम लाएँगे सुख चैन

उनकी आवाज़ें दूर होती चली गईं। रौशन बाहर आ गई। यह सब क्या बकवास है। भीड़ में से निकल कर तेजी से कदम बढ़ाते हुए उसने सोचा। यह सही है कि इस तरह के गीतों से खून में एक क्षण के लिए एक क़िस्म का जोश-सा पैदा होता है। ये लोग इस क़दर हुल्लड़ क्यों कर रहे हैं ! क्योंकि सब फ़ना हैं। और, इंसान एक-दूसरे से भिन्न हैं। इंसान कभी एक नहीं हो सकते।...अचानक उसने महसूस क़िया कि कोई उसका पीछा कर रहा है।

"मिस काज़मी" किसी ने पीछे से आवाज़ दी। वह ठिठक गई। यह तरुणा थी फिर

लड़कियों के एक रेले ने उसे आ लिया जिनसे बच कर वह अभी बाहर निकली थी।

"रौशन !" फ़िरोज़ ने जल्दी-जल्दी कहा, "नज़रुल दादा आ गए हैं ! हम लोग कल सुबह उनके लिए चन्दा जमा करने निकलेंगे। तुमको लेने आठ बजे आ जाएँगे, तैयार रहना, अच्छा !"

तलअत उनके नज़दीक आई—"यह कुंजी लेती जाओ। मैं शायद देर से आऊँ, या रात को सुरेखा के यहाँ ही रह जाऊँ।—वहाँ—सुरेखा के यहाँ। सुबह को ज़रूर चलना साथ, अच्छा ! गुड नाइट !"

वे सब दूसरी सड़क पर मुड़ गईं। वे रोज़ की तरह व्यस्त मालमू होती थीं—व्यस्तता, उद्देश्यों की पूर्ति का हंगामा। भीड़ नदी के पानी की तरह चारों तरफ़ बहा की। कॉलेज में छुट्टियाँ थीं, और वह यूरोप जाते हुए चन्द रोज़ के लिए तलअत के यहाँ ठहर गई थी। मेडावेल के स्टेशन पर पहुँच कर वह ऊपर आ रही थी कि अचानक आमिर रज़ा से उसकी मुठभेड़ हो गई। वे कार में उसकी तलाश में उधर जा रहे थे।

''तुम कहाँ थीं मैं तुम्हारे सारे ठिकानों पर तुम्हें ढूँढ आया।"

"मेले में।"

"मेला? ओह हाँ मेला, ठीक है आओ।"

वे नुक्कड़ के इटैलियन रेस्तराँ में दाख़िल हुए। यहूदी आर्टिस्ट उन्हें देख कर सहसा अपने काग़ज़ पर झुक गया।

"रौशन" आमिर ने मेज़ पर बैठते हुए गंभीरता से उसे संबोधित किया—''तुम बड़ी गलती कर रही हो। तुम्हारे अब्बा को तुम्हारी रिपोर्ट पहुँच जाएगी।"

"ओह" वह हँस पड़ी, ''लेकिन आमिर इन लोगों में से बहुत से मेरे प्रिय मित्र हैं, उनके राजनैतिक विचार या उनकी राष्ट्रीयता दोस्ती में तो बाधा नहीं हो सकती।''

"यह तुम्हारा विचार है।" आमिर ने कहा, ''लेकिन ज़्यादा प्रैक्टिकल बनो। और अपने लाभ-हानि को ध्यान में रखो। तुम्हारी गतिविधियों से तुम्हारे वालिद की मुलाज़मत पर भी असर पड़ सकता है।"

"और शायद मेरी और तुम्हारी दोस्ती पर भी'' रौशन ने सहसा दिल में कहा। "लेकिन आमिर? मेरी क्या गतिविधियाँ हैं?" उसने चिढ़ कर कहा। इस आदमी को समझाना बेकार था। पहली बार उसे महसूस हुआ कि वह इंसान जिसे वह इतने समय से अपना देवता समझ रही थी, एक भिन्न व्यक्ति था। एक दूसरे टापू में बैठा था। उसे नहीं समझा जा सकता था। मगर वह तैयार हो गई कि उसके विचारों की आज्ञाकारिता करेगी। मर्द की आज्ञाकारिता औरत का कर्त्तव्य है। दर्शन यहाँ बेकार थे। मर्द हर हालत में पूरी-पूरी आज्ञाकारिता चाहता है। यह कॉमरेडशिप वग़ैरा सब बकवास है, और यह आमिर रज़ा किसी भी हाल में कामरेड नहीं था। अब एकाएक उसकी समझ में आ गया कि आमिर की चम्पा अहमद से क्यों नहीं बनी ! चम्पा अपने विचारों में आज़ाद रहना चाहती थी, चाहे वे विचार कितने ही उलझे हुए क्यों न हों। लेकिन, शायद चम्पा अहमद भी पूरी तरह आज़ाद न थी। काश वह चम्पा अहमद से पूछ सकती कि अब वह किसके विचारों की ताबेदारी करने में व्यस्त है !

वे चुपचाप खाना खाते रहे। बाहर रेस्तराँ के दरवाजे पर चीथड़े पहने एक हंगेरियन

साज़िंदे ने वायलिन पर "स्पेनिश बाग़ में एक रात" बजाना शुरू कर दिया।

"स्पेन चलोगी?" आमिर ने पूछा।

"हाँ।"

"जर्मनी–"

"हाँ ! जहाँ कहोगे चलूँगी'' उसने दिल में कहा। दर्शनशास्त्र और विचारों की आज़ादी बेकार बात हैं। अगर उस समय तलअत या कमला को उसके खयालात का पता चल जाए तो वे उसी दम फ़ौरन उसे फाँसी पर लटका दें, यह सोच कर वह उदासी से मुस्कराई।

आमिर रज़ा ने उसकी मुस्कराहट नहीं देखी।

दूसरे दिन सुबह जब वह विद्यार्थियों के साथ क़ाजी नजरुल इस्लाम के लिए चन्दा इकट्ठा करके तलअत के फ़्लैट में वापस पहुँची तो उसने एक अजनबी को मौजूद पाया जो उसके इंतज़ार में नीचे बाग़ में टहल रहा था। वह उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

"आपके विरुद्ध रिपोर्ट पहुँची है कि आप कम्युनिस्टों के जलसों में शरीक़ होती हैं।" अनजबी ने कहा।

"जी" वह हक्का-बक्का रह गई।

"यह गलत है?"

"बिलक़ुल, वे लोग कम्युनिस्ट कदापि नहीं हैं।"

"आपको बराबर एक विशेष दल के साथ देखा गया है। आपको मालूम है कि..."

''मगर ये तो केवल विद्यार्थियों के हंगामे हैं, हर जगह होते हैं।''

"लेकिन..."

''आपका मतलब है'' वह वहीं सीढ़ियों पर बैठ गई, "कि मैं इंसानी रिश्तों को सियासी रख-रखाव पर कुर्बान कर दूँ। उनमें कुछ लोग मेरे प्रियतम तथा दोस्त और साथी हैं।"

"इंसानी रिश्ते?" अजनबी ने हैरत से दोहराया। "वह क्या चीज़ है? रिश्ते महज़ राजनैतिक होते हैं—इंसानी रिश्ते किस चिड़िया का नाम है? इस बेतकल्लुफ़ी को माफ़ कीजिये, मिस काज़मी, लेकिन मैं समझता हूँ कि फलसफों और आइडियल्ज़, आपका आइडियलिज़्म आपको कहीं का न रखेगा। इसलिए मैं प्रायः कहा करता हूँ कि फलसफे और महान साहित्य की शिक्षा आज की दुनिया में बिलकुल अनर्थक और अर्थहीन है। आपने बिज़नेस-एडमिनिस्ट्रेशन क्यों न पढ़ा?" रौशन गुस्से से तिलमिला रही थी लेकिन हँस पड़ी।

"तशरीफ़ रखिये !" उसने दूसरी सीढ़ी की ओर इशारा किया।

"मैंने आपका बहुत ज़िक्र सुना है'' अनजबी ने बैठते हुए कहा। "आपकी धूम मची हैं, मगर अफ़सोस है कि..."

"कि मैं ग़लत रास्ते पर पड़ गयी ! मैं आपको एक बात बताऊँ, मिस्टर...।''

"खान।"

"मिस्टर खान कि मैं कम्युनिस्ट नहीं हूँ।"

"नहीं हैं ! इसका आपके पास सबूत क्या है?"

यह बहुत टेढ़ा प्रश्न था। और विचार जैसी अदृश्य चीज़ के लिए किस प्रकार का सबूत पेश किया जा सकता था ! वह दर्शन और तर्कशास्त्र की विद्यार्थी, इस विवशता पर बहुत

तिलमिलायी।

अब अमरीका जाना गोल समझो। रात को पलँग पर लेटते वक़्त उसने सोचा। (उसे अगले साल कोलम्बिया जाने के लिए फुलब्राइट छात्रवृत्ति मिल चुकी थी।) देर तक करवटें बदलने के बाद उसे नींद आई। सुबह वह सोकर उठी तो उसका दिल धड़क रहा था। अदालतें, सज़ाएँ, जेल, बन्दूक़, गोला-बारूद, रात भर उसने इसी क़िस्म के खौफ़नाक सपने देखे थे।

"आख़िर, जिनको जेल भेजा जाता है, वे आसमान से तो नहीं उतरते, हमारी-तुम्हारी तरह के ही इंसान होते हैं !" उसने सुबह तलअत से कहा।

तलअत ने उसके विचार से सहमति प्रकट की।

"तुम मज़ाक समझ रही हो?" रौशन ने झुँझला कर कहा।

"बिलकुल नहीं" तलअत ने गंभीरता से जवाब दिया।

"सवाल यह है" रौशन अंडे फैंटते हुए आहिस्ता-आहिस्ता बोली—"कि एक तरफ़ रुपया और इज़्ज़त और शान-ओ-शौकत है, और दूसरी तरफ़ केवल धुँधलका है और धुँधलके में सपने नज़र आते हैं।"

"हाँ एक तरफ़ सिक्योर्टी है और दूसरी तरफ़ सिक्योर्टी ऐक्ट। फैसला तुम्हें करना है" तलअत ने कहा।

सुरेखा ने जल्दी-जल्दी चाय पीने के बाद घुंघरू बाँध लिए। वे सब नज़रुल इस्लाम के प्रोग्राम की रिहर्सल के लिए सुबह-सुबह तलअत के यहाँ जमा हो चुके थे।

"रौशन" गौतम ने उसे असाधारण तौर पर ख़ामोश देख कर सवाल किया—"तुम्हारा प्राबलम क्या है?" वह नियमानुसार बड़ी शान से आकर दीवान पर बैठ गया।

"मानसिक दुविधा" तलअत ने संक्षिप्त जवाब दिया और तोस सेंकने में लीन रही।

"तो क्या हुआ? अपने वतन वापस जाओ। कुछ साल बाद वहाँ क्रांति आएगी उसमें तुम्हारी बड़ी ज़रूरत होगी" गौतम ने इतने विश्वास और भरोसे के साथ कहा कि रौशन को हँसी आ गई।

"लेकिन मैं क्रांति नहीं चाहती" उसने कहा।

"वह तो मैं जानता हूँ" गौतम ने इत्मीनान से जवाब दिया, "मैंने सिर्फ़ यह कहा था कि जब क्रांति आएगी तब तुम काम करोगी।"

तलअत ने कहा, "पहले ही इसकी रिपोर्ट हो चुकी है। इसी तरह तुमने चम्पा बाजी को एजूकेट करने की कोशिश की थी फेल हो गए। और देखो उनका क्या हुआ।"

"कुछ भी तो नहीं हुआ। यही अफ़सोस है। बहुत से लोग ऐसे हैं जिनका कुछ नहीं होता। बीच में लटके रहते हैं, कहीं नहीं पहुँच पाते, बहते रहते हैं।" गौतम ने आहिस्ता-आहिस्ता कहा।

क्या इस वक़्त यह चम्पा को याद कर रहा है?—तलअत ने सोचा।

"लेकिन रौशन तुम अपने दूतावास जाकर कह दो कि तुमको हम लोगों से कोई मतलब नहीं।" गौतम रौशन को संबोधित करके कह रहा था।

"मैं ग़लत बात नहीं कर सकती, मुझे अपनी अंतरात्मा पर अब तक बड़ा गर्व रहा है।

मुझे तुम लोगों से बहुत बड़ा मतलब रहा है। तुम मेरे दोस्त हो। मैं दोस्ती का मतलब समझती हूँ। इसका मूल्य..."

"मतलब समझने की कोशिश न करना। बहुत दुखी होगी।" गौतम ने सहसा बहुत दुखी स्वर में कहा। तलअत ने घबरा कर उसे देखा। यह इस समय चम्पा को याद कर रहा है। —उसने दिल में दोहराया।

"अजी इंकार करने में क्या रखा है" उसने गौतम का ध्यान हटाने के लिए प्रफुल्लता से बात शुरू की, "एक से एक लोग एक ज़माने में प्रगतिशील थे। ऐलान कर दिया कि अब प्रगतिशील नहीं हैं। और देखो क्या मज़े कर रहे हैं।" उसने रौशन की तरफ़ मुड़ कर कहा—"और तुम तो कभी भी प्रगतिशील नहीं थीं। न कल न आज—"

"भैया साहब ने भी तो मज़मून लिखे थे।" फ़िरोज़ ने सोच कर कहा।

"मगर अब तो वे ऐलानिया कहते हैं कि उन्होंने तौबा कर ली है।" तलअत ने जवाब दिया।

"भैया साहब को साहित्य में दख़ल था?" गौतम ने पूछा।

"जी हाँ अज्ञानता के दिनों में। अब उन्हें ज्ञान प्राप्त हो चुका है। वर्ना फॉरन सर्विस में यूँ ही ले लिए जाते" तलअत ने कहा।

"ये अज्ञानता के दिन कौन से थे" गौतम ने सवाल किया।

"1939 वगैरा में" तलअत ने जवाब दिया, "अरे तुम्हें क्या मालूम बहुत बड़े क्रांतिकारी थे एक ज़माने में लखनऊ के अंदर। चम्पा बाजी भी सबके साथ लगी रहती थीं। रशीदा आपा के यहाँ बैठ कर ये सब आज़ाद नज़्में लिखते थे।"

"चम्पा बाजी इतनी पुरानी हैं?" रौशन ने चौंक कर पूछा।

"मालूम नहीं होतीं" तरुणा ने कहा।

"सदा बहार हैं" फ़िरोज़ ने जवाब दिया।

"दोस्ती मुहब्बत से ज़्यादा ऊँची वस्तु है" गौतम ने आहिस्ता से कहा।

"बहुत से लोग यह बात समझ नहीं पाते।"

"तुम भी ऐलान कर दो जी" तलअत ने फिर जल्दी से वार्तालाप का रुख़ असल विषय की ओर मोड़ा—"कि मुझे इन मुए सुर्ख़ों से कोई मतलब नहीं।"

"तुम कह दो कि तुम सुर्ख़ासुर्ख़ फ़र्रुखाबादी कभी न थीं, न हो, न होगी।" फ़िरोज़ ने कहा।

दरवाज़ा खुला और मोदुल ज़फ़र मुस्कराते हुए अंदर दाखिल हुए।

"दस्त-ए-सबा लाए" कोरस हुआ।

"जी हाँ" उन्होंने कहा।

सब आग के पास जा बैठे और 'दस्त-ए-सबा' श्रद्धा से हाथोंहाथ ली जाने लगी।

"समझीं तुम" गौतम ने किताब के पृष्ठ पलटते हुए बेध्यानी से कहा। "बस तुम जाकर कह दो—आइंदा तुम हमसे संबंध तोड़ लोगी। क्या तुमको मालूम नहीं कि संबंध तोड़ना वास्तव में बेहद आसान होता है।"

"तुम स्टीवन स्पैंडर की तरह..." तलअत ने कहना शुरू किया।

"यह बात बे-बात अंग्रेज़ी लेखकों का ज़िक्र किए बिना तुम्हारा खाना हज़्म नहीं होता।" फ़िरोज़ बोली।

"क्या किया जाए? अपनी-अपनी कमजोरी है" तलअत ने कहा और बात जारी रखी। ''तुम एक किताब लिखना कि किस तरह तुमको डूप करने की कोशिश की गई मगर तुम साफ़ बच गई।''

"तुमने फ्रीडम का चुनाव किया" फ़िरोज़ ने लुकमा दिया।

''वग़ैरा वग़ैरा–" सुरेखा ने कहा।

अब तक वह कमरे के सिरे पर खड़ी तलाना की प्रैक्टिस कर रही थी।

"क्या बेवकूफ़ी की बातें कर रही हो तुम लोग?'' तरुणा ने प्यानो पर से उठते हुए कहा–"रौशन तुम जर्मनी जा रही हो कल?"

"हाँ।"

"तो हमारे साथ ही चलो। हम लोग भी यूथ फैस्टिवल के लिए जा रहे हैं पूर्वी बर्लिन।"

''पूर्वी बर्लिन मैं कैसे जा सकती हूँ?'' रौशन ने कहा।

''क्यों, क्या तुममें 'सुर्ख़ाब का पर' लगा हुआ है। सारी दुनिया के लोग जा सकते हैं तुम नहीं जा सकतीं।"

"कमाल है भई" फ़िरोज़ ने सिर हिला कर कहा। ''सारी रामायण हो गई। आप पूछती हैं सीता कौन थी? अरे यही तो किस्सा हो रहा है।"

"बकवास" सुरेखा ने कहा। "चलो रौशन यह ऐसा अनुभव है जो जीवन भर कभी हासिल न होगा।"

"नहीं।"

"अरे क्या रखा है? वापस आकर सोवियत यूनियन और पूर्वी यूरोप के विरुद्ध तीन-चार मज़मून लिख देना। सब यही करते हैं।" तलअत ने कहा।

"यहाँ इतनी बेईमानी है। इतनी ज़मीर-फरोशी (आत्मविक्रय) है रौशन बेगम, जिसका तुमको अंदाजा नहीं हो सकता" गौतम ने कहा–"आज की दुनिया में तुम अपनी अंतरात्मा को बचाए नहीं रख सकतीं।"

वह कोट पहन कर बाहर जाने को तैयार हुई।

"हम तुमसे बर्लिन में मिलेंगे।"

"पश्चिमी बर्लिन में" रौशन ने मुस्करा कर कहा।

"नहीं हम तुमसे पूर्वी बर्लिन में मिलेंगे।"

''यह टुकड़ों में बँटी दुनिया है। देश, इंसान, दृष्टिकोण, आत्माएँ, ईमान, अंतरात्माएँ–हर चीज़ तलवारों से काट-काट कर तकसीम कर दी गई है। यहाँ हर तरफ़ सीमाएँ हैं। इस तक्सीम की गई दुनिया में हम एक-दूसरे से सीमाओं पर मिल सकते हैं रौशन !" गौतम ने कहा–''हम तुमसे पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन की सीमा पर मिलेंगे।"

''अगर उस वक्त तुमको जेल न भेज दिया गया" तलअत ने हँस कर कहा।

76

बारिश ख़त्म होने पर चम्पा और सिरिल देहाती चायख़ाने से बाहर निकले। लाँच पर बैठ कर वे सब केम्ब्रिज़ वापस पहुँच गए। रास्ते में नदी हरे-भरे कुंजों में से गुज़री जहाँ घनी शाखों ने पानी पर छत-सी बना रखी थी। यह टर्म का आख़िरी दिन था, कल से छुट्टियाँ शुरू थीं। चम्पा ने सिरिल पर दृष्टि डाली। हर चीज़ कही जा चुकी थी। अब कहने को बाकी क्या था? हर बात में घिसा-पिटापन आ गया था, सिरिल ऐश्ले में भी। वह उसे इतनी अच्छी तरह जानता था और वह उससे इतनी अच्छी तरह परिचित थी ! कितने रंज की बात है? अब वह किन जंगलों में जाकर छुपेगी? अब 'वन-उपवन में, चंचल मोरे मन में, कुंज-कुंज फिरे श्याम !' वह रेलिंग पर झुक कर एक बहुत पुराना गीत गुनगुनाती रही।

सुरेखा ने नदी की सतह को देखा जो बहुत शांत थी। किनारे पर पहुँच कर वह लंदन की ओर रवाना हो गई। उसे वापस पहुँच कर मज़लिस मेले की तैयारी करनी थी। इसके बाद वह बर्लिन जा रही थी। वहाँ से लौट कर उसे टी. वी. पर नाचना था। फिर वह रामगोपाल के साथ सारे यूरोप का दौरा करने वाली थी। "ग्रेट सुरेखा देवी—इंडियाज़ ऐना पावलोवा !" सिरिल ने मज़ाक से कहा। "ख़ुदाहाफ़िज़।"

"ख़ुदाहाफ़िज़ !" सुरेखा ने अपनी सुशील मुस्कराहट के साथ जाते-जाते जवाब दिया।

दूसरे रोज़ वे फिर केम के किनारे लकड़ी के बोट-हाउस के नीचे आकर बैठ गए। सिरिल के सुनहरे बाल हवा में उड़ रहे थे। वह चम्पा को इतना सहज-परिचित मालूम हुआ मानो वह उसका पति हो। उसे एक फुरेरी-सी आई। वह उसका नहीं, किसी और लड़की का पति था। उस लड़की को चम्पा ने आज तक न देखा था। दृश्यावली पर साये फिर फैल गए। किश्तियाँ किनारे से बँधी खड़ी थीं, और मौसम की सारी सुगन्धें इकट्ठी होकर गुलाबों की छाँव में पानी पर तैर रही थीं। आसमान पर से मुर्ग़ाबियाँ गुज़रीं। गायों ने आकर पानी में अपना प्रतिबिंब देखा और सन्तुष्ट हो गई। बोट-हाउस की बालकनी पर एक लड़की आ खड़ी हुई। बहुत से लोग प्रिमरोज़ की लताओं के किनारे-किनारे बग्घियाँ उठाए पानी की ओर जा रहे थे।

"चम्पा !" सिरिल ने एक उल्टी डोंगी पर बैठ कर कहा—"मुझे कुछ अपनी पृष्ठभूमि के बारे में बताओ !" उसने देखा कि दूर देश से आई हुई यह लड़की उसके सहारे वहाँ बैठी थी। वह बेहद अरक्षित थी—अपनी पृष्ठभूमि में शायद वह सुरक्षित रह सके। लेकिन उसका अपना संसार जाने कौन-सा था ! संसार बराबर बदलते रहते हैं। यह लड़की उसे अत्यंत ही परिचित लगी। रोज़मारी उसके लिए अजनबी थी। वह एकाएक बहुत घबरा गया। उसे अनुभव हुआ कि वह उस लड़की चम्पा अहमद से एक अदृश्य बंधन में बँधा हुआ है। उसे अपने आप पर और उस लड़की पर बड़ा तरस आया।

"क्या तुम भी मेरे बारे में नॉवेल लिखोगे?" चम्पा ने पूछा

"नहीं। और कौन लिखने वाला था?"

"बिल—विलियम क्रेग।"

"नहीं, मैं नॉवेल नहीं लिखना चाहता।"

"क्या मैं तुमको बहुत अजीब मालूम होती हूँ?"

"तुम दुनिया में कोई अनोखी या अजीब नहीं हो। तुम्हारी तरह की अनगिनत लड़कियाँ मौजूद हैं। प्रतिभाशाली, नरमदिल और दिलकश !"

"चुनांचे इन तीन शब्दों से मेरे बारे में सारी व्याख्या हो जाती है" चम्पा ने दिल में कहा। उसने आँख बन्द करके अपनी पृष्ठभूमि को याद किया—बनारस का मुहल्ला, घर। आँगन में खुर्री चारपाइयाँ पड़ी हैं। बाबा पेचवान पी रहे हैं, और मुक़दमों की मिसलें देखते जाते हैं। स्रिल को यह दृश्य दिखाना उसे अच्छा न लगा। वह उससे फर्लांग भर आगे बढ़ गई। लखनऊ, आई. टी. कॉलेज, कैलाश-होस्टल, 'गुलफ़िशाँ', लेकिन 'गुलफ़िशाँ' उसका घर न था। (हो सकता था !)

"यह देखो, कौन आ रहा है, तुम्हारे अतीत से निकल कर !" स्रिल ने कहा।

चम्पा ने दृष्टि उठा कर देखा। किनारे पर दूर-दूर तक बिखरे हुए छुट्टी मनाने वालों के समूहों से निकल कर, कमाल बोट-हाउस की ओर बढ़ रहा था। घास पर उसकी छाया आगे-आगे चलती रही।

"हैलो, चम्पा बाजी, हैलो स्रिल !" उसने पास आकर कहा।

"हैलो !"

"कल सवेरे हमने आपको एक रोड-हाउस में देखा था।"

"हाँ।"

"मगर हम लोग ज़रा...जल्दी में थे।"

"ठीक है, कोई बात नहीं, बैठो।"

वह भी एक उल्टी हुई नाव पर बैठ गया।

"मैं स्रिल को लखनऊ के बारे में बता रही थी !" चम्पा ने कहा।

"वाक़ई !" कमाल ने शिष्टाचार के नाते दिलचस्पी प्रकट करते हुए कहा, "यह अभी तक वहीं बैठी हैं। दुनिया कहाँ से कहाँ निकल गई !" कमाल ने अफ़सोस के साथ सोचा।

चम्पा ने कमाल के लहजे में रंज का अन्दाज़ा लगा लिया। "तुम मुझे कभी नहीं समझ सकोगे, कमाल।" उसने कहा। "तुमने मुझ पर हमेशा चीज़ों को पूजने का इलज़ाम लगाया है। लेकिन, गर्मी की दोपहरों में भूसे के ढेर की महक, और घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज़ और ख़ामोश सड़कों पर से गुज़रती हुई बैलगाड़ी—मुझमें शायद ज़्यादा अक़्ल नहीं, लेकिन मैं इन सब चीज़ों को महसूस करना और अपने पास रखना चाहती हूँ। अगर, मैं बहुत ज़्यादा अक़्लमन्द होती तो तुम्हारा फ़लसफ़ा पढ़ती और संतुष्ट हो जाती।"

अजीत नदी में से निकल कर आया और कमाल के नज़दीक बैठ गया।

"स्रिल, काश तुमने बारिश के बाद 'चाँद बाग़" के कुंजों पर बिखर जाने वाले रंग देखे होते—या रामनगर की वह धूल-भरी सड़क देखी होती, जिसमें गर्मियों की भरी दोपहर के सन्नाटे में एक छोटा-सा उदास हिन्दू बच्चा, लम्बी-सी चोटी रखाए, एक मुंडेर पर अकेला बैठा सवैये का पहाड़ा याद कर रहा था ! नहीं, स्रिल, मैं तुमको अपनी बैठग्राउंड नहीं बता सकता ! बहुत मुश्किल है, और तुम समझ नहीं सकोगे।"

"मैं तुमको बताऊँगा !" कमाल ने आगे झुक कर कहना शुरू किया। वह एकदम उस दुनिया में चला गया जो यहाँ से बहुत दूर थी, जिस पर वह आसक्त था। इन दृश्यों की आत्मा

को कमाल से अधिक कौन जान सकता था ! वह उसका प्यारा हिन्दुस्तान था।

"लो सुनो ! ज्ञानवती कंधों पर बाल छिटका कर एमन का ख़याल गाती थी, 'आले नबी, औलादे-अली पर वारी-वारी जाऊँ ! ज़ेहरा के फरज़न्द, हसन हुसैन !' अब मैं इसका तर्जुमा कैसे कर सकता हूँ !—और मालती गाती थी—'कान्हा मोहे आसावरी राग सुनाओ !' और शादियों के मौक़ों पर कल्यानपुर में दालान के पर्दे गिरा दिये जाते थे, और तख़्तों के चौके पर बैठ कर मिरासनें अलापती थीं—'इस बन्ने पर साया अली का !' 'मोरा श्याम सुन्दर बन्ना !'—कौन पश्चिमी सोश्योलोजिस्ट इस दृश्य की सुंदरता को समझ सकता है !—'मेरा श्याम सुन्दर बन्ना' !"

"और", चम्पा ने कहा—"मेरे घर की मिरासनें गाती थीं—'मंगल गाऊँ, चौक सजाऊँ, गजरा चमेली का लाओ री !' चमेली का गजरा तुमने देखा है, सिरिल?"

"और घाघरा के किनारे मेरे गाँव के किसान खेतों की मुंडेर पर बैठ कर चाँदनी रात में आल्हा-ऊदल की तानें उड़ाते थे—'अली-अली करके सैयद दौड़े, आल्हा खींच लीन्ह तलवार !'—और क़दीर का भान्जा नौटंकी में चेहरे पर सफ़ेदा पोत कर गाया करता था—

खुदा का सुक्र है लैला, तिरे दरबार में आया;
कि जिस सरकार का था मैं उसी सरकार में आया !"

"चम्पा बाजी !...वह नौटंकी तुमको याद है? जब हम तुम्हें क्रिसमस के ज़माने में अपने गाँव ले गए थे, रात भर कम्बलों में लिपट कर हमने 'लैला-मजनू' देखा था और मेरे गाँव के अदाकार हमको खुश करने के लिए अपना सारा आर्ट ख़र्च किए डाल रहे थे।"

"हाँ !" चम्पा इस समय लखनऊ से पच्चीस मील के फ़ासले पर कल्यानपुर में मौजूद थी, उसने वहीं से जवाब दिया—"हाँ।" उसने हवा में हाथ लहरा कर कहा था—

तिरा चेहरा मिरा क़िबला, तिरी जुल्फ़ें मिरा ईमाँ,
तवाफ़े-काबा करने को, तिरे दरबार में आया !

"हाँ" कमाल ने कहा। वह भी कल्यानपुर में बैठा हुआ था। वे सब नौटंकी में मण्डप के नीचे शाल और कम्बल ओढ़े बैठे थे। जर्जर स्टेज पर सिर्फ़ मद्धम-सा गैस का हण्डा जल रहा था। पर्दे पर एक फ़व्वारा बना हुआ था, और चार परियाँ जो कोहनियों के सहारे बैठी थीं। क़दीर का भांजा 'मास्टर' फ़रीद जो अपनी तेज़ पाटदार आवाज़ की वजह से झींगुरवा कहलाता था, लैला के सामने खड़ा दहाड़ रहा था। गाँव का आर्केस्ट्रा ज़ोर-शोर से हारमोनियम और तबला बजाने में जुटा था। मास्टर फ़रीद ने गाया—

जुलेख़ा की तरह, जब तिरा आसिक हुआ लैला !
तो यूसुफ़ की तरह, विकने तिरे बाज़ार में आया !

बराबर के मोढ़े पर गौतम नीलाम्बर बैठा था। उसके बराबर हरिशंकर मौजूद था और साथ ही सारी लड़कियाँ। और गौतम आगे झुक कर बड़ी गम्भीरता से चम्पा के सामने फ़ोल्क-कल्चर की समस्या पर प्रकाश डाल रहा था। वे सब सुबह चार बजे तक नौटंकी के मण्डप में बैठे रहे थे। उन्होंने मिट्टी के कोरे कुल्हड़ों में गन्ने का रस और अदरक वाली चाय पी थी। यह कमाल के पिता नवाब तक़ी रज़ा बहादुर का मौरूसी गाँव था। यहाँ कमाल की मौजूदगी में, उसकी रैयत में, सिर्फ़ सैयद और ब्राह्मण पलँग पर बैठ सकते थे। बाक़ी लोगों

के लिए हुक्म था कि खड़े होकर बातें करें। अब स्टेज पर मास्टर मुरारी लाल, जो कलकत्ते तक थियेटर कम्पनियों के साथ घूम आया था, सोहनी में गा रहा था–

यास का आलम न था, यूँ बेकसी छायी न थी !
अब तो लैला थी तमाशा, खुद तमाशाई न थी !

वे सब मोढ़ों पर बैठे नौटंकी देखते रहे। बाहर आम के झुरमुट में पूस की हवा साँय-साँय कर रही थी। गर्म और सुरक्षित, वह मण्डप में बैठे तबले पर कहरवा सुनते रहे। सहसा एक मोटर-लाँच, एक अंग्रेज़ी रेकार्ड बजाती हुई तेज़ी से केम की लहरों पर से गुज़र गई। चम्पा और कमाल वापस आ गए।

"हमारे गाँव की नौटंकी में :नल-दमयन्ती' और 'इन्दर सभा' भी बहुत फ़र्स्ट क्लास होता था।" कमाल की दुःखी और उदास आवाज़ सुनाई दी। वह झुक कर स्रिल का सिगरेट जला रहा था।

"और, तुमको जूथिका रॉय याद है, कमाल?" चम्पा ने आहिस्ता-आहिस्ता कहा, और बसन्ती का वह गीत–जोगन खोजन निकली है।"

"हाँ !" कमाल ने उसके साथ सहयोग ज़ारी रखा।

"और जाड़ों की धूप में बैठ कर हरिशंकर गाता–'अगर देनी थी हमको हूरो-जन्नत, तो यहाँ देते।'–'और पिया मिलन को जात थी मैं, सज-धज शीश गुँधाए। लोग कहत मैं बावरी, सब जग हँसी उड़ाए !' तुमको क्या पता ?" उसने गुस्से से स्रिल को सम्बोधित किया "कि पंकज मलिक कौन है? पहाड़ी सान्याल और आरज़ू लखनवी, नारायणराव व्यास और कानन देवी–इन लोगों की हमारी ज़िंदगियों में क्या जगह है !"

"तुम्हें क्या पता--" चम्पा ने कमाल के रोष से 'क्यू' लेकर कहना शुरू किया, "तुम, जो मुझसे मेरी पृष्ठभूमि दरियाफ़्त करते हो–कि प्यारू क़व्वाल की क्या हस्ती है और फ़ैयाज़ खाँ दीपाली ताल्लुकेदार–और..."

"और, तुमको क्या मालूम कि लखनऊ और अलीगढ़ के मुशायरे क्या होते थे और जिगर साहब का हमारे लिए क्या महत्त्व है, और फ़िराक़ साहब का, और आनन्द नारायण मुल्ला का...!" कमाल ने कहा।

"और, तुमको क्या पता--" तब चम्पा की आवाज़ में गुस्से की जगह अथाह दुख ने ले ली, "कि कालिदास के इन शब्दों के क्या अर्थ हैं जब वह कहता है–नर विन्ध्या और सिंधु पर से गुज़रता बगुलों और बत्तख़ों के संग-संग बादल सन्देश लेकर चला–"

"और तुमको क्या मालूम कि हाल्डर की बनाई हुई तस्वीर 'अशोक के झुंड में सीता' हमें क्यों इतनी सुन्दर लगती है।" कमाल ने कहा, "नहीं स्रिल, तुमको समझाना बड़ा मुश्किल काम है।"

"और याद है, कमाल" चम्पा वापस जाने की ज़िद्द करती रही–"सिंघाड़े वाली कोठी के लॉन पर बैठ कर पन्द्रह-पन्द्रह साल के पुराने रेकार्ड बजाया करते थे–कमला झरिया, और जानकीबाई और हरीमती–"

"हाँ" कमाल ने कहा–"और मुहम्मद हुसैन साकिन नगीना का रेकार्ड–धुएँ की गाड़ी उड़ाये लिये जा !"

"हाँ—!" चम्पा ख़ुश हुई कि कमाल को वापस ले जाने में क़ामयाब रही। मगर, अब कमाल वर्तमान में आकर भूत से पीछा छुड़ा कर निकल भागना चाहता था। लेकिन, चम्पा उसके सामने समय के अन्तःकरण की तरह बैठी थी।

सहसा कमाल को ऐसा महसूस हुआ जैसे चम्पा समय की आँधी में पत्ते की तरह इधर-उधर डोल रही है, उड़ी जा रही है, और वह उसको अपनी पकड़ में नहीं ला सकता। वह घबरा कर उठ खड़ा हुआ।

"कमाल !" ग्रिल ने मंत्रमुग्ध आवाज़ में उससे कहा—"मुझे कुछ और बताओ !"

"और क्या बताऊँ?" कमाल ने रंज के साथ जवाब दिया। और, बोट-हाउस की सीढ़ियों पर जाकर खड़ा हो गया और नदी को देखता रहा। केम नदी गोमती में बदल गई।

"कमाल, सुनो !" चम्पा ने कुछ याद करके कहना शुरू किया। "रात का समाँ है। कुत्ते भौंक रहे हैं। सन्नाटा बाज़ार भर में पड़ा है। चिड़िया-चंगन तक सोती हैं। चौकीदार ख़रबूज़ों के खेत बचा रहे हैं। बाग़वान गोंदनी के खटखटे को खटखटाते हैं। अब चक्कियाँ चलती ही हैं।"

"सरशार?"

"हाँ" वह फिर सोच में डूब गयी।

"हम लोग, आम तौर पर हरिशंकर के कमरे में जमा हुआ करते थे, जो असल में एक बुर्ज़ी थी।" कमाल ने आहिस्ता-आहिस्ता कहना शुरू किया, "उसके नीचे नदी बहती थी। उसके कमरे की दीवारों पर अनगिनत पुराने फ़ोटोग्राफ़ थे, और दो टूटे हुए सोफ़े। उस कमरे में बैठ कर हमने न जाने कितनी किताबों के विषय सोचे। दुनिया के मसले हल किए। यह कमरा और यह गिरोह सारी दुनिया में मौजूद है। ज़िंदगी का नक़्शा अभी बहुत साफ़ नहीं हुआ था। बहुत से पर्दे उठते थे और गिरते थे। कभी तेज़ रोशनी अन्दर दाखिल होती और कभी धुँधलके का साया अंदर आ जाता। इस मानसिक धूप-छाँव में वक़्त निकलता गया। हमें यह लगता जैसे सारी इन्सानियत के ख़ून से हमारे हाथ रँगे हुए हैं। हमें इस ख़ून को धोना है, और देखो क्या हुआ !" उसने हाथ आगे फैलाये। "एक रोज़ सुबह हम उठे तो हमने देखा कि हमारे हाथ वाक़ई ख़ून से रँगे हुए हैं, और तुमने चम्पा बाजी से जिनका ज़िक्र सुना होगा, हमारे वे सारे कैरेक्टर समझदार और पुर लुत्फ़ बातचीत करने वाले नौजवान, मार्ग का अध्ययन करने वाली और मणिपुरी नाचने वाली लड़कियाँ, हिन्दुस्तान की प्राचीन क्लासिकल कल्चर का राग अलापने वाले पोज़िटर—उन सबको हमने देखा कि ख़ून में रँगे हुए हैं ! मगर, हममें से बहुत से ऐसे थे जो उस ख़ून का प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार न थे। वे इन्सानियत के बड़े मूल्यों और धर्म की ऊँचाई की चर्चा करते, इधर-उधर भाग गए। इनके अलावा और लोग भी थे। सच्चे, अस्ल इन्सान"—उसने चम्पा को देखा।

"क़दीर और क़मरुन...?" चम्पा ने कहा।

कमाल ने ख़ामोशी से अनुमति चाही कि उनका ज़िक्र करे। वे उसे अत्यन्त पवित्र हस्तियाँ मालूम हुईं।

"हाँ, क़दीर और क़मरुन, रामऔतार और रमदैया; और हमारे गाँव के किसान और इक्केवाले और पनवाड़ी; और चिकन काढ़ते-काढ़ते अन्धे हो जाने वाले और हमारे बाग़ों के

कुंजड़े और पालकियों के कहार—ये सब हमारी बैकग्राउंड हैं, जिसे तुम कभी न जानोगे·!" उसने बात ख़त्म की।

चम्पा अभी वापस न आई थी। उसने कहना शुरू किया—"हाँ, और हमारी नदियाँ। नदी भी बराबर एक कैरेक्टर रही हैं। और उनके नाम—ज़रा उनके नाम सुनो ! सरयू, शारदा, मन्दाकिनी, मधुमती, गोमती...!"

"गंधर्व-बालाएँ, जो हिमावत् से उतर कर वनों में वसन्त ऋतु मनाने निकल आई थीं।"—तुग़ियान साहब ने कहा।

कमाल ने चौंक कर उन्हें देखा। अब तक वह उनके अस्तित्व से अनभिज्ञ बैठा था। वह कुछ क्षण पूर्व आकर चौथी उल्टी हुई डोंगी पर बैठ गये थे।

"ठीक है यार !" कमाल ने दुःखे दिल से कहा—"मैंने भी एक ज़माने में बड़ी कविता लिखी हैं। यह स्टेज सब पर आती है।"

"तो, नदी मेरे घर के पास थी। गंगा मेरे घर के पास बहती थी। गोमती हरिशंकर के घर के नीचे बहती थी। हम लोग, ज़रा सोचो, नदियों के अस्तित्व से कितने बेनियाज़ रहते हैं—अरे पुल देखो, कश्तियाँ, घाट, सिंघाड़, कमल के फूल, और फिर नदी पर बरसती हुई बारिश, ये सब कितनी महत्त्वपूर्ण चीज़ें हैं ! मुझे समुन्दर से घबराहट होती है, उससे डर लगता है। समुन्दर का न ओर, न छोर, नदी को अपना रास्ता मालूम है।"

अब सहसा चम्पा की आवाज़ से कमाल बोर होना शुरू हुआ। लड़कियों में यह क्या मुसीबत है ! उसने सोचा। एक तो होती ही बक्की हैं; दूसरे अगर ख़ुदा न ख़ास्ता उनके दिल पर बैठ जाए कि वे कलाकार भी हैं, तो समझो, पटरा हो गया। चम्पा बाजी कलाकार नहीं थीं लेकिन उनके शायराना मिज़ाज से कौन इनकार कर सकता था?

वे उस नदी का ज़िक्र कर रही थीं और कमाल भाग जाना चाहता था। नदी का चरित्र ? मुझसे ज़्यादा और कौन यह बात जान सकता है—? उसने सहमते हुए सोचा—मुझे वे मकान याद हैं...वह नदी, वह दरख़्त—चम्पा बाजी तुम ख़ुद...।

"और बाग़ में अमलतास के पेड़ थे।" वह कह रही थी—"और एक बेल का भी—बेल तुमने खाया है कभी?" उसने अजीत से पूछा। "पूरब की ख़ास चीज़ है। कमाल ! गौतम से पूछना, उसे वह टप-टप गिरते बेल याद हैं"—उसने बे-अख़्तियार होकर पहली बार गौतम का नाम लिया।

कमाल सोचता रहा। मैं इन्हें कैसे बताऊँ कि गौतम इन्हें भूल चुका है। मगर भूलना क्या मानी—ज़रूर याद होंगी ! जैसे उसे नदी याद है—और सिंघाड़े वाली कोठी, और अमलतास का पेड़। अब भी गौतम अक्सर बड़ी भावुकता में डूब कर इन चीज़ों का ज़िक्र करता है। क्या मुसीबत है ! कमाल ने झुँझला कर चम्पा को देखा। ये लड़कियाँ मरी क्यों जाती हैं—असल में—उसने इत्मीनान से टाँग पर टाँग रख कर सोचना शुरू किया—इनको हज़ारों बरस से इस कम्प्लेक्स में फँसा दिया गया है—एक, सुना है वे सती थीं; फिर सीता ! फिर गोपियों का फ्रॉड चला—इनको दुनिया में कोई काम नहीं ! बस, किसी भले मानुस को पकड़ कर, दे उसकी पूजा, दे उसकी पूजा ! अरी नेकबख़्तो, अल्लाह रसूल से दिल लगाओ, अगर प्रेम ही करना है ! हज़रत राबिया बसरी से सबक़ लो ! इनके अलावा और भी बहुत-सी पहुँची हुई बीबियाँ

गुज़री हैं। लेकिन, ये सारी सेंट-वेंट औरतें भी यही सोचती होंगी कि अगर यीशु मसीह मिल जाएँ तो लेकर उनके मोज़े रफ़ू कर दें ! "मैं गौतम से ज़रूर पूछूँगा" उसने आवाज़ ऊँची करके कहा—"और मुझे अपने मोज़े भी रफ़ू करवाने हैं !" उसने अपने पैरों पर नज़र डाल कर उसी रौ में कहा। "कल यूथ-फैस्टिवल के लिए जर्मनी जा रहा हूँ। रातों रात लंदन पहुँच जाऊँ जो तलअत मेरे सफ़र का सारा सामान ठीक कर दे।"

"बहनों के होने का यह बड़ा फ़ायदा है।" तुग़ियान साहब ने बात की।

"जी...? जी !" कमाल ने जवाब दिया—"इसलिए, चम्पा बाजी अब इजाज़त दीजिए, ख़ुदाहाफ़िज़, स्रिल ! ओजीत !"

"चलो, हम तुम्हारे साथ ही चलते हैं" स्रिल ने उठते हुए कहा। वे शहर की ओर रवाना हुए। कमाल स्टेशन चला गया।

चम्पा ने अपने होस्टल के कमरे में आकर खिड़की खोली। नीचे सुनसान सड़क लैम्प की नीली रोशनी में ख़ामोशी से बह रही थी। सेंट जॉन के घड़ियाल ने ग्यारह बजाए। दूर जीज़स लेन में किसी व्यक्ति ने ट्रम्पेट पर अपना दुःख भरा गीत छेड़ दिया।

77

घंटी बजी तो तलअत ने दरवाज़ा खोला। वह पूर्वी बर्लिन के एक आधुनिक ढंग के फ़्लैट में अपनी एक मूर्तिकार दोस्त के घर ठहरी हुई थी। बाकी के सब लोग इधर-उधर सड़कों पर गाते-बजाते फिर रहे थे। उसने बालकनी पर से झाँक कर देखा। फूलों की बेल के नीचे अर्द्ध अंधकारमय पोर्टिको में दो परछाइयाँ खड़ी थीं। उनमें से एक ने जल्दी-जल्दी दूसरे से कुछ कहा और उसे अंदर धकेल दिया।

नवागत स्टूडियो में दाखिल हुआ तो तलअत ने पहचाना, यह वही नौजवान था जो कुछ रोज़ पहले सेंट जॉर्ज़ वुड में रौशन से मिलने आया था।

"मैंने सुना था कि मूर्तिकार फ्राओलेन क्रेमर यहाँ रहती हैं।"

"आपने बिलकुल सही सुना है। लेकिन उनकी बजाय मैं मौजूद हूँ। फ़र्माइए मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ। आपको सिर चाहिए ? ताँबा या प्लास्टर ऑफ़ पेरिस।" तलअत ने बड़े प्रोफैशनल अंदाज़ में झाड़ने से हाथ साफ़ करते हुए पूछा।

"जी मैं सिर नहीं चाहता" उसने सटपटा कर कहा फिर सहसा उसने चौंक कर ग़ौर से तलअत को देखा। जो इत्मीनान से मूर्तिकारिता के सामान में घिरी कुछ खट्ट-पट्ट कर रही थी। फैस्टिवल की वजह से क्रेमर का काम खूब चमक गया था। भाँति-भाँति के लड़के और लड़कियाँ, हर क़ौम और हर देश के उसके पास आ रहे थे। वह बहुत ही भावुक होकर नीग्रो और एशियाई लड़कों और लड़कियों के सिर बनाती और उन्हें उपहार के रूप में दे देती। बड़ी व्यस्तता का ज़माना था। स्टूडियो में बराबर रतजगा रहता। तलअत जिसे आर्ट में भी दख़ल था उसकी असिस्टेंट बनी हुई थी।

नवागत जब यहाँ आ रहा था तो दोस्तों ने उसे कहा था कि फ्राओलेन क्रेमर बुर्जुआ आर्टिस्ट नहीं है उससे फ्लर्ट करने की कोशिश न करना। वह-वह लेक्चर पिलाएगी कि होश

ठिकाने आ जाएँगे या सारे बुत तोड़ कर भाग खड़ी होगी और तुमको दाम देने पड़ेंगे।

"अपनी दोस्त को बुला लाइए—ताकि मैं उनका मोल्ड बना लूँ।"

"मैं फ्राओलेन क्रेमर की पार्टनर हूँ।" तलअत ने झुक कर बड़ी शिष्टता से कहा—उसने हंगेरियन लड़कियों का रंग-बिरंगी कढ़त वाला राष्ट्रीय लिबास पहन रखा था जो उसे उसी दिन उपहार में मिला था। उसने महसूस किया कि अजनबी उसको पहचानने की अत्यंत कोशिश कर रहा है। लेकिन अब तक पहचान नहीं पाया। उसे इस प्रकार एक्टिंग करने में बड़ा मज़ा आया। "इस अल्मारी में चाय की पत्ती रखी है--उधर स्टोव है आप कॉफी बनाइए मैं अभी आती हूँ।" उसने बोहेमियन अंदाज़ की बेतकल्लुफ़ी की नक़ल करते हुए कहा और प्लास्टेसन निकालने के लिए स्क्रीन की दूसरी तरफ़ चली गई।

दरवाज़ा खुला और साजिदा बेगम अंदर दाखिल हुईं।

"मिली?" उन्होंने अजनबी से पूछा।

"नहीं, यहाँ भी नहीं है, मगर आहिस्ता बोलो, शायद यह लड़की उर्दू समझती है।"

"कौन लड़की?"

"वह स्कल्पटर इस वक़्त नहीं, उसकी असिस्टेंट है। हंगेरियन-सी दिखलाई पड़ती है। मगर मुझे कुछ घपला नज़र आता है—इसमें भी—"

स्क्रीन की दूसरी तरफ़ से तलअत की स्कर्ट की झलक दिखलाई दी तो उसने घबरा कर ऊँची आवाज़ में कहा—"इस बदतमीज़ी को माफ़ कीजिएगा मादमोजेल कि हम आपकी ज़बान में बातें करने लगे।"

"कोई बात नहीं" तलअत ने स्क्रीन के पीछे से जवाब दिया, "मुझे इसकी साउंड बहुत अच्छी लगती है जैसे मक्खियाँ भिनभिनाती हैं।"

"मक्खियाँ?"

"यह मैंने उपमा प्रयोग की—शहद की मक्खियाँ। मैं बहुत समय टियूनिस में रही हूँ। वहाँ अरबी सुना करती थी।"

"टियूनिस में?"

"जी हाँ हबीब बोरग़ेबा के साथ।"

"वहाँ क्या कर रही थीं आप?"

"जासूसी" तलअत ने इत्मीनान से जवाब दिया और प्लास्टेसन का गोला बनाने में व्यस्त रही।

साजिदा बेगम का रंग सफ़ेद पड़ गया, "मैंने कहा था कि पूर्वी बर्लिन न आना। जाने किस मुसीबत में पड़ जाएँगे। अब देखो कहाँ फँस गए।" उन्होंने अभी तक हालीवुड की फ़िल्मों में जो कुछ मध्य यूरोप के बारे में देखा था वह सब पल की पल में कल्पना में कौंध गया : आर्टिस्टों के भेस में खतरनाक जासूस। अंतर्राष्ट्रीय साजिशें—अपहरण—ओरिएंट एक्सप्रेस, विकी बाम का ग्रेंड होटल। कम्युनिस्टों ग़ैर कम्युनिस्टों की आपस में हाथापाई, जंग—अँधेरी गलियों में पीछा करना—कत्ल—हाँ कत्ल—साजिदा बेगम काँप उठीं और उन्होंने घबरा कर अपने साथी को देखा।

उनके साथी पर तलअत की बात की बिलकुल भिन्न प्रतिक्रिया हुई। वह तुरंत समझ

गया कि यह लड़की कौन है और यह भी कि यह इस स्टूडियो में उसके आगमन का मतलब समझती है। उसने व्याकुलता से कुर्सी पर पहलू बदला।

तलअत स्क्रीन के बाहर आई।

"अरे यह तो तलअत बहन है" साजिदा बेगम चिल्लाईं–"तौबा है तुमने यह क्या रूप भरा है? अच्छा बेवकूफ़ बनाया है।"

"हैलो ! साजिदा आपा''–तलअत ने प्रफुल्लता से कहा–"बैठिए अभी आप का फर्स्ट क्लास मोल्ड बनाती हूँ। आपने कॉफ़ी तैयार कर ली?" उसने साजिदा बेगम के साथी से पूछा।

"माफ़ कीजिएगा मैंने भी आपको बिलकुल नहीं पहचाना था। इस लिबास में लंदन में आपसे मिलने का कभी संयोग नहीं हुआ। सिर्फ़ आपका ज़िक्र बहुत सुना है।"

"जी–आपकी यहाँ 'तशरीफ़ आवरी' कैसे हुई। मैंने देखा था जब आप पोलिश लड़कियों से बहन-भाइयों जैसा सलूक कर रहे थे।''

"वह तो मैं ज़रा उन लोगों का झूठ-सच मालूम करने आया हूँ। मैं एक अंग्रेज़ी और दो उर्दू अख़बारों के लिए 'लंदन लेटर' लिखता हूँ।"

"तुम इनसे पहले कभी नहीं मिलीं, बहुत बड़े पत्रकार हैं।"

"जी। और साजिदा आपा आप यहाँ कैसे?"

"मैं–मैं ज़रा इन लोगों का–"

"झूठ-सच मालूम करने आई थीं।"

"बिलकुल" उन्होंने जवाब दिया।

"मगर साजिदा आपा–और आप–"

"खान।"

"मिस्टर खान मुझे सचमुच बड़ा अफ़सोस है कि आप रौशन का पीछा करते यहाँ तक आए मगर वह न मिली। वह यहाँ कभी नहीं आई। अगर आ जाती तो उसके लिए अच्छा ही होता। इतनी ज़्यादा उलझी हुई न रहती। मगर वे बिलकुल इसी क्षण साल्ज़बर्ग में मोज़ार्ट का संगीत सुन कर अपनी आत्मा को फायदा पहुँचा रही हैं। जहाँ तक मेरा ख़याल है–"

"कैसा पीछा भई? क्या उड़ा रही हो?'' साजिदा ने खफ़ा-सा होकर कहा।

"नहीं तो, अच्छा है साजिदा आपा। यहाँ एक से एक तोहफ़े मिलेंगे। पंद्रह दिन तक आपकी वह आवभगत होगी जिसका ठिकाना नहीं। मुफ़्त का मनोरंजन–क्या हर्ज़ है? आप लोगों ने इन देशों को जाने क्यों हव्वा बना रखा है" वह जल्दी से उनकी नाक बनाते हुए बोली।

"यह शुग़ल आपने कब से शुरू कर दिया?" मिस्टर खान ने कहा–"मूर्त्तिकारी–"

''जी शुग़ल शुग़ल की बात है। कुछ लोगों का शुग़ल जन गुप्तचरी होता है।"

साजिदा ने घड़ी देखी। ''अब चल दूँ जहाँ हम ठहरे हैं वहाँ खाने पर हमारा इंतज़ार हो रहा होगा।"

"बहुत ख़ूब, दूसरी सिटिंग कब दीजिएगा?"

"मैं फ़ोन कर दूँगी।"

"बहुत अच्छा।"

वह बालकनी में से दोनों को जाते देखती रही। फूलों की बेल फिर झुक आई जिसके साए में 'मिस्टर खान' एक क्षण के लिए गुमसुम खड़ा रहा। फिर साजिदा बेगम के पीछे-पीछे बस स्टेंड की तरफ़ चल पड़ा।

वापसी पर वे लोग फ्रांस की सीमा पार कर रहे थे जब ट्रेन में किसी ने बताया कि रौशन पकड़ ली गई।

''क्या चंडूख़ाने की उड़ाते हो?'' तलअत ने उदास होकर कहा—"वह 'राजनीतिक' कभी न थी आख़िर उसके पकड़े जाने की वजह-तुक क्या है? यह यार लोगों ने उसके लिए अफ़वाहें फैला रखी हैं ख़ामख़ाह। और पकड़े जाने का मतलब? वह स्मगलिंग करती थी? बम बनाती थी ? अमरीका के महत्त्वपूर्ण भेद रूस को और पाकिस्तान के महत्त्वपूर्ण भेद भारत को बताती थी ? आख़िर क्या कर रही थी? भाई ! उस ग़रीब को अपने दर्शनशास्त्र से ही फ़ुर्सत नहीं। उसको यह तक मालूम नहीं कि फोर्थ इंटरनेशनल..."

"असल विचारों से क्या होता है। असल विचारों की तस्वीर तो नहीं ली जा सकती।" गौतम ने उसकी बात काटी। वह पश्चिमी के दूतावास में किसी काम से आया हुआ था। "तुम अफ़वाहों का मनोविज्ञान नहीं जानतीं और स्टिरियो टाइप की ताकत। अगर मैं निरंतर तुम्हारे लिए प्रोपेगेंडा करूँ कि तुम तलअत रज़ा नहीं हो वास्तव में दलाई लामा की उत्तराधिकारी हो तो सचमुच तुम्हें दलाई लामा का उत्तराधिकारी समझा जाएगा। हमारी ज़िंदगियों का आधार झूठी काल्पनिक बातों और गलत प्रोपेगेंडे पर है। रौशन तो बहुत ही महत्त्वहीन हस्ती है। पूरी क़ौमों, समूचे देशों के विरुद्ध स्टिरियो टाइप का हुक्म चलता है। यह आज की दुनिया है तलअत आरा बेगम जिसमें कलाकारों के अलावा विद्यार्थियों की तो सबसे बड़ी कीमत निश्चित है।''

"अब मैंने देखा कि प्रोपेगेंडा किसे कहते हैं। कमाल है भई। रौशन ग़रीब जिसके कोई राजनीतिक विचार किसी किस्म के एक सिरे से हैं ही नहीं, उसको इतना महत्त्व दिया जा रहा है कि दो भले आदमी उसके पीछे बर्लिन तक आए यद्यपि वह उन्हें तब भी न मिली।''

''मगर इस बहाने उन दोनों ने मनोरंजन तो कर लिया।''

"सुना है रौशन के वालिद बहुत बीमार हैं। मुझे बोन में कोई बता रहा था। संभव है इन अफ़वाहों से उसकी स्कालरशिप पर भी असर पड़े। जहाँ तक मैं समझता हूँ कराची की सियासत का इसमें काफ़ी दख़ल है।" एक लड़के ने कहा।

"वह किस तरह?" तलअत ने पूछा।

''सुना है कोई केंद्रीय मंत्री हैं जो रौशन के वालिद के विरुद्ध हैं या शायद रौशन के वालिद केंद्रीय मंत्री के विरुद्ध थे। ऐसा ही कुछ सिलसिला है। वास्तव में तो वे सिविल सर्विस के आदमी नहीं हैं। उनको वैसे ही किसी पिछले प्रधानमंत्री ने कोई बहुत बड़ा पद दे दिया था। अब उन प्रधानमंत्री के जाने के बाद रौशन के वालिद के खिलाफ़ बड़ा मोर्चा स्थापित किया जा रहा है। संभव है रौशन बेचारी के खिलाफ़ हास्यजनक कार्रवाई की जा रही हो, उसका इस मोर्चे से कुछ संबंध हो।"

"या अल्लाह" कमाल ने गड़बड़ा कर कहा—"इस प्रकार के हालात हैं?"

"हैं तो सही" हमीद ने जवाब दिया। वे सब खिड़की से बाहर भागते हुए हरे-भरे मैदानों को देखते रहे।

78

शिवप्रसाद भटनागर 'रंजूर' बाराबंकवी उन लोगों में से थे, जो लंदन में बरसों-बरस से, स्वेच्छा से निर्वासित जीवन बिता रहे थे। 'रंजूर' साहब दूसरे महायुद्ध से पहले बाराबंकी से आक्सफ़ोर्ड आए थे। शिक्षा समाप्त न कर पाए थे कि युद्ध छिड़ गया और यहीं रह पड़े। एक लैटवियन या लिथोएनियन लड़की से शादी कर ली। बड़े मूडी और आलसी आदमी थे। पत्नी बड़ी सौभाग्यशालिनी सिद्ध हुई। अब वह बोर्डिंग-हाउस चलाती थी। जिस हिन्दुस्तानी या पाकिस्तानी को कहीं ठिकाना न मिलता, वह सीधा यहीं आता। 'रंजूर' साहब बहुत ही शरीफ़ आदमी थे। सबकी बहुत आवभगत करते। ज़्यादातर मेहमान उनका बिल चुकाए बिना ही भाग जाते। मगर 'रंजूर' साहब उनकी शिकायत न करते। उत्तर प्रदेश से यदि कोई चूहा भी आ निकलता तो उसके लिए बिछ-बिछ जाते।

'हमराज़' फ़ैज़ाबादी उनके मकान की ऊपर की मंज़िल में उनके किराएदार थे। 'रंजूर' बाराबंकवी हिन्दू थे और हिन्दुस्तानी; 'हमराज़' फ़ैज़ाबादी मुसलमान थे और बड़े कट्टर पाकिस्तानी। थे दोनों शायर। एक-दूसरे से बराबर वाद-विवाद करते। रंजूर साहब 'रामायन-ए-फ़रहत' लेकर बैठ जाते और बियर के दो-चार गिलासों के बाद रुआँसे होकर कहते—"तुम मलेछ मुसलमंटे, तुमने भारतमाता के टुकड़े कर डाले !" इस पर 'हमराज़' भाई भी भारतमाता की शान में कुछ फ़र्माते। शिवप्रसाद रोते-रोते कहते—"यह शेर सुनो : कल रात हुआ है।" शेर सुन कर हजराज़ भाई कहते—हाँ यार अच्छा है मगर ज़रा बू-ए-कचौरी व हींग मी आयद (ज़रा कचौरी और हींग की बू आती है) इस पर दोबारा फ़साद शुरू हो जाता। रोज़ रात को खाने के बाद यह सिलसिला रहता। एक बात में 'रंजूर' और 'हमराज़' दोनों अपने सारे मतभेद छोड़ कर एकमत थे—पंजाबियों से दोनों को चिढ़ थी। इस विषय पर दोनों घंटों बातें करते न थकते। कहते, "अरे यह पंजाबी घुड़सवार रिसालदार उर्दू क्या जानें।" शिवप्रसाद बड़े ज़ोर-शोर से हाँ में हाँ मिलाते। उनकी पहली हिन्दू पत्नी से जो लड़की हिन्दुस्तान में थी, उसने किसी पंजाबी से शादी कर ली थी और चण्डीगढ़ में रहती थी। जिस रोज़ उसकी शादी की ख़बर आई, शिवप्रसाद साहब ने ख़ास तौर पर आकर 'हमराज़' भाई को इस दुर्घटना की सूचना दी :

"लो मियाँ, हमारे ख़ानदान की ज़बान भी बिगड़ गई। आख़िर हम इस पंजाबगर्दी से कहाँ तक बचे रहते।"

हमराज़ भाई, उनके इस सदमे में दिल से शरीक रहे, क्योंकि ख़ुदा न करे, कल को उनकी बहन की शादी भी किसी पंजाबी से हो जाए। 'रंजूर' साहब की इन महफ़िलों में, उनके बोर्डिंग हाउस में ठहरे हुए उत्तर-प्रदेश के हिन्दू-मुसलमान, हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी, बैठ कर अपने वतन की बढ़ाइयों का बखान करते। उनकी महान संस्कृति पर प्रकाश डालते, और शेर पढ़ते। एक रोज़ कमाल इस महफ़िल में गया तो उसको बड़ी हैरत हुई। "किस कदर अतार्किक हैं आप?" उसने 'हमराज़' भाइ से कहा : "आपका वतन पाकिस्तान है। आपको अब यू. पी. से मतलब?"

"अजी, वह तो ठीक है, मगर..." हमराज़ भाई ने गड़बड़ा कर कहना शुरू किया।

"ठीक क्या है?" कमाल ने उनकी बात काटी–"इसीलिए तो पाकिस्तान में यू. पी. वालों की वफ़ादारी को शक की निगाह से देखा जाता है। दिल अटका हुआ है फ़ैज़ाबाद में, नौकरी करते हैं लाहौर में। और, पासपोर्ट बनवा कर अम्मा-बेगम से मिलने फ़ैज़ाबाद जाते हैं, तो वहाँ ख़ुफ़िया पुलिस पीछे लग जाती है। किस क़दर दीवानी क़ौम है मुसलमानों की–हद है, वल्लाह...!"

"मियाँ साहबज़ादे, ज़्यादा बढ़-चढ़ कर बातें न बनाओ !" हमराज़ भाई ने जवाब दिया। "बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनाएगी। तुम हिन्दुस्तानी मुसलमान हो, याद रखो जब वहाँ नौकरी नहीं मिलेगी, और भूखे मरने लगोगे तो धक्के खाकर पाकिस्तान का ही रुख़ करोगे !"

हमराज़ भाई ठीक कह रहे थे उसने सहम कर उनकी सूरत देखी। इस समय 'रंजूर' साहब पान की गिलौरियाँ बना-बना कर ख़ासदान में रखते जा रहे थे। पान एक बड़ी पवित्र चीज़ थी जो कराची से हवाई जहाज़ के ज़रिये हर हफ़्ते हमराज़ भाई के लिए लंदन आती थी और बतौर 'तबर्रुक' (प्रसाद) रंजूर साहब को सुबह-शाम उसके दो बीड़े खिलाए जाते थे। धीमे-धीमे और बड़े क़रीने से पान बनाने के पावन कर्त्तव्य को पूरा करने के बाद 'रंजूर' बाराबंकवी कमाल की तरफ़ मुड़े और दुःखी और उदास आँखों से उसे देखने लगे।

"मुसीबत यह है कमाल मियाँ"–उन्होंने अपने ख़ूबसूरत लहजे में उदासी से कहा–"कि तुम शायर हो। हर नौजवान शायर होता है। उसूलों को पूजने वाला, सच्चाई को पकड़ने वाला, आदर्शों पर मर-मिटने वाला–वह हक़ीक़त को नहीं देखना चाहता। मगर, बदक़िस्मती से दुनिया का कारोबार शायर नहीं, राजनीतिज्ञ चला रहे हैं जिनको तुम्हारे 'विज़न' से कोई दिलचस्पी नहीं। असल सवाल यह है कि तुम हक़ीक़त से कहाँ तक समझौता करने पर तैयार होते हो। तुम्हारी असल बढ़ाई या घटियापन तो उस वक़्त ज़ाहिर होगा कि तुमने हक़ीक़त से यानी बेईमानी से, झूठ से, दिखावे से और नैतिक अपराधों से कहाँ तक समझौता किया।"

तलअत और कमाल वग़ैरह की सरगर्मियों को रंजूर साहब बहुत सराहते थे। 'इक़बाल ईवनिंग' में जाकर उन्होंने इक़बाल के दर्शन पर भाषण दिया। लंदन-मजलिस को हमेशा विभिन्न प्रकार के अनुदान अपनी शक्ति से बढ़ कर देते रहते। हालाँकि 'रंजूर' साहब की आर्थिक स्थिति इतनी कमज़ोर थी कि अपने घर की मरम्मत तक न करवा सकते थे। इस ग़रीबी का बड़ा कारण यह था जैसाकि पहले लिखा गया है–उनके अधिकांश किराएदार उनको किराया दिए बिना ही ग़ायब हो जाते और ये अपने मेहमानों से वाजबी पैसे लेकर अत्यंत बढ़िया खाने उन्हें खिलाते। "स्वीट ! किस क़दर क्रैक हैं, रंजूर साहब !" तलअत ने एक दिन कहा था–"ऐसे लोगों की दुनिया में जगह कहाँ है !" उनकी पत्नी माया–(उनका असली नाम यही था और 'रंजूर' साहब ने इस नाम के आधार पर अपने एक लेख में, जो सन् '39 में 'ज़माना' कानपुर में प्रकाशित हुआ था, सिद्ध किया था कि लैटवियन लोग दरअसल हिन्दू थे। बाद में जब आधुनिक अनुसंधान से यह प्रकट होने लगा कि संभवतः आर्यों का असली वतन बाल्टक की तरफ़ था और संस्कृत अपनी असली हालत में इन्हीं इलाकों में बोली जाती थी तो रंजूर साहब ने निश्चय कर लिया था कि वह स्वयं बहुत बड़े शोधकर्त्ता हैं। उन्होंने ऐलान किया कि अब वे इतिहास पर एक पुस्तक लिखने वाले हैं। पिछले पन्द्रह वर्षों से वे इस पुस्तक को लिखने में व्यस्त थे। मगर, वह अभी प्रारम्भिक प्रकरणों से आगे न बढ़ी थी।) पत्नी बड़ी मितभाषिणी और घरेलू

महिला थीं और कुछ वर्ष पूर्व बेहद सुन्दर रही होंगी। ('रंजूर' साहब स्वयं काफ़ी रूपवान थे।) उनका सारा समय पति और बच्चों की सेवा और खाना पकाने में बीतता। दिन भर वे मशीन की तरह काम करतीं। तलअत वग़ैरा के गिरोह को उनसे बड़ी हमदर्दी थी। 'रंजूर' साहब को अपनी इतिहास की पुस्तकों और शायरी से ही छुट्टी न मिलती थी कि वे माया की ओर ध्यान देते। वह ठेठ हिन्दुस्तानी पतिव्रता स्त्रियों की तरह चुपचाप रसोईघर में घुसी रहतीं या कपड़े धोतीं।

जीवन यों ही बीतता जा रहा था, कि शिवप्रसाद भटनागर 'रंजूर' बाराबंकवी के बोर्डिंग हाउस में एक नवयुवक पारसी विद्यार्थी आकर टिका। तलअत वग़ैरह जर्मनी से लौट कर आ चुकी थीं, और अब क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम के लिए चन्दा जमा करने की मुहिम शुरू हो रही थी। उनके इलाज के लिए रुपया इकट्ठा करने के सिलसिले में एक बड़ा ज़बरदस्त वैरायटी प्रोग्राम तैयार किया जा रहा था जिसकी तैयारी कई महीने पहले से शुरू हो चुकी थी। हार्ले स्ट्रीट के डॉक्टरों की फीसें बहुत ज़्यादा थीं, शायद उनको वियाना भी ले जाया जाए। लड़कों और लड़कियों ने निश्चय कर लिया था कि उनका इलाज पूरी तरह से करा कर दम लेंगे; उनके साथ उनकी पत्नी के अलावा एक बहुत बड़ी पार्टी थी। नज़रुल दादा को टूटिंग में ठहराया गया था, यहाँ वह गुमसुम वैठे बच्चों की तरह आश्चर्यचकित से सबको देखते रहते। उनका मस्तिष्क विकृत था। उनकी पत्नी के अंग पक्षाघात के कारण बेकार थे। वे पास ही एक पलंग पर लेटी रहतीं। एक दिन निश्चय हुआ कि कुछ हिन्दुस्तानी फ़िल्मस्टारों से—जो इन दिनों लंदन आए हुए थे—पैसा वसूला जाए। इतवार के दिन, चन्दा जमा करने के इन दिनों के ट्रिप पर निकल कर लड़के और लड़कियाँ विभिन्न टुकड़ियों में बँट गए। तलअत और फ़िरोज़ ने पहली सुइस-कॉटेज की राह ली। यहाँ 'रंजूर' बाराबंकवी रहते थे।

मकान के ज़ीने पर उनको 'हमराज़' भाई मिल गए, "हमराज़ भाई ! लाइये पैसे !" तलअत ने हाथ बढ़ाया।

"ये विद्यार्थी क्यों नज़रुल इस्लाम के लिए इतने बेहाल हुए जा रहे हैं।" हमराज़ भाई ने कहा।

"या अल्लाह !—हमराज़ भाई" तलअत ने कहना शुरू किया। इधर ये लोग हमराज़ भाई से बहस में उलझ रही थीं ठीक उसी समय अल्लामा 'रंजूर' बाराबंकवी की ज़िन्दगी में एक क़यामत आ गयी।

शाम का वक़्त था और सूरज सनोबर के पेड़ों के पीछे डूब रहा था। मकानों को खिड़कियों के शीशे डूबते सूरज के प्रकाश में लाल दिखाई दे रहे थे। 'रंजूर' साहब शेर-मौज़ूँ करने की फ़िक्र में तल्लीन, मकान के सामने टहल रहे थे। नीचे तहख़ाने में तेज़ रोशनी हो रही थी—जहाँ माया आम तौर पर इस समय रोज़ाना रात के खाने की तैयारी में व्यस्त दिखाई देती थीं। ठीक इस समय 'रंजूर' साहब को इस खिड़की में जाने क्या दिखाई दिया कि उनको विश्वास हो गया कि माया भटनागर होशिंग माचिसवाला से अफ़ेयर चला रही हैं। चला रही हैं क्या मानी, लम्बे अर्से से चलाती आई हैं, और अब तक यह किसी को मालूम ही न था। 'रंजूर' साहब की आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया, और वे तीर की तरह तहख़ाने में पहुँचे।

हॉल के ज़ीने पर खड़ी हुई तलअत और फ़िरोज़ को तहख़ाने में एक ज़ोरदार धमाके

की आवाज़ सुनाई दी। वे दोनों दौड़ी नीचे आईं। माया खून में लथपथ फ़र्श पर पड़ी थीं। उनके सिर में बहुत चोट आई थी और उनकी बड़ी लड़की पास खड़ी दहाड़ें मार रही थी। 'रंजूर' साहब दरवाज़े में गुमसुम खड़े थे।

"क्या हुआ?" तलअत ने दहल कर पूछा।

"कुछ नहीं।" उन्होंने शान्त स्वर में उत्तर दिया। "ज़ीने पर से इनका पाँव रपट गया, फ़िक्र मत करो !" फिर वे चुपचाप ऊपर चले गए।

दूसरे क्षण ऊपर की मंज़िल से उतने ही ज़ोरदार धमाके की आवाज़ आई।

लड़कियाँ बौखलाहट में दौड़ी हुई ऊपर पहुँचीं। जितनी देर में तलअत ने 999 फ़ोन करके एम्बुलेंस मँगाई, उतनी देर में 'रंजूर' साहब होशिंग माचिसवाला की ठुकाई भी अच्छी तरह करके छुट्टी पा चुके थे। 'हमराज़' भाई और दूसरे लोग हाँ-हाँ करते अपने-अपने कमरों से बीच-बचाव के लिए दौड़े, मगर 'रंजूर' साहब ने हड़बड़ाहट में एक झापड़ उन सब को भी रसीद किया, और इसी सिलसिले में 'हमराज़' भाई से बाक़ायदा उनके दो-दो हाथ हो गए। जिस लैण्डिंग पर यह हंगामा हो रहा था, वहाँ अँधेरा था। बाद में मालूम हुआ कि 'हमराज़' भाई और 'रंजूर' साहब दोनों एक-दूसरे को होशिंग माचिसवाला समझे थे।

अब 'रंजूर' साहब से कहा गया कि वह पास के पब से अपनी बेचारी पत्नी के लिए थोड़ी-सी ब्राण्डी ले आएँ।

यहाँ ब्राण्डी की प्रतीक्षा होती रही, लेकिन मालूम हुआ कि वे ख़ुद ही पब में पीने के लिए बैठ गए। तलअत मायादेवी को हस्पताल ले गई। फ़िरोज़ उनके बच्चों को पुकारने में लग गई। होशिंग माचिसवाला ने सामान बाँध कर टैक्सी मँगवाई और वहाँ से कान दबा कर भागा।

इस हड़बोंग में नसीम बानो से मिलने का समय निकल गया। माया भटनागर की मरहम-पट्टी करवाने के बाद तलअत और फ़िरोज़ नाइट्स-ब्रिज के एक बहुत बढ़िया फ़्लैट में पहुँचीं। यहाँ नसीम बानो की माताजी सैटी पर हारमोनियम लिए बैठी थीं और जिन्होंने दुआ-सलाम के बाद छूटते ही कहा—तुम लोगों ने अब तक शादी क्यों नहीं की? कब तक पढ़ती रहोगी? अब शादी कर डालो।—और नसीम बानो ने पकौड़े तल कर खिलाए, मगर चन्दे के नाम पर एक पैसा भी न दिया।

दोनों गुस्से से बड़बड़ाते नीचे उतरीं। अब कौन से फ़िल्मस्टार के पास जाएँ सड़क पर खड़े होकर उन्होंने सोचा।

यह फ़िल्म वालों का सिलसिला तलअत को हमेशा बोर करता था। क्योंकि जब से हिन्दुस्तानी फ़िल्म-इंडस्ट्री की उन्नति हुई थी, आए दिन कोई न कोई बड़ा फ़िल्मस्टार लंदन आ पहुँचता। एशियन फ़िल्म-सोसायटी में उसे बुलाया जाता। उनकी पब्लिसिटी से हिन्दुस्तान की पब्लिसिटी होती थी, "इस पब्लिसिटी के रैकेट ने दिमाग़ चकरा दिया है !" तलअत कहती।

"चलो, चल कर मायादेवी की ख़ैरियत मालूम कर लें !" वे उल्टे पाँव सुइस-कॉटेज गईं। फ़िरोज़ पर इस समय डिप्रेशन का दौरा पड़ा हुआ था।

"हद है, यार !" उसने कहा।

"हाँ यार, हद है।" तलअत ने उत्तर दिया।

'हमराज़' भाई के फ़्लैट में बहुत चहल-पहल थी। सारी बिल्डिंग के निवासी, यानी 'रंजूर' साहब के मेहमान, वहाँ ज़ोर-शोर से इस अचानक और विचित्र-सी घटना पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे। कमाल भी मौजूद था। वह तलअत को ढूँढ़ता हुआ इधर आ निकला था।

''हेड क्वार्टर में तुम्हारा इंतजार हो रहा है। तुम लोग कहाँ रह गई थीं भई।'' उसने कहा।

''मिसेज भटनागर अब कैसी हैं भाभी ?'' तलअत ने हमराज़ भाई की बीवी से पूछा।

"मगर साहब, 'रंजूर' जैसा भगत आदमी, जो कभी ऊँची आवाज़ में बोल कर न दे, और क्या पहलवानी दाँव दिखाए हैं मेरे शेर ने ! मुझे तो ऐसा झापड़ दिया है कि अब तक दिमाग़ झन्ना रहा है, वल्लाह !" 'हमराज़' भाई ने ख़ुश होकर दाद दी।

"मगर यह हुआ क्या ! ऐसी पतिव्रता औरत।"...एक डॉक्टर साहब ने कहा।

"और वह ख़ुद कैसा था, मरगिल्ला बिलकुल, पीली छिपकली जैसा, लाहौल विला, वही माचिसवाला !" उन डॉक्टर साहब की पत्नी ने कहा।

"मतलब यह कि इंसान के अन्दर जो तूफ़ान छिपे हैं उनका अन्दाज़ा किसे हो सकता है !" कमाल ने आहिस्ता से कहा, "रंजूर साहब का तूफ़ान–मायादेवी का तूफ़ान। हम सब कितने बड़े ज्वालामुखी पहाड़ पर ज़िन्दा रहते हैं ! हद है, भई।"

इसी समय दरवाज़ा खुला और 'रंजूर' साहब दहलीज़ में खड़े नज़र आए।

"आइए-आइए !" हरएक ने कहा। मगर सब अपनी-अपनी जगह खिन्नता अनुभव कर रहे थे।

उन्होंने अन्दर झाँक कर चारों ओर देखा। "नहीं, मैं आप लोगों की बातचीत में दख़ल नहीं देना चाहता। ऐसे ही इधर आ निकला था। ख़ुदा-हाफिज़ !" दूसरे क्षण वे ग़ायब हो गए।

शिवप्रसाद भटनागर कई दिन तक घर न लौटे। उनकी पत्नी सिर पर पट्टी बाँधे ख़ामोशी से कपड़े धोने और खाना पकाने में ऐसे व्यस्त हो गईं, जैसे कुछ हुआ ही न था।

कुछ दिन बाद शिवप्रसाद भटनागर 'रंजूर' बाराबंकवी टेम्ज़ के किनारे सर्दी में ठिठुरे हुए पाए गये।

79

बुलबुल चौधरी भी पहुँच चुके और नज़रुल इस्लाम के प्रोग्राम में सहयोग दे रहे थे। उनका टूर बुरी तरह फेल हुआ था। फिर वे बीमार पड़े। उनको बड़ा खराब प्रेस मिला। हर समीक्षक ने पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी नृत्य का मुकाबला करके प्रश्न उठाया कि उनमें क्या फ़र्क है हालाँकि ललित कलाओं और सौंदर्यशास्त्र के सरकारी विशेषज्ञ उनके बारे में अपने अजीब और विचित्र दृष्टिकोणों से प्रेस का आदर-सत्कार करते रहे थे।

कई महीने ड्रामे और मेले की तैयारी में गुज़र चुके थे। नज़रुल इस्लाम के लिए इतना पैसा अब तक इकट्ठा न हो सका था कि उनका बाकायदा इलाज़ करवाया जाता। "नज़रुल ऐड कमेटी" में सिरफिरे विद्यार्थियों ने खेर और इसफहानी को इकट्ठा कर दिया। कम से कम उनके नाम संरक्षकों की हैसियत से प्रोग्राम की किताब पर बराबर-बराबर छप गए। कमेटी

की अध्यक्ष हिन्दुस्तान टाइम्ज़ की श्रीमती इला सेन थीं। उप-अध्यक्ष वी. के. कृष्ण मेनन इनके अलावा 'अमृत बाज़ार' पत्रिका के सुंदर कबाड़ी भी थे और 'डान' के नसीम अहमद भी। (यह सम्मेलन—'नज़रुल दादा तुम्हारा जादू सिर चढ़ कर बोल रहा है'—कमाल ने कहा) इस बार पी. एस. एफ. और लंदन मज़लिस ने मिलजुल कर काम किया, पिछले साल दोनों जमातों ने मिल-जुल कर बड़ी धूमधाम से एशियन स्टूडेंट्स कान्फ्रेंस आयोजित की थी जिसमें अरब, इस्राइल विद्यार्थियों को कम्युनिस्ट फार्म पर इकट्ठा कर दिया गया था (विश्व शांति और भाईचारा सब फ्राड है, इन लोगों के भर्रे में मत आना। एक काकटेल पार्टी के दौरान रौशन से कहा था)

अब उन लोगों के ज़हनों में सिर्फ़ एक ख़याल था हम नज़रुल दादा को इस निस्सहायता की स्थिति में मरने नहीं देंगे।

प्रोग्राम में पद्मा में बाढ़ की कथा नाटक और नृत्य में प्रस्तुत की जा रही थी। घंटों नृत्य, गीतों और संवादों की रिहर्सल की जाती। एक-एक नुक़्ते पर बहस होती। कास्ट बेहद लम्बी-चौड़ी थी। धान फटकने वाली लड़कियाँ। भटियाली गाने वाले नाविक, बाढ़ की लपेट में पतझड़ के पत्तों की तरह बहते और डूबते हुए किसान। सरकारी लंगरखाने के सामने खड़े हुए भूखे शरणार्थियों की कतारें।

ओफ्फोह किस कदर भयानक। रोमांटिक बिल ने अर्द्ध अँधेरे आडीटोरियम में एक कुर्सी पर अध-लेटे हुए सामने प्रकाशमान स्टेज पर रिहर्सल देखते हुए कहा, "तुम लोग ट्रेजेडी से आनंदित होते हो।"

"मौत से तो हमारी बहुत पुरानी दोस्ती है ब्रिल क्रेग।" तलअत ने स्क्रिप्ट के पन्ने एक ओर डाल कर फ़र्श पर उसके निकट बैठते हुए कहा—"हमारी पूरी पीढ़ी तो स्पष्ट रूप से मृत्यु पर आशिक है। तुम बाहर के दुश्मनों से लड़ते थे, पर अभी कुछ वर्ष हुए हमारे घर के आँगन में एक रक्तरंजित जंग हुई थी और वह जंग बहुत से मोर्चों पर अब भी जारी है और दिन-प्रतिदिन ज़ोर पकड़ती जा रही है। यह सामने वाली ट्रेजेडी हमारे लिए मानो नित्य प्रति की साधारण घटनाओं में शामिल है। बहुत से व्यक्तियों को तो इस ट्रेजेडी का आभास तक नहीं।" तलअत ने कटुता से बात जारी रखी—"और बहुत संभव है अभी जिस समय मैं तुमसे बातें कर रही हूँ—यह बाढ़ का दृश्य पूर्वी बंगाल में सचमुच लोगों को नज़र आ रहा हो।"

छन-छन करते बुलबुल के ट्रुप (Troup) के सदस्य इधर-उधर जा रहे थे।

"बाढ़ के दृश्य में सररियलिज्म चलाओ थोड़ी-सी।" स्टेज के 'प्राप्स' के अंबार में से सिर निकाल कर ज़रीना चिल्लाई।

सररियलिज्म चलाई गई ड्रामा प्रोडक्शन की आधुनिकतम तकनीक अत्यंत ज़ोरों में हर तरफ़ प्रयोग की जा रही थी। पीछे गैलरी में फ़रीदा लड़कियों को धान फटकने वाले एक गीत का अभ्यास करा रही थी।

बेला नाई रे जोल्दी जोल्दी—बेला नाई

आख़िरकार फर्स्ट नाइट आन पहुँची। ग्रीन रूम की गहमा-गहमी। कास्ट के व्यक्तियों की ओर से चिंता। जाने कौन कहाँ पर कोई हाऊलर कर दे। वैस्ट एण्ड की प्रोफेशनल स्टेज

के महत्त्वपूर्ण कलाकारों को आमंत्रिक किया गया था। प्रेस वाले सामने की पंक्तियों में बड़ी तन्मयता से बैठे स्टेज को देख रहे थे। ड्रामा में काम करने वाले इस शहर के प्रेस और दर्शकों की प्रतिक्रिया के आदी थे। उन्हे मालूम था कि कल सुबह 'मांचेस्टर गार्जियन' और 'डेली स्केच' में किस तरह के नोट्स निकलेंगे।

इंटरवल के दौरान में बहुत से लोग ग्रीन रूम में आ गए। धान फटकने वाली लड़कियों का दल बालों में फूल उड़से, संथाल स्टाइल के जूड़े बनाए सामने से गुज़रा।

"ये सब बंगाली लड़कियाँ हैं?" एक लिबरल अख़बार के प्रतिनिधि ने कैमरा सँभालते तलअत से पूछा।

"यह?—नहीं—वह संथाली लड़की फ़िरोज़ जबीं है उत्तर-प्रदेश की रहने वाली—यह दूसरी सुंदर किसान लड़की अज़रा हैदर है। यह इधर वाली पंजाबी महिला है।"

"हाऊ फैसिनेटिंग"—प्रतिनिधि ने बड़े सच्चे दिल से कहा और अपनी नोट बुक पर झुक गया—"देखो एक बात मुझे और परेशान कर रही है" उसने माथे पर बल डालते हुए कहा—"तुम हो तो इन्हीं लोगों में से पर आजकल मेरी बिरादरी से संबंध रखती हो अतः मुझे किसी ऐंगल से कोई स्टोरी न देना। मैं—मैं तुम लोगों को इस प्रकार एकत्र देख कर बेहद परेशान हूँ। सुबह से शाम तक मेरी सारी ज़िंदगी तुम्हारे आपसी राजनीतिक झगड़ों, लड़ाइयों और रक्तपात की खबरें छापते-छापते गुज़री जाती है और अब यह क्या सिलसिला है। तुम हमें बेवकूफ़ बना रही हो। तुम एक-सा लिबास पहने एक संगीत की तान पर एक-सा गीत गा रहे हो, यह कौन-सा नया स्टंट है? ऐं—"

"राबर्ट साहब" तलअत ने मुँह लटका कर कहा, "इसे तो बस स्टंट ही समझो।"

"अच्छा अब तुम बाहर जाओ। देखो अगला ऐक्ट बस अब शुरू होने वाला है।"

"पता नहीं अगला ऐक्ट कैसा होगा !" उसने अविश्वास-भरे लहजे के साथ दुखित आवाज़ में कहा।

"मुझे ख़ुद मालूम नहीं !" तलअत ने ग्रीन रूम के सोफ़े से उठते हुए जवाब दिया, "मुझे अगले ऐक्ट के बारे में हमेशा डर लगा रहता है।'

दरवाज़े के निकट जाकर वह ठिठक गया, "एक बात और—केवल एक अंतिम सवाल है।"

"मुझे मालूम है"—तलअत ने झुंझला कर जवाब दिया—"ख़ुदा के लिए"—तलअत ने ग्रीन रूम का दरवाज़ा बंद किया और विंग में जाकर अपने क्यू के इंतज़ार में व्यस्त हो गई।

धान फटकने और सावन की वर्षा को आवाज़ों के साथ-साथ फ़रीदा की सुन्दर बंगाली आवाज़ धीरे-धीरे ऊँची होती गई—

बेला नाई रे, जोल्दी जोल्दी !
(वक़्त नहीं है जल्दी करो।)
ओ बेला शोनार कोन्नर ओंचल धोईरा !
(सुनहरी व ्या का आँचल पकड़ कर दिन डूब रहा है)
जादूर काठी हाथे लोईया आईलो रायत बूझी
बेला नाई रे जोल्दी जोल्दी—
बेला नाई...!

80

वक़्त नहीं है। जल्दी करो, जल्दी करो !

वक़्त नहीं है।

लोगों को देखो, उनके चेहरे कितने घिनौने हैं ! ये कितने बदसूरत हैं—इनसे भागो ! भागो ! अब मैं किस ओर जाऊँ? मेरे दुश्मन, मेरे दोस्त, मैंने उन्हें रास्ते के किस मोड़ पर छोड़ दिया?

झील के पार, नदी के पार, समुंदर के उस पार क्या है ? हमने टिकट तो दक्षिण देशों का लिया था पर क्या तुम्हें यक़ीन है कि जहाज़ वालों के गाइड्ज ने जो बताया वही ठीक है। यह मैं हूँ--यह तुम हो, बाक़ी सब मेरा प्रोजेक्शन है, यह स्थायी रूप से 'मैं'। सामने लाल छत का चैपल है और उसमें घंटियाँ बज रही हैं। यहाँ किसकी शादी है। बसंत बहार आ गई। पगडंडियों पर फूल झुक आए हैं। वे दोनों अब तक नहीं पहुँचे—जिनका ब्याह होगा।

चलते-चलते मेरे पाँव भी जल गए। उसने दुख से अपने पैरों को देखा। एक सोता हुआ चाँद बरखटस गार्डन पर डोल रहा था। वे सीमा पार करके हँसते हुए साल्ज़बर्ग में दाख़िल हुए और यूँ ही इधर-उधर गलियों में घूमते हुए एक छोटे से सिनेमा हाउस में पहुँचे जहाँ एक बीस साल पुरानी फ़िल्म चल रही थी। बाहर आकर वे एक सराय में जा बैठे। वह अपनी टाँगें कुर्सी पर रख कर खिड़की से बाहर देखने लगी। एप्रन से हाथ पोंछता हुआ ख़ुशमिज़ाज धुँधली आँखों वाला बूढ़ा उनके सामने आया।

"यह अवध के शाहों का खानदान है" वह खूब हँसा, "तुम जानते हो अवध के शाह कौन थे?" उन्होंने काग़ज़ के नैपकिन पर अपने नाम इकट्ठे लिखे।

वक़्त नहीं है--वक़्त नहीं है।

"हैलो भाई जान"—दरवाज़ा खुला और ज़र्द तंग मोरी वाली पतलून पहने एक अत्यंत सुंदर लड़की उनकी मेज़ की ओर बढ़ी—"भाई जान आपका तार मुझे आज मिला।"

"आप कौन हैं?" रौशन ने पूछा।

"यह मेरी कज़न है—शाहरुख़ सुल्ताना। पेरिस में रेडियोलोजी पढ़ती है।"

"भाई जान यह कौन थीं?" रौशन के बाहर जाने के बाद नवागत लड़की ने पूछा।

"यह—इनको भी मेरी कज़न ही समझो।"

"हाय अल्लाह—आप कितने मज़ाकिया हैं—पर यह काफ़ी घमंडी मालूम होती हैं। एकदम उठ कर बाहर क्यों चली गईं?"

"घमंडी तो नहीं हाई ब्रो ज़रूरत से ज़्यादा है। गर्टन कॉलेज इंटर नेशनल सेट से मुलाकात वग़ैरा, जानती हो तुम यह टाइप?"

"हाय अल्लाह किस कदर दिलचस्प" शाहरुख़ सुल्ताना ने ख़ुशी से कहा।

उसने एक गहरी थकी हुई अँगड़ाई ली। यह साल्ज़बर्ग है और मई का महीना। मैं तुम्हें एक दिन अपनी कहानी सुनाऊँगा।

वक़्त निकला जा रहा है जल्दी करो।

भागो—भागो—भागो !

बाहर एक अमरीकन मिशनरी उसके पास आकर खड़ा हो गया। दरख़्तों के नीचे कुर्सियाँ पड़ी थीं और गली की डाट के नीचे कोई अकार्डियन बजा रहा था। सड़क की दीवार पर बैठे-बैठे उसने बड़े शिष्टाचार से मिशनरी की तरफ़ हाथ बढ़ाया।

"हाऊ डू यू डू" उसने कहा।

"क्या तुम्हें अपनी आत्मा बचानी है?" मिशनरी ने असीम महत्त्व और राज़दारी के लहजे में कहा जैसे कि अगर आपने मज़बूत जूते बनवाने हों तो हमारी फ़र्म में तशरीफ़ लाइए।

"अमरीकन" उसने पूछा।

"हाँ मुझे पीटर कहते हैं।"

"बैठ जाओ पीटर, कहो अच्छे तो हो?"

"जी थैंक्स—मैं यहाँ से छत्तीसगढ़ जा रहा हूँ। हमने वहाँ नया मिशन स्थापित किया है" पीटर ने आसमानी ख़ुशी से बेहाल होकर बताया।

"मैं प्रिंसटन में पढ़ता था।"

"हाऊ वंडरफुल?"

"मैं प्रोफैशनल बेस बाल का खिलाड़ी बनने की ट्रेनिंग ले रहा था जब मैंने सहसा काल सुन ली।"

"क्या सुन ली?"

"काल।"

"तुम्हें एक बात बताऊँ पीटर—मैंने भी काल सुन ली है" उसने सोचते हुए कहा।

"यह तो खुदावंद खुदा की बड़ी कृपा है, कब सुनी?" पीटर ने हार्दिक प्रसन्नता से पूछा।

"अभी-अभी—कुछ क्षण पहले। लगभग नौ बज कर पंद्रह मिनट पर।" उसने घड़ी देखी, "शायद नौ बजकर बारह मिनट थे।" उसने सड़क की दूसरी तरफ़ सराय की जगमगाती खिड़की की ओर नज़र उठाई। फिर उसने हँस कर मिशनरी को देखा। वह बेवक़ूफ़ों की तरह मुँह खोले उसे देखता रहा।

81

सोता हुआ चाँद तैरता खिड़की के बिलकुल सामने आकर ठहर गया और उसकी रोशनी से ख़ामोश कमरा सहसा जगमगा उठा। बराबर के स्टूडियो में रंगानाथन मृदंग बजा रहे थे। ब्राउन बालों, तिर्छी आँखों और पीली रंगत वाले डच इंडोनेशियन लड़के, जो सुरेखा के ट्रुप में शामिल थे। नाचने के बाद लकड़ी के फ़र्श पर सुस्ता स आँखें बंद किए बैठे थे। तलअत खिड़की में इस तरह बैठी थी जैसे किसी ने चूहे को सीसा पिला दिया हो।

हाय अल्लाह आप कितना बढ़िया गाते हैं।

हाय अल्लाह स्केंग का लिबास आप पर कितना सजता है।

हाय अल्लाह !

फ़िरोज़ दूसरी खिड़की में बैठी जाने काहे की नकल कर रही थी। तलअत ने अफ़ीमचियों की तरह एक आँख खोल कर उसे देखा।

ब्रजवासियों में श्याम
ब्रजवासियों में श्याम बंसरी बजाए जा—बजाए जा

तलअत ने सहसा अलापना शुरू कर दिया।

"फिर बे-वक़्त की रागिनी" फ़िरोज ने गुस्से से तलअत को देखा।

"रौशन आ गई" नरगीश ने खिड़की से झाँक कर सूचना दी।

हवा में फूलों की महक उड़ रही है और यह मई का महीना है। हम इस अँधेरे कमरे में नियमानुसार उल्लुओं की तरह बैठे बोल रहे थे।

"टू वट टू हो आओ बहन रौशन तुम भी आओ" तलअत ने सच्चे दिल से स्वागतम कहा।

"तुम लोगों" उसने शक और संदेह की नज़रों से लड़कियों को देखा। "तुमने मुझे क्यों छोड़ दिया? मैं सीमा के पार अकेली रह गई हूँ। सीमा के इधर चेहरे कितने घिनौने हैं। यह कितने बदसूरत हैं। मैं चारों ओर घूमती हूँ कहीं जगह तलाश कर सकूँ जहाँ बैठ कर रोऊँ।"

वह लकड़ी के फ़र्श पर बिखरे हुए साजों के क़रीब बैठ गई।

"तुम अभी कौन-सा गाना गा रही थीं?"

"यूँ ही—बकवास थी।—लखनऊ रेडियो का एक पुराना गीत" तलअत ने जवाब दिया।

"मुझे वह गीत सुनाओ।"

"मेरा तमाम वृतांत खोए हुओं की तलाश?" तलअत ने फ़र्श पर चारों ओर नाचते हुए उससे सवाल किया।

"तुम लोग इतने मग़रूर क्यों हो?" वह ज़ोर से चीखी। गली के अर्द्ध अँधेरे द्वार में से निकल कर कमला खिड़की के पास आ गई।

"ठहरो रौशन मैं तुम्हें एक गीत सुनाऊँगी। गंधर्व वेद का साम गीत। रंगानाथन!" तलअत ने नाचते-नाचते रुक कर आवाज़ दी। "मृदंग और ज़ोर-ज़ोर से क्यों नहीं बजाते?"

"तुम रोती क्यों नहीं?" कमला ने रौशन के क़रीब आकर उसे ग़ौर से देखा। क्या ऐसा नहीं होता कि जब लोग उन्हें छोड़ कर आगे चले जाते हैं तो लड़कियाँ रोती हैं।" उसने उदासी से सवाल किया।

"देखो" रौशन ने कमला को संबोधित किया। इतने बरसों तक मैं एक घर बनाने में जुटी रही लेकिन ठीक नौ बजकर पंद्रह मिनट पर वह घर टूट कर ज़मीन पर आ गया।"

"काहे? कैसे?" तलअत ने पूछा।

"मैंने ख़ुद उसे तोड़ दिया। मैंने बड़े ज़ोर से उसे एक ठोकर लगाई और वह अड़ा अड़ा धम। वह एकदम नीचे आन गिरा। अब मैं निश्चिंत हूँ। अब मैं आराम से सोया करूँगी और कोई घर निर्माण नहीं करूँगी। अल्लाह हाफ़िज़" दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी, "अब मैं तुम्हारे बदसूरत उदास-उजाड़ मकानों में रहा करूँगी।"

डच इंडोनेशियन लड़के एक जमाही लेकर खिड़की में जा खड़े हुए।

"मैंने इस घर के टेलीफोन के तार भी काट दिए हैं।" चलते-चलते उसने दरवाज़े में से सिर निकाल कर कहा और ज़ीने की ओर मुड़ गई।

तलअत भी खिड़की में आ गई। उसने देखा कि बाहर असीम अँधेरा है और अँधेरा मेहरबान है और अँधेरा हमारे हर दुख, हर ग़म, हर पराजय को अपने अंदर समेट लेता है क्योंकि अंत में हम ख़ुद इस असीम अँधेरे में दाख़िल हो जाते हैं।

यद्यपि हमें कभी इस तरह न मरना चाहिए।

"हैलो—" अचानक फ़िरोज ने गली में आकर खिड़की में से झाँका।

"तुम कहाँ चली गई थीं?"

"मैं धोबिन के यहाँ गई थी।"

"बहुत अच्छा किया था" तलअत ने बेदिली से कहा।

"अब उनका--तुम्हारे भैया साहब का क्या किया जाए?" उसने चिंतित होकर पूछा।

"डार्लिंग—कॉफी में फिर तुमने कत्था घोल दिया" स्टोर के पास से कमला चिल्लाई।

"तुमसे किसने कहा है कि बकरी की तरह हर वक़्त पान चबाया करो—" तलअत ने गरज कर जवाब दिया। "सारे में पान की सामग्री बिखरी हुई है।"

"डार्लिंग" सुरेखा ने कमरे में दाख़िल होते हुए ख़बर सुनाई—"साजिदा आपा नीचे गैलरी में खड़ी पूछ रही हैं कि अपनी कहानी कब तक लिख कर लाएँ।"

"यह कौन-सा नया रैकेट तुमने चलाया है?" कमला ने ग़ुस्से से आग्रह किया।

"असल में—असल में कमला—बर्लिन की घटना के बाद से मैं साजिदा आपा की राय गोपाल बनी हुई हूँ। एक रोज़ उन्होंने कहा कि वे अपने विभिन्न अनुभवों और प्रभावावितियों पर एक कहानी लिखने जा रही हैं। तो मैंने—मैंने—उनसे कहा कि मैं उसे किसी उर्दू पत्रिका में छपने के लिए भिजवा दूँगी।"

तलअत ने सहमी हुई आवाज़ में कहा, "ख़ुदा के लिए उनसे कह दो कि मुझ पर अपेंडी साइटिस का आक्रमण हुआ है और मुझे हस्पताल ले गए हैं।"

"इधर आओ तुम सब" नरगीश ने गैलरी में से आवाज़ दी।

रिहर्सल रूम में साजिदा बहन एक सैटी पर बैठी थीं।

"सलमा अलेकुम प्यारी बहन" उन्होंने गर्मजोशी से कहा।

"वालेकुम सलाम प्यारी बहन—बेटा कैसे किस हाल में है—और शेर लोहे के जाल में है" तलअत ने नारा बुलंद किया।

"हाय, बस तुम हर वक़्त मज़ाक करती हो" उन्होंने कहा।

"अब अपनी कहानी पढ़ कर भी सुनाओगी साजिदा बहन?" तलअत ने काँप कर सवाल किया।

"आह ! ये कुछ यादें हैं मेरे इंगलिस्तान में निवास के ज़माने की" उन्होंने बैग में से काग़ज़ निकालते हुए कहा—"तुम तो मुझे समझती हो ना?"

"लो साजिदा बहन कॉफ़ी पिओ"—फ़िरोज़ ने अतिथि सत्कार शुरू किया।

"हरगिज़ न पीजिएगा इसमें कत्था घुला हुआ है" कमला ने सूचित किया।

"अजी कत्था हो या न हो। क्या फ़र्क़ पड़ता है, दुनिया की हर चीज़ फ्राड है फ्राड" फ़िरोज़ ने सख़्त दार्शनिक अंदाज़ में कहा।

तलअत को ग़ुस्सा आ गया। वह अँगीठी के पास जाकर खड़ी हुई और हवा में हाथ

हिला कर उसने कहना शुरू किया—

मेज़ हिल जाएगी और कॉफ़ी छलक जाएगी, मुझे मालूम है दोस्त
मेज़ में पैर लगा, मेज़ को झटका-सा महसूस हुआ
हिल गई मेज़ तो कॉफ़ी छलकी, कॉफ़ी छलकी तो मगर गिर न सकी
मेज़ की क्रिया बेकार
या मेरी क्रिया बेकार
दोनों में कोई नहीं, कुछ भी नहीं
घूर कर देख न यूँ दोस्त मुझे
बदतमीज़ी से बहुत दूर रहा करता हूँ
मेज़ तो मेज़ है आकाश हिला देते हैं
और ग्रह छलक जाते हैं
ऐसे ही जैसे कि काफ़ी छलके

साजिदा बहुत खुश हुई "इसका शीर्षक क्या है?" उन्होंने पूछा।

"फ्राड ही समझ लो। ताल हसन की नवीनतम रचना है।"

"अच्छा सुरेखा देवी से मुलाकात हो सकती है? उन्होंने फोन पर मुझे इसी वक़्त का एपाएंटमेंट दिया था।"

सुरेखा दूसरे कमरे में डच इंडोनेशियन नर्तकों को रिहर्सल करा रही थी। "तुम अपने होश में हो?" तलअत ने उसके पास जाकर गुस्से से कहा—"यह तुम लोगों को मुलाक़ात का वक़्त कब से देने लगीं?"

"रोशन को तुमने कहाँ गायब कर दिया" वह गरजी।

"मुझे क्या मालूम है। मैं हर समय उसके पीछे-पीछे तो नहीं फिर सकती।" तलअत ने जवाब दिया।

"हाय किस क़दर दिलचस्प" साजिदा बहन ने दरवाज़े में पहुँचते हुए कहा, "मेरी हमेशा इच्छा थी कि बैक स्टेज ज़िंदगी देखूँ।"

"क्या घटिया इच्छा थी।" तलअत ने गुस्से से दाँत पीसते हुए दिल में कहा।

"नमस्ते जी" सुरेखा ने अत्यंत गंभीरता से साजिदा आपा के करीब आकर कहा, "मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ। उसने तुरंत इंटरव्यू देने वाला अंदाज़ इख़्तियार कर लिया।

"तुम्हारी राय ने सबके लिए पटरा कर दिया" साजिदा आपा के जाने के बाद कमला ने तलअत से कहा।

"एँ?"

"हाँ मसलन अगर तुमने साजिदा बहन को राय न दी होती कि वे फ्री वर्ल्ड की लीडरी छोड़ कर कहानीकारिता पर उतर आएँ तो क्या होता?"

"तो वे फ्री वर्ल्ड की सबसे बड़ी लीडर होतीं।" तलअत ने इत्मीनान से जवाब दिया।

"लेकिन अब वे इंसपिरेशन की तलाश में रोमांटिक जंगलों में घूमती हैं।" फ़िरोज़ ने कहा।

"जंगलों में?" कमला ने पूछा।

"हाँ जंगल अर्थात् वुडलैंड।"

"सेंट जॉर्ज़ वुडलैंड ?" तलअत ने सवाल किया।

"कमीनेपन पर मत उतरो" फ़िरोज़ ने कहा।

"वास्तव में सेंट जॉर्ज वुड के स्टूडियो फ्लैट्स में तब्दील हुए तबेलों और उनमें रहने वाले कलाकारों की संगति ने उनके मनोविज्ञान पर बहुत चिंतापूर्ण प्रभाव डाला है और दूसरी बात यह"—कमला ने रुष्टता से कहा—"अगर तुमने रौशन को कोई सीधा रास्ता दिखाया होता तो वह कब की घर वापस जाकर किसी ठिकाने के आदमी से शादी कर लेती।"

"वे निःसंदेह घर वापस जाकर किसी ठिकाने के आदमी से ब्याह कर लेगी। वह दार्शनिक ज़रूर है मगर यह न भूलना कि बुर्जुवा दार्शनिक है।" तलअत ने कहा—"अरे जब मियाँ बनरे बाग़ों में आए माली भये अगवानी" उसने ढोल उठा कर अलापना शुरू कर दिया।

"और मैं सिर्फ़ यह मालूम करना चाहती हूँ कि यह सारा रहस्य है क्या?" सुरेखा ने अंदर आते हुए सवाल किया।

"पेरिस में कज़न शाहरुख सुल्ताना डॉक्टरी पढ़ती हैं। यह अब तक रौशन को मालूम ही था" तलअत ने कहा।

"संयोग के ये गहरे रहस्य" सुरेखा ने सीटी बजाई।

"मैं धोबिन के यहाँ जा रही हूँ।" फ़िरोज़ ने खिड़की में से बाहर गली में कूदते हुए कहा।

82

जाड़े आए और बर्फ़ से सारे रास्ते सफ़ेद हो गए। स्टेट गार्ट, टूवेज वेयरजन सारी जगहों को बर्फ़ ने ढाँप लिया। क्रिसमस के पंटो माएम शुरू हुए। लोगों ने दक्षिण की ओर रवाना होना शुरू किया। स्टर्न वर्ग में चारखानेदार मोज़े पहने गरीब जर्मन लड़कियाँ क्रिसमस की ख़रीदारी कर रही थीं और अमरीकन सिपाही उन्हें सिगरेट के डिब्बे तोहफ़े में दे रहे थे। नोतरदाम की संन्यासिनें मेलन के किनारे-किनारे अपनी बग्घियाँ हाँक रही थीं। विंटर स्पोर्ट्स का ज़माना आया। बर्फ़ के खतरनाक हिस्सों को जालियाँ लगाकर अलग कर दिया गया था। विक्की बाम ने शायद नया उपन्यास लिख लिया था और बर्फ़ बड़ी कृपालु थी।

फिर बर्फ़ पिघली। पेड़ों में नई कोंपलें निकलीं। सारी सृष्टि पर ज़बरदस्त, विशुद्ध रंग बिखर गए।

पतझड़ आई तो जंगलों में सुर्ख आग जैसी लग गई तथा सुर्ख़ पत्तों के अंबारों ने पगडंडियों और सड़कों को अपने में छुपा लिया। हवा की नीलाहट में ज़र्दी शामिल हो गई।

चलते-चलते थक कर रौशन रास्ते में एक जगह ठहर गई। सामने एक पुराना चर्च था। वह बिना किसी इच्छा के कब्रों के शिलालेख पढ़ने लगी फिर वह अंदर गई। चेपल खाली पड़ा था, घिसे हुए ओक की बेंचें। बतसमा देने का ठंडा हौज़। दीवारों पर उन कर्नलों और कप्तानों की मृत्यु तिथि की पीतल की तख़्तियाँ लगी थीं जो इस कस्बे में पैदा हुए थे और राज्य की सुरक्षा करते हुए झाँसी, कानपुर और रज़मक में मारे गए। उसने बेध्यानी से इधर-उधर

घूमते हुए चंद सिक्के फंड के डिब्बे में डाल दिए।

"हैलो मेरी बच्ची—" बहुत बूढ़े पादरी ने मुहब्बत से कहा। वह पीछे पेड़ों से निकल कर आया था और लंगड़ा था।

"हैलो—गुड ईवनिंग—" उसे बड़ा डर लगा। उसने मुस्करा कर चंद और सिक्के बाक्स में डाले और बाहर आ गई। क्या फिजूल बात है। चर्च बना रखे हैं। उसने झुँझला कर कहा। फिर उसका जी चाहा कि वापस जाए और एक ओक की बैंच पर सिर रख कर पड़ी सोती रहे।

उसके साथ वह घने जंगलों और हरे टापुओं में से गुज़री थी। लम्बा मरमर की गैलरियों में चली थी, ऊँची सफ़ेद सीढ़ियों पर चढ़ी थी जिनके अंत पर रोमन स्तम्भों में से तैरता हुआ चाँद एकाएक सामने आ जाता था। आस्ट्रिया, यूनान, इटली, अब वह फिर आकर्षक पुराने इंगलिस्तान में मौजूद थी।

लंदन में वह सुरेखा के मकान की बालकनी पर झुकी रही।

"वह सब एक्टिंग थी।" उसने बड़े दृढ़ विश्वास से कहा।

"पता है" आमिर रज़ा ने इत्मीनान से जवाब दिया। उनको हमेशा से हर बात का पता था। खुद उनको निर्वाण मिलने वाला था। निर्वाण की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं।

"मुझमें बहुत कमाल की स्टेज सैंस है।"

"मालूम है—तुमने भी कॉलेज में ऐलोकेशन सीखा है और असकाला थिएटर में तुम—"

"हाँ" उसने खुशी के लहजे में बात काटी—

"और इसीलिए अब मैं तुमसे यह कहने आई हूँ कि मुझे प्रसन्नता है कि तुमने मुझ पर साबित कर दिया कि तुम बहुत समझदार हो—वास्तव में गलती संपूर्ण रूप से मेरी ही थी। मैं सच्चे दिल से तुमसे माफ़ी माँगती हूँ।"

"मैं तुम्हें माफ़ करता हूँ" उसने विशाल हृदय से जवाब दिया।

फिर वे दोनों बालकनी पर झुके सीटी बजाते रहे।

83

सोता हुआ चाँद आलस्य से चारों ओर तैरा किया। बालकनी के नीचे सुरेखा बैठी थी और ज़रीना नए स्टेज डिज़ाइन बनाने में व्यस्त थी।

"वह देखो चाँद मर रहा है" उसने सहसा उंगली उठा कर रौशन को संबोधित किया।

"हाँ" रौशन ने पहली बार देखा चाँद मर चुका था और उसकी ज़र्द लाश रात की हवा की कृपा पर इधर-उधर डोल रही थी।

"तुमने देखा?" सुरेखा ने अचानक उसे आहिस्ता से सम्बोधित किया कि यह सब स्टेज-सीनरी थी? डिज़ाइन, कैनवस के रंगीन पर्दे, परदेस।

गैलरी में लिफ़्ट आकर रुकी, तलअत और नरगीश अंदर आईं। वे निर्मला को देखने मिडहर्स्ट गई थीं और वापसी में उन्होंने देखा कि हेज़ल मेयर का जंगल वहाँ नहीं था। तलअत को मालूम हुआ कि यह जंगल स्थिति-स्थान भी बदलता रहता है।

कमरे में वे सब चुपचाप बैठे रहे। कमला ने रौशन को ग़ौर से देखा जैसे उसे पहचानने की कोशिश करती हो फिर वह अपनी और सुरेखा की भरत नाट्यम की पोशाकों को उलटने-पलटने लगी।

"कमला !" तलअत ने सहसा उसे संबोधित किया–"मुझे वह लुई मेक्नीस की पोएम सुनाओ !"

"कौन-सी?"

"वही, जो उन्होंने पतझड़नामे में लिखी है।"

कमला अँगीठी के नकली अँगारों को देखती रही। फिर उसने आहिस्ता-आहिस्ता कहा–

I loved my love with a platform ticket,
A handbag, a pair of stokings of Paris and...
I loved her long
A loved her between the lines and against the clock.
Not until death
But life did us part.
I loved her with peacock's eyes
And the wares of Carthage,
With blasphemy, camaraderie,
and bravado and lots of other stuff.
I loved her with my office hours, with flowers and sirens.
With my budget, my latchkey
and my daily bread,
And so to London and down the
ever-moving stairs.

सब ख़ामोश बैठे रहे।

"कमला", तलअत चिल्लाई, "मुझे डर लग रहा है।"

वह निकट आकर ठंडे फ़र्श पर बैठ गई।

"तुम्हें याद है?" कमला ने सोचते हुए कहा–"जुलाई-अगस्त की एक शाम, बारिश होकर थमी थी; 'गुलफ़िशाँ' बिलकुल सुनसान था। सब लोग जाने कहाँ चले गए थे। मैं और निर्मला और तुम अकेले बरसाती की सीढ़ियों पर बैठे थे और शाम की नीली रोशनी सारे में फैल गई थी। और उस समय दो संन्यासिनें मंत्र पढ़ती फाटक के अन्दर आ गयी थीं और अड़ी हुई थीं कि उनको दक्षिणा दी जाए। बच्चों की तरह एकाएकी हमें ख़याल आया था कि ये चुड़ैलें हैं...हम इतने बड़े घर में अकेली हैं...अभी ये हमें कोई शाप देंगी, अभी कुछ होगा, इस सन्नाटे में कोई ख़ौफ़नाक अनजान बात होगी !"

"फिर वे जाप करती और राजस्थानी में बड़बड़ाती वापस चली गई थीं। हमने डर कर उन्हें ज़ोर से डाँटा था !" तलअत ने आहिस्ता-आहिस्ता कहा, "और फिर हमको महुवे की छाया से भी डर लगा था। हम सहमे हुए सीढ़ियों पर बैठे थे। मैंने कोशिश करके आयतुलकुर्सी

पढ़ी थी और तुमने अपना वह इकलौता श्लोक दोहराना चाहा था जो तुम्हें कभी याद न हो सका।"

"वह बड़ी सुनसान शाम थी" कमला ने याद किया।

"तुमने कभी सोचा है, सारी शामें बहुत सुनसान होती हैं। उनमें कैसी अथाह उदासी होती है। शाम–जब दोनों वक़्त मिलते हैं, जब हम जगमगाते कमरों में हँसते हैं, उस वक़्त भी सहसा पछतावे का-सा एहसास होता है।" तलअत ने कहा।

"फिर हम तीनों ख़ामोश सड़क पर से गुज़र कर सिंघाड़े वाली कोठी चले गए थे और वहाँ लाज के साथ मिल कर अपने इस तरह भयभीत होने पर बहुत हँसे थे" तलअत बोली।

"वे संन्यासिनें हमें हर जगह, हर मोड़ पर मिलती हैं। वे हमें शाप देती, महुवे के साये में ग़ायब हो जाती हैं। अँधेरी रातों में मैंने उन संन्यासिनों को चिल्ला-चिल्ला कर रोते सुना है?" कमला ने कहा।

दूसरे कमरे में ज़ोर-ज़ोर से मृदंग बजना शुरू हो गया। आज रात कमला और सुरेखा का नाच है। सारी दुनिया देखने के लिए आएगी। तलअत को ख़याल आया।

रौशन उसके निकट आई। "मैं वापस जा रही हूँ। तुम लोग कभी-कभी मुझे ख़त लिखा करोगे?" तलअत को ऐसा लगा जैसे उसकी आवाज़ में विनती थी।

"हाँ तुम्हें हर साल ईद और नए वर्ष के कार्ड भेजेंगे" तलअत ने कहा।(क्या अंत बस इतना है कि कुछ समय तक इन सबके क्रिसमस कार्ड रौशन के पास जाएँगे मगर वे भी बंद हो जाएँगे। राह में जब विभिन्न उजाड़ों के विशाल वीराने और राजनैतिक हदबंदियाँ बीच में पड़ती हों तो कहाँ तक इन अच्छे संबंधों को घसीटा जा सकता है) "हाँ तुम्हें कभी भूलेंगे नहीं रौशन डियर" उसने दोहराया–"हम सब एक शाप के प्रभाव में हैं।"

मृदंग की आवाज़ तेज़ हो गई। ना दर दाम ताना दी रे ना–सुरेखा छुन से स्टेज पर आ गई। अब नियमानुसार मैं नाचूँगी। उसने सोचा कमला नाचेगी सब नाचेंगे, ईरियोजति मोरम शब्दम, शो जारी है। ऐसी क्या ख़ास बात है, सवाल यह है क्यों जारी रहे। कड़तक ताम तम ताम–कड़तक तत तई तत तई। कल मुझे टेलीविज़न पर नाचना है। परसों हालैंड जाकर मलिका जोलियाना के लिए नृत्य करना है। दरिया बहता जा रहा है, डलिन टामस मर गए। बुलबुल चौधरी मर गए–मर गए। रौशन, अफ़सोस कि वह भी शायद मर गई।

और अब हाल खाली पड़ा है। सिर्फ़ रात की चंद लड़कियाँ और लड़के इधर और उधर बैठे सिगरेट पी रहे थे। अख़बारों के प्रतिनिधि काग़ज़, पैंसिल हाथ में लिए सुरेखा देवी के बहुमूल्य शब्द सुनने के लिए कान लगाए खड़े थे। कार्ड बोर्ड के सैट अस्त-व्यस्त स्थिति में बिखरे हुए थे।

"नृत्य में मेरी ज़िंदगी है" सुरेखा ने रामेश्वरम के मंदिर की सीढ़ी पर पैर टिकाते हुए इंटरव्यू वाली सभ्य और संतुलित आवाज़ में कहना शुरू किया।

"खुदावंदा–सुरेखा" तलअत ने अत्यंत बोर होकर जंभाई ली।

"हुश–मैं प्रेस को ब्यान दे रही हूँ।"

अख़बार के रिपोर्टर मंत्रमुग्ध होकर उसे देखते रहे।

तलअत अर्द्ध अँधेरे आडिटोरियम की एक सीट पर बैठ कर ऊँघने लगी। यह नन्हा

सूअर मार्केट गया था। यह नन्हा सूअर मार्केट गया था। यह नन्हा सूअर घर पर रहा। उस नन्हे सूअर ने भुना गोश्त खाया। यह नन्हा सूअर सारे रास्ते रोता हुआ घर वापस आया—वी वी वी वी वी—

84

वी वी वी वी—शोर अब आसमान तक पहुँच गया। चम्पा ने खिड़की बंद कर दी और होस्टल से बाहर निकल आई। सारे में तीसरे पहर का सन्नाटा छाया था। कल कॉलेज बंद हो जाएगा। अब मैं कहाँ जाऊँगी? क्या करूँगी (ज़िंदगी प्रतीक्षा में है मुँह फाड़े) यह अनुभव भी शायद असफल। उसने नज़रें उठा कर दूर-दूर तक फैले हुए बाग़ों को देखा। केम्ब्रिज़ की हरियाली पर नीली घटाएँ छाई थीं। वह बैक्स पर से गुज़रती लायब्रेरी की तरफ़ जाने वाली पुलिया पर आ गई। "शोलोम अलैग़म" एक यहूदी विद्यार्थी, जो पुलिया पर बैठा था, सलाम करता हुआ साईकल पर गुज़र गया। तुम पर ख़ुदा की कृपा हो—

"तुम सब पर ख़ुदा की—कृपा हो" चम्पा ने दिल में दोहराया।

ज़िंदगी में स्वयं इतनी तीव्रता है। इसके लिए दर्शन की क्या आवश्यकता है और प्रसन्नता की खोज के सिलसिले में हम किस कदर कमीने बन जाते हैं। यहूदी विद्यार्थी, जो पुलिया पर बैठा तस्वीरें बना रहा था उसे देख कर ख़ुशी से खिल गया। "बैठ जाओ" उसने चम्पा से प्रार्थना की—"मैं तुम्हारा स्कैच बनाऊँगा" वह बैठ गई ताकि उसका दिल न टूटे—"आज आख़िरी दिन है कल तुम जाने कहाँ चली जाओगी। तुम्हारा स्कैच अपने पास रखूँगा" उसने तीव्रता से पैंसिल चलाते हुए कहा।

चम्पा ने झाँक कर देखा स्कैच बड़ा ख़राब था। मगर वह बड़े सब्र और शिष्टता से चुपकी बैठी रही। शायद मेरी असली शक्ल है—उसने दिल में कहा। "यह असफल चित्रकार ही शायद मेरी आकृति बनाने में वास्तव में सफल रहा है।"

"पसंद आई तुमको तस्वीर" यहूदी लड़के ने ख़ुशी से पूछा—"मैं तुमको प्रसन्न देखना चाहता हूँ। मैं तुमको किस तरीके से ख़ुश करूँ?" वह बड़ा निश्छल नज़र आया।

"तुम मुझे ख़ुश नहीं कर सकते?" चम्पा ने सहसा बड़ी क्रूरता से कहा। (हम सब कमीने हैं, आनंद की खोज में हमारी चार सौ बीसी तो देखो, उसने दिल में सोचा)

"वह कौन है" लड़के ने सहसा अत्यंत दुखी होकर पूछा—"वह कौन है जो तुमको प्रसन्नता प्रदान करेगा।"

"यह बड़ा क्रूर और कमीनेपन का सवाल है।"

"क्षमा करना" उसने उदासी से कहा।

"अच्छा ख़ुदाहाफिज़ शोलोम अलैग़म" चम्पा ने मुस्करा कर कहा।

"शोलोम अलैग़म" लड़के ने जवाब दिया और उसे नदी की ओर जाते हुए देखता रहा जिधर माइकेल और डेनिस खड़े थे।

"ग्रिल अभी तक नहीं मिला" डेनिस ने उद्विग्नता से चिल्ला कर कहा।

"नहीं।"

"कहा ग़ायब हो गया स्रिल" डेनिस ने कहा। उन दोनों ने ग़ुस्से से चम्पा को देखा।

"मैं स्रिल की जिम्मेवार नहीं हूँ, डेनिस।" चम्पा ने आहिस्ता से कहा।

"ओह, चंम्पा मुझे माफ़ कर देना। क्या मैं तुम पर बरस पड़ा था?" माइकेल ने नम्रता से कहा।

"नहीं, माइकेल, ठीक है।"

"आज आख़िरी दिन है, चम्पा।"

"हाँ।"

"चलो, चल कर आख़िरी मर्तबा 'कोह-ए-नूर' में खाना खा लें।"

"आज आख़िरी..." सब यही दोहरा रहे थे। वह इस भावुकता से बचना चाहती थी, मगर यह असम्भव था। सच था, आज केम्ब्रिज़ में विद्यार्थी-जीवन का आख़िरी दिन था।

रेस्तराँ में बैठ कर उन्होंने स्रिल का कदापि ज़िक्र नहीं किया। उन्होंने तो रौशन तक का ज़िक्र नहीं किया। लोग इतने मेहरबान क्यों होते हैं। एक-दूसरे से इतनी हमदर्दी क्यों रखते हैं। ये लोग मेरे भी बहुत सख़्त वैलविशर हैं। अब मैं फिर कमीनेपन पर उतर आई हूँ।

कुछ दिन पूर्व, उसने यों ही, बातों ही बातों में रोज़मारी की कुशलता पूछी थी।

"अच्छी है" स्रिल ने उत्तर दिया था। "वह ग़रीब तो बीमारी की हालत में भी नौकरी करती है, ताकि मैं केम्ब्रिज़ में अपनी शिक्षा पूरी कर सकूँ।"

"—और दूसरी लड़कियों से इश्क़ लड़ा सको।" चम्पा ने बेध्यानी से कहा था। यह सुन कर स्रिल छलाँग लगा कर खिड़की से बाहर कूद गया था। उसका चेहरा ग़ुस्से से लाल हो रहा था। उस रोज़ से स्रिल ग़ायब था। कॉलेज के क्वाड्रेंगल में, गलियों में, नदी के किनारे, क़हवाख़ानों और किताबों की दुकानों में, कहीं स्रिल का पता न था।

सहसा वह बाहर बारिश में भीगता दिखाई दिया। डेनिस लपक कर उसकी ओर दौड़ा। मगर वह टस से मस न हुआ। फिर माइकेल उसको बुलाने के लिए गया। परन्तु वह वहीं खड़ा रहा। हल्की-हल्की बारिश शुरू हो चुकी थी। विद्यार्थी बरसातियाँ ओढ़े टहलते हुए धीरे-धीरे चल रहे थे।

"अन्दर चलो, यह क्या बचपना है !" चम्पा उठ कर बाहर गई और डाँट कर उससे कहा।

"नहीं, मुझे भूख नहीं है।"

"बको मत।"

"मेरे पास पैसे नहीं हैं। कैसे आऊँ अन्दर?" उसने धीरे से डेनिस से कहा।

चम्पा के हलक़ में कोई चीज़ आ अटकी। एक सप्ताह पहले इसी स्थान पर उसने स्रिल से कहा था तुम्हारी पत्नी इसलिए नौकरी करती है कि तुम दूसरी लड़कियों से इश्क़ लड़ाओ।

फिर वह चम्पा की ओर मुड़ा, "तुमको शायद यह मालूम करके ख़ुशी होगी कि रोज़मारी ने मुझे इस हफ़्ते चेक नहीं भेजा, क्योंकि मैंने सूचना दे दी कि मैंने उसे छोड़ देने का फ़ैसला कर लिया है।"

"तुम्हारा...तुम्हारा दिमाग़ यानी कि....बिलकुल चल गया है !" चम्पा ने हड़बड़ा कर कहा। उसी क्षण उसने अनुभव किया कि माइकेल और डेनिस उसे बेहद नफ़रत की निगाहों से देख

रहे हैं, वह नफ़रत जो उसने तहमीना, निर्मला और शान्ता क्रेग की निगाहों में देखी थी।

"हाँ !" सिरिल ने इत्मीनान से जवाब दिया, और बरसाती की जेब में हाथ डाल कर सिगरेट खोजने लगा।

डेनिस और माइकेल चुपचाप रेस्तराँ वापस चले गये।

बारिश चम्पा और सिरिल पर बरसती रही।

"चलो, यहाँ से चलें। पानी में भीगने में कौन तुक है !"

"ऐसे तो किसी बात की कौन तुक है !" सिरिल ने उसी अन्दाज़ में कहा। फिर वह हँस पड़ा। "देखो तो सही, आख़िर मुझ पर तुम्हारे उपनिषदों का असर हो ही गया !"

"तुम्हारा दिमाग़ चल गया है, सिरिल।" चम्पा ने दोबारा कहा।

"हर घटना अपनी जगह पर अकेली होती है। दोहराई नहीं जाती। यह मत समझना, चम्पा, कि क्षण दोहराये जा सकेंगे। तुम्हारा जीवन...मैं...ये सब चीजें। समय की त्रासदी पर तुम हँस नहीं सकतीं !"

"चलो, मैं तुम्हारी तरफ़ चलती हूँ।" उसने धीरे से कहा।

वे फुटपाथ पर इस तरह चलने लगे, मानो क़ब्रिस्तान की तरफ़ जाते हों। जब परिचित लड़के और लड़कियाँ मार्ग में मिलते तो सिरिल बड़े दुःख से उनसे 'हैलो, हैलो !' कहता जाता।

"तुम क्या वाक़ई मेरी वजह से...यानी कि..." इतनी भयानक बात उसके मुँह से न निकल सकी। "यानी कि...?" उसने मरी हुई आवाज़ में कहना चाहा..."कि तुमने आख़िर इतना बड़ा फ़ैसला क्यों किया?" फ़ैसला और उसकी वजह—दो चीज़ें, जो उसकी समझ में आज तक न आ सकी थीं।

"जी नहीं...मुझको तुम्हारे कथनानुसार बावले कुत्ते ने काटा था।" सिरिल ने इत्मीनान से जवाब दिया। "मुझ पर कभी-कभी दौरे पड़ते हैं, दिमाग़ में ख़लल आ जाता है। तभी मैं ऐसी हरकतें कर बैठता हूँ।"

चम्पा चौराहे पर आकर एकाएक अपने होस्टल की ओर मुड़ गई।

"तुम तो अपने सुनहरे मशवरों से मुझे लाभ पहुँचाने मेरे होस्टल आ रही थीं?"

"मैं तुमसे बात नहीं करना चाहती, सिरिल। मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकती।"

"यह तुम्हारा आख़िरी और क़तई जवाब है?" सिरिल ने पीले पड़ते हुए कहा।

"आख़िरी—क़तई—बिलकुल। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश हो ही नहीं सकती।"

"तुम गौतम नीलाम्बर का पीछा कहाँ तक करोगी?"

"मेरा अपमान मत करो, सिरिल।" चम्पा के तन-बदन में आग लग गई।

"अच्छा, अच्छा !" सिरिल ने साँस रोक कर कहा। "सड़क पर चिल्लाओ मत, चम्पा, मैं क्षमा चाहता हूँ। ग़लती मेरी ही थी। ख़ुदाहाफ़िज़ !" बारिश का एक ऐसा ज़ोरदार रेला आया कि मकानों के पर्दे लहरा गए। हवा में ठंडे गीले गुलाबों की महक थी।

शाम को वह कुछ काग़ज़ात लेने के लिए सिरिल के कॉलेज सिडनी ससेक्स गई। रात की ट्रेन से बहुत से साथी अपने-अपने देशों को लौट रहे थे। सैन्योर कार्लोस ब्राजील जा रहा था, उससे कितनी बहस रोमन कैथोलिक दर्शन पर होती थी। लड़कियाँ और लड़के बारिश से बचने के लिए फाटक के अन्दर खड़े थे। फाटक का भारी पन्द्रहवीं सदी का लकड़ी का

दरवाज़ा अब आख़िरी बार खुल कर बन्द होगा। इसके बाद जब कभी वे यहाँ आएँगे तो यहाँ सब कुछ बदल चुका होगा।

बारिश और ज़ोर से होने लगी। पोर्टर टैक्सियाँ लेकर आ रहे थे। लड़कों ने बरसातियों के कॉलर कान तक उठा लिए थे। लड़कियाँ छत्रियाँ खोल रही थीं। सब ख़ामोश थे। अब बात करना कितना हास्यास्पद मालूम होता था? उदाहरणतः डोरस से यह कहना कि जब मैं स्टेट्स आई तो तुमसे मिलने नार्थ डेकोटा ज़रूर आऊँगी या जैंट यह कह सकती थी कि जब न्यूज़ीलैंड आओ तो मेरे यहाँ ही आकर ठहरना। यह सब किस कदर मसख़रेपन की बात थी। अगर यह आख़िरी वक़्त 'ख़ुदाहाफ़िज़' कहने का सिलसिला न हुआ करे तो इंसान किस क़दर ज़बरदस्त कोफ़्त से बच जाए ! मगर नहीं, खड़े हैं और बेतुके, असंगत वाक्य कहे जा रहे हैं। नज़रें बचा-बचा कर आँसू पिए जा रहे हैं—लाहौल विलाक़ूवत। टैक्सियाँ आईं और सब एक-एक करके उनमें बैठ गए। फाटक बन्द हो गया। एक बार उसने घूम-फिर कर सुनसान क्वाडरेंगल का चक्कर लगाया। वह चैपल में गई। संगमरमर की तख़्तियों पर उन लड़कों के नामों को आख़िरी बार फ़िर से पढ़ डाला जो दूसरे महायुद्ध में काम आए। मालियों से बात की। एक ख़ानसामा डाइनिंग-हॉल की ओर लपका जा रहा था, उसको बड़े तपाक से ख़ुदाहाफ़िज़ कहा, मानो वह स्वयं युद्ध के मैदान में जा रही हो, और दुनिया का अन्त होने वाला है। फिर वह आँगन की दीवार के दरवाज़े की ओर जाने लगी, जो जीज़स-लेन की तरफ़ खुलता था। रास्ते में उसे केट मिल गई। "मैं तुमको ढूँढ़ ही रही थी।" उसने हाथ बढ़ाया। "मैं कल कैनेडा जा रही हूँ। अब कब मिलेंगे?"

"पता नहीं, केट।" चम्पा ने इस व्यर्थ प्रश्न से बचने का यत्न किया। "सिरिल को देखा? मैं उसको भी 'ख़ुदाहाफ़िज़' कह लूँ।" उसने बड़ी लापरवाही से केट से पूछा।

"हाँ, वह तो सीनियर कॉमन-रूम में बैठा है।" केट ने जवाब दिया, "उसके मज़े हैं। कहीं भी नहीं जा रहा। ठाठ से अपने देश में रहेगा। डॉक्टरेट करेगा, अच्छा डार्लिंग ख़ुदाहाफ़िज़।"

चम्पा कुछ दूर तक उसके साथ चली और उसको फाटक तक पहुँचा कर सीनियर कॉमन-रूम की ओर मुड़ गयी।

सारे कॉलेज पर संपूर्ण निस्तब्धता छायी हुई थी, जिसे केवल बरसती बारिश की आवाज़ तोड़ रही थी और पत्तों की सरसराहट। सिरिल ऐश्ले कॉमन-रूम में खिड़की के पास चमड़े के सोफ़े पर बैठा वह वर्ग-पहेली देख रहा था जो किंग्ज़ले-मार्टिन हर हफ़्ते अपने इंटेलैक्चुअल पाठकों से हल करवाते हैं। चम्पा कमरे में आ गई। तब भी वह पहेली हल करता रहा। फिर जब चम्पा एक कुर्सी पर बैठ गई तो उसने सिर उठा कर एक हल के बारे में उसकी राय पूछी। चम्पा ने ग़ौर करके उसका जवाब बताया।

"ठीक है, हो सकता है तुम ग़लती पर न हो।" उसने विशुद्ध ब्रिटिश अन्दाज़ से कहा।

वह चौंकी। उसने सहसा देखा कि उसके सामने सोफ़े पर सुनहरे बालों वाला एक ब्रिटिश लॉर्ड का लड़का बैठा है—रूढ़िवादी, घमंडी, चुप रहने वाला, गम्भीर। इस लड़के के साथ उसने कुछ वर्ष इस यूनिवर्सिटी में बिताए थे, और सहपाठी होने के नाते अब उसे ख़ुदाहाफ़िज़ कहने आई थी। यह लड़का वह नहीं था, जिसने उसके साथ घंटों दीवानी बहसें की थीं, केम में नौका-विहार किया था, खेतों में दौड़ते हुए गीत गाये थे; जो चम्पा के मन और आत्मा के

भँवर में निर्भय होकर कूदने के लिए तैयार हो गया था, और जिसने सुबह, बरसात के पानी में भीगते हुए पागलों की तरह उससे विवाह की प्रार्थना की थी। यह लड़का तो लॉर्ड बार्नफ़ील्ड का छोटा बेटा सिरिल डेरिक एडविन हार्वर्ड ऐश्ले था, जिसने वर्ग-पहेली हल करते हुए बड़ी आन के साथ उससे पूछा—"तुम अभी तक गई नहीं? कौन-सी ट्रेन से जा रही हो?"

"साढ़े छः की ट्रेन से।" चम्पा ने घड़ी देख कर उत्तर दिया, "तुम कब लंदन आओगे?"

"जब भी आऊँ, लेकिन जहाँ तक मेरा ख़याल है, अब तुमसे भेंट न हो सकेगी। मैं तुमसे उम्र भर नहीं मिलना चाहता।"

वह चुप रही। पानी की निर्मल फुहार खिड़की पर टकराया की। हवा का भीना-भीनापन कमरे में रच गया।

सहसा चम्पा ने बड़ी प्रफुल्लता से बातें शुरू कर दीं। यूनिवर्सिटी छोड़ने के बाद के जो प्रोग्राम ग्रुप के लोगों ने बनाए थे, उनका ज़िक्र किया। "मैं तो अभी क़ानून पढ़ूँगी।"

"बधाई हो ! उसके बाद क्या करोगी?"

"ज्योतिष-विद्या तो मुझे आती नहीं कि बता दूँ कि सन् '62 में क्या करूँगी और सन् '65 में मेरा क्या इरादा होगा।" उसने स्वर में प्रफुल्लता बनाए रखने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"यह भी ठीक है।" वह पत्रिका पर झुका रहा।

तुम अलबत्ता डॉक्टरेट लेने के बाद यहाँ के अध्यापक बन जाओगे। समालोचना पर मोटी-मोटी किताबें लिखोगे और टी. वी. के ब्रेनट्रस्ट पैनल पर बैठोगे। दुनिया वाह-वाह करेगी।"

"हो सकता है।"

"या तुम डॉक्टरेट से बोर होकर बैंक ऑफ इंग्लैंड में नौकरी कर लोगे।"

"यह भी सम्भव है।"

"अच्छा, अब चलना चाहिए।" चम्पा ने घड़ी पर दृष्टि डालते हुए कहा।

"अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो ज़्यादा देर न करता। ट्रेन का समय निकट है।" सिरिल ने कहा और खड़ा हो गया। "यानी...अब तशरीफ़ ले जाइए, बेगम साहिबा !"

चम्पा ने कुर्सी पर से उठते हुए कमरे पर आख़िरी मर्तबा नज़र डाली। ऐसी भावुक हरकतें करते हुए वह ख़ुद को पकड़ लेती तो बाद में बहुत लज्जित होती थी। दरवाज़े तक आकर उसने सिरिल की ओर हाथ बढ़ाया। दरवाज़ा बहुत नीचा था। कई सौ साल से उस पर इश्कपेचाँ की घनी बेल चढ़ी हुई थी। कई सौ साल से अनगिनत विद्यार्थी इसी तरह इस दरवाज़े से ख़ुदाहाफ़िज कह कर निकले थे और बाहर की दुनिया में ढकेल दिये गए थे।

सिरिल ने झुक कर उसको जाने का रास्ता दिया और हाथ बढ़ाए रखा। "इतने अर्से तक—" उसने एक-एक शब्द अलग-अलग स्पष्ट और गहरी आवाज़ में अदा किया—"तुमको जान कर और तुमसे वाक़फ़ियत हासिल करके मुझे बेहद ख़ुशी हुई—ख़ुदाहाफ़िज़।"

वह इश्क़पेचाँ की बेल के नीचे से झुक कर बाहर निकल आई।

"तुम मुझे फाटक तक छोड़ने नहीं आओगे?" उसने सहसा अपने अटल, अनन्त और अमर एकाकीपन को अनुभव करते हुए भयभीत होकर कहा।

"नहीं" सिरिल ने उत्तर दिया—"मुझे वर्ग-पहेली हल करना है—और ख़ुदा करे मेरी तुमसे

दुबारा भेंट कभी न हो !"

वह वापस अन्दर चला गया।

चम्पा क्वाडरेंगल के मोड़ पर पहुँच कर ठिठकी। उसने पलट कर देखा। वह खिड़की के अन्दर पत्रिका पर झुका वर्ग-पहेली में तल्लीन था। चम्पा ने फाटक खोला और सुनसान सड़क पर आ गई।

सिल ने बिलकुल सही कहा था। उस रोज़ के बाद चम्पा अहमद की सिल ऐश्ले से फिर कभी भेंट नहीं हुई।

85

बस मिड्हर्स्ट की ओर जाने वाली सड़क पर से गुज़र रही थी। हेज़ल मेयर के जंगल पर सायंकाल का अँधेरा छा गया था। सड़क के लैम्प हल्के से धुँधलके में टिमटिमा रहे थे। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पेड़ खड़े थे—इंसानों के भाग्य के रखवालों की तरह मौन और सब कुछ देखते हुए।

फिर कई घंटे की यात्रा करके बस मिड्हर्स्ट की ओर मुड़ी। चढ़ाई पर दूर से सेनीटोरियम की बत्तियाँ दिखाई दे रही थीं, जैसे अँधेरे में प्रकाश-स्तम्भ हो या किसी अनदेखे स्काउट ने किसी ख़तरनाक पहाड़ पर सिगनल के लिए अलाव जला दिया हो ! दूर से अँधेरे में बत्तियाँ इस तरह झिलमिला रही थीं जैसे जीवन आलोकमय होता है और बुझता है...आलोकमय होता है और बुझता है।

गौतम नीलाम्बर बस से उतर कर सेनीटोरियम की लम्बी सड़क पर चलने लगा। वह अँधेरे के जंगल से गुज़रता हुआ जगमगाती इमारत की सीढ़ियों पर पहुँचा। स्वच्छ गैलरियाँ पार करता निर्मला के कमरे में दाख़िल हुआ।

निर्मला उसे देख कर प्रसन्नता से खिल उठी। उसके आने से पहले वह दीवार की ओर मुँह किए लेटी थी और न जाने क्या सोच रही थी?

"बीबी !" गौतम की आवाज़ एकाएक उसके कंठ में रुँध गई। बाहर की शोर मचाती स्वार्थी दुःखी दुनिया से अलग वह शान्ति से काहे की प्रतीक्षा में लीन थी?

उसको देखते ही वह उठ बैठी। जल्दी-जल्दी उँगलियों से उसने बाल ठीक किये और दिल ही दिल में बहुत झुँझलाई कि पास ही कोई आईना नहीं है जिसमें वह जल्दी से अपना चेहरा देख ले।

"ओफ़्फ़ोह—तुम तो बेहद स्वस्थ नज़र आ रही हो ! बिलकुल सुर्ख़-सुर्ख़ फ़रुख़ाबादी !" बीमार के पास आने वालों की तरह यह उल्लासपूर्ण ढंग धारण करते हुए गौतम ने मन-ही-मन स्वयं को गालियाँ दीं।

"क्यों गप मारते हो। ज़रा मेरा टेम्प्रेचर-चार्ट देखो तो पता चलेगा बच्चा जी को। आज भी मेरा बुखार एक सौ एक था। अब तो महीनों से चला आ रहा है।" उसने मानो बड़े गर्व से कहा।

गौतम डूबते दिल से उसके निकट बैठ गया। परन्तु वह स्वयं बहुत प्रसन्न दिखाई देने

का प्रयत्न कर रही थी। अब वह उससे हमेशा की तरह लंदन के ताज़े स्कैंडल्ज़ सुनाने की माँग करेगी। दोस्तों के समूह की अलग-अलग कुशल-मंगल पूछेगी। बात-बात में बहस करेगी।

"निर्मला, तेरा मैंने कभी नोटिस नहीं लिया, मगर अब तू ही मेरी आत्मा में शामिल है !"

परन्तु वह दो लड़कियों को एक ही साथ किस तरह चाह सकता है, यह उसकी समझ में न आया। चम्पा, और यह लड़की...जिसमें चम्पा वाली कोई ख़तरनाक विशेषता मौजूद न थी। सीधी-सादी, प्रसन्नचित, सुशील, मासूम लड़की।

चम्पा अब 'वुमन ऑफ़ दि वर्ल्ड' बन चुकी थी और वह हमेशा से पुरुषों को अपने ख़तरनाक आकर्षण से रिझाती आई थी। अनुभवी थी और ज़माने की ऊँच-नीच देखे हुए, परन्तु इसके बावजूद बेबस थी, उसकी तवज्जोह की प्रतीक्षा में। निर्मला थी, जो मृत्युशय्या पर पड़ी थी—घरेलू, अनुभवहीन, उसकी आकांक्षा और प्रतीक्षा में। वह चम्पा को बिलकुल भूल जाएगा। कितनी-कितनी कोशिश के बाद पिछले पाँच बरसों में वह चम्पा को अपने ख़यालों से देशनिकाला दे सका था। एक देश और दोस्तों के एक हलक़े में रहने के बावजूद वह बड़ी सफलता से चम्पा से मिलने से बचता रहा। मगर, अब चम्पा की पुकार का सामना करना उसके बस में नहीं था। यह पुकार मैड्रिड, रोम और विआना में बजते हुए ऑर्केस्ट्राज में सुनाई देती। बारिश की फुहार में, बाज़ारों और भोजनालयों की चहल-पहल में, अटलांटिक की लहरों में, न्यूयॉर्क के कोलाहल में—हर जगह यह पुकार उसका पीछा करती आ रही थी। आवाज़ों के अत्याचार से वह तंग आ गया था। शायद सन्नाटा उसके भाग्य में न था। चम्पा आवाज़ थी; निर्मला सन्नाटा। चम्पा ने उससे तरह-तरह की बातें की थीं--लखनऊ के बादशाह बाग़ की, सड़कों पर टहलते हुए, खेतों की पगडंडियों पर से गुज़रते हुए, 'गुलफ़िशाँ' और सिंघाड़े वाली कोठी और प्रोफ़ेसर बैनर्जी के घर और कैलाश होस्टल के ड्राइंग-रूम में बैठे हुए, पिकनिकों में ऊधम मचाते हुए। उसे वे सब बातें याद थीं। वे सारी शामें, दोपहरें, क्षण, पल यह सब सुरों का एक सिलसिला था, अटल और मज़बूत, क्योंकि जब गीत समाप्त हो जाए तब भी सुर वायुमंडल में वर्तमान रहते हैं। निर्मला मौन थी। गोमती मौन थी। बरसात की दोपहर की शान्ति, जब बारिश होकर खुली हो, कुहरे से ढके सरसों के खेतों का सन्नाटा। निर्मला ने उससे कभी व्यक्तिगत बातें न की थीं। चम्पा के हर शब्द, हर ढंग के द्वारा दूसरे व्यक्ति से एक अदृश्य (Mystic) रिश्ता स्थापित हो जाता था।

उसे याद आया। मुद्दतें गुज़रीं, शायद सन् '44 में जब वह पहली बार लखनऊ गया था, उसने सिंघाड़े वाली कोठी के बरामदे में बैठ कर अपनी उस समय की प्रेमिका शान्ता लीलाम्बर को पत्र में लिखा था कि यद्यपि मुझे आफ़ीशियल रूप में वर-दिखौवे के लिए यहाँ बुलाया गया है, पर मेरी होने वाली मँगेतर निर्मल रानी को अपनी उल्टी-सीधी बहसों ही से फ़ुर्सत नहीं कि वह मेरी ओर ध्यान दें। हाँ, निर्मला में बड़ी शान और एक ओज है। उसमें आत्म-समर्पण का ढंग कभी न आया। वह अलग-अलग ही रही थी, अव्यक्तिगत और मौन। देवी की तरह ऊँची, और एक ऊँची देवी की तरह शान्तिप्रदायिनी।...अब मुझे थोड़ी-सी शान्ति प्रदान कर दे ! उसने निर्मला पर झुक कर दिल में कहा, और उसके माथे पर हाथ रखा।

"गौतम !"

"हाँ, बीबी?"

"सुरेखा का नया फ़्लैट कैसा है?"

उसने सविस्तार सुरेखा के मकान का भूगोल समझाया। "अब अच्छी हो जाओ तो जाकर ख़ुद ही देख लेना।"

"हाँ, बिलकुल।" निर्मला ने बड़े उत्साह से जवाब दिया।

"आजकल एक नये बुज़ुर्ग आए हुए हैं—'तुग़ियान भागलपुरी।"

"हाय, कितने मज़े का नाम है ! क्रैक हैं?"

"बहुत सख़्त।"

"चन्द्रा अभी है?"

"हाँ, हाँ !"

"तुम्हारे नए-नए दोस्तों का ज़िक्र सुन कर इस क़दर दिल चाहता है कि उनसे मिलूँ, ख़ास कर रमेश संघवी से।"

"हाँ रमेश संघवी बिलकुल आफ़त का परकाला है।" गौतम ने और भी निरर्थक ढंग से कहा।

"अब रात ज़्यादा हो गई है गौतम माशटर !" निर्मला ने आदत अनुसार कमाल और हरिशंकर के लहजे में कहा।

"हाँ !" वह कुर्सी पर से उठा।

"अरे-रे-रे—एक बात तो सुनो।" सहसा निर्मला ने उल्लासपूर्वक कहा—"इतनी ज़बरदस्त ख़बर तो पूछना भूल ही गई !"

"क्या?" गौतम ने आहिस्ता से पूछा।

"कल तलअत बता रही थी कि चम्पा बाजी अपनी फ़ाइनल परीक्षा देने के बाद केम्ब्रिज से लंदन आ गई हैं। तुमको मालूम है?"

"नहीं !" गौतम ने कहा, और अपने आपको दिल में फिर कई गालियाँ दीं।

"अच्छा !" निर्मला ने सादगी से जवाब दिया। "मेरा ख़याल था, शायद तलअत ने बताया हो। तुम उन बेचारी से मिल लो ज़रूर।" उसने अपना सिर तकिये पर रख दिया।

"मुझे आजकल इतनी फ़ुर्सत कहाँ है, निर्मल, कि मैं लोगों से सोशल मुलाक़ातें करता फिरूँ ! एच. सी. (हाई कमिश्नर) रात के दस-दस बजे तक काम करवाते हैं।" उसने नज़रें बचाते हुए जल्दी से कहा—"अच्छा बीबी, ख़ुदा हाफ़िज़ !" वह तेज़ी से दरवाज़े से बाहर निकल गया। गोया, निर्मला के सामने से जल्दी से जल्दी भाग जाना चाहता हो।

निर्मला—जिसकी छठी इन्द्रिय जाग्रत हो चुकी थी, समझ गई कि गौतम ने उससे झूठ बोला है। उसको चम्पा बाजी के आने की सूचना है, और उसके चेहरे की बदलती रंगत को देख कर निर्मला को यह भी विश्वास हो गया कि वह चम्पा बाजी से ज़रूर मिलेगा।

निर्मला ने आहिस्ता से बेड-स्विच दबा कर बत्ती बुझाई और फिर दीवार की तरफ़ मुँह करके लेट गई।

86

गौतम ने निर्मला से झूठ बोला था। उस दिन मिड्हर्स्ट आने से कुछ समय पूर्व उसके फ़ोन की घंटी बजी। उसे बड़ी झुँझलाहट हो रही थी। उसकी कार कोई दोस्त ले गया था और विक्टोरिया स्टेशन जाकर वहाँ से मिड्हर्स्ट के लिए ग्रीन लाइन की बस पकड़नी थी। व्यर्थ ही देर हुई जा रही थी। और, अब यह फ़ोन आ गया था।

उसने रिसीवर उठाया।

आवाज़ उसके कानों में पहुँची।

"गौतम...हैलो...अरे भई, गौतम।"

वह ख़ामोश रहा।

"गौतम नीलाम्बर !" दूसरे सिरे पर चम्पा ने ज़ोर से कहा—"क्या बात है? मेरी आवाज़ सुन रहे हो?"

"सुन रहा हूँ।"

"फ़ोन ख़राब है क्या?"

"नहीं तो...!"

"शर्म करो !" चम्पा बड़ी नॉर्मल आवाज़ में कह रही थी—"डूब मरो जी, हद है, मैं इतने वर्षों से यहाँ हूँ और तुमसे एक दिन भी यह न हो सका कि मुझसे मिल लेते। क्या मैं खा जाती तुमको?" फिर वह हँसी।

वह चुप रहा।

इतना बड़ा डिप्लोमेट और हाज़िरजवाब, हँसने-हँसाने वाला आदमी और उससे कोई उत्तर न बन पड़ा।

और चम्पा ने कहा था--"मैं केम्ब्रिज में आ गई हूँ और जोन कार्टर के यहाँ ठहरी हूँ। आओ किसी दिन मिलने शिक्षा का ज़माना आख़िर ख़त्म हो चुका। अब मुझे फ़ुर्सत ही फ़ुर्सत है।"

"हाँ चम्पा—मैं ज़रूर आऊँगा।" गौतम ने हड़बड़ाते हुए जवाब दिया था। "वास्तव में—वह तुम जानती हो, लंदन की ज़िंदगी कितनी हंगामों से भरी होती है, और फिर फ़ॉरिन सर्विस के काम की भरमार। यह कोई लखनऊ थोड़ा ही है कि घंटों बैठे गप्पें कर रहे हैं—और फिर मेरा काम भी ऐसा है कि लगातार दौरे पर रहता हूँ। आज हाई कमिश्नर के साथ यहाँ जा रहा हूँ, कल वहाँ जा रहा हूँ। जब कभी कमिश्नर का केस यू. एन. में जाता है, तो पन्द्रह चक्कर न्यूयार्क के लगाने पड़ते हैं। वैसे मैं तुम्हारा कुशल-मंगल दोस्तों से बराबर दरियाफ़्त करता रहा हूँ।" उसने सफलतापूर्वक बात समाप्त की और बेहद नर्वस होकर सिगरेट जलाई।

उसे क्या मालूम था कि चम्पा दूसरे सिरे पर उसकी आवाज़ सुन कर इतनी प्रसन्न है—जैसे उसे सारी दुनिया की दौलत मिल गई। जैसे उसे राजसिंहासन पर बिठला दिया गया हो।

मिड्हर्स्ट से वापसी में रात के बारह बज गए। अपने फ़्लैट में पहुँच कर उसने डरते-डरते फ़ोन उठाया और जोन कार्टर का नम्बर डायल किया।

"हैलो, कौन है?" उधर से नील की सोती-सोती आवाज़ आई।

"मिस अहमद हैं?"

"नहीं।"

"कहाँ चली गईं?" उसने बौखला कर पूछा।

"आप कौन साहब हैं?"

"नीलाम्बर !"

"ओहो, हैलो मिस्टर नीलाम्बर। मिस अहमद ने शाम को कई बार आपको फ़ोन किया था। मगर आप शायद बाहर चले गये थे। इस समय तो वे जोन के साथ कहीं गई हुई हैं।"

"ओह !"

"आपने 'गैंग' के दूसरे लोगों के यहाँ फ़ोन कर लिया? कोई ज़रूरी बात है?" गौतम की आवाज़ की व्यग्रता अनुभव करके नील ने कहा—"फ़िरोज़, सुरेखा, ज़रीना, कमला, तलअत इन सबके यहाँ फ़ोन कर देखिए। शायद मिल जाएँ।"

"बहुत-बहुत शुक्रिया नील। मेरे ख़याल में अब रात बहुत हो गई। कल देखा जाएगा। कोई ख़ास बात नहीं है। गुड-नाइट।" उसे अपनी मूर्खता अनुभव हुई। उसने रिसीवर रख दिया और सिगरेट जला कर खिड़की में जा खड़ा हुआ।

87

उस रात टेम्ज़ की एक लाँच पर बहुत-सी लड़कियों और लड़कों ने एक पार्टी की थी। जोन के साथ चम्पा वहाँ गई थी। नाव में उसको बहुत से अपरिचित चेहरे दिखाई दिये। काले, गोरे, अंग्रेज़, फ्रांसीसी, लंदन मजलिस के कुछ लोग भी वहाँ उपस्थित थे। रेलिंग पर झुके वे लोग बातें कर रहे थे...

"अरे, ये प्रोग्रेसिव हो गईं। जोन कार्टर के साथ घूमती हैं ! सुना है पहले तो सख़्त लीगर थीं इंडिया में !" किसी ने चुपके से अपने साथी के कान में कहा।

"संभव है पाकिस्तान की जासूसी करती हों। क्या भरोसा?"

"यह भी ठीक है और फिर हिन्दुस्तानी मुसलमान। उनसे ज़्यादा दोग़ला और ख़तरनाक कौन होगा?" एक मराठी डॉक्टर ने कहा।

"और सुना है" पहले ने कहा—"रज़ा जो कमाल और तलअत का कज़न है, से शादी करना चाहती थीं। उसने घास नहीं डाली। वह आजकल केम्ब्रिज वाली रौशन के चक्कर में है, क्योंकि रौशन का बाप किसी मिनिस्टरी का सेक्रेटरी है।"

"रौशन को भी रज़ा ने घास नहीं डाली। क्योंकि उस बेचारी के बाप की मृत्यु हो गई है।"

"बाप की मृत्यु असली वजह नहीं। असल में उसका जी भर गया। बोर हो गया, बेचारा !"

"मैं यह दृष्टिकोण खूब समझ सकता हूँ। लड़कियों के साथ यह क्या मुसीबत है कि जहाँ ज़रा-सी दिलचस्पी उनमें ली, कि वे फ़ौरन शादी के लिए तैयार। मैं रज़ा के दृष्टिकोण को खूब समझता हूँ, भाइयो ! क्योंकि कल मैं एलन से शादी करने जा रहा हूँ।"

तुरन्त हुल्लड़ शुरू हो गया। "यह आंद्रे की आज़ादी की आख़िरी रात है। इस रात को

धूमधाम से मना लो, भाइयो !" कमाल ने स्टूल पर चढ़ कर आर्द्र कंठ से कहा।

वे सब बोट से उतर कर शोर मचाते निकट के एक पब की ओर रवाना हो गए।

डेक पर केवल लड़कियाँ रह गई। और सबसे पहले बातचीत छेड़ने वाला वह नवयुवक, सीढ़ियाँ उतरते हुए कमाल से बोला—"आमिर रज़ा बड़ा समझदार आदमी है। हमको चाहिए कि हम उससे ट्रेनिंग लें। आख़िर यह लड़कियों से शादी करने से साफ़ कैसे बच जाता है।"

"मगर देख लेना आख़िर में किरकिरी खाएगा।"

"अजी बाद की बाद में देखी जाएगी अभी तो ऐश कर रहा है।"

"हाँ भाई।"

"और यार। यह कज़न शाहरुख़ सुल्ताना कौन हैं? तुम्हारी रिश्तेदार हैं?"

"आज तक तो मैंने इनका नाम नहीं सुना था। शायद पाकिस्तान में भैया साहब की कोई रिश्तेदार पैदा हो गई हैं।"

जर्मन सुनते हुए आए थे। यह पाकिस्तानी कज़न की किस्म आज ही मालूम हुई।

"असल में यह नौजवान महिला किसी वज़ीर की भतीजी है।"

"ओह, आई सी !"

आवाज़ें डूबती चली गईं। नाव आगे बढ़ गई। चम्पा उतर कर किनारे पर वापस आ गई, और क्लियोपैट्रा की सुई के नीचे आकर बैठ गई। सामने दरिया बह रहा था।

उसे मालूम नहीं था कि कुछ दिन पहले आमिर रज़ा रात भर यहीं, इसी स्थान पर बैठे रहे थे। उस रात भी पूर्णिमा का चाँद दरिया की लहरों पर बह रहा था और आमिर रज़ा को बेहद डर लगा था...अपने आप से, दुनिया के सौंदर्य से, भविष्य से। उनके सामने कोई ख़तरे नहीं थे, कोई मसले : सिर्फ़ उनकी निजी आन का मसला था। पर, उसका सम्बन्ध पैथॉलॉजी से था, अर्थशास्त्र से नहीं। क्लियोपैट्रा की सुई की छाया में बैठे-बैठे उनको उन लड़कों का ख़याल आया था, जो आजीविका की खोज में लगे थे, और उन लड़कियों का, जिनको आमिर रज़ा ने छोड़ दिया था। रुपया असल चीज़ है। रुपया और इज़्ज़त, और एक कोठी, अपनी जाती साठ हज़ार की मालियत की, हाउसिंग सोसायटी, ड्रग रोड, कराची में; एक अमेरिकन कार; फ्रिज़िडेयर; रेडियोग्राम। जीवन की वास्तविक, असल, सर्वश्रेष्ठ वास्तविकता सिर्फ़ ये चीज़ें हैं। ज़िंदगी ज़िन्दाबाद। मुझे तुझसे कोई शिकायत नहीं। सुबह होते, सीढ़ियों से उठ कर वह कार की ओर चले गये थे। दूसरे रोज़ वे छुट्टी लेकर शादी करने लखनऊ जा रहे थे।

88

"मैं एक किताब लिखने वाला हूँ जिसका नाम होगा—पोरट्रेट ऑफ़ दि आर्टिस्ट एज़ ए डान जुवान !" कमाल ने मुँह लटका कर कहा।

"क्यों, क्या हुआ?" तलअत ने सहानुभूति से पूछा।

"बस यूँ ही—अब जेम्ज़ ज्वायस और डीलिन टॉमस के बाद..."

"कल डीलिन टॉमस ने बिल के यहाँ बड़े मज़े की बातें कीं। तरंग में थे मौलाना" शंकर ने मुड़ कर कहा।

"अजी वे तो थे। आप किस तरंग में हैं आजकल?" गुलशन आहूजा ने कमाल से पूछा, "यह क्या पढ़ रहे हो ?"

"कुछ नहीं यार, ख़त आया है घर से, यानी लखनऊ से।"

"क्या ख़बरें हैं?" तलअत ने पूछा।

वे सब सुरेखा के विशाल ड्राइंग-रूम में फ़र्श पर टाँगें फैलाए बैठे थे। कमरे का बड़ा दरवाजा बाग़ में खुलता था। बसन्त की धूप का दिन था। सुरेखा दरवाज़े के पास बैठी मशीन से लहँगे पर आड़ी गोट सीं रही थी। तलअत और फ़िरोज़ बावर्चीख़ाने में खाना पकाने में व्यस्त थीं। हरिशंकर भी उन दिनों वहीं मौजूद था। वह वाशिंगटन से आया था और क़ाहिरा जा रहा था। "यह हरिशंकर और गौतम के मज़े हैं ! बिलकुल इब्ने-बतूता बने हुए हैं आजकल। सवेरे-सवेरे गौतम का फ़ोन आया था कि फिर मास्को जा रहा है।" गुलशन ने विचार प्रकट किया।

"गौतम तो ह्वेनसांग भी है" कमाल ने कहा--"अक्सर चीन से आया करता है।"

बाग़ में चन्द्रा माथुर ने एक और गीत आरम्भ कर दिया। उन सबकी पुरानी दोस्त चन्द्रा, जो न्यूयार्क से दिल्ली जाते हुए ज़रीना के यहाँ लन्दन में ठहर गई थी, बहुत अच्छा गाती थी। ड्राइंग-रूम में दूसरे सिरे पर 'तुग़ियान' साहब सुरेखा के पति गुलशन आहूजा से बातचीत में व्यस्त थे।

बड़ा सुहाना और शान्तिपूर्ण इतवार का दिन था। बागों में फूलों की बाढ़ आई हुई थी। सवेरे-सवेरे जब चम्पा जोन कार्टर के घर से सुरेखा के यहाँ जाने के लिए में बस सवार हुई थी तो बस का बूढ़ा कंडक्टर उसे देख कर प्रसन्नता से मुस्कराया था और उसने अपनी टोपी छूते हुए कहा था--"माई डियर, तुम बेहद ख़ूबसूरत लग रही हो ! तुम्हारा ब्बाय फ्रेंड तुम्हें देख कर बहुत आनंदित होगा। ख़ूब ख़ुशी से इतवार मनाओ।" दुनिया बड़ी मेहरबान थी और ख़ुशगवार। कौन कहता है कि दुनिया दुःखों का घर है और फ़लाना है और ढिमाक है। दुनिया तो बेहद आरामदेह, सुंदर जगह है।

वह बेहद ख़ुश थी। कल उसने गौतम से फ़ोन पर बातें की थीं। इतने बरसों बाद उसकी आवाज़ सुनी थी।

वह सुरेखा के यहाँ पहुँची। यहाँ महफ़िल जमी थी। वह बहुत ख़ुश-ख़ुश सबके साथ बातें करती रही। रात को पार्टी में बूट पर बड़ा चंडूख़ाना रहा। कमाल ने उससे कहा, "आप कितने बजे घर पहुँच गई थीं। हम जब पहुँचे तो ट्रेनें बन्द हो चुकी थीं। स्टैंड से घर तक पैदल आए?"

"क्या ख़बरें हैं भई, किसका ख़त है..." तलअत ने रसोईघर में से सिर निकाल कर दोबारा पूछा।

"अप्पी का !" कमाल ने जवाब दिया।

"मियाँ हरिशंकर--अरे भाई, हरिशंकर होऽ !" तलअत ने रसोईघर में से आवाज़ दी।

हरिशंकर जो बाग़ के दरवाज़े में खड़ा था, पलट कर अन्दर आया--"लो, ये गर्म-गर्म पूरियाँ, चम्पा बाजी किधर हैं? ये प्लेट उनको दे आओ।"

वही 'गुलफ़िशाँ' का घरेलू वातावरण यहाँ भी मौजूद था--घर--जो उसे कभी प्राप्त नहीं होगा ! चम्पा को एक खिड़की में बैठे-बैठे एक फुरेरी-सी आई।

हरिशंकर ने प्लेट हाथ में लेकर कमरे में चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई। चम्पा दूसरे सिरे

पर खिड़की में बैठी थी। उसे देख कर वह सब याद आता था—निगारखानों की ज़िंदगी, फ़र्न के पत्ते। खिड़की में झाँकता हुआ पेरिस का मद्धम सूरज—बोहीमिया, बरामदे में रखी हुई नये प्रकार की आरामकुर्सियाँ. धारीदार सन शेड, एक आलसी मानसिक जीवन, जिसमें फ़लसफ़े थे, और नया फ़्रांसीसी साहित्य, बड़े साइज़ के सिम्फ़ी के रिकार्ड, साल्ज़ बर्ग के संगीत त्यौहार जिनकी एक अलग दुनिया। न्यूयार्क के ग्रीनिच विलेज. पेरिस के बाएँ समुंदरी तट और यहाँ लंदन के चेपसी और सेंट जॉर्ज वुड में दुनिया आबाद थी। इस दुनिया के वासियों के यहाँ बड़े गहरे भावनात्मक अनुभव थे और बोध तथा परा प्रकार का वार्तालाप। केम्ब्रिज के क्वाडरेंगल और जाने क्या-क्या ! इसी क़िस्म की चीज़ें। चम्पा बाजी, तुम तो बहुत जल्दी एकदम दूसरे सिरे पर पहुँच गईं। पता नहीं, अब तुम खुल कर हँसती भी हो या नहीं। वह अन्दरूनी बैलेंस तुमने क़ायम रखा है या नहीं. जिसकी तुमको हमेशा बड़ी तलाश थी। अब सुरेखा, तलअत, फ़िरोज़, इन लड़कियों ही को देख लो—कैसी समझदार हैं। लड़कियों का मामला अस्ल में बड़ा बेढब होता है। एक दफ़ा में नैया पार लग गई तो लग गई, वरना पटरा हुआ। हम तो साहब यह जानते हैं !—"चम्पा बाजी, लो पूरियाँ खाओ।' उसने ऊँची आवाज़ में कहा।

चम्पा के पास जाकर वह घुटनों के बल बैठ गया; जिस तरह सिंगाड़ वाली कोठी के लॉन पर वह उसकी कुर्सी के क़रीब बैठा करता था।

"इन सबको क्या हो गया ! सब चुप हो गए, एकदम।" तुग़ियान साहब ने बातें करते-करते रुक कर गुलशन से धीरे से पूछा।

"इन सब पर भावनाएँ सवार हैं।" गुलशन ने लापरवाही से उत्तर दिया।

"बड़ा खुशी से भरा समय है !" तुग़ियान साहब ने कहा। "सुरेखा देवी कपड़े सीना भी जानती हैं, मुझे ज्ञान न था। कमाल जी पूरियाँ खा रहे हैं। चन्द्रा देवी फुलवारी में मुर्ग़ियाँ चराती हैं। तलअत जी पूरियाँ तल रही हैं। यह तो बिलकुल गुरुदेव टैगोर के उपन्यासों जैसा वातावरण है—शांत, शायराना, मधुर।"

"अजी, देखे थे टैगोर के नॉवेल—!" गुलशन ने चिढ़ कर कहा। "तलअत, तुमने सारी पूरियाँ जला दीं उठा कर। चाय भिजवाओ।"

तुग़ियान साहब फिर ध्यानस्थ हो गए।

"हैलो, हरिशंकर।" चम्पा ने अखबार पढ़ते-पढ़ते सिर उठा कर कहा—"क्या बात है?"

अब पूछती हैं, क्या बात है। क़सम खुदा की, इनकी धाँधली की हद नहीं। "कुछ भी तो नहीं, चम्पा बाजी चाय पिएँगी?"

"बना दो।"

उसने प्याली उठाई कि चमचा नीचे गिर गया।

हम एक-दूसरे की ज़िंदगियों में घुसे हुए ज़िंदा हैं और लगातार एक-दूसरे को मारते-जिलाते रहते हैं। "चम्पा बाजी", हरिशंकर ने कहा—"तुम हम सबमें ग्रेट हो। क्योंकि तुम्हारे दिल में मुहब्बत के लिए अथाह, बेपनाह जगह है।" उसने हठात् धीमे से कहा—"सुनो, यू. एन. में एक बड़ी अच्छी जगह निकली है, इंडिया के कोटे में, उसके लिए करूँ कोशिश, तुम्हारे लिए?"

"क्या मतलब है तुम्हारा? मैं उम्र भर इसी तरह मारी-मारी फिरूँगी?"

"इसके अलावा और करना भी क्या है तुम्हें?" हरिशंकर ने कहा। फिर सहसा उसे अपनी

इस स्पष्ट ग़लती का एहसास हुआ। उसने छोटी-मोटी ईंट के बजाय पूरा पहाड़ लुढ़का दिया था। मगर यह तो बड़ी बहादुर विशाल हृदय शख़्सियत है। इसका क्या बुरा मानेगी। "मेरा मतलब है" उसने हड़बड़ा कर बात बनाई—"कि तुममें इतना आत्मविश्वास है, तुम औरों की तरह थोड़े ही हो कि कहीं चूल्हा-हंडिया लेकर बैठ जाओ।" उसने रसोईघर में घुसी लड़कियों की तरफ़ देख कर कहा। "अजी मैं तो कहता हूँ कि तुम तो एवरेस्ट तक मज़े से चढ़ जाओगी, दनदनाती हुई ! तुम बड़ी ग्रेट हो, चम्पाजी।" अब उसकी आवाज़ भर आई। उसे चम्पा पर सहसा बड़ी दया आ रही थी !

वह ख़मोश बैठी बाग़ को देखती रही।

कमरे के दूसरे सिरे पर अब बातें फिर ज़ोर-शोर से शुरू हो चुकी थीं।

चम्पा को एकाएक ऐसा लगा जैसे ख़ात्मा अब आख़िरकार आ ही पहुँचा। कमरा बड़े जोर से नाचने लगा। बाग़ में घूमती चन्द्रा उसे क़ंदील की तरह चक्कर काटती नज़र आई। कमरे में बैठे लोग कठपुतलियों की तरह अजीब-अजीब आवाज़ें निकाल रहे थे। तुग़ियान साहब उसे एक बड़ी भारी बत्तख नजर आए जो नीचे सुरों में काँय-काँय कर रही थी। "मैं दीवानी हो जाऊँगी।" उसने आहिस्ता से कहा, और उसकी आँखों में आँसू आ गये।

हरिशंकर ने उसकी आँखों में आँसू पहले कभी न देखे थे।

"चम्पा बाजी।" उसने कहा। "मुहब्बत को ख़ुदा के लिए भावुकता मे न बदलो। संतुलन, ज़ब्त, अनुपात, क्लासिक ग्रीक आइडियलज़ असल चीज़ें हैं—यानी कि...।"

"क्या राजगीरों की-सी बातें करते हो?" चम्पा को बरबस हँसी आ गई। "मैं मुहब्बत कर रही हूँ या किसी इमारत का नक़्शा तैयार करने में व्यस्त हूँ?"

"चम्पा बाजी" हरिशंकर ने उसी तरह विरोध करते हुए कहा—"तुम्हारे ख़यालात गोथिक हैं। हमेशा से थे। तुम्हारी भावनाओं में वॉग्ज़ का बोझ है। पहले भी था, और अब ज़्यादा हो गया है। कहने का मतलब यह है कि तुम अपनी आत्मा की प्योरिटी को तबाह किए डाल रही हो। दस साल गुज़र गए मगर तुम बिलकुल न बदलीं !"

जोन और अजीत पार्टी का इतिहास लेकर अन्दर आए और कमाल की तरफ़ चले गए।

"हरिशंकर !" चम्पा ने झुक कर कहा—"मुझ पर तरस न खाओ। मुझे हार का एहसास आज तक नहीं हुआ। मैं तो यह जानना चाहती हूँ कि हार कैसी होती है।"

डाइनिंग-टेबल पर से तुग़ियान साहब की आवाज़ें बुलन्द हुई। "हम सब साये हैं ! साये !" वे गुलशन से कह रहे थे।

"जी हाँ, दुरुस्त है।" गुलशन ने बोर होकर सिगरेट जलाया और बेध्यानी में चम्पा की ओर देखने लगा।

"कम्युनिस्टों ने मार्क्सिज्म को तबाह कर दिया।"

तुग़ियान साहब ने जोन कार्टर पर नज़र डाल कर दूसरा विषय शुरू कर दिया।

आप बड़े ज़बरदस्त सोशलिस्ट थे। सूफ़ीइज़्म उनकी साइड-लाइन थी। उन्होंने हिन्दी में बहुत से उपन्यास लिख डाले थे। अब अंग्रेज़ी में लिखने का इरादा कर रहे थे। उनका पूरा नाम राय हरबंस राय 'तुग़ियान' भागलपुरी था। बिहार के रहने वाले थे।

"मेरे हज़रत ने मुझसे कहा..." उन्होंने कहना शुरू किया।

"इनके एक मुसलमान गुरु हैं जो श्रीनगर में रहते हैं।" हरिशंकर ने चुपके से चम्पा को बताया।

"मेरे हज़रत ने मुझसे कहा–बच्चा, तू रूस जा !"

"और इन नास्तिक को सच्चे समाजवाद की मशाल दिखा कर सीधे रास्ते पर ला !" तलअत ने रसोईघर में से वाक्य पूरा किया।

"इन्होंने तो, भई अपने हज़रत को भी अच्छा मधाया।" चन्द्रा ने बाग़ के दरवाज़े में आकर कहा।

तुग़ियान साहब ने चौंक कर उसे देखा।

"यह कौन महिला है...?" उन्होंने सुरेखा से पूछा।

"यह महिला भी बड़े प्रोग्रेसिव विचारों की मालिक हैं। लेकिन डॉलर कमाने के उद्देश्य से न्यूयार्क की आकाशवाणी से हिन्दी में समाचार सुनाया करती हैं। इनका वायुयान अभी यहाँ पहुंचा है !" कमाल ने उत्तर दिया।

"आप बिहार के रहने वाले हैं?" चन्द्रा ने मुस्करा कर पूछा।

"जी हाँ !" तुग़ियान साहब ने ख़फ़ा होकर कहा- "हूं तो सही–फिर?"

"अरे, मेरा मतलब था, तब तो आप शायद गौतम नीलाम्बर को जानते हों। उसने पटना यूनिवर्सिटी में कुछ दिन पढ़ा है।"

"जानता हूं। बेवकूफ़ छोकरा है।" तुग़ियान साहब ने संक्षेप में कहा। "हाँ तो मैं कह रहा था कि हम सब साये हैं। मैं भी, तुम भी, और तुम्हारा गौतम नीलाम्बर भी। मेरे हज़रत ने कहा था..."

"कमाल !" तलअत पतीलियाँ चूल्हे से उतार कर बाहर आई। "अप्पी ने क्या लिखा है ख़त में?"

"अरे हाँ !" कमाल ने अजीत से बातें करते हुए मुड़ कर कहा–"कुछ नहीं। भैया साहब की शादी हो गई।"

"हाय- वह कब?" कोरस हुआ। हर एक अपनी जगह से उछल पड़ा।

"इतनी बड़ी बात हो गई और तुम गुपचुप का लड्डू बने बैठे हो !" तलअत ने कमर पर हाथ रख कर कहा।

"ऐसी कौन बड़ी बात हो गई, भई ! हम सब साये हैं !" कमाल ने इत्मीनान से कहा–"अभी तुमने सुना है, तुग़ियान साहब के हज़रत क्या कहते हैं।"

"तुम बकवास मत करो।" हरिशंकर ने छलाँग लगा कर कमरे के बीचों बीच आते हुए कहा–"विस्तारपूर्वक बताओ, क्या लिखा है अप्पी ने !"

"यार–हुआ यह कि..."

"शुरू से शुरू करो !" तलअत ने आज्ञा दी।

"खूब नमक-मिर्च लगा कर सुनाओ वरना लड़कियों को चैन नहीं आएगा !" गुलशन ने अपनी आदत के अनुसार अपने सोते-सोते ढंग से कहा। सब कमाल के चारों ओर आ बैठे और कान खड़े करके सुनने लगे। कमाल ने कुशल दास्तान कहने वाले की तरह सिगरेट मुट्ठी में लेकर लम्बा कश लगाया। चम्पा खिड़की में बैठी इन सबको देखती रही।

“भाइयो और बहनो ! तुमको मालूम ही है कि भैया साहब बेचारे बड़े ज़बरदस्त सोशल क्लाइम्बर...”

“यह कैसे ? लखनऊ में तो नहीं थे।” फ़िरोज ने आपत्ति की।

“तुम अपना लखनऊ लिए फिरती हो बात-बेबात। भैया साहब और उनके वहाँ की वैल्यूज...”

“फिर राजनीति शुरू हुई” गुलशन ने कहा। “भई तुम तो अपने भैयाजी का क़िस्सा सुनाने लगे थे?”

“सुनाने लगे थे नहीं यार, सुनाने वाले थे। तुम पंजाबी अदबदाकर ग़लत उर्दू बोलते हो !” हरिशंकर ने नाक-भौं चढ़ा कर कहा।

“अरे जा; यू. पी. के बनिये !” गुलशन ने जवाब दिया।

“लाओ भई, अप्पी का ख़त दो। हम बाहर जाकर ख़ुद पढ़ लें !” फ़िरोज़ ने तंग आकर कहा, “तुम लोगों की लौंडहार पार्टी कभी गम्भीर होना जानती ही नहीं। हुँह !”

“हाँ, तो हुआ यह कि भैया साहब, एक सोशल क्लाइम्बर...। जब रौशन कराची वापस गई है, उससे बहुत पहले ही उनको मालूम हो चुका था कि बेचारी के वालिद की मृत्यु हो गई। अब शाहरुख़ सुल्ताना स्टेज पर आई। मगर कराची में सरकार बदल गई !”

“हैं !...इसका क्या मतलब? जो बात की, बेतुकी !” हरिशंकर ने कहा।

“अरे, इसका मतलब यह कि शाहरुख़ के अब्बा मिनिस्टर नहीं रहे।”

“ओह !”

“अब लखनऊ से हमारी वालिदा, यानी भैया साहब की चची के ख़त पर ख़त आने शुरू हुए कि मेरा चल-चलाव का वक़्त है; मियाँ तुम घर बसा लो। एक-एक करके ‘गुलफिशाँ’ से पंछी उड़ गए। कम से कम तुम यहाँ आकर बहू का डोला ही ले जाओ। ...तलअत ज़रा चाय बनाना !”

चाय का दौर चला। कमाल ने सांस लेकर फिर दास्तान शुरू की। “तो भाइयो, अब सिचुएशन यह है कि सारे मुसलमान बैचलज़ पाकिस्तान में हैं, और लड़कियाँ हिन्दुस्तान में। तो लड़कियाँ वहाँ से दहेज जुटा-जुटा कर पाकिस्तान लाती हैं और वहां उनकी शादियाँ होती हैं; या, बैचलर लोग छुट्टी लेकर इंडिया जाते हैं और वहाँ से दुल्हनें ब्याह लाते हैं। हिन्दुस्तान आजकल बड़ी तादाद में मुसलमान लड़कियाँ पाकिस्तान एक्सपोर्ट कर रहा है। तो भाई, हमारे भैया साहब ने भी अम्मी के उन ख़तों के असर में आकर छुट्टी ली, और ऐसा सपाटा मारा कि लंदन से पहुँचे सीधे लखनऊ। अप्पी ने लिखा है कि ‘गुलफ़िशाँ’ में बड़े गिले-शिकवे हुए। भैया साहब अम्मी के गले लगे। गंगादीन से बिछुड़ कर मिले, वग़ैरा-वग़ैरा। बड़ा ड्रामा रहा। नए सुनने वालों की ख़िदमत में अर्ज़ है”—उसने सुरेखा, चन्द्रा और नरगीश की ओर मुड़ कर कहा, “कि मेरी बड़ी बहन, जिनका यह ख़त है, भैया साहब की बचपन की मँगेतर थीं और भैया साहब ने उनसे ब्याह नहीं किया था, या उन्होंने भैया साहब से ब्याह नहीं किया था। बहरहाल, उसका भी बड़ा ज़बरदस्त ड्रामा रहा था। अब अप्पी की शादी, काफ़ी समय हुआ, एक अच्छे-ख़ासे नौजवान से हो चुकी है जो यू. पी. में एग्रीकल्चर डिपार्टमेंट में अफ़सर है—और अप्पी, बक़ौल-शख़्से, अपने घर में खुश हैं। हाँ—तो अब भैया साहब ने अल्टीमेटम दे दिया

कि वे सिर्फ़ कुछ हफ़्ते की छुट्टी पर आए हैं। इंडिया पाकिस्तान का मामला, बहुत मुश्किल से छुट्टी मंजूर होती हैं। अतः जल्दी से जल्दी उनके लिए लड़की तलाश की जाए। और ज़ाहिर है कि लड़की बड़े खानदान ही की हो। क्योंकि आप जानो, हम लोगों का ख़ानदान भी बहुत बड़े आदमियों में गिना जाता है, अल्लाह के फ़ज़ल से...!"

"आप लोग लखनऊ के नवाब हैं?" तुग़ियान साहब ने गर्दन बढ़ा कर बेहद दिलचस्पी से ऐनक के पीछे आँखें झपकाते हुए पूछा। उनको अपने नए उपन्यास का प्लॉट सुझाई दे गया था।

"जी हाँ, हैं।" कमाल ने संक्षेप में उत्तर देकर बात जारी रखी, "उनकी वह मुँहबोली बहन याद है?" उसने हरिशंकर को सम्बोधित किया--"वह पहाड़ी लड़की यूनिवर्सिटी वाली !"

"हाँ, हाँ, कहे जाओ, वही सीता डीक्षित !" हरिशंकर ने सिर हिलाया।

"हाँ, वही चपटी-सी नाक वाली, गोरी-सी, मोटी-सी लौंडिया। वही जो राखी बाँध कर उनकी बहन बनी थी। बस जनाब, वह सारे में उनके लिए रिश्ते ढूँढ़ती फिरी कि कोई मोटी आसामी हाथ आये। इस मामले में भी भैया साहब अपने हिसाब से ख़ुशक़िस्मत ही रहे—सर फलाँ को जानते हो?- नाम नहीं लूंगा।"

"वही, जिनकी एक लड़की एक मर्तबा"...हरिशंकर ने चोंच खोली ही थी कि कमाल ने जल्दी से बात काटी, "हाँ-हाँ वही।—वह आजकल हिन्दुस्तान में फ़लाँ स्टेट के हाईकोर्ट के जज हैं। बस, अब जनाब ! सीता फ़ौरन टिकट कटा कर मसूरी पहुँची, जहाँ पर सर फलाँ का ख़ानदान मौजूद था। और जब देखो तब 'सेवॉय' में मौजूद भैया साहब की तारीफ़ में ज़मीन-आसमान एक करके रख दिया उसने। मगर लौंडियों के दिमाग़ इतने छोटे होते हैं, अप्पी ने लिखा है कि जब ऐसी-ऐसी तारीफें करे सीता, तो उस दूसरी लौंडिया ने जल कर कहा कि ऐसे हैं आपके चहीते भैया साहब तो आप खुद उनसे ब्याह क्यों नहीं कर लेतीं ! इस पर सीता बहुत रोई और भैया साहब को उसने लिख दिया कि मैं इस मामले से हाथ धोती हूं। तुम ख़ुद आन कर लड़की देख जाओ। भैया साहब तुरन्त ही मसूरी पहुँचे। लौंडिया की माँ ने कहा—हमारे यहां तो पाकिस्तान से एक से एक बढ़िया पैग़ाम आए हुए हैं। ख़ैर, इस तरह के नखरे तो लड़की वाले करते ही हैं। संक्षिप्त में यह कि बात तय हो गई। सीता झटपट वरी ख़रीदने दिल्ली पहुंची। भैया साहब ने उससे कहा—"मेरी कोई सगी बहन नहीं। दो चचेरी बहनें थीं। दोनों घर पर मौजूद नहीं। तलअत विलायत में है। तहमीना अपनी ससुराल में है। अब तुम ही सारा इन्तज़ाम करो शादी का। चुनाँचे, साहब, तारीख़ मुकर्रर हो गई। मगर, यार, हरिशंकर !"

"हाँ, यार, कमाल !"

"भैया साहब का वह ज़माना याद है सन् '39 वाला? जब हम-तुम उनके स्टूज बने फिरा करते थे? जो लोग इस धूमधाम से उठते हैं, उनका अंत कितना फुसफुसा होता है !"

"पर, यह सीता का क्या क़िस्सा है, यार?"

"कुछ भी नहीं यार ! तलअत, चाय मँगाओ !"

चाय का दूसरा दौर चला। सब ताज़ादम हुए। चम्पा इस बीच उठ कर बाहर बाग़ में जा चुकी थी।

"यार इस सीता डीक्षिट पर रोशनी डालो।" हरिशंकर ने फिर माँग की। "मैं यह Interlude बिलकुल भूल चुका हूँ।"

"अरे मियाँ, वह चम्पा बाजी ही की क्लासफ़ेलो तो थी। उनके साथ बाद में चाँद बाग़ वाली उस काटेज में रहा करती थी और पढ़ाती थी आई. टी. में। चम्पा बाजी के मामले के बाद भैया साहब ने मन की शान्ति के लिए उसे बहन बनाया, राखी-वाखी बँधवा कर बाक़ायदा। और, जनाब, बात तो यह है कि वह बनी दिल से उनकी बहन। यह चीज़ मैं हिन्दू लौंडियों की मानता हूँ। बहन बनती हैं, तो सच्चे दिल से यह रिश्ता मानती हैं। लेकिन, हमारे यहाँ, ज़्यादातर मुसलमान लड़कियों की अफ़सोसनाक सायकोलॉजी यह है कि..."

"अरे छोड़ो यार, मुसलमान लड़कियों की सायकोलॉजी ! अच्छा, तो भैया साहब ने मन की शान्ति के लिए..."

"हाँ, असल में उनकी सायकोलॉजी यह थी-- "

"उससे हम सब वाक़िफ़ हैं, तुम आगे चलो।"

"बात तो पूरी करने दे, बीच-बीच में बोल जाता है, नामाक़ूल ! तो भैया साहब का यह था कि जब तक तीन-चार लौंडियाँ दूर-नज़दीक से उनकी पूजा में ज़ुटी न रहें, उनकी ज़िंदगी उनको असंभव दिखाई देती थी। असल में उनके फ्रेंच बोलने ने मारा। मैं कहे देता हूँ, न आये होते भैया साहब स्विट्ज़रलैंड से शुँ-शुँ करते, कन्धे उचकाते, और न लौंडियों का यह पटरा होता ! मगर, ख़ैर, वक़्त-वक़्त की बात होती है। अब यों समझ लो कि सीता डीक्षिट के मामले में भी बड़े गहरे सायकोलॉजिकल नुक़्ते थे।"

"यों? तुम तो कह रहे थे कि हिन्दू लौंडियाँ दिल से भाई समझती हैं !" गुलशन ने कहा।

"यही तो अचेतन मन का एक अहम नुक़्ता है। सीता के अचेतन मन में यह छिपा हुआ था कि..."

कमाल Drone करता रहा। चम्पा बाग़ में टहलती हुई कमरे के पास से गुज़री। कमाल की आवाज़ आती रही।..."यह नुक़्ता छिपा हुआ था कि सीता में अधिकार की भावना बड़ी गहरी थी। सब लौंडियों के यहाँ होती है। वैसे चाहती तो वह यह थी कि भैया साहब ब्याह कर लें, और ननद बन कर क़ायदे के माफ़िक़ उनके सिर पर दुपट्टा डाल कर बारात ले जाए, मगर अचेतन मन में यह इच्छा भी थी कि भैया साहब की शादी न हो।"

"ये सब गहरी ज्ञान की बातें भी अप्पी ने लिखी हैं?" फ़िरोज़ ने बोर होकर पूछा।

"नहीं, यह इस नियज़मंद की रीडिंग है। चुनाँचे जनाब, उसने, जो लड़की तजवीजी गई, उसी को खट्देनी से नापसन्द कर दिया ! और, भैया साहब उसके हाथ में कठपुतली बन गए। बल्कि मैं तो समझता हूँ कि चम्पा बाजी की तरफ़ से दिल उसी ने, सीता डीक्षिट ने, बुरा कराया था भैया साहब का लखनऊ में। यद्यपि चम्पा बाजी ख़ुद आख़िर में कौन-सी घास डाले दे रही थीं भैया साहब के आगे, मगर गुइयाँ की हैसियत से उसका फ़र्ज़ था कि...मगर मैंने यह स्टडी किया है, भाई गुलशन, कि लौंडियाँ जहाँ किसी लौंडे का मामला आया, सारा बहनापा भूल जाती हैं। ख़ैर साहब, तो अप्पी लिखती हैं कि पिछले इतवार को निकाह हुआ सर फ़लाँ की लड़की से। दोनों हनीमून के लिए नैनीताल गए हैं। भैया साहब अगले महीने

लंदन वापस पहुँच जाएँगे दुल्हन को लेके।"

"यार, सुना है, शान्ता और बिल में खटपट रहने लगी है।" तलअत ने चहक कर कहा, "और बिल छोड़ने वाला है उसे।"

"ज़्यादातर इंटेलैक्चुअल लोग अपनी बीवियों को छोड़ देते हैं, अगर वे ख़ुद भी इंटेलैक्चुअल होती हैं।" कमाल ने लापरवाही से कहा। तुम लोग तो यार, लंदन की एक इन्सायक्लोपीडिया स्कैण्डलिका सम्पादित कर डालो। रेफ्रेंस के लिए आसानी रहेगी।"

"रौशन की भी, सुना है, कराची में शादी हो गइ किसी बड़े अफ़सर से।" तलअत ने कहा।

"बेचारी चली गई वापस अपने ख़ोल में !" फ़िरोज़ बोली। "बेकार उसने यह सारा झंझट किया।"

"ये लड़कियाँ इश्क़ क्यों और कैसे करती हैं, आज तक मेरे पल्ले न पड़ा।" तलअत ने कहा।

"अरे यार, ख़ुदा के लिए आहिस्ता बोलो। वह टहल रही है सामने बाग़ में।" कमाल ने कहा।

"हमारी नगरिया में आय बसो बनवारी।" तलअत ने लोफ़रों की तरह गाना शुरू किया। लड़कियाँ उठ कर एक कोने में चली गईं।

"आजकल इनका क्या सिलसिला है?" सुरेखा ने चुपके से पूछा।

"म्याऊँ, म्याऊँ।" कमाल ने दूर से चिढ़ाया।

"यार, वह म्रिल ऐश्ले तो, कल मैंने देखा, शुनीला मुकर्जी के यहाँ डटा हुआ था। क्या वह भी दिल की शान्ति के लिए...?" तलअत ने पूछा।

"वाह ऐन मैन मालूम हो रहा है कि मुस्लिम स्कूल लखनऊ की सैकेंड ईयर में पढ़ने वाली लड़कियाँ वार्तालाप कर रही हैं।" कमाल ने कहा—सुरेखा और तलअत और नरगीश सुनी अनसुनी करके खुसफुस करती रहीं।

"ये लोग कितनी ही अफ़लातून क्यों न बन जाएं, रहेंगी वही कश्मीरी मुल्ला गर्ल्स स्कूल लखनऊ।" कमाल ने दोबारा कहा।

"सवाल यह है" फ़िरोज़ ने फ़र्श पर बैठते हुए कहा—"कि मिडिल क्लास लड़कियाँ इतनी रूमानपरस्त क्यों होती थीं?"

"होती थीं क्या मानी, अब भी हैं। तुम तो इस तरह कह रही हो जैसे यह पोस्टरेवेल्यूशन-पीरियड है और पिछले ज़मानों पर ख़ालिस इतिहासकार के अन्दाज़ में बहस कर रहे हैं हम !" तलअत ने कहा।

"मगर साहब, रौशन में संभावनाएँ थीं। वह बर्लिन वाला किस्सा याद है। वह तो जब हम बुखारिस्ट जा रहे थे तो पट्ठी हमारे साथ-साथ सीमा तक पहुँच गई। वह निकल चलती हमारे साथ मगर..." फ़िरोज़ बोली।

"मगर क्या, यार डरपोक थी, पचानवे फ़ीसदी बुर्जुआ लड़कियों की तरह। बस रोमांस दिमाग़ में ठुँसा था। दे रोमांस ! दे बुर्जुआ फ़लसफ़ा ! लाहौल विला !...मुझे उससे कोई हमदर्दी नहीं। यानी, इश्क़ भी किया तो किससे...भैया साहब जैसे बोगस इन्सान से !" तलअत ने कहा।

"अब वह उस 'बड़े आदमी' की बीवी बन कर जिमख़ाने की पार्टियों में ज़िंदगी गुज़ारेगी। क्या डाउनफ़ॉल हुआ है !" सुरेखा ने कहा।

"तुम्हारी कल्पना इस समय ज़ोरों पर है !" तलअत ने कहा।

"मेरी कल्पना ने हम सबको अजीब-अजीव हालतों में देखा है" सुरेखा ने उदासी से कहा। "मैंने देखा कि चम्पा बेगम एक थकी-हारी प्रोफ़ेसरनी की तरह हिन्दुस्तान के किसी कॉलेज में लड़कियों को हिस्ट्री पढ़ा रही हैं। बहुत जल्दी वह समय भी आने वाला है--जब मेरी प्रसिद्धि ख़त्म हो जाएगी। नाच पर लिखी गई किताबों में एकआध पैराग्राफ़ मेरे सारे वजूद का निचोड़ रह जाएगा--'श्रीमती सुरेखा देवी...वे दस साल पूर्व महान् नर्तकी थीं।' तलअत को लोग भूल जायेंगे। अमला गुमनाम हो जायेगी। उस वक्त हममें और रौशन में क्या फ़र्क़ रहेगा?"

"ऐसी Decadent बातें मत करो।" तलअत ने डाँटा।

"मैं तो ऐसे ही कह रही थी" सुरेखा ने ज़रा शर्मिंदा होकर कहा।

"मैं यही सोच रहा था--" कमरे के दूसरे सिरे पर हरिशंकर ने कमाल से कहा। "लड़कियों का मामला बड़ा बेढब है। ज़रा उनको देखो तो, कैसी मगन हैं इस समय ! एक ने नया ब्लाउज़ सीं लिया है, तो खुशी से फूली नहीं समाती। दूसरी इधर-उधर की गप्पें हाँक कर ही ख़ुश है। मगर, असल में इन्हें कितने भारी दुःख उठाने पड़ते हैं। यह एक बच्चे को जन्म देने के ज़रिए ही सारे संसार की ज़िम्मेदारी सँभालती हैं। बेचारियाँ, अपने आप को एक दूसरे इंसान के हवाले कर देती हैं। इनका दिल रखना कितनी आसान बात है ! कितनी छोटी-छोटी चीज़ों से ख़ुश हो जाती हैं ये लोग ! इनको तो देवी बना कर रखना चाहिए। इनका दिल दुखाना सबसे बड़ा गुनाह है।"

तलअत हरिशंकर की तरफ़ आई। हरिशंकर फिर अतिशयोक्ति से काम ले रहा था। यही अतिशयोक्ति तलअत को हर तरफ़ नज़र आती थी, गौतम नीलाम्बर के चरित्र में, चम्पा में, अप्पी में। ये लोग मानो इन्सानों की एनलार्ज्ड तसवीरें थीं। इसी मारे कभी-कभी फ़ोकस से बाहर हो जाती थीं।

"मियाँ क्या बेतुकी हाँक रहे हो !" उसने गम्भीरता से कहा--"ये भर्रे किसी और को देना ! कहाँ की देवी और कैसे देवता।--यह शायरी रखो छप्पर पर। आर्थिक आज़ादी असली चीज़ है।"

"यही बात तो तुम्हारी समझ में नहीं आती। आर्थिक आज़ादी असली चीज़ होती तो चम्पा बेगम इस समय बाग़ में चक्कर न काट रही होतीं।" शंकर ने जवाब दिया।

"ऊँह...उनका तो दिमाग़ ख़राब है।" तलअत ने कहा।

"अय लीजिये, इतनी क़ाबिल लड़की, केम्ब्रिज में सब पर धाक बिठा कर आ रही है; जिससे मिलती है, वही फ़्लोर हो जाता है। आप उनका दिमाग़ ख़राब बताये दे रही हैं।"

"क्यों भाई, कम्युनिस्ट लोग इश्क नहीं करते?" तुग़ियान साहब ने गुलशन से सवाल किया।

"लाहौल विलाकूवत !" तलअत जल कर वापस चली गई।

"बीबी !" हरिशंकर ने उससे बड़े प्यार से कहा। वह निर्मला की जगह पर थी। "अभी तुम और पढ़ो। अब तो लगे हाथों पी-एच. डी. कर ही डालो। कौन मरदूद कहता है कि आर्थिक

आज़ादी ज़रूरी नहीं। अपना दिल छोटा न करो।" वह सहसा घबरा गया कि उसने तलअत को ख़फ़ा कर दिया है।

"पी-एच. डी. करके बड़े लड्डू मिल जायेंगे। तीन सौ की नौकरी—सिर्फ़ तीन सौ की !" उसने बिलकुल हरिशंकर की नाक के आगे तीन उँगलियाँ लहरायीं। वह बिलकुल मानने के मूड में नहीं थी। असल में भैया साहब की शादी की ख़बर ने उसका मन खिन्न कर दिया था। उसे इस समय पहली बार एहसास हुआ था कि विवाह का कितना ज़बरदस्त मार्केट है, जिसमें लड़कियाँ, चाहे वे उच्च-शिक्षा प्राप्त हों चाहे जाहिल-जपाट, बिकने के लिए दुकान पर रखी जाती हैं।

"अरे, तो रुपया ही तो सब-कुछ नहीं है। नया हिन्दुस्तान है। हम सबको उसके लिए काम करना है--कमला को देखो...सौलत को। कैसी ठाठदार कैरियर वीमेन हैं।"

चम्पा ने टहलते हुए एक बार कमरे में झाँका और उन सबको बातों में व्यस्त पाकर बाग़ से गुज़रती हुई बाहर सड़क पर आ गई।

89

बर्फ़ गिरना तेज़ हो गया। शुनीला देवी ने खिड़कियाँ बन्द कर दीं।

स्वामी देविकानन्द ने गीता का पृष्ठ उलट कर जन-समूह को देखा। यह वही कमाल और हरिशंकर के अंग्रेज़ प्रोफ़ेसर थे जो तेरह-चौदह साल हुए एक दिन लामार्टिनेयर कॉलेज लखनऊ से अचानक ग़ायब हो गए थे और कमाल और हरिशंकर उनकी खोज में हरिद्वार की घाटियों में मारे-मारे फिरे थे। अब ये केसरिया कपड़े पहने, दाढ़ी बढ़ाए यूरोप और अमेरिका में भाषण देते फिरते थे। गौतम और शुनीला मुकर्जी के फ़्लैट मे पहुँच कर खिड़की में से झाँका तो उसे यह दिखाई दिया कि स्वामीजी पूर्वी देशों से प्यार करने वाली अंग्रेज़ लड़कियों में बैठे हैं। एक ओर कीर्तन हो रहा है और शुनीला मुकर्जी सबको कॉफ़ी पेश करने में व्यस्त हैं।

गौतम उसी सुबह कई महीने बाद मास्को से लौटा था। कमाल ने उसके द्वारा हिन्दुस्तान में विभिन्न जगहों के लिए जो प्रार्थना-पत्र भेज रखे थे, उनके उत्तर में इंडिया-हाउस में गौतम की मेज़ पर बहुत से लिफ़ाफ़े रखे थे। वह उनको खोले बिना ख़ुशी से हड़बड़ा कर कमाल को सारे में ढूँढ़ता फिरा। सुरेखा के यहाँ मालूम हुआ कि कमाल और हरिशंकर अपने पुराने प्रोफ़ेसर से मिलने शुनीला के यहाँ गये हुए हैं। मगर वे लोग यहाँ भी नहीं थे। गौतम अन्दर आकर कोने में माइकेल के पास बैठ गया।

"हैलो कॉमरेड, मस्कवा से कब लौटे?" माइकेल ने चुपके से पूछा।

"आज सुबह।"

"भई ये तुम्हारे स्वामीजी तो बिलकुल फ़्रॉड मालूम होते हैं।" माइकेल ने कहा।

"होंगे। मुझे इनसे कोई दिलचस्पी नहीं है। तुमने कमाल को देखा है?"

"नहीं।" माइकेल ने अपनी बात जारी रखी--"मुझे मालूम हुआ है कि अमरीका इनको रुपया दे रहा है कि धर्म का प्रचार करें; और ये कांग्रेस ऑफ़ कल्चरल फ़्रीडम की ओर से दौरे पर निकले हैं।"

"तुम अब तक इसराइल नहीं गए?" गौतम ने पूछा।

"बस अब जाने ही वाला हूँ।"

"सब जा रहे हैं।" शुनीला देवी माइकेल की बात सुन कर उनकी ओर आईं—"नोमश्कार, मिश्टर नीलाम्बर।" उन्होंने कहा।

"नमस्कार शुनीला देवी।"

बहुत से फूल उठाए नरगीश कमरे में दाख़िल हुई—"रोशनी में आकर देखा तो ये सब लाल निकले। मेरा ख़याल था, पीले होंगे।" उसने स्वामीजी के सामने फूल रख कर कहा।

"नरगीश !" गौतम ने दुःखी होकर नीचे स्वर में कहा—"यह क्या स्वाँग रचा रही हो?"

"गौतम, कल्चर की ख़ातिर, यह सब कल्चर के लिए है।" उसने एक पहुँचे हुए अन्दाज़ में जवाब दिया।

"कमाल कहाँ है?"

"सुरेखा के यहाँ देख लिया? शायद वे लोग मिड्हर्स्ट से न लौटे हों।"

"मिड्हर्स्ट...।" गौतम के मन पर एक मुगरी-सी पड़ी—"मगर आज तो इतवार नहीं है।"

"हाँ, लेकिन निर्मला के दूसरे फेफड़े का आपरेशन हुआ है। तुमको मालूम नहीं? अरे हाँ, तुम आज ही तो बाहर से लौटे हो।"

"सब जा रहे हैं--सब अपने-अपने इसराइल की ओर जा रहे हैं।" शुनीला मुकर्जी ने आँखें आधी खोल कर गौतम से कहा—"तुम लोगों की पूरी पार्टी हिन्दुस्तान वापस जाने वाली है—नरगीश ने आज बताया। माइकेल भी जा रहा है। डेनिस को नैरोबी की यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसरी मिल गई है।"

"शुनीला देवी, यह तो दुनिया का क़ायदा ही है।" गौतम ने उकता कर कहा—"लोग आते-जाते रहते हैं।"

"यह तो मुझे मालूम है कि लोग आते-जाते रहते हैं, बल्कि चले जाते हैं, आते कभी नहीं।" अब वह फिर गुरुदेव टैगोर का हवाला देने वाली थी। गौतम जल्दी से उठा। "नरगीश !" उसने मुड़ कर कहा--"मुझे कमाल की बड़ी सख़्त तलाश है। उसके नाम कुछ बहुत ज़रूरी ख़त आए हैं।"

"बी. बी. सी. कैंटीन में देख लो या शायद 'चूज़े की सराय' में हों वे सब। स्वामीजी से तो मिलते जाओ।"

"अरे हाँ।" वह आगे बढ़ कर स्वामीजी के सामने झुका। स्वामी देविकानन्दजी भूतपूर्व डॉक्टर रिचर्ड हैमिल्टन ने उसे आशीर्वाद दिया, और ऑक्सफ़ोर्ड के स्वर में उससे उसकी आत्मा की कुशलता पूछी।

"मुझे तुम्हारा ही इन्तज़ार था कि तुम आ जाओ तो एक दिन स्टीफ़ेन स्पेंडर आदि को अपने यहाँ बुलवा कर एक गोष्ठी आयोजित करें।" शुनीला देवी ने कहा—"स्वामीजी से मैंने तुम्हारा ज़िक्र कर रखा है।"

गौतम दोबारा झुका, और सबको नमस्कार करता हुआ बाहर निकल गया।

वह ओवरकोट में मुँह छुपा कर तेज़-तेज़ क़दम रखता कार की ओर चल दिया। शुनीला मुकर्जी के फ़्लैट में से कीर्तन की ऊँची आवाज़ें आती रहीं।

90

'चूज़े की सराय' इस समय असाधारण रूप से सुनसान पड़ी थी। केवल एक लड़की दरवाज़े की तरफ़ पीठ किये ऊँचे स्टूल पर बैठी कॉफ़ी पी रही थी। गौतम वेट्रेस से पूछने के लिए काउंटर की ओर बढ़ा कि बी. बी. सी. वाले तो अभी इधर नहीं आए थे। स्टूल वाली लड़की ने मुड़ कर उसे देखा। वह चम्पा अहमद थी।

"हैलो, तुम यहाँ मौजूद हो !" गौतम ने हठात् कहा।

वह अपनी जगह से उतर कर पास वाले स्टूल पर बैठ गई। "तुम्हीं ने तो कहा था कि दुनिया बहुत छोटी है। हम कहीं न कहीं ज़रूर मिलेंगे दोबारा।"

"अब ऐसी छोटी भी नहीं है।" गौतम ने ज़रा बुरा मान कर कहा–"यह ज़रूरी नहीं है कि हर बात को लिटरल समझ लिया जाए।"

"लिटरल तो तुम मानते हो बातों को–"

"वह कैसे?" गौतम ने फिर कमाल की खोज में चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर पूछा।

"मैंने तुमसे एक मर्तबे कहा था कि तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो। बड़ी परा भौतिक बात थी। तुम इसको भौतिकता की तरफ़ ले गए। यह सब तुम्हारा क़सूर है।" उसने उँगली उठा कर कहा।

"परा भौतिकता का ज़िक्र मत करो।" गौतम ने बहुत अधिक चिढ़ कर कहा–"मैं अभी शुनीला देवी के यहाँ स्वामी देविकानन्द से मिल कर आ रहा हूँ। तुमने कमाल को तो नहीं देखा?"

"नहीं !" चम्पा ने मरी हुई आवाज़ में उत्तर दिया। यह आदमी पल-पल में कैसे रंग बदलता है। अभी तक मैं मर्दों को समझ नहीं पाई, "तुमने मुझे फ़ोन किया था उस रोज़, जॉन कार्टर के यहाँ, यूरोप जाने से पहले।"

"हाँ, किया तो था।" गौतम को अपना इस तरह पकड़े जाना बिलकुल पसन्द न आया। "क्योंकि तुमने मुझे रिंग किया था, केम्ब्रिज से लौट कर।"

"गौतम ! यह तुम काटने को क्यों दौड़ रहे हो बात-बेबात। तुम पहले तो ऐसे न थे। मैं लगभग सात साल बाद तुमसे मिली हूँ। ज़रा तो तमीज़ से पेश आओ।"

"चम्पा !" गौतम ने कहा–"मैं इस वक़्त बेहद परेशान हूँ। कमाल के कई ज़रूरी ख़त हैं। मुमकिन है, उसे दो-तीन दिन के अन्दर इन्टरव्यू के लिए दिल्ली पहुँचना हो। निर्मला का दूसरा आपरेशन हुआ है। तुम चौबीस घंटे सपनों में खोई रहती हो। बाक़ी की दुनिया हर समय तुम्हारे सपनों का साथ किस तरह दे सकती है।"

"अरे !" वह तुरन्त खड़ी हो गई। "चलो, कमाल को खोजते हैं। मुझे यह सब मालूम न था।" गौतम ने उसे देखा। यह कैसी अजीब और मोहनी औरत थी।

वह 'सराय' से बाहर निकले और सुरेखा के यहाँ फ़ोन किया। गुलशन ने दूसरे सिरे से उत्तर दिया, "कमाल का पता नहीं। शायद सर रौजर के यहाँ निर्मला की रिपोर्ट लेने गया हो। सुरेखा अभी RADA (रॉयल अकादमी ऑफ़ ड्रामेटिक आर्ट) से नहीं लौटी। कमाल ने कहा था कि वह सर रौजर के यहाँ से हमारे घर ही आएगा। तुम आ जाओ। मैं कॉलेज जा

रहा हूँ। कुन्जी पड़ोसियों को दिए जाता हूँ।"

"कोई मिड्हर्स्ट गया है?" गौतम ने पूछा।

"तलअत और हरिशंकर गए हैं। अगर तुम भी जा रहे हो तो मेरे यहाँ से एक पार्सल लेते जाना। निर्मला को भिजवाने के लिए सुरेखा ने डाइनिंग-टेबल पर रख दिया था। तलअत ले जाना भूल गई।"

"अच्छा, मैं अभी आता हूँ।"

गौतम कार की तरफ़ लौटा और वे सेंट जॉज़ वुड की तरफ़ रवाना हो गए। आशा के यहाँ से कुन्जी लेकर वह सुरेखा के मकान में आये। गैलरी में दो बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ रखी थीं।

"ओहो, हमारी तलअत बड़े ज़ोरों से मूर्तिकला पर जुटी हुई है।"

"ये आशा के बनाए हुए हैं।" चम्पा ने तुरन्त कहा।

गौतम ठिठका। चम्पा तलअत और उन सबसे कितना जलती थी, उसने अनुमान लगाया। वे ड्राइंग-रूम में गए और बाग़ की ओर का बड़ा शीशों वाला दरवाज़ा खोला। अब बर्फ़ फिर मद्धम-सी धूप में चमक रही थी।

"कितना आरामदेह घर है सुरेखा और गुलशन का !" गौतम ने सोफ़े पर लेटते हुए कहा। बाग़ की दीवार के उस पार से संगीत की आवाज़ आ रही थी। वातावरण में ख़ुशगवार ठंडक थी। चम्पा ने अँगीठी जलाई। गौतम कमरे के साज़ो-सामान पर आलस्य और इत्मीनान के अंदाज़ से दृष्टि दौड़ाता रहा। अब चम्पा की उपस्थिति के कारण बरसों बाद ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह बहराइच में अपने घर पहुँच गया है। यह बड़ा तर्कहीन और विचित्र-सा एहसास था।

कमरे में एक ओर पुस्तकों की अल्मारियाँ थीं—अर्थशास्त्र, मीर, ग़ालिब, इक़बाल, फ़ैज़। फिर सुरेखा की पुस्तकें थीं—संगीत, बैले, कोरियोग्राफ़ी। सारे में नफ़ीस आर्टिस्टिक चीज़ें सजी थीं, जो सुरेखा और गुलशन ने सारे हिन्दुस्तान, चीनी गणराज्य और यूरोप में घूम कर एकत्र की थीं। रूस का बेलालिका, चीन की अद्‌भुत वस्तुएँ, हंगरी की गुड़ियाँ, इटली और फ्रांस की पेंटिंग्स। कमरा मॉडर्न इन्टीरियर डेकोरेशन का बहुत अच्छा नमूना था। स्पष्ट मालूम होता था कि यह कलाकार और नर्तकी का कमरा है। पियानो पर मारगो फौंटेन और राबर्ट हेल्पमेन की हस्ताक्षर की हुई फोटोग्राफ़ रखी थी। जगह-जगह बाली और दक्षिण भारत और स्याम की नर्तकियों की छोटी-छोटी मूर्तियाँ सजी थीं। कोने में सिलाई की मशीन रखी थी, और मृदंगम् और तरकारी की टोकरी। गौतम मुस्कराया। यह कलाकार का कमरा था, मगर इसमें आराम और बेतकल्लुफ़ी से रहा भी जाता था। ज़िंदगी की इसी सादगी और बेतकल्लुफ़ी की वह हर जगह खोज में था।

"मैंने यहाँ बहुत अच्छे क्षण बिताए हैं" उसने कहा।

"ये बड़े प्यारे लोग हैं। हैं ना?" वह कहता रहा। "कमरों से उनमें रहने वालों की परसनैलिटी कैसे झलक उठती है ! ज़रा सोचो तो !" वह उठ बैठा, "चैलसी में कमला का अल्ट्रा-मॉडर्न फ़्लैट देखा है? उसकी सजावट से मालूम होता है कि रहने वाला बड़ा इंटेलैक्चुअल, अत्यंत अच्छे शौक़ रखने वाला और बेहद ख़ुशमिज़ाज है, और डायरेक्ट। उसके विचारों में कोई

उलझन नहीं है। आस्टरली में ज़रीना का मकान भी एक कलाकार का मकान है। लेकिन सुथरा, सुंदर और घरेलू। सेंट जॉज़ वुड में तलअत और कमाल का घर ऐन-मैन 'गुलफ़िशाँ' का एक हिस्सा मालूम होता है। वही हंगामा, वही चहल-पहल, हमाहमी, मेहमानदारी। हद है, मुहर्रम में मजलिसें तक तो ये दोनों करते हैं यहाँ ! मैंने वाशिंगटन में हरिशंकर का फ्लैट देखा है, जो बिलकुल सिंघाड़े वाली कोठी का एक्स्टेंशन मालूम होता है। फिर शुनीला देवी की बैठक, जहाँ हर चीज़ शुरू से आख़िर तक पोज़ ही पोज़ है।"

"तुम पोज़ और ग़ैरपोज़ में फ़र्क़ कैसे मालूम कर लेते हो?" चम्पा ने उसकी बात काटी।

"नहीं चम्पा !" वह कहता रहा, "हम खुद को कभी अपने बैकग्राउंड से, अपने ज़ाहिर की असलियत से अलग नहीं कर सकते।" फिर वह रुका। "मगर कितनी अजीब बात है कि मैंने आज तक तुम्हारी असल पृष्ठभूमि नहीं देखी। 'चूज़े की सराय' के स्टूल पर बैठी तुम, बिलकुल मालूम नहीं होता था, कि बनारस से आई हो। अजीब बात है ना?"

"अच्छी बात है या बुरी?"

"पता नहीं, मगर हमें अपने बैकग्राउंड के प्रति वफ़ादार रहना चाहिए, जो शायद तुम नहीं रहीं।"

"यह ग़लत है !" चम्पा ने लाल होते हुए कहा। "मैं बनारस वापस जाना चाहती हूँ। मगर, मुझे कोई ले जाने वाला नहीं मिलता।"

वह चुप हो गया।

"तुम सब अलग-अलग, दूर-दूर निकल गए हो। मैं अकेली खड़ी हूँ। हमेशा की तरह, आज भी। फिर तुम शिकायत करते हो कि मैं वफ़ादार नहीं रही।"

"तुमको मालूम है" गौतम ने कहा, "पिछले साल मैंने तुमको अमेरिका से ख़त लिखा था। एक बेहद खूबसूरत इलाक़े में गया हुआ था। वहां एक देवदार के जंगल में बैठ कर मैंने तुमको ख़त लिखा। उन दिनों मैं जाने क्यों बेहद खुश था ! मुझे यह कभी-कभी अपने खुश होते रहने की वजह आज तक समझ में न आई। बहरहाल मैंने तुमको ख़त लिखा था, एक अदद। मगर शायद वह तुमको मिला ही नहीं।"

"मुझे आज तक कोई ख़त नहीं मिला।"

"अब तुम फिर रोमैंटिक हुई !"

बराबर के मकान में आशा के यहाँ किसी ने ऊँची आवाज़ में गाना शुरू कर दिया।

"गौतम, कमीनेपन पर मत उतरो !" उसकी आँखों में आँसू आ गए।

"तुम्हारे बनारस वापस जाने के रास्ते में कौन चीज़ रुकावट डाल रही है? और, तुम रोती क्यों हो भाई। ज़िंदगी में आँसुओं की कमी तो नहीं कि तुम यों ही रोना शुरू कर दो बैठे-बिठाये। हँसा करो। उदाहरण के लिए भैया साहब को लो। आज मैंने उनको सल्फ़रजेज़ से निकलते देखा। अपनी बेगम के साथ, इस क़दर खुश थे कि क्या बताऊँ ! खिले जा रहे थे। बड़े तपाक से उन्होंने मेरा परिचय अपनी पत्नी से करवाया। मैंने बड़ी खुशी महसूस की। दिमाग़ी तौर पर तन्दुरुस्त लोग ऐसे होते हैं, जैसे भैया साहब हैं।"

"बकवास मत करो !" चम्पा ने कहा और अँगीठी के कोयले ठीक करने लगी।

गाने की आवाज़ें अब और निकट हो गईं। अजीत और तरुणा की आवाज़ उन सब

में ऊँची थी। चम्पा खिड़की के निकट जाकर सुनती रही। फिर वापस आ गई।

"खिड़की बन्द कर दो।" सहसा गौतम ने कहा।

"हाँ !" चम्पा ने उत्तर दिया—"यह तो रात गए तक हुल्लड़ मचता रहेगा। लंदन मजलिस वालों को इसके अलावा और कोई काम मालूम नहीं होता।"

"अरे, रे !" गौतम ने चौंक कर कहा—"वहाँ शायद कमाल भी पहुँच गया हो ! ये लोग रतजगा क्यों करने वाले हैं?"

"सवेरे ये सब बुडापुस्ट जा रहे हैं, इसलिए।"

"बुडापुस्ट !"

"हाँ, वहीं; बिलकुल वहीं, नीली डेन्यूब के किनारे।"

गौतम ने कान लगा कर आवाज़ें पहचानने की कोशिश की।

"वही सारे पुराने कोरस हैं और इप्टा के गीत।" चम्पा ने उकताहट के साथ कहा, "अभी तुम्हारा मन इन गानों से नहीं भरा।"

"इन गानों से मेरा मन किस तरह भर सकता है, चम्पा बेगम।"

"ओह, मैं भूल गई थी, कॉमरेड गौतम ! मगर, तुम्हीं ने कहा था कि खिड़की बन्द कर दो !"

अब वे 'बोझ उठा लो, हैया ! हैया !' गा रहे थे। गौतम ने बाहर जाकर बाग़ की दीवार पर से झाँका। बहुत से लोगों को हाथ हिला कर वेव किया और वापस आ गया। "नहीं, कमाल वहाँ नहीं है।"

"गौतम माश्टर !"

"हाँ भाई !"

"क्या मैं बहुत ही बेवकूफ़ हूँ?"

"नहीं तो, लेकिन कुछ ऐसी ज़्यादा अक्लमन्द भी नहीं।"

"बस, मैं यही पूछना चाहती थी। अच्छा हुआ तुमने बतला दिया। अब मुझे इत्मीनान रहेगा।"

"गुरु गौतम को बुलाओ ! गुरु गौतम कहाँ हैं?" आशा के घर में से आवाज़ें उठीं।

"गुरु गौतम सुरेखा के यहाँ बैठा है।" किसी ने जवाब दिया।

वह बाहर जाकर दोस्तों से बातें करने में व्यस्त हो गया। "नहीं, मैं आ नहीं सकता। एक बेहद ज़रूरी फ़ोन का इन्तज़ार कर रहा हूँ।"

लेकिन, दूसरे क्षण वह दीवार कूद कर गाने वालों की मंडली में सम्मिलित हो गया। चम्पा फिर अकेली रह गयी, उसकी दुनिया का आकर्षण उसके लिए अधिक ताकतवर है—यह मुझे मालूम होना चाहिए।

बहुत देर बाद वह सुरेखा के ड्राइंग-रूम में लौटा। "कमाल का फ़ोन तो नहीं आया था?" उसने प्रश्न किया। चम्पा अँगीठी के सामने क़ालीन पर लेटी पढ़ रही थी। "नहीं।" उसने उत्तर दिया। गौतम ने इस प्रकार उसे अकेले छोड़ कर आशा के यहाँ चले जाने की क्षमा नहीं माँगी। उल्टे, वहीं बैठ कर वह भी एक किताब पढ़ने में लीन हो गया।

"यार, चाय बनाई जाए !" कुछ देर बाद उसने सुझाव दिया।

"तुम आशा के यहाँ पीकर नहीं आए।"

"हाँ, मगर तुमने जो नहीं पी होगी। आशा तुमको इतनी देर तक आवाज़ें देती रही। तुम वहाँ आईं क्यों नहीं? अब तुम बना लो चाय अपने लिए।"

"बहुत जल्दी तुमको मेरा ख़याल आया !" चम्पा ने कहना चाहा। मगर वह झगड़ना नहीं चाहती थी। यह कितना वाहियात स्त्रीपन होता। वह चुपचाप उठ कर रसोईघर में चली गई।

"आता भी है चूल्हा सुलगाना?" गौतम ने पीछे से मज़ाक के तौर पर आवाज़ लगाई।

"बनारस में मेरी अम्माँ खुद खाना बनाती हैं।" उसने संक्षेप में उत्तर दिया।

"मगर तुम तो केम्ब्रिज-पलट हो !"

उसने कोई जवाब न दिया।

"चम्पा रानी !" गौतम आकर रसोईघर के दरवाज़े में खड़ा हो गया। "आख़िर इतनी उदास-सी क्यों नज़र आ रही हो?"

"और क्या करूँ—नाचूँ?"

"यह तो कोई जवाब न हुआ। तुम तो एक ज़माने में बड़ी हाज़िर-जवाब थीं, वह देखो तोस जला दिया तुमने !"

"मुझे अफ़सोस है कि तलअत यहाँ मौजूद नहीं, जो तुमको पकवान बना कर खिलाती।"

"चम्पा, ऐसी वाहियात बातें मत करो।"

"गौतम !" चम्पा ने केतली उठाते हुए धीरे से कहा—"अगर तुम चाहते हो कि मैं यहाँ से चली जाऊँ तो अभी चली जाऊँगी और भविष्य में तुमसे कभी मिलने की कोशिश न करूँगी। ग़लती मेरी ही थी कि मैंने इतने बरसों तुमसे दोबारा मिलने की आस लगाए रखी !"

"चम्पा रानी !" गौतम रसोईघर में आकर एक स्टूल पर बैठ गया। उसने अपना सिर अपने हाथों पर टिका दिया। "चम्पा रानी !" उसने भारी आवाज़ में कहा—"असलियत जानना चाहती हो? असलियत यह है कि मैं अपने आप से डर रहा हूँ। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं तुमसे क्या बात करूँ, तुम मुझको क्या बताना चाहती हो, और तुम्हें क्या सुनाने की मेरी इच्छा है ! इतना लम्बा समय बीत चुका है और ज़ाहिरी तौर पर हमारे पास बातें करने के लिए कोई ऐसी चीज़ नहीं, जिसमें हम दोनों की ही दिलचस्पी हो, सिवाय उस बकवास के जो हम पिछले दो घंटे से दोहरा रहे हैं।" उसने सिर उठा कर चम्पा को देखा। सच तो यह था कि वह चूल्हे के पास खड़ी और अधिक सुन्दर लग रही थी। उसने चम्पा को आज तक इतने घरेलू और शान्त वातावरण में नहीं देखा था।

वह चाय बना कर ड्राइंग-रूम में ले आई।

"इधर आ जाओ !" उसने ज़रा कठोर स्वर में कहा। गौतम उसकी आवाज़ की कठोरता से डर-सा गया। वे फिर अँगीठी के सामने आ बैठे।

केवल कोई बात करने के लिए गौतम ने दार्जिलिंग के, कुर्सी पर रखे एक बैग को छुआ। "कितना ख़ूबसूरत है।" उसने कहा। "इसमें मैं अपने ये काग़ज़ रख दूँ?"

"रख दो।"

उसने बड़ी सावधानी से लिफ़ाफ़े बैग में ठूँस दिए।

अब फिर बातें ख़त्म हो गईं।

"इस बैग में" उसने गला साफ़ करके फिर कहना शुरू किया—"तुम्हारा सामान है ना? चलते समय मुझे ये काग़ज़ निकाल देना, वरना सब गड़बड़ हो जाएगा।"

"जिस बैग की बात हो रही है" चम्पा ने कटुता से कहा—"मेरा नहीं, सुरेखा का है। इसमें तुम अपना सामान रख सकते हो। इसे अपने घर ले जा सकते हो। मेरी और तुम्हारी कोई चीज़ साँझे की नहीं है—न यह बैग, न काग़ज़, न यह मकान, चीज़ें...यहाँ तक कि यादें भी—कुछ भी नहीं; जिसमें तुम्हारे साथ हिस्सा बँटा सकूँ। सिर्फ़ दुःख साँझा है। लेकिन, तुम अपने दुःख भी अपने लिए ही सुरक्षित रखना चाहते हो।"

गौतम ख़ामोश रहा।

"क्या तुमको मालूम है, गौतम नीलाम्बर, यद्यपि पिछले सात साल से मैंने तुमको नहीं देखा, मगर मुझे पता है कि तुम हर समय, सोते-जागते, उठते-बैठते अपने ख़िलाफ़ गवाही देते रहे हो?"

"ठीक है ! मैं जिससे बात करता हूँ, मुझे लगता है मेरी बात सुनने वाला मेरा कन्फ़ेसर है। मेरा सारा वजूद मेरा कन्फ़ेशन है। मैंने कितने क़त्ल किए हैं। तुमको मारा है। अपने आपको ख़त्म किया है। मेरा अपराध तुम्हारे अपराध से अलग है। तुम्हारे अन्दर मासूमियत का जुर्म छुपा हुआ है। एक बात बताओ" उसने रुक कर कहा—"तुम्हारे विचार में पाप क्या है?"

"किसी का दिल दुखाना।" चम्पा ने सोच कर उत्तर दिया।

"और?"

"पाखंड!"

"और?"

"और...और, कमीनापन।" उसने दिमाग़ पर और अधिक ज़ोर डाल कर जवाब दिया।

"संडे स्कूल के सबक़ !"

"ऐं?" चम्पा ने उसकी बात अच्छी तरह नहीं समझी।

"मैंने दिल दुखाया है। तुम्हारे नज़दीक यह बहुत बड़ा पाप है?"

"बहुत बड़ा।"

"लेकिन, तुमको जल्दी यह मालूम हो जाएगा, चम्पा रानी, कि मार्ग में कुछ ऐसे मोड़ आते हैं जब किसी दूसरे का दिल दुखाना बिलकुल ज़रूरी और अनिवार्य हो जाता है, कोई दूसरा रास्ता नहीं होता।"

"क़ातिल भी क़त्ल करते वक़्त यही सोचता है कि यह क़त्ल बिलकुल ज़रूरी और अनिवार्य है; कोई दूसरा रास्ता ही नहीं। वरना वह क़त्ल ही क्यों करे?"

गौतम फिर चुप हो गया।

"सुर ऊँचे-नीचे होते जा रहे हैं !" कुछ देर बाद उसने बाहर की आवाज़ों पर कान लगाते हुए कहा—"मगर हॉरमनी की तरफ़ बढ़ते हुए एकाएक रुक गए हैं।" उसने पियानो के नज़दीक जाकर पर्दों पर उँगलियाँ फेरीं।

"उसका एक सुर कहीं से टूट गया है।" चम्पा ने कहा।

"मुझे मालूम है। पियानो में अक्सर चूहे अपना घर बना लेते हैं। मेरे पियानो में बहराइच

में अक्सर आधी रात को एक प्यारा, मोटा-सा चूहा अन्दर तारों पर दौड़-दौड़ कर सिम्फ़नी बजाया करता था।"

"तुमने मुझसे बहराइच का ज़िक्र कभी नहीं किया।"

"बड़ी प्यारी जगह है, क्योंकि मेरा वतन है।"

"हम सब एक-दूसरे के रहम और करम पर ज़िन्दा हैं। एक-दूसरे के साथ समय के अन्दर क़ैद हैं। यह बड़ी कोफ़्त की बात है।" उसने कुछ क्षण बाद उलझ कर कहा।

हालाँकि यह समय बड़ा अवास्तविक था। इस समय कमरे की हर चीज़ बड़ी रोशन और साफ़ नज़र आ रही थी। बाग़ के फूलों पर से बर्फ़ पिघलना शुरू हो गई।

"यह जूता देखो !" यों ही एकाएक गौतम ने टाँगें आगे बढ़ा कर गम्भीर होकर कहा। "ज़िंदगी इसकी तरह फ़िट नहीं बैठती।'' फिर उसने तोस का टुकड़ा उठा कर बिल्ली को फेंका जो खिड़की में आ बैठी थी। उसने तोस सूँघ कर छोड़ दिया।

"यह भी बोहेमियन बिल्ली है। तोस नहीं खाती। इसके लिए लॉब्स्टर और शैम्पेन लाओ।" फिर उसने चम्पा से कहा—"चम्पा, तुमने इतने दिनों बेकार मेरा इन्तज़ार किया। मैं बिलकुल बोगस हूँ।" वह अँगीठी के पास बैठी उसे ख़ुद बेहद ग़ैरज़रूरी नज़र आई। ग़ैरज़रूरी और सख़्त बेवकूफ़। अब भला इसकी क्या तुक है कि इतनी गुणवान् होने के बावजूद मुझ जैसे लपाड़ी आदमी की आस लगाये बैठी है। हद है ! बेवकूफ़ लड़की है, और बेहद मासूम। बुर्जुआ फ़िलासफ़र बेचारी ! बेवकूफ़ बेचारी ! अगर इसके दिमाग़ को खुरचा जाए अन्दर से, तो उसमें से कितनी फ़ालतू मिट्टी निकलेगी। हज़ारों साल पुरानी मिट्टी—टेराकोटा। "तलअत ने इतने सारे मशहूर लोगों के सिर बनाए हैं"—उसने ऊँचे स्वर में कहा—"तुमने कभी उससे अपना सिर बनवा के न दिया ! अब भी वक़्त है, बनवा लो ! तुम कहीं जा तो नहीं रहीं?" उसने उम्मीद भरे लहज़े में पूछा।

"अभी तो नहीं। हम एक दरवाज़े से दाख़िल हुए थे, मगर बाहर जाने के सब दरवाज़े बन्द हो चुके हैं।"

"तुम्हारी इतनी मासूमियत भी ग़लत है। बेकार एकदम !" वह टहलता हुआ मूर्तियों की ओर चला गया और उनके सिर ठोक-बजा कर देखने लगा। "क्योंकि" उसने एक मूर्त्ति की नाक छूते हुए कहा—"हर दफ़ा तुम पकड़ी जाओगी। तुम्हारा ख़याल है, तुमने फ़ैसला कर लिया। इसलिए अब हर बात आसान है, हालाँकि यह इतना आसान नहीं। अभी तुम पर और मुसीबतें आएँगी।"

वह खिड़की में जाकर खड़ा हो गया। क्षण घूमता, चक्कर काटता, नाचता रहा। क्षण की भँवर दूर-दूर तक फैल गई—समाप्त हो गई—शेष रही जगमगाती हुई बर्फ़ पर से फिसलती रोशनी कमरे में दाख़िल हुई। पैटर्न सम्पूर्णतम बन गया। वह मौन निश्चल अँगीठी के पास बैठी रही। कमरे के प्रयोग में बिल्ली भी सम्मिलित थी। हवाएँ भी जानती थीं। बहुत दूर सड़क की मोटरें, राहगीर, दुकानें सबको मालूम हो चुका था।

"अब सारा अस्तित्व एक किताब है, जिसे मैं पढ़ चुकी हूँ और अन्त समय तक कई बार पढ़ूँगी"—चम्पा ने अपने आपसे कहा।

"दो दुनियाएँ हर समय मेरे साथ रहती हैं। एक दुनिया में ये सब लोग हैं।" गौतम

ने कमरे की तरफ़ इशारा किया। "दूसरी दुनिया में सिर्फ़ मैं और तुम अकेले हैं। दोनों के बीच एक पुल है। जिस रोज़ यह पुल टूट जाएगा, उस दिन क्या होगा?"

"पुल तुम ख़ुद तोड़ोगे।"

"नहीं—लोगों ने चारों तरफ़ मशीनगनें लगा रखी हैं। झाड़ियों में तोपें छिपी हैं। ऊपर बादल गरज रहे हैं। एक रोज़, मुझे लगता है, लोगों की दुनिया पाताल में गिर कर ग़ायब हो जाएगी। मैं बाहर हाथ-पाँव मारता रह जाऊँगा; यह सोच कर दिल डूब जाता है।"

"तुम अपनी स्पॉट-लाइट लिए छत की कड़ियों में छिपे बैठे हो। जो शामत का मारा स्टेज पर आता है, तुम अत्यंत कमीनेपन से अचानक लाइट का रुख़ उसकी ओर कर देते हो। वह रोशनी में प्रकट हो जाता है।"

"मैं ख़ुद भी तो बराबर इस रोशनी में हूँ।"

"नहीं, तुम पर्दों के पीछे छिपे रहते हो। अगर किसी रोज़ एक सर्च-लाइट तुम पर पड़ गई तो क्या होगा? उस दिन तुम ऊपर की मंज़िल से छलाँग लगा कर सरपट निकल भागोगे। खिड़कियों में लोग तुम्हें नज़र आएँगे। स्टोव को घेर कर बैठे बहसें करते, खाना पकाते-खाते, तुम किसी आवारागर्द बिल्ले की तरह चाँद के सामने छत की टाइलों पर दबेपाँव चलते हुए आओगे। तुम्हारा चेहरा हमें खिड़की के शीशों में से दिखाई देगा—बोगी मैन !"

"और, उस समय मैं तुम्हारे साथ वहीं मौजूद हूँगा, स्टोव के गिर्द बहसें करता, खाना बनाता-खाता, और तुम मुझे खिड़कियों में से झाँकता देखोगी—बोग वूमेन !"

वे ख़ामोश हो गए।

वह उचक-उचक कर दीवारों के चित्र देखता फिरा। फिर खिड़की की ओर चला गया।

"आज बहुत बर्फ़ पड़ी।" खिड़की में खड़े-खड़े गौतम ने एक जनरल स्टेटमेंट दिया।

"अभी इसके बाद भी बाक़ी है। इसके बाद जो मौत तक, अनन्त तक फैलता चला जाएगा, मौजूद रहेगा।" चम्पा ने अपने आपसे कहा।

"सुरेखा का बाग़ कितना ख़ूबसूरत है !" गौतम ने कमरे की ओर से पीठ किये-किये दूसरा बयान दिया।

"मेरी कोई क़िस्मत नहीं। सुना है, लोगों की क़िस्मतें होती हैं।" चम्पा ने अपने आपसे कहा।

सहसा वह चौंका और पीछे मुड़ा। उसका चेहरा धुले हुए कपड़े की तरह सफ़ेद हो रहा था। सारा दिन बीत गया, सूरज ढल चुका, शाम आ गई। मैं अभी यहीं हूँ ! "मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ? मैंने इतना वक़्त बरबाद किया। इतना अनमोल वक़्त !" वह बड़बड़ाया, और तीर की तरह गैलरी की ओर बढ़ा, डाइनिंगटेबल पर रखे हुए पार्सल पर उसकी नज़र पड़ी। उसने पीछे पलट कर चम्पा को नहीं देखा। पार्सल झपट कर वह बगूले की तरह बाहर निकला और मोटर में बैठ कर पागलों की तरह मिड्हर्स्ट की तरफ़ रवाना हो गया।

उसके जाने के बाद चम्पा ने झुक कर दार्जिलिंग के बैग में से कमाल के नाम के वे लम्बे-लम्बे सरकारी लिफ़ाफ़े निकाले, जो गौतम यहीं भूल गया था। उसने उनको खोला।

एक-एक करके हर टाइप किये हुए पत्र में कमाल के नौकरी के लिए भेजे प्रार्थना-पत्रों को अस्वीकार किया गया था।

91

"आए प्रेम पगे परवाने,
ज्वालमयी छवि के दीवाने !
जड़ चिलमन के पीछे रे बैठी
दीपशिखा लहराए रे, दीपशिखा लहराए रे !
दीपशिखा लहराए रे.....!"

चंद्रा गाती हुई बाग़ से खाने के कमरे के अन्दर आ गई।

"तलअत—चाय !" उसने मेज़ पर बैठते हुए कहा।

तलअत ने चाय उँडेली।

सुरेखा तल्लीनता से रेडियो ट्यून करती रही। ज़रीना ने बाग़ की ओर खुलने वाले दरवाज़े में फैली हुई धूप में ईज़ल रख कर एक और तस्वीर आरम्भ कर दी। पड़ोसिन ने बाड़ पर से सिर निकाल कर थोड़ी-सी शक्कर माँगी।

दुनिया का काम शान्ति के साथ चलता रहा। बल्कि, जब से निर्मला मरी थी, दुनिया का काम और अधिक शान्ति से चल रहा था। सब अपनी-अपनी व्यस्तताओं में इस तरह जुटे थे, जैसे इससे पहले उन्हें पता ही नहीं था कि उनके कर्त्तव्य क्या हैं। इसी घोर व्यस्तता के कारण वे एक-दूसरे से बात नहीं करते थे। तलअत अख़बार की रिपोर्ट लिखती, कमला मिडिल-टेम्पल में डिनर खाती। फ़िरोज़ किताबें सँभाल कर बड़ी शिष्टता से रोज़ यूनिवर्सिटी जाती। कमाल सुरेखा के ड्राइंग-रूम में अँगीठी के सामने आधा लेट कर प्रार्थना-प्रत्र लिखता। हरिशंकर ने एक नया काम शुरू कर दिया था।...वह चिड़ियों के पर जमा किया करता।

निर्मला को मरे आज दसवाँ दिन था मगर मालूम होता था जैसे उसे इन लोगों से विदा लिए कई सौ साल गुज़र चुके हैं। समय रबड़ की तरह फैलता चला जा रहा था।

जिस दिन एक झटके के साथ रबड़ का यह तनाव टूटेगा तो क्या होगा?

"अब हमें निर्मला के दसवें की चिन्ता करनी चाहिए न?" शंकर ने चिड़ियों के परों पर उँगलियाँ फेरते हुए इस प्रकार कमाल से कहा जैसे वह अक्सर उससे पूछता था—"अब हमें निर्मला के ब्याह की चिन्ता करनी चाहिए ना?"

"हाँ, शायद !" कमाल ने आहिस्ता से जवाब दिया।

"यहाँ कोई पंडितजी भी नहीं हैं जिनसे पूछ लेते कि आज के रोज़ हमें क्या करना चाहिए।" तलअत ने भी हरिशंकर ही की तरह बड़े व्यावहारिक अन्दाज़ में बात की। बुरा-भला ज़िंदगी का कारोबार निर्मला निपटा कर चली गई थी। मगर उसकी मृत्यु के बाद के काम-धाम तो अभी बाक़ी थे।

फ़ोन की घंटी बजी।

शुनीला देवी पूछ रही थीं कि अगर तुम लोगों ने दसवें का कुछ प्रबंध न किया हो तो चिन्ता न करो। स्वामी देविकानन्दजी कह रहे हैं कि उनके सेंटर में...

"जी !...जी हाँ !...जी बहुत अच्छा, शुक्रिया।" कमाल ने रिसीवर रख दिया।

मौत भी स्वामी देविकानन्द की तरह फ्रॉड है।

अब फिर वे सब अपनी-अपनी बहादुरी का सबूत देने के लिए अपने-अपने मोर्चों पर जा बैठे। तलअत ने एक लेख टाइप करना शुरू कर दिया। सुरेखा गैलरी में जाकर नृत्य के अभ्यास में लग गई। हरिशंकर ने परों का एलबम उठा लिया।

वक़्त का सन्नाटा बहुत-सी तोपों की तरह गरजने लगा। घड़ी ने तीन बजाए। कमाल ने मूक भाषा में हरिशंकर से कहा—"सर रौज़र से डेथ-सर्टीफ़िकेट लेने जाना है !" क्योंकि इस कँपकँपा देने वाले वाक्य का शब्दों में तो वर्णन नहीं किया जा सकता था।

"ले आओ !" हरिशंकर ने उसी ख़ामोशी में जवाब दिया।

"मिड्हर्स्ट से निर्मला का सामान भी आना है।" तलअत ने अपने मूक शब्द भी उसी सन्नाटे में उँडेल दिए।

"लेकिन, हम मिड्हर्स्ट किस तरह जा सकते हैं?" कमाल ने उसी तरह विरोध किया।

हरिशंकर ने इन शब्दों को डी-कोड किया—"हाँ, मगर हम बहुत बहादुर हैं। हम ज़रूर जाएँगे, हम सर्टिफ़िकेट भी लाएँगे और उसका सामान भी। चलो, उठो। अपने-अपने कवच पहनो। लेफ़्ट-राइट मार्च करो। अपने पुराने आज़माए हुए हथियार सँभालो। चलो, हम जाकर निर्मला के कवच और हथियार वापस ले आएँ, जिनकी अब उसे ज़रूरत नहीं।"

इस पैंटोमाइम के बाद जिसे किसी और ने तो क्या स्वयं उन्होंने नहीं देखा, वे सब बाहर निकले, मोटर में बैठे और एक जाने-पहचाने रास्ते पर रवाना हो गए। चार साल तक लगातार वे इस सड़क पर से गुज़र कर सेनीटोरियम जाते रहे थे।

अब वे आख़िरी बार मिड्हर्स्ट से वापस लौट रहे थे। शाम का अँधेरा छा चुका था। चुपचाप मोटर से उतर कर वे उस रोड-हाउस में गए जहाँ वे हमेशा नारंगियों के साए में बैठ कर चाय पीते थे। रोड-हाउस की मालकिन ने बाहर आकर उनके सामने चाय रखी, और वह भी इस पैंटोमाइम में शामिल हो गई।

सेंट जॉज़ वुड में अपने फ़्लैट पर वापस पहुँच कर कमाल ने सारा सामान गेस्ट-रूम में रख दिया, जिसमें हरिशंकर ठहरा हुआ था।

जब सब लोग अपने मोर्चे पर वापस लौट गए तो तलअत ने चोरी से नज़रें बचा कर अपना मोर्चा छोड़ा और अपना कवच उतार कर गेस्ट-रूम में गई।

हरिशंकर परों का एलबम मेज़ पर डाल कर कमाल के साथ बाहर चला गया था। कमरे में हर चीज़ लैम्प की रोशनी में बड़ी ही साफ़ नज़र आ रही थी—आबनूस का फ़र्नीचर, और विक्टोरियन ढंग का ऊँचा साइड-बोर्ड जिस पर अल्लम-ग़ल्लम बहुत-सी फ़ालतू चीज़ें रखी थीं। दीवार पर एक मॉडर्न पेंटिंग लगी थी, जिसे एक बार तलअत किसी कबाड़ी की दुकान से बहुत सस्ती ख़रीद लाई थी। एक ताँबे की सौ साल पुरानी मूर्त्ति; जो एक बार तलअत ने कैमडन-टाउन में एक कबाड़िये से केवल कुछ शिलिंग में ख़रीदी थी। पुराने अख़बार और पत्र-पत्रिकाएँ ! लगभग टूटा-फूटा सोफ़ा।

इन सब चीज़ों के बीच घिरे हुए जब कि निर्मला का सामान उसके क़दमों में पड़ा था, उसे लगा मानो उसकी ज़िंदगी, सारी ज़िंदगी एक बहुत शानदार कबाड़ी की दुकान है। यह सब सामान फ़ालतू है। इन सब चीज़ों को ज़रा बेच कर तो देखो। अपनी ज़िंदगी को ज़रा इस कबाड़ी मार्केट में रखो। मौत इसकी क़ीमत है।

मौत !

अचानक फिर उसके कानों में एक तोप दग़ी। मौत !

सामने साइड-बोर्ड के कोने में वह छोटा-सा मर्तबान था, जिसमें कुमारी निर्मला श्रीवास्तव की राख थी। उसकी कुंजी हरिशंकर के पास थी, जो मानो उसका क़ानूनी वारिस था। वह इस मर्तबान को गंगा में बहाने के लिए अपने साथ वापस वतन ले जाएगा। वह इस समय कमाल के साथ इसी मौत के सिलसिले में बचे हुए अन्तिम प्रबन्ध के लिए गया हुआ था। अन्तिम प्रबन्ध, डेथ-सर्टिफ़िकेट, गीता का पाठ, हवाई जहाज़ का टिकट।

हर चीज़ में बड़ा यथार्थ था। वह मर्तबान भी उतना ही ठोस और यथार्थ था, जैसे यह कुर्सी, या वह सोफ़ा, या खाने के बर्तन।

कौन उल्लू का पट्ठा कहता है कि मौत पार्थिवेतर है !

मौत से ज़्यादा फटीचर सेकंड-रेट बात और क्या होगी?

यानी, सोचिये ज़रा कि दूसरों की मौत पर चहकू-पहकू रोते हैं और फिर ख़ुद मर जाते हैं !

अरे मैं कहती हूँ, रोने की ज़रूरत ही क्या है? एक सख़्त ईडियट लड़की थी। वह यानी कि यहाँ से उठ गई। कौन-सी ऐसी तुर्रम जंग थी?

और लखनऊ में आप रदौली वाली सुरैया बाजी के मरने की ख़बर सुन कर कितना रोई थीं ! जब कमाल ने डाँटा था कि सिर्फ़ दो दफ़े तो मिली ही थीं सुरैया बाजी से, इस क़दर दहाड़ें क्यों मार रही हो? तो उसने जवाब दिया था—मैं तो नियमानुसार रो रही हूँ ! जब किसी का देहान्त हो जाए तो क्या हँसना चाहिए?

यों भी सबको सुरैया बाजी के मरने का बहुत ग़म हुआ था, क्योंकि वे बाराबंकी वाले असग़र भाई पर जान देती थीं। और असग़र भाई ने वादा तो उनसे ब्याह का किया था, मगर एक रोज़ नैनीताल जाकर किसी ईसाई लड़की से शादी रचा ली थी। और इस सदमे से सुरैया बाजी को सिल हो गई थी और कई साल तक रदौली की अँधेरी-सी कोठरी में पलंग पर पड़े रहने के बाद उन्होंने इस नाशवान दुनिया से कूच किया था।

और, क्योंकि वे न डान्सर थीं, न इंटेलैक्चुअल, न लेखिका, न चित्रकार, न ही लीडर; इसलिए न उनकी तस्वीरें छपी थीं, न उन पर लेख लिखे गए थे। उनके दहेज़ के कपड़े और उनकी हैदराबादी चूड़ियाँ, ज़नाना इस्लामिया यतीमख़ाने में भिजवा दी गई थीं, और उनके चालीसवें के बाद, जिसमें लखनऊ से रिश्तेदार आकर सम्मिलित हो गए थे, मानो स्टेज पर पर्दा गिर गया था। हाँ, उनके मरने के तीसरे दिन लखनऊ के मुस्लिम-स्कूल के असेम्बली-हॉल में उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना भी की गई थी। यहीं उन्होंने एफ़. ए. तक पढ़ा था।

यों बेचारी सुरैया बाजी की ज़िंदगी का अफ़साना ख़त्म हुआ था; जो कोई ऐसा लम्बा-चौड़ा अफ़साना भी न था। एक बड़े मामूली से क़िस्से का बेहद मामूली 'सब-प्लॉट' था।

टिपिकल मुस्लिम सोशल पिक्चर।

मगर, निर्मला तो बड़ी असाधारण लड़की थी। टिपिकल मुस्लिम सोशल पिक्चर। वह भी इस साधारण ढंग से समाप्त हो गई !

अरी निर्मला की बच्ची, ईडियट ! तू भी इतनी ही तुच्छ निकली? कहाँ गया वह तेरा सारा फ़लसफ़ा और आइडियालॉजी? मगर, वाक़या सिर्फ़ यह है कि सचमुच सब ठाठ पड़ा

रह जाएगा, जब लाद चलेगा बंजारा, वग़ैरह। सच्चाई सिर्फ़ यह है कि आपकी ज़िंदगी ही क्या थी लम्बी-चौड़ी ! उम्र तो मेहनत करते, प्रोग्राम बनाते बीती—रात-रात भर पढ़ा जा रहा है कि फ़र्स्ट डिवीज़न मिल जाए। अच्छा सेकेंड डिवीज़न ही मिल जाए ! हाय भगवान, कम से कम पास ही हो जायें ! सच्ची ! फिर देश और राष्ट्र की चिन्ता में जान दे-दे रही हैं ! लड़ती-भिड़ती फिर रही हैं ! जहाँ किसी ने कोई ग़लत बात कही, और ये काट खाने को दौड़ीं। हर बहस में ये कूदने को तैयार। फिर जब फ़र्स्ट क्लास मिल गया तो केम्ब्रिज जाने के लिए उन्होंने महनामथ मचा दी। उनके बाबा ने बड़ी मुश्किल से रुपया जोड़ कर उनको विलायत भेजा। वहाँ यह ख़ुशी से फूली न समाई। कई दिन तक तो उनको यक़ीन न आया कि वाक़ई केम्ब्रिज में मौजूद हैं। सहमी-सहमी फिरीं, कि यह सपना है, जल्दी टूट जाएगा। फिर प्रोग्राम बने कि जब यहाँ से पढ़ कर निकलेंगी, अच्छी से अच्छी नौकरी मिलेगी। बाबा पर जो क़र्ज़ चढ़ा है, वह उतारेंगी। भैयन के लिए बहू ढूँढेंगी, अप्सरा-जैसी बिलकुल। फिर ज़रा पैसे जमा हो गए तो मैक्सिको की सैर करेंगी जाकर। (यह जाने मैक्सिको जाने का इतना शौक़ क्यों था?) यह कल्पित उम्मीद भी थी कि एक रोज़ एक अपना मकान भी बनेगा। उसमें एक छोटा-मोटा-सा बाग़ होगा राक गार्डन। मकान का नाम रखेंगी...किसी क़िस्म का 'कुंज', या कुछ और ख़ैर—कोकुल जी से पूछ लेंगी वे कवयित्री हैं। इतनी तो थी भविष्य की चिन्ता। फिर यह कि बिल्लियाँ पल रही हैं, कुत्ते, कबूतर, गायें, भैंसें पालने का भी शौक़ है। और, साड़ियों पर तो ख़ैर दम निकलता है। नया ओवरकोट बनाने के लिए महाभारत मचाये हुए हैं। ज़िद है कि जैसे ज़मुर्रद के गहने लाज के बने हैं ऐसे ही मेरे भी बनें। अपनी सहेलियों के लिए जान हाज़िर है। चन्द लोगों से सख़्त जलन भी है। मुहब्बत की भावना भी है; जो हर इंसान, हर जानदार प्राणी में होती है।

फिर हुआ यह कि केम्ब्रिज में उनको बुख़ार रहने लगा। उनको अस्पताल पहुँचाया गया; जहाँ कई साल तक पलंग पर लेटे रहने के बाद एक रोज़ आपने आत्मा परमात्मा के हवाले कर दी।

तो, क्या इस मौत पर सैद्धांतिक रूप से रोना चाहिए? बिलकुल नहीं। यह तो बड़ी सख़्त हँसी की बात है ! असल में इससे बढ़ कर लतीफ़े की बात तो तलअत ने बहुत दिनों से नहीं सुनी थी।

उसने कमरे का चक्कर लगाया। सारे फ़्लैट में घूमी। बाग़ के सिरे पर रसोईघर में रोशनी हो रही थी। चन्द्रा और सुरेखा की परछाइयाँ खिड़की में से दिखाई दे रही थीं। घूम-फिर कर वह फिर हरिशंकर के कमरे में वापस आ गई। फ़र्श पर बैठ कर उसने निर्मला के सामान को इकट्ठा करके सँगवाना चाहा। बेदिली से उसने चीज़ें उलटी-पलटीं। किताबों के बक्स में गीता पर उसकी नज़र पड़ी। उसे निकाल कर वह ड्राइंग-रूम में ले आई।

लैम्प जला कर उसके सिद्धान्त-पालन के लिए गीता का पृष्ठ पलटा, ऐसे, जैसे कि वह शान्ति-प्राप्ति के लिए इस पवित्र ग्रन्थ का अध्ययन कर रही है। उसने बेहद ध्यान से पढ़ना शुरू किया :

'...उनको साहस से झेल !'

'शरीर नश्वर है, किन्तु इस शरीर के अन्दर रहने वाली आत्मा अमर है। अतः युद्ध

कर ! और भारत के सपूत, आत्मा न वध करती है, न स्वयं वध की जाती है। शस्त्र उसे घायल नहीं कर सकने, आग उसे जला नहीं सकती, पानी उसे भिगो नहीं सकता, हवा उसे सुखाने में असमर्थ है। जो पैदा हुआ है उसकी मौत निश्चित है; जो मरा उसका जन्म अटल है। इसमें दुःख की क्या बात है ?''

'दुःख और सुख, लाभ-हानि, हार-जीत सबको एक समझ कर तू युद्ध कर !'

तब अर्जुन ने कहा–'हे केशव, यदि ज्ञान का मार्ग कर्म के मार्ग से श्रेष्ठ है, तो तुम मुझसे युद्ध करने के लिए क्यों कहते हो? युद्ध की प्रक्रिया भयानक है।'

भगवान ने उत्तर दिया–'मनुष्यों को कार्य न करके कर्म से मुक्ति नहीं मिल सकती। न कर्म से निस्पृह होकर ही वह सिद्धि या पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि प्रकृति से उत्पन्न गुणों के प्रभावाधीन मनुष्य लगातार कर्म में लीन रहता है।'

'हे अर्जुन, तुम और मैं कई बार जन्मे हैं। यद्यपि मैं विश्व का स्रष्टा हूँ, परन्तु अपनी प्रकृति पर शासन रखते हुए अपनी माया के द्वारा स्वयं अस्तित्व में आता हूँ ! ओ भरत, जब-जब संसार में धर्म का ह्रास होता है, तब-तब मैं स्वयं शरीर धारण कर लेता हूँ और जो मेरे दिव्य जन्म और मेरे कर्म-रूप को पहचान लेता है, हे अर्जुन ! वह अपना शरीर त्यागने के बाद दोबारा जन्म लेने के बजाय मुझसे आ मिलता है। बड़े-बड़े ज्ञानी घबरा जाते हैं कि कर्म क्या है और निष्कर्म क्या? वह जो निष्कर्म में कर्म और कर्म में निष्कर्म देखता है, वही सच्चा ज्ञानी है। ओ अर्जुन ! ज्ञान की अग्नि कर्मों को जला कर राख कर देती है।'

'ओ जनार्दन ! मेरी प्रकृति मिट्टी, पानी, हवा, आकाश, बुद्धि, मन और अहं में बँटी हुई है। यह निकृष्ट स्तर की प्रकृति है। किन्तु ओ दृढ़ बाहुओं वाले राजकुमार, मेरी श्रेष्ठ प्रकृति अस्तित्व और जीवन के अनुभव और चेतना में वर्तमान है, जिसके आधार पर यह ब्रह्माण्ड स्थित है। मैं ही सृष्टि का आदि हूँ और मैं ही इसका अंत। ओ कुन्ती पुत्र ! मैं जल का स्वाद हूँ, सूर्य और चन्द्र का प्रकाश हूँ मैं सारे वेदों में एक अक्षर ॐ हूँ। मैं आकाश की ध्वनि हूँ। मैं मानव मात्र का सामूहिक आत्म-बोध हूँ। मैं धरती की पवित्र गन्ध हूँ। मैं सारे प्राणियों का प्राण हूँ। संन्यासियों का संयम हूँ। जो जिस विश्वास से मेरी आराधना करता है मैं उसे उसी क्रम से भक्ति में परिवर्तित कर देता हूँ। मैं अन्तरयामी हूँ, किन्तु मुझे कोई नहीं जानता।'

'मैं आराधना का विभिन्न रूप हूँ। मैं ही जड़ी-बूटी हूँ और यज्ञ की अग्नि। मैं स्वयं ही यज्ञ की क्रिया भी हूँ। मैं सृष्टि का पिता हूँ और मैं ही माँ। मैं मार्ग हूँ, और साक्षी, और अन्तिम शरण। आरंभ, अन्त, विश्राम-स्थल, अशेष कोष, और आदि बीज। ओ अर्जुन ! मैं गर्मी पैदा करता हूँ, मेंह बरसाता हूँ, मैं अ-क्षयता हूँ, मैं मृत्यु हूँ, मैं अस्तित्व और अनस्तित्व हूँ। मैं विष्णु हूँ।'

'वेदों में मैं सामवेद हूँ, देवताओं में इन्द्र। इन्द्रियों में मन हूँ और परम आत्मबोध। रुद्रों में शंकर हूँ, पर्वतों में मेरु पर्वत। मैं पुरोहितों में बृहस्पति हूँ। सेनापतियों में स्कन्द हूँ। जलों में महासागर। शब्दों में ओउम्, तपस्या में जप-यज्ञ। निश्चल वस्तुओं में हिमालय हूँ, ऋषियों में नारद। मैं तत्त्वदर्शी सिद्धों में कपिल हूँ। घोड़ों, शानदार हाथियों और इन्सानों में अलग-अलग मेरा सम्राट् स्थान है। नागों में मैं अनन्त नाग हूँ, पानी के वासियों में वरुण; शासकों में यम।

गिनती और माप में समय हूँ, वन-पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, योद्धाओं में राम, और नदियों में गंगा हूँ।'

'मैं अनन्त समय हूँ, मैं नाशकर्त्ता मृत्यु हूँ, मैं नारी की वाक्शक्ति, प्रतिभा, वफ़ादारी, क्षमा और करुणा हूँ। मैं गायत्री मन्त्र हूँ। मैं विजय हूँ। मुनियों में मैं व्यास हूँ, ऋतुओं में बसन्त हूँ, अनाजों में जौ हूँ। मैं संसार का आदि, मध्य और अन्त हूँ। मैं रहस्यों की निस्तब्धता हूँ। ओ अर्जुन ! मेरे दिव्य रूप असीम हैं।'

'ओ अर्जुन !'...

—ओ अर्जुन के बच्चे...ईडियट !

वह पुस्तक ज़ोर से बन्द करके फिर उठी। उसने घड़ी पर दृष्टि डाली। नौ बजने वाले थे। अभी हरिशंकर और कमाल लौटते होंगे। उसने अभी हरिशंकर का कमरा भी ठीक नहीं किया था। वह दोबारा गेस्ट-रूम में आई। फ़र्श पर बैठ कर उसने एक बार फिर निर्मला की चीज़ों को ठीक से रखने का प्रयत्न किया—साड़ियाँ, जूते, चूड़ियाँ, मेकअप के पिटारे, हैंडबैग, जिसमें दुनिया भर की अलाबला थी, जो लड़कियों ही के हैंडबैग में से उपलब्ध हो सकती है। बस के टिकट, लॉण्ड्री के बिल, पुराने ख़ाली लिपस्टिक, कानों के बुन्दे, पिनें, पैसे, ख़रीदारी की लिस्टें और जाने क्या-क्या। इन सब चीज़ों पर चार साल पहले की तारीख़ें पड़ी थीं। चार साल से निर्मला दुनिया से अलग-थलग सेनीटोरियम में क़ैद थी। फिर उसने निर्मला की किताबों का बक्स पैक करना चाहा। एक किताब में से एक चित्र पट् से नीचे गिरा। तलअत ने झुक कर उसे उठाया।

यह गौतम नीलाम्बर का चित्र था, जो आज से दस साल पहले वर-दिखौवे के लिए बहराइच से सिंघाड़े वाली कोठी भेजा गया था। तलअत ने ख़ाली-ख़ाली आँखों से इस चित्र को देखा, और उसे किताब में वापस रख दिया।

हॉल में क़दमों की चाप सुनाई दीं। लड़के वापस आ चुके थे।

सुरेखा ने खाने की मेज़ पर से आवाज़ लगाई। तलअत हरिशंकर का कमरा ढंग से ठीक करके मोर्चे पर वापस चली गई।

बर्फ़ का गिरना तीव्र हो चुका था।

उस रात जब हरिशंकर सो चुका था, तलअत ने उसके कमरे में दबेपाँव जाकर किताब में से गौतम का चित्र निकाला, और अपने कमरे में आकर उस चित्र पर जूतों पर जूते जमाए। अब जाकर उसे कुछ शान्ति का अनुभव हुआ। और फ़र्श पर बैठ कर फूट-फूटकर रोने लगी।

चूँकि वह पिछले दस रोज़ से नहीं रोई थी।

रोते-रोते वह बेहोश हो गई और घर में डॉक्टर को बुलाने के लिए एक और हंगामा शुरू हो गया।

92

सारी दुनिया ने सफ़ेद बर्फ़ का कफ़न पहन लिया। सड़कों के किनारे खड़े हुए पेड़ ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे किसी चित्रकार ने कैनवास पर फैले हुए चाइना-ह्वाइट पर काले रंग

से इधर-उधर आड़ी-तिरछी लकीरें खींच दी हों, जिनके पीछे मकानों में से छनते हुए उदास पीली रोशनी के धब्बे-से चारों तरफ़ फैले थे। बड़े ज़ोर का जाड़ा पड़ रहा था। उस विशाल कैनवास के एक कोने में एक ख़ूबसूरत दोमंज़िला कॉटेज थी; जैसी कॉटेज आम तौर पर ओस्टरली में जगह-जगह पर हैं। एवेन्यू में दाख़िल हो तो कॉटेज बाएँ हाथ पर पड़ती थी। सामने छोटा-सा एक गार्डन था जो बसन्त के दिनों में फूलों से लद जाता। सामने मुन्ना-सा बरामदा था, जिसकी लाल ईंटों की दीवार पर ताँबे की लालटेन जड़ी थी। अन्दर गैलरी थी, जिसमें से ज़ीना ऊपर बेड-रूम्ज़ को जाता था। नीचे बैठक का कमरा था, और खाने का कमरा, और गैलरी के सिरे पर पार्लर था। उसके अन्दर जाकर रसोईघर। पीछे लॉन था, जिसके सिरे पर शाहबलूत का पेड़ खड़ा था। घरवालों का अधिक समय पार्लर में बीतता था, जहाँ वायरलेस सेट और टेलिविज़न रखा था। वहीं खाना बनता, बर्तन धोए जाते, स्टोव के पास बैठ कर गप्पें होतीं। जाड़ों के ज़मानों में ज़रीना सिर पर स्कार्फ़ लपेटे, पतलून पहने बाहर कोलरी में से लकड़ियाँ निकाल कर सूँ-सूँ करती अन्दर लाती और ड्राइंग-रूम की अँगीठी दहक उठती। तब दुनिया एकदम बड़ी सुरक्षित मालूम होने लगती। दीवार की अँगठी की कार्नेस पर एक मॉडर्न मूर्त्ति रखी थी। दीवार पर आशा का बड़ा-सा पोरट्रेट था जो ज़रीना ने मातीस की शैली में बनाया था। बड़ा-सा ईरानी क़ालीन था। बड़े-बड़े स्टैण्डर्ड लैम्प। खिड़की में से बाहर जहाँ तक नज़र जाती, बर्फ़ दिखाई देती। रेडियो पर अपनी पसन्द के गीत बजते। दोस्तों के फ़ोन आते। अब तक बड़ी शान्तिपूर्ण सीधी-सादी शान्तिमय अनुभूतियों से घिरी हुई जिन्दगी व्यतीत हो रही थी।

ज़रीना यहाँ अपनी माँ और छोटे भाइयों के साथ रहती थी। और विश्वविद्यालय में रूसी साहित्य और फारसी में बी. ए. आनर्ज़ कर रही थी। वह स्लैड्ज़ से आर्ट का डिप्लोमा ले चुकी थी। उसकी तरुण सुर्ख़ बालों वाली माँ नस्ल से अंग्रेज़ थीं, मगर ख़ालिस लखनौवा ज़बान में बातचीत करती थीं और टकसाली मुहावरे बोलने में बड़ी निपुण थीं; बड़ी मुहब्बत वाली महिला थीं, और बेहद प्रसन्नचित्त और सुथरी रुचि रखने वाली। उनका घर ज़रीना की दोस्तों के लिए हमेशा शरण स्थान का काम देता, और वे उनके साथ बड़ी बहनों का-सा व्यवहार करतीं।

इस समय ज़रीना पार्लर में मेज़ पर बैठी एक रूसी पत्रिका पढ़ रही थी।

इतने में गैलरी की घण्टी बजी। ज़रीना ने उठ कर खिड़की में से झांका। बर्फ़ में जूते लथपथ किए, ओवरकोट के कॉलर से मुँह ढँके सामने गौतम खड़ा था। ज़रीना उसे देखती की देखती रह गई।

वह हाथ में अटैचीकेस लिए सीढ़ियाँ चढ़ कर बरामदे में आ गया।

"यह पाँचवाँ शहर है। यहाँ भी बत्तियाँ जल रही हैं। मेरा ख़याल था यह जगह औरों की तरह न होगी।"

"मगर अफ़सोस कि तुम्हारा ख़याल ग़लत साबित हुआ। अन्दर आ जाओ !" ज़रीना ने जवाब दिया।

"मेरे साथ बाहर बहुत से लोग खड़े हैं।"

"उनको भी बुला लो अन्दर।"

"कैसे बुला लूँ ? इस रोशनी में तुम उनके चेहरे नहीं देख सकोगी।"

"वे कौन हैं ?"

"बहुत से भूत, लाशें, धूर्त रूहें। वे सब मेरी दोस्त हैं, और बाहर अँधेरे में दाँत निकोसे खड़ी हैं। उनका जुलूस मेरे साथ-साथ चलता है।"

"मुझे उनसे डर नहीं लगेगा ?"

"तुम्हें उनसे डर नहीं लगना चाहिए। क्योंकि हम सब बराबर खुद उन लाशों का रूप लेते रहते हैं। मगर—" उसने हाथ हिला कर कहा—"मेरा ख़याल था, यह जगह औरों जैसी न होगी, यहाँ अँधेरा होगा; लेकिन तुमने यहाँ भी दीवाली मना रखी है। रोशनी में तुम क्या देखने की कोशिश करती हो, भाई ?"

वह उकता कर अपने अटैचीकेस पर बैठ गया। ज़रीना ने गैलरी का दरवाज़ा खोला।

"वैलकम गौतम ! मेरा मतलब है कि तुम वापस आ गए हो। जहाँ भी गए थे—यानी कि असल में हम सब बेहद परेशान थे तुम्हारी वजह से।"

"मैं तुम सबका आभारी हूँ !"

"मेरा मतलब है कि—वैलकम होम !—'होम' जहाँ कहीं भी हो; यानी—हर सफ़र के बाद का एक अस्थाई पड़ाव !"

"ठीक है।" उसने निस्पृहता से हाथ हिलाया, "मैंने तुम्हारा स्वागत स्वीकार किया।" फिर उसने चारों ओर देखा—"यह मकान तो वह वाला नहीं है, जिसमें तुम रहा करती थीं—आर्टिस्ट का मकान !"

"वही है।"

"अच्छा !" उसने अविश्वास के अंदाज़ में कहा। "तुम कहती हो तो ठीक ही होगा। ज़रीना, क्या मैं ख़ब्ती-सा हो गया हूँ ?"

"नहीं तो !" उसने घबरा कर जवाब दिया। "सिर्फ़ तुम थके हुए ज्यादा लग रहे हो।"

"लगातार भागते रहने से इन्सान थक ही तो जाता है। मैं न जाने कितने लाखों-करोड़ों मील चल चुका हूँ अब तक।"

"तुम कहाँ थे ?"

"मैं—यह क्यों बताऊँ ?" उसने बच्चों की तरह जवाब दिया। "कई रातें मैंने खेतों में बिताईं। भूसे के ढेरों पर सोया। नदियों की किश्तियों में घुसा बैठा रहा। स्टेशनों के वेटिंग-रूम्ज़ में छिपता फिरा। सारे में पुलिस की नज़रों से बचा-बचा घूमा किया—तब आज मैंने कहा, कि क्यों न एक शरीफ़ बहादुर इन्सान की तरह सामने आकर अपना जुर्म क़बूल कर लूँ।"

"पुलिस ?"

"हाँ, क्या तुमको मालूम नहीं ?"

"नहीं तो—क्या ?"

"मैंने, ज़रीना बेगम...!" उसने बड़े ठाठ से टाँग पर टाँग रख कर कहना शुरू किया। "मैंने दो क़त्ल किए हैं ! तब से मैं मारा-मारा फिरता हूँ कि कहीं सिर छुपाने को ठिकाना मिल जाए। वापस आकर सारे दोस्तों के दरवाज़े खटखटाये मगर, सब दरवाज़े बन्द थे और अन्दर तेज़ रोशनियाँ जल रही थीं। फिर मैं इधर से गुज़र रहा था, तो मैंने सोचा, लाओ, तुम्हें भी आज़मा लूँ।"

"अन्दर आ जाओ, गौतम ! यहाँ हवा बहुत तेज़ है।"

"मगर, तुम पुलिस को ख़बर तो न करोगी ?" उसने सहम कर पूछा।

"कभी नहीं।"

"नहीं, मैं यहीं बैठूँगा। घरों की छतें मेरे लिए कोई महत्व नहीं रखतीं।"

ज़रीना ने स्कार्फ़ सिर के चारों तरफ़ लपेट कर झक्कड़ के हमले से बचना चाहा। बर्फ़ के गाले चारों ओर बिखर गए।

"सुनो, ज़रीना बेगम !" उसने अटैचीकेस पर बैठे ही बैठे सिर उठा कर उससे कहा, "मैं स्वीकार करना चाहता हूँ कि मैंने दो क़त्ल किये हैं, और कमाल यह है—" वह हँसा—"कि मैं इस क़दर चार-सौ-बीस इन्सान हूँ कि दोनों क़त्ल होने वालों को इसका पता तक न चला कि मैंने उनका काम तमाम किया है।" अब एकाएक उसकी आवाज़ बिलकुल नॉर्मल हो गई। "उस रोज़ जब मैं सुरेखा के यहाँ से पार्सल लेकर भागम-भाग अस्पताल पहुँचा तो निर्मला ने मुझे पहचान कर न दिया, क्योंकि वह मर चुकी थी। और, जब मैं उसी रात वहाँ से लौट कर शहर में मारा-मारा फिर रहा था तो मुझे चैलसी के एक पब में चम्पा अहमद नज़र आई, और उसने भी मुझे नहीं पहचाना, क्योंकि वह बहुत ड्रंक थी। चुनाँचे—उसने बड़ी शान से कहा—"मैं इस फ़न में इतना बड़ा क्रुक हूँ—देखा तुमने !"

बर्फ़ का तूफ़ान बढ़ता जा रहा था। ठीक उसी समय बर्फ़ीली कीचड़ के छींटे उड़ाती एक मोटर ड्राइव पर आकर रुकी, और उसकी तेज़ रोशनी में बर्फ़ पर एक पीला रास्ता-सा बन गया।

कमाल और हरिशंकर मोटर में से उतरे।

"ज़रीना !" उन्होंने ड्राइव पर से आवाज़ दी। "गौतम तो यहाँ नहीं आया ?"

वे दोनों बर्फ़ पर भारी-भारी क़दम रखते सीढ़ियों पर आ गए।

"स्वामीजी के सेण्टर में अभी मालूम हुआ कि गौतम लन्दन से लौट आया है और शायद ओस्टरली की ओर गया है।" कमाल कह रहा था।

थोड़ी देर बाद वे दोनों बेहोश गौतम नीलाम्बर को मोटर में डाल कर अपने घर ले गए।

93

"कोई नहीं आया।" शुनीला देवी ने दरवाज़े में आकर कहा। "तीनों के तीनों नास्तिक हैं—दिवंगता निर्मला के घरवाले। स्वामीजी ने सारा प्रबन्ध किया था। फूल मँगवाए थे। मद्रासियों की एक कीर्तन-मंडली भी स्विस-कॉटेज से आ गई थी। मगर, ये लोग शान्ति का मार्ग खोजना नहीं चाहते !"

"और, जानती हो अब ये लोग क्या कर रहे हैं वहाँ अपने घर में, या उस इंडियन डांसर के फ़्लैट में जमा होकर ? सुबह से शाम तक ताश खेलते हैं—हद है !" एक बेहद अध्यात्म-प्रिय अंग्रेज़ बुढ़िया ने खिड़की में से मुंडिया निकाल कर बात की।

चम्पा सीढ़ियों पर से वापस उतरी।

"तुम किसी को खोज रही मालूम होती हो।" दूसरी वेदान्त-भक्ता अमेरिकन बुढ़िया ने खिड़की में से सिर निकाल कर कहा। "देखो, वह यहाँ मौजूद है...तुम्हें, हम सबको, बुला रहा है !" उन्होंने उँगली उठा कर कृष्ण की बड़ी तस्वीर की तरफ़ संकेत किया, जो सेण्टर के हॉल में रखी थी। "इसे देखने के लिए वह तीसरी आँख चाहिए, जिसे अफ़सोस कि तुम हिन्दुस्तानी खो बैठे !"

चम्पा हड़बड़ा कर दौड़ती हुई नीचे उतर गई। सड़क पर आकर उसने अपने माथे पर हाथ फेरा। उसे महसूस हुआ कि जैसे सड़क पर चलने वाले सब इन्सानों के माथों पर तीसरी आँख मौजूद है; और, वह आँख उसे घूर रही हैं।

वह दौड़ कर एक 73 नम्बर की बस में सवार हो गई।

सेण्टर में स्वामी देविकानन्द ने अपना लेक्चर पिलाना शुरू कर दिया था। योग पर उनका लेक्चर सुनने के बाद उनकी श्रोता, अध्यात्मवादी बूढ़ियाँ, अपने घरों को लौट कर सिंक में पड़े हुए सवेरे के बर्तन धोएँगी और मोज़े रफ़ू करेंगी और गैस के बिल की चिन्ता करेंगी। उस वक़्त लॉर्ड कृष्णा उनके कितने काम आएँगे ?

वह बस से उतर कर हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों के केन्द्र की ओर चल दी।

हॉल में विद्यार्थियों की एक बिलकुल नई टोली अपनी गप्पों में तल्लीन थी।

"मैं चम्पा अहमद हूँ।" उसने दरवाज़े में जाकर कहा।

"येस ?"

एक मद्रासी विद्यार्थी ने आगे आकर पूछा।

उसका दिल डूब गया। उसका नाम कितना महत्त्वहीन था। उसे कोई न जानता था। किसी को उसकी आवश्यकता न थी।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।"

"जी ? आपको क्या चाहिए ?" एक बंगाली लड़की ने पूछा।

"कुछ भी तो नहीं।" उसने और अधिक हड़बड़ा कर जवाब दिया। "ऐसे ही आप लोगों का सेण्टर देखने चली आई थी।"

कुछ लड़कों ने उसे सन्देह की दृष्टि से देखा।

वह उल्टे पाँव फिर सड़क पर आ गई।

स्ट्रैंड पहुँच कर वह इंडिया-हाउस में दाख़िल हुई। लिफ़्ट द्वारा ऊपर की मंज़िल पर पहुँची। वहाँ कैंटीन में हमेशा की तरह खूब शोर मच रहा था।

"मैं चम्पा अहमद हूँ।" उसने काउण्टर पर जाकर कहा। उसे अपनी इस मूर्खता पर ज़रा भी आश्चर्य न हुआ।

"येस डियर।" जो ऐडिंग मशीन पर बैठी थी, अधेड़ उम्र की हिन्दुस्तानी ईसाई औरत ने अंग्रेज औरतों के लहजे की नक़ल करते हुए कहा—"खाना तो समाप्त हो चुका, स्नैक्स हैं।"

"नहीं...ठीक है।" वह सटपटा कर फिर बाहर निकली। मेज़ों पर बैठे हुए लड़कों और लड़कियों ने सिर उठा कर भी उसे न देखा। एक कोने में सुरेखा का पति गुलशन सिर झुकाये कुछ पढ़ रहा था। वह फिर बाहर आ गई।

अब वह 'चूज़े की सराय' पहुँची। वहाँ उसे कमाल मिला। वह काउण्टर पर खड़ा किसी को फ़ोन कर रहा था। उससे दो-चार बातें करने के बाद वह जल्दी से बाहर निकल गया। वह शीशे के दरवाज़े के पास खड़ी उसे भीड़ में शामिल होते देखती रही। फिर बाहर जाकर उसने बी. बी. सी. के कैंटीन में झाँका—चचा सिद्दीक़ी कोई लतीफ़ा सुना रहे थे। एजाज बटालवी ने एक नई बहस शुरू कर दी। तक़्क़ी सैयद मुँह लटकाए बैठे थे। यावर अब्बास कुछ गुनगुना रहे थे। "मैं चम्पा अहमद हूँ" उसने मेज़ों के आसपास एकत्र लोगों को बताना चाहा, और फिर वापस लौट गई।

सामने ही अंडरग्राउन्ड थी। सीढ़ियाँ उतर कर उसने बिलकुल बिना इरादे के मेडावेल का टिकट ले लिया। कुछ मिनट बाद मेडावेल की चौड़ी सड़क पर आकर वह पेड़ से टिक गई और चारों तरफ़ देखा। सामने कुछ दूरी पर सुरेखा और आशा के मकान थे। बाड़ की दूसरी ओर चन्द क़दम पर तलअत और कमाल का फ्लैट था। स्टेशन के सामने वाले आधुनिक ब्लॉक में शान्ता और विलियम क्रेग रहते थे।

ठीक उसी समय ग्रोसर की दुकान से सब्जी का थैला उठाये सुरेखा बाहर निकली—"अरे, हैलो चम्पा !" उसने चिल्ला कर कहा, "वहाँ कैसे खड़ी हो ? आओ ! आओ !"

वह चुपचाप सुरेखा के साथ हो ली।

कुछ दूर चल कर वह मकान के अन्दर गई।

"चुनाँचे यही गोकुल था...शारमीला, यही गोकुल था !" उसने आहिस्ता से कहा।

"क्या ?" सुरेखा ने पलट कर पूछा।

"कुछ भी तो नहीं।"

"बैठो, गुलशन अभी इंडिया-हाउस से नहीं लौटा। तुम्हें मालूम है, उसने वहाँ काम शुरू कर दिया है ?"

"अच्छा !"

ड्राइंग-रूम के चौड़े दरवाज़े के बाहर अभी दिन का उजाला बाक़ी था। बहुत-सी लाल पत्तियाँ धीरे-धीरे तैरती हुई आकर नीचे बिखर गईं—पोर्च की सीढ़ियों पर, ड्राइव पर। चार-पाँच पत्तियाँ खिड़की से बाहर रखी हुई बैंत की कुर्सियों के नीचे हवा में काँपती रहीं। धूप की सुनहरी लकीर ने घास पर गोल चक्कर-सा बना लिया।

क्या पता, इंसान वास्तव में क्या चाहता है ?

"अरे चम्पा, यहाँ, इस सोफ़े पर बैठ जाओ, आराम से !" सुरेखा ने तरकारियाँ सैनी में उँड़ेलते हुए कहा।

"इस सोफ़े पर बैठने से कमरा वही तो नहीं बनेगा जो उस रोज़ था।" चम्पा ने अपने आप से कहा।

"उस रोज़...किस रोज़ ?...कैसा था ?" सुरेखा ने रसोई में जाते हुए पूछा।

"क्या मालूम !"

ख़ालिस मौसम अब बाहर के वातावरण में फैल चुका था। शुद्ध सरदी, स्वच्छ निर्मल बर्फ़। सारा अस्तित्व बेहद हलका-फुलका और साफ़ महसूस हो रहा था। सुरेखा ने शॉल ओढ़ी और कमरे में आकर अँगीठी जलाई।

"कल..." उसने बाल्टी में से कोयले उलटते हुए बात की–"बहुत से लोग घर वापस जा रहे हैं।"

"घर ?" चम्पा ने चौंक कर पूछा।

"हाँ–हिन्दुस्तान।" सुरेखा ने राख कुरेदना शुरू की।

"कौन-कौन ?" चम्पा ने तटस्थ भाव से पूछा। अब उसे किसी से क्या मतलब ? वह इस ख़ालिस मौसम की तरह सारे में फैली थी। उसे विशेष व्यक्तियों से क्या लेना-देना ? उसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं।

सुरेखा घरेलू अंदाज में पल्लू कमर में खोंसने के बाद फिर तरकारी काटने बैठ गई।

"सभी–" उसने जवाब दिया–"कमाल, हरि, कमला। हरि फ़्लाई कर रहा है। कमाल परसों पानी के जहाज़ से जाएगा। गौतम तो आज सवेरे फिर न्यूयार्क चल दिया।"

बाहर, छतों के परे सूरज एकदम डूब गया। 'बिग बेन्' ने रेडियो में अपना बिगुल बजाया। बाहर अँधेरा छा चुका था। जाड़ों की रात का अँधेरा जो एकाएक दुनिया को आ दबोचता है। वह सुरेखा की सहायता करने के लिए रसोईघर में चली गई।

ड्राइंग-रूम में गुलशन के और उसके मित्र आ चुके थे। वह रसोईघर के दरवाज़े से निकल कर सर्द बाग़ में से होती हुई आशा के घर चली गई।

सुरेखा की आवाज़ पर वह वापस लौटी। उसने खिड़की में से अन्दर झाँका शाम का असर कमरे में ख़त्म हो चुका था। उसकी जगह रात ने ले ली थी। वह दोबारा उस कमरे में गई, मगर वहाँ कुछ नहीं था। परछाइयाँ दूसरी थीं। रंग, वातावरण का सुर-समय भी खिड़की के रास्ते बाहर चला गया। उसका जरा-सा टुकड़ा भी पीछे पड़ा नहीं मिला।

सुरेखा के घर से बाहर निकल कर उसे कमाल के मकान की रोशनियाँ नज़र आईं।

"मुझे छोड़ कर मत जाओ–मुझे छोड़ कर मत जाओ–मुझे छोड़ कर मत जाओ...!" उसने चिल्ला-चिल्ला कर कहना चाहा, मगर ख़ामोशी से तेज़-तेज़ क़दम रखती स्टेशन की तरफ़ रवाना हो गई।

जोन कार्टर की गली में पहुँची, और अस्तबल के दरवाज़े में जाकर बल्ब जलाने के लिए हाथ बढ़ाया।

मगर, एकाएक अंधकार ने सामने आकर उसे 'स्वागतम्' कहा। वह खिड़की पर रखे हुए जरानियम के पौधों पर झुक गई। अब तक रात मेरी विरोधी थी–उसने सोचा–अब शायद मेरी साथी बन जाए। ऊँचे मकानों पर से गुज़र कर आती हुई हवा, घास की सरसराहट, पत्तों पर जमी हुई बर्फ़। ज़मीन पर रात की मौजें बहती चली जा रही हैं, और अब धारे अलग-अलग हो चुके हैं। अब मैं सचमुच पूरी तौर पर आज़ाद हूँ। वह हँसी। नीचे बहुत ठोस ज़मीन है और इस ज़मीन पर मुझे मौत तक चले जाना है। क़दम मुझे कहाँ-कहाँ ले जाएँगे। (उसने अपने पैरों को इस तरह देखा मानो आज तक वे उसे पहले कभी नज़र न आए थे।) रात मेरे हाथ में मौजूद है और उसके हाथ में भी। रात की रस्सी को मैं मजबूती से थामे-थामे दिन तक पहुँच जाऊँगी। रात, तू आज से मेरी सखी है। कहो सखी, कैसी हो ? मैं तो तुमको मुद्दतों से जानती हूँ। बरसातों में, फागुन की रुत में, पूर्णमासी में, इम्तहानों की पढ़ाई के ज़माने में, अजनबी देसों में ट्रेनों में सफ़र करते हुए, मैंने तुम्हारा हर रंग देखा है। मैंने और तुमने

इकट्ठे समय बिताया है। एक दिन तुम भी जानोगी !

और तब, उसने दूसरी तान आरम्भ की– मैं तुमको तुम्हारे सपनों की दूरराथ में खोजती हूँ। मैं आबद तक अबाध थी और तुम स्वप्न देखने से कभी बाज न आओगी !

रात और अधिक अँधेरी होती गई। सर्दी बढ़ गई। जोन कार्टर के फ़्लैट में पूर्ण निस्तब्धता थी। नील अपने कमरे में सो रहा था। जोन भी सो चुकी थी। अजीत अपनी मीटिंग से नहीं लौटा था। रात की लहर बोसीदा दीवारों से टकराती रही। समय ने कहा : मुझे पहचानो। मैं तुम्हारा पीछा कभी नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारा ख़याल था, क्षण अपनी जगह क़ायम रहेंगे। लेकिन, तुम्हारा यह ख़याल भी ग़लत था। मुझे देखो और पहचानो। मैं आ रहा हूँ...पल पल, छिन-छिन। पर्दों के पीछे, तह-दर-तह, अँधेरों में गायब होता जा रहा हूँ। मैं अन्तिम सीमा हूँ। उसके आगे तुम नहीं जा सकतीं। अब वापस लौट चलो। सरहद पर तुम पहुँच चुकी हो। सामने फाटक है। अब दूसरा देस शुरू होता है। अब तुमको आगे के सफ़र के लिए नए प्रमाण-पत्रों का प्रबन्ध करना होगा। नए सिरे से खानापूरी और दस्तख़त करने होंगे क्योंकि अब नई सीमा शुरू होती है। मैंने अब तक बहुत से जादू तोड़े हैं, तुम्हारे वाला जादू बहुत ही महत्वहीन था !

मुझे पहचानो। मैं बराबर तुम्हारे साथ चलता रहूँगा। तुम क़दम-ब-क़दम मुझसे नहीं भाग सकतीं। लोग तुम्हें छोड़ कर चले जाएँगे, मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा। देखो, तुम सीमा पर कितनी जल्दी पहुँच गईं। तुमको फ़ैसला करने में कितनी दिक़्क़त पेश आ रही थी : मैं सारे मामले निपटा देता हूँ। सारे फ़ैसले, सारे इरादे, मेरी वजह से ख़ुद-ब-ख़ुद पूरे होते चले जाते हैं।

अभी तुम पर और मुसीबतें आएँगी। लेकिन मैं तुमको उनका मुक़ाबला करना भी सिखा दूँगा। अब मुझसे समझौता कर लो। मैं अब भी मौजूद हूँ।

हवा के एक तेज़ झोंके से खिड़की का पर्दा फड़फड़ाने लगा। कमरा कोहरे से भर गया। तब उसे अचानक महसूस हुआ कि वह सर्दी से कँपकँपा रही है। उसने जल्दी से खिड़की बन्द की, और अपने कमरे में चली गई।

94

"अप्पी के ब्याह में पहनने के लिए मैं तो बड़ी बढ़िया साड़ी बनवाऊँगी--कारचोबी।" निर्मला कह रही थी।

मैं ख़ामोश रही।

"मुझे तो ये नए क़िस्म की बॉर्डर वाली साड़ियाँ बिलकुल अच्छी नहीं लगतीं।" मालती ने बड़ी बूढ़ियों की तरह होंठ लटका कर कहा। "मालती रायज़ादा सोलह बरस की थी। निर्मला उससे एक साल छोटी थी। मैं निर्मला से एक साल छोटी। इन दोनों ने बहुत बड़प्पन के साथ कपड़ों के बारे में अपने भारी ज्ञान का मुझ पर रौब डालना शुरू किया। मैं बड़ी श्रद्धा से बातें सुनती रही।"

फिर एकाएक तलअत ख़ामोश हो गई। 'देखो' उसने कमाल से कहा, "मैंने आज यह महसूस किया है कि मेरा बीता हुआ ज़माना सिर्फ़ मेरे लिए महत्त्व रखता है। दूसरों के लिए,

दुनिया के लिए, उसके कोई मानी नहीं हैं। उनको इससे कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती।"

"मेरा अतीत केवल मेरा अर्जात है।" कमाल ने तलअत की बात दोहराई।

"और, दुनिया को सिर्फ़ 'वर्तमान' से दिलचस्पी है।" हरिशंकर की आवाज़ गूँजी।

"लेकिन अतीत वर्तमान है। वर्तमान अतीत में शामिल है और भविष्य में भी। वक़्त के इस गोरख-धन्धे ने मुझे बड़ा हैरान कर रखा है !" तलअत ने उदासी से कहा—"मैं वक़्त के हाथों आजिज़ आ चुकी हूँ। तुममें से कोई मेरी मदद क्यों नहीं करता?"

"तुम्हारी मदद, तलअत बेगम, शायद आइंस्टाइन भी नहीं कर सकता !" हरिशंकर ने कहा।

"मेरे अतीत से दूसरों को क्या दिलचस्पी हो सकती है !" कमाल ने फिर ज़िद से दोहराया।

"वक़्त बराबर मौजूद है। वक़्त निरंतर मौजूद 'वर्तमान' है।" तलअत ने कहा।

ये लोग लंदन के सेंट जॉर्ज़ वुड में बैठे, 15 दिसम्बर सन् 1954 के तीसरे पहर ये बातें करते रहे। इनकी परछाइयाँ खिड़कियों के शीशों पर अजीब-अजीब शक्लें बनाती रहीं। बाहर तेज़ हवा चल रही थी। सड़क पर मोटरें आ-जा रही थीं। वायरलैस में से किसी कन्सर्ट की आवाज़ आ रही थी। समय के विशाल अँधेरे और ऊँची दीवारों, सड़कों, गलियों और आवाज़ों की भूल-भुलैया से घिरे तीनों मौजूद रहे।

वक़्त के इसी अँधेरे में तलअत सन् 1941 ई. की जुलाई में सिंघाड़े वाली कोठी के बरामदे में बैठी निर्मला और मालती से बातें कर रही थी। इस तलअत में और उस तलअत में कोई अन्तर न था। मगर दोनों दो भिन्न व्यक्तित्व थे। महात्मा बुद्ध, शाक्य मुनि ने कहा था कि—'इन्सान हर क्षण बदलता रहता है। इंसान बचपन में कुछ और होता है और जवानी तथा बुढ़ापे में कुछ और। तुम इस क्षण से पहले नहीं थे ! केवल निरन्तरता शेष रहती है।' दूर पहाड़ों में ग्लैशियर टूट-टूट कर बह रहे थे। हवाएँ, अँधेरा—समय जो तरल था—समय जो बर्फ़ में जमा हुआ था।

"हम अपना क़िस्सा दोहरा कर अपना इत्मीनान करना चाहते हैं" हरिशंकर ने कहा—"क्योंकि हमें डर लगता है।"

"हम समय से और अंधेरे से डरते हैं, क्योंकि वक़्त एक रोज़ हमें मार डालेगा और अँधेरा हमारी पनाह लेने की आख़िरी जगह होगा।" तलअत ने कहा।

"और, गौतम नीलाम्बर तक किस क़दर डरपोक निकला !" कमाल ने कहा।

"गौतम नीलाम्बर का इस समय ज़िक्र न करो। तुम असली विषय से बहुत दूर हट जाओगे। यह तय करना है कि ज़िंदगी में असल विषय क्या है।" हरिशंकर ने कहा—"मैं चौदह साल पहले भी मौजूद था; और, अगर ज़िन्दा रहा तो चौदह साल बाद भी हरिशंकर ही समझा जाऊँगा। और तब वक़्त के सारे प्रयोग हम अपने ऊपर कर लेंगे, तो ये जो छोटे-छोटे गिनीपिग हम लोग हैं, हम भी ख़त्म हो जाएँगे।"

वक़्त के पैटर्न में तलअत जहाँ बैठी थी, वही तलअत उसी पैटर्न में एक जगह और मौजूद थी, और दोनों बिन्दुओं के बीच बरसों का फासला था, और इस अन्तर पर इन्सान सिर्फ़ आगे की ओर चल सकता था—आगे, और आगे... । पीछे जाना असम्भव था, यद्यपि हज़ारों तलअतें अनगिनत टुकड़ों में बिखरी अनगिनत जगहों पर मौजूद थीं, जैसे दर्पण के टूटे हुए

टुकड़ों में एक ही चेहरे के अलग-अलग प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं।

कमाल मानो स्टेज पर चलता हुआ, बीच की मेज़ पर आकर बैठ गया। मक्खी की आँखों से उसने सबको देखा। माइकेल, बिल क्रेग, ज़रीना। वे सब गौतम नीलाम्बर को एयरपोर्ट पहुँचा कर वापस लौटे थे, और कमाल के कमरे में हरिशंकर और कमाल के बँधे हुए सामान पर चढ़े बैठे थे।

गौतम, ज़रीना के यहाँ से आकर पन्द्रह दिन तक कमाल के घर पर बीमार पड़ा रहा था। तब वे दिन भर ताश खेलते या बैतबाज़ी करते। मिकी-माउस के कॉमिक्स और फ़िल्मी पत्रिकाएँ तक पढ़ी गईं। गौतम अभी पूरी तरह से स्वस्थ न हुआ था कि कश्मीर के केस के लिए उसे फिर न्यूयार्क जाने का आदेश आ गया। लंदन में यह कमाल और हरि का आख़िरी दिन था। हरि रात को एयर-इंडिया से उड़ने वाला था। कमाल को कल सुबह बोट-ट्रेन पर सवार होना था। कमला भी जा रही थी, माइकेल भी जा रहा था।

तलअत ने दोबारा कैलेंडर पर नज़र डाली। 15 दिसम्बर, सन् 1954 ई.। उसे फुरेरी-सी आई—"माइकेल, दरवाज़ा बन्द कर दो !"

माइकेल ने उठ कर ऐसा ही किया। लोग तलअत को कलदार खिलौनों की तरह नज़र आए—सिपाही, जिसके हाथ में बन्दूक थी (माइकेल); सिर हिलाता हुआ सफ़ेद चुग्गी दाढ़ी वाला चीनी दार्शनिक (हरिशंकर); महाराजा चन्द्रगुप्त के दरबार की नर्तकी (सुरेखा); दहाड़ें मार-मार कर रोते, मातम करते, अपने जीवन के ताज़िये के साथ-साथ नंगे पाँव चलते गोलागंज वाले झुकी कमर के नवाब कम्मन साहब (कमाल) दिवाली के गुड़ियों-गुड्डों की तरह वे सब सामने सजे थे। मूर्तियाँ, जिनको लखनऊ के कुम्हारों ने बनाया था। (इनमें से एक मूर्ति गिर कर टूट चुकी थी।) अभी भिश्ती आएगा, छिड़काव होगा, तख़्त बिछेगा, तख़्त पर राजा बैठेगा, लूना चमारी का जादू चलेगा। फिर ये सब जाकर अपने-अपने ताक़ों में बैठ जाएँगे।

"मैं बिलकुल ठीक थी।" उसने अपनी बात जारी रखी, "मगर फिर एकदम चीज़ों ने मुझे डराना शुरू कर दिया।"

कमाल ने मानो उससे 'क्यू' लेकर कहा—"नई बात यह मालूम हुई कि दुनिया में बड़ी गड़बड़ है।"

"और, इससे पहले कि मुझे मालूम हो, मैं शब्दों के सागर में से गुज़रती विचारों के भयानक रास्ते पर निकल खड़ी हुई थी।"

शब्द क्या थे, यथार्थता क्या थी? किताबों ने कहा—शब्द ग़लत है। यथार्थता कोई चीज़ नहीं है। सम्बन्ध एक खोखलापन है। पितरम्, मातरम्, पुत्रम्, पौत्रम्—सब ! हर चीज़ फ़ालतू है। कभी मैंने देखा, बृहस्पति राक्षसों को अपनी विद्या पढ़ा रहा है। कभी मैं ख़ुद अपने आपको एक बड़ी भारी राक्षसनी दिखाई दी, या परियों की कहानियों की कोई चुड़ैल, जो अपने ज्ञान की झाड़ू पर सवार अँधेरे शून्य में टापती फिर रही थी।

इन अँधेरे शून्यों में और बहुत-सी झाड़ुएँ सन्न से पास से गुज़र जातीं, जिन पर हज़ारों लड़कियाँ सवार थीं—तहमीना, निर्मला, रौशन, जोन कार्टर, फ़िरोज़, चम्पा, कमला, ज़रीना, और जाने कौन-कौन ! ये झाड़ुएँ इतनी ऊपर उड़ गई थीं कि अब उनका नीचे उतरना ही मुश्किल था। असल में सारी दुनिया के आसमान इन झाड़ुओं से भरे हुए थे।

इन सबमें चम्पा एक बड़ी वर्णनीय हस्ती थी। उससे ग़लती यह हुई कि उसने सपने देखने शुरू कर दिए।

अब अगर आप एक झाड़ू पर सवार हों और सो जाएँ, तो निःसंदेह ही आप रास्ता भूल जाएँगी। और, आपकी झाड़ू टकरा कर नीचे आ रहेगी।

अपनी सपने की हालत में वह पुराने युग के भक्तों की तरह गाती फिरी। गिरजाओं में गई। सन्यासिनों को प्रतिस्पर्द्धा से देखा कि कितनी सुखी हैं। अपने निजी जिंदा ख़ुदा और अपनी ज़िंदगी के सिम्बल ख़ुदा की कल्पना को मिला कर एक करने से उसे शायद बड़ा सुख मिला। उस सुख को तुम नाप नहीं सकते। यहाँ आस्था और अल्लाह के होने में विश्वास का मसला भी हल हो गया। सिर्फ़ थोड़ी-सी सूफ़ी भावना की ज़रूरत थी, जो सुबह मुँह-अँधेरे उठ कर भैरवी गाओ तो आप से आप पैदा हो जाती है...'मैं राधा हूँ, मैं सीता हूँ।' 'मैं मरियम मादलेन हूं,' 'मैं जरीं ताज ताहिरा हूं !' मुद्दतें गुज़रीं, उसने एक बार मुझसे कहा था कि 'जब मैं चैपल में जाती हूँ और विशप घंटी बजाता है, और यूक्राइस्ट के गिलास उठाए जाते हैं, तो मैं उस सारे सिम्बल के जाल में स्वयं को मौजूद पाती हूँ।'...गौतम नीलाम्बर की तरह उसे हर घटना में, हर चीज़ में, कोई छिपा हुआ रहस्य दिखाई दे जाता था !

वे सब कमरे से निकल कर नीचे सड़क पर आ गए। कमाल ने नाक उठा कर कुहरे को सूँघा।

"हर चीज़ के पीछे कोई रहस्य होता है, इसका तो मुझे भी अन्दाज़ा है। मैंने इसकी वजह से बहुत दुःख उठाए हैं।" माइकेल ने हवा में हाथ फैलाते हुए कहा।

"हाँ।" तलअत ने जवाब दिया। वे सब सिर झुकाये, ज़मीन को तकते चला किए।

शाम की गुलरंग रोशनी में वे हीथ की ओर बढ़ते रहे। मकानों के छोटे-छोटे बैक-गार्डन, खिड़कियों में से झाँकते हुए लोग, तंग गलियारे, और उनके सिरे पर कुछ अँधेरे-से क़हवाघर। लड़कियाँ दफ़्तरों से लौट रही थीं।

"यह दृश्य मेरे लिए कँपकँपा देने वाला है।" हरिशंकर ने कहा।

"हाँ।" तलअत ने उसी तरह जवाब दिया।

पहाड़ी पर पहुँच कर वे चित्रकारों के चित्र देखते फिरे और ज़्यादा बोर हुए।

"वह देखो, तरुणा वग़ैरा आ रहे हैं !"

"अहा !"

नीचे मेला लगा था। जिप्सी औरतें हाथ देख कर क़िस्मत का हाल बतला रही थीं। बच्चे मूँगफली और आइसक्रीम खा रहे थे।

"सबसे बड़ी हिमाक़त यह है कि हम दूसरों को अपने सपनों में घसीटने की कोशिश करें !" माइकेल ने कहा।

"हाँ !" तलअत ने दोहराया—"मेरा अतीत, मेरा वक़्त, मेरे सपने सिर्फ़ मेरे हैं। वे दोनों किसी और के नहीं हो सकते। हाँ, मगर ख़याल रखो..." उसने जल्दी से कहा—"मैं एक अकेले इन्सान की बात कह रही हूँ। भविष्य तो हम सबका एक है !"

माइकेल ने एक कंकर उठा कर ग़ुस्से से उसे मारा। "ख़ुदा के लिए इस प्वाइंट पर पहुँच कर भी पार्टी-लाइन मत चलाओ ! आने वाला युग सबका एक नहीं है। भविष्य इस

पहाड़ी के उधर हम सबके लिए अलग-अलग मुँह फाड़े खड़ा है। हरि के दस सिर वाले भगवान की तरह।"

"ओ माइकेल" तलअत ने बच्चों की तरह कहा--"यह सच्चाई है कि मैं बहुत डरती रही हूँ।"

"हां।"

"मेरे डराने को क्या कम चीज़ें थीं ? ख़ूबसूरत दृश्य, आरामदेह घर। बैग खोलती, तो उसमें से तरह-तरह के कागज निकलते। बैंकों की चिट्ठियाँ, शेयर्ज़ के कागज, ज्वॉइंट स्टॉक कम्पनियों की रिपोर्टें, जिन पर नाम होते--लॉर्ड सिन्हा, सर बीरेन मुकर्जी, श्री थापर। इन सब नामों के पीछे एक और दुनिया थी। ऊँची मज़बूत इमारतें, साफ़-सुथरे दफ़्तर, रुपया, आर्थिक समस्याएँ, हड़तालें, भूख, बेकारी, डायरेक्टरों की बैठकें, ट्रेड-यूनियन, मज़दूर-बस्तियाँ, सिटी ऑफ़ लण्डन, क्लाइव रोड कलकत्ता, बिशप गेट, चौरंगी, टाटानगर, एंड्र्यू यूल, कलकत्ता।

"मैं डरते-डरते उन कागज़ों पर दस्तख़त करती, जो मानो मेरी ज़िन्दगी की ज़मानत थे, समाज में मेरे ऊँचे दौलतमन्द दर्ज़े के गवाह थे। यह सब क्यों है ? मुझे इसका क्या फ़ायदा है ? मैंने तो नहीं कहा था कि मैं रज़ा ख़ानदान में जन्म लेकर इस खड़ाग की वारिस बना दी जाऊँ ! कागज़ के टुकड़े--रुपया, रुपया, रुपया ! सहसा रुपये के महत्व का भाव मेरे दिल से पूरी-पूरी तरह मिट गया। लोगों ने कहा-- पोतड़ों के रईस ऐसे ही वेपरवा होते हैं, वगैरा। मुझे यह सुन कर बड़ी हँसी आई !"

वे सब पत्थरों पर बैठ गए। नीचे घाटी में झील के पानी पर डूबते सूरज की किरणें नाच रही थीं। साल्वेशन आर्मी वालों का एक दस्ता बैण्ड बजाता सामने से गुज़रा।

कमाल झील के किनारे अकेला खड़ा था, और इस ऊँचाई पर से बहुत छोटा-सा दिखाई दे रहा था।

सहसा तलअत ज़ोर से क़हक़हा मार कर हँसी।

सबने नज़रें उठा कर उसे देखा।

मैंने एक बार निर्मला से पूछा था, रानी बीवी ! तुम्हें डर काहे का है ? निर्मला ने जवाब दिया था कि मैं अपने सपनों को उससे बचाना चाहती हूँ। वह मेरे सपने जानता है ! कितनी हँसी की बात है कि निर्मला के सपने अब उसके पास हमेशा के लिए सँजोए हुए थे। गौतम आख़िरकार अनजान ही रहा। "हम अज्ञान में पैदा होकर अज्ञान में ज़िन्दा रहते हैं, और उसी में मर जाते हैं--यही असल सिद्धान्त है।"

कमाल उनकी तरफ़ बढ़ता दिखाई दिया। माइकेल ने झुक कर घास का पत्ता तोड़ा। मेले में बजता हुआ संगीत समाप्त हो चुका था। सर्दी ज़्यादा हो गई।

एक जेट वायुयान उनके सिरों के ऊपर से गरजता हुआ गुज़र कर अँधेरे में ग़ायब हो गया। वे सिर उठा कर उसे देखा किये।

"अज्ञान का जो नगर हमने बसा रखा था, उसकी दीवारें हमने दर्शनशास्त्र की ईंटों से चुनी थीं।" तलअत ने बातें जारी रखीं। "एक दिन सेंध लगा कर मौत हमारे नगर में घुस आई।"

"एक मर्तबा जब फ़ॉरिनबरा के एयर-फ़ैस्टीवल के मौक़े पर बेचारे जान डेरी ने, आवाज़

की सीमा तोड़ते हुए खुद जान दे दी थी तो उसका हवाई जहाज़ आकाश में टुकड़े-टुकड़े होकर मेले वालों के ऊपर आन गिरा था। बीसियों लोग मरे थे। उस समय जब हवाई जहाज दहकते हुए आग के गोले के रूप में आवाज़ से ज्यादा तेज़ रफ्तार के साथ मेरी ओर बढ़ रहा था, उस क्षण मुझे पता था कि यह मौत है, आन की आन में मैं भी जल कर भस्म हो जाऊँगी। मगर, जानते हो, ज़मीन पर औंधे लेटने के बजाय मैं हवाई जहाज़ के टुकड़ों की बौछार में चन्द्रा और ज़रीना को पुकारती फिरी कि कहीं वे न मर गई हों। मुझे उस वक़्त अपने बजाय उन दोनों की ज़िन्दगियों की चिंता थी। अपने बारे में तो एहसास भी न था।

इसीलिए निर्मला ने मौत का सामना किया, तो मुझे लगा कि उसे भी भय न लगा होगा।...हालाँकि यही एक अनुभव ऐसा है जिसमें इंसान किसी दूसरे को शरीक़ नहीं कर सकता। इसीलिए हमने उसे यह अनुभव करने के लिए अकेला छोड़ दिया। बेचारी हाथ-पाँव मारती दरिया के अँधेरे धारे में बह गई।

वेदान्त में कहीं पर अस्तित्व की चार अवस्थाओं का वर्णन है—जागता हुआ इंसान; सपना; बिना सपने की नींद; और मौत।"

"जिस रोज़ मैं बेहोश हुई थी, मुझे अच्छी तरह एहसास था कि मैं बहुत गहरी नींद सो रही हूँ। ख़ाली उस गहरी नींद में मुझे सपने नहीं दिखाई दिए। मेरी आत्मा जाकर अँधेरे से मिल गई; और, जब वापस आई तो मुझे मालूम भी न हुआ कि मैं कहाँ गई थी। मैंने सोचा कि यही मौत है, और जब यह आई तो आत्मा दूसरे अदृश्य लेकिन भौतिक जिस्म को साथ लेकर अपनी राह निकल खड़ी हुई। अब बहुत से रास्ते सामने थे। उन पर मारा-मारा फिरना था, मगर वापस नहीं आना था। या न जाने क्या होना था। महाराजा जनक ने कहा था—'मिथिला जल रही है—परन्तु मैं बाकी हूँ।' शायद यह सही है !" तलअत ने कहा।

"हम सब जले जा रहे हैं।" हरिशंकर ने माइकेल से कहा। "क्या आग की लपटें तुम तक नहीं पहुँचीं !"

माइकेल ने बेचैनी से पहलू बदला।

नीचे अर्द्ध-अँधेरी-सी घाटी में कमाल गाता फिर रहा था। उसकी आवाज़ हवा पर तैरती उन लोगों के कानों तक पहुँची। चाँद पेड़ों के ऊपर से निकल रहा था।

तलअत फिर अपने सफ़र पर चल खड़ी हुई। "इस समय चाँद सिंघाड़े वाली कोठी के बाग़ में कुएँ पर झुका आँगन के अन्दर खड़ा है" उसने कहा। "मरने के बाद आत्मा, अग्नि की लपट से रात में, रात से बढ़ते चाँद में, बढ़ते चाँद से बढ़ते साल में, देवलोक में, वायु की दुनिया में, हवा, सूरज और बिजली से...गुजरती चली जाती है। वापसी में वह आकाश, हवा, धुएँ, बादल और बारिश और पौधों में पहुँची। कुरबानी की लपट हवा से धुएँ का, धुएँ से कुहरे, कुहरे से बादल का और बादल से बारिश का रूप लेकर बरस जाती है। सारी आत्माएँ हवाओं में घुल गईं।"

"विचारों का और आत्मा का सफ़र एक है।" शंकर ने कहा।

"मौत मुझे ख़त्म कर देगी। मौत को कौन ख़त्म करेगा ? हवाएँ मेरी साँस को उड़ा ले जाएँगी। सूरज मेरी आँखों की रोशनी पर पर्दा डाल देगा। चाँद मेरे दिमाग़ को सुला देगा। आत्मा हवाओं में घुल जाएगी, मेरे अंग के रोएँ झाड़-झंकाड़ में बदल रहे हैं। सिर के बालों

से पेड़ उगते हैं। खून पानी में घुल कर पानी बन गया।" तलअत ने चट्टान पर खड़े होकर दोहराया।

"गहरी नींद, गहरा पानी, गहरा सपना !" शंकर ने कहा। "संसार के तत्त्व सोच रहे हैं, इन्द्रियाँ सो चुकी हैं। सिर्फ़ मौत बाक़ी है।"

"जिस्म सोचता और महसूस करता है। वह ख़त्म हुआ, तो समझो सब कुछ ख़त्म हो गया। जलती अग्नि, शीतल जल, ठंडी हवाएँ, सब अपनी प्रकृति से आप पैदा हुई हैं। गौतम ने चम्पा से कहा था—अगर तुम्हारा जिस्म तुम्हारी बुद्धि से कोई अलग चीज़ है, तो उसे अलग कर दो, और सिर्फ़ तुम मेरे पास आ जाओ—मगर तुम ऐसा नहीं कर सकतीं !" वस्तुवादी गुलशन ने कहा।

"आये प्रेमपगे परवाने, ज्वालमयी छवि के दीवाने
जड़ चिलमन के पीछे रे, बैठी दीपशिखा लहराये रे
दीपशिखा लहराये रे !"

चन्द्रा ने गाया।

"अभी बहुत-सों को मरना है। मैं उनके पहले जा रहा हूँ। बहुत से मर रहे हैं। मैं उनके साथ जा रहा हूँ। पीछे मुड़ कर देखता हूँ, जो मर गए उनके साथ क्या हुआ ! आगे देखता हूँ, जो मेरे बाद मरेंगे, उनके साथ क्या होगा !" हरिशंकर ने कहा।

"चिउँटी चढ़ी पहाड़ पर, कानों में हाथी लटकाये।
एक अचम्भा हमने देखा, नैया बिच नदिया डूबी जाये।"

—घाटी में से कमाल के गाने की आवाज़ आई।

"मेरा मूल्य क्या है ? मैंने अब तक क्या किया है ?" सुरेखा ने कहा।

"मैं जो कुछ करता हूँ—मेरा हर काम, लगता है...इस सारी सृष्टि के चक्कर से उसका सीधा सम्बन्ध है। इस महत्व को छुपाने के लिए मैं हँसता हूँ। वैसे मैं तुमको यह बतला दूँ !—" माइकेल ने उँगली उठा कर कहा— 'हमारा अंत बहुत बुरा होगा !"

"क्या करें ! क्या करें ! क्या करें !" भयानक कोरस की तरह उनकी आवाज़ें पहाड़ी पर गूँजीं।

"सामने आने वाले वक़्त की दीवार है, और मैं माइकेल की तरह उसके सामने खड़ी चिल्ला-चिल्ला कर रो रही हूँ। क्या तकलीफ़ें सहे जाना अपराध का सुबूत है ?" तलअत ने कहा।

"किसी अमेरिकन नीग्रो को बुलाओ—किसी जर्मन यहूदी को पेश करो—किसी अरब शरणार्थी को हमारे सामने हाज़िर करो ! किसी पाकिस्तानी मुहाजिर और हिन्दू शरणार्थी को आवाज़ दो—और उन सबसे पूछो, कि तुम्हारा अपराध क्या था, जिसकी यह सज़ा तुमको मिली ?" गुलशन ने कहा।

"मैं तुम्हारे सामने मौजदू हूँ। मेरी सज़ा क्या होगी, बताओ !" माइकेल ने कहा।

"इस्राइल के नए गायक ! हम तो सिर्फ़ डिबौरा का गीत तुमसे सुनना चाहते थे" तलअत ने कहा—"मगर तुमने हाथ में बन्दूक उठा ली !"

"हम हज़ारों बरस तक रोते रहे। रेगिस्तानों की भूख, गुस्सा, बेबसी। चीख़-चीख़ कर

हमने येहूवा से फ़रियादें कीं। दाऊद के गीतकारों की पीड़ा, बेचारगी, सपना। मैं तलअत का सवाल दोहराता हूँ—क्या तकलीफ़ें सहे जाना अपराध का सबूत है ? आत्मा का एकाकीपन उन्होंने अपनी आवाज़ में उँडेल दिया। गहराई का अकेलापन, ऊँचाई का अकेलापन। दुःख, सन्देह, प्रलोभन और पाप का अकेलापन। किसी भी खिंचाव में फँस कर इन्सान अपने आपको कितना अकेला महसूस करता है !" माइकेल ने कहा।

"जंगलों में एक हज़ार जोगी बैठे भजन करते थे, मैंने उनकी आवाज़ें सुनीं !" हरिशंकर ने कहा।

"काबुल और फ़िलिस्तीन के हरे-भरे मैदानों में मैं गाता फिर रहा था !" माइकेल ने कहा।

"मैंने तुम्हारी आवाज़ भी सुनी थी।" तलअत ने कहा।

"मन की ये सारी कल्पनाएँ जमा करके एक बलिवेदी का पर्दा काढ़ दो, या खिड़कियों के शीशे रँग दो। तुम्हारी कल्पना बाज नतीनी तस्वीरों की तरह हद से ज़्यादा भरपूर है" वस्तुवादी गुलशन ने कहा।

"इतिहास की सजीव अनुभूति मेरे सिर के ऊपर तलवार की तरह लटक रही है। मैं अपने आप से पीछा नहीं छुड़ा सकता !" माइकेल ने कहा।

"क्या करें ! क्यों करें ! क्या करें !" कोरस ने कहा।

"किताबें वही थीं, जो अब तक हज़ारों लोग पढ़ चुके थे। नई किताबें छपती थीं। लेख लिखे जाते थे। नई कहानियाँ बनती थीं। रोज़ सवेरे पहाड़ों पर प्रकाश फैलता था। कलीसाओं के दाऊद के गीत दोहराए जाते थे। मेरे रुबाई ने कहा—इन्सान को 'सबत' (यहूदियों के व्रत के दिन शुक्रवार और शनिवार के बीच की रात।) की रात पानी नहीं पीना चाहिए। यदि पियेगा तो उसका अपना खून उसके सिर पर होगा।...लेकिन इन्सान प्यासा है तो उसका क्या इलाज हो ? उससे कहो, इन्सान से कहो—दाऊद के साथ सात आवाज़ों को दोहराए ! खुदावन्द, खुदा की आवाज़ पानियों के ऊपर है—खुदावन्द, खुदा की भयानक सिहरा देने वाली आवाज़ ! इस आवाज़ से लेबनान के देवदार टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इस आवाज़ से आग के शोले निकलते हैं। इस आवाज़ से वीराने काँप उठते हैं। जंगल सूने हो जाते हैं, और उसकी विराटता के पुजारी कह उठते हैं—'पावन हो ! पावन हो ! पावन हो !' मगर, तुम फिर भी कहते हो—मैं प्यासा हूँ। मैं प्यासा हूँ !" माइकेल ने कहा।

"भूख से इन्सान पैदा होता है। उम्र भर उसे भूख सताती है—प्रेम की, रोटी की, शान्ति की।" वस्तुवादी गुलशन ने कहा—"भूख और प्यास हमारे सबसे बड़े भूत हैं। मैं सबसे पहले इन भूतों से मुक्ति पाना चाहता हूँ। दूसरी मुक्ति मुझे आप से आप मिल जाएगी।"

कमाल गाता हुआ चढ़ाई पर आ गया।

"लोगों को पाप का एहसास इकट्ठा करता है। यहाँ मासूमियत के एहसास ने कहीं का न रखा ! काश हमने एकआध छोटा-मोटा पाप कर लिया होता ! इस मासूमियत के एहसास की रस्सियों से हम सब एक-दूसरे के साथ जकड़े हुए हैं। किसी दिन हममें से किसी ने इस रस्सी को तोड़ा कि हम सब हमेशा-हमेशा के लिए तितर-बितर हुए !" हरिशंकर ने कहा।

तलअत अब एक दूसरी चट्टान पर जा बैठी थी और सबकी तरफ़ से पीठ किए यादी

को देख रही थी। "ऐसा कभी न होगा !" उसने मुड़ कर उत्तर दिया। "हमेशा हमारी कल्चर, हमारा बैकग्राउंड, हमारा बहुत ऊँचा मॉरेल-कोड हमारे आड़े आ जाएगा !"

"नहीं, तनअत बेगम !" हरिशंकर ने कहा, "हमारी कल्चर की रस्सी तो पहले ही टूट चुकी है; जिसके एक सिरे पर तुम और दूसरे सिर पर में हवा में निराधार लटक रहे हैं !"

"अपने भूतों को भूल जाओ ! अपने भूतों को भूल जाओ !" गुलशन ने कहा।

"फिर शीशे का बड़ा दरवाज़ा खुला। उसमें से जो लोग अन्दर आ रहे थे, उनमें चम्पा भी थी 'हैलो', उसने कहा, और मेरी तरफ़ आई। 'ये कौन लोग हैं ? यह कौन जगह है ?' यह चूज़े की सराय है, और मैं जहाज़ के दफ़्तर फ़ोन कर रहा हूँ। मैं फ़िलहाल बहुत सेफ़ हूँ। मेरे चारों ओर शहर की पत्थर की इमारतें खड़ी हैं। मेरे पैर के नीचे ठोस ज़मीन है, मगर मुझे बेहद डर लगा। चम्पा बाज़ी मेरे सामने मौजूद हैं। उनके बाल भी वही हैं। साड़ी भी उसी अन्दाज़ में पहन रखी है। समय का अलाव जल रहा है, और वे उसमें बड़ी निखरी हुई नज़र आ रही हैं; और, मुझे यह भी एहसास है कि मुझे उन्हें देख कर कोई ख़ुशी नहीं हुई—न कोई रंज, न कोई झुँझलाहट। बल्कि यह कि मैं जल्दी से जल्दी यहाँ से चीखता हुआ भाग जाना चाहता हूँ। मैं क्या कह सकता हूँ कि तुम चम्पा हो ! अगर तुम दुबारा दस-पन्द्रह साल तक भी मुझे नज़र न आओ, तो मुझे कोई चिन्ता न होगी। पन्द्रह बरस पहले मैं तुमको देवी कहा करता था। अब तुम उस समय से भी ज़्यादा ख़ूबसूरत नज़र आ रही हो। ज़्यादा समझदार, गम्भीर, दूरदर्शी...अल्लाह जाने तुम क्या-क्या बन चुकी हो। मैंने सुना था कि आप आजकल अपनी आवाज़ उर्दू में 'डब' कर रही हैं, किसी फ़िल्म के लिए। शायद आले कह रहा था ?" मैंने शिष्टाचार के नाते बातचीत शुरू की।

मुझे लगा जैसे वह मुझे कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात बताना चाहती थी, मगर ख़ामोश हो गई।

आसमान में बादल घिर आए थे, और हल्की-फुल्की बारिश शुरू हो चुकी थी। "चम्पा बाजी, सामने कौन फ़िल्म हो रहा है ?"—मैंने फिर शिष्टाचार का ध्यान करते हुए बातचीत की कोशिश की। जो लोग हॉल में से बाहर निकल रहे थे, उनके चेहरे उदास थे। एक मजबूरी-सी सारे माहौल पर छाई थी। रोशनियाँ ग़मगीन थीं। संगीत रो रहा था। सड़क पर मोटरों और बसों के चलने की आवाज़ में मुरझायापन था। समय घिसटता जा रहा था। वह शीशे की बड़ी दीवार से नाक चिपका कर खड़ी हो गई और बाहर ट्रैफ़िक को देखने लगी। मैं जल्दी से उसे 'खुदाहाफिज़' कह कर बाहर आ गया।

"अब मैंने उसको बहुत पीछे खड़ा छोड़ दिया है। मैं घर की ओर जा रहा हूँ। वह इस असीम उदासी, सन्नाटे के शोर वाले इस भँवर में अकेली, चुपचाप शीशे के दरवाज़े के पास खड़ी रह गई है। मैं क्यों इतना थक गया हूँ ? मुझे चुपका बैठ जाने दो।" कमाल ने पास के एक पत्थर पर बैठने के बाद कहा।

"लकड़ी जल कोयला भई, कोयला जल भयो राख।
मैं बिरहन ऐसी जली, कोयला भई न राख।"

—चन्द्रा ने गाया।

"चोरों की तरह हमने भी अपने-अपने देवता जगाए। मगर देखो, क्या हुआ ? देवता

साफ़ चोट दे गए !" तलअत ने कहा।

"कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खइयो माँस।
दुइ नैना मत खाइयो, मोहे पिया मिलन की आस !"

—चन्द्रा ने गाया।

"हरे रंग का कुहरा अब सब जगह फैल गया है। सब इस कुहरे में बहते चले जा रहे हैं। मैं अंधकार के किनारे, उजाले और भय के संगम पर पाँव टिकाए सोने के रंग वाले भगवान प्रजापति के समान फिर से चीज़ों के नाम रख रही हूँ।" तलअत ने कहा।

"देखो !" उसने चट्टान पर खड़े होकर क्षितिज की तरफ़ इशारा किया—"माइकेल उधर तुम्हारा येरूशलम है ! हम सबका येरूशलम है !"

"और येरूशलम भी बँटा हुआ है !" हरिशंकर ने उसे याद दिलाया।

"और, पहाड़ियों पर हज़रत दाऊद के गीतकार कराहते फिर रहे हैं। सुर ख़त्म हो चुके। सलीबों पर ईसा के साथ हमें लटकाया गया है। ईसा के बजाय हम सूली पर चढ़ते हैं, क्योंकि हम सबसे बड़े चोर थे। हमने ख़ुदा के ख़जाने में से ख़ुशी की चोरी करनी चाही थी !" तलअत ने कहा।

देवी शीशे के दरवाज़े के पीछे खड़ी रह गयी है। अब मुझे कुछ याद नहीं। गुज़रते हुए बरस बगूलों की तरह मेरे चारों ओर मँडला रहे हैं। सड़कों पर बारिश में रात की रोशनियाँ झिलमिलाती हैं। सोते हुए मकानों की चिमनियों पर लुढ़कता हुआ चाँद समुन्दर की ओर जा रहा है। नदी के किनारे, फूलों से लदे सुनहरे बाग़ों में, ईस्ट-एंग्लिया के जंगलों में तेज़ हवाएँ चल रही हैं। सुनसान बन्दरगाहों में काले पानी पर रात के पंछी चक्कर काट रहे हैं।

"मेरे सामने से लोगों की भीड़ें गुज़रती हैं। झील में डोंगियाँ तैरती हैं। मैं किनारे पर हूँ। मुझे अब अपने जहाज़ का पता लगाना है। ऐसा जहाज़, जिसकी रोशनियाँ बुझ गई हों, जो चुपके-से समुन्दर के गहरे अँधेरे में दाखिल हो जाए। ऐसा जहाज़, जो सिर्फ़ उस दिशा को जाता हो जहाँ कोई स्वागत कहने वाला न होगा" कमाल ने कहा।

कुहरा अब बहुत गहरा हो चुका था।

"सजन सकारे जाएँगे, नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर भोर कबहु न होय !"

—चन्द्रा गाती हुई पहाड़ी के नीचे उतर गई।

"रूप और नाम !" हरिशंकर ने कहा।

"विद्या और अविद्या !" तलअत ने कहा।

"काण्ट और वेदान्त !" माइकेल ने कहा।

"अब हमारी समझ में आ गया है !" सबने एक स्वर में कहा।

"क्योंकि भावनाओं और विचारों की सबसे ऊँची चोटी पर हमेशा वही अकेला खड़ा रह जाता है। अकेला, हमेशा से हमेशा तक रहने वाला, जिसका नाम गौतम है और माइकेल और हरि और खिल, और कमाल रज़ा...! उसका अकेलापन अमिट है !"

ठंडी, अँधेरी हवाओं में उनकी आवाज़ डूब गयी और हरे कुहरे ने उनको अपने अन्दर ढाँप लिया।

95

तलअत दूसरे दिन मुँह-अँधेरे ट्यूब में चैलसी रवाना हुई। उस समय बहुत सख़्त सर्दी पड़ रही थी, और धुंध की वजह से हाथ को हाथ सुझाई न देता था। अंडरग्राउंड स्टेशन अभी सुनसान पड़े थे। वह चैलसी पहुँच कर उस जानी-पहचानी सड़क पर चलने लगी जिस पर कई साल से चलती आई थी। यह रास्ता भी ख़त्म हुआ, उसने सोचा। कमला के ब्लॉक पर पहुँच कर अपनी आदत के अनुसार फ़र्न के पत्तों को छुआ। बूढ़े पोर्टर ने, जिसका एक हाथ कटा हुआ था, उसे देख कर सिर हिलाया और मुस्कराया। बरसों से मिस्टर जंकिंज़ और तलअत में यह संवाद होता आया था : 'कैसा अच्छा मौसम है', या 'कैसा बुरा मौसम है', या 'अच्छी हवा चल रही है', या 'बहार आने वाली है।' मिस्टर जंकिंज़ जीवन के इस ड्रामे का मौन 'कोरस' था। मिस्टर जंकिंज़, जिसका दायाँ हाथ बर्मा के मोर्चे पर कट गया था, लिफ़्ट के पास खड़ा रह गया। तलअत ऊपर पहुँची। गैलरी के मोटे लाल क़ालीनों पर से गुज़र कर उसने कमला के फ़्लैट के दरवाज़े पर दस्तक दी। आज मानो जो कुछ हो रहा था—एक उदास-से रहस्य की हैसियत रखता था। कमला ने दरवाज़ा खोला। उसका सामान क़ालीन पर बिखरा पड़ा था। चुपचाप एक शब्द कहे बिना दोनों पैकिंग में जुट गईं। इतने बरसों में कितनी गृहस्थी जमा हो गई थी—बर्तन, पुस्तकें, कपड़े। 'यह भी तुम ले लो !' 'यह भी तुम ले लो !' कमला मशीनी ढंग से कहती गई। किताबों को बड़े ट्रंक में ठूँसा गया। जूते निकाल कर बाहर फेंके गए। तस्वीरें दीवारों पर से उतरीं। सामान के ढेर पर बैठ कर एक अटैची-केस बन्द करते-करते कमला ने सहसा हवा में हाथ लहरा कर "ऐश वेडनेसडे" पढ़ना शुरू कर दी, और फिर उसी तरह चुप होकर स्लीपर और हाउस-कोट समेटने में व्यस्त हो गई। बाहर अभी धुँधलका मौजूद था। एक-आध रोशनी किसी फ़्लैट में झिलमिला जाती थी। "यह गौतम साहब भूल गए यहाँ पर।" तलअत ने एक किताब उठा कर उसे उल्टा-पल्टा और सन्दूक़ में ऊपर से इस तरह गिरा दिया, जिस तरह तालाब में पत्थर गिराते हैं। अब वह थक गई। चाय बनी। सवेरा हुआ। आध घंटे बाद कमला कैनेडा के लिए रवाना हो गई।

अब तलअत ने कमाल का सामान पैक करने के लिए वापस घर की राह ली। सुबह दस बजे कमाल की बोट-ट्रेन छूट रही थी।

96

जहाज़ के बरामदे में ऑर्केस्ट्रा का, विदाई-संगीत का स्वर ऊँचा हुआ। कमाल का एकाएक दिल भर आया। वह रेलिंग पर झुका नीचे देखता रहा। लंदन में उसे बोट-ट्रेन पर पहुँचाने के लिए बीसियों लोग आए थे। आँसू पोंछे गए थे, रूमाल हिलाये गए थे। अजीत और तरुणा ने तो चॉल ! चॉल ! चॉल ! भी आरम्भ कर दिया था। 'क़दम-क़दम बढ़ाये जा, ख़ुशी के गीत गाये जा !' मानो वह सिपाही था, और एक ऐसे युद्ध में कूदने जा रहा था, जिसका उद्देश्य किसी को मालूम न था।

मगर, पोर्टस्मिथ में वह अकेला था। अजनबी बन्दरगाह, अजनबी मुसाफ़िर; दुनिया का

अजनबीपन अभी से उसके लिए शुरू हो गया था। बड़ी मुश्किल से उसने अपने उमड़ते हुए आँसुओं को रोका। पास ही दो बूढ़े खड़े थे। उनमें से एक ने वात्सल्य से उसके बाजू पर अपना हाथ रख दिया। कमाल ने आभार-विगलित होकर उसे देखा। बूढ़ा सूनी-सूनी आँखों से बन्दरगाह को देख रहा था। जहाज़ ने लंगर उठाया तो वह अपने कैबिन में आ गया। और सारा दिन उसने अपने कैबिन में गुज़ार दिया। अपने सहयात्री से भी बात न की। जो कोई इतालवी वस्तुनिर्माता था।

दूसरे दिन उसने सारे जहाज़ का निरीक्षण किया। हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी फ़ॉरेन-सर्विस के कुछ उच्चाधिकारी और उनके परिवार। फ़ौजी अफ़सर...विद्यार्थी, जो सरकारी वृत्तियों पर यात्रा कर रहे थे। कुछ पाकिस्तानी, हिन्दुस्तानी और लंका की लड़कियाँ, जो डॉक्टरी और शिक्षा की डिग्रियाँ लेकर लौट रही थीं। अंग्रेज़ और अमेरिकन, जो कॉमनवेल्थ और अमेरिका-सहायता के प्रोग्राम के सिलसिले में महाद्वीप की उन्नति के विचार से जा रहे थे। टूरिस्ट क्लास का समूह ज़्यादा दिलचस्प था। विद्यार्थी जो अपने खर्चे पर पढ़ने आए थे, अनपढ़ सिख कारोबारी, मिशनरी, कैथोलिक संन्यासिनें। एक फ्रांसीसी भिक्षु। बर्लिन की मस्जिद के क़ादियानी धर्मप्रचारक और उनका परिवार। 'पंडितजी', जिनको कमाल लंदन में भी जानता था; जो छुट्टी पर घर जा रहे थे, और ओरिएंटल स्कूल में पढ़ाते थे। शुद्ध हिन्दी बोलते थे। मेरठ के रहने वाले थे। घुँघराले लम्बे-लम्बे बाल। लड़कियों की-सी ख़ूबसूरत शक्ल, दुबले-पतले, नाज़ुक से; महात्मा गांधी के चेले, बेहद विनम्र, चिल्ले के जाड़ों में भी लंदन में धोती और चप्पल पहनते। व्रज के लोकगीतों पर शोधकार्य कर रहे थे। 'री अम्मा मोरे भैया को भेजियो री कि सावन आया!' ख़ूब लहक-लहक कर गाते। उन्होंने छूटते ही कमाल से एक-एक करके सारे मित्रों की कुशलक्षेम पूछी और कुमारी निर्मला के देहान्त पर दुःख प्रकट किया। माइकेल भी, जो जिब्राल्टर तक जा रहा था, टूरिस्ट क्लास में था।

शुरू-शुरू में फ़र्स्ट-क्लास की लड़कियों ने कमाल को बेहद दिलचस्पी से देखा, मगर जब उसने ख़ुद कोई पहल न की तो वे उकता कर दूसरे लोगों की तरफ़ ध्यान देने लगीं।

एक दिन कमाल बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठा रेलिंग में पैर अटकाये सचमुच ही समुन्दर की लहरें गिन रहा था कि पीछे से किसी की आवाज़ आई।

"मैं यहाँ बैठ सकता हूँ?"

"ज़रूर !" उसने सिर उठा कर देखा। वही बूढ़ा खड़ा मुस्करा रहा था, जिसने पहले दिन कमाल को दिलासा दिया था। वह इस अपरिचित बूढ़े की इस छोटी-सी मेहरबानी का बहुत आभारी था। वह तुरन्त उठ बैठा, और उसके लिए दूसरी आरामकुर्सी खींच ली।

"फ्रेड, पॉल ! तुम लोग भी इधर आ जाओ।"

"ठहरो, हम बियर ले आएँ।"

कुछ क्षणों के बाद दो और यूरोपियन आकर पास बैठ गए।

"मेरा नाम डॉक्टर हैंस क्रैमर है। मैं आस्ट्रियन हूँ। मैं और मेरे दोनों दोस्त इतिहास के प्रोफ़ेसर हैं और इंडिया जा रहे हैं। तुम इंडियन हो?"

"हाँ।"

"इसलिए मैंने पहले से पूछ कर इत्मीनान कर लिया। क्योंकि, कल मैंने उस सामने

वाली लड़की को 'इंडियन' कह दिया तो वह बिफर गई। वह पाकिस्तानी है।" तीनों खोखली-सी हँसी हँसे।

कमाल मौन रहा।

"तुम इंडिया में रहते हो?"

"जी !"

"मैं बूडा-जयंटी के लिए जा रहा हूँ।" डॉक्टर क्रैमर ने कहा।

"ओह?...ओह ! बुद्ध-जयन्ती !!"

"बूडा इतिहास का सबसे बड़ा आदमी था।" पॉल ने विचार व्यक्त किया। "तुम हिन्दू हो ना?"

"जी नहीं।"

"ओह, माफ़ करना। मुझसे फिर ग़लती हुई। तो क्या तुम महमडन हो?"

"जी।"

"तो फिर इंडिया में कैसे रहते हो?"

"यही अब तक खुद मेरी समझ में नहीं आया।" कमाल ने जवाब दिया।

"हाई डॉक !" एक अमेरिकन ने बड़े खुश-खुश पास आते हुए कहा, "हाई !" उसने बेतकल्लुफ़ी से कमाल को सम्बोधित किया।

"हाई !" कमाल ने जवाब दिया।

"मेरा नाम टामस जेरल्ड एटकिंज़ है। मगर मुझे टॉम पुकारो। और तुम?"

"मुझे कमाल कहते हैं।"

"मैं तुमको किम कहूँगा। किप्लिंग का 'किम' !"

"लो बियर पियो, ओल्ड टॉम !" कमाल ने उकताहट के साथ कहा।

"बाकी जर्नलिस्ट लोग कहाँ हैं?" फ्रेड ने पूछा।

वे लोग भी आ गए। उनमें से एक फ्रांसीसी था, मॉरिस एंडोचायना जा रहा था। दूसरा एक प्रसिद्ध अंग्रेज कवि था और बी. बी. सी. के प्रतिनिधि के रूप में बुद्ध की पच्चीस-सौवीं बरसी में शामिल होने के लिए भारत जा रहा था। कुछ धनी अमेरिकन घुमक्कड़ महिलाएँ थीं जो अमेरिका से इसी यात्रा पर निकली थीं। एक फ्रांसीसी भिक्षु नारंगी चादर में लिपटा सबसे अलग-थलग एक कोने में बैठा रहता। वह भी गया और बनारस जा रहा था। वह 'टूरिस्ट' क्लास का यात्री था।

"मैं देखता हूँ कि तुम दौड़-दौड़ कर नीचे बहुत जाते हो।" खाने के समय टॉम ने मुस्करा कर दोस्ताना ढंग से कमाल से कहा। "क्या वहाँ तुम्हारी गर्ल फ्रेंड सफ़र कर रही है?"

"नहीं, मेरा पुराना दोस्त है—माइकेल गोल्डस्टेन। केम्ब्रिज में मेरे साथ था। उससे आप सब ज़रूर मिलिएगा।"

"माइकेल गोल्डस्टेन ! यहूदी है?" पॉल ने पूछा।

"हाँ।"

"ओह।"

ख़ामोशी छा गई।

"और सोने में सुहागा यह"—कमाल ने गला साफ़ करके कहा—"कि इज़राइल जा रहा है।"

शाम को कमाल ने माइकेल को उन सब लोगों से मिलवाया। पंडितजी भी इस ग्रुप में शामिल हो गए। अब इन सबकी उठक-बैठक साथ रहती। एक बेगम साहिबा ने, जो न्यूयार्क से आ रही थीं, कई बार कमाल को अपनी महफ़िलों में बुलाया। उनकी लड़की भी साथ थी, और यूनिवर्सिटी ऑफ़ सिन-सिनाटी से सोशल साइंस में एम. ए. करके आ रही थी। बेगम साहिबा के ग्रुप में उच्च फ़ौजी अफ़सर और दूसरे बड़े लोग शरीक़ रहते। दो मुसलमान लड़कियाँ और थीं, वे हमेशा निटिंग करती रहतीं। एक मराठी लड़की गाती बहुत उम्दा थी। यूरोपियन और अमेरिकन लड़कियाँ हर वक़्त सूर्य-स्नान ही करती रहतीं। कमाल की शक्लसूरत और कम मिलने-जुलने की आदत सबको बहुत भा गई थी। कौन कह सकता था कि यह वही हर वक़्त हुल्लड़ मचाने वाला लड़का है, जो ऐसा साधु-स्वभाव बना हुआ है।

दिन भर और रात गए तक वे सब इधर-उधर कुर्सियों पर बैठे पुस्तकों पर समीक्षा करते। इतिहास और दर्शन खँगाला जाता। पंडितजी कीर्तन करते, लीला भास्कर गाती, रात को नृत्य होता, सिनेमा देखा जाता। हर तरफ़ ज़ोर-शोर में फ़्लर्टेशन चल रहे थे। छोटे-छोटे क़िस्से तैयार हो गए थे। विवाहित बेगमें मुसलमान लड़कियों की एक-एक बात नज़र में रखतीं। जहाज़ पर एक शादी भी लगभग तै हो गई थी। एक पठान इंजिनियर साहब थे। एक कराची की शिक्षाविशेषज्ञ साहबज़ादी थीं। दोनों घंटों डैक पर खड़े होकर समुंदर के दृश्य का अध्ययन करें तो निःसंदेह बहन रशीदा सुलताना के कानों में घंटियाँ बजने लगेंगी। एक विवाहित बुज़ुर्ग जो अकेले सफ़र कर रहे थे, बहन एड्वेना रत्न वर्धन पर बहुत मेहरबान हो गए थे जो कोलम्बो जा रही थी। उसका बड़ा किस्सा रहा। कमाल यह सब देखा करता। जहाज़ की इस छोटी-सी सीमित दुनिया में इन्सानों की सारी अच्छाइयाँ, सारी कमज़ोरियाँ, हर वक्त आँखों के सामने रहती थीं। काश, मैं भी इन आम नॉर्मल इन्सानों में शामिल हो सकता !—कमाल कभी-कभी झुँझला कर सोचता, और फिर डॉक्टर क्रैमर के पास जा बैठता। सफ़र बहुत तेज़ी से ख़त्म हो रहा था।

कल सुबह जहाज़ जिब्राल्टर पहुँचने वाला था। कमाल विभिन्न गुटों में बैठ कर लोगों की बातें सुन कर, ताश खेल कर, स्वीमिंग करके, लायब्रेरी में पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ कर अब बुरी तरह उकता चुका था। एक अंग्रेज़ लड़की से फ़िल्मों पर विचार-विमर्श करने के बाद वह फिर सारे जहाज़ का चक्कर लगाकर आख़िर सबसे ऊपर के डैक पर जाकर खड़ा हो गया।

पीछे से ज़ोर-ज़ोर से बातें करने की आवाज़ आई। उसने मुड़ कर देखा। दूर किश्तियों के पास डॉक्टर क्रैमर अपने दोस्तों के साथ बैठे थे। माइकेल रेलिंग के सहारे खड़ा उनको सम्बोधित कर रहा था। वह अमेरिकन प्रोफ़ेसर लड़की फ़र्श पर दरी बिछाए कोहनियों के सहारे लेटी थी। किसी ने गिटार बजाना शुरू कर दिया था।

"लिखो।" माइकेल की आवाज़ आई।

"क्या लिखूँ?" टॉम ने कहा।

"जो मैं कहता हूँ, उसकी ग़लत रिपोर्ट करो। क्योंकि ख़ुदावन्द ख़ुदा की वादा की हुई रोटी तुम इसी तरह झूठ बोल कर कमाते हो !" माइकेल गरजा।

"ओह !" कमाल ने सोचा। माइकेल और टॉम में फिर झगड़ा शुरू हुआ।

"वह देखो, कमाल रज़ा आ रहा है। उसकी बातें भी ध्यान से सुनो, और वापस जाकर जो किताब लिखो, उसमें ज़िक्र करना कि किस तरह एक इंडियन मुस्लिम तुम्हें जहाज़ पर मिला जो पाकिस्तान का कट्टर विरोधी था, मगर सन् '55 में हिन्दुस्तान में भी कोई उसकी बात न पूछता था।"

"मुसीबत यह है, माइक" टॉम ने कहा, "कि तुम भावुक हो ! आख़िर हो ना असल एशियाई !"

"मैं भावनाओं को लज्जाजनक या गाली नहीं समझता।" माइकेल ने मुँह लटका कर जवाब दिया।

'अहा हा।" पंडितजी ने लटें छिटका कर कहा—"आइए रज़ाजी। माइकेल अपना एक और भाषण दे रहा है !"

"अहा, पंडितजी ! माइकेल की कटुता का विषनाशक मेरे पास भी नहीं।" कमाल ने हँस कर जवाब दिया।

अंग्रेज़ कवि ग़ौर से दोनों को देखता रहा।

"मुसीबत यह है" टॉम ने कमाल से कहा, "जो विदेशी तुम्हारे देश के बारे में कुछ लिखता है, तुम उसे ई. एम. फ़ॉर्स्टर के पैमाने से नापते हो, जो बेचारा ख़ुद आइडियलिस्ट था। बौनों की दुनिया में रहने वाला देव !"

"फ़ॉर्स्टर ने अपना नॉवेल सन् 1924 में लिखा था। उस वक़्त उसने डॉक्टर अज़ीज़ को भारत के प्रतिनिधि पात्र के रूप में पेश किया" अंग्रेज़ कवि ने कहा। "आज अगर फ़ॉर्स्टर दूसरा 'पैसेज टू इंडिया' लिखे तो उसे अपना यह पात्र बदलना पड़ेगा। अब डॉक्टर अज़ीज़ हिन्दुस्तान का प्रतिनिधि नहीं रहा। अब हर मुसलमान को पाकिस्तानी ख़याल किया जाएगा। अब सिर्फ़ हिन्दू हिन्दुस्तान का सच्चा प्रतिनिधि समझा जाता है।"

"हाँ!" कमाल ने उत्तर दिया।

"कमाल तुमने बहुत दुःख उठाए हैं?" कवि ने पूछा।

"हाँ, मगर मैं सताए हुए आदमी के रूप में नज़र नहीं आना चाहता। हिन्दुस्तान की हमेशा-हमेशा से दुःख सहने वाली आत्मा ! यह सन्तोष, यह ग्रेस, यह दुःख उठाने और सहने की आदत; तुम, मुसियो पॉल बूलाँ की तरह धोती पहन कर चौके में बैठ जाओ, तब भी नहीं समझ सकते !"

"सेंट अगस्टीन तो बनारस में नहीं पैदा हुए थे।" मारीस ने कहा।

"कैथोलिक जीवन-दर्शन एक ख़ास Cult था। सारी ज़िंदगी को उसने अपने अन्दर नहीं समेटा; वरना तुम आज कैथोलिक होने के बावजूद इंडोचायना लड़ने के लिए न जा रहे होते।" कमाल ने चिढ़ कर उत्तर दिया।

"ऑब्ज़र्वर और Combatant में क्या अन्तर है?" मारीस ने पूछा।

"यह तुम अपने आप से पूछो। दूसरे युद्ध करें, तुम ऑब्ज़र्व करते रहो। इससे क्या अपराध का एहसास कम हो जाता है?" कमाल ने कहा।

"तुम तो मुझे कुएकर्ज़ की तरह पेशेवर शान्तिवादी मालूम होते हो।" टॉम ने कहा।

'भोर भये गैयन के पाछे मधुबन मोहि पठायो !' डैक के सिरे पर लीला भास्कर ने गाना शुरू किया। कमाल टॉम की बात की उपेक्षा करके गाने की ओर आकर्षित हो गया। पंडितजी ने ताल देनी शुरू की। कुछ क्षण बाद वे दोनों लीला भास्कर की ओर चले गए।

"हर कल्चर की एक गुप्त भाषा है, जिसे केवल वही कल्चर समझ सकती है।" अंग्रेज़ कवि ने कहा।

"फिर स्पेंगलर !" टॉम ने कहा, "पंडित और किम की कल्चर एक कहाँ है?"

"तुम तो, ख़ैर माइकेल की भी गुप्त भाषा नहीं समझ सकते हो।" अंग्रेज़ कवि ने मुस्करा कर कहा, "ये रहस्य तुम्हारी समझ से परे की चीज़ें हैं, टाॅमस जे. एटकिंज़ !"

माइकेल ड्राई मार्टिनी के प्रभाव में ग्रस्त था। वह एक कोने में चुपका बैठा था। अपना नाम सुन कर वह चौंका। मैकेनिकी अन्दाज़ से पलट कर उसने वहीं से बात शुरू कर दी जहाँ से उसके भाषण का सिलसिला टूटा था।

"लिखो !" उसने गरज कर कहा, "लिखो ! दुनिया के राष्ट्रों के इतिहास का मतलब है—विजय और राज्यों का फैलना, और देशों को आवाद करने से संबद्ध है। मेरे यहाँ इतिहास कड़े से कड़े अत्याचारों और तकलीफ़ों की दास्तान की एक लम्बी कड़ी है। तेरहवीं सदी में मुझे इंग्लिस्तान से निकाला गया। चौदहवीं में फ्रांस से। पन्द्रहवीं में स्पेन ने अपना क़हर मुझ पर तोड़ा। सारा युग मैंने यूरोप के शहरों में अछूतों की तरह ज़िंदा रह कर बिताया। पर मैं, ख़ानाबदोश, दुनिया की फटकारें सहता हुआ, पूर्व और पश्चिम, दोनों जगह, मैंने आँसुओं का दीप जला कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया। मैंने बू-अलीसीना, इब्ने ख़ुल्दून, इमाम गज़ाली अल्फ़ाराबी और ख्वारज़मी के दर्शन को यूरोप में रिवाज दिया। मैंने..."

लीला भास्कर गाती रही। कमाल निचले डैक पर उतर आया। दूसरी ओर सिनेमा दिखाया जा रहा था। वह एक खम्भे से लग कर अँधेरे में खड़ा हो गया। सामने स्क्रीन के पीछे समुन्दर का गहरा बेछोर अँधेरा। स्क्रीन पर एक लोफ़रों की-सी शक्ल वाला, पूर्वी बर्लिन का कम्युनिस्ट जासूस अमेरिकन हीरोइन को उड़ा ले जाने की फ़िक्र में दबेपाँव एक गली में दाख़िल हो रहा था। उसके दोनों हाथों में पिस्तौल थे। फिर, हीरोइन मोज़ा उतार कर छत पर चढ़ गई। दूसरी ओर से हीरो जो शायद राबर्ट टेलर था, कूद कर सामने आया और कम्युनिस्ट विलेन को चारों ख़ाने चित्त गिरा कर हीरोइन को बचाने के लिए लपका।

"आइए आइए, बैठिए कमाल साहब" मिस ख़ान ने कुर्सी खींचते हुए कहा।

"जी नहीं, अब मैं चल दूँ। असल में मैं यह फ़िल्म पहले देख चुका हूँ।"

लड़कियों को खुसफुस करता छोड़ कर वह ड्राइंग-रूम में दाख़िल हुआ जहाँ कराची और कलकत्ते के बड़े-बड़े व्यापारी पैलेस पगाल का ज़िक्र कर रहे थे और क़हक़हे लगा रहे थे। उनके पास से गुज़रता हुआ वह एक खिड़की पर जा खड़ा हुआ।

"क्यों जी, अबके-से 'मर्सिडीज़' ख़रीद कर सड़क के रास्ते से वापस आया जाए कराची, क्या ख़्याल है? वह 'फ़ोर्ड कौंसल' तो मैंने अपने भाई को दे दी !" खिड़की के नीचे बरामदे में बातें हो रही थीं।

"अच्छा जी, मैं अप्रैल में यू. एन. सेशन के लिए न्यूयार्क जा रही हूँ। मुझे अपनी भाभी का पता ज़रूर दे दीजिएगा। 'शेवर' तो अब मैं '56 का मॉडल ही लाऊँगी।"

"मैंने भी अपनी लड़की को इंग्लिस्तान के स्कूल में भरती करा दिया है, जी। पाकिस्तान में तो स्कूल बिलकुल निकम्मे हैं। मेरा इरादा है, छोटे बच्चों को भी विलायत ही भेज दूँ।"

"क्या किया जाए, फ़ॉरिन-एक्सचेंज ज़्यादा नहीं मिलता।"

"मेरी वड़ी लड़की ने लाहौर से एम. ए. कर लिया है, जी। कहीं उसकी शादी कराइए।"

"कैसा लड़का चाहिए?"

"कम से कम एम. एस-सी. तो हो।"

"कहीं काम कर रही है बच्ची?"

"जी हाँ, किंडरगार्टन स्कूल में पढ़ाती है। वैसे उसको तो अमेरिका का स्कॉलरशिप भी मिल गया है—मगर, मैं चाहती हूँ कि शादी..."

"हाँ जी, यह तो बिलकुल ठीक है। यह वैग रूम से लिया?"

"आप अबके अमेरिका से बहुत बड़ा फ़्रिजेडेयर ले आयीं !"

"जी क्या बताऊँ, ज़िंदगी की ज़रूरतें बढ़ती ही चली जा रही हैं।"

"यह तो बिलकुल ठीक है।"

कमाल खिड़की से हट आया। सीढ़ियाँ उतर कर टूरिस्ट क्लास का चक्कर लगाने लगा। डैक पर सरदार लोग दरी बिछाये 'हीर' गाने में मगन थे। कमाल माइकेल के कैबिन के सामने से गुज़रा और उसे एकाएक ख़याल आया कि कल सुबह माइकेल जिब्राल्टर पर उतर जायेगा। और, उसके बाद ऐन मुमकिन है कि सारी उम्र—मरते दम तक—उससे दोबारा भेंट न हो। कैसी अजीब बात थी ! सरदार लोगों के गाने की आवाज़ मद्धम पड़ गई। वह माइकेल के कैबिन के वाहर रेलिंग पर झुका खड़ा रहा। सामने पूर्णिमा का चाँद क्षितिज पर उदय हो रहा था। समुन्दर वेहद शान्त था। जहाज़ लहरों को चीरता शान से आगे बढ़ रहा था। डेक के इस हिस्से में विलकुल एकान्त था। केवल फ्रांसीसी भिक्षु एक सिरे पर कमाल की ओर पीठ किए बैठा था।

कमाल का दिल धड़कता रहा। सन्नाटा इतने ज़ोर से गरजा कि उसे महसूस हुआ कि उसके कानों के पर्दे फट जाएँगे। उसे टॉम और अंग्रेज़ क़ाने की बातें याद आईं। उसका दिल वैठने-सा लगा। वह रेलिंग को मज़बूती से पकड़ कर खड़ा हो गया।

"मैं स्टेटलेस हूँ ! मैं स्टेटलेस हूँ !!" उसने पहली मर्तबा अपने आप से कहा।

समुन्दर की लहरों के सफ़ेद झाग चाँदनी में चमकते रहे। दूर-दूर दुनिया के चारों खूँट चाँदनी की इस विस्तृत नीली चादर पर यात्रियों से भरे हुए जहाज़ चल रहे थे। 'कॉन्स्टीट्यूशन' और 'क्वीन एलिजाबेथ'...लखपतियों की याद...तिजारती और जंगी जहाज़। इन किश्तियों से संगीत के सुर ऊपर उठ रहे थे। दूर-दूर के देशों के लोग इनमें सवार थे। यूरोप के विद्वान, इटली के पादरी, अमेरिकन पर्यटक, मेक्सिको के चित्रकार, हिन्दुस्तान के नर्तक। दुनिया में अभी शान्ति थी। दिल्ली में पंडित नेहरू शासन करते थे। ज़िंदगी में बड़ी गहमागहमी थी।

"बड़े नसीब वाले हैं वे लोग जिन्हें दिल का चैन नसीब है। भाई, मुझे शान्ति चाहिए !" कमाल ने धीरे से कहा।

फ्रांसीसी भिक्षु ने आँखें उठा कर उसे देखा। उसके चेहरे पर पूर्ण शान्ति थी और शाश्वत प्रसन्नता। ऐसी ही एक पूर्णिमा की रात ढाई हज़ार साल पहले, समुन्दर के उस पार, एक देश

में शाक्य मुनि ने जन्म लिया था। चतुर्दशी का चाँद समुन्दर की लहरों पर इधर-उधर तैरा किया। उसकी तेज़ और ठंडी किरणें कमाल और भिक्षु के चेहरे पर पड़ रही थीं।

"मुझे मेरे विचारों से मुक्ति दिलाओ !" कमाल ने कहा।

भिक्षु अपनी रहस्यपूर्ण नीली आँखों से उसे देखता रहा। "विचार...विचार स्वयं को नहीं जान सकता। विचार अपने आप से बाहर नहीं जा सकता। सृष्टि से बाहर कोई ईश्वर नहीं है, और ईश्वर से बाहर कोई सृष्टि नहीं है। सत्य और असत्य में कोई अन्तर नहीं, लेकिन इन सबके ऊपर परम सत्ता है जो सन्नाटा है।" उसने फ्रांसीसी में कहा।

"मुझे इस सन्नाटे से बड़ा डर लगता है।" कमाल ने कहा।

"शून्य !...सन्नाटा !...शून्यता ! सूना नितांत, जो अन्तिम सत्ता है, जो शून्य की परिकल्पना है।"

"मुझे इस परिकल्पना से भी डर लगता है !" कमाल ने कहा। "इस सन्नाटे में मैं अकेला किधर जाऊँगा? तुम भी मेरा साथ नहीं दे सकते !" उसने इस 'महायानी' फ्रांसीसी भिक्षु को शंका की दृष्टि से देखा। भिक्षु जो सारबोन-यूनिवर्सिटी का डॉक्टर ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी था।

"मैं स्टेटलेस हूँ और यह तुम्हारा 'सुखवती' नहीं है !" उसने दिल में कहा, और भारी-भारी क़दम रखता अपने डैक पर वापस आ गया।

जहाज़ अपना सफ़र तय करता रहा। मंज़िलें और अधिक निकट आती गईं।

97

हिन्दुस्तान का समुद्र-तट ! बम्बई !! घर !! घर ??

कमाल लखनऊ पहुँचा। 'गुलफ़िशाँ' के फाटक में दाख़िल हुआ। उसे दुनिया बदली हुई दिखाई दी। बाग़ के पेड़ जल चुके थे। पौधे सूख गये थे। घास की जगह झाड़-झंखाड़ उगा हुआ था। मोटरख़ाना और अस्तबल गोदाम बने हुए थे। ("जितने रिश्तेदार पाकिस्तान हिजरत करने जाते हैं, अपना-अपना सामान लाकर यहाँ डम्प कर देते हैं।"--ख़ाला बेगम ने कहा।) सर्वेंट क्वार्टर सुनसान पड़ा था। उसकी आँखों ने गंगादीन को ढूँढ़ा। क़दीर और क़मरुन को खोजा। हुसैनी की बीवी और रामऔतार और छुटकी को आवाज़ें दीं।

अन्त में वह अपने कमरे में जाकर पलंग पर गिर गया, और चुपके-चुपके रोने लगा। दुनिया वही थी--'गुलफ़िशाँ', लखनऊ, सगे-सम्बन्धी--सब-कुछ वही था। क्या सिर्फ़ वह खुद बदल गया था? क्या वह अपने बाप की ऐंक तंगी की हालत देख कर भावुकतावश व्याकुल था? वह, जिसकी सारी उम्र ज़मींदारों के ख़िलाफ़ नारे लगाते गुज़री थी। ज़मींदारी के ख़त्म हो जाने के कारण अब इतना बड़ा पतन हुआ था कि 'गुलफ़िशाँ' वालों के यहाँ दो वक़्त की रोटी भी मुश्किल से चलती थी। ("बहुत इंकलाब-इंकलाब करते थे। लो, बूढ़े बाप को इक्के पर बैठा देख कर अब तो खुश हो लो।"--नवाब साहब बहादुर ने कहा।) "बड़ी-बड़ी रियासतें तबाह हो गई. तो हम किस गिनती में हैं।" शाम को अप्पी ने उससे कहा। वे उससे मिलने के लिए झाँसी से आई हुई थीं। नानपारा की क्राकरी बिक रही है। राजा सूरजसिंह के पास एक धेला नहीं रहा। अम्मी ने अपने आधे जेवर बेच डाले।

"अब क्या इरादा है ?" कमाल ने अपने बाबा से पूछा—"कर्बला हिजरत कीजिएगा या पाकिस्तान ?"

"यहीं रहेंगे।" उन्होंने इत्मीनान से उत्तर दिया। "कोई हम भगोड़े हैं ?"

कमाल हक्का-बक्का रह गया। "मगर बाबा, आप तो बड़ी धूम-धाम से मुस्लिम-लीग में शामिल हुए थे।"

"हाँ, हाँ, तो फिर ? पाकिस्तान बन गया। ठीक हुआ। अब इसका यह मतलब थोड़े ही है कि हम भी भाग जाएँ यहाँ से ?"

"आप पाकिस्तान को अपना जायज़ वतन समझने के बाद भी हिजरत नहीं करना चाहते, क्योंकि सोचते हैं कि इस बुढ़ापे में कहां दर-बदर मारे-मारे फिरेंगे, या इसलिए कि हिन्दुस्तान को अपना वतन समझते हैं और उससे मुहब्बत के कारण उसे नहीं छोड़ सकते ?"

कमाल आज साफ़-साफ़ मालूम करना चाहता था कि उसके बाप और उसके बाप की नस्ल के लोगों का मनोविज्ञान आख़िर क्या था—उनके आइडियल्ज़, उनका तर्क, उनका साहस या उनकी कायरता।

"अब तुमसे जिरह कौन करे। तुम्हारी खोपड़ी हमेशा की उल्टी है।" नवाब साहब ने उत्तर दिया और घड़ी देखी। उनको आज अदालत से जाकर मुआवजे की क़िस्त के दो सौ रुपए लाने थे। इन्हीं रुपयों से महीने का खर्च चलता था।

"अब मैं आमिर भैया की दुल्हन के दर पर तो जाकर पड़ने से रही, कराची में। यहाँ कम-से-कम अपना घर तो नहीं छिना है। अगर चले गए तो यह भी गया और मुआवज़ा भी ख़त्म। वहाँ कौन क्लेम-वलेम करता फिरेगा। वैसे मेरा दिल नहीं लगता अब यहाँ।" अम्मी बेगम ने कहा।

"मगर, यह तो आपका घर है। आपका शहर, आपका वतन, जनम-जनम का देस।" कमाल ने कहा।

"मुसलमान का कोई वतन नहा है। सारा जहाँ वतन है।" छोटे फूफा ने कहा, जो हाल ही में हिजरत करने कराची गए थे, और इन दिनों सामान का तिया-पाँचा करने आए हुए थे।

कमाल ने इस सम्बन्ध में अधिक विचार-विमर्श व्यर्थ समझा, और उठ कर बाहर आ गया।

कुछ दिन बाद उसने कमर कस कर नौकरी की खोज शुरू की। उसके पास अनगिनत डिग्रियाँ थीं। ट्रिनिटी-कॉलेज, कैम्ब्रिज, इम्पीरियल कॉलेज ऑफ़ साइंस, लन्दन और कई साल उसने इंग्लिस्तान की एक प्रसिद्ध लेबोरेटरी में नौकरी की थी। बरतानिया की नौकरी छोड़ कर वह देश-सेवा की भावना लेकर वापस आया था। यूनिवर्सिटी में जिस जगह के लिए वह कोशिश कर रहा था, वह उसे नहीं मिल सकी, क्योंकि वह मुसलमान था।

छः महीन गुज़र गए। वह दिल्ली के चक्कर लगा-लगा कर पागल हो गया।

"मियाँ, किसी मिनिस्टर से सिफ़ारिश करवा लो !" नवाब साहब ने कहा।

"सिफ़ारिश तो मैं क़यामत तक नहीं कराऊँगा। क्या मुझे अपनी क्वालीफ़िकेशन पर भरोसा नहीं, जो सिफ़ारिशें करवाता फिरूँ ?" -

"यही तो तुम्हारे दिमाग़ में ख़न्नास (शैतान) है।"

अब वह सारा-सारा दिन 'गुलफ़िशाँ' में चुपचाप पड़ा रहता, या तलअत को पत्र लिखता : "हिन्दुस्तान हरगिज़ मत आना। जहाँ तक हो सके वहीं रहे जाओ। यहाँ आओगी तो वही हाल होगा जो मेरा हो रहा है।"

"तुमको क्या हो गया है ?" तलअत जवाब देती। "इतने डीमोरलाइज़्ड क्यों हो गए ? संघर्ष का साहस खो बैठे। यही तो वक़्त है आज़माइश का। डटे रहो। मज़दूरी करो, हल चलाओ, आख़िर इंकलाब का सामना करना इसी को तो कहते हैं। मगर क्या तुम ऐश के सपने देख रहे हो ?"

क्या लड़कियों में हिम्मत ज़्यादा होती है ?—वह सोचता, या वे आदर्शवादी परले दर्ज़े की होती हैं ? फिर भी तलअत के पत्रों से उसको बड़ा सहारा मिल जाता।

गौतम ने उसे लगातार न्यूयार्क से पत्र लिखे। उसने किसी का जवाब न दिया। वह लिखता क्या आखिर ? हरिशंकर अमेरिका से लौट चुका था, और बंगलौर में उसकी नियुक्ति हो गई थी। कमाल ने उसे भी कोई पत्र न लिखा।

भैया साहब ने कराची से डाक बिठा दी—"तुरन्त यहाँ आ जाओ ! एक से एक बढ़िया ओहदे यहाँ मौजूद हैं। बस तुम्हारे आने की देर है। ज़िद छोड़ दो।" वह दुबारा बदली होकर ब्राजील के दूतावास जाने वाले थे, और बराबर लिखा करते—"आ जाओ ! आ जाओ ! आ जाओ !!"

नौबत यह आई कि अब कमाल ने उनके ख़त खोलने भी छोड़ दिए। कुछ दिन बाद उसे बाराबंकी के कॉलेज में काम मिल गया। मगर, क्योंकि भैया साहब पाकिस्तानी थे, और गुलफ़िशाँ और पैतृक-सम्पत्ति में उनका भी हिस्सा था, लिहाज़ा कस्टोडियन का झगड़ा शुरू हो गया। नवाब साहब ने कस्टोडियन के फ़ैसले के विरुद्ध अदालत में मुक़द्दमा दायर कर दिया। अब दिन भर कमाल इस चक्कर में मारा-मारा फिरता। उसके लहजें में अब तीखापन आ गया था। वह बहुत कम हँसता था। ऊधम मचाना वह कब का भूल चुका था।

"बुर्ज़ुआ इन्क़लावी थे हज़रत ! जब असलियत का सामना करना पड़ा तो बेटा चीं बोल गए !" कॉफी-हाउस में कॉमरेड्ज़ ने कहा।

हुसैनी और उनकी बीवी भैया साहब की दुल्हन के साथ कराची जा चुके थे। क़दीर और क़मरुन मुद्दतें गुजरीं, मोटर बिकने के बाद मिर्ज़ापुर वापस चले गए थे।

एक रोज़ वह हमेशा की तरह दिल्ली में लाज के यहाँ बेला रोड पर ठहरा था, और एक अर्ज़ी लिख कर मैंडेज होडल के डाकख़ाने में पोस्ट करने के लिए जा रहा था, कि रास्ते में उसे टाम[illegible] एटकिंज़ मिल गया, जो जहाज़ पर उसका सहयात्री रह चुका था।

"हैलो—तुम यहाँ कहाँ ?" कमाल ने पूछा।

"मैं सारे मुल्[illegible] का चक्कर लगाता फिर रहा हूँ—दक्षिण और बंगाल, आसाम और उड़ीसा। अब राजस्थान का [illegible]ादा है। "

"तुमने दिल्ली की सैर कर ली ?"

"अभी नहीं।"

"तुमने हमारा राष्ट्रपति-भवन देखा ?" कमाल ने गर्व से कहा। "और नई दिल्ली की नयी इमारतें जो नये हिन्दुस्तान की सिम्बल हैं, और राजघाट—और—और—" वह एकाएक पुराना कमाल बन गया—आजीविका की चिन्ता से मुक्त, हिन्दुस्तान का जोशीला सुपुत्र। वह दिल्ली की एक-एक चीज़ टॉम को दिखाता फिरा। शाम को उसने सपरू-हाउस में कांसर्ट सुनने का कार्यक्रम बनाया।

"आजकल तुम क्या कर रहे हो ?" 'आल्पस' में बैठ कर क़हवा पीते हुए टॉम ने पूछा।

"कुछ नहीं, नौकरी ढूँढ रहा हूँ।" उसने निश्चिन्तता से उत्तर दिया।

"बेकारी इस देश की बहुत बड़ी प्रॉब्लेम है।" टॉम ने कहा।

"सबके लिए है। उसमें मैं अकेला थोड़े ही हूँ। जब ख़ुशहाली आएगी, तो सारे मुल्क के लिए आएगी। वह यह थोड़े ही देखती फिरेगी कि यह हिन्दू का द्वार है, यह मुसलमान का। हम सब एक साथ डूबेंगे, एक साथ उभरेंगे।"

"लेकिन तुम नवाबज़ादे हो, तुम मज़दूरी नहीं करोगे।" गुलशन ने कहा, जिसे उन्होंने ब्राडकास्टिंग-हाउस से साथ ले लिया था। "तुम अपने-आपको डी-क्लास नहीं कर सकते।"

"बिलकुल ग़लत है।"

"अच्छा, तो आओ मेरे साथ, चलाओ ट्रैक्टर।"

"अगर मैंने ट्रैक्टर चलाने की ट्रेनिंग ली होती तो ज़रूर चलाता। मगर, अफ़सोस कि मैं आठ साल न्यूक्लियर फ़िज़िक्स में बरबाद करके आया हूँ।"

"सुना है पाकिस्तान में न्यूक्लियर फ़िज़िक्स वालों की बड़ी कमी है। वहाँ जाओ। यहाँ क्यों झक मार रहे हो ?" गुलशन ने राय दी।

"तुम भी यही कहते हो ?" कमाल ने चकित होकर पूछा।

"बिलकुल !"

रात की ट्रेन से वह लखनऊ लौट रहा था, रेलवे स्टेशन पर उसे हमराज़ भाई मिले। वह भी लन्दन से कराची आ चुके थे, और अब अपनी माँ से मिलने फ़ैजाबाद जा रहे थे।

"कहो, कमाल मियाँ क्या हाल हैं ?" उन्होंने पूछा।

"बहुत अच्छा हाल है, हमराज़ भाई।"

"अच्छा तो नहीं दिखता मुझे। क्या क़िस्सा है ? ऐं—?"

"कुछ भी तो नहीं, हमराज़ भाई।" उसने जल्दी से उनको आदाब किया, और आगे बढ़ गया।

आख़िर वह दिन भी आ पहुँचा, जब कमाल ने देहली जाकर वीज़ा के लिए अर्ज़ी दे दी। इस फ़ैसले पर पहुँचने से पहले उसने कई रातें जाग कर गुज़ारी थीं। वह दुनिया की नज़रों से बचता फिरा था। भाँय-भाँय करती 'गुलफ़िशाँ' में सिर्फ़ साए डोलते नज़र आते। दरवाज़े बन्द होते, ख़ाली कमरों के पर्दे हवा से फटफटाते। अन्दर के सोने के कमरे से बूढ़े नवाब साहब के खाँसने की आवाज़ आती। अम्मी बेगम पिछले बरामदे में तख़्त पर बैठी वज़ीफ़े पर वज़ीफ़े किये जातीं। हज़ारों मन्नतें उन्होंने मान डालीं। जनाब अब्बास की दरगाह पर नज़राने चढ़ाए। सिब्तैनाबाद के इमामबाड़े में जाकर जुमेरात की जुमेरात जनाब अली अकबर के नाम

की मजलिसें करवाईं कि—या मौला, कम्मन भैया काम पर लग जाएँ ! या मौला, कम्मन भैया की मदद कर ! (बाराबंकी की अस्थायी लेक्चररशिप ख़त्म हो चुकी थी।) वह बराबर अपने आप से यह कहना जारी रखता—तुम डरपोक हो ! कमीने ! डरपोक ! तुम्हारी वह सारी नेशनलिस्ट ट्रेनिंग कहाँ गई ? तलअत ठीक कहती है—घास खोदो, हल चलाओ, लानत है तुम पर। अवसरवादी, बेईमान, ढुलमुल यक़ीन कहीं के ! अब जामियामिलिया और अलीगढ़ यूनिवर्सिटी—दो जगह का आसरा रह गया था। मगर, फ़िलहाल, वहाँ भी इसके योग्य कोई जगह ख़ाली न थी। उसने बहरहाल तय कर रखा था कि भूखा मर जायेगा, मगर वतन छोड़ने का सवाल ही नहीं उठता।

तभी एक दिन अदालत ने फ़ैसला सुना दिया। 'गुलफ़िशाँ' कमाल के बड़े अब्बा यानी नवाब साहब मरहूम के नाम रजिस्टर्ड थी। आमिर रज़ा उनका इकलौता उत्तराधिकारी पाकिस्तानी था। 'गुलफ़िशाँ' छोड़ी हुई ज़ायदाद क़रार दे दी गई। दूसरे रोज़ सुबह जब कमाल की आँख खुली तो उसने खुद को लखनऊ में रिफ़्यूजी पाया। तीसरे दिन पुलिस के अफ़सर कोठी में ताले डालने के लिए आ गए। चौथे रोज़ कमाल रज़ा ने वीज़ा बनवाया और अपने बूढ़े माता-पिता को लेकर ट्रेन में बैठ गया। पाँचवें दिन ट्रेन दिल्ली पहुँची। छठे रोज़ ट्रेन ने बॉर्डर क्रास किया। सातवें दिन कमाल रज़ा कराची, पाकिस्तान में था।

सातवाँ रोज़ 'यौम-ए-सबत (इबादत का दिन) था और इंसान अपना ख़ून पी रहा था।

98

कराची, ख़ुदा के प्रदान किए देश पाकिस्तान की, संसार के सबसे बड़े इस्लामी राज और दुनिया के पाँचवें बड़े देश की राजधानी है। यहाँ नए धनी मध्य वर्ग का राज है। जहाँ के स्लम्ज़ और मुहाजिरों के झोंपड़े संसार के आश्चर्यों में शुमार किए जाते हैं। विशेष कर अत्यंत गंदी झुग्गियाँ जो क़ायद-ए-आज़म के मज़ार के आस-पास फैली हैं। इस शहर में गोरे विदेशियों, ख़ास कर अमरीकनों की बहुत बड़ी उपनिवेश है। हाउसिंग सोसायटी में अत्यंत सुन्दर कोठियाँ बनी हैं जिनको देख कर अंदाज़ा होता है कि मुस्लिम मध्य वर्ग ने अपने सारे इतिहास में आज तक इस कदर ज़बरदस्त खुशहाली हासिल नहीं की थी। यहाँ नए दौलतमंद मध्य वर्ग की हकूमत है। उनका नया समाज, उनके नए उसूल। कराची बेहद मॉडर्न शहर है। यहाँ रोज़ रात को आला दर्जे के होटलों और क्लबों में एक जगमगाती दुनिया आबाद होती है। समाज शास्त्रियों के लिए यह समस्या अत्यंत दिलचस्पी का कारण होना चाहिए कि पिछले नौ साल में किस तरह एक नए समाज ने इस देश में जन्म लिया। इस नए सामाजिक जीवन की बुनियाद रुपया है, और रुपया बनाओ और दौलत हासिल करो। आज बहती गंगा में डुबकियाँ लगा लो; कल जाने गंगा सूख जाए या अपना रुख बदल ले। दूसरा तत्त्व तीव्र फ्रस्ट्रेशन की अनुभूति है। ब्लैक-मार्केटियर को फ्रस्ट्रेशन है कि और अधिक ब्लैक-मार्केट क्यों नहीं कर सकता ! बायें बाज़ू का इन्टेलैक्चुअल रोता है कि इन्क़लाब की कोई आशा नहीं। जमाते-इस्लामी वाला चिल्ला रहा है कि मुसलमान औरतें बेपर्दा घूम रही हैं और बाल-रूम में नाचती हैं। मध्य वर्ग वाले की जान को अपनी हज़ारों चिन्ताएँ रही हैं। सिफ़ारिशों के बिना न नौकरी मिलती है न बच्चों

का स्कूल और कॉलेज में दाखिला हो सकता है। ऊपर से बंगाली और पंजाबी 'मुहाजिर' और स्थानीय लोगों का झगड़ा अलग है। यह दुविधा सिर पर सवार। यह दुविधा इतनी प्रचंड है जितनी अनबँटे हिन्दुस्तान में हिन्दू मुसलमान में थी। कुछ लोग कहते हैं अंतिम आस सैनिक क्रांति में बाकी है।

एक जमात मुहाजरीन की कहलाती है। यह पाकिस्तान के विचित्रतम लोग हैं। और हिन्दुस्तान से आए हैं और देश के हर शहर, कस्बे और गाँव में पाए जाते हैं। कराची में इनका हैड क्वार्टर है। इस जमात का खास रैकेट कल्चर है।

बँटवारे के बाद मालूम हुआ कि अब हिन्दू कहता है कि जब तुम्हारा कल्चर और तुम्हारे सिद्धान्त अलग हैं तो जाओ पाकिस्तान, अब हमारे सिर पर क्यों सवार हो ? चुनाँचे यह कौम मुहाजिर (शरणार्थी) बन कर पाकिस्तान आई। यहाँ आकर पता चला कि हिन्दू से तो छुटकारा मिला मगर एक और मुसीबत का सामना करना था। लाहौर में पंजाबी था, ढाके में बंगाली। दोनों जगह मुहाजरीन को बड़ा फ्रस्ट्रेशन हुआ। अतः हर मुहाजिर ने अदबदा कर कराची का रुख किया। अब कराची मानो मुहाजरीन का गढ़ है। बड़ी आश्चर्यजनक चीज़ यह है कि उत्तर प्रदेश की इस आबादी ने किस खूबी से अपने आपको ट्रांसप्लांट कर लिया। अब यहाँ जगह-जगह इनकी कॉलोनियाँ आबाद हैं, यहाँ आगरे वाले रहते हैं। उधर रामपुरियों का जत्था है। वह हैदराबाद के जाँबाजों का मुहल्ला है। उधर अलीगढ़ वाले, लखनऊ वाले, दिल्ली वाले रहते हैं। बड़े-बड़े, छोटे-छोटे मकान क़र्ज़ा लेकर बनाए गए हैं। यह ज़्यादातर नाज़िमाबाद का इलाका है। लारेंस रोड, इलाही बख़्श कॉलोनी, जहाँगीर रोड, मार्टन रोड के सरकारी क्वार्टरों में एक पूरी दुनिया आबाद है। ये खालिस ठोस मुसलमान मध्य और निम्न मध्य वर्ग की दुनिया है और मुहाजरीन की सामाजिक ज़िन्दगी की मानो रीढ़ की हड्डी। उनकी लड़कियाँ बुर्के पहन कर स्कूल और कॉलेज और विश्वविद्यालय जाती हैं। बंदर रोड पर ख़रीदारी करती हैं। रेडियो पर औरतों के प्रोग्रामों में भाग लेती हैं। विमेंज नेशनल गार्ड में परेड करती हैं। यह वर्ग अब कराची में ऐसे रहता है मानो शताब्दियों से यहीं रहता आया हो। ये लोग 'जंग' और 'अंजाम' और 'डान' पढ़ते हैं। कश्मीर हासिल करने के लिए तड़प रहे हैं। साल में एक बार वीज़ा बनवा कर परिवार के बचे-खुचे सदस्यों से मिलने हिन्दुस्तान जाते रहते हैं जिसको अब तक ये घर कहते हैं। यानी घर वास्तव में संदेला या मुरादाबाद है और देश पाकिस्तान है।

इंसानियत का वह हिस्सा जो उप-महाद्वीप भारत-पाक की मुसलमान कौम कहलाता है, उसका मनोविज्ञान समझना कोई आसान बात नहीं।

दूसरा वर्ग उच्च वर्ग कहलाता है जो पिछले नौ साल में बहुत सशक्त हो चुका है और परिचय का मोहताज नहीं।

इस वर्ग की ज़िन्दगी इस कदर 'अलिफलैली' (रोचक कथा) है कि अब "किस्सा सोते जागते का" इसके मुकाबले में बिलकुल तुच्छ समझो, यानी कल जो साहब बिलकुल गुमनाम और दुमाशुमा किस्म के आदमी थे आज केंद्रीय मंत्री हैं या करोड़पति या बहुत मशहूर लीडर। पूरे देश की किस्मत का फैसला उनके हाथों में है। अत्यंत कठिन अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक समस्याओं पर इस फरांटे से बयान देते हैं कि तबीयत साफ़ हो जाती है। अत्यंत मामूली योग्यता के लोग संयुक्त राष्ट्र और दूसरे बड़े-बड़े विश्वव्यापी संगठनों में देश का प्रतिनिधित्व करते हैं और

हाउलर्ज़ करते हैं मगर कोई बुरा नहीं मानता।

अनगिनत महिलाएँ और पुरुष अंधों में काने राजा बने बैठे हैं।

और महिलाएँ। पाकिस्तान की बेगमें भी दुनिया की विचित्र वस्तुओं से संबंध रखती हैं। उनकी साड़ियाँ, उनके जेवर, उनके डिनर और पार्टियाँ, विदेशों में उनकी यात्राएँ उनकी ज़िन्दगी के सिम्बल हैं और उनका आफिशियल मासिक 'मिरर' है जिसमें उनकी दावतों की तस्वीरें छपती हैं। तब अंदाजा होता है कि पाकिस्तान वास्तव में किस कदर प्रगतिशील और दौलतमंद देश है। जिसकी आधी आबादी सिर्फ डिनर और एट होम खाती है और रम्भा नाचती है।

हिन्दुस्तान पूरी कोशिश करके यह सिद्ध करने में लगा है कि तक़सीम ग़लत थी और देश वास्तव में एक है। पाकिस्तान यह साबित करता है कि तक़सीम बिलकुल उचित और ठीक थी, और यहाँ का कल्चर एकदम अलग है; और, इसी राष्ट्रीयता के आधार पर यह मुल्क़ हासिल किया गया है।

उधर हिन्दुस्तान कहता है कि सारे पूर्व की संस्कृति का स्रोत उसी की सभ्यता है। उधर गुप्त-पीरियड पर प्रकाश डाला जाता है, इधर ख़िलाफते राशिदा और अब्बासियों तथा मुग़लों के ज़माने के राग अलापे जाते हैं। इन दोनों देशों का प्रचार बड़े ज़ोरों पर चालू है, और इस चाँदमारी का निशाना हैं पश्चिमी देश।

एक और विचित्र चीज़ यह है कि देश के हालात से लोग हद से ज़्यादा परेशान हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ, महँगाई, रिश्वत, भाई-भतीजावाद, बेईमानी, चार सौ बीसी, गुंडागर्दी वगैरा-वगैरा का वर्णन रोजाना नियम से समाचार-पत्रों के सम्पादकियों में होता है। लोगों के पास भी इसके सिवाय और कोई विषय नहीं मगर इसके बावजूद कोई इन हालात का उपचार करने के लिए कुछ नहीं करता। लोगों को मालूम है कि पैंसलीन और अन्य दवाओं की ब्लैक मार्केट होती है। उन्हें मालूम है कि असंभव से असंभव काम निजी पहुँच या सिफारिश के ज़रिए चुटकी बजाने से पूरा कर लिया जाता है। वे जानते हैं कि शुरू से आख़िर तक ऊपर से नीचे तक बेईमानी का राज है मगर इसके लिए कोई कुछ भी नहीं करता। जनता जानती है कि उनके लीडर कितने पानी में हैं लेकिन लीडर को भी चंद ऐसे गुण याद हैं जिनके द्वारा जनता को काबू में रखा जा सकता है।

कहा जाता है कि इतिहास में इतने बड़े पैमाने पर मुसलमानों ने इतने गिरे हुए चरित्र का सबूत नहीं दिया था। बार-बार मैंने अपने नए दोस्तों से (जिनका परिचय तुमको आगे चल कर मिलेगा) पूछा कि जब मुसलमान को आज़ादी और सत्ता मिली तो उसने कौम की हैसियत से इतने घटियापन का प्रदर्शन क्यों किया ? मुझे बतलाया गया कि शुरू के दो-तीन वर्षों में जिस कदर जोश और उत्तेजना यहाँ पाई जाती, अब उससे चार गुना उदासीनता है। अब तो लोग कहते हैं कि यार हमें विदेशों में ख़ुद को पाकिस्तानी कहते हुए शर्म महसूस होती है। यही हीन भावना जीवन के हर विभाग में नज़र आती है।

कराची में शाम को लोगों को कोई काम नहीं सिवाय पार्टियों में जाने या सिनेमा देखने के। यहाँ न थियेटर हैं न कांसर्ट, न सेमिनार न दूसरी सांस्कृतिक गतिविधियाँ। थोड़ी बहुत दिलचस्पी विदेशी दूतावासों के दम से पाई जाती है। किसी रोज़ ब्रिटिश कौंसल ने इलियट

पर एक लैक्चर कर दिया या चित्रों की एक प्रदर्शनी आयोजित कर दी। किसी अमरीकन सूचना के दफ़्तर में कोई प्रोग्राम हो गया। कभी ईरान या इंडोनेशिया या फ्रांस वालों ने कोई उत्सव कर लिया। कभी जर्मन दूतावास में फिल्म शो आयोजित कर लिया।

वैसे बस पार्टियों का बड़ा ज़ोर है जिनमें जाम पर जाम लुटाए जाते हैं। पार्टियों द्वारा लोग अपना भविष्य बनाते हैं। मोटरों का लेन-देन होता है। उच्च पद प्राप्त करने की टिप्पस लड़ाई जाती है। मकानों और ज़मीनों की अलाटमेंट का कारोबार होता है।

यहाँ सामूहिक तौर पर जंगल कानून लागू है।

उच्च वर्ग जो बड़े-बड़े व्यापारियों और उच्च अधिकारियों का सम्मिलित है, इसकी श्रेष्ठ बिरादरी है। इतवार ये लोग समुद्र के तट पर गुज़ारते हैं। छुट्टियाँ लेकर यूरोप और अमरीका जाते हैं। इनकी औलाद भी पश्चिमी देशों में पढ़ रही है। इन्होंने लाखों रुपया स्विट्ज़रलैंड के बैंकों में जमा कर लिया है। बड़े मजे की बात यह है कि ये लोग जो बात-बात पर दूसरों को गद्दार और देशद्रोही के नाम से संबोधित करते हैं और देश भक्ति का सारा ठेका इन्होंने खुद ले रखा है। यही सब लोग खुद इंगलिस्तान या कैनेडा में निवास करने के प्रोग्राम बना रहे हैं।

मुसलमान कौम के इतिहास का यह अत्यंत भयंकर दौर है।

पाकिस्तानी इंटेलैक्चुअल्ज को देख कर बड़ा दुख होता है। इन प्रतिभाशाली लोगों का वक़्त किस भयानक शून्य में बर्बाद हो रहा है। इनके सामने कोई प्रोग्राम नहीं है, न कोई रास्ता कोई उद्देश्य। ये सब भी जंगल के कानून में गिरफ्तार हैं। केवल कटुता और उदासीनता और मायूसी का दर्शन है। मैं इनका मुकाबला अपने साथियों से करता हूँ जो उनकी नस्ल के नौजवान हैं और पिछले नौ साल में बिलकुल विभिन्न राहों पर चलते हुए विकास की मंजिलों में कहाँ से कहाँ पहुँच गए हैं। अक्सर मेरे नए दोस्त मुझसे पूछते हैं इंडिया में हर महीने महत्वपूर्ण ठोस विषयों पर कितनी अनगिनन किताबें छपती हैं। विभिन्न विभागों में किस क़दर ज़बरदस्त रिसर्च इख़्तियार की जा रही है। कैसी-कैसी पत्रिकाएँ निकल रही हैं। क्या-कुछ सोचा और लिखा जा रहा। सरकार ललित कलाओं और साहित्य और शिक्षा का कितना संरक्षण कर रही है। इनमें से एक प्रायः मुझसे कहता है–"यार क़सम खुदा की बाहर के अखबार पढ़ने को दिल नहीं चाहता। बड़ा फ्रस्ट्रेशन होता है।"

फ्रस्ट्रेशन–यह शब्द यहाँ की सारी मानसिक ज़िन्दगी का सिम्बल है।

दूसरा शब्द रैकेट है। राजनीति, साहित्य, कल्चर, धर्म–हर चीज़ का निहायत आला पैमाने पर रैकेट चलाया जा रहा है। मेरे प्रतिभाशाली दोस्त जब एक-दूसरे से मिलते हैं तो बड़े निस्पृह अंदाज़ में सवाल करते हैं, "कहो भई आजकल कौन सा रैकेट चला रहे हो।"

जब मैं इन लोगों को अपनी उम्र का श्रेष्ठतम भाग इस शून्य में नष्ट करते हुए देखता हूँ तो मुझे किस क़दर सदमा होता है। सुबह होते ही ये लोग अपने-अपने काम पर निकलते हैं। दोपहर को एक अर्द्ध अँधेरे और अरोचक कॉफ़ी हाऊस में जमा होकर खाना खाते हैं और शाम को जाकर कोई अंग्रेजी फ़िल्म देख लेते हैं। मंगल के मंगल किसी एक के यहाँ जमा होकर फिर वही बातें शुरू कर देते हैं। इन सबको अपनी-अपनी अंतरात्मा का बड़ा एहसास है मगर जिन्दा तो खैर रहना ही है। रोज़ी कमानी ही है। अगर भूखों ही मरना होता तो हिन्दुस्तान

से इधर क्यों आते ? उनमें से ज़्यादातर लोग मुहाजिर हैं। पत्रकार ईमानदारी से रिपोर्टिंग नहीं कर सकते क्योंकि अपने-अपने अखबारों से निकाल बाहर किए जाएँगे। लेखकों के पास लिखने के लिए कुछ बाकी नहीं रहा। (यद्यपि अनगिनत रिसाले निकल रहे हैं।) प्रगतिवाद आउट ऑफ़ फैशन हो चुका है यहाँ तक कि साहित्य में जमूद (गतिरोध) का नारा भी पुराना हो गया।

इस्लाम--इस शब्द की जो गत बनी है (क्रिकेट में पाकिस्तानी टीम हारने लगे तो समझो इस्लाम खतरे में है) दुनिया की हर समस्या की तान आख़िर इसी शब्द पर टूटती है। दूसरे मुसलमान देश इस पर खूब चिढ़ते हैं। सारी दुनिया की तरफ़ से इस्लाम का ठेका इन लोगों ने ले रखा है। हर चीज़ पर तंगनज़री का ग़िलाफ चढ़ा हुआ है। संगीत, कला, संस्कृति, ज्ञान, साहित्य सबको 'मुल्ला' की नज़र से देखा जा रहा है। इस्लाम जो एक चढ़ते हुए दरिया की तरह अनगिनत सहायक नदी-नालों को अपने धारे में समेट कर एक विशाल झरने की सूरत में बह रहा था अब सिमट-सिमटा कर एक मटियाले नाले में परिवर्तित किया जा रहा है। नाला एक विशाल बेहड़ में बह रहा है जिसमें चारों तरफ़ बाँध बाँधे जा रहे हैं।

लतीफ़ा यह है कि इस्लाम का नारा लगाने वालों को धर्म-दर्शन से कोई मतलब नहीं, उनको सिर्फ इतना मालूम है कि मुसलमानों ने आठ सौ साल ईसाई स्पेन पर, एक हज़ार साल हिन्दू भारत पर, उस्मानियों ने शताब्दियों तक पूर्वी यूरोप को अधीन रखा। इम्पीरियलिज्म के अलावा इस्लाम की जो महान मानव प्रेम की परम्पराएँ हैं उनका जिक्र नहीं किया जाता। अरब दार्शनिकों, ईरानी कवियों और हिन्दुस्तानी सूफ़ियों की विशाल हृदयता की चर्चा करने की ज़रूरत नहीं समझी जाती। हज़रत अली और हज़रत हुसैन के दर्शन से कोई मतलब नहीं। इस्लाम को एक अत्यंत आक्रमणात्मक धर्म और जीवन पद्धति बना कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त अपने देश की और अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं की उपेक्षा करके कल्चर को विदेशियों के सामने पेश करने की रुचि भी ज़ोरों पर है यानी यह कि शायद हमारी यह किताब इंगलिस्तान या अमरीका से छप जाए, कोई अमरीकन फिल्म कम्पनी हमें अपने मूवी में ले। हम किसी अंतर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में भेज दिए जाएँ।

अंग्रेजी पत्रकारिता की हालत बड़ी खराब है। मुसलमानों के पास पहले ही कौन से अख़बार थे और कौन-सी उनको पत्रकारिता की ट्रेनिंग मिली थी और 1947 के बाद से अब तक जो खेप यूनिवर्सिटियों से बाहर निकली है उसमें अच्छे लिखने वाले प्रकट होने चाहिए थे--अनगिनत महिलाएँ और पुरुष यूरोप और अमरीका की डिग्रियाँ लेकर लौटे हैं। हमारे ज़माने में कोई इक्का-दुक्का खुशकिस्मत ही उच्च शिक्षा के लिए समुंदर पार जाता था। जाने आजकल लोगों को डिग्रियाँ और डॉक्टरेट कैसे मिल जाते हैं और ये लोग पढ़-लिख कर कहाँ लाद देते हैं। यह रहस्य आज तक मेरी समझ में नहीं आया।

मगर खुशी की बात है कि पाकिस्तानी लड़कियाँ बड़ी तादाद में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं (कम से कम शहरों में क्योंकि मध्य वर्ग मॉडर्न हो चुका है।) अनगिनत लड़कियाँ डॉक्टर, नर्स और लेक्चरर बन रही हैं, नौकरियाँ कर रही हैं। लड़कियों की नौकरी को अब बुरा नहीं समझा जाता। सामूहिक रूप से पाकिस्तानी महिलाओं ने निःसंदेह बहुत तरक्की की है और यह एक बहुत ही अच्छा शगुन है।

रात गुज़रती जा रही है। जो कुछ मेरे ज़ेहन में आता जा रहा है, लिखता जा रहा हूँ।

इसी वजह से शायद तुमको ख़त बहुत बिखरा-बिखरा लगेगा, मगर इतनी बहुत-सी बातें तुमसे करनी हैं, और मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी आँखों से मेरे नये मुल्क को देख लो। मेरी हिम्मत बढ़ाओ, ताकि मैं इस मुल्क के लिए अपने भर बुरा-भला कुछ कर सकूँ।

पश्चिमी पाकिस्तान की सोसायटी का ढाँचा अब तक फ्यूडल रहा है अतः राजनैतिक चेतना का यहां सवाल ही पैदा नहीं होता। जनता मिडिल ईस्ट के बादशाहों के जुलूस देख कर बहुत ख़ुश होती है। जहाँगीर पार्क में जमा होकर प्रधानमंत्री के भाषण सुनने के बाद जिन्दाबाद और विरोधी पार्टियों के बाद मुर्दाबाद के नारे लगाते, हँसते-बोलते ख़ुश-ख़ुश घर लौटते हैं। आमतौर पर सरकारी और ग़ैर सरकारी जलसे-जुलूसों के लिए किराए के आदमी बुलवाए जाते हैं। नारेबाज़ी के बाद उनको पैसे देकर रुख़सत किया जाता है। सियासी लीडरशिप बड़े-बड़े कारोबारियों और सेठों के हाथ में है—अल्लाह अकबर--अल्लाह अकबर...

अवाम की सायकोलॉजी और हिस्ट्रियों की अजीब-अजीब मिसाले देखने में आती हैं।

चन्द साल पहले पंडितजी यहां आये, तो अवाम के जोश-खरोश का यह आलम था कि उन्होंने पुलिस-कॉर्डन तोड़ दिए और ज़िन्दाबाद के नारों से आसमान सिर पर उठा लिया। पंडितजी खुद एक नम्बर के भावुक व्यक्ति। उनका गला भी रुँध गया। 'ख़ुश आमदीद' (सुस्वागतम्) के फाटक बनाए गए, जलसे हुए।

यही अवाम कश्मीर के सिलसिले में कभी-कभी विरोधियों की 'अरथी' के जुलूस निकालते हैं और उनके पुतले सड़कों पर जलाते हैं।

इसके अलावा क्रिकेट-मैच भी मानसिकता की एक ऐतिहासिक घटना है। इंडिया-पाकिस्तान का मैच हुआ, तो कुछ दिन के लिए संदेह होता था कि पंजाब का बँटवारा नहीं हुआ और लाहौर और अमृतसर पहले की तरह ही एक ही सूबे के दो शहर हैं। हज़ारों सिख और हिन्दू भीड़ की भीड़ साइकिलों पर बैठ कर लाहौर आए। लाहौर के हलवाइयों ने उन्हें मुफ़्त मिठाई खिलाई। ताँगे वालों ने उनसे किराया नहीं लिया।

क़यामत की चहल-पहल रही। आइडियलिस्ट क़िस्म के पत्रकारों ने अख़बारों में मानवता की महानता के गुण गाए। बड़ी हृदय-विदारक घटनाएँ भी हुईं। एक बूढ़ा अंधा सिख पूर्वी पंजाब से आया, और अपने भूतपूर्व नगर के गली-कूचों के दरो-दीवार छूता फिरा। उसने कहा—मुझे मेरे पुराने मकान ले चलो, जो कहीं शाह आलमी में था। लोगों ने उसे वहाँ तक पहुँचाया और वह अपने घर की दीवारों से लिपट-लिपट कर रोया। मैं इस मनोविज्ञान को समझने की कोशिश कर रहा हूँ मगर मेरा दिमाग़ काम नहीं करता। स्टीरियो टाइप के बारे में हमने सोशोलोजी में बहुत कुछ पढ़ा है मगर जब वास्तविकता में उससे दो-चार होते हैं तो बुद्धि हैरान रह जाती है।

मुहाजरीन की एक और समस्या है। यहाँ अभी 'प्रथम दिन' वाली हालत है। 1947 के हिन्दुस्तान में जो हालत शरणार्थियों की थी वह आठ साल गुज़रने के बाद मुहाजरीन की है और दिन-प्रतिदिन भयानक से भयानक होती जा रही है। चूँकि मैं टेकनिकल तौर पर ख़ुद भी 'मुहाजिर' हूँ, लिहाज़ा इस प्रॉब्लेम पर मैंने बहुत ग़ौर किया।

देखो बिटिया, बात सारी यह है कि हिन्दुस्तान में मध्य वर्ग के मुसलमानों के क़दम

से इधर क्यों आते ? उनमें से ज़्यादातर लोग मुहाजिर हैं। पत्रकार ईमानदारी से रिपोर्टिंग नहीं कर सकते क्योंकि अपने-अपने अखबारों से निकाल बाहर किए जाएँगे। लेखकों के पास लिखने के लिए कुछ बाकी नहीं रहा। (यद्यपि अनगिनत रिसाले निकल रहे हैं।) प्रगतिवाद आउट ऑफ़ फैशन हो चुका है यहाँ तक कि साहित्य में जमूद (गतिरोध) का नारा भी पुराना हो गया।

इस्लाम—इस शब्द की जो गत बनी है (क्रिकेट में पाकिस्तानी टीम हारने लगे तो समझो इस्लाम खतरे में है) दुनिया की हर समस्या की तान आख़िर इसी शब्द पर टूटती है। दूसरे मुसलमान देश इस पर खूब चिढ़ते हैं। सारी दुनिया की तरफ़ से इस्लाम का ठेका इन लोगों ने ले रखा है। हर चीज़ पर तंगनज़री का ग़िलाफ चढ़ा हुआ है। संगीत, कला, संस्कृति, ज्ञान, साहित्य सबको 'मुल्ला' की नज़र से देखा जा रहा है। इस्लाम जो एक चढ़ते हुए दरिया की तरह अनगिनत सहायक नदी-नालों को अपने धारे में समेट कर एक विशाल झरने की सूरत में वह रहा था अब सिमट-सिमटा कर एक मटियाले नाले में परिवर्तित किया जा रहा है। नाला एक विशाल बेहड़ में बह रहा है जिसमें चारों तरफ़ बाँध बांधे जा रहे हैं।

लतीफ़ा यह है कि इस्लाम का नारा लगाने वालों को धर्म-दर्शन से कोई मतलब नहीं, उनको सिर्फ इतना मालूम है कि मुसलमानों ने आठ सौ साल ईसाई स्पेन पर, एक हज़ार साल हिन्दू भारत पर, उस्मानियों ने शताब्दियों तक पूर्वी यूरोप को अधीन रखा। इम्पीरियलिज़्म के अलावा इस्लाम की जो महान मानव प्रेम की परम्पराएँ हैं उनका जिक्र नहीं किया जाता। अरब दार्शनिकों, ईरानी कवियों और हिन्दुस्तानी सूफ़ियों की विशाल हृदयता की चर्चा करने की ज़रूरत नहीं समझी जाती। हज़रत अली और हज़रत हुसैन के दर्शन से कोई मतलब नहीं। इस्लाम को एक अत्यंत आक्रमणात्मक धर्म और जीवन पद्धति बना कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त अपने देश की और अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं की उपेक्षा करके कल्चर को विदेशियों के सामने पेश करने की रुचि भी ज़ोरों पर है यानी यह कि शायद हमारी यह किताब इंगलिस्तान या अमरीका से छप जाए, कोई अमरीकन फिल्म कम्पनी हमें अपने मूवी में ले। हम किसी अंतर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में भेज दिए जाएँ।

अंग्रेज़ी पत्रकारिता की हालत बड़ी खराब है। मुसलमानों के पास पहले ही कौन से अख़बार थे और कौन-सी उनको पत्रकारिता की ट्रेनिंग मिली थी और 1947 के बाद से अब तक जो खेप यूनिवर्सिटियों से बाहर निकली है उसमें अच्छे लिखने वाले प्रकट होने चाहिए थे—अनगिनत महिलाएँ और पुरुष यूरोप और अमरीका की डिग्रियाँ लेकर लौटे हैं। हमारे ज़माने में कोई इक्का-दुक्का खुशकिस्मत ही उच्च शिक्षा के लिए समुंदर पार जाता था। जाने आजकल लोगों को डिग्रियाँ और डॉक्टरेट कैसे मिल जाते हैं और ये लोग पढ़-लिख कर कहाँ लाद देते हैं। यह रहस्य आज तक मेरी समझ में नहीं आया।

मगर ख़ुशी की बात है कि पाकिस्तानी लड़कियाँ बड़ी तादाद में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं (कम से कम शहरों में क्योंकि मध्य वर्ग मॉडर्न हो चुका है।) अनगिनत लड़कियाँ डॉक्टर, नर्स और लेक्चरर बन रही हैं, नौकरियाँ कर रही हैं। लड़कियों की नौकरी को अब बुरा नहीं समझा जाता। सामूहिक रूप से पाकिस्तानी महिलाओं ने निःसंदेह बहुत तरक्की की है और यह एक बहुत ही अच्छा शगुन है।

रात गुज़रती जा रही है। जो कुछ मेरे ज़ेहन में आता जा रहा है, लिखता जा रहा हूँ।

इसी वजह से शायद तुमको ख़त बहुत बिखरा-बिखरा लगेगा, मगर इतनी बहुत-सी बातें तुमसे करनी हैं, और मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी आँखों से मेरे नये मुल्क को देख लो। मेरी हिम्मत बढ़ाओ, ताकि मैं इस मुल्क के लिए अपने भर बुरा-भला कुछ कर सकूं।

पश्चिमी पाकिस्तान की सोसायटी का ढाँचा अब तक फ्यूडल रहा है अतः राजनैतिक चेतना का यहाँ सवाल ही पैदा नहीं होता। जनता मिडिल ईस्ट के बादशाहों के जुलूस देख कर बहुत ख़ुश होती है। जहाँगीर पार्क में जमा होकर प्रधानमंत्री के भाषण सुनने के बाद ज़िन्दाबाद और विरोधी पार्टियों के बाद मुर्दाबाद के नारे लगाते, हँसते-बोलते ख़ुश-ख़ुश घर लौटते हैं। आमतौर पर सरकारी और ग़ैर सरकारी जलसे-जुलूसों के लिए किराए के आदमी बुलवाए जाते हैं। नारेबाज़ी के बाद उनको पैसे देकर रुख़सत किया जाता है। सियासी लीडरशिप बड़े-बड़े कारोबारियों और सेठों के हाथ में है–अल्लाह अकबर--अल्लाह अकबर...

अवाम की सायकोलॉजी और हिस्ट्रियों की अजीब-अजीब मिसाले देखने में आती हैं।

चन्द साल पहले पंडितजी यहां आये, तो अवाम के जोश-ख़रोश का यह आलम था कि उन्होंने पुलिस-कॉर्डन तोड़ दिए और ज़िन्दाबाद के नारों से आसमान सिर पर उठा लिया। पंडितजी ख़ुद एक नम्बर के भावुक व्यक्ति। उनका गला भी रुँध गया। 'ख़ुश आमदीद' (सुस्वागतम्) के फाटक बनाए गए, जलसे हुए।

यही अवाम कश्मीर के सिलसिले में कभी-कभी विरोधियों की 'अरथी' के जुलूस निकालते हैं और उनके पुतले सड़कों पर जलाते हैं।

इसके अलावा क्रिकेट-मैच भी मानसिकता की एक ऐतिहासिक घटना है। इंडिया-पाकिस्तान का मैच हुआ, तो कुछ दिन के लिए संदेह होता था कि पंजाब का बँटवारा नहीं हुआ और लाहौर और अमृतसर पहले की तरह ही एक ही सूबे के दो शहर हैं। हज़ारों सिख और हिन्दू भीड़ की भीड़ साइकिलों पर बैठ कर लाहौर आए। लाहौर के हलवाइयों ने उन्हें मुफ़्त मिठाई खिलाई। ताँगे वालों ने उनसे किराया नहीं लिया।

क़यामत की चहल-पहल रही। आइडियलिस्ट क़िस्म के पत्रकारों ने अख़बारों में मानवता की महानता के गुण गाए। बड़ी हृदय-विदारक घटनाएँ भी हुईं। एक बूढ़ा अंधा सिख पूर्वी पंजाब से आया, और अपने भूतपूर्व नगर के गली-कूचों के दरो-दीवार छूता फिरा। उसने कहा—मुझे मेरे पुराने मकान ले चलो, जो कहीं शाह आलमी में था। लोगों ने उसे वहाँ तक पहुँचाया और वह अपने घर की दीवारों से लिपट-लिपट कर रोया। मैं इस मनोविज्ञान को समझने की कोशिश कर रहा हूँ मगर मेरा दिमाग काम नहीं करता। स्टीरियो टाइप के बारे में हमने सोशोलोजी में बहुत कुछ पढ़ा है मगर जब वास्तविकता में उससे दो-चार होते हैं तो बुद्धि हैरान रह जाती है।

मुहाजरीन की एक और समस्या है। यहाँ अभी 'प्रथम दिन' वाली हालत है। 1947 के हिन्दुस्तान में ज़ो हालत शरणार्थियों की थी वह आठ साल गुज़रने के बाद मुहाजरीन की है और दिन-प्रतिदिन भयानक से भयानक होती जा रही है। चूँकि मैं टेकनिकल तौर पर ख़ुद भी 'मुहाजिर' हूँ, लिहाज़ा इस प्रॉब्लेम पर मैंने बहुत ग़ौर किया।

देखो बिटिया, बात सारी यह है कि हिन्दुस्तान में मध्य वर्ग के मुसलमानों के क़दम

उखड़ चुके हैं। वही स्टीरियो टाइप का हवाला यहाँ फिर देना पड़ेगा। सुरक्षा की तलाश में यहाँ के खराब हालात जानते हुए भी हिन्दी मुसलमान यहाँ आ जाना चाहता है।

जब मुसलमान लड़के यूनिवर्सिटियों से निकलते हैं तो भारत की फ़ौज में इसलिए नहीं लिए जाते कि उनकी वफ़ादारियों पर शक किया जाता है। सारे परिवार बँट चुके हैं। एक भाई पाकिस्तान आर्मी में है तो दूसरा नेवी में। तीसरा आज़ाद कश्मीर-रेडियो में नौकर है। उसका चौथा भाई जो अभी पटना में बी. एस-सी. कर रहा है, इंडियन एयर-फ़ोर्स में प्रार्थना पत्र भेजने के बारे में सोच भी नहीं पाता। लिहाज़ा वह वहाँ पहुँच कर जेट-पायलट बन जाता है। पटना में शायद क्लर्क भी नहीं बन सकता। दूसरी बात यह है कि उसे यह ख़याल रहता है कि वह नौकरियों के कम्पिटीशन में बैठ कर अगर जीत भी गया तो, हिन्दू से जो ज़्यादा मेहनती है, नहीं जीत सकेगा। अगर जीत भी गया तो पक्षपात की वजह से सिलेक्ट नहीं किया जा सकता। हिन्दुस्तान वतन नहीं आख़िरी पड़ाव है।

अलीगढ़ में कहावत है कि मुस्लिम यूनिवर्सिटी की सड़क नई दिल्ली की बजाय कराची जाती है। अंग्रेज़ी राज के दिनों में हिन्दुस्तान के दूसरे अल्पसंख्यकों की तरह मुलाज़मतों में सीटें सुरक्षित थीं। नियुक्ति का दस्तूर था और हिन्दुस्तान में नौकरियों के सिलसिले में पक्षपात बरता जा रहा है इसका अंदाज़ा मुझसे ज़्यादा किसको होगा?

मुसलमानों के अचेतन में हिजरत (प्रवास) का जादू बसा हुआ है। पिछली सदी में एशिया में राजनैतिक जागृति के फैलते ही यह क़ौम परस्पर विरोधी वफ़ादारियों की दुविधा का शिकार हो गई। रहा हिन्दुस्तान में लेकिन "मेरे मौला बुला तो मदीने मुझे" उसका प्रिय गीत था। 'पान-इस्लामिज़्म' के आन्दोलन ने उसकी कल्पना को और आकर्षक बना दिया, और मुसलमान के यहाँ नेशनलिज़्म और देशभक्ति का अर्थ ही बदल गया। अब, हिन्दुस्तानियत और इस्लाम एकअर्थी नहीं थे, क्योंकि प्रथम में हिन्दूइज़्म भी शामिल था, और उसमें अंग्रेज़ों ने हिन्दू-साम्प्रदायिक तत्त्वों द्वारा अलग हिन्दुत्व आन्दोलन चलवा रखा था। ईरानियत और इस्लाम, अरबियत और इस्लाम में कोई टकराव नहीं था, जिस तरह हर फ्रंसीसी निःसंदेह ईसाई भी है, मगर हिन्द के मुसलमानों को इस मुल्क में बहुमत की एक बड़ी रंगीन सभ्यता और सशक्त समाज से मुकाबला करना था अतः वह उस वातावरण में शामिल होकर उसका विरोध करता रहा। मगर यह विरोध भावना कब पैदा हुई? सारे विदेशी पर्यवेक्षकों को, जो मुग़लों के पतन के समय हिन्दुस्तान में आए, और जिनको उस समय 'फूट डालो और शासन करो' की पॉलिसी की जानकारी न थी, जो उन्नीसवीं शताब्दी में तैयार की गई यह कहना है कि उस समय मुल्क में अराजकता के होते हुए भी हिन्दू-मुस्लिम सवाल कहीं नहीं था। हमको यह भी मालूम है कि यह सवाल किस तरह पैदा हुआ। उन्नीसवीं सदी में देश में आर्थिक तबाही के कारण यह आपसी खिंचाव पैदा हुआ। हिन्दू बहुसंख्यकों के हाथों पिट जाने के भय की सायकोलॉजी का ज़िक्र पंडित नेहरू और सरदार पणिक्कर, दोनों ने किया है। यह सवाल इतिहास का बहुत बड़ा 'अगर' है कि यदि इस भय को दूर किया जा सकता, जो कांग्रेस कर सकती थी, तो आज हालात क्या होते?

ख़ैर तो हिन्दी मुसलमानों की सैहून (वतन) हज्जाज़ था। यूरोप के यहूदियों और हिन्दुस्तान

के मुसलमानों के अलावा दुनिया की किसी और क़ौम ने वफ़ादारियों के इस टकराव का सामना नहीं किया। दोनों ने अपने अलग-अलग देश बनाए हैं और दोनों अब इन जटिल समस्याओं से दो-चार हो रहे हैं।

पाकिस्तान में जो आपाधापी और स्वार्थ की अवस्था और देशभक्ति की कमी नज़र आती है इसकी यही वजह है कि मुसलमान को इस धरती से कोई बे-इख़्तियार भावनात्मक और आत्मिक लगाव नहीं। वह अवसर और सुरक्षा की तलाश में यहाँ आए हैं। जिस प्रकार यूरोपियन क़ौमें अमरीका पहुँची थीं। न्यूयार्क का रहने वाला पोलिश बूढ़ा वासा को याद करके आहें भरता है मगर पोलैंड की उस धुँधली कल्पना से उसकी औलाद को कोई मतलब नहीं जो नए देश में अमरीकन की हैसियत से जवान हुई है। इसी तरह यहाँ पर जो लोग गोमती के खरबूज़ों और प्रयाग के मेले और सावन की घटाओं को याद करके रोते हैं, उनकी औलाद जो यहाँ बड़ी हो रही है उसके लिए ये सारी परिकल्पनाएँ अर्थहीन और हास्यास्पद हैं। यह नस्ल विशुद्ध पाकिस्तानी होगी और इस प्रकार प्रतिकूल वफ़ादारियों की समस्या ख़ुद-बख़ुद हल हो जाएगी।

भाषा की समस्या हमारी कितनी बड़ी बदकिस्मती रही है। हिन्दुस्तान से मिडिल क्लास मुसलमान के कदम उखड़ने की दूसरी वजह संस्कृत मिश्रित हिन्दी का प्रभुत्व है। किसी ज़बान की तबाही किसी क़ौम के लिए सबसे बड़ी ट्रेजेडी है। इंसान अपनी दौलत लुटते देख सकता है मगर अपनी भाषा और सभ्यता का उन्मूलन बरदाश्त नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त हिन्दी मुसलमानों को चेतन और अवचेतन रूप से अपनी विशिष्ट सभ्यता की श्रेष्ठता पर बड़ा गर्व रहा है। अतः यह उसकी दूसरी बड़ी ज़बरदस्त मनोवैज्ञानिक पराजय है। मुसलमान बच्चे स्कूल में हिन्दी पढ़ रहे हैं (जबकि उनके बापों की नस्ल के हिन्दू इन्हीं स्कूलों मे उर्दू पढ़ते थे) ये बच्चे अगर हिन्दुस्तान में रह गए तो उस नए सांस्कृतिक साँचे में खप जाएँगे। और इसी में उनकी खैरियत है। अगर वे उसे भी Resist करेंगे तो निःसंदेह उनको इधर आना पड़ेगा।

भाषा की समस्या ज़्यादातर शहरों के मुसलमानों के लिए है क्योंकि पूरब के मुसलमानों की भाषा वही है जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत, कबीरदास ने अपने दोहे और तुलसीदास ने अपनी रामायण लिखी थी।

गाँवों में मुसलमानों को एक विभिन्न धार्मिक संप्रदाय की बजाय केवल एक और जात समझा जाता रहा है। संक्षिप्त में यह कि उत्तर प्रदेश का वह मुसलमान जो मुसलमानों की मिडिल क्लास राजनीति और सभ्यता का अग्रगामी था, न इधर का रहा न उधर का। उसकी हालत बड़ी दयनीय है।

अब मैं फिर यहाँ के हालात की तरफ़ वापस आता हूँ।

कल मैं भैया साहब के दफ़्तर में बैठा उनका इंतज़ार कर रहा था। वक़्त गुज़ारने के लिए मैंने पब्लिसिटी के लिट्रेचर के पन्ने पलटने शुरू किए और बहुत-सी किताबें घर उठा लाया। रात को मैंने पिछले वर्षों के महत्त्वपूर्ण भाषण निकाल कर पढ़े। तलअत ! वादों का एक समुंदर है जो ठाठें मार रहा है। स्कीमों का एक रेला है जो आठ साल से अब तक बहता चला आ रहा है।

मुसलमान राजनीति हमेशा से मिडिल क्लास शहरों की राजनीति रही है अतः गाँवों की ओर कोई भूले से भी ध्यान नहीं देता। मुसलमानों के प्रोग्राम में बँटवारे से पहले कृषि सुधार इत्यादि की कहीं दूर-दूर तक कोई चर्चा नहीं थी। वही परम्परा अब तक कायम है। ज़मींदारी के ख़ात्मे का अभी सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि इसी वर्ग की हुकूमत है।

आज जुमे की रात है, और मैं एक इन्टेलैक्चुअल महफ़िल से लौटा हूँ। वहाँ घास पर, क़ालीनों पर, सोफ़ों पर बैठे पश्चिमी साहित्य और विश्व-राजनीति की बाल की खाल निकालते हुए नौजवान लड़कों और लड़कियों को देख कर मैंने सोचा कि काश, तुम इन सबकी ज़हीन और दिलचस्प बातें सुनतीं। (इस महफिल में देसी लड़कियाँ सिर्फ़ दो-तीन ही होती हैं। मैंने यहाँ की मुसलमान लड़कियों में उनकी उच्च शिक्षा के बावजूद बुनियादी गंभीर समस्याओं के बारे में सोचने की तरफ़ से आश्चर्यजनक उपेक्षा देखी) इस महफ़िल के विदेशी सदस्य भी बहुत दिलचस्प हैं। एल्फ्रेड एक अंग्रेज लड़का है जो लंदन स्टेज पर रह चुका है। जोलियन एक और अंग्रेज़ लड़का है रोमन कैथोलिक इंटेलैक्चुअल। उसका साथी रोनल्ड है। यह भी आक्सफ़ोर्ड से आया है।

इस महफ़िल में दुनिया जहान की समस्याओं पर ज़ोर-शोर से बहसें होती हैं। असल में यह एक प्रकार का हाइड पार्क कार्नर है जहाँ लोग-बाग़ आकर अपने-अपने दिलों की भड़ास निकाल लेते हैं।

आज शाम यहाँ एक तरफ़ कैथोलिक मत पर बहस हो रही थी और दूसरी ओर पश्चिम के प्रतिक्रियावादी साहित्यिकों को धिक्कारा जा रहा था। एक फ्रांसीसी पर अल्जीरिया के सिलसिले में धिक्कार पड़ रही थी। अमेरिकन सहायता के बारे में लोग मेरी रिचर्ड्ज़ की जान खा रहे थे।

मैं दूसरी ओर मुड़ा। क़ालीन के एक सिरे पर उजला का ग्रुप एक फ्रांसीसी इन्टेलैक्चुअल से उलझ रहा था। कांग्रेस ऑफ़ कल्चरल फ्रीडम की चर्चा थी।

"फ्रांस की मौजूदा, उथल-पुथल स्थिति से पश्चिमी बुद्धिवादियों की हालत ख़राब है। फ्रांस जो यूरोप के कल्चर और ज़हन का सिम्बल था, इसके मौजूदा रवैये ने पश्चिमी इन्टेलैक्चुअल्ज़ को हड़बड़ा दिया है। पश्चिम का अब सचमुच पतन हो गया है। अब उसके पास अपने बचाव के लिए कोई तर्क नहीं है।" तनवीर गरज रहा था—"अब अगर कल सार्त्र दुबारा प्रायश्चित्त कर ले, तो मुझे ताज्जुब न होगा। पश्चिमी सभ्यता के प्रतिनिधियों के पाँव-तले से ज़मीन निकल गई है।"

"अंग्रेज़ बुद्धिजीवियों की हालत भी क्या मज़ाक बन गई है। अमेरिका से रुपया खाते हैं..."

यूजेन दूसरी तरफ़ बातें करने में लीन थी।

मैं टहलता हुआ, जाकर अमेरिकनों के पास बैठ गया।

"मेरी, ज़रा अमेरिकन 'एड' देना।" रोनल्ड ने सिग्रेट लेने के लिए एक अमरीकन इन्टेलैक्चुअल लड़की मेरी रिचर्ड्ज़ की ओर हाथ बढ़ाया। वह क़हक़हा लगा कर हँसी। बड़ी हँसमुख और कल्चर्ड लड़की है।

दूसरे ग्रुप में अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के इतिहासकार बैठे थे, जो कुछ दिन के लिए कराची

में ठहरे हुए थे।

"अगर अमरीका गृह युद्ध के बाद दो हिस्सों में बँट गया होता तो हम लोगों का आज तक जाने क्या हाल हुआ होता !" अमरीकन इतिहासकार ने कहा। "तुम अपनी वह थ्यौरी मत दोहराना कि बँटवारे का कारण आर्थिक था।" उसने मुझे देख कर हाथ हिलाया। "इसके अलावा और क्या था, मैं यह जानना चाहता हूँ !"

"मैं तो यह जानना चाहती हूँ कि पूर्व के पतन का असली कारण क्या है?" फ़र्नी ने कहा। "मैंने टोयनबी से भी यह पूछा; वह हैरान है। हिन्दुस्तान का अठारहवीं सदी में क्यों पतन हुआ?"

"हिन्दुस्तान की नहरी सिंचाई का प्रबन्ध बहुत ख़राब था।" जेकब मौरिसन, एक अमरीकन इन्टेलैक्चुअल ने कहा, "यह समस्या ख़ालिस कृषि समस्या है।"

अब रोनल्ड और यूजेन और मेरी रिचर्ड्ज़ एक और बहस कर रहे थे।

"पूर्व के पतन का कारण इस्लाम है।"

"ऐं?"

"रिफ़ार्मेशन के बाद ईसाई यूरोप ने आलोचना की जो भावना पैदा की वह इस्लाम में आज तक मौजूद नहीं ? तुम क्या खुल्लम खुल्ला अपने धर्म पर आपत्ति कर सकती हो ? तुम्हारा जीना दूभर कर दिया जाएगा।"

"वाह इस्लाम में भी नए विचारक और बाग़ी पैदा होते रहे हैं" फ़र्नी ने कहा।

"हाँ मगर अपने रसूल या ख़ुदा की परिकल्पना या कुरान—किसी चीज़ पर भी आलोचना कर सकती हो? ईसाइयों के यहाँ अनगिनत चर्च हैं और नास्तिकों की फ़ौज की फ़ौज मौजूद है। ईसाई बड़े इत्मीनान से वर्जन मेरी की परिकल्पना का मज़ाक उड़ाते हैं। कोई परवाह नहीं करता. मुसलमान वैज्ञानिक ढंग से सोचने के योग्य नहीं।"

"जभी टोयनबी ने कहा है हिंदू सोसायटी इस्लामिक सोसायटी के मुकाबले में ज़्यादा उदार है।"

बुद्धिज़्म और...

डेढ़ बजे के क़रीब हम लोग वहाँ से उठे। एयरपोर्ट जाकर कॉफ़ी पी। जब मैं वापस घर पहुँचा तो मैं थक कर चूर-चूर हो चुका था।

सामने टॉम की कोठी है, उसमें रोशनियाँ बुझ गई हैं। टॉम भी किसी पार्टी से लौट कर सोने जा चुका है। यह लड़का मेरे साथ जहाज़ पर बम्बई आया था। पेशे से पत्रकार है। कुछ दिन हिन्दुस्तान में घूमता फिरा। अब फ़िशरीज़-विभाग मे एडवाइज़र होकर यहाँ आ गया है। फ़िशरीज़ के अलावा ब्रॉडकास्टिंग को भी एडवाइज़ करता है।

एडवाइज़र्स की हर तरफ़ रेल-पेल है। ये एडवाइज़र जाने क्या जादूमंत्र सिखाते हैं, मगर अब तक कोई ख़ास तरक़्क़ी कहीं नज़र नहीं आई।

आज की सबसे बड़ी घटना तलअत, मेरी चहेती बहिन, यह है कि मैं, लखनऊ का इन्क़लाबी, कांग्रेस का क्रियाशील कार्यकर्त्ता, संयुक्त भारत की महानता का जोशीला अग्रदूत—मैं आज सुबह बारह सौ रुपये माहवार के एक ओहदे पर ले लिया गया। एक पूरी लेबोरेट्री मुझे

सेट-अप् करनी है। इसके लिए सामान ख़रीदने शायद जल्द ही अमेरिका भेज दिया जाऊँ। फ़िलहाल इसी काम के सिलसिले में अगले हफ़्ते पूर्वी पाकिस्तान जा रहा हूँ। अगला ख़त तुमको ढाके से लिखूँगा।

अब सुबह हो रही है। सारी रात मैंने तुमको ख़त लिखने में गुज़ार दी। हद है। मैंने जाने कितने सफ़े काले कर दिये होंगे। अभी मैंने खिड़कियों के पर्दे हटाये और बाहर झाँका। कराची जग उठा है। कराची अपने काम पर जा रहा है। सैकड़ों-हज़ारों इंसान साइकिलों, बसों, साइकिल-रिक्शाओं पर सवार कारख़ानों और दफ़्तरों की ओर चले जा रहे हैं। ये वही लोग हैं, बिटिया, जिन्हें आमतौर पर 'जनता' कहा जाता है। त़लअत, इन लोगों ने तो कोई क़सूर नहीं किया। इनको शिक्षा नहीं दी गई, इनको भूखा रखा गया। इनको जिस लाठी से हाँक दो, हँक जाएँगे। ये सब शान्ति से ज़िन्दा रहने, पेट भर रोटी खाने और आराम से सोने के हक़दार हैं। तलअत, जिस वक़्त सुबह-तड़के हज़ारों मज़दूरों का रेला पी. आई. डी. सी. के नए डाक-यार्ईज़ की ओर बढ़ता है, उस वक़्त, क़सम ख़ुदा की, वह नज़ारा देखने क़ाबिल होता है। मुझे पाकिस्तान के भविष्य से उम्मीदें-सी बँध जाती हैं। ये बड़े मासूम, बड़े निर्दोष इंसान हैं। ये लोग इस बेहूदा, बद-शक्ल बूम-टाउन की पन्द्रह लाख आबादी हैं। ये मकरानी ऊँटगाड़ी वाले, रंगबिरंगे लहँगे पहने राजस्थानी और काठियावाड़ी मज़दूरिनें, सऊदाबाद कॉलोनी में रहने वाले बनारस के जुलाहे (जिनके पुरखे कबीर के साथ पंचगंगा घाट पर दोतारा बजाते फिरते होंगे), शरणार्थी बस्तियों के वासी, पश्चिमी यू. पी. के कारीगर, दिल्ली के बिसाती, बम्बई के टैक्सी-ड्राइवर, मलाबारी चाय वाले, फ़ुटपाथ पर दुकानें लगाने वाले छोटे-छोटे व्यापारी, अंजाम कॉलोनी और आगरा ताज कॉलोनी के निवासी, जो हॉक्स-बे के रास्ते पर हिन्दुओं के पिछले वक़्त के श्मशान घाट के दलदल में झोंपड़े डाले पड़े हैं और अपनी-अपनी झोंपड़ियों पर चाव से चाँद-तारे का झंडा लहराते हैं। हर साल बारिश आती है तो इनकी झोंपड़ियाँ बह जाती हैं। APVA (ऑल-पाकिस्तान-वीमंज-एसोसिएशन) की बेगमें आकर अमरीकी दूध के डिब्बे और कम्बल उनमें बाँटती हैं और उनकी झोंपड़ियाँ अगली बरसात तक के लिए फिर आबाद हो जाती हैं। रात, मेरी रिचर्ड्ज़ मुझसे बोली कि सोशियोलोजिस्ट की हैसियत से मैं यह पूछना चाहती हूँ कि इतनी भारी मुसीबतों के साथ जीवन बिताने के बावजूद कराची का यह प्राणी इतना शांतिप्रिय कैसे है? यह इन्क़लाब क्यों नहीं लाता, हिंसा पर क्यों नहीं उतर आता? कमाल है कि इसका जवाब मेरी रिचर्ड्ज़ को भी मालूम नहीं ! मुझे बड़ी नाउम्मीदी हुई।

नहीं तलअत, ये बड़े प्यारे लोग हैं। इनसे इसलिए नफ़रत न करो कि उन्होंने हल्ला करके तुम्हारी दुनिया का बँटवारा कर दिया। ये बड़े मासूम इंसान हैं। इनको उन बहसों, इतिहास की उन व्याख्याओं और बाल की खाल निकालने से कोई मतलब नहीं, जो कल रात उस महफ़िल में हो रहा था। हक़ीक़त यह है कि सिंध-इंडस्ट्रियल-स्टेट में कारख़ाने खुल गए हैं, और उनकी मशीनें ये इंसान चला रहे हैं। और, जिस देश में वे रह रहे हैं, उसका नाम पाकिस्तान है। अब अतीत पर रोना और बीते हुए की ग़लतियों पर पछताना ग़लत है, क्योंकि भविष्य अभी शेष है। *यह सोचना मूर्खता है कि दोनों देश फिर एक हो जाएँगे। दुनिया का नक़्शा हर महायुद्ध* के बाद बदलता है। सन् [illegible] के बाद [illegible] बदल गया। जब मैं अतीत के बारे में सोचता हूँ

तो मेरा दिल कटता है। मगर, दिल कहाँ तक कटेगा। जीवन आधा बीत गया। थोड़ा बाक़ी है। अब भी अवसर है कि हम इस बचे-खुचे वक़्त को सुकारथ कर लें।

इस देश ने मुझे अपनी सुरक्षा में लिया है, मुझे शरण दी है। उसको बनाना या बिगाड़ना अब मेरे हाथ में है। मैं, जिसने उम्र भर विध्वंस के बजाय निर्माण के सपने देखे हैं, क्या तुम्हारा ख़याल है, यहाँ अपने आपको खो दूँगा? नहीं तलअत, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।

मैं निर्माण करूँगा।

पी. एस.–

निर्माण पर याद आया कि भैया साहब की कोठी, जिसमें मैं ठहरा हूँ, बड़ी शानदार है। एक इटैलियन आर्किटैक्ट ने बनाई है, ख़ालिस एकदम मॉडर्न केलिफ़ोर्नियन ढंग की।

भैया साहब की दुल्हन ख़ासी बद्‌जात हैं। मैं सोच-सोच कर इस बात का मज़ा ले रहा हूँ कि तुम उनको कितना नापसन्द करोगी। वे APVA की क्रियाशील कार्यकर्त्री हैं। कराची की मशहूर सोसायटी महिलाओं में गिनी जाती हैं। दुल्हन-भाभी मुझे बसाने के सिलसिले में बेहद कोशिश कर रही हैं। अभी उन्होंने मेरे लिए एक हज़ार गज़ ज़मीन दिलवाई है और अपने एक बा-असर चचा के ज़रिए मकान बनवाने के लिए पचास हज़ार रुपया उधार दिलवा दिया है। कल जब उनका इटैलियन आर्किटैक्ट मकान का नक़्शा लेकर मेरे पास आया तो मेरा दिल चाहा कि दहाड़ें मार-मार कर रोऊँ।

(दुल्हन-भाभी की छोटी बहन नैनीताल कॉन्वेंट में पढ़ रही है।) जल्द ही भैया साहब और दुल्हन-भाभी ब्राज़ील जाने वाले हैं। कोठी विदेशियों को पन्द्रह सौ रुपये माहवार किराए पर उठा दी जाएगी। बाबा और अम्मी उस कॉटेज में रहेंगे, जो भैया साहब ने अहाते में बनवाई है। बाबा सारा दिन अख़बार पढ़ने में गुज़ारते हैं। अम्मी किसी से मिलती-जुलती नहीं, हालाँकि कराची में लखनऊ के बहुत से ख़ानदान बिराज रहे हैं। बाबा और अम्मी की हालत देख कर दुःख से मेरा कलेजा फटता है।

अब मैं फिर भावुक हो रहा हूँ। इसलिए ख़ुदाहाफ़िज़।

तुम्हारा–
'कम्मन'

फिर पी. एस.–

पिछले हफ़्ते गवर्नमेंट-हाउस के एक डिनर में रौशनआरा से मुलाक़ात हुई थी। ख़ासी मोटी हो गई है। उसके पति को मैंने नहीं देखा। वह किसी मिशन पर अमरीका गया हुआ है। रौशन से मालूम हुआ कि तुम्हारी साजिदा आपा भी आजकल अमरीका में हैं। रौशन ने तुम लोगों में से किसी की भी ख़ैरियत नहीं पूछी। मुझसे दो-चार रस्मी बातें करने के बाद दूसरे गुट में शामिल हो गई।

99

मध्ययुग का भारत, घास-फूस जिसकी दीवारों से उग रहा है। पुरानी दिल्ली की इमारतें; अजमेर; खानदेश; बंगाल और मालवा की मस्जिदें; गौड़ का प्रवेश-द्वार तांती पाड़ा; फ़िरोज़ मीनार;

गुनमन्त मस्जिद; अहमदाबाद; रानी सुपारी की मस्जिद; चम्पानेर; मांडू का हिंडोला-महल, जहाज़-महल, रूपमती और बाज़ बहादुर का महल; काल्पी का चौरासी गुम्बद; जौनपुर की अतालादेवी की मस्जिद; दौलताबाद के क़िले, बहमनी बादशाहों की इमारतें, चँदेरी का बादल महल, बीदर और गुलबर्गा, दक्खिन ! दक्खिन !!

उत्तर प्रदेश में ललितपुर था और काल्पी; और शिकोहाबाद और बदायूँ और जौनपुर—मुग़लों से पहले का हिन्दुस्तान।

उड़ीसा, मद्रास, कर्नाटक, अजन्ता, एलोरा—स्रिल घूम-फिर कर फिर मध्य युग की इमारतों में पहुँच जाता। अनगिनत नाम, अनगिनत ज़माने, समय के पैटर्न। वह जो यूरोप के प्राचीन कैथेड्रलों की मेहराबों के नीचे घूमता था, अब ख़ानाबदोशों की तरह सारे हिन्दुस्तान में चक्कर लगाता फिरा। इन इमारतों के पत्थरों पर वह हाथ रखता। कमल के फूल, हाथी, गंधर्व, हौज़, सीढ़ियाँ, मीनार, ताक़। किसी अँधेरी उजाड़ मेहराब के नीचे से कोई देहाती लड़की बकरियाँ चराती निकल जाती। कोई लड़का पीपल की डाल पर से बावली में कूद जाता। कोई भिखारी रास्ता टटोलता-टटोलता महल के खँडहर में बैठ कर चिलम सुलगाने में लीन हो जाता। ऊपर टूटे हुए गुम्बदों और विशाल आँगनों पर झुका हुआ नीला आसमान सनसनाता रहता। बादल पश्चिमी घाट से झूम कर उठते और चित्तौड़ पर छा जाते। बंगाल की खाड़ी से घटाएँ बढ़तीं, और राजशाही और गौड़ पर फैल जातीं। मध्ययुग का उदास, ख़ामोश, उजाड़ हिन्दुस्तान बारिश में नहाता। घास के पौधे हवा में लहराते।

ये पत्थर अतीत और वर्तमान दोनों में शामिल थे और उसकी चेतना पर इस तरह बरसते थे कि उसे लगता कि अब उसका मस्तिष्क बिलकुल बेकार हो जाएगा। वह भाग कर वर्तमान में शरण लेता।

सारे हिन्दुस्तान में मारे-मारे फ़िरने के बाद (वह किसे खोज रहा था ? उसने कई बार, झुँझला कर ख़ुद से सवाल किया), वह फिर कलकत्ते पहुँचता। फिर हवाई जहाज़ में बैठ कर पूर्वी पाकिस्तान की सुन्दर धरती पर उतरता, और ढाका क्लब की बार में लगातार बियर पीने के बाद फिर सिलहट जाने वाली ट्रेन में बैठ कर गंतव्य की ओर रवाना हो जाता है।

गंतव्य स्थान आख़िरकार यह था—

एक छोटे से स्टेशन पर धक्के से ट्रेन रुकी। तरह-तरह की आवाज़ें नींद में तैरती हुई उस तक पहुँचीं। "डीम (अण्डा) बोइल्ड—बोइल्ड डीम !—सा-गरम ! (चाय गरम)—सागरम ! सागरम !—डीम बोइल्ड—!" उसने खिड़की का पट चढ़ा कर फिर बाहर देखा। इस दृश्य में किस क़दर अथाह उदासी थी ! अँधेरा छा रहा था। बाहर वातावरण में फूलों की ख़ुशबू फैली हुई थी, जो विस्तृत हरे-भरे खेतों पर से बहती हुई आई थी। एक बूढ़ा फूँस हिन्दू बेशुमार गठरियाँ उठाए झुका-झुका, तेज़-तेज़ क़दम उठाए जा रहा था। वह देर तक उस बूढ़े को देखा किया—यहाँ तक कि वह स्टेशन की भीड़ में आँखों से ओझल हो गया। ओफ़्फ़ोह ! यहाँ कितनी आबादी थी ! औरतें, जिनके माथों पर बड़ी-बड़ी लाल बिन्दियाँ और माँग में गहरा सुर्ख़ सिन्दूर रचा था, रंग-बिरंगी सूती साड़ियाँ पहने बच्चियाँ, धोतियों के किनारे सँभाले हिन्दू;

चारख़ाने के तहमद बाँधे मुसलमान, जिनमें से अधिकांश के दाढ़ियाँ थीं; भुखमरी के शिकार काले-काले लड़के; अधिकारी वर्ग के लोग; एंग्लो-इण्डियन गार्ड; पालकी बरदार (यहाँ अब तक पालकियाँ चल रही थीं)...फिर ट्रेन चली, बंगाली आवाज़ें अंधकार में डूब गईं। ट्रेन दोबारा तालाबों के किनारे-किनारे दौड़ने लगी। तालाबों में कमल के फूल खिले थे। किसी फूलों की बेल से ढँके झोंपड़े के दरवाज़े पर कोई औरत ऊदी साड़ी बाँधे खड़ी नज़र आ जाती। कुछ औरतें घूँघट निकाले बाँसों के झुण्ड के नीचे-नीचे चल रही थीं। उनके नाम क्या होंगे ! आमना, सकीना, रेवा, राधा। उनके जीवनों की कहानियाँ क्या होंगी भला ? उनका जीवन-दर्शन—ज़िन्दा रहने से मर जाने तक की दास्तान—यातनाएँ, दरिद्रता, अकाल—अकाल...अकाल...

उसने आँखें बन्द कर लीं।

"अल्लाह कॉपड़ दे, पानी दे, भात दे रे !—अल्लाह भात दे—!" उसके कानों में उस कोरस के शब्द गूँजे जो उसने एक बार ढाके की एक महफ़िल में विद्यार्थियों से सुना था—'अल्लाह भात दे ! अल्लाह भात दे !' यह यहाँ का राष्ट्रीय गीत होना चाहिए—उसने सोचा, और बंगाल के सम्बन्ध में उसने हमेशा से कितनी रोमाण्टिक कल्पनाएँ बाँध रखी थीं ! शुनीला देवी ने उसे टैगोर पर क्या-क्या लेक्चर पिलाए थे ! और, वे सारी पुस्तकें जो उसने पढ़ी थीं। डी. सी. सेन और जसमुद्दीन और लीलाराय—लोकगीत जमा करने वालों की टोलियाँ, साहित्यिक कॉन्फ्रेंसें, कलकत्ते के थियेटर और सांस्कृतिक गतिविधियाँ, विश्वविद्यालय लायब्रेरी और अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी की पृष्ठभूमि और कम्पनी की बनी हुई कोठियाँ; क्लाइव रोड, जो अब नेताजी सुभाष चंद्र बोस रोड थी और अलीपुर तथा धर्मतल्ला। मगर वह सीमा पार कर चुका था। कलकत्ता दूसरी ओर रह गया था। ट्रेन एक और स्टेशन पर रुकी। 'अल्लाह भात दे ! भात दे !—भात दे—!'

कुछ पुरबनें गठरियाँ और बच्चे उठाए धकापेल में गिरती-पड़ती थर्ड क्लास के डिब्बों की तरफ़ बढ़ गईं। उसके कम्पार्टमेन्ट का दरवाज़ा खुला और डायनिंग-कार के बैरे का सफ़ेद बुर्राक साफ़ा अन्दर आया।

"डिनर साहब ?"

"हाँ।"

उसने कम्बल टाँगों पर डाल लिया, और दोबारा आराम से लेट गया।

सिलहट में चाय के बागीचों में सैकड़ों पूर्वी मज़दूर काम करते थे। रामदेई, रामऔतार, लछमन, और सीता, गेंदा और चँवेलिया। पूर्बियों के यहाँ ये दो नाम बहुत लोकप्रिय थे—राम और सीता। भारत का अतीत, स्वर्णयुग—पाटलिपुत्र, इन्द्रप्रस्थ, अयोध्या, लक्ष्मणवती, श्रावस्ती—दिग्विजयी रामचन्द्र और मिथिला की जनककुमारी सीता—अरे वाह रे इतिहासकारो—!

"डिनर साहब—! कॉफ़ी लाऊँ ?" बैरे ने ट्रे लाकर सामने रख दी, और धीरे-से उसे यों सम्बोधित किया मानो वह देवता था।

वह फिर वर्तमान में वापस आ गया। उसे याद आया कि उसे अभी श्रीमंगल पहुँचना है। रंगामाटी और बन्दरबन। उसे और रुपया कमाना है।

दूसरे दिन ट्रेन सिलहट पहुँची। स्टेशन पर उसका मैनेजर पीटर जैक्सन हमेशा की तरह

कार लिए उसके स्वागत को मौजूद था। वे शहर से निकल कर श्रीमंगल की ओर रवाना हुए।

सुर्मा नदी के किनारे पहुँच कर उसने कार रोकी। अब सायंकाल का अँधेरा छा रहा था। लालटेन लिए बूढ़े मर्द और औरतें नावों पर सवार हो रहे थे, या उतर रहे थे। मोटरबोट धड़-धड़ करती दूसरे किनारे से लौट आई थी। किनारे पर पुरानी लारियों में लोग मुर्गियों की तरह ठुँसे बैठे थे। एक अंधा फ़क़ीर क़ुरान की आयतें पढ़ कर भीख माँग रहा था। अँधेरे में उसकी आवाज़ बड़ी भयानक लगी। दो अंधे एक नौका में जा बैठे। एक अंधी औरत पेड़ के नीचे बैठी थी।

यहाँ कितने अंधे थे—कितने अनगिनत अंधे।

बोट से तख़्ते जोड़ कर उसकी कार नाव पर चढ़ाई गई। नाव यात्रियों से लद गई।

"बड़ी गंदी भीड़ है। चलो, हम लोग नौका में चलें।" पीटर ने कहा। उसने विरोध नहीं किया। वह तो ख़ुद नाव की तरह सतह पर बहे जा रहा था।

वे दोनों कूद कर एक नौका में सवार हो गए। नौका मोटरबोट के पीछे चलने लगी। किनारा दूर रह गया, वहाँ मिट्टी के तेल के चिराग़ जगमगा रहे थे और जिनके पीछे झोंपड़ों पर पान की बेलें चढ़ी थीं। एक चायख़ाने के आगे लोग लालटेन के सामने झुके अख़बार पढ़ रहे थे। नदी में नावें चल रही थीं। क्षितिज पर सुपाड़ी के वृक्ष हवा में झूमते थे। कितनी शान्ति थी ! अमिट शान्ति !!

सहसा ज़ोर की हवा चली। नौका हिचकोले खाने लगी।

बहुत वृद्ध माँझी अपनी पूरी शक्ति लगा कर नौका खेता रहा, और फिर गाने में तल्लीन हो गया।

और, उसने देखा कि उसके बूढ़े मल्लाह की नौका लहरों पर डोलती जा रही है। आगे, जिधर घुप अँधेरा है, और हवाओं में तूफ़ान लरज रहे हैं, और अँधेरी धाराओं में भयानक मगर मुँह फाड़े बैठे हैं, और हवाएँ बहुत तेज़ हैं। पर, इस बूढ़े भुखमरी के शिकार मल्लाह की नाव बड़े मज़े से तूफ़ान का मुक़ाबला कर रही है—क्योंकि पंचतत्त्वों की निर्ममता और मौत से उसकी पुरानी दोस्ती है।

आख़िर जब हवा का ज़ोर ज़्यादा बढ़ा और नाव बार-बार डोलने लगी तो स्रिल ने लालटेन उठा कर घबराहट के साथ चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। "पीटर, हम तूफ़ान में तो नहीं फँस गए ?" उसने घबराकर प्रश्न किया।

"नहीं—यह तो मामूली-सी हवा है। परेशान मत होओ।" पीटर ने जवाब दिया। "मगर ज़रा उस काले सूअर से कहो कि अपना भोंडा गाना अलापने के बजाय पतवार की तरफ़ ध्यान दे। वरना, इस तरह हम सुबह तक भी घाट पर न पहुँच पाएँगे।"

"बेचारा बूढ़ा !" स्रिल ने चटाई की छत पर झुक कर दूसरी ओर झाँकते हुए कहा। माँझी ने दृष्टि उठा कर उसे देखा, और सब्र के साथ पतवार चलाता रहा।

"ये बड़े ज़लील लोग हैं। चुस्ती इनमें नाम को भी नहीं !" पीटर ने कहा।

स्रिल ने छत पर झुके-झुके आवाज़ दी—

"ओ आदमी—क्या नाम है तुम्हारा ?"

"अबुल मोन्शूर, साहब !"

"अबुल मोन्शूर।" सिरिल ने दोहराया, "मैं तुम्हारी मदद करूँ ?"

"जी नहीं, साहब !" वह फिर पतवार पर झुक गया। नौका अब तेज़ी से दूसरे किनारे की ओर बढ़ रही थी।

किनारे पर दोनों ओर अनन्नास के खेत और केले के पेड़ों के झुण्ड थे। दूर गाँवों में रोशनियाँ जल रही थीं। सिरिल ने नौका के अन्दर झाँका, जहाँ अबुल मोन्शूर का मिट्टी का दिया और चटाई, जानमाज़, और दो काँसे के बर्तन रखे थे। दीवार पर नारियल टँगा हुआ था। यह इस बूढ़े फूँस, सफ़ेद दाढ़ी वाले माँझी की कुल सम्पत्ति थी, जो नदी के तूफ़ानी पानियों पर डोलती थी। एकाएक सिरिल को बड़ा अजीब लगा। उसने आँखे मलीं और ख़ुद को यक़ीन दिलाना चाहा कि यह सब सच है कि भाग्य के एक अनोखे दाँव ने उसे केम्ब्रिज की गलियों से निकाल कर यहाँ इस नौका में ला बिठाया है। इस विचित्र और सुन्दर भूमि पर, जिसे 'पूर्वी बंगाल' कहते हैं। जिसे 'पूर्वी पाकिस्तान' कहते हैं।

लालटेन उठा कर उसने दोबारा चारों ओर नज़र डाली। प्रकाश से लहरों पर रास्ता-सा बन गया। पास से एक बड़ा शम्पान गुज़र गया। चाँद बेद के पेड़ों के पीछे से धीरे-धीरे आलस्य के साथ उदय हो रहा था।

100

"यहाँ घनघोर घटाएँ उमड़ कर आती हैं, पर वर्षा नहीं होती।
यहाँ बेटा बाप की, पत्नी पति की इज्ज़त नहीं करती।
लोग सभाओं में जमा नहीं होते।
सुन्दर बगीचे और आराधनागृह निर्मित नहीं किए जाते।
यहाँ धनवानों का धन सुरक्षित है, लेकिन
चरवाहे और किसान दरवाज़ों की चटखनी चढ़ा कर सोते हैं।
बिना पानी की नदी, बिना घास का जंगल, बिना चरवाहे का गल्ला..."

पढ़ते-पढ़ते कमाल ने रामायण बन्द कर दी।

"यह कहाँ का जिक्र है ?" सिरिल ने पूछा।

"कहीं का भी नहीं; मैं तो रामायण देख रहा था। यहाँ अल्मारी में पड़ी मिल गई। मुद्दतों पुरानी। इस पर सन् 1927 ई. की तारीख़ पड़ी है।" वह उदासी से मुखपृष्ठ पर लिखे हुए नाम को पढ़ने का प्रयत्न करने लगा। नाम की स्याही धुँधली हो चुकी थी।

"तुम तो इस श्रद्धा से पढ़ रहे हो, गोया तुलसीदासजी कम्युनिस्ट थे।" सिरिल ने कहा।

"हाँ, और भगत व्यास भी पार्टी-मेम्बर थे।" कमाल ने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया। "उन्होंने लिखा है, महाभारत में, कि अगर राजा ज़ालिम हो तो उसके ख़िलाफ़ बग़ावत करो। ऐसा राजा, राजा नहीं है। उसे पागल कुत्ते की मौत मारना चाहिए।"

"वाह पंडितजी !" सिरिल ने हँस कर कहा—"क्या बात है। मगर यह बता दूँ कि अब

तुम रामायण-महाभारत भूल जाओ, वर्ना आफ़त में फँस जाओगे।"

"हाँ, यह मैंने बड़ी बेवक़्त की रागिनी छेड़ दी।" कमाल ने कहा।

दोनों फिर खामोश हो गए। गुज़रे हुए बरस बियर के गिलासों में बुलबुलों की तरह तैरा किए। आधा घंटा और गुज़र गया। स्रिल चुपचाप बैठा नीली पहाड़ियों को देखता रहा, पहाड़ियों के उस पार बर्मा था।

"क्यों भाई, क्या सोचते हो ?" कमाल ने उसी उदासी के साथ पूछा।

"कुछ नहीं, सोच रहा था कि बर्मा अगर यहाँ से पाँव-पाँव जाया जाए तो कितनी दूर होगा।"

"बस यही सोच रहे थे ?"

एक आवारा, भूखा कुत्ता नीचे से कूद कर बरामदे में आ गया।

"देखो, यह भी बर्मा से आ रहा है।"

"या बर्मा जाना चाहता है।" कमाल ने कमीनेपन से कहा।

कुत्ता दुम हिलाता रहा।

"हैलो...हैलो...लो, बिस्किट खाओ।" स्रिल ने कुत्ते की ख़ातिर की।

"यार, यह तो रेड-चायना से भाग कर आया है।" कमाल ने उसे ग़ौर से देख कर बड़ी गम्भीरता से कहा—"एण्टी-कम्युनिस्ट कुत्ता है। आज़ादी की तलाश में यहाँ पहुँचा है।"

स्रिल ने मुँह लटका कर कमाल को देखा। "तुम अब भी कॉलेज के ज़माने की-सी बातें करते हो।"

" 'अब भी'...की तारीफ़ नहीं की जा सकती।" मेज़ पर चाय का सामान रखा था। कमाल ने एक सैंडविच कुत्ते के सामने फेंकी और बोला—"नहीं स्रिल, मैं 'इस्लामी' हुकूमत पर ईमान ला चुका हूँ। देखो मेरा पासपोर्ट।" उसने जेब से हरे रंग का नया-नवेला पासपोर्ट निकाला।

"रैले ब्रदर्स में तो मैं तुमको इससे अच्छी नौकरी दिलवा देता।" स्रिल ने कहा, "क्या करनाफुली-मिल की प्लानिंग करने आए हो तुम ? यहाँ अक्सर लोग इस सिलसिले में आते हैं।"

"मैं झख मारने आया हूँ, तुमसे मतलब ? तुम बंगाली मजदूरों का खून चूसने के लिए नहीं आन मौजूद हुए ? सूप बोले तो बोले, छलनी भी बोले, जिसमें बावन छेद।...मैं तो हूँ ही ज़माने भर का नम्बर एक भगोड़ा...प्रतिक्रियावादी !" कमाल ने कहा।

"अब इस पर फिर अपने ज़मीर का दौरा पड़ने वाला है...!" स्रिल ने बड़े दुःख से दूसरी तरफ़ मुँह कर लिया।

स्रिल हार्वर्ड ऐश्ले नदियों, पहाड़ियों और घने जंगलों में से गुज़रता कल सुबह ही यहाँ पहुँचा था। वह श्रीमंगल से कारोबार के सिलसिले में चटगाँव आया था। चटगाँव से उसकी चाय निर्यात की जाती थी।

यहाँ फिर दिल की वहशत ने ज़ोर बाँधा और पीटर पर काम की देखभाल छोड़ कर उसने पहाड़ियों की राह ली। वह दोहज़ारी, बन्दरवन और चन्द्रगोना के जंगलों में मारा-मारा

फिरा और रांगामाटी के डाकख़ाने में अपने भाई को उसने आज्ञाकारिता से अपनी कुशलता का पत्र भी भेजा। पत्र में सिलहट और चटगाँव के क्षेत्रों की सुंदरता पर उसने प्रकाश डाला और लिखा कि आशा है कि अगली क्रिसमस वे उसके साथ सिलहट में मनाएँगे।

यह समाचार सुन कर कि सिरिल ने रोज़मारी को तलाक़ दे दिया (इसका कारण किसी को ज्ञात न था), उसके बड़े भाई लॉर्ड ब्रार्नफ़ील्ड के दिल पर से एक बोझ-सा उतर गया था। उनको महसूस हुआ था कि बोहीमिया से निकल कर उनका छोटा भाई अन्त में अब अपनी दुनिया में वापस लौट आएगा। लॉर्ड साहब ने कलकत्ते से अपना कारोबार समेट कर जब बड़े पैमाने पर पूर्वी पाकिस्तान में रुपया लगाया था। वहाँ उनके चाय के बगीचे भी थे। सिरिल जब केम्ब्रिज से निकलने के बाद आजीविका की खोज में लन्दन में मारा-मारा फिर रहा था। उसे एक दिन उन्होंने अपने क्लब में बुलाया और बिना भूमिका उससे कहा—"मैं तुमको पाकिस्तान भेज रहा हूँ।"

"बहुत अच्छा !" सिरिल ने उसी ढंग से उत्तर दिया। अब जीवन में अधिक झगड़ा करने की गुंजाइश कहाँ थी।

और, पिछले छः महीने से वह पाकिस्तान में था। उसे लन्दन छोड़ने का अधिक दुःख नहीं हुआ। गौतम नीलाम्बर, हरिशंकर, कमाल, माइकेल, सुरेखा, सब लोग पहले ही इंग्लैंड छोड़ चुके थे। चलने से पहले उसने शुनीला देवी को फ़ोन किया था और तलअत को भी। मगर तलअत घर पर मौजूद न थी।

अब वह श्रीमंगल में एक बेहद ख़ूबसूरत बंगले में रहता था और काम से अवकाश मिलते ही बाहर का चक्कर लगा आता था—कलकत्ता, ढाका, इमारतें, खँडहर, मकान उसे तरह-तरह की कहानियाँ सुनाते।

कल शाम जब वह एक पगोड़ा के बाग़ में घंटा भर चुपचाप बैठे रहने के बाद सर्किट हाउस वापस पहुँचा तो एक नवयुवक की पीठ पर उसकी नज़र पड़ी। युवक पिछले बरामदे की रेलिंग पर झुका नीचे करनाफली नदी को देख रहा था।

उसके क़दमों की आहट पर उस नवयुवक ने पलट कर सिरिल को देखा।

यह नवयुवक कमाल रज़ा था।

कमाल ने उसे अपनी दास्तान सुनाई और बताया कि वह एक लेबोरेट्री स्थापित करने कराची से इधर आया है और सारे प्रान्त का दौरा करता फिर रहा है।

अब वह सुबह से बरामदे में बैठे थे और ज़िंदगी का ग़म उनके टुकड़े-टुकड़े किए डाल रहा था।

शाम का अँधेरा छा गया था। नौकरों ने सर्किट हाउस में लैम्प जला दिए।

कुछ दिन पहले खेदा समाप्त हुआ था। पास वाले कमरे में हाथियों का ठेकेदार एक एंग्लो-इंडियन अपने एंग्लो-इंडियन स्टाफ़ के साथ ठहरा हुआ था जो शराब पीने के बाद बेहद दार्शनिकतापूर्ण बातें करता।

रात को नौजवान हँसमुख अफ़सरों की एक टोली शोर मचाती हुई आई, उनमें से दो एक लड़के अलीगढ़ के थे। कमाल की उनसे अलैक-सलैक हुई। खाने की मेज़ पर वे बंगाल

की समस्या पर चर्चा करने लगे।

"बहुत-से लोग तो बस नाम के मुसलमान हैं !" उनमें से एक ने कहा।

"अच्छा ! मेरा तो ख़याल था कि इस्लाम का यहाँ बड़ा ज़ोर है जितना सारे उपमहाद्वीप में नहीं है। मसलन इतने नमाज़ी और इतना सख़्त पर्दा मैंने और कहीं नहीं देखा।" कमाल ने कहा।

"सारा रुपया यहाँ कलकत्ते की कम्युनिस्ट पार्टी से आता है।" उन्होंने कहा।

"बंगाल का मसला है बहुत नाजुक।"

कमाल चुपचाप बैठा उन सबको देखता रहा।

खाना खाने के बाद वे सब अपने-अपने कमरों की ओर चले गए। स्लिल और कमाल फिर पिछले बरामदे में आ बैठे। बरामदे पर नारिंजी फूलों की बेल फैली हुई थी। सारे में ख़ामोशी छा गई। नदी जहाँ मुड़ती थी वहाँ पहाड़ी पर पॉवर-हाउस था। रात के सन्नाटे में उसकी घड़घड़ाहट बहुत साफ सुनायी देती। उसके पास ही बाँस का सिनेमा-हाउस था, जिसमें से 'बैजू बावरा' के गानों की आवाज़ आ रही थी। लता की आवाज़ नदी की सतह पर तैरती हुई सर्किट-हाउस तक आ रही थी। कमाल जंगले पर सिर रखे उसी आवाज़ को सुनता रहा। लता की आवाज़ एक ऐसा मज़बूत पुल है, जिसने दो शत्रु देशों को एक-दूसरे से मिला रखा है, उसने सोचा।

"तुमने लता को सुना है ?" उसने ऊँची आवाज़ में स्लिल को सम्बोधित किया।

"वह कौन है ?" स्लिल ने चौंक कर पूछा।

कमाल बोरियत से दरिया में डूबता-उतराता रहा।

ख़ानसामाँ कॉफ़ी की ट्रे लेकर सामने आ खड़ा हुआ।

कमाल की इस ख़ानसामाँ से बहुत दोस्ती हो गई थी। कई बार वह दोनों अनेक विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान कर चुके थे।

"कहिये ख़ानसामाँ जी, क्या हालचाल है ?" कमाल ने कहा।

"मेहरबानी है हुज़ूर ! आप लोगों के आने से रौनक़ लगी रहती है, वर्ना इस जंगल बियाबान में क्या रखा है।"

"तुम बड़ी साफ़ उर्दू बोलते हो। ढकैया हो क्या ?"

"जी नहीं सरकार, हम तो कलकतिया हैं।"

"अच्छा ! हम भी थोड़े से कलकतिया थे एक ज़माने में।"

"जी हुज़ूर !"

कमाल ने एक और जमुहाई ली। ख़ानसामाँ झुक कर कॉफ़ी बनाने लगा। स्लिल अपनी आदत के मुताबिक़ आँखें बन्द किए बैठा रहा।

गवर्नर-जनरल इस्कन्दर मिर्ज़ा और उनकी पार्टी खेदा के बाद बन्दरवन से लौट कर कराची वापस जा चुकी थी। उनके लिए बाँस का सर्किट-हाउस ख़ासतौर पर सजाया गया था। गवर्नर-जनरल का ठाठबाट देख कर ख़ानसामाँ को बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक का ज़माना याद आ गया। वे भी जब शिकार के लिए आते थे तो इसी तरह जंगल में मंगल लग जाता था और ख़ूब बख़्शीशें मिलती थीं।

"पिछले दिनों तो यहाँ बड़ी चहल-पहल रही होगी।" कमाल ने कहा।

"जी हुज़ूर, आपको उस ज़माने में आना चाहिए था। दूर-दूर से साहब लोग आया था। अब ख़ुशी की बात यह है कि बड़े लाट साहब अंग्रेज़ के बजाय मुसलमान हैं। मगर, शान में अंग्रेज़ों से कम नहीं। इसी पर ग़ैर लोग जलते हैं। इस्लाम की शान देख कर ईर्ष्यालुओं के आग लगती है।"

"कौन जलते हैं ?" कमाल ने पूछा।

"अरे साहब !" उसने चारों ओर देख कर धीरे-से कहा—"यहाँ बड़ा-बड़ा फ़सादी पड़ा हुआ है।'

"यहाँ कहाँ ?" कमाल को उसके रहस्यमय स्वर से ऐसा लगा, जैसे इन घने जंगलों में बड़े साहसी कम्युनिस्टों के अड्डे हैं। अभी उनके गोरिल्ला दस्ते अँधेरे में से निकल कर सर्किट-हाउस पर धावा बोल देंगे, और वह बेचारा अपना कर्त्तव्यपालन करता हुआ शहीद हो जाएगा।

सिल कपड़े बदलने के लिए अपने कमरे की ओर चला गया। ख़ानसामाँ ने कॉफ़ी के बर्तन उठा लिए। फिर ख़ामोशी छा गई।

कुछ देर बाद एक अमरीकन ड्राइंग-रूम में से निकल कर लम्बे-लम्बे डग भरता बेतकल्लुफ़ी से आन कर कमाल के पास बैठ गया।

"हाउ डी...!" उसने मुस्करा कर कहा।

"अर्रर...हाउ डू यू डू।" कमाल ने हाथ मिलाया।

"मैं जान टाइटस एबल, जूनियर हूँ। मुझे जॉनी कहो।"

"हैलो जॉनी। यहाँ कैसे आना हुआ ?" इसी के साथ कमाल को ध्यान आया कि यह बड़ा अनावश्यक प्रश्न है।

"मैं चकमा क़बीलों के बारे में एक डाक्यूमेण्टरी फ़िल्म बना रहा हूँ।"

"ओ...हाउ एक्साइटिंग !" कमाल और टाँगें फैला कर आरामकुर्सी पर लेट रहा। "सिगरेट ?"

"थैंक्स !"

दूसरे क्षण जॉनी भी वातावरण के इस जादू में खो गया। वह जंगले पर बाज़ू लगा कर नदी को देखता रहा। जॉनी की बुश्शर्ट पर जो अख़बार छपे थे, कमाल आँखें खोल कर बरामदे के मद्धम प्रकाश में उनके शब्द पढ़ने की कोशिश करता रहा। फिर उससे भी उकता गया। नदी पर पूरी निस्तब्धता के साथ किश्तियाँ गुज़र रही थीं। कभी किसी मल्लाह के भटियाली गाने की आवाज़ ऊँची हो जाती। इन नावों में दीये जल रहे थे। अब घुप अँधेरा सामने वादी पर छा गया था।

फिर जॉनी ने बड़े दोस्ताना और भोले अन्दाज़ में कमाल से बातें शुरू कर दीं। कमाल हूँ-हाँ करता रहा। सिरिल ने ड्रेसिंग-गाउन पहन कर अपने कमरे की खिड़की में से झाँका और कमाल को अमरीकन के साथ सिर खपाता देख कर चुपचाप बाथरूम में से होता हुआ बाहर निकल कर पास वाले बरामदे की सीढ़ियों पर बैठ गया। उसके सामने भी नदी बलखाती बह

रही थी और नावों की रोशनियाँ काँप रही थीं। अँधियारा चक्कर काटता सारे में छाया जा रहा था। बरामदे में जॉनी अपनी सपाट आवाज़ में कमाल को बता रहा था कि वह कुछ दिन पूर्व ही पूर्वी पाकिस्तान आया है। लेकिन अंडर-डेवलप्ड देशों का उसे काफ़ी अनुभव है। इससे पहले वह वियतनाम में रह चुका है। उसकी बीवी न्यूयार्क में प्रेस-फ़ोटोग्राफर है। दो बच्चे हैं। उसने जेब से अपनी पत्नी और बच्चों का चित्र निकाल कर दिखाया और देर तक अपने छोटे बच्चे के बारे में बातें करता रहा, बच्चा दो साल का था। फिर उसने एशिया के कम्युनिज़्म के ख़तरे पर प्रकाश डाला और कमाल को बताया कि मुस्लिम-देश अपनी धार्मिक और आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा कम्युनिज़्म के विरुद्ध जेहाद में अमरीका की बड़ी मदद कर सकते हैं।

"अब तो कॉफ़ी पी लो !" कमाल ने जमुहाई लेकर कहा।

"नहीं, अब मैं खाना खाऊँगा।" उसने पूर्वी पाकिस्तान की राजनैतिक स्थिति पर बातचीत आरम्भ की। कमाल को बड़ा आश्चर्य हुआ कि पूर्वी पाकिस्तान से सम्बन्धित सारा विवरण और आँकड़े, सभी कुछ उसे ज़बानी याद था, और यहाँ उसे केवल एक महीना हुआ था।

इतने में दो और अमरीकन रंगीन बुश्शर्ट पहने ड्राइंग-रूम में से होते हुए बरामदे में आ गए। एक बार फिर परिचय का सिलसिला शुरू हुआ और बहुत शिष्टाचार से बातें की गईं। ये दोनों यू. एस. आई. एस., ढाका के लोग थे और इसी जॉनी के साथ रांगामाटी आए थे। लोकेशन ढूँढ़ने के लिए सारा दिन चकमा गाँवों में घूमते फिरे थे। उनके पाँव धूल-धूसरित थे और वे बहुत थके हुए थे। बच्चों जैसे जोश-खरोश से वे कमाल को अपने एडवैंचर सुनाते रहे।

"तुमको मालूम है, रेड-चायना कितना पास है...! इन पहाड़ों से ज़रा ही आगे बढ़ कर !" जॉनी ने एक और रहस्योद्घाटन किया।

सर्किट-हाउस के नौकर ने आकर सूचना दी कि नहाने के लिए पानी लगा दिया गया है। वे सब उसी तरह बातें करते उठ कर अंदर चले गए।

स्रिल ने मुंडिया निकाल कर फिर खिड़की में से झाँका।

"गए तुम्हारे यार-दोस्त ?"

"आ जाओ...अब मैदान साफ़ है !" कमाल ने उत्तर दिया।

स्रिल बाहर आकर अपनी आराम-कुर्सी पर लेट गया। वे दोनों फिर अपने-अपने विचारों में डूब गए।

कमाल और स्रिल पाँच-छः दिन वहाँ रहे।

सर्किट-हाउस के नीचे करनाफली बह रही थी। उस पर लकड़ी के बड़े-बड़े गट्ठे बहा कर चन्द्रगोना की ओर ले जाए जा रहे थे। कुछ दूरी पर एंग्लो-इण्डियन डिप्टी-कमिश्नर का बँगला था। उसकी कलाकार लड़की जेन सफ़ेद साड़ी पहने पहाड़ियों पर बैठी चुपचाप चित्र बनाती दिखाई देती। बलखाते मार्गों पर से मंगोल शक्लों वाले पहाड़ी बोझ पीठ पर लादे गुज़रा करते। सरकारी जीप गाड़ियाँ ज़न्न से निकल जातीं। सुबह-शाम मन्दिरों में घण्टे बजते। हाट में आई हुई चीजें बिकतीं। रंग-बिरंगे सूती कपड़े, मूँगे और फ़िरोज़े के हार, चाँदी के ज़ेवर। लम्बे-लम्बे पाइप पीती हुई हँसमुख पहाड़ी औरतें दुकानें लिए बैठी रहतीं। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध

सब शान्ति और सन्तोष से अपने-अपने काम में लगे थे। अनन्नास के खेतों में कटाई कर रहे थे, चावल उगा रहे थे। घने भयानक जंगलों से बाँस काटकर नीचे ला रहे थे। अक्सर किसी बहुत ही सुनसान जंगल की ऊँची पगडण्डी पर कमाल को एक बूढ़ा तहमद बाँधे, सिर पर बाँसों का भारी गट्ठा उठाये अपना रास्ता तय करता दिखाई दे जाता। इस गट्ठे को बेच कर वह कुछ कमाएगा। सदियों से वह यही करता आ रहा था। आज भी उसकी स्थिति में रत्ती भर अन्तर नहीं आया था। जंगलों में चकमा, माघ और मोंग आदिवासी अपने बाँस के झोंपड़ों में जीवन व्यतीत कर रहे थे। बीसियों मील का फासला तय करके हाट के लिए रांगामाटी आते थे। यहाँ न सड़कें थीं, न रेल-गाड़ियाँ और न हवाई जहाज़ की सर्विस। यह सुन्दर और शान्तिमय क्षेत्र जंगलियों का देश कहलाता था। "यह स्थान एंथ्रोपोलोजिस्ट के लिए स्वर्ग है !" जॉनी कहता, और सिल और कमाल को अपने साथ लोकेशन पर घसीट ले जाता, या वे दोनों खुद ही जीप में बैठ कर सागौन के झुरमुटों में घुस जाते और पक्षियों की चहकार सुनते फिरते। पहाड़ी लड़कियाँ काली धारीदार सेरोंग बाँधे, गगरियाँ उठाए इन जंगलों में से गुज़र जातीं। किसी भिक्षु के गेरुए वस्त्रों की झलक दिखाई दे जाती। करनाफली के धारे पर उन्होंने दूर-दूर तक नावें चलाईं। बन्दरवन जाकर मोघ राजा से मिले, उसका महल देखा और वे घने जंगल देखे जिनमें हाथी रहते थे।

"आसाम में इस साल जो बाढ़ आई तो अनगिनती हाथी अपना वन छोड़ कर यहाँ आ गए। वैसे भी इन जंगलों की सीमा सही-सही तय करना बड़ा मुश्किल है !" एक अफ़सर ने कमाल को बताया।

"तो मानो जिन पाकिस्तानी हाथियों का खेदना हुआ, उनमें शरणार्थी हाथी भी शामिल थे ?" कमाल ने गम्भीरतापूर्वक पूछा।

उन्होंने सुन्दरवन के सारे क्षेत्र की सैर की। इन्सानों को देखा। कमाल उनकी भाषा न समझता था। वे कमाल की भाषा से अनभिज्ञ थे; ये भोले मासूम लोग अभी तक लगभग पाषाण-युग में रह रहे थे।

इन जंगलों में सुन्दर जानवर भागे-भागे फिर रहे थे—चीते और गुलदार और बारहसिंघे। यह कैसी साफ़-सुथरी, पवित्र दुनिया थी !

एक दिन शाम को रांगामाटी से करनाफली के उस पार राजबाड़ी गए जहाँ चकमा राजा रहता था। यहाँ देशी राज्यों की अन्तिम जीवित अवस्था का बड़ा प्रभावशाली दृश्य कमाल को दिखाई दिया। बाग़ में एक छोटी-मोटी तोप रखी है। एक मन्दिर था। आम के वृक्षों पर शाम की उदासी में कोयलें चिल्ला रही थीं। सामने साधारण से महल में मद्धम बल्ब जल रहे थे, क्योंकि रांगामाटी का बिजलीघर बेहद कमज़ोर था।

हॉल में राजा के पुरखों के बड़े-बड़े तैलचित्र लटक रहे थे। "इन पुरखों में बंगाल और आसाम के मुग़ल-गवर्नर भी शामिल थे !"—सिल ने तुरन्त इस क्षेत्र के इतिहास की उस दीमक लगी किताब का हवाला दिया, जो सर्किट-हाउस के ड्राइंग-रूम में रखी थी और जो उसने बड़े शौक़ से पूरी पढ़ डाली थी।

इंगलिस्तान में शिक्षित नवयुवक राजा और उसकी माँ ने सिल और कमाल का स्वागत

किया।

ड्राइंग-रूम में पियानो के ऊपर साधना बोस का चित्र रखा था। केशवचन्द्र सेन का चित्र आतिशदान पर मौजूद था। राजमाता, केशवचंद्र सेन की पोती और साधना बोस की बड़ी बहन थी। "केशवचन्द्र सेन ने जब अपनी कमसिन लड़की की शादी महाराजा कूचबिहार से की तो ब्रह्म-समाज में बड़ा हंगामा हुआ।" कमाल ने ग्रिल को सूचित किया।

"हाँ, मैंने सती देवी, महारानी कूचबिहार की आत्मकथा पढ़ी है। शुनीला देवी ने पढ़ने को दी थी। अक्सर वे ब्रह्म-समाज पर लेक्चर देती थीं।" ग्रिल ने धीरे से उत्तर दिया।

"आप पाकिस्तान से आए हैं?" राजमाता ने पूछा।

कमाल एक क्षण के लिए हड़बड़ा गया। यह भी तो पाकिस्तान है। फिर, दूसरे क्षण उसने इस स्थिति पर ग़ौर किया। क्या यह पाकिस्तान नहीं है? किसी मुल्क की कल्पना वास्तव में क्या है? यह राजबाड़ी अब किस मुल्क में शामिल है? केशवचन्द्र सेन और बाबू बी. एन. दत्त अब किधर खपते हैं?

रानी साहिबा कमरे में दाख़िल हुईं। वे ख़ूबसूरत-सी, सत्रह साल की लड़की थीं। उन्होंने सारी उम्र दार्जिलिंग के एक कॉन्वेंट स्कूल में गुज़ारी थी। वे दोनों तुरन्त सम्मान के लिए खड़े हुए। कमाल की विचार-शृंखला टूट गई।

अब राजा जो काफ़ी रूपवान् था, ऑक्सफ़ोर्ड के स्वर में ग्रिल से बोला—"सरकार करनाफली पर बाँध बाँध कर सारे सूबे के कारख़ानों के लिए हाइड्रोइलेक्ट्रिक स्टेशन बनाने वाली है। मेरे क़बीले के लोगों का क्षेत्र भी पानी में आ जाएगा। उनको सरकार मुआवज़ा देकर कहीं और बसा देगी। यह मेरा घर रांगामाटी-समेत पानी में डूब जाएगा।"

"तबदीली के बिना तरक़्क़ी मुमकिन नहीं।" कमाल ने आहिस्ता से जवाब दिया।

"हाँ !" राजा ने कहा।

राजमाता कलकत्ते की बातें करने लगीं। कमाल के विचार फिर दर-दर भटक गए। बंगाल के रजवाड़ों का माहौल, बर्दवान, कूचबिहार, मैमनसिंह—यह उस अलिफ़लैला की कहानी के सिलसिले की एक छोटी-सी गुमनाम कड़ी थी जो अब हाइड्रोइलेक्ट्रिक के पानी में डूब जाने वाली थी।

कमाल और ग्रिल ने कुछ देर बाद आज्ञा चाही। राजा और राजमाता दरवाज़े तक पहुँचाने आए।

"फिर कभी ज़रूर तशरीफ़ लाइएगा।" राजमाता ने कमाल से कहा।

"ज़रूर, ख़ुदाहाफ़िज़।"

वे बाहर आ गए। राजबाड़ी की रोशनियाँ टिमटिमाया कीं। करनाफली पर नावों का ट्रैफ़िक कम हो चला था। रात भीगती जा रही थी।

दूसरे दिन सुबह वे रांगामाटी को ख़ुदाहाफ़िज कह कर नीचे मैदानों मे उतर आए।

चटगाँव से वे ट्रेन में बैठ कर सीताकुंड रवाना हो गए।

रास्ते में नवयुवक टिकट-चेकर कम्पार्टमेंट में आया और टिकट देखने के बाद दीवार से लग कर खड़ा हो गया।

"तशरीफ़ रखिए। सिगरेट पीजिएगा?" कमाल ने कहा।

उसने ज़रा भौंचक्का होकर कमाल को देखा और फिर झिझकते हुए सीट के किनारे पर टिक गया।

"आप यहीं के रहने वाले हैं?" कमाल ने पूछा।

"जी हाँ, सुपारी के इस झुंड के उधर मेरा गाँव है।" टिकट-चेकर ने उत्तर दिया।

कमाल को और बहुत-सी बातें मालूम हुईं। उसको टी. बी. हो चुकी है। उसकी तनख़्वाह बहुत कम है और घर का ख़र्चा बहुत अधिक है। पाँच बहनों की शादियाँ करनी हैं। वह वर्तमान मंत्रिमंडल से सन्तुष्ट नहीं, इत्यादि-इत्यादि। उसका राजनैतिक ज्ञान आश्चर्यजनक था और वह यूनिवर्सिटी के किसी जोशीले विद्यार्थी की तरह युक्तिसंगत बातचीत कर रहा था, हालाँकि वह केवल एक क्षयग्रस्त टिकट चेकर था, जिसका जीवन छोटी लाइन की ट्रेन पर यात्रा करते व्यतीत हुआ था।

"पाकिस्तान बनने से पहले फ़र्स्ट और सेकंड क्लास के डिब्बों में कोई मुसलमान नज़र न आता था—बंगाली मुसलमान सामाजिक और आर्थिक रूप से इतने पिछड़े हुए थे। आज आप लोगों को फ़र्स्ट क्लास में सफ़र करते देख कर मेरा दिल ख़ुशी से भर जाता है।" उसने कमाल से कहा।

स्टेशन निकट आ रहा था। गाड़ी की रफ़्तार मद्धम होना शुरू हुई।

"आपको पता है?" टिकट-चेकर ने खड़े होते हुए एकाएक कमाल को सम्बोधित किया—"सन् 47 से आज तक इस लाइन पर चेकिंग करते हुए मुझे इतने बरस बीत गए। आप प्रतिष्ठित पहले बड़े अफ़सर हैं, जिन्होंने मुझसे सभ्य ढंग से बात की और मुझे एक प्रतिष्ठित इन्सान समझा। मैं आपको हमेशा याद रखूँगा।"

दूसरे क्षण वह तेज़ी से डिब्बे के बाहर निकल गया।

कमाल और सिरिल स्टेशन पर उतरे। शाम हो रही थी। हवा में फूलों की ख़ुशबू थी।

"हम सीता के मन्दिर जाना चाहते हैं।" कमाल ने एक आदमी से कहा।

"अब, इस वक़्त न जाइए। पहाड़ी की चोटी बहुत ऊँची और ख़तरनाक है। लौटते-लौटते रात हो जाएगी।" स्टेशन मास्टर ने आगे बढ़ कर कहा।

"हम ज़रूर जाएँगे !" सिरिल ने ज़िद्द की।

स्टेशन मास्टर ने ज़रा आनंदित होकर उसे ध्यान से देखा। दस-पन्द्रह लोग झिझकते हुए उनके आसपास जमा हो गए। यह एक बड़ा-सा कुटुम्ब था। स्टेशन का स्टाफ़, पुलिस कांस्टेबिल, चाय का स्टॉल वाला, गाँव के लोग, मन्दिरों के साधु। उनकी इस पूर्ण शान्तिमय दुनिया में ये दो अनोखे अजनबी कहाँ से आ टपके।

तुरन्त बस्ती में ख़बर फैल गई। दो यात्री आए हैं और उनमें से एक अंग्रेज़ है। (अंग्रेज़ भी यात्री ही होगा! वर्ना उसका दिमाग़ ख़राब हुआ था कि जान जोखिम में डाल कर इतनी दूर सीताजी की पावन अग्नि के दर्शन करने आता?) एक पालकी लाकर प्लेटफ़ॉर्म पर रखी गई। उसका पर्दा हटा कर साड़ी के घूँघट में से एक लड़की ने भी इन दोनों को अचम्भे से देखा।

स्निल पालकी को खोई-खोई दृष्टि से देखता रहा।

"यह हमारे बड़े मौलवी साहब की बिटिया है। अपनी ससुराल वापस जा रही है।" काँटा बदलने वाले ने बताया।

कांस्टेबिल आगे वढ़ा—"आइये, आपको गाँव तक पहुँचा दूँ।" उसने कहा। गाँव के रास्ते में उसने भी राजनैतिक बातचीत शुरू कर दी—महँगाई, मुस्लिम-लीग की नीति, कृत्रिम अकाल, अवामी लीग, ए. के. फज़लुल हक़। कमाल का सिर चकरा गया। इस प्रान्त का बच्चा-बच्चा कितनी राजनैतिक चेतना रखता है। गाँव के छोटे-से बाज़ार में एक लड़का कमाल के पीछे चलने लगा। वह कांस्टेबिल से चटगाँव की स्थानीय भाषा में कुछ कह रहा था।

"प्रफुल्ला कहता है कि आपको कुंड तक ले जाएगा।"—कांस्टेबिल ने कहा।

"हैलो प्रफुल्ला !" स्निल ने उससे हाथ मिलाया।

"तुम्हारा पूरा नाम क्या है?" कमाल ने उससे कलकत्ते की बंगाली में पूछा।

"प्रफुल्ल कुमार बिसवास !"

"स्कूल में पढ़ते हो?"

"जी नहीं, खेती करता हूँ।"

"यहाँ आराम से रहते हो?"

"आराम से क्यों न रहूँगा?" प्रफुल्ल ने आश्चर्य से पूछा।

कमाल खामोश हो गया।

बाज़ार की कच्ची सड़क पर ताज़ा-ताज़ा छिड़काव हुआ था। छोटी-छोटी दुकानों पर लोग जमा थे। सबकी दृष्टि इन दोनों की तरफ़ थी। सफ़ेद देव की तरह स्निल आगे-आगे उस नन्हें से बाज़ार में दाख़िल हुआ। कमाल एक चायख़ाने के सामने रुक गया। साफ़-सुथरे बाँस की टट्टियों के बने हुए चायख़ाने में न हुल्लड़ था और न गुंडेपन का माहौल था। चन्द आदमी चादरें लपेटे, बैंचों पर बैठे बंगाली अख़बार पढ़ रहे थे। कोने में ग्रामोफ़ोन बज रहा था। दीवारों पर कलकत्ते में बने हुए बंगाली फ़िल्मों के विज्ञापन लगे थे। यह बिलकुल एक दूसरी दुनिया थी।

"हमारे लिए खूब गरम चाय बनाना। हम अभी पहाड़ी पर से वापस आते हैं।" कमाल ने चायख़ाने के मालिक से कहा। लोग अपने-अपने घरों से केले और फल लेकर ख़ातिर के लिए आ मौजूद हुए।

"आप यात्री हैं, बड़ी दूर से आए हैं—आपकी ख़िदमत हमारा फ़र्ज़ है।"—एक दाढ़ी वाले मुसलमान ने कहा।

कमाल आश्चर्य से यह सब सुनता रहा। क्या इन्हीं लोगों ने नोआखाली और बिहार में एक-दूसरे को कत्ल किया था ?—उसका सिर चकरा गया।

प्रफुल्ल के नेतृत्व में उन लोगों ने पहाड़ी की ओर बढ़ना शुरू किया। रास्ते में ख़ूबसूरत झोंपड़े थे और हरे-भरे कुंज। जगह-जगह सरस्वती-पूजा की तैयारियाँ की जा रही थीं। घास पर और मकानों के सामने सरस्वती की बेहद सुन्दर और कोमल मूर्तियाँ रखी थीं, जिनको कुम्हारों ने सूखने के लिए छोड़ दिया था। कमाल एक मूर्त्ति के पास ज़मीन पर बैठ गया।

विद्या की देवी, बत्तख पर सवार होकर सितार बजाने वाली ब्रह्मा की पत्नी—सृष्टि की माँ। उसने कहा—"हम इंसानों ने तेरा क्या हाल किया ?"

सिरिल भी घास पर घुटने आगे करके बैठ गया—"तुम्हारे गाँवों के कुम्हार कितने कुशल कलाकार हैं।" उसने मूर्ति को ध्यान से देख कर कहा।

"हाँ !" कमाल ने गर्व से कहा।

फिर वे बाँसों के झुंड में से निकल कर पहाड़ी की तरफ़ बढ़ने लगे। सामने लाल पत्थर का तालाब था। तालाब के चारों ओर लाल मन्दिर थे और लाल पत्थर की चौड़ी सीढ़ियों पर बरगद की शाखें झुकी थीं। चारों ओर निस्तब्धता छायी हुई थी।

तालाब का चक्कर काट कर वे एक दूसरे कुंज में दाख़िल हुए। यहाँ लड़कियाँ नन्हीं-नन्हीं झीलों के किनारे बैठी थीं। झोंपड़ों और मकानों पर तुरई की पीले फूलों से लदी बेलें फैली हुई थीं। पेड़ों से सुगंधित फूल गिर रहे थे।

"यार, यह तो बिलकुल किसी प्रगतिशील बंगाली फ़िल्म का सैट मालूम दे रहा है।" कमाल ने कहा।

"बंगाल के गाँवों से ज़्यादा हसीन नज़ारे और कहाँ होंगे। बंगाली उस्तादों के उपन्यास इन्हीं इलाक़ों के चित्र हैं।" सिरिल ने जवाब दिया।

वह पहाड़ी की सीढ़ियों पर पहुँच गए। अब उनके दोनों तरफ़ बेहद घने ट्रॉपिकल जंगल थे और गहरी गुफाएँ, खड्ड और जगह-जगह सैकड़ों बरस पुराने मठ पेड़ों में छुपे खड़े थे। भूरे रंग के कँपकँपा देने वाले डरावने देव-मन्दिर की ताला लगी कोठरियों में महंतों की समाधियाँ थीं। पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी। श्रद्धालु लोगों के अनुदान से बनाई हुई हज़ारों टूटी-फूटी सीढ़ियाँ ख़तरनाक मोड़ों से गुज़रती हुई चोटी तक चली गई थीं, जहाँ गंधक के कुंड में हज़ारों बरस से आग जल रही थी।

"सीता महारानी को रावण ने लंका से लाकर यहाँ छोड़ दिया था।"—प्रफुल्ल ने बड़े विश्वास और श्रद्धा के साथ मैटर ऑफ़ फ़ैक्ट अन्दाज़ से इस प्रकार सूचना दी, जैसे यह कल की घटना है।

कुछ साधु ढलवान पर मन्दिरों के एक झुंड की ओर जाते दिखलाई दिए। सिरिल ऊपर पहुँच कर एक पेड़ से टिक गया।

अँधेरा गहरा हो गया। टूटी-फूटी सीढ़ियों के नीचे झरना गिर रहा था। शाम के गहरे सन्नाटे में पक्षियों की सीटियाँ, पत्तों की सरसराहट, पानी की आवाज़ और शोलों की सनसनाहट, पुजारियों के मंत्रों की मद्धम आवाज़ों में घुलमिल कर उभरती रही। बहुत दूर तक ढलवान पर गाँव में रोशनियाँ अन्धी-अन्धी टिमटिमा रही थीं। प्रफुल्ल उचक कर पेड़ की डाल से लटक गया—"साहब ! ज़रा ध्यान रखिएगा। यहाँ अजदहे साँप और बिच्छू बहुत हैं।"

"अच्छा !" सिरिल ने कहा; मगर इन दोनों ने बिलकुल ध्यान न रखा और कुछ और सीढ़ियाँ तय करके एक और मठ तक पहुँच गए।

अब सूरज डूब चुका था। उसकी किरणें जो अब तक पहाड़ी के जंगल पर तरह-तरह के रंग बिखेर रही थीं, अन्धकार में गुम हो गईं। "अब वापस चलो। हमें दस बजे की ट्रेन

पकड़नी है।" कमाल ने याद दिलाया।

उन्होंने पहाड़ी से उतरना शुरू किया। आख़िरी सीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते उनको एक घंटा लग गया, क्योंकि अँधेरा बहुत गहरा था, और उनके पास टॉर्च तक नहीं थी।

गाँव के चायख़ाने में उनकी प्रतीक्षा हो रही थी। वे अन्दर जाकर एक साफ़-सुथरे बैंच पर बैठ गए। उनके सामने चाय और दो-दो पैसे वाले बिस्कुट रखे गए। मेज़बान लोग ज़रा शरमाए-शरमाए, सहमे-सहमे, मेहमानों से हट कर एक तरफ़ खड़े हो गए।

"स्रिल।"

"हाँ !"

"दुनिया में इस चायख़ाने से ज़्यादा ख़ूबसूरत जगह तुमने कहीं और देखी है?"

"नहीं।" स्रिल ने आहिस्ता से जवाब दिया।

"फिर वे बाहर निकले। बहुत से लोग उनको स्टेशन तक पहुँचाने आए। प्रफुल्ल पुराने दोस्तों की तरह चुपचाप उनके साथ-साथ चलता रहा। गाँव के बच्चों ने उनसे बख़्शीश की इच्छा प्रकट नहीं की। प्रफुल्ल ने भी इनाम लेने से इनकार कर दिया। ऐसा लगा जैसे रुपये पेश करके कमाल ने उसका दिल दुखाया है।

"मैं भिखारियों की दुनिया का रहने वाला हूँ। यदि कोई भीख को ठुकरा दे तो मुझे आश्चर्य नहीं करना चाहिए?" कमाल ने कहा।

"हाँ !" स्रिल ने जवाब दिया।

रास्ते में एक झोंपड़ी के बरामदे में चिराग़ जल रहा था। कमाल ठिठक गया। "देखो, यहाँ क्या हो रहा है !" उन्होंने अन्दर झाँका। एक बूढ़ा फूँस हिन्दू सफ़ेद-झक् धोती और चादर लपेटे मिट्टी के दिए के प्रकाश में कुछ बच्चों को बंगाली-प्रवेशिका पढ़ा रहा था। बच्चे धरती पर बैठे थे। गुरु के लिए उन्होंने एक फटी-पुरानी चटाई बिछा रखी थी। अजनबियों को देख कर बूढ़ा घबरा कर बाहर निकल आया और हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

"तुम यह दृश्य कभी भूल सकोगे?" स्रिल ने कहा।

"नहीं।" कमाल ने जवाब दिया।

वे स्टेशन पहुँचे। ट्रेन आई। वे चटगाँव वापस पहुँच गए, जहाँ जगमगाते क्लब में पीटर जैक्सन बार-रूम में उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

"आप सीताकुंड होकर आ रहे हैं !" उसका रंग फक् हो गया—"ग़ज़ब ख़ुदा का ! मालूम है? वह पहाड़ी साँपों, चीतों और भयानक बिच्छुओं से भरी है। वहाँ तो दिन के वक़्त भी समझदार आदमी बन्दूक लिए बिना नहीं जाते।"

"मगर वहाँ जो इतने इन्सान बसते हैं, वे?" कमाल ने पूछा।

"अजी, वे आए दिन साँप-बिच्छू के काटे से मरते रहते हैं। और फिर उनका क्या है, वे तो हैं ही जंगली, वहशी, वनमानुष लोग !"

दूसरे दिन उन्होंने सिलहट की ओर कूच किया । वहाँ से स्रिल कमाल को राजशाही ले जाकर पहाड़पुर में गुप्तकालीन शिल्पकारी की कलाकृतियाँ दिखाना चाहता था। सारे देश में चप्पे-चप्पे पर जो पुराने मन्दिर, मठ, मस्जिदें और दरगाहें बनी थीं, स्रिल उनके सम्बन्ध

में एक कुशल आर्क्यालॉजिस्ट की तरह कमाल को बताता रहा।

"यह तुम आर्क्यालॉजी के पंडित कब से बन गए?" एक दिन बारीसाल जाते हुए कमाल ने उदासी से उससे पूछा।

"मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ" ग्रिल ने स्टीमर की रेलिंग पर झुक कर समुद्र जैसे फैले दरिया की शोर करती लहरों को देखते हुए जवाब दिया, "कि मेरे पास सिर्फ़ अतीत ही एक ऐसी चीज़ है, जो सही-सलामत बची हुई है; जिसे दूसरा कोई नुक़सान नहीं पहुँचा सकता, जो समय की पहुँच से बाहर है। मैं ख़ुद अब एक अतीत हूँ। तुम्हारी तरह ही हिन्द और पाकिस्तान के ये पुराने खँडहर भी मेरे दोस्त हैं। मैं इनकी भाषा समझता हूँ। इस पागल महाद्वीप में केवल वे ही मेरे रहस्य को जानते हैं। इतिहासकारों की एक-दूसरे से उलटी दृष्टि को रद्द करके ये अपनी राम-कहानी मुझे अलग से सुना रहे हैं। मैं इनका एक बस अकेला ऑडियेंस हूँ। ये पत्थर मेरे दोस्त रहेंगे। कमाल, ख़ुदा के लिए यह न कहना कि मैं एक और पश्चिमी यूरोपियन अंग्रेज़ "डीज़ेनरेट डिकेंडेंट इन्टेलैक्चुअल" बन गया हूँ। मुझे अब इन लेबिलों की परवाह नहीं रही। मैं अब समझता हूँ कि लोग रोम और बाइज़न्तियम में पनाह क्यों ढूँढ़ रहे हैं। मैंने दुनिया से जो यह नया रिश्ता क़ायम किया है, उसे अपनी कड़वी भावनाओं द्वारा तोड़ने की कोशिश न करना।"

सिलहट में वे सुन्दर, पेचदार पहाड़ी मार्गों पर से गुज़रते एक दिन सरहद तक गए। सामने लकड़ी का बड़ा-सा फाटक था; जिसके इधर पाकिस्तानी सिपाही सावधान खड़ा था। फाटक के उधर कुछ असमी आलस्य से खड़े पान चबा रहे थे। कुछ ही दूर पर आसाम की हरी-भरी पहाड़ियाँ थीं, जिन पर ख़ूबसूरत मकान बने थे। कमाल लकड़ी के शहतीर पर कोहनियाँ टेके देर तक खामोश खड़ा रहा।

सिलहट से अगले रोज़ उन्होंने श्रीमंगल का रुख़ किया। यह बहुत लम्बा सफ़र था। नदियाँ और घने जंगल और मौलवी-बाज़ार का ख़ूबसूरत इलाक़ा पार करके वे ग्रिल के निवास-स्थान पर पहुँचे। एक नीच-से टीले पर ग्रिल का बँगला था। जिसकी बत्तियाँ दूर से नज़र आ रही थीं। अब रात हो चुकी थी।

सहसा कमाल ने महसूस किया कि उसका जाना-पहचाना ग्रिल किसी रहस्यमय ढंग से पल की पल में 'बड़े साहब' के रूप में बदल गया है। कार रोक कर ग्रिल सिर उठाए सामने की ओर देखता बरसाती की सीढ़ियाँ चढ़ा। उसके नौकरों की पल्टन स्वागत के लिए लपक कर आगे बढ़ी। बरामदे के नीचे खड़े हुए कुछ मज़दूरों ने झुक-झुक कर उसके सामने हाथ जोड़े। उसने आवाज़ दी—"अब्दुर्रहमान ! ग़ुसल का पानी लगाओ।" फिर वह कमाल को साथ लिये गेस्ट-रूम की तरफ़ बढ़ा।

"यह तुम्हारा कमरा है !" उसने कहा।

बँगला शेरों की खालों और चीतों और बारहसिंघों के सिरों और बहुमूल्य सागवान के फ़र्नीचर से सजा हुआ था। कमाल को अनुभव हुआ कि वह सन् 1928 ई. के हिन्दुस्तान में चला आया है। उसे 'गुलफ़िशाँ' बड़ी शिद्दत से याद आई, और देहरादून का दूसरा मकान 'ख़याबाँ' भी याद आया। अब्दुर्रहमान को देख कर उसे अमीर ख़ाँ का ध्यान आ गया। ग्रिल

ने ड्राइवर को पुकारा तो कमाल ने अनुभव किया कि शायद मियाँ क़दीर लपके हुए आएँगे।

"ज़लावतनी !—ज़लावतनी !—ख़ुदाबन्दा, तूने मुझे क्यों ज़लावतन (निर्वासित) होने दिया—!" कमाल ने आरामकुर्सी पर लेट कर आँखें बंद कर लीं।

डायनिंग-रूम में बैरे ने खाना लगाना शुरू किया। सारे नौकर-चाकर अपनी-अपनी जगहों पर काम में चुस्ती और फुर्ती से लग गए।

बंगाली मुंशीजी मज़दूरों का हिसाब-किताब लेकर बरामदे में टहल रहे थे। ट्रेड यूनियन का एक कार्यकर्त्ता बहुत देर से स्रिल की प्रतीक्षा में बरसाती की सीढ़ियों पर बैठा था। नौकरों की टुकड़ी स्रिल के गुसलख़ाने से निकलने का इंतज़ार कर रही थी। बैरा, ख़ानसामाँ, ख़िदमतगार, ब्वॉय। उसका यूरेशियन क्लर्क राल्फ़ जोज़ेफ़ बरामदे में काग़ज़ात लिए खड़ा था। स्रिल साहब कई दिन बाद लौटे थे, और बहुत से आवश्यक काग़ज़ों पर उनके हस्ताक्षर लेने थे। कई चपरासी इधर-उधर मौजूद थे। एक अकेला स्रिल, और उसके निजी स्टाफ़ में अनगिनत आदमी शामिल थे—माली, ग्रासकट, भिश्ती, चौकीदार। नदी पर उसकी अपनी मोटर-लांच थी। श्रीमंगल में दूर-दूर तक फैले इस राज्य का स्रिल अपने बड़े भाई लार्ड बार्नफ़ील्ड के साँझे में मालिक था। वह चाहता तो उन सबको उल्टा लटका कर पिटवा सकता था। वही स्रिल, जो कुछ समय पूर्व केम्ब्रिज में वोल्देयर और इलियट की पुस्तकें लिए घूमा करता था और 'कोहनूर' में माइकेल के साथ जाकर आलू खाता था।

सुबह सात बजे चौकीदार ने बँगले के हॉल का दरवाज़ा खोला। धूप झिलमिलियों में से छन-छन कर अन्दर आने लगी तो स्रिल अपनी मसहरी से उठा। कमाल अपने कमरे से निकल आया था, और ड्रेसिंग गाउन पहने बरामदे में खड़ा सिगरेट पी रहा था ! 'यादे-सुबहे-वतन दे रही थी हवा; दाग़-ए-दिल फूल बन-बन के खिलने लगे। मेरी पलकों पै बदर-ए-कमाल आ गया !'—उसने होंठों ही होंठों में कहा, और लम्बी साँस भर कर ड्राइंग-रूम में आ गया। ड्राइंग-रूम की दीवारें पूर्वी पाकिस्तान के चित्रकारों की पेंटिंग्ज़ से सजी हुई थीं। कोनों में ताँबे की मूर्तियाँ रखी थीं। अल्मारियों में पुस्तकें चुनी हुई थीं। ब्रेकफ़ास्ट के बाद वह स्रिल के साथ बाहर निकला। स्रिल ने सोला-हैट पहना। वे दोनों कार में सवार हुए। पीटर जैक्सन और राल्फ़ जोज़ेफ़ के नेतृत्व में मुंशियों और कार्यकर्त्ताओं का जुलूस जीपगाड़ियों में पीछे-पीछे चला। स्रिल ने कमाल को अपनी फ़ैक्टरी दिखाई। वहाँ चाय की पत्तियाँ तैयार की जा रही थीं।

दोपहर को लंच के लिए वे क्लब गए और चन्द साथी प्लांटर्ज़ से नारायणगंज के शेयर मार्केट के उस रोज़ के भावों पर स्रिल ने विचार-विमर्श किया। 'स्टेट्समैन' और 'अमृतबाज़ार पत्रिका' और ढाके के 'मार्निंग न्यूज़' पर नज़र डाली। अभी खाने से पहले बियर का दौर चल रहा था कि सहसा कमाल ग़ायब हो गया।

"मिस्टर रज़ा कहाँ गए?" बरामदे में आकर स्रिल ने पीटर से पूछा।

"पता नहीं, अभी मैंने उनको नूरुल इस्लाम चौधरी के साथ बाग़ों की तरफ़ जाते देखा है।"

नूरुल इस्लाम चौधरी? स्रिल ख़ामोश हो गया। चौधरी मज़दूरों का प्रतिनिधि था, और रात स्रिल से मिलने आया था। मगर स्रिल ने उससे मिलने से इनकार कर दिया था और

कहा था कि सुबह दफ़्तर में आए।

स्रिल कार में बैठ कर कमाल को ढूँढ़ने के लिए निकला। अपने टी-स्टेट में पहुँच कर वह सुनसान, सायेदार सड़कों पर चक्कर लगाता रहा, मगर कमाल का कहीं पता न था। आख़िर उकता कर उसने एक जगह कार रोक ली और बेध्यानी से झाड़ियों की तरफ़ चलना शुरू किया। मौसम बहुत सुहाना था। पंछी पेड़ों पर चहचहा रहे थे। डालियों में से छनती हुई धूप ने चाय की झाड़ियों पर तरह-तरह के पैटर्न बना दिए थे। चूड़ियों की झनकार पर उसने एकाएक दृष्टि उठा कर सामने देखा। एक पूर्वी लड़की बड़ी कुशलता से पत्तियाँ तोड़ रही थी। बड़े साहब को देख कर उसने जल्दी से घूँघट काढ़ लिया। स्रिल मुस्कराया। उसने विचारों के धारे पर बहते-बहते एक क्षण के लिए तट पर लग कर प्रश्न किया—

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"हमारा नाम?—चम्पा !"

"चम्पा !" उसने इस प्रकार दोहराया मानो यह नाम आज पहली बार सुना है। "चम्पा—अच्छा नाम है !" यह कह कर वह लम्बे-लम्बे ढीले-ढाले क़दम रखता फिर कार की तरफ़ लौट आया।

लड़की ज़रा हैरानी से उसे वृक्षों की धूप-छाँप में ओझल होता देखती रही। वह और उसके पूर्वज हर प्रकार के अंग्रेज़ों को देखते आए थे—सनकी, बद्‌दिमाग़, बेहूदा, बेहद दारू पीने वाले।

यह वाला बड़ा साहब सनकी था।

क्लब से वापस आकर वह धड़ाम से एक अरामकुर्सी पर गिर गया। सामने दीवार पर क्वीन एलिज़ाबेथ का चित्र लटक रहा था। एक चित्र में शेर के शिकार का दृश्य था। एक मेम सफ़ेद टोप पहने मूर्खों की तरह बन्दूक़ सँभाले हौदे पर बैठी थी। बराबर में महाराजा कूचबिहार विराजमान थे। मेम के रूप में उसे अपनी दादी लेडी बार्नफ़ील्ड की झलक दिखाई दी—दादी पचास साल पहले, अक्सर हिन्दुस्तान आकर महाराजाओं के साथ शेर का शिकार खेला करती थीं। 'गुडमार्निंग, ग्रेनी !—आज की सुबह तुम कैसी हो?' उसने दिल में कहा, और फिर विचारों में डूब गया—कि कमाल इस समय कहाँ होगा?

शाम को स्रिल ने कमाल के सम्मान में एक विशेष डिनर का प्रबंध किया था। उसकी अनुपस्थिति में ही स्रिल ने प्लांटर्ज़-मेहमानों को डिनर खिलाया और ब्रिज खेला।

बहुत रात गए कमाल, स्रिल के बँगले पर लौटा। स्रिल उसकी प्रतीक्षा में ड्राइंग-रूम में बैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था।

"आप कहाँ तशरीफ़ ले गए थे?"

"कहीं नहीं, इधर-उधर घूम रहा था।"

"मज़दूरों की बस्ती में गए थे?"

"हाँ।"

"मेरा यही ख़याल था।"

"तुम नाराज़ हो?"

"नहीं तो। तुम भी इस व्यवस्था में उसी हद तक शामिल हो जितना मैं। नाराज़गी का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

"यहाँ मज़दूरों को सिर्फ़ एक रुपया चार आने रोज़ मज़दूरी मिलती है?"

"हाँ।"

"कोई ट्रेड यूनियन नहीं है?"

"नहीं !"

"कोई कम्युनिस्ट एलिमेंट?"

"नहीं।"

"बकवास मत करो। तुमको सब पता है।"

"कमाल, सृष्टि की ज़िम्मेदारी का बोझ मैंने बहुत दिनों तक उठाए रखा। आख़िर उसे उतार फेंका। तुम भी इस बोझ से हलके हो चुके हो। फिर इस हठधर्मी से क्या फ़ायदा ! इस प्रकार क्या तुम अपनी अंतर्रात्मा को संतुष्ट करना चाहते हो कि तुम मुज़रिम नहीं? तुम बहुत बड़े अपराधी हो, कमाल रज़ा—मुझसे कहीं बड़े मुज़रिम हो !"

कमाल ख़ामोश रहा। स्रिल ने उठ कर उसके लिए ह्विस्की और गिलास निकाला।

"फिर मैं तुम्हारे जैसे एक निहायत चुग़द इन्सान से मिला। वे भी तुम्हारे साथी प्लांटर हैं। श्री नीहार रंजन दास गुप्ता।" कमाल ने कहा।

"दास गुप्ता—उससे तुम कहाँ मिले? वापस क्लब गए थे?

"नहीं, मैं पैदल एक पगडंडी पर से आ रहा था। मेरा सूट-बूट देख कर उन्होंने लिफ़्ट देने के लिए कार रोकी। वही मुझे तुम्हारे बँगले तक छोड़ गए हैं ! यह भी मालूम हुआ कि तुम्हारी तरह ख़ानदानी रईस हैं।"

स्रिल ने ह्विस्की दो गिलासों में उँडेली। कमाल कहता रहा—"मैंने उनसे पूछा। आप देश छोड़ने का इरादा नहीं रखते? क़हक़हा लगा कर हँसे। फ़रमाया, आप भी हद करते हैं ! इंडिया-गवर्नमेंट हर चीज़ का राष्ट्रीयकरण करने पर तुली हुई है। बहुत जल्द शायद वहाँ सचमुच की सोशलिस्ट सरकार क़ायम हो जाये। मेरा दिमाग़ ख़राब हुआ है जो पाकिस्तान छोड़ूँगा।" यह साफ़गोई क़ाबिले-तारीफ़ थी।

स्रिल ख़ामोश रहा। कुछ देर बाद उसने कहा—"मैं तुमको फिर यही राय दूँगा, दुनिया भर की हर चीज़ में टाँग अड़ाने की जो तुम्हारी आदत है—उसे अब छोड़ दो ! वरना आफ़त में फँसोगे।"

कमाल ह्विस्की के बुलबुलों को देखता रहा।

दूसरे दिन सवेरे वे राजशाही रवाना हो गए। कई दिन तक इस ख़ूबसूरत ज़िले की लम्बाई-चौड़ाइ में ख़ाक़ छानते फिरे। दूर-स्थित संथाल गाँव में पहुँचे। वहाँ रास्ते इतने ख़राब थे कि कई बार उनकी जीप उलटते-उलटते बची। संथालों ने कमाल को और ज़्यादा उदास किया।

"इन बेचारों के लिए तो मैं ज़हन में बड़ी रोमेंटिक कल्पना लिए बैठा था। लोक-नाच और जैनुलआबिदीन का मशहूर वाटर-कलर, और जाने क्या-क्या !"

"और, असलियत में अपनी हद दर्जे गरीबी के कारण ये पेड़ों की जड़ें खाते हैं और जंगली जानवरों की तरह ज़िंदा हैं। हैं ना?" ग्रिल ने जीप चलाते-चलाते मुड़ कर कहा–"मेरा भी शुरू में क़दम-क़दम पर यों ही दिल टूटा था।"

"जॉनी यहाँ नहीं आया, अपनी मूवी बनाने के लिए?" कमाल ने कहा।

"यहाँ भी आ जाएगा।" ग्रिल ने इत्मीनान से जवाब दिया।

संथालों से भी इन दोनों का बड़ा दोस्ताना हो गया। जिस रोज़ वे लोग वापस जा रहे थे, एक गाँव में सारे संथाल उनका रास्ता रोक कर खड़े हो गए। एक बिलकुल काली, बेहद दिलकश लड़की ने आगे बढ़ कर गेंदे के हार उनके गले में डाले और हाथ जोड़ कर उनके आगे झुकी। उनका मुखिया जिसकी एक टाँग कटी हुई थी और जिससे उसने लाठी बाँध रखी थी–उनके स्वागत में अपनी तार-तार इकलौती कमीज़ पहन कर उनको विदा करने बस्ती के मोड़ तक आया। एक नौजवान ने तालाब में से लाल कमल निकाल कर ग्रिल को पेश किया।

रात को वे राजशाही के सर्किट-हाउस वापस पहुँचे तो ड्राइंग-रूम में से कुछ अमरीकनों की आवाज़ें आईं।

जॉनी संथालों से सम्बन्धित डॉक्यूमेंट्री ईस्टमैन कलर में बनाने के लिए पहुँच चुका था।

सर्किट-हाउस के पास गंगा बहती थी। दूसरे किनारे पर मुर्शिदाबाद था।

मुर्शिदाबाद...? सिराजुद्दौला...? कर्नल क्लाइव ? क्या बेकार की बातें हैं ! वह सुनो, जन्न से गोली चली ! कोई और स्मगलर मारा गया। वे दोनों घुप अँधेरी रात में गंगा के किनारे-किनारे सुनसान सड़क पर टहला करते। और आगे ज़िले के उच्चाधिकारियों की कोठियाँ थीं। उसके बाद बाज़ार...छोटे-छोटे चौराहे...गलियाँ...अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के उदास मकान।

"मकान कैसी-कैसी कहानियाँ सुनाते हैं !" ग्रिल ने फिर दोहराया।

छायादार कुंजों में बड़े-बड़े हिन्दू ज़मींदारों की हवेलियाँ और कोठियाँ छिपी हुई थीं। उनमें से अधिकांश सुनसान पड़ी थीं।

"सुना है यहाँ ज़मींदारी ख़त्म कर दी गई है !" कमाल ने कहा।

ग्रिल ने उसे फिर देखा–"अब तुमने फिर नाक डुबोनी शुरू की।" उसने डाँटा।

वे स्टेशन वापस जा रहे थे।

ढाके, वापसी में, फिर ट्रेन नदी के घाट पर रुकी। यात्री उतर कर स्टीमर पर सवार हुए। ट्रेन का तिज़ारती माल उतार कर स्टीमर पर चढ़ाया गया। यहाँ क्रेन नहीं थे। सैकड़ों कुलियों ने आवाज़ें लगा-लगा कर सामान ढोना शुरू किया। इस तरह की आवाज़ों और धुनों को कमाल ने इप्टा वालों के साथ खुद कोरस में गाया था, और प्रगतिशील फ़िल्मों में इस तरह के गीत सुने थे। मगर अब उसे मालूम हो चुका था कि सारा पूर्वी बंगाल एक बहुत ही यथार्थवादी प्रगतिशील फ़िल्म के दृश्यों का बहुत बड़ा सीक्वेंस है।

जहाज़ पर दाढ़ियों वाले कुछ बूढ़े और बुर्क़ापोश औरतें आकर थर्ड क्लास के फ़र्श पर बैठ गईं। यह भी बड़ा प्रगतिशील फ़िल्मों वाला दृश्य था–अनगिनती बूढ़े हिन्दू और मुसलमान शाल ओढ़े, उनकी लड़कियाँ और बहुएँ गोदों में बच्चे उठाए, गैंग-वे पर से गुज़रती सेकंड क्लास

में ठुँस रही थीं।

अब फ़र्स्ट क्लास में लोग आ-आकर बैठना शुरू हुए। केबिन में गए। डैक पर बिखर गए। दूरबीनें और कैमरे निकाले गए। अख़बार खोले गए। दो स्मार्ट बेगमों ने निटिंग शुरू कर दी। कुछ अमरीकन, एक नवयुवक विद्यार्थी से वार्त्तालाप में व्यस्त हो गये। अमरीकन दूर के ज़िले में यू. एस. आई. एस. की शाखा खोलने जा रहे थे और विद्यार्थी छुट्टियों में ढाका जा रहा था। एक तरफ़ दो बंगाली मौलाना इमामी-लीग की नीति पर विचार-विनिमय कर रहे थे। ढाके का एक उर्दू पत्रकार यू. एस. आई. एस. वालों के निमंत्रण पर उनके मेहमान के रूप में उनके साथ यात्रा कर रहा था। एक उच्चाधिकारी कैबिन में बैठे थे।

कमाल जहाज़ के इस दृश्य को देखता रहा।

यह कैसा झमेला था? यह कैसी दुनिया थी, जो अस्तित्व में आ गई थी? यह गुत्थी कहाँ, किस तरह से सुलझेगी? और इस सारे घपले में कितनी लाखों जाने गईं। कितने घर लुटे ! कितने लाख इन्सान बेघरबार और निर्वासित हुए, और कितने करोड़ इन्सान जो पहले भूखे मरते थे, अब भी भूखे मरते हैं।

कमाल रेलिंग पर झुक कर क्षितिज को देखता रहा, वहाँ पानी ही पानी था। महान् नदी, महान् देश, महान् इन्सान। क्या ये सारे इन्सान महान् नहीं, जो सलाखों के उधर मुर्ग़ियों की तरह ठुँसे बैठे थे।

उर्दू पत्रकार टहलते हुए कमाल के पास आए और अपना परिचय कराया।

“आप भी मग़रिबी पाकिस्तान से तशरीफ़ लाए हैं?” उन्होंने पान की डिबिया निकालते हुए मालूम किया।

“जी !” कमाल ने संक्षेप में उत्तर दिया।

“कराची?”

“जी !”

उन्होंने दोबारा कमाल से हाथ मिलाया। “साहब, हम तो यहाँ यूँ समझिए कि काले पानी में पड़े हैं। अपने जैसे इन्सानों के लिए तो कभी-कभी आँखें तरस जाती हैं। सच अर्ज़ करता हूँ क़िब्ला। इस इलाक़े को तो अलहदा कर देना ही मुनासिब है। बिलकुल नाक में दम कर रखा है हमारा इन बंगालियों ने !”

एक नवयुवक स्निल से बातें करता पास से निकला। पत्रकार महोदय जरा-सा रुके और जब वह आगे चला गया तो बोले—“देखा आपने, अंग्रेज़ी क्या लाजवाब बोलते हैं। बात करने की तमीज़ नहीं, बस आ गए, जूटकोटा में !”

“जूटकोटा...!” कमाल ने आश्चर्य से दोहराया। उसने यह परिभाषा आज ही सुनी थी।

“जी हाँ, साहब। आपका क़याम ढाके में है? शाहबाग़? अच्छा ! कहीं और ठहरे हैं?”

अब उच्चाधिकारी भी कैबिन से बाहर निकल आए। उन्होंने कमाल को सिगरेट पेश किया। दरिया का पानी सूरज की किरणों में सोने के रंग का हो गया था। बराबर से एक जूट का लदान करने वाली काले रंग की, बहुत बड़ी कारगो बोट बड़ी शान से तैरती हुई निकल गई। कमाल मूर्त्तिवत् उसे देखता रहा।

"कितना सुंदर दृश्य है !" उसने अपने आप से कहा।

"जी हाँ।" उच्चाधिकारी ने कहा।—"इन दृश्यों की पब्लिसिटी करने के अलावा आपकी केन्द्रीय सरकार को कोई काम सुझाई नहीं देता। मगर बस, दूर से ही ये नज़ारे सुहावने मालूम होते हैं। यहाँ रहना पड़े आपको, तो असल हक़ीक़त खुले ! हमको देखिए। तीन साल से इस जंगली इलाक़े में मानो एकांत कारावास की सज़ा भुगत रहे हैं।"

"एकांत कारावास?"

"जी हाँ, और क्या। बिलकुल बैकवर्ड मुल्क़ है यह ! ज़रा यहाँ के रहने वालों से आपको साबक़ा पड़े तो आटे-दाल का भाव मालूम होगा। एक से एक आलसी, षड्यन्त्रकारी, गौरमेंट की जड़ खोदने वाले, और बेईमान। इन पर हुकूमत करना और इनको क़ाबू में रखना बड़ा दिल-गुर्दे का काम है !"

कमाल को याद आया। उसने अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज़ी यात्रा-वृत्तान्तों में बंगालियों और आमतौर पर सारे नेटिव्ज़ के लिए यही शब्द पढ़े थे। उसे लगा, मानो वह अठारहवीं सदी के किसी अंग्रेज़-कलक्टर के साथ यात्रा कर रहा है।

"यक़ीन फरमाइये—" उच्चाधिकारी ने बात जारी रखी—"जिस रोज़ यह क्षेत्र पाकिस्तान से अलग होगा, मैं ख़ुदा का लाख-लाख शुक्र अदा करूँगा, और ख़ुशी के मारे सात रोज़ तक ड्रंक रहूँगा। इनकी हर बात, हमसे अलग है। ग़ैर इस्लामी ज़बान बोलते हैं। 'वज़ीरे-आज़म' को 'प्रधान मंत्री' और 'अमन' को 'शान्ति' कहते हैं, संस्कृत से अपना नाता जोड़ रखा है।"

बैरे ने चाय लाकर मेज़ पर रखी। "जहाज़ जगन्नाथ घाट कोबे पौछोबे?" कमाल ने उससे पूछा। "अमरा ओनी ख़न धौरे जहाजे रोए छी।"

पत्रकार महोदय और उच्चाधिकारी, दोनों ने ही कमाल को चौंक कर देखा।

"माफ़ कीजिएगा, आपके लबो-लहजे से मैं समझा था कि आप भी लखनऊ की तरफ़ के हैं।" पत्रकार ने कहा।

"कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।" कमाल ने मुस्करा कर जवाब दिया।

"जनाब का इस्मे-शरीफ़ तो अब तक पूछा ही नहीं।"

"सैयद कमाल रज़ा।"

"आप मटियाबुर्ज़ के नवाब अली रज़ा बहादुर के ख़ानदान से तो ताल्लुक़ नहीं रखते?"

"जी हाँ। उन्हीं के खानदान से ताल्लुक़ रखता हूँ।"

"ओ हो—हो—! बड़ी ख़ुश-क़िस्मती है मेरी, कि जनाब से मुलाक़ात हो गई !" पत्रकार ने तीसरी बार कमाल से हाथ मिलाया। "क्या लोग थे साहब, क्या ख़ानदान था ! लखनऊ के कल्चर की आख़िरी यादगार थे ये हज़रत कलकत्ते में। वाह-वाह-वाह ! वह ज़माने ही ख़्वाब-ख़याल हो गए। सुना है नवाब अब्बास रज़ा बहादुर का भी इन्तक़ाल हो गया।"

"जी हाँ।"

उच्चाधिकारी की पत्नी और साली गॉगल्ज़ लगाए आरामकुर्सियों पर धूप के रुख़ बैठी थीं। साली हिन्दुस्तान से आए हुए 'फ़िल्म-फ़ेयर' के अध्ययन में लीन थी। स्रिल सामने वाली रेलिंग पर झुका खड़ा था। उसके सुनहरे बाल सूरज की किरणों में सोने की तरह जगमगा

रहे थे और वह असाधारण रूप से सुन्दर लग रहा था।

ज़ीने के दूसरी ओर सेकंड क्लास का डैक था। एक काली एंग्लो-इंडियन लड़की जाली से टेक लगाए बैठी 'ट्रू स्टोरी मैगज़ीन' पढ़ने में लीन थी। उसके निकट फ़र्श पर उसका बड़ा-सा बैग रखा था, जिसमें उसकी निटिंग, मेक-अप का सामान और एक टॉफ़ी का डिब्बा रखा था। बैग में कुछ हॉलीवुड की फ़िल्मी पत्रिकाएँ और इंग्लैंड का स्त्रियोपयोगी पत्र 'वूमन' और एक रूमानी उपन्यास भी ठुँसा हुआ था। उपन्यास के चमकदार मुखपृष्ठ पर एक सुनहरे बालों वाला हीरो, नाइलॉन के नाइट गाउन में सुसज्जित हीरोइन को गुलाब का फूल पेश कर रहा था। लड़की ने कुछ देर बाद सुनहरा रूमानी उपन्यास निकाला। मुखपृष्ठ के हीरो को देखते-देखते उसकी दृष्टि फिर रूपवान् अंग्रेज़ तक पहुँची। अंग्रेज़ जाली के उधर रेलिंग के सहारे खड़ा बिलकुल मार्लिन ब्रांडो लग रहा था। लड़की ने एक लम्बी साँस ली और फिर उपन्यास पढ़ने में तल्लीन हो गई।

इस साँवली-सलोनी लड़की का पूरा नाम मिस मार्ग्रेट इज़ाबेल क्रिस्टीना टीज़डेल था। यों उसके ब्वॉय फ्रेंड्ज़ और दफ़्तर के साथी उसे मैगी कहते थे। उसके इतने लम्बे-चौड़े नाम का मूल कारण यह था कि ख़ानदानी परम्परा के अनुसार उसकी परदादी मार्ग्रेट इज़ाबेल सर स्रिल ऐश्ले की और एक नेटिव हिन्दू औरत की संतान थी। सर स्रिल ऐश्ले गत शताब्दी के बंगाल के बहुत नामवर आदमी थे। अकाल के दिनों में उसकी माँ ढाके से कलकत्ते आकर नवाब ऐश्ले के हरम में दाखिल हुई। मार्ग्रेट इज़ाबेल ने बड़े होकर कानपुर छावनी के सार्जेंट टीज़डेल जॉर्ज से विवाह कर लिया था, जो असली गोरा था और अत्यधिक मदिरापान के कारण जवानी में ही ख़ुदा को प्यारा हो गया था। चुनाँचे मार्ग्रेट इज़ाबेल अपने बच्चों को लेकर फिर कलकत्ते वापस आ गई, और उसका परिवार कलकत्ते के निम्न वर्ग की एंग्लो-इंडियन सोसायटी में हिल-मिल गया।

मैगी टीज़डेल के माता-पता दोनों मर चुके थे। वह ग्रेट ईस्टर्न होटल में टेलीफ़ोन-ऑपरेटर थी और छुट्टी लेकर अपनी बीमार मौसी को देखने आई हुई थी। मौसी पिक्सी में रहती थी। अब मैगी पिक्सी से कलकत्ते वापस जा रही थी।

वह उपन्यास के अन्त तक पहुँची ही थी, जिसमें हीरो स्पेन जाकर हीरोइन को एक बदमाश काउंट के चंगुल से छुड़ाने वाला है कि स्टीमर की सीटी ने उसे चौंका दिया। उसने सिर उठा कर देखा। घाट निकट आ रहा था। यात्री अपना-अपना सामान समेट रहे थे। फ़र्स्ट क्लास के डैक पर खड़ा हुआ हीरो भी भीड़ में ग़ायब हो चुका था। उसका दिल डूब-सा गया। उसने झुक कर अपने सेंडिल के बन्द बाँधे, अपने रंगीन फूलदार स्कर्ट की सिलवटें ठीक कीं, आईने में अपने बालों के बल सँवारे, और बैग तथा पत्र-पत्रिकाएँ सँभाल कर उठ खड़ी हुई।

स्रिल और कमाल जहाज़ से उतर कर किनारे पर पहुँचे। यात्रियों और कुलियों का जनसमूह ट्रेन की ओर बढ़ा। जो घाट से काफ़ी दूर खड़ी थी। घाट पर हिन्दू औरतें स्नान-ध्यान में लगी थीं। चारों ओर हिन्दू ही हिन्दू थे। मध्य वर्ग के ख़ुशहाल हिन्दू—मर्द और औरतें। निम्न वर्ग के दरिद्र हिन्दू—मर्द और औरतें। कमाल अटैची-केस उठाए स्रिल के साथ-साथ पटरी पर चलता रहा—"इन ज़िलों में हिन्दुओं की आबादी ज़्यादा है।" स्रिल ने कहा।

"यहाँ कितनी शांति है।" कमाल ने दोबारा कहा–"असल में मेरी साइकोलॉजी इतनी ख़राब हो गई है, मेरे दिल और दिमाग़ को हिन्दू-मुस्लिम प्रॉब्लेम इतनी गहराई से कचोटती है कि जब मैं इन दोनों को कहीं शांति के साथ इकट्ठे जीवन बिताते देखता हूँ तो यक़ीन नहीं आता। इस वक़्त मेरी समझ में नहीं आ रहा कि यहाँ फ़साद क्यों नहीं हो रहा।"

चढ़ाई पर काली ऐंग्लोइंडियन लड़की सिर झुकाए उसके आगे-आगे जा रही थी। ट्रेन के निकट पहुँच कर उसने अपना अटैची-केस ज़मीन पर रखा और रूमाल से चेहरा पोंछने लगी। पास से गुज़रते हुए स्रिल ने उचटती-सी निगाह उस पर डाली और अपने कम्पार्टमेंट की तरफ़ बढ़ गया।

ढाके पहुँच कर कमाल और स्रिल अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गए। रोज़ शाम को वे क्लब में मिलते और इकट्ठे अपने निवास-स्थान पर वापस आते। काम ख़त्म करने के बाद स्रिल ढाके की गलियाँ और कोने-खुदरे को सूँघता फिरता। सँकरी अँधेरी गलियों में से गुज़रती हुई झिलमिलियों वाली बन्द घोड़ागाड़ियों को देख कर तुरन्त टैगोर और सीतादेवी के उपन्यासों का हवाला देता। पेच-दर-पेच प्राचीन मुहल्लों में से निकलते हुए अरमिनी टोला के चार सौ साल पुराने क़ब्रिस्तानों में जाकर उसने सारा दिन अरमिनी व्यापारियों की क़ब्रों के शिलालेख पढ़ने में गुज़ारा।

स्टेट बैंक की इमारत के विशाल स्तम्भ दिखा कर उसने कमाल को बताया कि यह डच ईस्ट-इंडिया कम्पनी का सर्वप्रथम गवर्नमेंट-हाउस था।

एक रोज़ वह वीज़-घाट गए। यहाँ नदी के किनारे जीर्ण-शीर्ण खँडहर जैसी दोमंज़िला कोठी में बुलबुल-एकेडेमी स्थापित की गई थी। हॉल के दरवाज़े के ऊपर बुलबुल का चित्र लगा था, जिस पर फूलों का हार पड़ा था। हॉल में अँधेरा था। अन्दर और ऊपर की मंज़िल में बड़े-बड़े ढंडार चटियल, टूटे-फूटे कमरे पड़े भाँय-भाँय कर रहे थे। ज़ीने की लकड़ी पर बर्मा की बहुत ही ख़ूबसूरत नक़्क़ाशी का काम बना था। वे सारे कमरों में घूमते फिरे। नीचे एक कमरे से घुँघरुओं की आवाज़ आई। वे दोनों अन्दर गए, वहाँ एक टूटे-फूटे कमरे में, जिसकी दीवारों से प्लास्टर गिर रहा था और जिसका ईंटों का फ़र्श जगह-जगह से उखड़ा हुआ था, एक छोटी-सी दरी बिछी थी और कुछ संगीतज्ञ नाच की गत बजा रहे थे। चार-पाँच लड़कियाँ बंगाली ढंग से नृत्य कर रही थीं। एक बूढ़ा फूँस लम्बी सफ़ेद दाढ़ी वाला बंगाली मुसलमान वॉयलिन बजा रहा था। दुबले-पतले श्री सुशीलकुमार मित्र उचक-उचक कर लड़कियों को नृत्य सिखाने में व्यस्त थे। कमाल दरवाज़े की चौखट में मूर्तिवत् खड़ा यह दृश्य देखा किया। इस टूटे-फूटे कमरे में, इस वीरान जगह पर, ये चन्द लोग, जवान-बूढ़े, बाहर की दुनिया के सारे दुःख, कमीनेपन और अत्याचार, मजबूरियों और चिन्ताओं को भूल कर कुछ क्षणों के लिए ताल और सुर में खोये हुए थे। इनमें से किसी ने आगन्तुकों की ओर ध्यान नहीं दिया और नाच और अपने साज़ों में तल्लीन रहे। कमाल दबेपाँव वहाँ से लौटा और बीच का हॉल पार करके पिछले पोर्टिको की तरफ़ गया। दो लड़कियाँ माथे पर कुमकुम के बड़े-बड़े टीके लगाए, नदी की ओर मुँह किए टूटी-फूटी सीढ़ियों पर मौन खड़ी थीं। सामने एक गाय घास चर रही थी। अहाते की एक दीवार के नीचे नावें बँधी थीं। ऊपर की मंज़िल पर, बरामदे के जंगले पर

धोतियाँ धूप में सूखने के लिए फैलाई हुई थीं और पीतल की गड़वियाँ चमचमा रही थीं। यहाँ कितनी बेपनाह उदासी थी। इन सब लोगों के चेहरों से कितनी करुणा बरस रही थी। या मुमकिन है वे सब बहुत ख़ुश रहे हों और कमाल को ही हर चीज़ में ग़म नज़र आ रहा हो। वह स्रिल को आवाज़ देता हुआ बाहर निकल आया। वे नवाबपुर रोड के रिक्शाओं, बसों, फ़क़ीरों की टोलियों और यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के एक विरोधी जुलूस में से गुज़रते रमना की तरफ़ वापस लौटे।

रेसकोर्स की सड़क पर ढाका-क्लब जगमगा रहा था। आज वहाँ गेस्ट-नाइट थी। उच्च वर्ग की कारें बाहर खड़ी थीं और बॉलरूम में बेगमें नृत्य कर रही थीं। वे कलकत्ते से साड़ियाँ ख़रीद कर लाती थीं और उनमें से अधिकांश के बच्चे दार्जिलिंग और शिलांग के अंग्रेज़ी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। लाउंज़ में बड़े-बड़े व्यापारी और मिल-मालिक बैठे थे।

ज़रा आगे बढ़ कर नया शाहबाग़ होटल था। होटल में अमरीकन भरे हुए थे।

दूसरे रोज़ वह स्रिल के साथ लांच के ज़रिये बूढ़ी गंगा पर, सरकारी काम से एक दूसरे ज़िले की तरफ़ जा रहा था। स्रिल कुर्सी पर बैठा अख़बार पढ़ता रहा। फिर सहसा उसने मुड़ कर कमाल को सम्बोधित किया—"वह सामने पेड़ों के झुंड देखते हो?"

"हाँ।"

"यह विक्रमपुर है। यहाँ सरोजिनी नायडू और बी. सी. रॉय वग़ैरा के गॉर्डन-हाउस हैं और बेहद ख़ूबसूरत दृश्य हैं—ये गाँव अब सुनसान पड़े हैं। इनके वासी पश्चिमी बंगाल हिजरत कर गए...चलते हो देखने?"

"मैं क़ब्रिस्तानों की ज़ियारत करते-करते तंग आ गया हूँ। क्या तुम मुझे जीने नहीं दोगे?"

"नहीं !" स्रिल ने उत्तर दिया।

"महाराजा विक्रम सेन की तरह, जो लाश को कंधे पर उठाए मरघट से आते थे और लाश का प्रेत रास्ते में समय काटने के लिए रोज़ उनको एक क़िस्सा सुनाता था--तुम मुझे क़िस्से सुनाते हो ! मैं नहीं सुनूँगा तुम्हारे क़िस्से !" कमाल ने ज़िद्द से कहा।

"वह दोमंज़िला गॉर्डन-हाउस नज़र आया तुम्हें?" स्रिल ने उसी तरह किनारे की तरफ़ इशारा किया—"उसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर रहा करते थे।"

"चलो मैं तुमको आज का दृश्य दिखाऊँ।" लांच पानी पर चक्कर काट कर नारायणगंज की ओर मुड़ गई और कमाल ने रेलिंग पर झुक कर स्रिल को सम्बोधित किया।

"हम आदमजी जूट मिल्ज़ जा रहे हैं।" उसने विजेताओं के अंदाज़ में स्रिल से कहा।

"और, वहाँ पहुँच कर तुम मैनेजर के साथ लंच खाने के बजाय मज़दूरों की पगार के बारे में आँकड़े जमा करने शुरू कर देना। फ़सादी कहीं के !" स्रिल ने जवाब दिया।

कमाल मुस्कराता रहा।

वे मिल्ज़ पहुँच गए। उन भारी शानदार कारख़ानों में बिहारी औरतें और बंगाली मज़दूर काम कर रहे थे। भारी-भारी मशीनें शोर मचा रही थीं। कमाल आश्चर्य में डूबा मशीनों को देखता रहा।

फिर वे लांच में सवार होकर वापस मुड़े।

तटों पर बैलगाड़ियाँ पटसन के गट्ठे लादे आ रही थीं। किसान तिनकों वाली टोपियाँ ओढ़े घुटनों-घुटनों पानी में खड़े खेतों में काम कर रहे थे। दरिया की सतह पर चारों ओर छोटे-बड़े स्टीमर और लांचें चल रही थीं। इनके अंग्रेज़ी नाम थे–'मेरी एंडरसन', 'एनी लारी', 'लेडी फ़्लोरा', 'रोज़ माउंट'–अंग्रेज़ों के ज़माने की यादगारें।–दरिया की जहाज़रानी आज भी एक ब्रिटिश कम्पनी के हाथ में थी।

लांच दरिया के चौड़े धारे पर चलती रही। आकाश के ऊदे बादलों में से सूरज लाल तिलक की तरह चमक रहा था। लहरें सूरज की किरणों में सोने जैसी झिलमिलाने लगीं। हज़ारों नावें सतह पर तैर रही थीं। एक बूढ़ी औरत तेज़ी से अपनी नौका खेती लांच के पास से निकल गई। दरिया पर एक शानदार शक्तिशाली दुनिया आबाद थी।

सूर्यास्त का समय हुआ। नावों में चिराग़ जले। पानी पर दिवाली मनाई गई। माँझियों ने अपनी-अपनी नावों में नमाज़ पढ़ना शुरू कर दी। हवा उठी और प्रकाश की विरोधी दिशा में जाते हुए नावों के बादवान सफ़ेद बगुलों के परों की तरह फड़फड़ाने लगे।

यह सारा दृश्य एक महान् सिम्फ़नी था, बड़ा गम्भीर राग। सारा बंगाल राग में डूबा था। दुःख का राग–मृत्यु का राग–जीवन का राग।

रात को रमना की सड़कों पर मद्धम रोशनियाँ टिमटिमा रही थीं। दूर एक मन्दिर से एक वैष्णव-भजन के स्वर आ रहे थे। सिरिल और कमाल बरामदे में बैठे थे। सावन की घटाएँ उमड़ कर उठी थीं।

सिरिल ने दुबारा पुस्तक खोली–'तालाब के चारों ओर चम्पा के फूल खिले हैं। आकाश में काले बादल गरजते हैं। मेरे मन में भावनाओं का समुद्र ऐसे ठाठें मार रहा है–जैसे अगस्त के महीने में नदी में बहैया आ जाती है। नदी, तू तो नहीं जानती कि किधर को जा रही है, फिर इतनी तीव्र गति से क्यों बहती है?–ओ घड़े ! पानी में बूँद की तरह डूब जा ! मैं भी तेरी तरह अथाह समुन्दर में डूब चुकी हूँ।'

सिरिल मध्ययुग के बंगाली लोकगीतों की इस पुस्तक पर दृष्टि जमाए बैठा रहा। बाहर अँधेरा था–ऐसा अँधेरा जो केवल बंगाल की भीगी फ़िज़ाओं में रात के समय घने बाग़ों पर छाता है। लैम्प की बीमार-सी पीली रोशनी बरामदे में फैली हुई थी। सहसा बिजली की चमक के साथ ज़ोर की घटा उठी और हवा चलनी शुरू हो गई।

"मैं कल सुबह इंडिया के रास्ते कराची के लिए रवाना हो रहा हूँ।" कमाल कह रहा था। सिरिल चौंका।

"मालूम है।"

"तुमसे तो अक्सर मुलाक़ात होती रहेगी !"

"हाँ।"

हवा का झक्कड़ तेज़ हो गया। बरामदे के नीचे अशोक की डालियाँ सरसराने लगीं।

"अशोक का वृक्ष–।" सिरिल ने मानो उसे सम्बोधित किया–"जिसे कोई सुन्दर युवती छू लेती है उसमें तुरन्त फूल खिल जाते हैं।"

कमाल ने वर्षा की फुहार से बचने के लिए कुर्सी अन्दर को घसीट ली।

'कौवा काला है।' स्रिल ने पढ़ा—'कोयल उससे ज़्यादा काली है और संज्ञाखाली नदी का पानी उससे भी अधिक काला है, पर उसके बाल सबसे अधिक काले थे।'

वर्षा की बूँदों ने बाहर तालाब में जलतरंग बजाना शुरू कर दी। बिजली चमकी तो उसमें बाग़ का पत्ता-पत्ता एक पल के लिए जगमगा उठा।

"चम्पक के वृक्षों के पार, बूढ़ी गंगा की लहरें व्यर्थ शोर कर रही हैं !" स्रिल ने कहा—"उनसे कह दो कि मैंने तुम्हारी आवाज़ की तरफ़ से कान बन्द कर लिए हैं। मैं अपनी नाव किनारे से बाँध चुका हूँ।"

"अच्छा, मैं कह दूँगा !" कमाल ने आहिस्ता से जवाब दिया।

दूसरी सुबह कमाल ने स्रिल ऐश्ले को ढाके में छोड़ा और वायुयान से कलकत्ते पहुँचा। उसने सोचा अपने स्वर्गीय मामू नवाब अब्बास रज़ा बहादुर के घरवालों से मिलने दत्त-हाउस जाए, मगर फिर उसने अपना इरादा बदल दिया और ट्रेन में बैठ कर लखनऊ रवाना हो गया।

वह हावड़ा-स्टेशन पर एक पुलिस अफ़सर को अपनी ओर आते देख कर हड़बड़ा गया। उसने जेब में हाथ डाल कर वीज़ा और पासपोर्ट के काग़ज़ों को छुआ, और संतोष कर लिया कि वह ग़ैरक़ानूनी रूप में इंडिया में दाख़िल नहीं हुआ है। ट्रेन चलती रही—बर्दवान, आसनसोल, दुर्गापुर, इलाहाबाद। ट्रेन एक अपरिचित धरती पर चल रही थी। साल भर पहले यह उसका अपना देश था, पर अब वह वहीं एक विदेशी के रूप में यात्रा कर रहा था। उसे लगा कि लोग उसे सन्देह की दृष्टि से देख रहे हैं। सबकी आँखें उसी की तरफ़ हैं—तुम पाकिस्तानी हो। थाने चलो ! तुम पाकिस्तानी हो—मुसलमान—जासूस—मुसलमाम जासूस—ट्रेन के पहियों में से यही आवाज़ निकल रही थी—ग़द्दार—जासूस—ग़द्दार—जासूस। उसने हड़बड़ा कर आँखें खोलीं। ट्रेन हमेशा की तरह ही बड़ी शान के साथ चारबाग़ जंक्शन में दाख़िल हो रही थी। उसका दिल धड़क रहा था।

चारबाग़—लखनऊ—लखनऊ...

दो दिन वह रिश्तेदारों के पास ठहरा। अब उसे 'ख़याबाँ' के क्लेम की ख़ानापूरी के सिलसिले में ज़रूरी काग़ज़ात लेने देहरादून जाना था। तीसरे दिन वह लखनऊ से चला। (यहाँ अब क्या रखा था। वह किसके लिए यहाँ ठहरता। वह बदल चुका था—लखनऊ भी बदल गया था।) जब ट्रेन मुरादाबाद के पास पहुँची तो उसे सहसा याद आया कि लखनऊ में सीता डीक्षिट ने उसे बताया था कि चम्पा विलायत से लौट आई हैं, और अपने चचा के पास मुरादाबाद में ठहरी हैं। इसी सूचना पर कमाल ने वीज़ा पर मुरादाबाद का नाम और बढ़वा लिया था।

ट्रेन प्लेटफ़ॉर्म पर पहुँची तो वह अपना सामान उठा कर गाड़ी से उतर आया। स्टेशन से बाहर आकर उसने एक ताँगा लिया और सीता डीक्षिट का बताया हुआ पता देखने के लिए जेब से नोटबुक निकाली। फिर उसने ताँगे वाले से कहा—"कठघर चलो।"

ताँगा बाज़ारों, कॉलेजों, अस्पतालों के सामने से गुज़रता एक ओर को चला। सड़क पर ठेले चल रहे थे, और पर्देदार रेहड़े और डोलियाँ और यक्के। लड़के-बाले, बुर्क़ापोश औरतें स्लीपर

घसीटती गलियों में घुस रही थीं। ताँगा अब एक मुहल्ले में दाख़िल हुआ। यही शायद कमाल की मंज़िल थी। दरवाज़ों के आगे टूटे-फूटे चबूतरे थे और मस्जिद की मुँडेर पर एक चील बैठी ऊँघ रही थी। यह चम्पा बाजी का मुहल्ला था।

वह ताँगे से उतरा। सामने बड़ा-सा, पुराने वक़्त का फाटक था। फाटक के दरवाज़े में एक ओर छोटी खिड़की खुलती थी। अन्दर सीलन थी और भूसे का ढेर। दो-तीन खटियाँ पड़ी थीं। अन्दर एक तरफ़ बहुत ही तंग और अँधेरा ज़ीना था। ज़ीना शायद अठारहवीं सदी में बना होगा। फाटक में वह चारों ओर आवाज़ें देता फिरा। जब किसी ने उसे जवाब न दिया तो वह साहस बटोर कर ख़ुद ही ज़ीने पर चढ़ गया। दूसरी मंज़िल पर छोटा-सा आँगन था जिसमें चीनी के गमले रखे थे। सामने बरामदा था, और एक बड़ा कमरा। कमरा शायद इस घर की बैठक का काम देता होगा। उसमें सिर्फ़ एक कुर्सी पड़ी थी और एक मसहरी। एक अल्मारी में 'ख़ुदाई फौजदार' और 'अवधपंच' की जिल्दें रखी थीं। दरवाज़ों में अनगिनती ऊदे, हरे, नारंगी, लाल-हरे शीशे लगे थे। बाहर की ओर छज्जा था। जो फाटक के ठीक ऊपर शहनशीन की तरह दिखाई देता था। यहाँ खड़े होकर उसने पश्चिम की तरफ़ नज़र डाली। गली दाईं ओर को मुड़ कर मुहल्ले के दूसरे मकानों की तरफ़ चली गई थी। इधर ढलान थी। ईंटों के फ़र्श की गली बहुत साफ़ थी, उसने ध्यान से देखा। नीचे मस्जिद में पेश-इमाम नमाज़ पढ़ रहे थे। उनकी जानमाज़ के सामने, सिज़्दागाह के पास तामचीनी की रकाबी में कुछ रखा था, और मुहल्ले के तीन-चार लड़के-बाले 'वट कलेजी ! बट कलेजी !' कह कर उनको चिढ़ा रहे थे। इमाम साहब सलाम फेर कर जल्दी से उठे। लड़कों को ढेले से मार भगाने के बाद फिर जानमाज़ पर वापस चले गए।

वह ज़ीने पर से उतर कर फिर गली में आया। उसे आश्चर्य था कि इस घर के रहने वाले कहाँ चले गए ! अवर्णनीय सन्नाटा सारे मे छाया हुआ था। इसी मकान के दाईं ओर हरे-भर ढलवान पर क़ब्रिस्तान था। उसे झुरझुरी-सी आई—जीवित आत्माएँ, मृत आत्माएँ। यहाँ कितना अमंगल था ! मुर्दों का शहर—चम्पा बाजी तुम यहाँ कहाँ हो? क़ब्रिस्तान के सिरे पर छप्पर था और नीम का पेड़, जिसके नीचे बकरी बँधी थी। छप्पर के ऊपर खिड़की में से कोई लड़की झाँक रही थी। कमाल को अपनी ओर देखता पाकर उसने झट खिड़की बन्द कर दी।

वह ज़ीने से नीचे उतर कर दूसरे फाटक के सामने आया। उसका भी वही नमूना था। रंग-बिरंगे शीशों वाला शहनशीन, नीचे दरबान के खड़े रहने के लिए ताक़चे, टूटा हुआ चबूतरा। उसने फाटक की कुंडी खटखटाई।

"कौन है?" अन्दर से आवाज़ आई।

निराशा और खिन्नता के कारण कमाल के कंठ से आवाज़ भी न निकली।

"कौन है?" धारीदार गबदून का काला-तंग पायजामा पहने एक बुढ़िया ने अन्दर से झाँका।

"मैं हूँ।"

"ये क्या बात हुई ! ए नाम तो बताओ, भैये !"

"मैं हूँ कमाल रज़ा। पाकिस्तान से आया हूँ।"

बुढ़िया ने कुछ देर बाद वापस आकर खिड़की खोली—"आओ, आ जाओ मियाँ !" उसने कहा।

वह अन्दर आ गया। अँगनाई में ईंटों का फ़र्श था। दीवार के साथ क्यारी में किसी ज़माने में पौधे रहे होंगे। अब वह वीरान पड़ी थी। बावर्चीख़ाने के सामने मुर्ग़ियों का दड़बा था। मुर्ग़ियों के पर इधर-उधर उड़ रहे थे। सामने बड़ा दालान था और दालान में तख़्त। उस पर चम्पा बैठी थी।

"अरे, हैल्लो !—कमाल !—भई हद हो गई !!"

"चम्पा बाजी !"

"तुम ! गुड गॉड !!" वह धीरे से उठी और क्षमा-याचना के ढंग से जल्दी-जल्दी तख़्तपोश ठीक करने लगी।

"मैं सामने वाले मकान में घुस गया था।" कमाल ने कहना शुरू किया।

"मेरे घरवाले सब चचा मियाँ के यहाँ गए हुए हैं। वहीं चलो, वहीं इत्मीनान से बैठ कर बातें करेंगे।"

उसने अलगनी पर से दुलाई उतारी और उसे बड़े सलीके से ओढ़ा ताकि सिर से पाँव तक दुलाई उसे ढक ले। फिर घूँघट-सा निकाल कर कमाल के साथ गली में आ गई। "हमारे यहाँ बुर्के का रिवाज़ नहीं है। अब तक चादरें और दुलाइयाँ ही ओढ़ी जाती हैं।" उसने मानो व्याख्या कर दी। वह प्राचीन मस्जिद के पास पहुँच कर दूसरी गली में मुड़ गई। गली जो क़ब्रिस्तान के ढलवान के बराबर से गुज़रती थी। यह भी बहुत साफ़-सुथरी थी। दीवारों में घास और पीपल के पेड़ उग आए थे।

"यह...?" कमाल ने क़ब्रिस्तान की ओर इशारा किया।

"हम ही लोग हैं !" चम्पा ने उसके साथ-साथ चलते हुए उत्तर दिया। "यहीं जीते हैं और यहीं मरेंगे।" उसने ज़रा रुक कर बात आगे बढ़ाई।

चन्द क़दम चल कर 'दीवानख़ाना' आ गया।

"चचा मियाँ का मकान?"

"हाँ।"

वे ड्यौढ़ी में दाख़िल हुए। आँगन में बहुत से तख़्त बिछे थे। वीरानी की अधिकता से जगह सनसना रही थी।

"यहाँ तो कोई भी नहीं रहता?" कमाल ने ज़रा भयभीत होकर पूछा।

"नहीं !" चम्पा ने इत्मीनान से जवाब दिया। "यह इमामबाड़ा है। ये जो तख़्त पड़े हैं—पाकिस्तान बनने से पहले इसमें हमारे यहाँ की मशहूर 'तख़्तों की मजलिस' हुआ करती थी।"

अब उन्होंने फिर अतीत राग छेड़ दिए। कमाल ने बौखला कर सोचा। "असल मकान अन्दर है।" चम्पा ने बात जारी रखी—"चले आओ ! तुमसे पर्दा कोई नहीं करेगा।"

वह ड्यौढ़ी में से गुज़रता अन्दर चला गया। सहन में कुर्सियाँ और चारपाइयाँ बिछी थीं। एक चारपाई पर कढ़ा हुआ पलंगपोश पड़ा था। बावर्चीख़ाने में से बघार की तेज़ महक

आ रही थी। दो-तीन अस्पष्ट और महत्त्वहीन से लोग इधर-उधर बैठे थे। बादल घिरे हुए थे, मगर हवा बन्द होने के कारण बड़ी उमस हो गई थी। बरसाती कीड़े चिराग़ों के चक्कर काट रहे थे।

"चा अब्बा !—ये कमाल हैं—!" अंधकार में चम्पा की आवाज़ आई।

"आओ-आओ, बैठो मियाँ—बड़ी इज़्ज़त-अफ़ज़ाई की तुमने हमारी।" पलंग पर लेटे चा अब्बा ने, उठ कर बैठते हुए कहा।

लालटेन उठा कर एक लड़की बावर्चीख़ाने की तरफ़ लपकी। एक और लड़की दालान में मेज़ पर बैठी पढ़ रही थी। या अल्लाह ! मिडिल क्लास इतना डिप्रेसिंग होता है ! कमाल ने काँप कर सोचा। आँगन में आने वालों की आहट सुन कर दालान वाली लड़की ने दृष्टि उठा कर कमाल को देखा। कमाल ने जल्दी से दूसरी तरफ़ देखना शुरू कर दिया। उसने मिडिल क्लास लड़कियों की रूमानपरस्ती के सम्बन्ध में बहुत-कुछ सुन रखा था, और वह हरगिज़ न चाहता था कि यह लड़की, जो बावर्चीख़ाने में उसके लिए चाय बना रही थी, उसके साथ वक़्ती रूमान शुरू कर दे—और बाद में उसे लम्बे-लम्बे ख़र्रे लिखा करे ! प्रेमपत्र !

उसकी उलझन बढ़ती गई।

"ये मेरी कज़िन हैं, दोनों।" चम्पा उसी आवाज़ में पाँयती को बैठी उसे बता रही थी। "वह वाली ज़ेबुन्निसा हैं। उन्होंने दिल्ली से एम. ए. किया है। छोटी वाली मरियम ज़मानी हैं। ये एग्रीकल्चर में एम. एस-सी. कर रही हैं। जब मैं इंटर के बाद लखनऊ पढ़ने गई थी तो ये दोनों की दोनों बिलकुल ज़रा-ज़रा-सी थीं। ज़माना कितनी तेज़ी से गुज़र जाता है...तुमको चुप क्यों लग गई?"

"कुछ भी तो नहीं, चम्पा बाजी !"

फिर चचा मियाँ उससे आहिस्ता-आहिस्ता बातें करते रहे—वही पुराने क़िस्से, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान। "हमारी तो मियाँ बधिया बैठ गई !" उन्होंने कहा।

"यहाँ इतना सन्नाटा क्यों है?" कमाल ने घबरा कर फिर पूछा। फिर उसे अपनी मूर्खता का एहसास हुआ। "सारी आबादी कहाँ चली गई?"

"वहीं, जहाँ तुम चले गए।" चचा मियाँ ने उत्तर दिया। "खोखरापार के रास्ते से सब निकल गए। रुहेलखंड ख़ाली हो गया। बस हम कुछ बुड्ढे-ठुड्ढे बाक़ी रह गए हैं। दो-तीन साल की बात और है। जब हम मर जाएँगे तो यहाँ हमारे बाद गधे लोटेंगे।"

कमाल उठ कर टहलने लगा। मरियम ज़मानी निहायत बेतकल्लुफ़ी से चाय बना कर ला रही थी। उसका रूमान शुरू करने का इरादा बिलकुल मालूम नहीं होता था। कमाल ने ज़रा इत्मीनान और उदासी से सोचा।

"पाकिस्तान के क्या हाल हैं?" चा अब्बा पूछते रहे—"सुना है यहाँ से धुने-जुलाहे जाकर वहाँ लखपती हो गए। अपने को सैयद कहे हैं और कोठियों में रहे हैं। क्यों ठीक है, मियाँ? मेरे भानजे ने लिखा है कि वहाँ हर जगह पंजाबियों ने यू. पी. वालों का नातक़ा बन्द कर रखा है। अँधेरगर्दी मची है। मियाँ हम तो तबाह हो गए, तबाह...और वहाँ भी कौन-से लड्डू मिल जाएँगे ! मेरे भानजे का ख़त कल ही आया है झेलम से। उसने शेर लिखा है—वह क्या

शेर है ज़ेबुन बेटी—?

गुर्बत जिसको रास न आई
और वतन भी छूट गया !

हई-हई !" उन्होंने पहलू बदला। "मरियम, बिस्कुट भी तो लाओ भैये के लिए !...कमाल मियाँ इसी ड्योढ़ी पर चार-चार मुलाज़िम मौजूद थे। अब यहाँ उल्लू बोल रहा है।"

कमाल चुपचाप बैठा रहा। उसने मुसलमान क़ौम के बारे में फिर अपनी प्रिय थ्यौरी दिल में दोहराना शुरू कर दी। यही बड़े मियाँ 1946 में सिटी मुस्लिम लीग के प्रधान रहे होंगे। 1948 तक सोचते होंगे कि इस्लामी सेना श्रीनगर विजय करने के बाद लाल किला दिल्ली पर विजय पताका लहराती यहाँ के मुसलमानों को लिबरेट करने के लिए बस अब आया ही चाहती है। कमाल का दम घबराने लगा।

"यहाँ बिजली अब तक नहीं आई।" चम्पा अवैयक्तिक स्वर में बता रही थी। "मुहल्ले में तो कब की आ चुकी है, जहाँ फू-अम्माँ की कोठी थी। वे चली गईं। हैदराबाद, सिंध, मय अपने घरवालों के। इसलिए कोठी कस्टोडियन ने ले ली। उसमें सिखों ने स्कूल ख़ोल कर बिजली माँग ली है। हमारे मकानों में नहीं आ सकी।" चम्पा की आवाज़ उस हलके से अर्द्ध अंधकार में ड्रोन करती रही।

"बिजली के लिए, मियाँ, पैसे चाहिए !" चा अब्बा ने चाय की ट्रे ज़ोर से स्टूल पर रखते हुए कहा। ट्रे का संतुलन स्थापित न रह सका। जग टूटने से सारा दूध अँगनाई के फ़र्श पर बह गया। चम्पा उसे अफ़सोस से देखती रही। "अब इतनी रात गए दूध कहाँ से आएगा !" उन्होंने कहा।

"इस पर अफ़सोस न करो, चम्पा बाजी !" कमाल ने गहरी आवाज़ में आहिस्ता से कहा।

चम्पा ने नज़र उठा कर उसे देखा और मुस्करा दी।

कमाल ने चम्पा को आज उनके जीवन की एक और सीढ़ी पर, एक दूसरी पृष्ठभूमि में देखा, जो उनकी असली पृष्ठभूमि थी। उसने क्षण भर के लिए आँखें बंद कर लीं। लखनऊ, पेरिस, केम्ब्रिज, और लंदन वाली चम्पा। मुरादाबाद के मुहल्ले के कठघर के इस अर्द्ध अँधेरे घर वाली चम्पा। मिडिल क्लास चम्पा, बहादुर चम्पा।

"वाह बजिया, तुम्हारा जवाब नहीं। मानता हूँ !"

कमाल मुरादाबाद में दो दिन रुका। रात को उसे उसी ऊदे और नारंगी शीशों वाले कोठे के कमरे पर पहुँचाया गया, जहाँ वह सबसे पहले जा पहुँचा था। आधी रात तक वह छज्जे में खड़ा सामने का दृश्य देखता रहा। वहाँ चाँद ने अपना मटियाला प्रकाश, मकानों की छतों, मस्जिदों के मीनारों और नीम के पेड़ों पर फैला रखा था।

दोपहर में सोने के लिए उसका खटोला ज़ीने की आख़िरी सीढ़ी पर बिछा दिया गया। वहाँ रामगंगा की ओर से ख़ासी ठंडी हवा आती थी।

"सुना है, तुम्हारे यहाँ हिन्दुस्तान की साड़ियों की बड़ी माँग है।" चम्पा बाजी ने आकर ड्योढ़ी पर इत्मीनान से बैठते हुए उल्लास से बात शुरू की। "तुम्हारी हमवतन, आला सोयायटी

की लेडीज़ यहाँ आते ही कपड़े की दुकानों पर हमला करती हैं। सुना है, तुम्हारे यहाँ की आला सोसायटी...!"

"क्या 'आला सोसायटी' की गरदान कर रही हो !" कमाल ने झुँझला कर उसकी बात काटी। "यह न भूलो, चम्पा बाजी, कि खुद तुमको वर्गगत चेतना हासिल करने में पूरे पन्द्रह साल लगे !"

चम्पा ज़ोर से हँसी। "वर्गगत चेतना की बात करनी है तो कज़िन से बात करो। ज़ेबुन और मरियम, बड़ी भारी स्टूडेंट-वर्कर्ज़ हैं, दिल्ली के सालाना इंटर यूनिवर्सिटी यूथ फैस्टिवल में हमेशा ये लोग न जाने क्या-क्या करामात करती हैं। झाँकियाँ, लोक-नाच, संगीत के मुकाबले, ज़ेबुन ने पिछले फैस्टिवल में वास्तुकला में पहला इनाम हासिल किया।

कमाल की समझ में आ गया। उसका सन्देह बेकार था। ये मिडिल क्लास लड़कियाँ अपने फ़्रस्ट्रेशन और अपनी रूमानियत पर विजय प्राप्त कर चुकी थीं। आज से पन्द्रह साल पहले अगर वे चम्पा की जगह होतीं तो शायद उसी की तरह रूमानपरस्त होतीं। ये नई लड़कियाँ थीं। चम्पा बीच के दौर की लड़की थी। इसलिए ज़रूरी ही था कि वह प्रयोग करे और ठोकरें खाए।

ज़ेबुन और मरियम, ग़रीब मगर हिम्मत वाली लड़कियाँ—उनके मन में कोई उलझन नहीं।

"काश मैं सन् '41 ई. में इन दोनों जैसी बन गई होती !" चम्पा ने मानो कमाल के दिल की बात पढ़ ली।

"अब हम लोगों के हाथ में तो घटनाएँ होती नहीं !" कमाल ने जवाब दिया। उसने अनुभव किया, वह कितना बूढ़ा हो चुका है ! चम्पा जो उसके सामने चौखट पर बैठी है, कितनी बूढ़ी औरत है। हम दोनों ने मन की दुनियाओं के कितने लम्बे सफ़र तय किए हैं। उसने हैरानी से सोचा।

वह उस वक़्त एक अजनबी शहर में एक अर्द्ध अँधेरे ज़ीने में बैठा था। नदी पर आती हुई बरसाती हवा उसके बाल बिखरा रही थी। वतन की बरसात—मगर यह वतन नहीं था। उसके वीज़ा की मियाद ख़त्म होने वाली थी। कल सवेरे वह यहाँ से अपने मुल्क रवाना हो जाएगा। मुरादाबाद, यह ज़ीना, चम्पा अहमद, जेबा, मरियम, चा अब्बा, सब यहीं रह जाएँगे। क्या इस हक़ीक़त पर उसे आँसू बहाने चाहिए? लेकिन, अब उसे महसूस हुआ कि वह बूढ़ा हो चुका है। उसमें धैर्य आ गया है। ज़ब्त, संतुलन और शान्ति—'प्राचीन यूनानी आदर्श।' उसे हरिशंकर के शब्द याद आए।

चम्पा ने फिर उसके दिल की बात पढ़ ली। उसने पुरानी आदत के अनुसार दोहराया—"कहाँ है तुम्हारा हमज़ाद हरिशंकर?"

"चम्पा बाजी !" उसने ज़रा गुस्से से कहा—"हरिशंकर अब मेरा हमज़ाद नहीं रहा ! मुझे क्या मालूम, वह इस वक़्त कहाँ है !"

"क्यों, उसे ख़त नहीं लिखते?"

"तुमको यह अब तक मालूम नहीं हुआ कि मैं दोस्तों को ख़त नहीं लिखा करता। मैं हरिशंकर श्रीवास्तव को क्या लिखूँ और क्यों लिखूँ?"

"अब तक भावुक हो?"

"नहीं !" उसने बल खाया। चम्पा ने उसे फिर चोरी करते पकड़ लिया था।

"हटाइये, चम्पा बाजी !" उसने झुँझला कर जवाब दिया। "मैं इस सारे, चारों ओर खेले जा रहे भारत-पाक मेलोड्रामा से, क़सम ख़ुदावन्द ताला की, तंग आ चुका हूँ ! हरिशंकर आजकल शायद बंगलौर में है। अब मैं क्या जाकर रोते हुए उससे लिपट जाऊँ? लाहौल विलाकूवत !"

"तुम अब तक मज़बूत नहीं हुए।" चम्पा ने आहिस्ता से कहा—"तुम हरिशंकर से मिलना नहीं चाहते, क्योंकि तुमको डर है कि सचमुच जाकर रोते हुए उससे लिपट जाओगे? अच्छा फिर मुझसे मिलने क्यों आए?" यह भी बड़ी सख़्त मेलोड्रेमेटिक बात थी !

"आख़िर इन्सान मिलता-मिलाता ही रहता है पुराने दोस्तों से।" कमाल से कोई और उचित जवाब न बन पड़ा। "और फिर मुरादाबाद रास्ते में ही पड़ता था।" उसने मुँह लटका कर कहा।

बारिश की बूँदें टप-टप टीन के छज्जे पर बरसने लगीं। गली की मिट्टी की सोंधी गंध उड़ कर कमाल तक पहुँची। एक औरत तंग पायजामा पहने, आम की खाँची सिर पर उठाए आवाज़ लगाती नीचे से गुज़री। चम्पा दहलीज़ में बैठी मोखे से बाहर देखती रहती।

बहुत देर से कमाल एक सवाल दिल में लिए बैठा था, मगर पूछने की हिम्मत न कर पा रहा था। आख़िर उसने दबी ज़बान से दूसरी तरफ़ देखते हुए पूछ ही तो लिया—

"चम्पा बाजी। अब तुम क्या करने वाली हो?"

यह बड़ा बेरहम सवाल था। हम किसी से उसके भविष्य के बारे में किस तरह पूछ सकते हैं?

"मैं?" उसने जवाब दिया—"मैं आख़िरकार बनारस वापस जा रही हूँ। मैंने एक बार लंदन में गौतम से कहा था—'मैं वापस जाना चाहती हूँ। कोई साथ ले जाने वाला नहीं मिलता।' अब मैंने देखा कि किसी दूसरे का सहारा ढूँढना किस क़दर ज़बरदस्त हिमाक़त थी ! मैं खुद ही बनारस लौटती हूँ। जानते हो, मेरे पुरखों के शहर का नाम क्या है।"

"शिवपुरी।"

"हाँ—आनन्द नगर। वह भी एक न एक दिन सचमुच आनन्द नगर बनेगा, देश के सारे नगरों की तरह। इस देश को दुःख का गढ़ या आनन्द का घर बनाना मेरे हाथ में है। मुझे दूसरों से क्या मतलब?" उसने अपने हाथ खोल कर ग़ौर से उन्हें देखा—"डांसर के हाथ--लेखक या कलाकार के हाथ नहीं—ये सिर्फ़ एक साधारण, औसत दरज़े की समझदार लड़की के हाथ हैं, जो अब काम करना चाहती है।"

वह ख़ामोश हो गई। कुछ देर बाद मस्जिद से ज़ोहर (तीसरा पहर) की अज़ान की आवाज़ ऊँची हुई। चम्पा ने अनजाने तौर पर दुपट्टे से सिर ढँक लिया।

"कमाल !" कुछ देर बाद उसने कहा, "मुसलमानों को यहाँ से नहीं जाना चाहिए। तुम क्यों नहीं देखते कि यह तुम्हारा अपना वतन है।" उसने विवशता से उँगलियाँ मरोड़ीं। "और तुम क्यों चले गए?" मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ तो क्या मुझे एक से एक बढ़िया ओहदा न मिल जाएगा? देखो मैं पेरिस और केम्ब्रिज और लंदन से कितनी डिग्रियाँ लाई हूँ।"

हरसिंगार में रंगे दुपट्टे और पीताम्बरी साड़ियाँ बाँधे चम्पा की रिश्तेदार लड़कियाँ नीचे दालान में पकवान बना रही थीं।—"भई, कुछ यहाँ भी भिजवा दो !" चम्पा ने खिड़की में से सिर निकाल कर आवाज़ दी।

"अच्छा बजिया !—अभी थमिये !" फिर उन्होंने एक गीत शुरू कर दिया—

झूला किन्ने डाला री अमरैया।

कमाल ने खटोले पर लेटे-लेटे आँखें बंद कर लीं। वह बचपन से यह गीत सुनता चला आ रहा था। बरसात आते ही उसके परिवार की लड़कियाँ भी कढ़ाई चढ़ा कर यह गीत अलापना शुरू कर देती थीं।

ज़ीने पर पाँयचे की झलक दिखलाई दी। ज़ेबुन फुल्कियों की प्लेट लेकर ऊपर आ रही थी। सहज-सहज वह अंदर आई और प्लेट फ़र्श पर रख कर गुनगुनाती हुई फिर नीचे उतर गई।

चम्पा चौखट पर बैठी रही। "तुम सोच रहे हो—" उसने धीरे-से कहा कि अब मेरे द्वार कौन आएगा। लेकिन कमाल, मैं समझती हूँ, जहाँ तक निजी क़ामयाबी का सवाल है, मैं तुमसे ज़्यादा ख़ुशक़िस्मत हूँ। मैंने सुराग़ पा लिया है।"

"तुम ठीक कहती हो, चम्पा बाजी।"

नीचे हौज़ में बरखा की फुहार का झाला बज रहा था। बारिश की वजह से सारे में हरियाली और ताज़गी छा गई थी। गलियों में छोटी-छोटी नदियाँ बह रही थीं। छज्जों और परनालों से पानी के झरने गिर रहे थे। नीचे आँगन में पानी की छोटी-सी निर्मल झील बन गई थी। ऊपर चीनी के गमलों में लगे हुए पौधे पानी में लहलहा रहे थे। "यह मेरा जल-महल है।" चम्पा ने आहिस्ता से कहा—"यहाँ मेरे आँसुओं का पानी बहता है।"

दालान में लड़कियों के दुपट्टे लहराये। हल्की कासनी, पीली और हरी चुनरी ओढ़े एक लड़की ने, यह लड़की शायद मरियम थी, एक गीत शुरू कर दिया।

"मैं एक आम, औसत दरज़े की लड़की हूँ।" चम्पा कहती रही। "अगर मैं ख़ुदा की ख़ासुलख़ास बन्दा होती—मीरा, मुक्ताबाई, सेंट सोफ़िया—तो मेरे शरीर पर घावों के निशान दिखाई देते। मेरा लबादा, मेरे पवित्र ख़ून से लाल होता। हाथों में मेखें गड़ी होतीं। मेरे सिर के चौगिर्द नूर का हाला होता। मुझे विष के प्याले और साँपों के पिटारे भिजवाए गए होते। लेकिन, मैं महज़ चम्पा अहमद हूँ। मेरे घाव किसी को दिखाई नहीं दे सकते, क्योंकि मेरे तमाशाई भी मेरी तरह घायल हैं। वे कमज़ोर और फ़ानी इन्सान हैं। देखने वाली आँख नहीं रखते। लोग मुमकिन है, मुझ पर हँसते भी हों, जबकि सेंट सोफ़िया की पूजा की जाती है।"

हवा के ज़ोर से बहुत-सी जामुनें टप-टप करती सीढ़ियों पर आ गिरीं। चम्पा ने अपने बालों में से एक पीला पत्ता निकाला।

"कमाल !" उसने सोचते हुए कहा—"तुम्हें लंका की वह आर्टिस्ट लड़की याद है? बरसों वह कैनवास पर कैनवास रँगती चली गई। दुनिया की आर्टगैलरियों की उसने ख़ाक छानी। लंदन और पेरिस में उसकी प्रदर्शनियाँ हुईं, जिनमें लेडीज़ नई-नई साड़ियाँ और फ़्रॉक पहन कर आतीं। ख़ास तौर पर आए हुए मेहमान भाषण करते। फ़ोटो खिंचते। प्रेस-रिपोर्टर्स उसका इंटरव्यू

करते। वह एक कोने में खड़ी मुस्करा-मुस्करा कर सबसे बातें करती। आख़िर में सब चले जाते। उसका हॉल ख़ाली हो जाता। अपने पेंटिंग्ज़ के संग वह अकेली रह जाती। फिर, चुपचाप बाहर निकल कर बस में बैठती और घर की राह लेती। तीन बार मैंने यही दृश्य देखा।"

"मैंने तरह-तरह के जीनियस क़िस्म के लोगों के साथ समय बिताया। उनमें से हर एक कभी अपनी जगह पर ख़ुश होता, कभी दुःखी। तुम ख़ुश क्यों हो? मैं हर एक से पूछती—इतने प्रतिभाशाली होते हुए भी ख़ुश हो ! हद है !—मैं बुरा मान कर कहती। मगर, आख़िर मैंने देखा कि बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्होंने अपने दुःख को दुनिया के दुःख में समो दिया था। किस क़दर आसान बात थी ! पहाड़ के नीचे पहुँचे तो मालूम हुआ हम ख़ुद और हमारा निजी दुःख कितना तुच्छ है !

आठ वर्ष बाद तुम्हारी तरह मैं भी अपने वतन वापस लौटी और मैंने यहाँ के हालात देखे। ऐसी बातें देखीं जिनसे मेरा सिर गर्व से ऊँचा और दिल ख़ुशी से भर गया; ऐसी चीज़ें देखीं जिनसे मेरा सिर शर्म से झुक गया; और मेरा दिल दुःखी हो गया। मेरे सामने समस्याओं का बहुत ऊँचा पहाड़ खड़ा था। तब जानते हो क्या हुआ—चिऊँटी ने क्या किया? उसने कानों में हाथी लटका कर पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया। अब भी मालूम करना चाहते हो कि मैं क्या करने वाली हूँ?"

दूसरे दिन शाम को कमाल वहाँ से चला। उसके लिए ताँगा मँगवा लिया गया। चम्पा, मरियम और ज़ेबुन उसे ड्योढ़ी तक छोड़ने आईं। "हम अब तक इस मुहल्ले में ज़बरदस्त पर्दा करते हैं, वर्ना चचा अब्बा को ख़ामख़ाह दुःख होगा। इसी पर्दे के कारण हम तुमको छोड़ने स्टेशन नहीं जा सकते !" चम्पा ने हँस कर कहा।

कमाल ताँगे पर बैठा। ताँगा गली से निकल कर स्टेशन की तरफ़ चल दिया, और कमाल ने देखा—चम्पा बाजी एक बार फिर दूर खड़ी रह गईं—टूटे हुए मकान की ड्योढ़ी पर। उसी तरह उसने उनको ऑक्सफ़ोर्ड-स्ट्रीट पर 'चूज़े की सराय' के शीशों वाले दरवाज़े के पीछे अकेला खड़ा छोड़ दिया था। इसी तरह वह एक बार 'गुलफ़िशाँ' के फाटक के सामने अँधेरी सड़क पर खड़ी रह गई थी, जब भैया साहब उनको छोड़ कर पाकिस्तान चले गए थे।

लेकिन, इस समय वे अकेली नहीं थीं। अब वे एक समूह का एक भाग थीं। उन्होंने अंत में बिना किसी शर्त के समूह की दुसराय स्वीकार कर ली थी। कुछ साल पहले कमाल सोचा करता था, वह आगे जा रहा है। चम्पा पीछे रह गई है। वह दूर निकल जाएगा—नई दुनियाएँ, नए सपने, नए इरादे, नए आदर्श।

मगर, आज इस समय उसने देखा कि वह आगे नहीं जा रहा, और अकेला है। चम्पा जो अब अकेली नहीं, जुलूस में शामिल है, आगे बढ़ रही है। उसके साथ मुहल्ले की गलियाँ, मस्जिद की मीनार, ज़ेबुन और मरियम, सड़क पर गोलियाँ खेलते हुए लड़के, ठेले वाले, ग़रीब, बुर्क़ापोश औरतें और सारी जनता है। चम्पा बाजी उन सबकी साथिन बन गई हैं। ये लोग आगे बढ़ने के लिए तैयार हैं। आज नहीं, कल सही। एक न एक दिन, बहुत जल्दी ये लोग ऊँचे उठ चुके होंगे। इस बिन्दु पर पहुँच कर ग्रिल के दर्शन के सारे ओझल तार झनझना कर टूट गए।

ताँगा अब काज़ी के बाज़ार से गुज़र रहा था। दुकानें बढ़ाई जा रही थीं। चायख़ानों में रेडियो बज रहे थे। सिनेमाघरों के सामने भीड़ थी। पश्चिम के आकाश पर एक-आध कनकौवा लड़ता हुआ दिखलाई दे जाता था।

"क्या करूँ, पार्टनर !"—ट्रेन में बैठते हुए उसने दिल में कहा—"मेरा बड़ा दुःखद अन्त हुआ है !"

ट्रेन शिवालिक की पहाड़ियों से गुज़रती हिमालय के हरे-भरे दामन में पहुँची—हरिद्वार, ऋषिकेश, हर की पौड़ी, देवदार के जंगल, बाँसों के झुंड, झरने, पहाड़ी, नदियाँ, मन्दिर, साधु, चट्टानें, फूलों से लदे हुए पेड़। देहरादून के स्टेशन पर उतर कर वह डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की अदालत में गया। 'मन्कूला' और 'ग़ैरमन्कूला' के काग़ज़ात और मकान के बैनामे निकाले गए। सरकारी क़िस्म की बातचीत हुई। फिर, उसने डालनवाला की सुन्दर सड़कों पर घूमना शुरू किया। उसने आख़िरी मकानों के नामों की पट्टियाँ पढ़ीं।

सामने रसपना बह रही थी।

"यार हरिशंकर !" कमाल ने कहा।

"हाँ यार !"

"यार वह प्रोफ़ेसर हैमिल्टन ठीक ही तो कहता था। हम लोग किस जंजाल में फँसे हुए हैं, ख़ुदा की क़सम।"

उस रोज़ उन्होंने त्याग के मसले पर काफ़ी ग़ौर किया और बहुत गहरा दार्शनिक मूड उन पर छाया रहा।

"आओ, कोठियों के नाम पढ़ें। नामों के चुनाव से मकान वालों की सायकोलॉजी का पता चलता है।" चलते-चलते रुक कर एक फाटक के पास जाते हुए हरिशंकर ने कहा।

"हम कभी मकान बना कर नहीं रहेंगे कि शाहीं बनाता नहीं आशियाना !"

"ठीक कहते हो। देखो बुर्ज़ुआज़ी किस कदर अफ़सोसनाक तौर पर भावुक है ! ज़रा ये नाम पढ़ना।"

"ख़्वाबिस्तान—लाहौल विलाक़ूवत !"

"मगर तुम ख़ुद 'गुलफ़िशाँ' और 'ख़याबाँ' में रहते हो !"

"जानता हूँ।"

"यार, कमाल।"

"हाँ यार।"

"ज़रा सोचो, लोगों ने मकान बना रखे हैं—यहाँ से वहाँ तक, एक से एक ख़ूबसूरत। सारी दुनिया में मकान बने हुए हैं !"

"हाँ यार, बड़ी अजीब बात है।"

वे दोनों एक फाटक की पुलिया पर बैठ गए और फिर इस समस्या पर ग़ौर करने लगे। असल में उनको प्रोफ़ेसर के दुनिया तज देने ने बहुत बेचैन कर दिया था। एक सही-दिमाग़ इन्सान—साइंटिस्ट, और चल दिया जंगल को ! हद है !"

"इसका मतलब कुछ न कुछ ज़रूर होगा !—मानी के मानी...!" कमाल ने कहा।

अँधेरा पड़े तक वह डालनवाले की शान्त, सुगन्धित सड़कों पर मकानों के नाम पढ़ते फिरे—'नस्तरन', 'दौलतख़ाना', 'आशियाना', 'राजमहल'...।

इन मकानों के बाग़ों में लगे हुए पहाड़ी फूलों की महक सारे में उड़ रही थी और दुनिया बड़ी सुंदर जगह थी।

वे दोनों मुँह लटका कर फिर एक फाटक की पुलिया पर बैठ गए और नहर के पानी को देखते रहे। नहर सड़क के किनारे-किनारे बह रही थी। पानी में एक टूटा-फूटा जूता धारे के ज़ोर से उछलता-कूदता बहता चला जा रहा था।

एक लम्बी-सी कार आकर उसके पास रुकी। वह चौंक पड़ा। आँखें मल कर उसने चारों ओर देखा। हरिशंकर ग़ायब हो चुका था। यह सन् '42 ई. नहीं था। वह सन् '56 ई. के देहरादून में मौजूद था। उसने दुबारा आँखें मलीं। वह तो अपने फाटक पर बैठा था। कार में से एक सजे-बने सरदारजी उतर कर उसकी ओर बढ़े।

"आप किससे मिलना चाहते हो जी?"

"मैं...मैं..." वह गड़बड़ा गया। उसका दिल धड़कने लगा। सरदारजी शायद उसे ठग समझ रहे थे, जो उनके ड्राइंग-रूम से रेडियो चुराने के इरादे से आया था। उसने दोबारा फाटक पर लगी हुई संगमरमर की तख़्ती पढ़ी—

"नवाब तक़ी रज़ा बहादुर ऑफ़ कल्यानपुर।"

यह उसका मकान था। वह पुलिया पर से उठ खड़ा हुआ। उसका कंठ सूख गया। उसने सबूत के रूप में बैनामे के काग़ज़ात निकाल कर सरदारजी के सामने कर दिये, और खिसियानी हँसी हँसा।

"ओह, आप मूवेबुल प्रॉपर्टी के सिलसिले में आए हो ! तशरीफ़ लाओ जी तुसी !"

वह सरदारजी के साथ बाग़ की सड़क पर चलने लगा।

"आपका स्टोर-रूम हिफ़ाज़त से बन्द है जी। कुंजी लाए हो आप?"

"जी हाँ।"

ड्राइंग-रूम में ले जाकर सरदारजी ने उसे चाय पिलाई और खाने के लिए आग्रह करते रहे।

सरदारजी रावलपिंडी के रहने वाले थे और यहाँ बहुत बड़े ठेकेदार थे। देर तक वे अपने पुराने देश की याद में रोया-गाया किए। कमाल घबरा कर उठ खड़ा हुआ।

"बॉक्स-रूम खोलने मैं कल सवेरे आ सकता हूँ?"

"जरूर जी। अपना ही घर समझें !" सरदारजी ने कहा और अपनी कार में बिठा कर उसे उसके निवास-स्थान तक पहुँचाया।

सवेरे वह फिर 'ख़याबाँ' पहुँचा। अब धूप निकल आई थी। बाग़ में दो नौजवान लड़कियाँ नंगे पैर बैडमिंटन खेल रही थीं। सरदारनीजी नौकरों पर चीख़ती-चिल्लाती फिर रही थीं, और भैंसों की सानी करवा रही थीं। अन्दर रेडियो बज रहा था ! बड़ा शांतिमय वातावरण था। वह पास के मार्ग से होता हुआ स्टोर-रूम पहुँचा और ताला खोलने से पहले बरामदे की सीढ़ियों पर बैठ गया।

वहाँ उन सीढ़ियों पर बैठा हुआ वह बीसवीं सदी के हिन्दुस्तान की खोई हुई पीढ़ी का एक व्यक्ति था, उसने महसूस किया। उसके परिवारवालों की दुनिया पतझड़ के मारे जंगलों, गुलाब के फूलों, पहाड़ी कॉटेजों और तीसरे पहर की चाय में चाँदी की झिलमिलाती हुई चायदानी की दुनिया थी। सामने देवदारों के बीच से जो पगडंडी जाती थी, उसके परिवार की महिलाएँ रंगीन छतरियाँ सँभाले, उस पर चलती हुई तुर्की या यूरोपियन नॉवलों की हीरोइन मालूम हुआ करती थीं।

'ख़याबाँ' में छः बड़े-बड़े कमरे थे, जिनके चारों ओर कमरे, बरामदे और गैलरियाँ। जाड़ों में जब कभी वह लखनऊ से यहाँ आते, बीच के कमरे में फ़र्श पर गद्दे बिछा दिए जाते। पहाड़ी ख़ानसामाँ फ़क़ीरा चाय की ट्रे लाकर अँगीठी के सामने रख देता। आँगन में चम्पा का एक पेड़ खड़ा था। उसके तीन तरफ़ बरामदे थे, जिनमें से एक के सिरे पर यह स्टोर-रूम था। आँगन में उस तरफ़ घरेलू माहौल रहता, जिसका ज़िक्र शरत्चन्द्र के उपन्यासों में आम तौर से पाया जाता है। जाड़ों की रातों में कमाल और तलअत के सामने किताबों का ढेर लगा होता। रंग भरने की किताबें, परियों की कहानियाँ, गुड़ियाँ, और मैकेनोसेट। जब कभी यह गोदाम खुलता तो सब बच्चों की तरह बड़ी जिज्ञासा से वह भी अम्मा बेगम के पीछे-पीछे उसमें जा घुसता। कैसी-कैसी रहस्यमयी चीज़ें इसमें बन्द रहती थीं। सन्दूक़, टोकरियाँ, बर्तन, झाड़-फ़ानूस, बड़े-बड़े लैम्प, पुरानी पत्र-पत्रिकाएँ, ख़तों से भरे अटैची-केस, निवाड़ के बंडल, दरियाँ।

सर्दियों में कुर्सियाँ बजरी पर डाले बाबा बैठे पेचवान गुड़गुड़ाया करते। लीचियों के पेड़ों पर से कुहरा धीरे-धीरे छँटता। सर्वेंट-क्वार्टर में तिरलोचन माली ने कमरे की दीवार पर एक बड़ी-सी रंगीन तस्वीर लेई से चिपका रखी थी, जिसमें दिखाया गया था कि जो मनुष्य दुनिया में बुरे काम करते हैं, नरक में उनकी क्या दशा होती है। (उदाहरण के लिए, एक चित्र था—कि एक व्यक्ति मरियल-से बैलों पर मनों बोझा लादे गाड़ी हँकालता चला जा रहा है। बराबर के चित्र में वही व्यक्ति नरक में एक गाड़ी में जुता था और लम्बी-लम्बी ज़बानें निकाले बन्दर जैसे फ़रिश्ते गदा मार-मार कर उसको हाँक रहे थे।) और रोज़ी जमादारनी, जिसकी लड़की अंग्रेज़ों के यहाँ आयागीरी करती थी। जब चायदानी कूड़े की बाल्टी में उँडेली जाती तो वह चाय की पत्ती उसमें से निकाल कर घास पर सुखाती और उसकी चाय बना कर पीती।

लखनऊ से सारा अमला साथ आता। क़दीर जो हरे रंग की लोई ओढ़े ठाठ से तीन टाँग की टूटी कुर्सी पर अपने कमरे के आगे बैठे रहते। बावर्चीख़ाने के सामने कटहल का पेड़ था। हुसैनी की बीवी रोज़ खड़े होकर उसके फल गिनती।

फ़र्नीचर पर लाल रंग का कपड़ा मँढ़ा था—मूँज के फ़र्श, लाल और उन्नाबी क़ालीन। सामने के बरामदे में दीवार पर एक रंगीन तस्वीर फ्रेम में लगी थी जिसमें शिकारी कुत्ते एक बारहसिंघे का पीछा कर रहे थे। ड्राइंग-रूम का आतिशदान, बनात की कारचोबी झालर से सजा था। उस पर चाँदी के फ्रेमों में परिवार के लोगों की तस्वीरें धरी थीं। कोनों में पीतल के बोल्ज़ स्टैंड्ज़ थे, जिनमें पाम के गमले रखे जाते। खाने के कमरे की चिलमची में रोज़ ताज़े पत्ते भरे जाते, जिनसे बड़ी अच्छी-सी महक आती। डिनर्ज़ के मौक़ों पर मेज़ ख़ालिस

अंग्रेज़ी स्टाइल से सजाई जाती। छुरी, काँटे, फिंगरबोल, जिनमें गुलाब की पत्तियाँ तैरतीं। बैरा हमेशा बाज़ाब्ता चपकन पहनता और साफ़े पर चाँदी का बिल्ला लगाता और कमर में पट्टा बाँधता।

गर्मियों की दोपहरों में जब सारा घर सो जाता तो कमाल चुपके से बाहर निकल कर लीचियों के झुंड में जा बैठता। वहाँ बड़ी तरी होती। एक महान् अमानवीय-सा आलस्य सारे में छाया होता। बड़े शांति-भरे विचार मन में आते। दूर देवदारों में एक पक्षी लगातार चिल्लाए जाता।...'मैं सोता था !...मैं सोता था !' कहा जाता है कि यह पक्षी शिवालिक की घाटियों के अतिरिक्त और कहीं नहीं पाया जाता, और उसे कभी किसी ने देखा भी नहीं। पहाड़ी नौकर कहा करते थे कि जब भगवान दुनिया बना रहे थे और सारे प्राणियों को उनके भाग्य और गुण बाँटे जा रहे थे (जब मोर को पर मिले, कोयल को आवाज़ वग़ैरा) उस समय यह यहीं कहीं पड़ा सो रहा था। इसीलिए अब यह इसका जन्म-जन्म का रोना है। उसकी आवाज़ पर कान लगा कर सुनो, तो साफ़ सुनाई देता था—'मैं सोता था !'

सरदारनीजी नंगे पैर सटर-पटर करती एक कमरे से दूसरे कमरे में जा रही थीं। उन्होंने ज़ोर से पैंटरी का दरवाज़ा बन्द किया।

कमाल चौंक कर सन् '35 के देहरादून से भी वापस आ गया।

सीढ़ियों पर से उठ कर उसने जेब से कुंजी निकाली और गोदाम का दरवाजा खोला। अन्दर जाकर अल्मारियों को बेध्यानी से खोलता-बन्द करता रहा। सन्दूकों में झाँका। उसकी समझ में न आया कि इन सब चीज़ों का क्या होना है। उसने उस ढेर पर नज़र डाली, जिसे इंसान अपनी निजी जायदाद कह कर खुश होता है। और, इसी तरह के सामान, ढेर के ढेर अभी 'गुलफ़िशाँ' और कल्यानपुर की हवेली के कमरों में बन्द पड़े थे। कमरे के बीच में थोड़ी-सी ख़ाली जगह का जो द्वीप-सा बन गया था, उसमें खड़े होकर सोचता रहा—इसी जायदाद के लिए दुनिया मरी जाती है ! इन सबके बदले में एक मृगछाला...एक मृगछाला !

अब जाकर उसकी समझ में आया कि लोग संसार तज कर जंगलों में क्यों जा बैठते हैं।

फिर उसने उकडूँ बैठ कर काग़ज़ात की सन्दूक़चियाँ खोलीं। चारों तरफ़ पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों और पुरानी तस्वीरों के ढेर लगे थे। उसने पत्र-व्यवहार का एक टूटा-फूटा अटैची-केस उठाया। लिफ़ाफ़े पर अजीब-अजीब मोहरें थीं—पटना, सन् 1933, बिलासपुर, सन् 1928, भोपाल, सन् 1937 ई.। जाने इन ख़तों में क्या था। और, किन लोगों ने ये पत्र लिखे थे और अब कहाँ थे और क्या कर रहे थे। मसलन रासबिहारी लाल का पत्र, यह सन् 1934 ई. में पीलीभीत से आया था और घसीट उर्दू लिपि में लिखा था। वह साहब कौन थे और क्या थे। और 'शिवनन्दन पांडे, रानीखेत', और 'मोहम्मद अहमद अब्बासी मुन्सिफ़, ज़िला गोंडा।' वह फ़र्श पर आलथी-पालथी मार कर बैठ गया। उसने 'पत्र-व्यवहार' के सन्दूक़चे वापस एक अल्मारी में ठूँस दिए। क़ालीनों के अंबार के नीचे फ़ाइलें दबी थीं। मुक़दमे, ज़मीनें, मकान नान-ओ-नफ़क़ा (गुज़ारा) ख़ाला चुन्नीबेगम का छुट्टमछुट्टा जब मीर मुर्ग़ी से हुआ था। उसके सारे काग़ज़ात, और एक अवध का इतिहास सचित्र जिसका काग़ज़ इतना पीला हो चुका था कि हाथ लगने

से टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा था। पृथम पृष्ठ पर 'हिज़ हाइनेस दि ऑनरेबुल सर महाराजा दिग्विजयसिंह वहादुर के. सी. एस. आई., बलरामपुर और तुलसीपुर, सूबा अवध' की निहायत मसख़रेपन की कलमी तस्वीर छपी थी, और उनकी लेखनी द्वारा लिखी हुई बड़ी काफ़िए वाली उर्दू शैली में एक भूमिका थी–

"अलक़िस्सा ऐसी बेइल्तिफ़ाती की बातों से मुज्तर होकर एक दिन आलीजाह ब-सबबे तहरीक-ए-मुसाहिबान-ए-सफ़ाहतशिआर ब-ग़ौर ताम्मुल-ओ-फ़िक्र-ओ-मआल् अन्देशी, लिबास गेरुआ फुक़रा का पहन कर बोरिये पर बैठे और रुफ़क़ाए-ख़ास भी इसी सूरत से बने अंगुश्तनुमा-ए-ख़ास-ओ-आम हुए। जनाब-ए-आली ने अपनी रफ़ा-बदनामी समझ कर अली इब्राहीम ख़ाँ को नवाब-ए-आलिया की तरफ़ से कहला भेजा कि मैंने बादशाह के हुक्म से...।"

कमाल ने दूसरा पृष्ठ पलटा–

"पस साहिबान-ए-आलीशान ने समझा, तस्ख़ीर-ए-बिलाद-ए-हिन्दुस्तान तो उसी दिन हो चुका था। शर्क़ से ग़र्ब तक हक़ीक़त खुल चुकी थी। लिहाज़ा इस ज़ीन-ए-वज़ारत पर मुस्तक़िल रहना चाहिए, फिर मदारिज-ए-सल्तनत पर जाना आसान हो जावेगा और यकायक किसी के घर में चले न जाना चाहिए। अगर्चे इसमें एक मुद्दत गुज़र जाए। अब यह सब हक़ीक़त-ए-हाल उस ज़माने की खुल गई। इत्तेफ़ाक़-ए-क़ौम सबका जाता रहा। गोया सब चराग़-ए-हिन्दोस्तान बुझ गए।"

"इन्तक़ाल-ए-मिर्ज़ा वज़ीरअली ख़ाँ बाबत माह जून सन् 1816 ई. कलकत्ता के कासीबाग़ में, जहाँ टीपू सुलतान का बेटा भी दफ़न है, मदफून हुए। चन्द ग़ुरबा-ए-शहर वज़ीर-ए-हिन्द समझ कर साथ थे। कुछ शहर की क़स्बियाँ उनकी सख़ावत व बेकसी याद करके अपने-अपने दरवाज़ों पर खड़ी रोती थीं। साहब ने हुक्म दिया–गोरे क़नात के बाहर खड़े रहें। ताबूत पर गोरों का पहरा था। उस अहद में साहब रेज़ीडेंट लखनऊ जॉन लिम्स्डन साहब बनारस में जॉन चेरी साहब मक़तूल-ए-नायब तफ़ज़्ज़ल हुसैन ख़ाँ थे।"

"मिर्ज़ा मुज़फ़्फ़र बख़्त शहज़ादे, बेटे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह, एक दफ़ा अपनी ओलुल्अज़मी व तम्ए-दुनिया समझ कर लखनऊ से बाहर निकले। लखनऊ के जो लोग परेशान हाल-ओ-मुअत्तल थे, साथ हुए। जब नाकाम लखनऊ फिरे सेली बेग़म मिंजुम्ला बीबीहाए जरनल मार्टिन से निकाह किया। उन्हीं की पेंशन में बसर औक़ात रही। बाद गोरी बीवी के मरने के उन्हीं के मकान में रहते थे।"

"जाना कर्नल डिबुवा साहब व फ़्रेल साहब व मौलवी मोहम्मद इस्माइल का लंदन को व सिफ़ारत मय हुदाया-ए-शाह-ए-जमजाह जार्ज चहारुम।"

पुस्तक उसने टोकरी में वापस फेंक दी। उसके हाथ पर जो गर्द लग गई थी, वह उसे कुछ क्षणों तक उदासी से देखा किया। बहुत देर तक उसने अपने हाथ नहीं पोंछे।

'यह सामान कहीं नहीं जाएगा। इन सब चीज़ों को ज़ब्त हो लेने दो।' उसने दिल में कहा। गोदाम से निकलते हुए उसने एक बीस साल पुराना ग्रुप फ़ोटो फ़र्श पर से उठा लिया। उसमें स्वर्गीय बड़े अब्बा हारफूल पहने बीच में बैठे थे। यह किसी ज़िले का बिदाई-ग्रुप था, जिसमें बहुत से डिप्टी-कलक्टर और वकील क़तार में बैठे थे। पीछे बड़े-बड़े दरवाज़ों वाला

बरामदा था। सक्सेना साहब, रिज़्वी साहब, ठाकुर रामनारायण साहब, मसूदुलहसन साहब—ये कैसे अजीब लोग थे—सीधे-सादे, शरीफ़, भोले-भाले। जालसाज़ी शायद उनमें से किसी को न आती होगी। रैकेट चलाना उनकी दिलचस्पी का धंधा न रहा होगा। फ्रॉड और चार सौ बीसी से ये हज़रात नावाकिफ़ थे। किस क़दर बेवकूफ़ लोग थे। उनके अपने ख़ास तरह के मज़ाक होते थे, ख़ास दिलचस्पियाँ—मुशायरे, मुकदमेबाज़ियाँ, शिकार, पक्के गाने की महफ़िलें। कैसा शान्ति का जीवन ये लोग बिता गए। उसे इन लोगों के मज़ाक याद आए। रिज़्वी साहब की चिढ़ गुलाब जामुन थी। उनके सामने गुलाब जामुन का दोना धरा है और वे हाय-तौबा कर रहे हैं। ठाकुर साहब की तोंद पर फब्तियाँ कसी जा रही हैं। मेरठ की नौचंदी जाने के प्रोग्राम बन रहे हैं। छड़ियों के मेले की चर्चा है। साले-बहनोइयों की चोटें चल रही हैं। कैसा शान्त समाज था उनका। कमाल इस चित्र को देखता रहा। हमने किस प्रकार उनकी पीढ़ी से खुद को बेहतर सिद्ध किया? बेचारे बूढ़ो...मैं तुम्हारे आगे शर्मिंदा हूँ। मैं तुमको अपना मुँह नहीं दिखाना चाहता। मैं अपना मुँह छिपा कर दूर भाग रहा हूँ। ख़ुदाहाफ़िज़ ! उसने ग्रुप फोटो को धीरे-से फिर गोदाम के फ़र्श पर गिरा दिया और ताला लगा कर बाहर आ गया।

देवदारों में पक्षी उसी प्रकार चिल्लाये जा रहा था, 'मैं सोता था !—मैं सोता था !'

अरे, सोता भी था तो क्या हर्ज़ था !—कमाल ने झुंझला कर दिल में कहा। जाग रहा होता, तब भी प्रजापति तुझे कौन बड़ा सुख प्रदान कर देते। मगर पछतावे की अनुभूति और तौबा-तिल्ला से भी तो अपने महत्त्व की अनुभूति होती है। अरे मैं पूछता हूँ, आप हैं कौन चीज़?—कमाल रज़ा, और सिरिल ऐश्ले, और गौतम नीलाम्बर !—जो तरह-तरह की टर्र-टर्र लगा रखी है !

दिल्ली के स्टेशन पर जीजाजी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके साथ वह जमुना रोड आया। लाज बरामदे में खड़ी उसकी राह देख रही थी। वह उससे लिपट कर रोने लगी। "मत जाओ, कम्मन ! निर्मल स्वर्गवासी हो गई। शंकर सदा बाहर रहता है—तुम पाकिस्तान चले गए...!" रोते-रोते लाजवती की हिचकी बँध गई।

वह चुपचाप बैठा रहा। "क्यों रोती हो !" उसने आहिस्ता से कहा—"रोओ मत।"

उसकी ट्रेन शाम को अमृतसर जाती थी। मगर वह जल्दी से जल्दी लाजवती के घर से भाग जाना चाहता था। ख़ाना खाने के बाद वह जीजा के साथ नई दिल्ली जाने को तैयार हुआ।

"अरे, गौतम को तो फ़ोन कर लो ! वह चंडीगढ़ गया हुआ था, शायद लौट आया हो !" जीजाजी ने कहा।

कमाल ने अनिच्छा से टेलीफ़ोन डायरेक्टरी उठाई और पृष्ठ पलटने लगा। बहुत से जाने-पहचाने नाम पृष्ठों पर उसे दिखाई दिए। मिस सौलत रहमान—मिस कमला जसपाल, मिनिस्टरी आफ़ एक्सटर्नल अफ़ेयर्ज़।

उसने पृष्ठ पल्टे—नरूला, हरिश्चन्द्र; नारायण एम. जे., नीलाम्बर, गौतम। उसने नम्बर डायल किया।

"हैलो गौतम—अरे तुम यहीं मौजूद हो? उल्लू के पट्ठे।" उसने बेहद कोशिश करके

नॉर्मल ख़ुशी-भरी आवाज़ में बात शुरू की–"अबे यार–हाँ यार–आज ही सुबह देहरादून से–हैं? हाँ ढाके से आ रहा हूँ...लखनऊ में? हाँ–अप्पी ने तुमको दुआ कहलवाई है !...हाँ, मज़े में हैं। सब मज़े में हैं, मुझे छोड़ कर। क्या कहा, मैंने? कुछ नहीं मैं कह रहा था, मैं भी बहुत ठाठ कर रहा हूँ आजकल। नाम-बनाम सबकी ख़ैरियत बताऊँ? पूछो–क़दीर और क़मरुन ? भई वाह ! ख़ूब याद रहे तुमको–तुमको कौन चीज़ याद नहीं है? सब याद है? तुम्हारी याददाश्त बहुत तेज़ है। माशाअल्लाह ! क़दीर तो ज़माना हुआ, मिर्ज़ापुर वापस चले गए। मोटर कब की बिक गई। क्यों बिक गई? अजी यहाँ ज़िन्दगियाँ ही बिक गईं। तुम एक मोटर के लिए फ़िरते हो ! तुम नहीं बिके? हाँ-हाँ–मैं कब कहता हूँ ! मैं तो अपनी बात कर रहा था। क़ीमत अच्छी मिल रही थी। बोहनी का वक़्त था।"

"और पूछो, किस-किस की ख़ैरियत दर्याफ़्त करना है–छुटकी, रमदैया? ग़ज़ब ख़ुदा का ! तुमको छुटकी अब तक याद है? वह ग़रीब दुनिया से कूच कर गई–हाँ, बड़ा अफ़सोस हुआ। कैसे?–बरसात में 'गुलफ़िशाँ' मरहूमा के बाग़ की घास खोद रही थी। साँप ने काट लिया। हाँ, कई साल हो गए उसे मरे। गंगादीन तो आजकल कहीं मध्य प्रदेश में ट्रैक्टर चला रहा है। उसने, अप्पी बता रही थीं, एफ़. ए. पास कर लिया है। हाँ–इसे असल तरक़्क़ी कहते हैं–मैं गंगादीन के कैरियर का हाल सुन कर बहुत ख़ुश हुआ–और बातें करूँ? नहीं, मैं तुमसे मिल नहीं सकता। मुझे फ़ुर्सत नहीं? तुम्हारी कॉन्फ़्रेंस तीन बजे ख़त्म होगी। उसके बाद तुम मेरा इंतज़ार करोगे–'आल्पस' में?–क्या करोगे इंतज़ार करके ! नहीं, मैं कस्टोडियन से मिलने जा रहा हूँ। 'पी' ब्लॉक–इसके बाद–अच्छा देखो, पहुँचने की कोशिश करूँगा–मगर, मेरा ज़्यादा इन्तज़ार न करना–अच्छा–सो लांग।"

कमाल ने टेलीफ़ोन बन्द कर दिया। लाजवती दरवाज़े में खड़ी थी। "अच्छा अब मैं चला।"

"जल्दी आना।"

"हाँ-हाँ !"

"तुम्हारे नाश्ते के लिए क्या-क्या बना दूँ?"

"वही सब जो हमेशा बनाती हो?" वह ज़रा झुँझला कर बोला। "तुम यह अपना बहनों की मोहब्बत वाला जाल फैलाती रहो। मेरा दिल इससे थोड़ा ही पसीज सकेगा। न मेरे क़दम डगमगाएँगे। मैं मज़बूत हूँ। मैं बूढ़ा हूँ। मुझमें ज़ब्त और बैलेंस और शान्ति है।"–उसने दिल में कहा।

वह जमना रोड की तरफ़ से निकला। अलीपुर रोड, कश्मीरी गेट, सिनेमा के बड़े-बड़े विज्ञापन। लाल किले का मैदान, दुकानें, नए-नए बाज़ार। कनाट-प्लेस पहुँच कर वह दुकानों में रखी हुई नए भारतीय चित्रकारों की पेंटिंग्ज़ देखता फिरा। बरामदे में से गुज़रती हुई एक लड़की में उसे सुरेखा की झलक नज़र आई। वह ज़रा आगे बढ़ा। वह कोई और लड़की थी। उसने घड़ी पर नज़र डाली। अभी तीन बजने में बहुत देर थी। सारा दिन बाकी पड़ा था। सुरेखा ही से चल कर मिल लूँ। उसने आलस्य से सोचा "यहाँ डांस अकेडमी का पता बता सकते हैं ?" उसने एक आदमी से पूछा।

"कौन-सी डांस अकेडमी ? यहाँ बेशुमार डांस कॉलेज हैं। आप संगीत अकेडमी चले जाइए। वहाँ से आपको श्रीमती सुरेखा देवी का पता मिल जाएगा।"

उसने यह विचार भी छोड़ दिया। अपने जाने-पहचाने कनाट-प्लेस में वह अपरिचितों की तरह घूमता रहा। मोटरकारों, समृद्ध-सन्तुष्ट इंसानों, व्यस्त कारोबारियों, शानदार दुकानों के बीच में खड़े होने पर उसे बहुत डर लगा। उसे यह भी याद आया कि जाने से पहले उसे सिविल लाइंज़ के थाने में जाकर सूचना देनी है कि वह हिन्दुस्तान से जा रहा है।

भादों के महीने की धूप बहुत कड़ी थी। वह बहुत उद्विग्न, बहुत थका हुआ था। चाहता था कि पर लगाकर कराची वापस पहुँच जाए। उसने निश्चय कर लिया। अब वह हिन्दुस्तान कभी नहीं आएगा।

"वह देखो, सामने से कौन आता है?" उसने डॉक्टर हैंस क्रैमर को देख कर बनावटी उल्लास से कहा। दिल में प्रसन्न भी हुआ कि पहाड़-सी दोपहर उनकी संगत में किसी-न-किसी प्रकार कट ही जाएगी।

"हैलो, हैलो, माई डियर ब्वॉय।" डॉक्टर हैंस क्रैमर ने हाथ फैलाते हुए कहा—"क्या अजीब संयोग है।"

उनके साथ सूचना-विभाग की एक लड़की थी। उसने गम्भीरता से कमाल के सलाम का जवाब दिया और पैम्फलेट से पंखा झलती रही।

"बड़ी गरमी है।" डॉक्टर हैंस क्रैमर ने ख़ुशी से बाग़-बाग़ होते हुए कहा—"बिलकुल विशुद्ध पूर्वी मौसम है !!"

कमाल भी रस्मी हँसी हँसा।

"मैं डॉक्टर को राष्ट्रीय म्यूज़ियम लिए जा रही हूँ। आप भी चलिए, अगर आपको कोई काम न हो।" लड़की ने कमाल को सम्बोधित किया। उसका नाम शायद कुमारी अरुणा वाजपेयी था। कमाल ने आँखें बन्द कर लीं। अगर निर्मला ज़िन्दा होती तो आज वह भी इसी तरह काम में व्यस्त होती।

"जी हाँ, ज़रूर।" उसने उत्तर दिया।

ब्रॉडकास्टिंग हाउस से दो और यूरोपियन बुद्धिजीवियों को साथ लेते हुए वे राष्ट्रपति-भवन रवाना हुए। डॉक्टर हैंस क्रैमर और उनके साथी उसी दुनिया के वासी थे जिसमें कमाल कुछ समय पहले खुद शामिल था। उनका भी ज़िन्दगी से ज़्यादा बड़ा आउटलुक था। उन्हें भी चीज़ों में रहस्य दिखाई देता था। उनके पास भी ज्ञान के अतिरिक्त विवेक था। ये बुद्ध-जयन्ती के लिए हिन्दुस्तान आए हुए थे और श्रीनगर की एक हाउस-बोट में रह कर भारतीय मूर्तिकला पर एक पुस्तक लिख रहे थे। उनसे मिलने के लिए उन्हीं की तरह के दूसरे विदेशी और स्थानीय बुद्धिजीवी उनके यहाँ जाते। ये हाथ मलते जाते, फ़र्श पर कुशन और चटाइयाँ बिछाते और हरी चाय तैयार करते जाते और कपिल की चर्चा होती। "अभी मैं राहुल सांकृत्यायन से मिलने अल्मोड़ा गया था।" डॉक्टर क्रैमर ने कमाल से कहा।

"मार्ग में मेरा नया लेख ज़रूर पढ़ना।"

"ज़रूर !"

"तुम मुल्कराज आनन्द से परिचित हो?"

"जी हाँ।"

फिर उन्होंने दूसरे लोगों का ज़िक्र किया—हुमायूँ कबीर तारा, अलीबेग, ज़ाकिर हुसैन, कार्ल खंडालावाला। कमाल मोटर की खिड़की से बाहर देखता रहा।

राष्ट्रपति-भवन की सीढ़ियों पर पहुँच कर डॉक्टर हैंस क्रैमर ने हाथ मलते हुए नज़रें ऊपर उठाईं और सोने के शेरों के नीचे लिखा हुआ 'सत्यमेव जयते' ऊँचे स्वर में पढ़ा। 'सच जीतेगा' उन्होंने कमाल के लिए उसका अनुवाद किया, और क्षण भर के लिए आँखें बन्द कर लीं। फिर वे सब कुमारी अरुणा के मार्ग-प्रदर्शन में अन्दर दाख़िल हुए। भूतपूर्व वायसरीगल-लॉज के शानदार हॉलों में बड़ी शीतलता थी जो बाहर की कड़ी धूप के मुक़ाबले में बहुत शांतिप्रद प्रतीत हुई। प्राचीन काल और मध्ययुग की मूर्तियों ने कमाल को अपनी ज्योतिहीन आँखों से घूरना आरम्भ कर दिया। डॉक्टर एक-एक मूर्ति के सामने ठिठक कर फ़्रांसीसी या जर्मनी में विचार व्यक्त करते। एक जगह महात्मा बुद्ध की शानदार प्राचीन मूर्त्ति स्थापित थी। उसकी पृष्ठभूमि में उन्नाबी रंग के मख़मली पर्दों का झरना-सा गिर रहा था। कमाल तख़्त की सीढ़ियों पर जाकर बैठ गया। चारों तरफ़ ब्रिटिश म्यूज़ियम का-सा वातावरण छाया था।

"यह तो अस्थायी म्यूज़ियम है।" उसके निकट आकर कुमारी अरुणा ने क्षमा-याचना के ढंग से कहा—"हमारा राष्ट्रीय संग्रहालय, हमारी प्राचीन परम्परा के अनुसार होगा, उसका निर्माण हो रहा है।"

"जी, बेशक !" कमाल ने उत्तर दिया। एक वर्ष पूर्व वह स्वयं इसी दिल्ली में टॉम से इसी लहजे में बातें करता रहा था।

"आपने हमारी नई इमारतें देखीं? रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया और अशोक होटल?" कुमारी अरुणा ने एक कर्त्तव्य परायण इंफ़ारमेशन-अफ़सर की हैसियत से उससे पूछा।

"जी !" कमाल ने उसे यह बताने की आवश्यकता न समझी कि वह स्वयं भी इसी देश का रहने वाला था।

"आइये, इधर चलें—आपने हमारी मोहन जोदाड़ो की प्राचीन सभ्यता की डांसिंग-गर्ल देखीं?"

कुमारी अरुणा उसे संगमरमर की गैलरियों में घुमाती फिरी—"चनहोदड़ो, मोहन जोदाड़ो, स्वात की घाटी, हड़प्पा, तक्षशिला, रोपड़—अब हम आधुनिक काल के निकट आते जा रहे हैं।" उसने एक जगह रुक कर कहा—"यह पत्थर देखिए, यह अश्वमेध तीसरी सदी ईस्वी पूर्व में देहरादून के क्षेत्र में आयोजित किया गया था। यह अहिच्छत्र की मूर्तियाँ हैं।" उसने मुड़ कर हैंस क्रैसर से कहा। वे इस बीच उनके निकट आकर खड़े हो गए थे।

चलते-चलते वे एक लकड़ी की मूर्त्ति के सामने आए। यह आर्केइक (Archiac) शैली की थी। "यह श्रावस्ती की खुदाई में इसी वर्ष निकली है।" लड़की कदम्ब की डाली झुकाये वृक्ष के तने से लगी खड़ी थी। "लाल मिट्टी की इस मूर्त्ति का समय शायद चौथी सदी ईसापूर्व है।" डॉक्टर हैंस क्रैमर ने अपनी पांडुलिपि निकाल कर पेशेवर आर्कियॉलॉजिस्टों के ढंग से अपने

फ्रेंच साथी से कहा।

वे ठंडे फ़र्श पर मूर्ति के आगे बैठ गए। मूर्ति के अंकन में शक्ति थी—जीवन की अरुणिमा और गर्मी। जीवन की कल्पना के बजाय साक्षात् जीवन, धरती की अपनी सृष्टि।

उसकी बाँहें बहुत भरी-भरी मालूम होती थीं, आँखें बहुत बड़ी-बड़ी, शरीर दृढ़ और सुडौल, आकृति और आकार और संतुलन शान्त, लोच और हरकत की अनुभूति का पूर्ण सम्मिश्रण। "एक रोमांचकारी सौंदर्य पत्थरों में साकार हुआ है। भारी, ठोस, भयानक !" मोसियो रावल ने यीट्स की भाँति कहा।

"शिल्पकारी में आगे की विचारधाराओं का आरम्भ यहीं से हुआ।" डॉक्टर क्रैमर ने कहा, "यह मथुरा से पहले का नमूना है। अब हमें इस कला के इतिहास के बारे में बहुत-सी थ्यौरीज़ को बदलना पड़ेगा।"

"उस युग के कलाकारों के सामने यह समस्या रही होगी कि विचार केवल संकेत के द्वारा देखने वाले तक पहुँचाया जा सकता है। इसी दृष्टिकोण ने वेदों के युग के बाद मूर्ति पूजा को फैलाया।" अरुणा ने विचार प्रकट किया।

रूप और अरूप तथा भाव और अभाव के सम्बन्ध में वह जो कुछ जानता था, अब वह किससे कहने जाएगा? इस सारे ज्ञान का उसे अब कोई लाभ नहीं—कमाल ने सोचा। इस आश्चर्यजनक मूर्ति के पास उसके लिए कोई सन्देश नहीं।

"वेदान्त के अनुसार विशुद्ध सौंदर्य-सम्बन्धी प्रयोग असंबद्ध आनन्द है।" मोसियो रावल ने कहा। "बिजली की तरह अखंड है। उसे विभाजित नहीं किया जा सकता। वह स्वयं प्रकट होता है—यानी स्वयं प्रकाशमान् है। जिस प्रकार कलाकार की कल्पना विश्वकर्मा की कल्पना में शामिल है उसी तरह देखने वाला आत्मा या स्वयं में मौजूद है। वह हर समय देखता है कि उसका स्वरूप सारी दृष्टि का उद्गम है। विश्व-रूप रूपं-रूपं प्रतिरूप। तुम्हारा क्या विचार है वेदान्त के इस दृष्टिकोण के बारे में? तुम्हें यह मूर्ति अच्छी लगी या तुम मथुरा के स्टाइल को प्रधानता दोगे?" मोसियो रावल ने मुड़ कर कमाल से पूछा।

"बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्' (भूखे को कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती) सौंदर्य और ब्रह्मज्ञान की ऐसी बारीक़ आलोचना मेरे बस के बाहर है !" कमाल ने उत्तर दिया। उसके स्वर की असीम कटुता और उदासी ने सबको चौंका दिया।

"यह कम्युनिस्ट है !" डॉक्टर स्टीवर्ट ने निश्चय किया।

"इसके फ़्रस्ट्रेशन का कारण क्या हो सकता है?" कुमारी अरुणा ने सोचा, जो अमरीका से मनोविज्ञान में डॉक्टरेट करके आई थी। उसने दृष्टि उठा कर कमाल को देखा और सोचा पढ़ा-लिखा लड़का है और कितना खूबसूरत ! "आप संस्कृत भी पढ़ चुके हैं?" उसने प्रशंसात्मक ढंग से पूछा।

"पढ़ी थी एक ज़माने में थोड़ी-सी।" कमाल ने संक्षेप में जवाब दिया।

फिर उसने घड़ी देखी। कस्टोडियन से मिलने का समय निकट आ रहा था।

वह मूर्ति के चबूतरे पर हाथ रख कर उठ खड़ा हुआ। मूर्ति का पत्थर ठंडा था—पत्थर जो टाइमलेस बिकम का प्रतीक है। वर्त्तमान का बहाव इतना तेज है कि जो पत्ते पिछले कल्पों

से बहते हुए आ रहे हैं, वे अब आकर दलदल में फँस गए हैं। उसने मन में सोचा। तभी तो मैं कहता हूँ, एक कुदाल लेकर इन पत्तों, इस कूड़े-करकट की सफ़ाई कर दो ! आजकल मैं सफ़ाई में लगा हुआ हूँ। दिमाग़ की, दिल की, बुद्धि की, स्प्रिंग-क्लीनिंग। इस अतीत से मैं सम्बन्ध तोड़ चुका हूँ, उसने उन यूरोपियन विशेषज्ञों को बताना चाहा। फिर वह मूर्त्ति की ओर मुड़ा 'इसीलिए श्रावस्ती की 'सुदर्शन यक्षिणी !' जो कोई भी तेरा बनाने वाला था, वह अपना सन्देश मुझ तक नहीं पहुँचा सका। तेरा स्रष्टा अब मुझसे कम्युनिकेट नहीं करेगा। मैं रूप और अरूप की बहस में पड़ने से इन्कार करता हूँ। यह राष्ट्रीय संग्रहालय सारे अतीत के साथ, सारे भारत के साथ, मैंने कुमारी अरुणा वाजपेयी को सौंपा।'

वह वहाँ से आगे बढ़ा और धीरे-धीरे चलता हुआ गैलरी पार करने लगा। उसके कानों में यूरोपियन विशेषज्ञों की आवाज़ आती रही—

"काश, हम जान सकते कि उस मूर्तिकार का नाम क्या था जिसने यह मूर्त्ति बनाई। मगर, इस विचित्र देश में इतिहास का कोई महत्त्व नहीं !" डॉक्टर क्रैमर कह रहे थे—"घटनाएँ कोई महत्त्व नहीं रखतीं। यथार्थ किम्वदन्ती है। समय का अन्तर कोई महत्त्व नहीं रखता। क्षण, शाश्वत है। इंसान गुमनाम है। उसकी रचनाओं, कलाकृतियों और साहित्य का भी अनन्त के इस सागर में कोई अलग स्थान नहीं माना जाता।"

"हाँ।" मुसियो रावल ने कहा—"इंसान मर जाता है, तो उसको जला दिया जाता है, क्योंकि उसकी ऐतिहासिक अर्थवत्ता कुछ नहीं।"

"कोई संकट हिन्दुस्तानी बुद्धि पर प्रभाव नहीं डाल सकता, क्योंकि संकट भी काल में शामिल है, इतिहास नहीं है। भूत, भविष्य, नाश, अनश्वरता—किसी वस्तु का भी अस्तित्व नहीं। अतः अब इस शरीर को जला दो, क्योंकि यह अब वर्त्तमान में शामिल नहीं रहा।" डॉक्टर स्टीवर्ट ने कहा।

"इसीलिए पूर्व के कलाकार ने अपना नाम अंकित करने की आवश्यकता कभी न समझी। काश हम इन मूर्तिकारों के सम्बन्ध में भी कुछ जान सकते !" डॉक्टर क्रैमर ने चारों ओर देख कर कहा—"यहाँ कितने माइकेल एंजलो शांतिपूर्वक हँसी-ख़ुशी गुमनाम मर गए।"

कमाल गैलरी से बाहर निकल आया।

"यह एहसास कि हम स्वयं काल हैं।" मुसियो रावल कह रहे थे।

"विस्तार को अनुभव किया जाता है। समय को केवल सोचा जा सकता है।" डॉक्टर क्रैमर कह रहे थे।

कमाल सीढ़ियाँ उतर कर बाहर लाल बजरी की चौड़ी सड़क पर आ गया और पी. ब्लॉक की ओर चल दिया।

कस्टोडियन से दिमाग़ खपाने के बाद वह गौतम नीलाम्बर से मिलने 'आल्पस' नहीं गया। वह सीधा लाज के घर पहुँचा और उसने लाज से कहा—"अगर मेरा फ़ोन आए तो कह देना, मैं अभी वापस नहीं आया हूँ।" फिर वह कमरे का दरवाज़ा बन्द करके स्टेशन जाने के समय तक पड़ा सोता रहा।

गौतम एक घंटे तक रेस्तराँ में कमाल की प्रतीक्षा करता रहा। उसने कई जगह फ़ोन किया। जब कमाल की ओर से बिलकुल निराश हो गया तो फिर अपने दफ़्तर लौट गया। बुद्ध-जयन्ती के सिलसिले में सरकार बड़े ज़ोरों से प्रचार कर रही थी और उसे चिराग़ जले तक दफ़्तर में व्यस्त रहना पड़ता था। एक बहुत ही आवश्यक फ़ाइल के सिलसिले में उसने अपनी नं. टू कुमारी अरुणा वाजपेयी को फ़ोन किया। पर, मालूम हुआ कि कुमारी अरुणा वाजपेयी डॉक्टर हैंस क्रैमर को लेकर नेशनल म्यूज़ियम गई हुई हैं।

"लाहौल विलाक़ूवत !" उसने क्रोधित होकर कहा। कमाल से न मिलने के कारण वह बहुत व्यग्र था। उसे इस देश पर, स्वयं पर, कमाल पर, संसार की हर चीज़ पर क्रोध आ रहा था। यदि उसका बस चलता तो डॉक्टर क्रैमर और डॉक्टर स्टीवर्ट और कुमारी अरुणा वाजपेयी को कच्चा चबा डालता।

फ़ाइल बहुत ज़रूरी थी और उसे जल्दी से जल्दी विभाग के ज्वाइंट सेक्रेटरी को पहुँचाना था। वह कार में बैठ कर राष्ट्रपति-भवन पहुँचा। म्यूज़ियम के अन्दर जाकर उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। परन्तु वे लोग वहाँ से जा चुके थे। बेध्यानी से वह कमरों में घूमता रहा।

एक मूर्त्ति के सामने सूचना-विभाग के पैम्फ़लेट पड़े थे, जो शायद डॉक्टर क्रैमर यहाँ भूल गए थे। गौतम ने झुक कर उन्हें उठा लिया। फिर उसने यों ही मन से मूर्त्ति को देखा—'श्रावस्ती की सुदर्शन यक्षिणी।'

उसकी शक्ल भला कैसी थी? उसने सहसा सोचना शुरू कर दिया। फिर उसने क्रोध से चलते-चलते संगमरमर के फ़र्श पर ज़रा ज़ोर से पैर पटके—"तुम समझती क्या हो अपने आपको ! मैंने तो तुम्हें कुछ भी नहीं समझा। मैं तो तुम्हारी शक्ल भी भूलता जा रहा हूँ। शक्ल तो केवल ढाँचा होता है। मेरे मन में जो रूप सुरक्षित है उसे केवल विश्वकर्मा ही पहचान सकता है !"

श्रावस्ती की खुदाई में से निकली वह मूर्त्ति कदम्ब की डाली झुकाए अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसे देखा की। गौतम ने उसके निकट जाकर उसके चेहरे को स्पर्श किया। "आर्केइक मूर्तिकारी का अच्छा नमूना है !"—उसने दिल में कहा। 'सांस्कृतिक प्रचार-पत्रिकाओं में इस नई खोज़ के सम्बन्ध में एक लेख होना चाहिए।' उसने एक कर्त्तव्य-परायण प्रचार-विशेषज्ञ की तरह सोचा। फिर बाहर निकल आया।

शाम पड़े कमाल लाज के घर से स्टेशन के लिए रवाना हुआ।

"अभी ट्रेन में देर है, आओ तुम्हें घुमा लाएँ !" जीजाजी ने प्रस्ताव रखा। "तुम दिन भर घाम में मारे-मारे फिरे हो, अब ताज़ी हवा खाओगे तो तबीयत ठीक हो जाएगी।"

वे पहाड़ी पर गए। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, नई बस्तियों की रोशनियाँ तेज़ी से जगमगा रही थीं। रिज के इलाक़े में, कॉलेजों की दुनिया में चहल-पहल थी। नई दिल्ली के सप्रू-हॉल में बड़े गुलाम अली ख़ाँ का गाना हो रहा था। एक थिएटर में हीर-राँझा का ऑपेरा दिखाया जा रहा था। आर्ट गैलरियों में प्रदर्शनियाँ हो रही थीं। बड़ी-बड़ी दुकानों पर साड़ियाँ पहने, जूड़े बाँधे सेल्ज गर्ल्स वैभवपूर्ण अंदाज़ में सामान बेच रही थीं। बिड़लामन्दिर के सामने भीड़ थी।

ऊपर संगमरमर के फ़र्श पर जगह-जगह लोग मुँह के बल पड़े हुए थे। लक्ष्मीनारायण की विशुद्ध मिडिल क्लास मूर्तियाँ फटी-फटी आँखों से भीड़ को देख रही थीं। ऊपर गीता-भवन में हारमोनियम पर कीर्तन हो रहा था। चाँदनी के फ़र्श पर मिडिल क्लास औरतों और मर्दों की भीड़ थी। जामा-मस्जिद के सामने दरिद्र मुसलमान अपनी दुकानें लिए बैठे थे।

"दिल्ली दुनिया की बड़ी सुन्दर राजधानियों में से एक है !" कार में उसके पास बैठी हुई लाज प्रसन्नता से कह रही थी। "कल अमरीकी राजदूत की पत्नी रौशनआरा क्लब में मुझसे कह रही थी कि यह तो कुछ-कुछ वाशिंगटन की तरह सुन्दर है, और पुरानी दिल्ली को देख कर लंदन की गलियाँ याद आती हैं। तुम तो दुनिया घूम आए हो, यह बात ठीक है न?"

राजघाट में लोगों के समूह हवाख़ोरी कर रहे थे। फ़व्वारे चल रहे थे। एक बूढ़ी औरत गांधीजी की समाधि के सामने माथा टेक रही थी।

ट्रेन का समय हो गया। वह लाज और जीजाजी को ख़ुदाहाफ़िज़ कह कर डिब्बे में जा बैठा। ट्रेन धीरे-धीरे स्टेशन से बाहर निकली। जमुना का पुल, लाल क़िले की दीवारें, बाज़ार, सड़कें, मकान—वह खिड़की में से देखता रहा—वह जा रहा है। ब्राडकास्टिंग हाउस के ज़ीने पर रखी हुई नटराज की शानदार मूर्त्ति।

जामिआ नगर, निज़ामुद्दीन, मथुरा रोड...सब यहीं रह जाएगा। जीवन जारी रहेगा—एक व्यक्ति के निकल जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये लोग अब भिन्न थे। दूसरे मार्ग पर जा रहे थे। उनके और कमाल के पास अब कोई प्रसंग साँझे का नहीं। उसे अब उनसे कोई मतलब नहीं। वह भी अब कमाल की अनुपस्थिति को अनुभव नहीं करेंगे। प्रेस क्लब में दुनिया भर के अख़बारों के प्रतिनिधि जमा थे। लोक सभा में पंडित नेहरू भाषण दे रहे थे। जामिआ नगर में उर्दू ड्रामे पर रिसर्च की जा रही थी। ललित कला मंदिर में सुरेखा देवी नृत्य कर रही थी।

संगीत, थिएटर, मूवीज़, डाक्यूमेंट्री फ़िल्मूज, बच्चों के थिएटर और हस्पताल, औरतों की यूनिवर्सिटियाँ, फैशन शोज़, वैले, यूनिवर्सिटियों की एयरकंडिशंड लाइब्रेरियाँ, दूसरी पंचवर्षीय योजना के ब्ल्यू प्रिंट। भारी उद्योग, ग़रीबी, सोशलिस्ट स्टेट नई दिल्ली के अत्यंत पॉश रेस्तराँ, इम्पीरियल दिल्ली, सोशलिस्ट दिल्ली ज़िलों के कलक्टर...

और

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, महिलाएँ, साधु और भिखारी।

बिजली की रोशनी से जगमगाते क़स्बे और गाँव—भूदान आंदोलन।

कुदसिया बाग़, रोशनआरा बाग़ और बेला रोड पर ठंडी हवाएँ चल रही थीं। ओल्ड सिविल लाइन की कोठियों में फूल खिले थे। उनके पास के लानों पर पुराने ज़माने के कायस्थ परिवारों के चंद सदस्य बैठे तबातबाई की शायरी पर विचार-विमर्श कर रहे थे।

नेशनल फ़िज़िकल लैबोरेटरीज़ की एयरकंडीशंड गैलरियों में से साइंसदान लड़कियाँ जल्दी से निकल कर अल्ट्रॉमाडर्न सैल्फ़ सर्विस कैफ़ेटेरिया में प्रवेश कर रही थीं। नई दिल्ली में आल इंडिया मुशायरा हो रहा था। रोशनआरा क्लब के विशाल लॉन पर पंखों के नीचे चंद उच्च अधिकारियों और सेठों की बीवियाँ ताश खेलने में तल्लीन थीं।

ट्रेन अब खेतों में आ गई। "हर सफ़र बड़े अर्थ रखता है। हमारा इधर से उधर

जाना।"—एक बार गौतम ने कहा था, जब वह तलअत के कथनानुसार ख़लील जिब्रान के अल्मुस्तफ़ा की तरह संवाद बोला करता था।

भारत का सारा सिम्बल यात्रा है—चलते रहने, खोजते रहने की आदत। शायद स्पैंग्लर ने लिखा था।

उसने राधाकृष्णन की किताब उठाई।

"भारतीय दर्शन में कोई किसी को आज्ञा नहीं देता—यह अवश्य करो, या यों तुमको करना पड़ेगा ! यहाँ मनुष्य अपने कर्म का स्वाधीन कर्त्ता है।"

उसने पुस्तक खिड़की से बाहर फेंक दी, और सीट पर लेट गया।

पंजाब के स्टेशन गुज़रते रहे—अम्बाला, लुधियाना, जालन्धर। दीवारों पर उर्दू में फ़िल्मों के विज्ञापन लगे थे। प्लेटफ़ॉर्म के धुले हुए फ़र्श पर सिख-औरतों की रंगीन शलवारें रात के प्रकाश में झिलमिला रही थीं।

सवेरा हुआ। ट्रेन अमृतसर पहुँच रही थी। जगह-जगह मुसलमान पीरों की सुनसान क़ब्रें थीं। सिख-औरतों के समूह पगडंडियों पर से गुज़र रहे थे। सिख-किसान खेतों में पहुँच चुके थे। जगह-जगह अब भी मकान जले हुए पड़े थे। अमृतसर के प्लेटफ़ॉर्म पर ग़रीब बुर्क़ापोश औरतें और बूढ़े, सलाखों के उधर वीज़ा पर हस्ताक्षर होने की प्रतीक्षा में बैठे थे। एक मोटा सिख-अफ़सर एक ग़रीब मुसलमान औरत से कटुता से पूछ रहा था—

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"अमीना। यह मेरी बेटी सकीना है। यह पाकिस्तानी है। मैं खुरजे से इसे लेने आई हूँ। इसका बाप मर रहा है।" पाकिस्तानी सकीना अपनी भारतीय माँ अमीना से अलग सलाखों के उस पार खड़ी सहमी हुई नज़र से अफ़सर को देख रही थी। "इसका वीज़ा ठीक है ना?" माँ आशा भरे स्वर में पूछ रही थी।

ट्रेन चली। दोनों ओर के सिपाही डिब्बों में चढ़े।

एकाएक दूसरा देश शुरू हो गया ! दो सरदारजी घास पर खड़े पहरा दे रहे थे।

मैं अब पाकिस्तान में हूँ। हिन्दुस्तान से आया हूँ। मुहाजिर...यू. पी. का मुसलमान...मुहाजिर ...शरणार्थी...बेघरबार।

जब ट्रेन ने बॉर्डर क्रास किया तो वह, जो इतने दिनों से अपना सारा साहस बटोर कर अपने आँसू रोके हुए था, खम्भे के पास एक सरदारजी को खीसें निकाले बन्दूक ताने खड़े देख कर बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा। फिर उसने अनुभव किया कि उसका सहयात्री उसे ग़ौर से देख रहा है। वह पाकिस्तानी बॉर्डर पुलिस का अफ़सर था और अमृतसर से लाहौर वापस जा रहा था।

कमाल बहुत लज्जित हुआ और उसे लगा मानो पाकिस्तानी पुलिस अफ़सर कह रहा है—तुम अब तक दो परस्पर-विरोधी वफ़ादारियों के दोराहे पर खड़े हो। लानत हो तुम पर।

उसने महसूस किया, मानो सारी दुनिया की आँखें उसकी तरफ़ लगी हैं—तुम हिन्दुस्तानी हो। हिन्दुस्तानी जासूस !

ट्रेन के पहियों से भी यही आवाज़ निकल रही है—जासूस-गद्दार, जासूस-गद्दार,

जासूस... ।

उसने हड़बड़ा कर आँखें खोलीं। ट्रेन धीरे-धीरे लाहौर स्टेशन के कस्टम की सलाखों वाले भाग में प्रवेश कर रही थी। उसका दिल धड़क रहा था।

लाहौर से वह हवाई जहाज़ में बैठा। हवाई जहाज़ कराची की तरफ़ उड़ने लगा।

अब उसका नया जीवन उसके सामने था। उसने डायरी निकाली। कराची वापस पहुँच कर उसे कितने आवश्यक कार्य करने थे। चाचा अमुक से क्लेम के लिए सिफ़ारिश करवानी थी। कोठी के लिए ब्लैक से सीमेंट और लोहे का प्रबन्ध करना था। मिस्टर एक्स को जिमख़ाने में एक पार्टी देनी थी। बताओ ! मैं कहाँ जाऊँ? उसने ख़ुद से सवाल किया। ख़राब, पतनशील, समाज में इंसान का ईमानदार रहना कहाँ तक सम्भव है? इस समस्या पर भी विचार करने की आवश्यकता थी। उसने एयर-होस्टेस से फिर काफ़ी मँगवाई और 'डॉन' अख़बार उठा कर पढ़ना शुरू किया।

"पाकिस्तान मंत्रिमंडल में संकट—प्रधानमंत्री का त्यागपत्र—नये प्रधानमंत्री का जहाँगीर पार्क में मिल्लत से ख़िताब।"

उसने खिड़की से बाहर देखा—आसमान पर बादल तेज़ी से फैलने लगे। कुछ देर में बारिश शुरू हो जाएगी।

उसने खिड़की का पर्दा बराबर कर दिया।

मैं ही लाश हूँ और मैं ही गोरकुन (क़ब्र खोदने वाला) और मैं ही नौःगर (विलाप करने वाला) उसने दिल में कहा और सीट के तकिए से सिर टिका कर आँखें बन्द कर लीं।

101

कच्ची सड़क पर लड़का बैलगाड़ी हाँकता हुआ जा रहा था। एक स्टेशन वैगन धुआँ छोड़ती, धूल उड़ाती एक धक्के के साथ आगे बढ़ गई। सामने से एक बैलगाड़ी और आ रही थी। गाड़ीवान ने बैल की दुम मरोड़ कर मोटरवालों को डाँटा—"देख कर नहीं चलात हो मुटरिया। अभी जो हमारा बैल चमक जाइत।" अमरीकन पत्रकार ने तुरन्त कैमरा निकाल कर उसका चित्र ले लिया। पीछे-पीछे एक और मोटर आ रही थी। उसमें बैठी हुई श्रीमती राजवाबड़े ने मुंडिया निकाल कर झाँका और फिर लेडी कमलेश वर्मा से बातों में लग गईं। श्रावस्ती अभी बहुत दूर थी। सूरज बादलों में छुपा जा रहा था—और वर्षा सिर पर खड़ी थी। डॉक्टर रावल ने अगली स्टेशन वैगन में बैठी हुई कुमारी अरुणा वाजपेयी से फिर कुछ पूछना चाहा। उसने तुरन्त प्रकाशन-विभाग की पुस्तिकाओं का बंडल उनकी नाक में ठूँस दिया और प्रश्नों से बचने के लिए निटिंग में जुट गई। तीसरी मोटर में लंका और जापान के कुछ भिक्षु लदे हुए थे। उनके साथ ही फ़िल्म्स-डिवीज़न का कैमरामैन था। दो-तीन किसान लड़कियाँ मुंडेर पर खड़ी इस कारवाँ को देखती रहीं। फिर अरहर के खेत में कूद कर काम में लग गईं। दूसरी तरफ़ ट्रैक्टर चल रहे थे। सामने की मोटर में बैठे हुए चंद नौजवानों ने 'जन गण मन' गाना शुरू कर दिया। पिछली सीट पर ज़ोर-ज़ोर से बातें हो रही थीं। इस सारे हंगामे से निस्पृह

गौतम नीलाम्बर ने, जो अब तक मोटर चला रहा था। मुड़ कर कुमारी अरुणा वाजपेयी से कहा—"अगर व्हील तुम ले लो तो मैं यहाँ उतर कर पैदल अपने घर चला जाऊँ।"

"क्या बहुत बोर हो गए हो?" कुमारी अरुणा ने पूछा। उसे खुद सफ़र की थकान के कारण नींद आ रही थी।

"हाँ, मैं यहीं से खेतों-खेतों निकल कर चला जाऊँगा—शॉर्टकट से। ज़रा जाकर नहा-धोकर आराम कर लूँ। सुबह से फिर यह सारा क्रम आरम्भ हो जाएगा। मुसियो रावल ! अगर आप आज्ञा दें तो...।" उसने फ़्रांसीसी लेखक को सम्बोधित किया।

उसने मोटर रोकी और उतर कर मुंडेर पर खड़ा हो गया। मोटरें एक-एक करके धूल उड़ाती आगे निकल गईं। वह कुछ देर वहीं खड़ा रहा। बारिश की एक बूँद टप् से उसके सिर पर आन गिरी। उसने हाथ फैला कर हवा को सूँघा और अरहर का एक डंठल तोड़ कर पगडंडी पर चलने लगा।

मेंह बरसना शुरू हो गया। उसने फुहार से बचने के लिए आम के एक घने झुंड में शरण ली और पेड़ की जड़ पर बैठ कर बहुत देर तक हवा और पत्तों का संगीत सुनता रहा। आधे घंटे बाद फिर अपने रास्ते पर चल पड़ा। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, हरे-भरे खेत लहलहा रहे थे। शहर अभी बहुत दूर था।

गौतम नीलाम्बर ने चलते-चलते ठिठक कर पीछे देखा। रास्ते की धूल वर्षा के कारण कम हो चुकी थी, यद्यपि उसके अपने पाँव मिट्टी से अटे थे। बरसात की वजह से घास और वृक्ष निखरे हरे रंग के दिखलाई पड़ रहे थे। नारंगी और लाल फूल गहरी हरियाली में क़ुमक़ुमों जैसे झिलमिलाते थे और हीरे जैसी जगमगाती पानी की लड़ियाँ टूट-टूट कर घास पर बिखर गई थीं। घाट पर नावें खड़ी थीं और बरगद के नीचे किसी मल्लाह ने सावन अलापना शुरू कर दिया था। आम के झुरमुट में एक अकेला मोर पर फैलाए खड़ा था। दूसरे किनारे पर दरियाई घास और नीले फूलों की घनी बेलें पानी की सतह पर झुक आई थीं। बरगद के साए अँधेरे हो चले थे। सारस और मोर सिमटे-सिमटाए उदास खड़े थे। चार-पाँच आदमी अँगोछे कंधे पर डाले जल्दी-जल्दी गाँव की ओर क़दम बढ़ा रहे थे।

बहराइच के उपनगर शुरू हो गए। सिविल-लाइंज़ की छायादार सड़क पर पहुँच कर वह अपने पिता की पीले रंग की दोमंज़िला कोठी में दाखिल हुआ।

उसके पिता सर दीप नारायण लॉन पर टहल रहे थे।

"हैलो बेटे !" उन्होंने कहा—"मेरा ख़याल था तुम विदेशी मेहमानों को लेकर सीधे सहेतमहेत चले गये।"

"जी नहीं, बाबा !" उसने झुक कर उनके पाँव छूते हुए कहा, "पहले रास्ते में उनको हम कोऑपरेटिव फ़ॉर्म दिखाने ले गए थे। उन लोगों को सिवाय फ़ॉर्म देखने और कॉन्फ़्रेंस अटेंड करने के और कोई काम नहीं। एक महीने से मुझे सिर खुजाने की फ़ुर्सत नहीं मिली है।"

"तुम्हारी डॉक्टर वाजपेयी तो बड़ी क़ाबिल लड़की है। वह उनको सारा 'डोप' दे रही होगी।"

"जी !"

फिर वह अन्दर जाकर अपनी माँ से मिला।

"दमयन्ती बुआ कहाँ हैं?" उसने गुसलख़ाने में नहाते हुए आवाज़ दी।

"शहर में उनके पास भी हो आना।"

"जी अच्छा।"

"तुम अच्छी तरह हो, बेटे?"

"जी हाँ। बच्चन का ब्याह कब हो रहा है?"

"अगले फागुन में।" माँ ने उत्तर दिया।

"प्रकाश चाचा की कोठी बन गई?"

"नहीं। वह ख़ान बहादुर मोहम्मद हुसैन नहीं थे, रिटायर्ड जज? वे पाकिस्तान चले गए। उनकी कोठी नीलाम हो रही थी, वह प्रकाश ने ले ली। बहुत सस्ती मिल गई।"

गुसलख़ाने से निकल कर खाने की मेज़ पर बैठते हुए उसी तरह की दो-चार और घरेलू बातें श्रीमती दीप नारायण से उसने कीं। पाकिस्तान के नाम पर उसके मन के तार झनझना उठे। पाकिस्तान को तो वह हमेशा भुलाए रखता था, हालाँकि अभी उसे श्रावस्ती के उन विदेशी दर्शकों को कश्मीर की समस्या भी समझानी होगी।

उसका दिल बुरी तरह घबराने लगा। उस पर वही वहशत छा गई, जिसने कुछ दिन पहले उसे नई दिल्ली में आन दबोचा था।

"मैं ज़रा हवा खाने नदी तक जाता हूँ।" उसने अपनी माँ से कहा।

"अभी तो इतना लम्बा सफ़र तय करके आ रहे हो अब फिर चल दिए। थोड़ा-सा आराम करो।" माँ ने परेशान होकर कहा।

वह बाहर निकल आया और अपने बाप की कार लेकर नदी की ओर चल दिया। बारिश ख़त्म हो चुकी थी और हवा बन्द थी। दरिया के किनारे पहुँच कर वह एक टूटे-फूटे मन्दिर की सीढ़ियों पर जा बैठा। यहाँ बिलकुल एकान्त था और वह बिलकुल रिक्त-मस्तिष्क हो जाना चाहता था। इस क्षण उसे जीवन में पहली बार ध्यान आया–काश कि निर्वाण सम्भव होता। भय, एकान्त का एहसास, दुःख, घृणा, पलायन की इच्छा, विस्तार और अतिरिक्तता की कल्पना. ..निर्वाण, जो जीवन से, मृत्यु से, सोने-जागने, प्रेम, दया और असम्वद्धता से परे है–और फिर भी सत्य है, विलीनता–शून्य–शून्य !

क्या ये विदेशी चिन्तक समझ सकते हैं कि हिन्दुस्तान की आत्मा के दुःख क्या हैं? उसने सिगरेट सुलगाई और मन्दिर के फ़र्श पर लेट गया। बरसात का ज़माना है। यहाँ साँप और कीड़े-मकोड़े ज़रूर होंगे, उसने इत्मीनान से सोचा। उसे अनुभव हुआ मानो जंगल से उसकी बहुत पुरानी दोस्ती है। आख़िर तो वह इन्हीं फ़िज़ाओं, इन्हीं पौधों और इन्हीं पेड़ों की छाया में पला-बढ़ा था।

सहसा उसे पैरों की आहट, और किसी की मद्धम हँसी की आवाज़ सुनाई दी।

"तुम कौन हो भाई?" नीचे से किसी ने पूछा।

"मैं हूँ !" गौतम ने लेटे-लेटे उत्तर दिया।

दूसरा नौजवान मन्दिर की मुंडेर कूद कर अन्दर आ गया।

"यह क्या पागलपन है। सारे में तुमको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। तुम्हारे घर गया। तुम्हारे अम्मा-अब्बा ने बताया कि तुम नदी पर विराज रहे हो।"

"हाँ यार। इस समय कैसी असाधारण उमस छाई हुई है। एक पत्ता तक नहीं हिल रहा। तुम्हारा दिन कैसा बीता?"

"बोर हो गए मियाँ।" हरिशंकर ने पास की सीढ़ी पर बैठते हुए कहा। 'बूडा जयंटी' कुछ दिन और इसी रह चालू रही तो अपन तो भर पाए। देख, इसी चक्कर में लखनऊ न जा सका। बंगलौर से जे. एस. का तार मिलते ही पहुँचा दिल्ली, और अब ये यात्री लोग, अरुणा वाजपेयी कह रही थी कि, यहाँ से सीधे कपिलवस्तु और गया जाने पर तुले बैठे हैं। रास्ते भर डॉक्टर हैंस क्रैमर ने मुझे महायान और ज़ेन के फ़र्क़ पर वह लेक्चर दिए हैं कि पटरा हो गया मेरा तो। तुम्हारी मोटर में तो सिर्फ़ मुसियो रावल ही थे।"

फिर एकाएक वह चुप हो गया। नदी पर डूबते सूर्य की लाली फैल गई थी। वे दोनों बहुत उदास हो गए।

"यार गौतम !"

"हाँ।"

"यार, कमाल हमें दग़ा दे गया।" हरिशंकर ने कुछ क्षण बाद आहिस्ता से कहा।

"हाँ।"

"तुमको पता है, साला दिल्ली होता हुआ गया। अगर मुझे तार दे देता तो मैं उससे आकर वहीं मिल लेता।"

"मैं तो दिल्ली में ही था, इसके बावजूद वह मुझसे नहीं मिला।" गौतम ने आहिस्ता से उत्तर दिया।

वे दोनों फिर चुप हो गए।

"जाने इस समय वह कहाँ होगा !" हरिशंकर ने गहरी, उदास आवाज़ में कहा।

"कराची में होगा और कहाँ होगा।" गौतम ने नीची आवाज़ में जवाब दिया।

वे दोनों ख़ामोश हो गए। सीढ़ियाँ उतर कर वे नदी के किनारे आए और बहते हुए पानी को देखते रहे। शायद वे दोनों ही सोच रहे थे कि अबुल मंसूर कमालुद्दीन किस तरह हिन्दुस्तान में आया था और किस तरह हिन्दुस्तान से निकल गया।

नदी बह रही थी। वे दोनों झुक कर उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखने लगे। गौतम ने एक कंकड़ पानी में फेंका, और लहरों का गोला फैलता गया, और उसमें उन दोनों के प्रतिबिम्ब फैलते गए।

घाट से कुछ दूर कम्युनिटी प्रोजेक्ट के सेन्टर में रोशनी हो रही थी। लोकगीत-मंडली ने वार्षिक यूथ-फ़ैस्टिवल के लिए अपनी प्रैक्टिस शुरू कर दी थी। उनकी आवाज़ें तैरती हुई उन दोनों तक आ रही थीं। दूर गाँव की चौपाल में नौटंकी हो रही थी। आमों के झुंड के बाहर आल्हा-ऊदल गाया जा रहा था। कांग्रेस-कमेटी के दफ़्तर में चुनाव की तैयारियाँ हो रही थीं। दूर मुसलमानों के मुहल्ले में पंडाल लगे थे और गैस के हंडे जल रहे थे, और शायद

मीलाद-शरीफ़ पढ़ा जा रहा था। आगे सिविल-लाइंज़ में डिप्टी-कमिश्नर की कोठी में यूरोपियन मेहमान डिनर खा रहे थे।

गौतम ने एक उलटी हुई नाव पर पाँव टिका कर आँखें बन्द कर लीं। फिर उसने आँखें खोल कर देखा—वह नदी के किनारे अकेला खड़ा था। हरिशंकर किसी किसान से बातें करता कम्युनिटी प्रोजेक्ट सेंटर की ओर जा चुका था। बादल अब नदी पर बहुत नीचे झुक आए थे।

उसने अपने थके हुए पैरों को देखा। बढ़ते हुए अंधकार पर नज़र डाली। लेकिन, डरने की क्या बात थी ! वह धरती के साथ था। धरती उसकी माँ थी। धरती उसका साथ देगी।

उसने आगे चलना शुरू किया।

घास की भीनी सुगंध, पत्थरों की शीतलता, और मिट्टी की शक्ति उसने अपने तलवों के नीचे महसूस की। उसने बाज़ू फैला कर हवा को छुआ और धीरे-धीरे दोहराना शुरू किया—"धरती, तेरी पहाड़ियाँ, बर्फ़ानी पर्वत और जंगल मुस्करा रहे हैं ! मैं तेरी सतह पर खड़ा हूँ। मैं हार नहीं सका—मुझे कोई चोट नहीं पहुँची—मुझे घाव नहीं लगे, मैं पूर्ण हूँ—मुझे कोई ख़त्म नहीं कर सका।"

तरह-तरह के पौधे और फूलों की डालियाँ उसके रास्ते में झुक-झुक आईं। पक्षी उसके साथ सीटियाँ बजा रहे थे। सावन की बूँदें कमल के पत्तों पर जल-तरंग बजा रही थीं।

वह एक मुंडेर पर खड़ा हो गया और भीगी आँखों से उसने खेत को देखा। बढ़ती जाओ ! बढ़ती जाओ !!..., ओ जौ की बालियो...ताकि हमारे घड़े भर जाएँ ! तूफ़ानों से बची रहो ! जौ की दिव्य बालियो...समुंदर की तरह अथाह रहो!...वे सब अमर रहें, जो तुम्हारी सेवा करते हैं ! तुम्हारे खलिहान अमिट रहें !"

वह मुंडेर पर से उतर कर पगडंडी पर आ गया, और नदी के किनारे-किनारे सड़क पर चलने लगा। आकाश में काले बादल गरज रहे थे। उसके दिल में तूफ़ानी दरिया लहरें मार रहे थे। उसके दिमाग़ में सुरीले झरने गीत गा रहे थे; मोर झंकार रहे थे; पपीहे चिल्लाते थे; भँवरे गूँज रहे थे। कदम्ब के बहुत से फूल डाल से टूट कर उसके क़दमों में आन गिरे।

गाने वालों की आवाज़ निकट आती गई। मंडली ने गाया—

बंजर आज हरे रे !
खेतन में नाज भरे रे !
जीवन आज सफल रे !
अच्छी धान अच्छी फसल रे !

वह टहनियाँ हटाता उस ओर बढ़ने लगा, जिधर से आवाज़ें आ रही थीं—

डाली के बीच-बीच, पत्तियों के बीच-बीच
मोतियन की लालन की लड़ियाँ उगाये हो।
ओ...नियरे आये हो !

वह ध्यान से सुनता रहा। जब शब्द उसकी समझ में आए, तो मुस्कराहट उसके होंठों पर बिखर गई।

चट्टानें, एवलांश, ग्लैशियर, आँधियाँ, तूफ़ान, झक्कड़—इन सबमें से गुज़रता सुर की लहरों

पर बहता वह गौरीशंकर की ऊँची चोटी पर चढ़ कर बादलों में छुप गया। चोटी पर वह घुटनों के बल टिक कर बैठ गया, और उसने देखा कि चारों ओर शून्य है, और उसमें हमेशा की तरह वह अकेला मौजूद है। दुनिया का पहला और आख़िरी इंसान...थका हुआ, पराजित, आनंदित, आशावान् इंसान, जो ईश्वर में है और स्वयं ईश्वर है ! वह मुस्करा कर नीचे उतरा और उसने आँखें खोलीं।

जागने वालों का जागना मुबारक हो !
क़ानून का प्रचार मुबारक हो !
संघ में शान्ति मुबारक हो !
उन लोगों की साधना मुबारक हो,
जिन्हें शान्ति प्राप्त हो गई है।

—शाक्य मुनि ने कहा।

वह मुंडेर पर से उतरा। उसने एक लम्बी साँस ली और आहिस्ता-आहिस्ता क़दम रखता बस्ती की तरफ़ वापस चला गया।

□□

RAJA RAMMOHUN ROY
LIBRARY FOUNDATION
उपहार स्वरूप
Gifted by
राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान
RAJA RAMMOHUN ROY
LIBRARY FOUNDATION
BLOCK DD-34 SECTOR-1 SALT LAKE
KOLKATA - 700 064

क़ुर्रतुलऐन हैदर

उर्दू की श्रेष्ठ साहित्यकार का जन्म 20 जनवरी,1926 को अलीगढ़ में हुआ। इनके पिता सैयद सज्जाद हैदर यलद्रम और माता नज़र सज्जाद हैदर उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. करने के पश्चात, लंदन से पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त की। 1967 में इनके कहानी संग्रह 'पतझड़ की आवाज़' पर इन्हें 'साहित्य अकादमी एवार्ड' मिला। 19 अक्तूबर को इनकी माता नज़र सज्जाद हैदर का बंबई में निधन हो गया। 1969 में इन्हें अनुवाद पर 'सोवियत लैंड नेहरू एवार्ड' मिला। [illegible] में इन्हें साहित्यिक कार्य पर देश का सर्वश्रेष्ठ सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' दिया गया। 1982-84 में ये मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ में विज़िटिंग प्रोफेसर रहीं। 1984 में इन्हें 'पद्म श्री' और 'ग़ालिब पुरस्कार' मिला।

उपन्यास:

मेरे भी सनम-ख़ाने (1946), सफ़ीना-ए-ग़म-ए-दिल (1952), आग का दरिया (1959), कार-ए-जहाँ दराज़ है, (जीवनी पर आधारित 2 भाग 1977, 1979), आख़िर-ए-शब के हमसफ़र, गर्दिश-ए-रंग-ए-चमन (1986) चाँदनी बेगम (1989)।

[illegible]:

(1) [illegible] (2) [illegible] (3) [illegible] (4) [illegible] (5) [illegible]।

[illegible]:

[illegible]